जिन खोजा तिन पाइयां

संचालन एवं संम्पादन :
स्वामी योग चिन्मय

आनन्द-शिला प्रकाशन

प्राक्कथन

सत्य की खोज—जीवन के, अस्तित्व के रहस्यों की खोज है।

जीवन है, जगत् है, अस्तित्व है, होश है, इन्द्रियाँ हैं, बुद्धि है।

लेकिन, इन सबके होते हुए भी जीवन का सत्य अज्ञात और अपरिचित है।

और जीवन का यह अज्ञान, यह अपरिचय पीड़ादायी है।

और फिर जीवन के प्रवाह में मनुष्य विकास की जिस स्थिति पर पहुँचा है, वह भी अपर्याप्त और अधूरा है।

विराट् सम्भावनाओं की तुलना में मनुष्य एक बीज मात्र ही है।

बहुत-कुछ उसमें सुप्त छिपा हुआ है।

जागरण की एक लम्बी श्रृंखला मनुष्य के भीतर प्रतीक्षारत है।

मनुष्य की चेतना को विकास की अनेक कक्षाओं व आयामों से गुजरना है।

अनेक परतें हैं, अवरोध है, जिन्हें चीर कर मनुष्य-चेतना अपनी पूरी ऊँचाई पर प्रकट हो सकती है।

तभी सत्य की उपलब्धि है और पीड़ाओं का अतिक्रमण है।

विराट् मनुष्य-सभ्यता के इतिहास में व्यक्तित्व के इस चरम विकास को कुछ ही लोग उपलब्ध हो सके है।

हम कुछ व्यक्तियों को अँगुलियों पर याद करते हैं—कृष्ण, महावीर, बुद्ध, लाओत्से, क्राइस्ट, मुहम्मद आदि।

और भी अनेक पृथ्वी-पुत्र जीवन के इस अमृत को, ज्ञान को, शिखर को उपलब्ध हुए हैं।

लेकिन, इतिहास उन्हें याद न रख सका।

अनेक साहसी लोगों ने हजारों वर्षों से सत्य के, अस्तित्व के, जीवन के रहस्यों व अतल गहराइयों की खोज में बड़ी अन्तर्यात्राएँ की है।

उनकी लम्बी परम्परा रही है, लम्बी श्रृंखला रही है।

मनुष्य के इस अस्तित्वगत अन्तर्विकास व अन्तर्यात्रा की जो प्रक्रिया जानी, पहचानी व खोजी गयी है, उससे ही धर्म का निर्माण हुआ है।

जैसे पदार्थ, जगत् व स्थूल जीवन के रहस्यों की खोज विज्ञान ने की है, उसी प्रकार एक **अस्तित्वगत अन्तरात्म-जगत् व अन्तश्चेतना-जगत् की खोज,** भी है, जिसके परा-विज्ञान (Occult Science) को धर्म ने विकसित किया है।

इस खोज को धर्म साधना कहता है और इसकी अन्तः प्रक्रियाओं को योग।

योग के भी अनेक आयाम विकसित हुए हैं, जैसे हठयोग, राजयोग, मन्त्र-योग, लययोग, स्वरयोग,नादयोग, कुण्डलिनी-योग आदि।

योग-विद्या ने ही बौद्ध-साधना, इस्लाम-साधना, सूफी-साधना, ताम्रो-साधना, क्रिश्चियन-साधना के रूप में दूर-दूर देशों में बड़ी यात्राएँ की हैं।

योग के विविध आयामों में कुण्डलिनी-साधना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व उपयोगी सिद्ध हुई है।

क्योंकि, कुण्डलिनी-साधना में सर्वाधिक प्रकार के व्यक्तित्वों का अन्तर्विकास समाहित हो जाता है।

कुण्डलिनी की अन्तर्यात्रा स्थूलतम आधार से शुरू होकर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होती हुई सूक्ष्मातिसूक्ष्म का भी अतिक्रमण कर परम सत्य तक पहुँचाती है।

कुण्डलिनी साधना में व्यक्तित्व की समस्त सम्भावनाओं का सर्वांगीण विकास सम्भव है।

कुण्डलिनी-साधना अपने विकास की ऊँचाइयों में योग के अनेक आयामों को और विविध प्रक्रियाओं को अपने में समाहित कर लेती है। इसीलिए इस साधना को सिद्ध-योग और महा-योग नाम भी दिया गया है।

कुण्डलिनी-साधना आन्तरिक रूपान्तरण व जागरण की वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

इसमें अस्तित्वगत रूपान्तरण (Existencial Transformation) घटित होता है।

कुण्डलिनी-साधना में व्यक्ति का सुप्त आत्म-बीज टूटता है, फूटता है, अंकुरित होता है।

और फिर उसका पौधा विकसित होता हुआ विराट् जीवन-वृक्ष बनता है।

फिर उस पूर्ण विकसित व्यक्ति-वृक्ष में फूल खिलते हैं—ध्यान के, समाधि के, और फल आते हैं—आनन्द के, शान्ति के, प्रेम के।

फिर उसमें से सुगन्ध व आलोक फैलता है—मुक्ति का, अनुग्रह का, आप्त-कामता का।

और तब व्यक्ति खो ही जाता है—अनन्त रहस्यमय अस्तित्व में।

एकरस हो जाता है—जीवन के स्रोत में।

जीवन की सारी सीमाएँ, विरोध, द्वन्द्व और पीड़ाएँ समाहित व शान्त हो जाती हैं, उस परम सत्य की उपलब्धि में।

लेकिन, साधक को उस उपलब्धि की खोज में निकलना होगा।

यात्रा करनी होगी स्वयं के भीतर।

श्रम करना होगा स्वयं के अस्तित्व के साथ।

साधना करनी होगी अपनी ही वृत्तियों व अन्तर्स्थितियों के साथ।

जगाना होगा अपने ही भीतर की सोयी हुई शक्तियों को, सोये हुए केन्द्रों को।

लम्बी यात्रा है।

लेकिन, जिज्ञासु, खोजी व धैर्यवान मुमुक्षु के लिए वह जरा भी लम्बी नहीं है।

साधना में छलांग लगी कि समय गया।

फिर तो परमात्मा की शक्ति ही सारे रूपान्तरणों को सम्पन्न करती चली जाती है।

और किसी दिन पाया जाता है कि बिना कुछ प्रयास किये ही, बिना अहंकार व कर्ता के संघर्ष के परम सत्य प्रकट हो गया है।

तब प्राण-प्राण, कण-कण और सारा अस्तित्व अनुग्रह और प्रार्थना से नाच और गा उठता है : "उसकी अनुकम्पा अपार है"।

कुण्डलिनी-योग पर आचार्यश्री रजनीश के अद्‌भुत, अनूठे, अद्वितीय प्रवचनों का प्रस्तुत संकलन "जिन खोजा तिन पाइयाँ" इसी अन्तर्यात्रा के लिए आह्वान भी है और चुनौती भी।

साधक, मुमुक्षु व परम-अर्थ के खोजी जन इसमें पायेंगे कि ये प्रवचन "कागज की लेखी" नहीं हैं, इसमें सब-कुछ "मैं कहता आँखन की देखी" है।

ये प्रवचन खरे हैं, निखरे हैं—अनुभव की कसौटी पर हजारों बार कसे हैं।

कुण्डलिनी-योग पर आज तक उपलब्ध सारे साहित्य में "जिन खोजा तिन पाइयाँ" का अपना अनूठा योगदान होगा।

इसमें शास्त्रीयता व सिद्धान्तों की बोझिलता आप जरा भी न पायेंगे।

सारे के सारे प्रवचनों में एक जीवन्त प्रवाह है।

एक-एक शब्द आचार्यश्री के प्राणों से और उनके अस्तित्व की गहराइयों से प्रवाहित हुआ है।

निश्चित ही वह आपको भी छू जायगा, झकझोर जायगा, जगा जायगा और अन्तर्यात्रा की ओर एक बड़ा धक्का दे जायगा।

प्रथम ५ प्रवचन-साधना शिविर, नारगोल, जिला-बलसाड़ गुजरात के हैं तथा शेष १३ प्रश्नोत्तर-चर्चाएँ बम्बई में विशिष्ट साधकों की एक गोष्ठी के बीच सम्पन्न हुई हैं।

इस संकलन में अधिकतर चर्चाएँ प्रायोगिक (Experimental) हैं।

उनमें अनेक संकेत हैं।

जिनसे साधना की गहराइयों में डुबकी लगाने वाले साधक और भी अधिक गहराइयों में छलांग लगाने के लिए उत्प्रेरित होंगे।

इनमें **कुण्डलिनी-साधना व तंत्र के कुछ गुह्य आयामों** (Esoteric Dimensions) **के भी संकेत हैं, जिनमें प्रायोगिक प्रवेश का विस्तार तो केवल अधिकारी साधक जान पायेंगे।**

इन प्रवचनों व चर्चाओं में न केवल कुण्डलिनी-साधना पर प्रकाश डाला गया है, वरन् **कुण्डलिनी के द्वारा ही कुण्डलिनी के अतिक्रमण** (Transcendence of Kundalini)पर भी काफी बातें की गयी हैं।

शक्तिपात, प्रभु-प्रसाद (ग्रेस) और सात शरीरों पर इतने वैज्ञानिक ढंग से बात कभी भी प्रकाश में नहीं आयी है।

आचार्यश्री के स्वानुभव व अनेक जन्मों के अनन्त साधना-प्रयोगों का इनके पीछे आधार है।

आत्म-शरीर, ब्रह्म-शरीर और निर्वाण-शरीर की साधनाओं पर जो कुछ कहा गया है, वह तो हिन्दी-साहित्य व विश्व-साहित्य के लिए **अनूठी व ऐतिहासिक देन** सिद्ध होगी।

सामान्यतया आज तक **कुण्डलिनी-साधना** का प्रयोग केवल आश्रमों मे चुने हुए साधकों पर किया जाता रहा है। **सामान्य जन समूह उससे बिलकुल ही अछूता व अपरिचित रहा है।** क्योंकि, पिछली ज्ञात कुण्डलिनी-विधियों के अपने खतरे थे, जिसके कारण उसे चुने हुए लोगों तक सीमित रखना जरूरी भी था।

लेकिन, आचार्यश्री के ही शब्दो मे :

"मनुष्य-जाति के इतिहास मे आने वाले कुछ वर्ष बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अब दो-चार आध्यात्मिक लोगो से काम नही चलेगा। अगर एक ऐसे **बहुत बड़े आध्यात्मिक आन्दोलन का जन्म** नही होता जिसमे लाखों-करोड़ो लोग एक साथ प्रभावित हो जायँ तो दुनिया को भौतिकवाद के गर्त से बचाना असम्भव हो जायगा। और बहुत मोमेन्टस (महत्त्वपूर्ण और निर्णायक) क्षण है कि पचास साल में भाग्य का (मनुष्य-सभ्यता का) निपटारा होगा—या तो धर्म बचेगा या निपट अधर्म बचेगा।

"वह जो संघर्ष चल रहा है सदा से वह बहुत निपटारे के मौके पर आ गया है और अभी तो जैसी स्थिति है, उसे देख कर आशा नही बनती है। लेकिन, मैं निराश नही हूँ। क्योंकि, **मुझे लगता है कि बहुत शीघ्र-बहुत सरल, सहज मार्ग खोजा जा सकता है जो करोड़ों लोगों के जीवन में क्रान्ति की किरण बन जाय....**"

"जिन खोजा तिन पाइयाँ" मे इसी करुण-अभीप्सा का समाधान समाहित है।

इसमें जिस ध्यान की प्रक्रिया का प्रयोग किया गया है वह **अपने ढंग का अनूठा और नया अनुसंधान** है। इसका प्रयोग अकेले—एकान्त में तथा हजारो की संख्या मे एक साथ भी किया जा सकता है। अनेक बडे साधना—शिविरो में हजारों लोगो ने इसका अभ्यास किया है।

भारत में हजारों-लाखों की संख्या में लोग इससे लाभान्वित हो रहे हैं। भारत के बाहर भी अनेक देशों में इस प्रयोग का संदेश पहुँचना शुरू हुआ है और शीघ्र ही निकट भविष्य मे लाखों की संख्या में विदेशियों को भी इसका प्रयोग लाभान्वित करेगा।

इस प्रयोग में कुण्डलिनी-साधना के सारे सम्भाव्य खतरों का निराकरण है। इसमें साधक की योग्यता व क्षमता के अनुसार ही प्रतिक्रियाएँ घटित होती हैं तथा वे सब साधक को आगे की गहरी प्रतिक्रियाओं के लिए पुष्ट व सक्षम भी बनाती चलती हैं।

इस ध्यान-प्रयोग में मनुष्य व्यक्तित्व के आमूल रूपान्तरण (Total Transformation) की वैज्ञानिक कीमिया है।

यह विधि पूर्ण स्वावलम्बन व स्वतन्त्रता की है। इसमें आगे के रास्ते व आयाम स्वतः ही खुलते चले जाते हैं और साधक को मार्ग-निर्देशन की आवश्यकता नगण्य-सी रह जाती है।

इसकी विधि इतनी सरल है कि इसे दो-तीन दिन सीखकर कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी उम्र का हो, घर पर इसका प्रयोग स्वयं कर सकता है। टेपरिकॉर्डर से अथवा रेडियो-प्रसारण (Radio Broadcasting) से भी इसका अभ्यास किया जा सकता है।

विद्यार्थियों के शारीरिक, भावनात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास के लिए इस प्रयोग का अद्भुत योगदान है। नयी पीढ़ी को इस ध्यान-प्रयोग से बड़ी सृजनात्मक दिशा मिल सकती है।

इस साधना-विधि का बड़ा चिकित्सात्मक मूल्य (Therapeutic Value) भी है।

ध्यान की गहराइयों और ऊँचाइयों में जाने के पहले इसका अधिकतर प्रभाव शारीरिक बीमारियों व मानसिक विकृतियों के रेचन व शोधन में होता है।

भविष्य में इस ध्यान-विधि का आध्यात्मिक-शक्ति से विशाल समूह-रोग-मुक्ति (Mass Healing) में बड़ा उपयोग हो सकेगा। सैकड़ों ध्यान-प्रयोग करते हुए साधको के बीच में यदि रोगियों को चुपचाप शान्त और मौन बिठा दिया जाय तो बड़ी संख्या में रोग-मुक्ति घटित हो सकती है।

"जिन खोजा तिन पाइयाँ" पुस्तक से आचार्यश्री के व्यक्तित्व का एक नया गुह्य (Esoteric) व परा-वैज्ञानिक (Occutt) आयाम उद्घाटित होता है। इसके साथ ही उनके गहन अनुभवो व उपलब्धियों का जगत् प्रकाश में आता है। भविष्य में इसी तरह के अनेक विशालकाय प्रवचन-संकलन प्रकट होंगे

जिनमें—सूफी-साधना, जैन-साधना, हिन्दू-साधना, ताओ-साधना, क्रिश्चियन-साधना व तन्त्र-साधना आदि की अनेक प्रणालियों पर प्रवचन होंगे।

अन्तर्वस्तु-अनुक्रम में विषय-सार-सूची इतने विस्तार से बनायी गयी है कि पाठक को एक ही दृष्टि में विषयों के विस्तार व गहराई की झलक मिल जायेगी। अतः उन सब के सम्बन्ध में अधिक उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं रह जाती है।

पाठकों की सुविधा व परिचय के लिए इस पुस्तक में २२ फोटो प्लेट्स में ध्यान-प्रयोग में विभिन्न साधकों को होने वाली अनेक प्रतिक्रियाओं की झलक प्रस्तुत है। चित्रों के सम्बन्ध में सूत्रवत् जानकारी भी उनके पीछे अंकित कर दी गयी है।

अन्तिम बात।

आज जीवन्त-धर्म व साधना के अभाव में सारी मनुष्यता पागलपन व विनाश के कगार पर खड़ी है। धर्म व अध्यात्म की ऊँचाइयाँ व दिव्य-पुरुषों की बातें पौराणिक कथाएँ मात्र बनती जा रही हैं। आध्यात्मिक उपलब्धियों के दावे मात्र शाब्दिक व भ्रामक बनते जा रहे हैं। **कृष्ण, महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट जैसे लोगों का लम्बा अभाव लोगों के मन में उन जैसे लोगों के अस्तित्व की सम्भावना तक को संदिग्ध बनाये दे रहा है।** और विज्ञान तथा तथाकथित साम्यवाद धर्म को पूरी तरह से नष्ट करने की तैयारी में है। आधुनिक सभ्यता में जन-जीवन से **धर्म व साधना का आयाम होता चला जा रहा है।** इस संकटकालीन व संक्रमण-कालीन स्थिति से व्यथित हो करुणावश आचार्यश्री ने **चेतावनी दी है, पुकार** लगायी है, **आह्वान** किया है :

"हमें आदमी चाहिए कृष्ण जैसे, जीसस जैसे, बुद्ध जैसे, महावीर जैसे। अगर हम आने वाले पचास वर्षों में वैसे आदमी पैदा नही करते हैं तो मनुष्य जाति एक अत्यन्त अंधकारपूर्ण युग में प्रविष्ट होने को है। उसका कोई भविष्य नही है...

"इसलिए जिन लोगों को भी लगता है कि जीवन के लिए वे कुछ कर सकते हैं, उनके लिए एक बड़ी चुनौती है। **और मैं तो गाँव-गाँव यह चुनौती देते हुए घूमूंगा** और जहाँ भी मुझे **कोई आँख** मिल जायेगी जो लगेगी कि **दिया बन सकती है**, उनमें (आत्म) ज्योति जल सकती है, तो उन पर मैं अपना पूरा श्रम करने को तैयार हूँ। **मेरी तरफ से पूरी तैयारी है। देखना** है कि मरते वक्त मैं भी कही यह न कहूँ कि सौ आदमियों को खोजता था, वे मुझे नही मिले।"

उनकी इस पुकार को सुनकर देश व विदेश के बहुत-से साधक सामने आते चले जा रहे हैं। और भी अनेक साधक समय पर आयेंगे—इसकी प्यासी, मौन व प्रार्थनापूर्ण प्रतीक्षा है।

और अन्त में पाठक इस बात को ध्यान रखे कि साधना सोच-विचार, मनन-

चिंतन और बौद्धिक विश्लेषण नहीं है। वे सब साधना से बचने के उपाय हैं।

साधना स्वयं की अज्ञात गहराइयों में छलांग लगाने का साहस है। साधना स्वयं को आमूल बदल डालने का संकल्प है। साधना स्वयं को नये जन्म की प्रसव-पीड़ा से गुजरने की तैयारी है।

साधना के जगत् में लाखों को प्रायोगिक (Experimental) प्रेरणा इस पुस्तक से मिल पायेगी, इस आशा और आश्वासन तथा चुनौती और आमंत्रण के साथ प्रस्तुत है—जिन खोजा तिन पाइयाँ।

योग चिन्मय के प्रणाम

ए-वन, वुडलेण्ड्स,
देशबंधु मार्ग (पेडर रोड),
बम्बई–२६
दिनांक २६-१-१९७१

अन्तर्वस्तु-अनुक्रम

— अठारह —

●

जिन खोजा तिन पाइयाँ

•

कुण्डलिनी-योग पर

साधना शिविर, नारगोल एवं साधना-चर्चा गोष्ठी, बम्बई में दिये गये
आचार्यश्री रजनीश के १८ प्रवचनों एवं ध्यान के प्रयोगों का संकलन

उद्घाटन-प्रवचन

साधना-शिविर, नारगोल, रात्रि, २ मई, १९७०

●

यात्रा कुण्डलिनी की : ऊर्जा-कुण्ड से परमात्मा तक

मेरे प्रिय आत्मन्,

मुझे पता नहीं कि आप किसलिए यहाँ आये है। शायद आपको भी ठीक से पता न हो, क्योंकि हम सारे लोग जिन्दगी मे इस भाँति ही जीते है कि हमें यह भी पता नहीं होता कि क्यों जी रहे हैं, यह भी पता नहीं होता कि कहाँ जा रहे है, और यह भी पता नहीं होता कि क्यो जा रहे है।

१. मूर्छा का तथ्य और जागरण की प्यास

जिन्दगी ही जब बिना पूछे बीत जाती हो तो आश्चर्य नहीं होगा कि आपमे से बहुत लोग बिना पूछे यहाँ आ गये हों कि क्यों जा रहे है। शायद कुछ लोग जानकर आये हों। सम्भावना बहुत कम है। हम सब ऐसी मूर्छा मे चलते हैं, ऐसी मूर्छा मे सुनते हैं, ऐसी मूर्छा में देखते हैं कि न तो हमें वह दिखाई पड़ता जो है, न वह सुनाई पड़ता जो कहा जाता है, और न उसका स्पर्श तथा अनुभव हो पाता है जो सब ओर से भीतर और बाहर हमें घेरे हुए है।

मूर्छा में ही यहाँ भी आ गये होंगे, (एक-दो व्यक्तियों के जोर से रोने की आवाज) किसलिए जी रहे हैं यह भी हमे ज्ञात नहीं है। हमारे कर्मों का भी हमें कुछ पता नहीं है। हमारी श्वासों का भी हमें कुछ पता नहीं है। लेकिन **मैं क्यों आया हूँ, यह मुझे** जरूर पता है, वह मैं आपसे कहना चाहूँगा।

बहुत जन्मों से खोज चलती है आदमी की। न मालूम कितने जन्मों की खोज के बाद उसकी झलक मिलती है जिसे हम आनन्द कहे, शान्ति कहे, सत्य कहें, परमात्मा कहे, मोक्ष कहें, निर्वाण कहे, जो भी शब्द ठीक मालूम पड़े, कहें। ऐसे कोई भी शब्द उसे कहने मे ठीक नही है, समर्थ नही है। जन्मो-जन्मो के बाद उसका मिलना होता है। और जो लोग भी उसे खोजते हैं, वे सोचते है पाकर विश्राम मिल जायेगा। लेकिन, जिन्हे भी वह मिलता है, मिलकर पता चलता है कि यह एक नये श्रम की शुरुआत है, विश्राम नही।

कल तक पाने के लिए दौड़ थी और फिर बाँटने के लिए दौड़ शुरू हो जाती है। अन्यथा बुद्ध हमारे द्वार पर आकर खडे न हों, और न महावीर हमारी सांकल को खटखटाये, और न जीसस हमें पुकारे। उसे पा लाने के बाद एक नया श्रम है। सच यह है कि जीवन मे जो भी महत्त्वपूर्ण है, उसे पाने मे जितना आनन्द है, उससे अनन्त गुना आनन्द उसे बाँटने मे है। जो उसे पा लेता है, फिर वह उसे बाँटने को वैसे ही व्याकुल हो जाता है, जैसे कोई फूल खिलता है और सुगन्ध लुटती है, कोई बादल आता है और बरसता है या सागर की कोई लहर आती है तटों से टकराती है। ठीक ऐसे ही **जब कुछ मिलता है तो बँटने के लिए, बिखरने के लिए, फैलने के लिए प्राण आतुर हो जाते है।**

मेरा मुझे पता है कि मै यहाँ क्यो आया हूँ। और अगर मेरा और आपका कही मिलन हो जाय, जिसलिए मैं आया हूँ अगर उसके लिए ही आपका भी आना हुआ हो तो हमारी ये मौजूदगी सार्थक हो सकती है। अन्यथा अक्सर ऐसा होता है कि हम पास से गुजरते है, लेकिन मिल नही पाते। अब मै जिस लिए आया हूँ अगर उसी लिए आप नही आये है तो हम पास रहेगे, निकट रहेगे, लेकिन मिल नही पायेगे।

२. सत्य को देखने की आँख

कुछ जो मुझे दिखाई पड़ता है चाहता हूँ, कि आपको भी दिखाई पडे। और मजा यह है कि **वह इतने निकट है कि आश्चर्य ही होता है कि वह आपको दिखाई क्यों नहीं पड़ता।** और कई बार तो सन्देह होता है कि जैसे जानकर ही आप आँख बन्द किये बैठे है। देखना ही नही चाहते है, अन्यथा इतने जो निकट है वह आपके देखने से कैसे चूक जाता! जीसस ने बहुत बार कहा है कि **'लोगों के पास आँखें हैं, लेकिन वे देखते नहीं, कान हैं, लेकिन वे सुनते नहीं।'** बहरे ही बहरे नही है और अधे ही अधे नही है। जिनके पास आँख और कान है, वे भी अंधे और बहरे है। इतने निकट है, दिखाई नही पड़ता! इतने पास है, सुनाई नहीं पड़ता! चारों तरफ घेरे हुए है, स्पर्श नही होता! क्या बात है? कहीं कोई छोटा-सा अटकाव हो गया है, बड़ा अटकाव नही है।

ऐसा ही है जैसे आँख में एक तिनका पड़ जाय और पहाड़ दिखाई न पड़े। आंख बन्द हो जाय। तर्क तो यही कहेगा कि पहाड़ को जिसने ढांक लिया वह तिनका बहुत बड़ा होगा। तर्क तो ठीक ही कहता है। गणित तो यही कहेगा। इतने बड़े पहाड को जिसने ढांक लिया वह तिनका पहाड़ से बड़ा होना चाहिए। लेकिन तिनका बहुत छोटा है, आँख बहुत छोटी है। तिनका आँख को ढँक लेता है तो पहाड ढँक जाता है।

हमारी भीतर की आँख पर भी कोई बहुत बड़े पहाड़ नही है, छोटे तिनके है। उनसे जीवन के सारे सत्य छिपे रह जाते है। और निश्चित ही जिन आँखो से हम देखते है उन आँखो की मैं बात नही कर रहा हूँ। इससे बड़ी भ्रान्ति पैदा होती है। यह ठीक से ख्याल मे आ जाना चाहिए कि इस जगत् मे हमारे लिए वही सत्य सार्थक होता है जिसे पकडने की, जिसे ग्रहण करने की, जिसे स्वीकार कर लेने की, भोग लेने की रिसेप्टिविटी (Receptivity) ग्राहकता हममें पैदा हो जाती है।

सागर का इतना जोर का गर्जन है, लेकिन मेरे पास कान नहीं है तो सागर अनन्त-अनन्त काल तक भी चिल्लाता रहे, पुकारता रहे तो भी मुझे कुछ सुनाई नही पडेगा। जरा से मेरे पास कान न हो तो सागर का इतना बड़ा गर्जन व्यर्थ हो गया। आँखे न हो, तो द्वार पर खड़ा सूर्य भी बेकार हो गया। हाथ न हो और मैं किसी को स्पर्श करना चाहूँ, तो कैसे करूँ ? परमात्मा की इतनी बात है, आनन्द की इतनी चर्चा है, इतने शास्त्र हैं, इतने लोग प्रार्थनाएँ कर रहे है, मन्दिरो मे भजन-कीर्तन कर रहे है, लेकिन, लगता नही कि परमात्मा को हम स्पर्श कर पाते है। लगता नही कि वह हमे दिखाई पडता है। लगता नही कि हम उसे सुनते है। लगता नही कि हमारे प्राणो के पास उसकी कोई धड़कन हमे सुनाई पडती है। ऐसा लगता है, सब बातचीत है, सब बातचीत है।

ईश्वर की हम बात किये चले जाते है और शायद इतनी बात हम इसलिए करते हैं कि शायद हम सोचते हैं बातचीत करके अनुभव को झुठला लेगे। बातचीत करके ही पा लेगे। अब बहरे जन्मो-जन्मो तक बाते करे स्वरों की, सगीत की और अधे बाते करे प्रकाश की तो जन्मो तक करे बाते; तो भी कुछ होगा नही। हाँ, एक भ्रान्ति हो सकती है कि अधे प्रकाश की बात करते-करते यह भूल जायँ कि हम अंधे है। क्योकि **प्रकाश की बहुत बात करने से उन्हें लगने लगे कि हम प्रकाश को जानते हैं।**

जमीन पर बने हुए परमात्मा के मंदिर और मस्जिद इस तरह का ही धोखा देने में सफल हो पाये हैं। उनके आस-पास, उनके भीतर बैठे हुए लोगो को भ्रम के अतिरिक्त कुछ और पैदा नही होता। ज्यादा से ज्यादा हम परमात्मा को मान

पाते हैं, ज्ञान नहीं पाते हैं। और मान लेना बातचीत से ज्यादा नहीं है। कनृव्हिन्सिग (Convincing) प्रभावशाली बातचीत है तो मान लेते हैं। कोई जोर से तर्क करता है और सिद्ध करता है तो मान लेते हैं। हार जाते हैं। नहीं सिद्ध कर पाते हैं कि 'नहीं है' तो मान लेते हैं। लेकिन **मान लेना जान लेना नहीं है।** अंधे को हम कितना ही मना दें कि प्रकाश है तो भी प्रकाश को जानना नहीं होता है।

मैं तो यहाँ इसी ख्याल से आया हूँ कि **जानना हो सकता है।** निश्चित ही **हमारे भीतर कुछ और भी केन्द्र है जो निष्क्रिय पड़ा है। जिससे कभी कोई कृष्ण जान लेता है और जागता है।** और कभी कोई जीसस जान लेता है और सूली पर लटक कर भी कह पाता है कि माफ कर देना इन्हें, क्योंकि इन्हें पता नही कि ये क्या कर रहे हैं। निश्चित ही कोई महावीर पहचान लेता है और किसी बुद्ध के भीतर वो फूल खिल जाता है। कोई केंद्र है हमारे भीतर, कोई आँख, कोई कान, जो बन्द पड़ा है। **मैं तो इसीलिए आया हूँ कि वो जो बन्द पड़ा हुआ केन्द्र है, कैसे सक्रिय हो जाय।**

यह बल्ब लटका हुआ है। इससे रोशनी निकल रही है। तार काट दें तो बल्ब जरा भी नही बदला, लेकिन रोशनी बन्द हो जायगी। विद्युत् की धारा न मिले बल्ब को, बल्ब तक न आये तो बल्ब अँधेरा हो जायगा। और जहाँ प्रकाश गिर रहा था वहाँ सिर्फ अँधेरा घिरेगा। बल्ब वही है, लेकिन निष्क्रिय हो गया है। वो जो धारा शक्ति की दौड़ती थी, अब नहीं दौड़ती है। और शक्ति की धारा न दौडती हो तो बल्ब क्या करे ?

३. दिव्य-दृष्टि के जागरण का केन्द्र

हमारे भीतर भी कोई केन्द्र है जिससे वह जाना जाता है, जिसे हम परमात्मा कहें, लेकिन उस केन्द्र तक हमारी जीवन-धारा नहीं दौड़ती है। तो वो केन्द्र निष्क्रिय पडा रह जाता है। आँखें हों ठीक बिलकुल और आँखों तक जीवन की धारा न दौडे तो आँखें बेकार हो जायेंगी।

एक लड़की को मेरे पास लाये थे कुछ मित्र। उस युवती का किसीसे प्रेम था और घर के लोगों को पता चला और प्रेम के बीच दीवाल उन्होने खड़ी की। **अब तक हम इतनी अच्छी दुनिया नहीं बना पाये जहाँ प्रेम के लिए दीवालें न बनानी पड़ती हों।** उन्होंने दीवाल खड़ी कर दी। उस युवती के और उस युवक के मिलने का द्वार बन्द कर दिया। बड़े घर की युवती थी, बीच से छत पर दीवाल उठा दी ताकि आर-पार न देख सके। जिस दिन दीवाल उठी, उसी दिन वह लड़की अचानक अंधी हो गयी। पहले तो शक हुआ। माँ-बाप ने डाँटा-डपटा, मारने-पीटने की धमकी दी। लेकिन डाँटने-डपटने से अंधेपन तो ठीक नहीं होते। डाक्टरों को दिखाया। डाक्टरों ने कहा कि आँख बिलकुल ठीक है। लेकिन फिर भी

डाक्टरों ने कहा कि लड़की झूठ नहीं बोलती है। उसे दिखाई नहीं पड़ रहा है। उन्होंने कहा कि साइकोलाजिकल ब्लाइंडनेस (Psychological blindness), मानसिक अंधापन आ गया है, हम कुछ नहीं कर सकेंगे। लड़की की जीवन-धारा आँख तक जानी बन्द हो गयी। जो ऊर्जा आँख तक जाती है वह बन्द हो गयी, वह धारा अवरुद्ध हो गयी है। आँख ठीक है, लेकिन जीवन-धारा आँख तक नहीं पहुँचती है। उस लड़की को मेरे पास लाये। मैंने सारी बात समझी। मैंने उस लड़की से पूछा कि तेरे मन में क्या हुआ है ? उसने कहा कि मेरे मन में यह हुआ है कि जिसे देखने के लिए मेरे पास आँखें है, अगर उसे न देख सकूँ तो आँखों की क्या जरूरत है ? बेहतर है कि अंधी हो जाऊँ। कल रात भर मेरे मन में एक ही ख्याल चलता रहा। रात मैंने सपना भी देखा कि मैं अंधी हो गयी हूँ। और यह जानकर मेरा मन प्रसन्न हुआ कि मैं अंधी हो गयी हूँ। क्योंकि, जिसे देखने के लिए आँख आनन्दित होती जब उसे ही नहीं देख सकूँगी तो आँख की क्या जरूरत है ? अंधा ही हो जाना अच्छा है। उसका मन अंधा होने के लिए राजी हो गया। जीवन-धारा आँख तक जानी बन्द हो गयी। आँख ठीक है, आँख देख सकती है, लेकिन जिस शक्ति से देख सकती थी वह अब आँख तक नहीं जाती है।

हमारे व्यक्तित्व में छिपा हुआ कोई केन्द्र है जहाँ से परमात्मा पहचाना, जाना जाता है, जहाँ से सत्य की झलक मिल सकती है, जहाँ से जीवन की मूल ऊर्जा से हम सम्बन्धित होते हैं, जहाँ से पहली बार संगीत फूटता है, वो जो किसी वाद्य से नहीं उठ सकता। जहाँ से पहली बार वे सुगन्धें उपलब्ध होती है जो अनिर्वचनीय है, और जहाँ से उस सबका द्वार खुलता है जिसे हम मुक्ति कहे, जहाँ कोई बन्धन नहीं है, जहाँ परम स्वतन्त्रता है। जहाँ कोई सीमा नहीं और असीम का विस्तार है। जहाँ कोई दुख नहीं और जहाँ आनन्द, और आनन्द, और आनन्द है, और आनन्द के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। लेकिन उस केन्द्र तक हमारी जीवन-धारा नहीं जाती है, एनर्जी नहीं जाती है, ऊर्जा नहीं जाती है। कहीं नीचे ही अटक कर रह जाती है।

इस बात को थोडा ठीक से समझ ले, क्योंकि तीन दिन जिसे मैं ध्यान कह रहा हूँ, वह **इस ऊर्जा को, इस शक्ति को उस केन्द्र तक पहुँचाने का ही प्रयास करना है।** जहाँ वो फूल खिल जाय, वो दिया जल जाय, वो आँख मिल जाय, वो तीसरी आँख, वो सुपर-सेंस, वो अतीन्द्रिय इन्द्रिय खुल जाय जहाँ से कुछ लोगो ने देखा है। और जहाँ से सारे लोग देखने के अधिकारी है, लेकिन बीज होने से ही जरूरी नहीं कि कोई वृक्ष हो जाय। हर बीज अधिकारी है वृक्ष होने का, लेकिन सभी बीज वृक्ष नहीं हो पाते, क्योंकि बीज की सम्भावना तो है, पोटेंशियलिटी (Potentiality) तो है कि वृक्ष हो जाय, लेकिन खाद भी जुटानी पड़ती है, जमीन में

बीज को दबना भी पडता, मरना पड़ता, टूटना पडता, बिखरना पड़ता है। **जो भी बीज टूटने, बिखरने को, मिटने को राजी हो जाता है वह वृक्ष हो जाता है।** और अगर वृक्ष के पास हम बीज को रख कर देखें तो पहचानना बहुत मुश्किल होगा कि यह बीज इतना बडा वृक्ष बन सकता है। असम्भव है !

असम्भव मालूम पड़ेगा। **इतना-सा बीज इतना बड़ा वृक्ष कैसे बन सकता है ? ऐसा ही लगा है सदा।** जब कृष्ण के पास हम खड़े हुए है तो ऐसा ही लगा है कि हम कहाँ बन सकते है ! तो हमने कहा कि तुम भगवान् हो, हम साधारण जन है, हम कहाँ बन सकते है ? तुम अवतार हो, हम साधारण जन है, हम तो जमीन पर ही रेगते रहेगे। हमारी यह सामर्थ्य नही है। जब कोई बुद्ध और कोई महावीर हमारे पास से गुजरा है तो हमने चरणो मे नमस्कार कर लिये हैं और कहा है कि तीर्थंकर हो, अवतार हो, ईश्वर के पुत्र हो। हम साधारण जन है।

अगर बीज कह सकता वृक्ष के पास तो वह भी कहता कि तुम भगवान् हो, तीर्थंकर हो, अवतार हो, हम साधारण बीज है, हम कहाँ ऐसे हो सकेंगे ? बीज को कैसे भरोसा आयेगा कि इतना बडा वृक्ष उसमे छिपा हो सकता है ? लेकिन यह बड़ा वृक्ष कभी बीज था और जो आज बीज है वह कभी वडा वृक्ष हो सकता है।

४. अनन्त सम्भावनाओं का जागरण

हम सबके भीतर अनन्त सम्भावनाएँ छिपी हैं। लेकिन अनन्त सम्भावनाओ का बोध जब तक हमें भीतर से न होने लगे तब तक कोई शास्त्र प्रमाण नही बनेगा। और कोई भी चिल्लाकर कहे कि पा लिया तो भी प्रमाण नही बनेगा। क्योंकि जिसे हम नही जान लेते हैं उस पर हम कभी विश्वास नही कर पाते है। और ठीक भी है, क्योंकि जिसे हम नही जानते उस पर विश्वास करना प्रवंचना है, डिसेप्शन (Deception) है। अच्छा है कि हम कहें कि हमे पता नही कि ईश्वर है। लेकिन किन्ही को पता हुआ है। और किन्ही को केवल पता ही नही हुआ है, बल्कि उनकी सारी जिंदगी बदल गयी है। उनके चारो तरफ उनने फूल खिलते हुए देखे है, अलौकिक। लेकिन उनकी पूजा करने मे वो हमारे भीतर नहीं हो जायेगा।

सारा धर्म पूजा पर रुक गया है। फूल की पूजा करने से नये बीज कैसे फूल बन जायेंगे ? और नदी कितनी ही सागर की पूजा करे तो सागर न हो जायेगी। और अण्डा पक्षियो की कितनी ही पूजा करे तो भी आकाश मे पख नही फैला सकता है। अण्डे को टूटना पड़ेगा। और पहली बार जब कोई पक्षी अण्डे के बाहर टूट कर निकलता है तो उसे भरोसा नही आता। उडते हुए पक्षियो को देखकर वो विश्वास भी नही कर सकता कि यह मैं भी कर सकूंगा। वृक्षो के किनारों पर बैठ कर वो हिम्मत जुटाता है। उसकी माँ उड़ती है, उसका बाप उड़ता है। वे उसे धक्के भी ..ते है। फिर भी उसके हाथ-पैर कंपते है। वह

जो कभी नही उड़ा कैसे विश्वास करे कि पंख उड़ेंगे, आकाश मे खुल जायेंगे, और वह अनन्त की, दूर की यात्रा पर निकल जायेगा।

मैं जानता हूँ कि इन तीन दिनो मे आप भी वृक्ष के किनारे पर बैठेंगे और मै कितना ही चिल्लाऊँगा कि छलांग लगायें, कूद जायें, उड़ जायें, विश्वास नहीं पड़ेगा, भरोसा नही होगा। जो पंख उड़े नहीं हैं वे कैसे मानें कि उड़ना हो सकता है! लेकिन कोई उपाय भी तो नही है। **एक बार तो बिना जाने छलांग लेनी ही पड़ती है।**

कोई पानी मे तैरने सीखने जाता है। अगर वह कहे कि जब तक मैं तैरना न सीख लूं तब तक उतरूँगा कैसे? तो वह गलत नही कहता है। ठीक कहता है, उचित कहता है। एकदम कानूनी बात कहता है। क्योंकि जब तक तैरना न सीखूं तो पानी मे कैसे उतरूं! लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि जब तक उतरोगे नहीं, सीख नही पाओगे। और तब तट पर खड़े होकर विवाद अन्तहीन चल सकता है। हल क्या है? सिखाने वाला कहेगा उतरो, कूदो। क्योंकि बिना उतरे सीख न पाओगे। **असल में सीखना उतर जाने से ही शुरू होगा।** सब लोग तैरना जानते है। सीखना नही पड़ता है तैरना। अगर आप तैरना सीखे है तो आपको पता होगा, तैरना सीखना नही पड़ता है। सारे लोग तैरना जानते हैं। ढंग से नही जानते है। गिर जाते है पानी में तो ढंग आ जाता है। पहले हाथ-पैर बेढंगे फेंकते है, फिर ढंग से फेंकने लगते है। हाथ-पैर फेंकना सभी को मालूम है। एक बार पानी मे उतरे तो ढंग से फेंकना आ जाता है। इसलिए जो जानते है वो कहेंगे कि तैरना सीखना नही है, रिमेम्बरिंग (Remembering) है, एक याद है, पुनर्स्मरण है।

इसलिए परमात्मा की जो अनुभूति है, जानने वाले कहते है कि वह स्मरण है। वह कोई ऐसी अनुभूति नही है जिसे हम आज सीख लेंगे। जिस दिन हम जानेंगे, हम कहेंगे, अरे! यही था तैरना!! ये हाथ-पैर तो हम कभी भी फेंक सकते थे। लेकिन इस हाथ-पैर के फेंकने का इस नदी से, इस सागर से कभी मिलन नहीं हुआ। हिम्मत नही जुटायी, किनारे पर खड़े रहे।

उतरना पड़े, कूदना पड़े। लेकिन कूदते ही काम शुरू हो जाता है। वह जिस **केन्द्र की मैं बात कर रहा हूँ वह हमारे मस्तिष्क में छिपा हुआ पड़ा है।** अगर आप जाकर मस्तिष्क-विदो से पूछे तो वे कहेंगे कि मस्तिष्क का बहुत थोड़ा-सा हिस्सा काम कर रहा है। बड़ा हिस्सा निष्क्रिय है, इन-एक्टिव (In-active) है। उस बड़े हिस्से मे क्या-क्या छिपा है, कहना कठिन है। बड़ी-से-बड़ी प्रतिभा और जीनियस का भी बहुत थोड़ा-सा मस्तिष्क काम करता है। इसी मस्तिष्क मे वह केन्द्र है जिसे हम 'सुपर-सेंस', अतीन्द्रिय-इंद्रिय कहें। जिसे हम छठी इन्द्रिय कहे

या जिसे हम तीसरी आँख, 'थर्ड-आई' (Third Eye) कहें। वह केंद्र छिपा है, जो खुल जाय तो हम जीवन को बहुत नये अर्थों में देखेंगे।

पदार्थ विलीन हो जायेगा और परमात्मा प्रकट होगा। आकार खो जायेगा और निराकार प्रकट होगा। रूप मिट जायेगा और अरूप आ जायेगा। मृत्यु नहीं हो जायगी और अमृत के द्वार खुल आयेंगे। लेकिन वह देखने का केन्द्र हमारा निष्क्रिय है। वह केन्द्र कैसे सक्रिय हो?

मैंने कहा, जैसे बल्ब तक अगर विद्युत् की धारा न पहुँचे तो बल्ब निष्क्रिय पड़ा रहेगा। धारा पहुँचाये और बल्ब जाग उठेगा। बल्ब सदा प्रतीक्षा कर रहा है कि कब धारा आये। लेकिन अकेली धारा बहती रहे तो भी प्रकट न हो सकेगी। प्रकट होने के लिए बल्ब चाहिए। और प्रकट होने के लिए धारा भी चाहिए। हमारे भीतर जीवन-धारा है, लेकिन वह प्रकट नही हो पाती है। क्योंकि जब तक वह वहाँ न पहुँच जाये, उस केन्द्र पर जहाँ से प्रकट होने की सम्भावना है, तब तक अप्रकट रह जाती है।

हम जीवित हैं नाम मात्र को। साँस लेने का नाम जीवन है? भोजन पचा लेने का नाम जीवन है? रात सो जाने का नाम, सुबह जग जाने का नाम जीवन है? बच्चे से जवान, जवान से बूढे हो जाने का नाम जीवन है? जन्मने और मर जाने का नाम जीवन है? और अपने पीछे बच्चे छोड़ जाने का नाम जीवन है?

नही, यह तो यन्त्र भी कर सकता है। और आज नही, कल कर लेगा। बच्चे टेस्ट-ट्यूब मे पैदा हो जायेंगे। और बचपन, जवानी और बुढ़ापा बड़ी मैकेनिकल, बडी यान्त्रिक क्रियाएँ है। जब कोई भी यन्त्र बनता है तो जवानी भी आती है, यन्त्र का बुढापा भी आता है। सभी यन्त्र बचपन मे होते हैं, जवान होते हैं, बूढ़े होते हैं। घडी भी खरीदते है तो गैरेन्टी होती है कि दस साल चलेगी। वो जवान भी होगी घड़ी, बूढी भी होगी, मरेगी भी। सभी यन्त्र जन्मते है, जीते हैं, मरते है। जिसे हम जीवन कहते है वह यान्त्रिक, मैकेनिकल होने से कुछ और ज्यादा नही है। जीवन कुछ और है।

५. उपलब्धि की अभिव्यक्ति : अनिर्वचनीय

अगर इस बल्ब को पता न चले विद्युत् की धारा का तो बल्ब जैसा है उसी को जीवन समझ लेगा। हवा के झोके उसे धक्के देंगे तो बल्ब कहेगा कि मैं जीवित हूँ, क्योंकि धक्के मुझे लगते हैं। बल्ब उसीको जीवन समझ लेगा और जिस दिन विद्युत की धारा पहली दफा बल्ब में आती होगी और अगर बल्ब कह सके तो क्या कहेगा? कहेगा अनिर्वचनीय है! नही कह सकता, क्या हो गया है! अब तक अँधेरे मे भरा था, अब अचानक सब प्रकाश हो गया है। और किरणे बही जाती हैं, सब तरफ फैली चली जाती हैं। बीज क्या कहेगा जिस दिन वृक्ष हो जायेगा?

कहेगा पता नहीं यह क्या हुआ ? कहने जैसा नहीं है। मैं तो छोटा-सा बीज था, यह क्या हो गया है ? यह मुझसे हुआ है, यह भी कहना कठिन है।

इसलिए जिनको भी परमात्मा मिलता है वे यह नहीं कह पाते कि हमने पा लिया है। वे तो यही कहते हैं कि हम सोचते हैं कि जो हम थे और उससे जो हमें मिल गया है उनमें कोई भी सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता है। कहाँ हम अंधकार थे, कहाँ प्रकाश हो गया है। कहाँ हम काँटे थे, कहाँ हम फूल हो गये हैं। कहाँ हम मृत्यु थे ठोस, कहाँ हम तरल जीवन हो गये हैं। नहीं, नहीं। हमें नहीं मिल गया है। वे कहेंगे हमें नहीं मिल गया है। जो जानेंगे वे कहेंगे नहीं, उसकी कृपा से हो गया है। उसकी ग्रेस (Grace) से, उसके प्रसाद से हो गया है, हमारे प्रयास से नहीं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि प्रयास नहीं है।

जब उपलब्ध होता है तो ऐसा ही लगता है कि उसके प्रसाद से मिला है, ग्रेस से। लेकिन उसके प्रसाद तक पहुँचने के लिए बड़े प्रयास की यात्रा है। और वो प्रयास क्या है ? वह एक छोटा-सा प्रयास है एक अर्थों में। बड़ा भी है दूसरे अर्थों में। इन अर्थों में छोटा है कि वह केन्द्र बहुत दूर नहीं है। वह स्थान जहाँ शक्ति, ऊर्जा संग्रहीत है, और वह जगह जहाँ से जीवन को देखने की आँख खुलेगी, उनमें फासला बहुत नहीं है। मुश्किल से दो फीट का फासला है, तीन फीट का फासला है। इससे ज्यादा फासला नहीं है। क्योंकि हम आदमी ही पाँच-छह फीट के हैं। हमारी पूरी जीवन-व्यवस्था पाँच-छह फीट की है। उस पाँच-छह फीट में सारा इन्तजाम है।

६. जीवन-ऊर्जा का कुण्ड

जिस जगह जीवन की ऊर्जा इकट्ठी है वह जननेन्द्रिय के पास कुण्ड की भाँति है। इसीलिए तो उस ऊर्जा का नाम कुण्डलिनी पड़ गया, जैसे कोई पानी का छोटा-सा कुण्ड। और इसलिए भी उस ऊर्जा का नाम कुण्डलिनी पड़ गया कि वह ऐसी है जैसे कोई साँप कुण्डल मार कर सो गया हो। सोये हुए साँप को कभी देखा होगा, कुण्डल पर कुण्डल मार कर उस पर फन को रख कर सोया होता है। लेकिन सोये हुए साँप को जरा छेड़ दो फन ऊपर उठ जाता है, कुण्डल टूट जाते हैं। इसलिए भी उसे कुण्डलिनी का नाम मिल गया कि वह हमारे ठीक सेक्स-सेंटर (Sex-Centre), यौन-केन्द्र के पास हमारे जीवन की ऊर्जा का कुण्ड है, बीज, सीड है, जहाँ से सब फैलता है।

यह उपयुक्त होगा ख्याल में ले लेना कि यौन से, काम से, सेक्स से जो थोड़ा सा सुख मिलता है वह सुख भी यौन का सुख नहीं है। वह सुख भी यौन के साथ वह जो कुण्ड है, हमारी जीवन-ऊर्जा का, उसमें आये हुए कम्पन का सुख है। थोड़ा सा वहाँ सोया साँप हिल जाता है और उसी सुख को हम सारे जीवन का सुख मान लेते

हैं। जब वह पूरा साँप जागता है और उसका फन पूरे व्यक्तित्व को पार करके मस्तिष्क तक पहुँच जाता है, तब जो हमें मिलता है, उसका हमें कुछ भी पता नहीं है।

हम जीवन की पहली ही सीढ़ी पर जीते है। और सीढ़ियाँ है जो परमात्मा तक जाती है। वह जो हमारे भीतर **तीन या दो फुट का फासला** है वो फासला एक अर्थ मे बहुत बड़ा है। **वह प्रकृति से परमात्मा तक का फासला है, वो पदार्थ से आत्मा तक का फासला है, वह निद्रा से जागरण तक का** फासला है **वह मृत्यु से अमृत तक का फासला है**। वह फासला बड़ा भी है। ऐसे फासला छोटा भी है। हमारे भीतर हम यात्रा कर सकते हैं।

७. ऊर्जा-जागरण से आत्म-क्रान्ति

यह जो ऊर्जा हमारे भीतर सोयी पड़ी है, अगर इसे जगाना हो तो साँप को छेड़ने से कम खतरनाक काम नही है। बल्कि साँप को छेड़ना बहुत खतरनाक नही है। इसलिए खतरनाक नही है कि एक तो सौ में से ९७ साँपो मे कोई जहर नही होता। तो सौ मे से सन्तानबे साँपो को तो आप मजे से छेड सकते है, उनमे कुछ होता ही नही है। और अगर कभी उनके काटने से कोई मरता है तो साँप के काटने से नही मरता, साँप ने काटा है इस ख्याल से मरता है। क्योकि उनमे तो जहर होता नहीं है। सन्तानबे प्रतिशत साँप तो किसी को मारते नही, हालांकि बहुत लोग मरते है, उनके काटने से ही मरते है। लेकिन वे सिर्फ इस ख्याल से मरते है कि साँप ने काटा है, अब मरना ही पडेगा। और जब यह ख्याल पकड लेता है तो घटना घट जाती है। फिर जिन साँपो मे जहर है उनको छेडना भी बहुत खतरनाक नही है, क्योकि ज्यादा से ज्यादा वे आपके शरीर को छीन सकते है, लेकिन जिस कुण्डलिनी-शक्ति की मै बात कर रहा हूं, उसको छेड़ना बहुत खतरनाक है। उससे ज्यादा खतरनाक कोई बात ही नही है। उससे बड़ा कोई डेंजर (Danger) ही नही है। खतरा क्या है? **वह भी एक तरह की मृत्यु है।**

जब आपके भीतर की ऊर्जा जगती है तो आप तो मर जायेंगे जो आप जगने के पहले थे और आपके भीतर एक बिलकुल नये व्यक्ति का जन्म होगा जो आप कभी भी नहीं थे।

यही भय लोगों को धार्मिक बनने से रोकता है। वही भय—जो बीज अगर डर जाय तो बीज रह जाय। अब बीज के लिए सबसे बड़ा खतरा है जमीन में गिरना, खाद पाना, पानी पाना सबसे बडा खतरा है, क्योकि **बीज मरेगा**। अण्डे के लिए सबसे बडा खतरा यही है कि पक्षी बडा हो भीतर और उडे, तोड दे अण्डे को। **अण्डा तो मरेगा**। हम भी किसी के जन्म की पूर्व अवस्था है। **हम भी एक अण्डे की तरह हैं, जिससे किसी का जन्म हो सकता है**। लेकिन हमने अण्डे को ही सब-कुछ मान रखा है। अब हम अण्डे को सम्हाले बैठे है।

यह शक्ति उठेगी तो आप तो जायेंगे। आप के बचने का कोई उपाय नहीं है। और अगर आप डरे तो जैसा कबीर ने कहा है वैसा हो जायेगा। कबीर ने अपनी दो पंक्तियों में बड़ी बढ़िया बात कही है। कबीर ने कहा है . "जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। मैं बौरी खोजन गयी, रही किनारे बैठ।" कबीर कहते हैं कि मैं पागल खोजने गया, लेकिन किनारे ही बैठ गया। किसी ने पूछा, आप बैठ क्यों गये किनारे ? तो कबीर ने कहा : **"जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ। मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।"** मैं डर गया डूबने से, इसीलिए किनारे बैठ गया। **जिन्होंने भी खोजा है तो गहरे जाकर खोजा है।**

डूबने की तैयारी चाहिए, **मिटने की** तैयारी चाहिए। एक शब्द में कहें—शब्द बहुत अच्छा नहीं है—**मरने की तैयारी चाहिए।** और जो डर जायेगा डूबने से वह बच तो जायेगा लेकिन अण्डा ही बचेगा, पक्षी नहीं, जो आकाश में उड़ सके। जो डूबने में डरेगा वह बच तो जायेगा लेकिन बीज ही बचेगा, वृक्ष नहीं, जिसके नीचे हजारों लोग छाया में विश्राम कर सकें।

पर बीज की तरह बचना कोई बचना है ? बीज की तरह से बचने से ज्यादा मरना और क्या होगा ? इसलिए बहुत खतरा है। खतरा यह है कि हमारा जो व्यक्तित्व कल तक था वह अब नहीं होगा। **अगर ऊर्जा जगेगी तो हम पूरे बदल जायेंगे।** नये केन्द्र जागृत होंगे, नया व्यक्तित्व उठेगा, नया अनुभव होगा, नया सब हो जायेगा। **नये होने की तैयारी हो तो पुराने को जरा छोड़ने की हिम्मत करना।** और पुराना हमें इतने जोर से पकड़े हुए है, चारों तरफ से कसे हुए है, जंजीरों की तरह बाँधे हुए है कि वह ऊर्जा नहीं उठ पाती है।

परमात्मा की यात्रा पर जाना निश्चित ही असुरक्षा की, 'इन-सिक्योरिटी' (Insecurity) की यात्रा है। लेकिन **जीवन के, सौन्दर्य के सभी फूल असुरक्षा में ही खिलते हैं।** तो इस यात्रा के लिए दो-चार खास बातें आपसे कह दूँ और दो-चार गैर-खास बातें भी।

८. बाजी पूरी ही लगानी होगी

पहली बात तो यह कि कल सुबह जब हम यहाँ मिलेंगे और **कल इस ऊर्जा को जगाने की दिशा में चलेंगे** तो मैं आपसे आशा रखूँ कि आप अपने भीतर कुछ भी नहीं छोड़ रखेंगे, जो आपने दाव पर न लगा दिया हो। ये कोई छोटा जुआ नहीं है। यहाँ जो लगायेगा पूरा, वही पा सकेगा। इंच भर भी बचाया तो चूक सकते हैं। क्योंकि ऐसा नहीं हो सकता कि बीज कहे कि थोड़ा-सा मैं बच जाऊँ और बाकी वृक्ष हो जाये। बीज मरेगा तो पूरा मरेगा और बचेगा तो पूरा बचेगा। पार्शियल डेथ (Partial death), आंशिक-मृत्यु जैसी कोई चीज नहीं

होती है। तो आपने अगर अपने को थोड़ा भी बचाया तो व्यर्थ मिहनत हो जायेगी। पूरा ही छोड़ देना। कई बार थोड़े-से बचाव से सब खो जाता है।

मैंने सुना है कि कोलरेडो मे जब सबसे पहली दफा सोने की खदानें मिलीं तो सारा अमेरिका दौड़ पड़ा कोलरेडो की तरफ। खबरें आयी कि जरा-सा खेत खरीद लो और सोना मिल जायेगा। लोगों ने ज़मीनें खरीद डालीं। एक करोड़पति ने अपनी सारी सम्पत्ति लगा कर पूरी पहाड़ी ही खरीद ली। बड़े यन्त्र लगाये। छोटे-छोटे लोग छोटे-छोटे खेतों में सोना खोद रहे थे, तो पहाड़ी खरीदी थी, बड़े यन्त्र लाया था। बड़ी खुदाई की, बड़ी खुदाई की, लेकिन सोने का कोई पता न चला। फिर घबड़ाहट फैलनी शुरू हो गयी। सारा दाव पर लगा दिया था। फिर वो बहुत घबड़ा गया। उसने घर के लोगो से कहा कि हम तो मर गये। सारी सम्पत्ति दांव पर लगा दी है और सोने की कोई खबर नहीं है। फिर उसने इश्तहार निकाला कि मैं पूरी पहाड़ी बेचना चाहता हूँ, मय यन्त्रों के, खुदाई का सारा सामान साथ होगा। घर के लोगो ने कहा, कौन खरीदेगा? सबमे खबर हो गयी है कि वो पहाड़ बिलकुल खाली है। और उसमे लाखों रुपये खराब हो गये हैं। अब कौन पागल होगा। लेकिन उस आदमी ने कहा कि कोई न कोई हो भी सकता है।

एक खरीददार मिल गया। बेचने वाले को बेचते वक्त भी मन मे हुआ कि उससे कह दें कि पागलपन मत करो, क्योंकि मैं मर गया हूँ। लेकिन हिम्मत भी नहीं जुटा पाया कहने की, क्योंकि अगर वो चूक जाय, न खरीदे तो फिर क्या होगा? बेच दिया। बेचने के बाद कहा कि आप भी अजीब पागल मालूम होते हैं। हम बरबाद होकर बेच रहे हैं। पर उस आदमी ने कहा कि जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं है, जहाँ तक तुमने खोदा है वहाँ तक सोना न हो। लेकिन आगे हो सकता है। और जहाँ तुमने नहीं खोदा है, वहाँ नहीं होगा यह तो तुम भी नहीं कह सकते। उसने कहा, हाँ यह तो मैं भी नही कह सकता हूँ। और आश्चर्य, कभी-कभी ऐसे आश्चर्य घटते है। पहले दिन ही सिर्फ एक फीट की गहराई पर सोने की खदान शुरू हो गयी। वो आदमी जिसने पहले खरीदी थी पहाड़ी छाती पीट कर पहले भी रोता था और फिर बाद में तो और भी ज्यादा छाती पीट कर रोया। क्योंकि पूरे पहाड़ पर सोना ही सोना था। वो उस आदमी से मिलने भी गया। और उससे कहा, देखो भाग्य! उस आदमी ने कहा, भाग्य नहीं। तुमने दांव पूरा न लगाया। तुम पूरा खोदने के पहले ही लौट गये। एक फीट और खोद लेते!

हमारी जिन्दगी में ऐसा रोज होता है। न मालूम कितने लोग हैं जिन्हें मैं जानता हूँ कि जो खोदते हैं परमात्मा को, लेकिन पूरा नहीं खोदते हैं, अधूरा खोदते हैं। ऊपर-ऊपर खोदते हैं और लौट आते हैं। कई बार तो इंच भर पहले से लौट आते

हैं। बस इंच भर का फासला रह जाता है और वो वापिस लौटने लगते हैं। और कई बार तो मुझे साफ दिखाई पड़ता है कि यह आदमी वापिस लौट चला, यह तो अब करीब पहुँचा था। अब तो बात घट जाती। यह तो वापिस लौट पड़ा।

तो अपने भीतर एक बात ख्याल में ले लें कि आप कुछ भी बचा न रखेंगे, अपना पूरा लगा देंगे। और परमात्मा को खरीदने चले हों तो हमारे पास लगाने को ज्यादा है भी क्या? उसमें भी कंजूसी कर जाते हैं। कंजूसी नहीं चलेगी। कम से कम परमात्मा के दरवाजे पर कंजूसों के लिए कोई जगह नहीं है। वहाँ पूरा ही लगाना पड़ेगा। नहीं, ऐसा नही है कि बहुत-कुछ है हमारे पास लगाने को। यह सवाल नही है कि क्या है। सवाल यह है कि पूरा लगाया या नहीं, क्योंकि पूरा लगाते ही हम उस बिंदु पर पहुँच जाते हैं—जहाँ ऊर्जा का निवास है और जहाँ से ऊर्जा उठनी शुरू होती है। असल मे क्यों पूरे का ज़ोर है? जब हम अपनी पूरी ताकत लगा देते है, तभी उस ताकत को उठने की जरूरत पड़ती है, जो रिजर्वायर (Reservoir) है तब तक उसकी जरूरत नहीं पड़ती है। जब तक हमारे पास ताकत बची रहती है तब तक उससे ही काम चलता है। तो जो रिजर्व फोर्सेज (Reserve Forces), सुरक्षित उर्जाएँ हैं, हमारे भीतर उनकी जरूरत तो तब पड़ती है जब हमारे पास कोई ताकत नहीं होती है। जब हम पूरी ताकत लगा देते हैं तब वो केन्द्र सक्रिय होता है। अब वहाँ से शक्ति लेने की जरूरत आ जाती है। अन्यथा नही पड़ती है जरूरत।

मैं आपसे दौड़ने को कहूँ। आप दौड़ें। मैं कहूँ, पूरी ताकत से दौड़ें। तो आप पूरी ताकत से दौड़ें। आप समझते हैं कि पूरी ताकत से दौड़ रहे हैं, लेकिन आप पूरी ताकत से नहीं दौड़ रहे हैं। कल आपको किसी से प्रतियोगिता करनी है, कॉम्पिटीशन (Competition) में दौड़ना है तब आप पाते हैं कि आपकी दौड़ बढ़ गयी है। क्या हुआ है? यह शक्ति कहाँ से आ गयी है? कल तो आप कहते थे कि मैं पूरी ताकत से दौड़ रहा हूँ। आज प्रतिस्पर्द्धा मे आप ज्यादा दौड़ रहे हैं। पूरी ताकत लगा रहे हैं। लेकिन यह भी पूरी ताकत नहीं है। कल एक आदमी आपके पीछे बन्दूक लेकर लग गया है। अब आप जितनी ताकत से दौड़ रहे हैं उतनी ताकत से आप कभी भी नहीं दौड़े हैं। आपको भी पता न था कि मैं इतना दौड़ सकता हूँ। ये ताकत कहाँ से आ गयी? ये भी ताकत आपके भीतर सोयी पड़ी थी। लेकिन इतने से भी काम नहीं होगा। जब कोई आदमी बन्दूक लेकर आपके पीछे पड़ता है तब भी आप जितना दौड़ते हैं वह भी पूरा दौड़ना नहीं है। ध्यान मे तो उससे भी ज्यादा दाँव पर लगा देना पड़ेगा। जहाँ तक आपको हो वहाँ तक पूरा लगा देना है। और जिस क्षण आप उस बिंदु पर पहुँचेंगे जहाँ

आपकी पूरी ताकत लग गयी उसी क्षण आप पायेंगे कि कोई दूसरी ताकत से आपका सम्बन्ध हो गया है। कोई ताकत आपके भीतर से जगनी शुरू ही गयी है।

निश्चित ही उसके जागने का पूरा अनुभव होगा। जैसे कभी बिजली छुई हो तो अनुभव हुआ होगा। वैसा ही अनुभव होगा कि जैसे भीतर से, नीचे से, यौन-केन्द्र से कोई शक्ति ऊपर की तरफ दौड़नी शुरू हो गयी है। गरम उबलती हुई आग, लेकिन शीतल भी। जैसे काँटे चुभने लगे चारो तरफ, लेकिन फूल जैसे कोमल भी। और कोई चीज ऊपर जाने लगी। और जब कोई चीज ऊपर जाती है तब बहुत-कुछ होगा। उस समय किसी भी बिन्दु पर आपको रोकना नहीं है। अपने को पूरा छोड़ देना है, जो भी हो। जैसे कोई आदमी नदी में बहता है, ऐसा अपने को छोड़ दें।

९. शक्ति की क्रियाओं के प्रति पूर्ण समर्पण और स्वीकार

और दूसरी बात। पहला अपने को पूरा दाँव पर लगा देना है। दूसरी बात, जब दांव पर लग कर आपके भीतर कुछ होना शुरू हो जाय तो आपको पूरी तरह अपने को छोड़ देना है, 'जस्ट फ्लोटिंग' (Just floating) जैसे पानी की सतह पर बह रहे हों। अब जहाँ ले जाय ये धारा हम जाने को राजी हैं। एक सीमा तक हमें पुकारना पड़ता है और जब शक्ति जागती है तो फिर हमें अपने को छोड़ देना पड़ता है। बड़े हाथों ने हमे सम्हाल लिया, अब हमे चिन्ता की जरूरत नही है। अब हमें बह जाना पड़ेगा।

१०. नये जन्म के लिए साहस और धैर्य

और तीसरी बात—यह जो शक्ति का उठना होगा भीतर, इसके साथ बहुत कुछ घटनाएँ घट जायेंगी, तो घबड़ाइयेगा नही। क्योकि नये अनुभव घबड़ाने वाले होते है। बच्चा जब माँ के पेट से जन्मता है तो बहुत घबड़ा जाता है। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि वो ड्रैमेटिक एक्सपीरियंस (Dramatic Experience), अविस्मरणीय अनुभव है, उससे फिर कभी मुक्ति ही नहीं हो पाती है। नये की घबड़ाहट बच्चे में माँ के पेट से जन्म के साथ ही शुरू हो जाती है। क्योंकि माँ के पेट में वह बिलकुल सुरक्षित दुनिया में था नौ महीने। न कोई चिन्ता, न कोई फिक्र, न श्वास लेनी, न खाना खाना, न रोना, न गाना, न दुनिया, न कुछ। एकदम विश्राम में था। माँ के पेट के बाहर निकल कर एकदम नयी दुनिया आती है। तो पहला धक्का जीवन का और घबड़ाहट वहीं से पकड़ जाती है। इससे सारे लोग नयी चीज से डरे रहते है। पुराने को पकड़ने का मन रहता है, नये से डरे रहते है। वह हमारे बचपन का पहला अनुभव है कि नये ने बड़ी मुश्किल में डाल दिया। अच्छा था माँ का पेट। इसलिए हमने बहुत से इन्तजाम ऐसे किये है

जो असल में माँ के पेट जैसे ही है। हमारी गद्दियाँ, हमारे सोफे, हमारी कारें, हमारे कमरे सब हमने माँ के गर्भ की शकल में ढाले हैं। उतने ही आरामदायक बनाने की कोशिश करते हैं, लेकिन वह बन नहीं पाता है।

माँ के पेट से जो पहला अनुभव होता है वह है नये की घबड़ाहट का। उससे भी बड़ा नया अनुभव है यह, क्योंकि माँ के पेट से सिर्फ शरीर के लिए नया अनुभव होता है, यहाँ तो आत्मा के तल पर नया अनुभव होगा। इसलिए वह बिलकुल ही नया जन्म है। उस तरह के लोगों को हम ब्राह्मण कहते थे। ब्राह्मण हम उसे कहते थे जिसका दूसरा दुबारा जन्म हो गया है, 'ट्वाइस बॉर्न्ड' (Twice Borned) इसलिए उसे द्विज कहते थे।

तो जब वो शक्ति पूरी तरह उठेगी तो एक दूसरा ही जन्म होगा। उस जन्म में आप दोनो हैं—माँ भी है और बेटे भी हैं। आप अकेले ही दोनो हैं। इसलिए प्रसव की पीड़ा भी होगी और नये की, असुरक्षित की अनुभूति भी होगी। इसलिए बहुत घबड़ाने वाला, डराने वाला अनुभव हो सकता है। माँ को जैसे प्रसव की पीड़ा होती है उतनी पीड़ा आपको भी होगी, क्योंकि यहाँ माँ और बेटे दोनों ही आप है। यहाँ कोई दूसरी माँ नही है। और कोई दूसरा बेटा नहीं है। आपका ही जन्म हो रहा है और आपसे ही हो रहा है। प्रसव की बहुत तीव्र वेदना भी हो सकती है।

अब मुझे कितने ही लोगों ने आकर कहा कि कोई दहाड़ मार कर रोता है, चिल्लाता है, आप रोकते क्यों नही हैं ? रोयेगा, चिल्लायेगा। उसे रोने दें, चिल्लाने दें। उसके भीतर जो हो रहा है, वह वही जानता है। अब एक माँ रो रही हो, उसको बच्चा पैदा हो रहा हो और जिस स्त्री को कभी बच्चा पैदा न हुआ हो वह जाकर उससे कहे कि तुम क्यों फिजूल परेशान होती हो ? क्यों रोती हो ? क्यों चिल्लाती हो ? बच्चा होता है तो होने दो, रोने की क्या जरूरत है ? ठीक है, जिसको बच्चा न हुआ हो वह कह सकती है, बिलकुल कह सकती है। पुरुषों को कभी पता नही चल सकता न कि जन्म में क्या तकलीफ स्त्री को झेलनी पड़ती होगी। सोच भी नहीं सकते। कोई उपाय भी नही है कि कैसे उसको पकड़ें, कि कैसे उसको सोचें कि क्या होता होगा।

११. साधना के अनुभवों की गोपनीयता

लेकिन, ध्यान मे तो स्त्री और पुरुष सब बराबर हैं, सब माँ बन जाते हैं एक अर्थ मे। क्योंकि नये का उनके भीतर जन्म होगा। तो पीड़ा को भी रोकने की जरूरत नहीं है। रोने को रोकने की जरूरत नही है। 'कोई गिर पड़े और लोटने लगे और चिल्लाने लगे तो रोकने की जरूरत नही है। जो जिसको हो रहा हो उसको पूरा होने देना है। वह जाना है, उसे रोकना नही है। और भीतर बहुत तरह के

अनुभव हों सकते हैं—किसी को लग सकता है कि जमीन से ऊपर उठ गये हैं, किसी को लग सकता है कि बहुत बड़े हो गये है, किसी को लग सकता है कि बहुत छोटे हो गये हैं। नये अनुभव बहुत तरह के हो सकते हैं। मैं उन सबके नाम नहीं गिनाऊँगा। तो बहुत-कुछ हो सकता है। कुछ भी नया होगा, और हरएक को अलग हो सकता है। तो उसमें कोई चिन्ता नही लेगा, भयभीत नहीं होगा। और अगर किसी को कहना भी हो तो मुझे आकर दोपहर में कह देगा। आपस में उसकी बात मत करियेगा। न करने का कारण है। कारण यही है कि जो आपको हो रहा है जरूरी नहीं है कि दूसरे को भी हो। और जब दूसरे को नही हो रहा होगा तो या तो वह हँसेगा, वह कहेगा—क्या पागलपन की बात है। मुझे तो ऐसा नहीं हो रहा है। और हर आदमी के लिए खुद आदमी ही माप-दण्ड होता है। ठीक यानी वह। गलत यानी दूसरा। तो वह या तो आप पर हँसेगा, नहीं हँसेगा तो बहुत अविश्वासपूर्ण ढंग से कहेगा कि हमें तो नहीं हो रहा है।

यह अनुभूति इतनी निजी और वैयक्तिक है कि इसमें दूसरे से बात न करें तो अच्छा है। पति भी पत्नी से न कहे, क्योंकि इस मामले मे कोई निकट नही है। और इस मामले में कोई एक दूसरे को इतनी आसानी से नही समझ सकता है। इस सम्बन्ध में समझ बहुत मुश्किल है। इसलिए कोई भी आपको पागल कह देगा। लोग जीसस को भी पागल कहेगे और महावीर को भी पागल कहेंगे। जिस दिन महावीर नग्न खड़े हो गये होंगे रास्तों पर, लोगों ने पागल कहा होगा। अब महावीर जानते हैं कि नग्न होने का उनके लिए क्या मतलब है। वो पागल हो जायेंगे। तो आप किसी और से न कहें तो अच्छा। फिर जैसे ही आप किसी से कुछ कहते हैं तो इतनी समझदारी तो नही है कि दूसरा चुप रह जाय, कुछ-न-कुछ तो कहेगा ही। और वह जो कुछ भी कहेगा वह आपकी अनुभूति मे बाधक हो सकता है। उसके सजेशन्स (Suggestions), सुझाव काम कर सकते हैं। वो आपको कुछ भी कह दे तो नयी अनुभूति में बड़ी बाधा पड़ जाती है।

इसीलिए चौथी बात यह कहना चाहता हूँ कि जो भी आपको हो उसकी आपस मे बात कतई नही करनी है। इसीलिए मैं यहाँ हूँ कि आप मुझसे सीधे आकर बात कर लेंगे।

१२. ध्यान का यह प्रयोग खाली पेट में

सुबह जब यहाँ हम ध्यान के लिए आयेंगे तो कुछ भी लिक्विड (liquid), कुछ भी तरल लेकर आना है। ठोस कोई चीज भोजन मे सुबह न लें। कोई नाश्ता न करें। चाय, दूध कुछ भी तरल ले लें। जो बिना चाय, दूध के आ सकते हों और अच्छा, क्योंकि उतनी ही सरलता से, शीघ्रता से काम हो सकेगा।

साढ़े सात बजे आने का मतलब है कि पाँच मिनट पहले यहा आ जायें।

तो साढ़े सात से साढ़े आठ तक आपसे कुछ बात करनी होगी तो कर लेंगे। इसलिए ये मैंने बात करने का रखा है, क्योंकि प्रवचन बहुत इम्परसनल (Impersonal) है, अवैयक्तिक है। उसमें किसी से नहीं बोलना पड़ता, हवाओं से बोलना पड़ता है। तो सुबह आप पास ही बैठेंगे मेरे। दूर नहीं बैठेंगे। और आज जो मैंने कहा है उस सम्बन्ध मे, कुछ और पूछना हो तो पूछ लेंगे। तो घण्टे भर हम सुबह बात करेंगे, फिर साढ़े आठ से साढ़े नौ तक ध्यान पर बैठेंगे।

तो सुबह एक तो कोई ठोस चीज लेकर न आयें। भूखे आ सकें बिलकुल तो और अच्छा। लेकिन जबरदस्त भूखे भी न आयें। किसी को न आना अच्छा लगता हो तो कुछ लेकर आयें। लेकिन चाय या दूध ऐसा कुछ लेकर आयें।

१३. स्नान और ढीले वस्त्र

दूसरी बात, वस्त्र बिलकुल ढीले से ढीले पहनकर आयें। स्नान करके तो आना ही है। बिना स्नान किये कोई न आये। स्नान तो कर के आये ही। और वस्त्र ढीले से ढीले पहनकर आयें, जितने ढीले वस्त्र हो उतने अच्छे। वस्त्र शरीर पर कहीं बँधे न हो। तो जो भी बाँधने वाले वस्त्र हों, कम पहनें। जितना ढीला वस्त्र पहन सके उतना अच्छा। कमर पर तो कम-से-कम बाँधने का दबाव हो। वो आप ध्यान रखकर आयें। और जब यहाँ बैठें तो ढीला करके बैठें।

शरीर के भीतर हमारे वस्त्रो ने भी बहुत उपद्रव किया हुआ है। बहुत तरह की बाधाएँ उन्होंने खड़ी की हुई है। और अगर कोई ऊर्जा उठनी शुरू हो तो अनेक तलों पर रुकावट पड़नी शुरू हो जाती है।

१४. मौन का महत्त्व

यहाँ आने के आधा घण्टे पहले से ही चुप हो जायें। कुछ मित्र जो तीनो दिन मौन रख सकें, बहुत अच्छा है। वे बिलकुल ही चुप हो जायें। और कोई भी चुप होता हो, मौन रखता हो तो दूसरे लोग उसे बाधा न दें, सहयोगी बने। जितने लोग मौन रहें, उतना अच्छा। कोई तीन दिन पूरा मौन रहे, सबसे बेहतर। उससे बेहतर कुछ भी नहीं होगा। अगर इतना न कर सकते हों तो कम-से-कम बोलें। इतना कम जितना जरूरी हो, टेलीग्रैफिक। जैसे तार-घर मे टेलीग्राम करने जाते हैं तो देख लेते हैं कि अब दस अक्षर से ज्यादा नहीं। अब तो आठ से भी ज्यादा नहीं। तो एक दो अक्षर और काट देते हैं और आठ पर बिठा देते हैं। तो टेलीग्राफिक—ख्याल रखें कि एक-एक शब्द की कीमत चुकानी पड़ रही है। एक-एक शब्द बहुत महँगा है। सच में महँगा है। इसलिए कम-से-कम शब्द का उपयोग करें। जो बिलकुल मौन न रह सकें वे कम-से-कम शब्द का उपयोग करें।

१५. इन्द्रियों के विश्राम से शक्ति का संरक्षण

और इन्द्रियों का भी कम-से-कम उपयोग करें। जैसे आँख का कम उपयोग करें। नीचे देखें। सागर को देखें। आकाश को देखें। लोगों को कम देखे। क्योंकि हमारे मन में सारे सम्बन्ध, एसोसियेशन्स (Associations) लोगों के चेहरों से होते हैं, वृक्षो, बादलो, समुद्रों से नहीं। वहाँ देखें। वहाँ से कोई विचार नही उठता है। लोगों के चेहरे तत्काल विचार उठाना शुरू कर देते है। **नीचे देखें चार फीट पर नजर रखें, चलते, घूमते, फिरते, आधी आँख खुली** रहे। नाक का अगला हिस्सा दिखाई पड़े, इतना देखें। और दूसरो को भी सहयोग दे कि लोग कम देखे, कम सुनें। रेडियो, ट्रांजिस्टर सब बन्द करके रख दे। उनका कोई उपयोग न करे। अखबार कैम्पस में बिलकुल मत आने दे।

जितना ज्यादा से ज्यादा इन्द्रियो को विश्राम दें, उतना शुभ है। उतनी शक्ति इकट्ठी होगी। और उतनी शक्ति ध्यान मे लगायी जा सकेगी। अन्यथा हम एक्झॉस्ट (Exhaust) हो जाते हैं। **हम करीब-करीब एक्झॉस्ट हुए लोग** है। जो चुक गये हैं बिलकुल। **चली हुई कारतूस जैसे**—हो गये है। कुछ बचता नही है, चौबीस घण्टे मे सब खर्च कर डालते है। रात भर मे सो कर थोड़ा बहुत बचता है तो सुबह उठ कर ही अखबार पढ़ना, रेडियो सुनना, और शुरू हो गया उसको खर्च करना। कन्झरवेशन ऑफ एनर्जी (Conservation of Energy) का हमे ख्याल ही नही है कि कितनी शक्ति बचायी जा सकती है। और ध्यान मे बडी शक्ति लगानी पड़ेगी। अगर आप शक्ति बचायेंगे नही तो थक जायेंगे।

१६. शक्ति का संचय ध्यान में सहयोगी

कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि घण्टे भर ध्यान करने के बाद थक जाते हैं। उनके थकने का कारण ध्यान नही है। थकने का कारण यह है कि आप एक्झॉस्ट प्वाइंट (Exhaust Point) पर जीते है। सब खर्च किये रहते है। (जब आप आँख उठा कर देखते है तब भी शक्ति खर्च होती है। जब आप कान उठाकर सुनते है तब भी शक्ति खर्च होती है। जब आप भीतर विचार करते है तब भी शक्ति खर्च होती है। जब बोलते हैं तब भी शक्ति खर्च होती है। हम जो भी कर रहे है उसमें शक्ति खर्च हो रही है। रात में इसीलिए थोडी-सी बच जाती है कि बाकी काम बन्द हो गये। सपने वगैरह मे जितना खर्च करते हैं वह दूसरी बात है। वैसे थोड़ी बहुत बच जाती है, इसीलिए सुबह ताजा लगता है।)

तो शक्ति को तीन दिन बचाये, ताकि पूरी शक्ति लगायी जा सके।

ये सारी सूचनाएं इसलिए दे रहा हूँ ताकि फिर तीन दिन मुझे आपको कोई सूचना न देनी पड़े।

१७. दोपहर की मौन ध्यान-बैठक

दोपहर जो घण्टे भर का मौन है, उसमें कोई बात नहीं होगी। बातचीत से आपसे बात करता हूँ, उस घण्टे भर मौन से ही बात करूँगा, तीन से चार। तो तीन बजे सारे लोग यहाँ उपस्थित हो जायें। तीन के बाद कोई न आये। क्योंकि उसका आना फिर नुकसान पहुँचाता है। यहाँ मैं बैठा रहूँगा। तीन से चार आप क्या करेंगे? दो काम आप ख्याल में रख लें। एक तो सारे लोग ऐसी जगह बैठें जहाँ से मैं दिखाई पड़ता रहूँ। देखना नहीं है मुझे। लेकिन दिखाई पड़ता रहूँ ऐसी जगह बैठ जायें। फिर आँख बन्द कर लेनी है। खोलना चाहे, खोले रख सकते हैं। बन्द करना चाहें, बन्द रख सकते हैं। बन्द रखें, अच्छा है।

१८. मौन सम्वाद का रहस्य

और एक घण्टे चुपचाप किसी अनजान प्रतीक्षा में बैठना है। 'वेटिंग फॉर द अननोन' (Waiting for the Unknown)। कुछ पता नहीं कि कोई आने वाला है, लेकिन कोई आने वाला है। कुछ पता नही कि कुछ सुनाई पडेगा, लेकिन कुछ सुनाई पड़ेगा। कुछ पता नही कि कोई दिखाई पडेगा, लेकिन कोई दिखाई पडेगा। ऐसे चुपचाप, जस्ट अवेटिङ्ग (Just Awaiting) कोई अनजान, अपरिचित अतिथि को जिससे कभी मिले नही, देखा नहीं, सुना नहीं, उसकी प्रतीक्षा में घण्टे भर बैठे रहें। लेटना हो, लेट जायँ। बैठना हो, बैठे रहें। उस एक घण्टे में सिर्फ रिसेप्टिविटी (Receptivity) हो जायें, आप एक ग्रहण करने वाले, पैसिव (Passive) व्यक्ति हैं, जो कुछ होगा, आ जाय। बस। लेकिन 'अलर्ट' (Allert), सजग होकर प्रतीक्षा करते रहें। उस घण्टे में जो मौन से मुझे आपसे कहना है वह मैं कहने की कोशिश करूँगा। शब्दों से समझ मे न आ सके तो **शायद निःशब्द में समझ आ जाय।**

रात्रि को फिर घण्टे भर कुछ पूछना होगा वो बात हो जायेगी। फिर घण्टे भर रात्रि हम ध्यान करेंगे। ऐसा तीन दिन में नौ बैठक। और कल सुबह से ही आपको पूरी ताकत लगा देनी है। ताकि नौवीं बैठक तक सच में पूरी ताकत लग जाय। बाकी समय में आप क्या करेंगे?

१९. मौन रहें, अकेले-एकाकी रहें

मौन रहना है। बात नही करनी है तो बडा उपद्रव तो कट जाता है। समुद्र का तट है, उसके पास जाकर लेट जायँ। लहरो को सुनें। रात भी अच्छा होगा कि जो लोग भी सो सकें, चुपचाप अपने बिस्तर को लेकर समुद्र के तट पर चले जायँ। वहाँ सो जायँ। सागर के पास सो जायँ। रेत पर सो जायँ। वृक्षों मे सो जायँ। अकेले रहें। मित्र और मण्डलियाँ न बनायें। यहाँ भी मण्डलियाँ

बन जायेंगी, दो-चार लोग इकट्ठे घूमने लगेंगे, दो-चार मित्र बन जायेंगे, अलग रहें। अकेले रहें। **आप अकेले हैं तीन दिन यहाँ।** क्योंकि परमात्मा से मिलना हो तो कोई साथ नहीं जा सकता है। बिलकुल अकेले ही लोनली (Lonely)। आपको अकेले ही जाना है। तो अकेले रहें। ज्यादा से ज्यादा अकेले। और ध्यान रखें, अन्तिम सूचना। किसी तरह की शिकायत न करें।

२०. स्वीकार से शान्ति

तीन दिन शिकायत छोड़ दें। खाना ठीक न मिले, न मिले। रात मच्छर काट जायें, काट जायें। तीन दिन जो भी हो उसकी टोटल एक्सेप्टिबिलिटी हो। मच्छरों को तो थोड़ा-बहुत फायदा होगा, आपको बहुत हो सकता है। भोजन थोड़ा अच्छा नहीं मिलेगा तो थोड़ा-बहुत नुकसान शरीर को होगा, लेकिन आपको उसकी **शिकायत से बहुत नुकसान हो सकता है।** उसके कारण हैं। क्योंकि शिकायत करने वाला मन शान्त नहीं हो पाता है। शिकायतें बहुत छोटी होती हैं, जो हम गवां देते हैं वह बहुत ज्यादा होता है। शिकायत ही मत करें। तीन दिन के लिए मन में साफ कर लें कि कोई शिकायत नहीं। **जो है, वह है। जैसा है, वैसा है। उसे बिलकुल स्वीकार कर लें।**

ये तीन दिन अद्‌भुत हो जायेंगे। अगर तीन दिन शिकायत के बाहर रहें आप, अब सब स्वीकार कर लिया जैसा है और उसमें ही आनन्दित हुए तो आप तीन दिन के बाद कभी शिकायत न कर सकेंगे। क्योंकि आपको पता चलेगा कि बिना शिकायत के कैसी शान्ति है, कैसा आनन्द है !

तीन दिन सब छोड़ दें और फिर जो भी पूछना हो वो आप कल सुबह से पूछेंगे। ध्यान रखेंगे पूछते समय कि सबके काम की बात हो, ऐसी कोई बात पूछेंगे। और जो भी हृदय में हो, मन में हो और जरूरी लगे तो पूछ सकते हैं।

२१. खाली झोली पसार

मैं किसलिए आया हूँ, वह मैंने आपसे कहा। मुझे पता नहीं आप किसलिए आये हैं। लेकिन कल सुबह मैं इसी आशा से आपको मिलूंगा कि जिस लिए मैं आया हूँ उसके लिए ही आप भी आये हैं। वैसे हमारी आदतें बिगड़ गयी हैं। अगर बुद्ध भी हमारे द्वार पर खड़े हों तो हमारा मन होता है कि आगे जाओ। (रोने की आवाज)। हम सोचते हैं कि सभी माँगने आते हैं। इसलिए **हम भूल जाते हैं जब कोई देने आता है तो हम उससे भी कहते हैं कि आगे जाओ।** बड़ी भूल हो जाती है। ऐसी भूल नहीं होगी, ऐसी आशा करता हूँ।

तीन दिन में यहाँ की पूरी हवा को ऐसा करें कि कुछ हो सके। हो सकता है और प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर है यहाँ की हवा, यहाँ के वातावरण को बनाना।

तीन दिन में यह पूरा का पूरा तरू-वन चार्ज्ड (Charged) हो सकता है, बहुत अनजानी शक्तियों से, अनजानी ऊर्जाओं से। ये सारे वृक्ष, ये सारे रेत के कण, ये हवाएँ, ये सागर ये सबका सब एक नयी प्राण-ऊर्जा से भर सकता है। हम सब उसे पैदा करने में सहयोगी हो सकते हैं। कोई उसमें बाधा न बने, ये ध्यान रखें। कोई दर्शक न रहे यहाँ। कोई दर्शक की तरह बैठा न रहे। और किसी तरह का संकोच, भय, कोई क्या कहेगा, कोई क्या सोचेगा, सब छोड़ दें। तो ही उस तक पहुँचना हो सकता है।

कबीर की तरह आपको न कहना पड़े। आप कह सकें कि नहीं, हम डरे नहीं और कूद गये। मेरी बातें इतनी शान्ति और प्रेम से सुनी, उससे अनुगृहीत हूँ। आप सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●

२. (अ) द्वितीय प्रवचन : प्रश्नोत्तर और ध्यान-प्रयोग

साधना-शिविर, नारगोल, प्रात काल, दिनांक ३ मई, १९७०

●

बुंद समानी समुंद में

मेरे प्रिय आत्मन्,

ऊर्जा का विस्तार है जगत और ऊर्जा का सघन हो जाना ही जीवन है। जो हमे पदार्थ की भाँति दिखाई पड़ता है वह भी ऊर्जा, शक्ति है। जो हमे जीवन की भाँति दिखाई पड़ता है, जो विचार की भाँति अनुभव होता है, जो चेतना की भाँति प्रतीत होता है वह भी उसी ऊर्जा, उसी शक्ति का रूपान्तरण है। सारा जगत्, चाहे सागर की लहरें और चाहे मरु के वृक्ष और चाहे रेत के कण और चाहे आकाश के तारे और चाहे हमारे भीतर जो है वह, यह सब एक ही शक्ति का अनन्त-अनन्त रूपो मे प्रकटन है।

१. ऊर्जामय विराट् जीवन और जगत्

हम कहाँ शुरू होते हैं और कहाँ समाप्त होते है, कहना मुश्किल है। हमारा शरीर भी कहाँ समाप्त होता है, यह भी कहना मुश्किल है। जिस शरीर को हम अपनी सीमा मान लेते हैं, वह भी हमारे शरीर की सीमा नही है। दस करोड़ मील दूर सूरज है, अगर ठण्डा हो जाय तो हम यहाँ अभी ठण्डे हो जायेंगे। मतलब यह कि हमारे होने में सूरज पूरे समय मौजूद है—हमारे शरीर का हिस्सा है। सूरज ठण्डा हुआ कि हम ठण्डे हुए। सूरज की गर्मी हमारे शरीर की गर्मी है।

चारों तरफ फैली हुई हवाओं का सागर है, वहाँ से प्राण हमें उपलब्ध होता

है। वह न उपलब्ध हो, हम अभी मृत हो जायें। तो जो श्वास हम ले रहे हैं वह श्वास हमें भीतर से भी जोड़े है, हमें बाहर से भी जोड़े है।

कहाँ हमारे शरीर का अन्त है? अगर पूरी खोज करें तो पूरा जगत ही हमारा शरीर है। अनन्त, असीम हमारा शरीर है। और ठीक से खोज करें तो सब जगह हमारे जीवन का केन्द्र है और सब जगह विस्तार है। लेकिन इसकी प्रतीति और **इसके अनुभव के लिए हमें स्वयं भी अत्यन्त जीवन्त-ऊर्जा, 'लिविंग एनर्जी' (Living Energy) बन जाना अत्यन्त जरूरी है।**

२. ध्यान अर्थात् अन्तः ऊर्जा का विराट् ऊर्जा से एक हो जाना

जिसे मैं ध्यान कह रहा हूँ, वह हमारे भीतर ठहर गयी, अवरुद्ध हो गयी धाराओं को सब भाँति मुक्त कर देने का नाम है। तो जब आप ध्यान में प्रविष्ट होंगे तो आपके **भीतर जो ऊर्जा छिपी है**, जो एनर्जी (Energy) छिपी है **वह इतने जोर से जागे कि बाहर की ऊर्जा से उसका सम्बन्ध स्थापित हो जाये।** और जैसे ही बाहर की शक्तियों से उसका सम्बन्ध स्थापित होता है वैसे ही हम एक छोटे से पत्ते रह जाते हैं, अनन्त हवाओं में कंपते हुए। हमारा अपना होना खो जाता है। हम विराट् के साथ एक हो जाते हैं।

उस विराट् के साथ एक होने पर क्या जाना जाता है? अब तक मनुष्य ने कहने की बहुत कोशिश की है, लेकिन नहीं कहा जा सका है। **कबीर कहते हैं,** मैं खोजने गया था। खोजा बहुत। **खोजते-खोजते मैं खुद ही खो गया और मिला वह जरूर, लेकिन, तब मिला जब मैं खो गया।** और इसलिए अब कौन बताये कि क्या मिला? कैसे बताये?

३. बुंद समानी समुंद में

पहली बार जब कबीर को अनुभूति हुई तो उन्होंने जो कहा था फिर पीछे उसे बदल दिया। पहली बार जब उन्हें अनुभव हुआ तो उन्होंने कहा, ऐसा लगा कि जैसे बूँद सागर में गिर गयी है। उनके वचन हैं :

> हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
> बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाइ॥

खोजते-खोजते कबीर खो गया। बूँद सागर में गिर गयी। अब उसे कैसे वापिस लौटायें? लेकिन फिर बाद में उन्होंने बदल दिया। और बदलाहट बड़ी मूल्यवान् है।

४. समुंद समाना बुंद में

बाद में उन्होंने कहा कि नहीं, नहीं। कुछ गलती हो गयी। बूँद समुद्र में नहीं गिरी, समुद्र ही बूँद में गिर गया। और बूँद समुद्र में गिरी हो तो वापिस भी लौटा

-ले कोई, लेकिन अगर समुद्र ही बूंद में गिरा हो तब तो बड़ी कठिनाई है। और बूंद अगर समुद्र में गिरे तो बूंद कुछ बता भी सके, लेकिन अगर बूंद में ही समुद्र गिरे तब तो बहुत कठिनाई है। तो बाद में उन्होंने कहा :

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाइ॥

भूल हो गयी थी पहली दफा कि कहा कि बूंद गिर गयी सागर में।

५. ऊर्जा के सागर से मिलन

जब हम ऊर्जा के स्पन्दन मात्र रह जाते हैं, तब ऐसा नहीं होता कि हम सागर में गिरते हैं। **जब हम कंपते हुए, जीवन्त स्पन्दन मात्र रह जाते हैं तो अनन्त ऊर्जा का सागर हममें गिर पड़ता है।** निश्चित ही फिर कहना मुश्किल है कि क्या होता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जो होता है वह हमें पता नहीं चलता।

ध्यान रहे, कहने और पता चलने में सदा सामंजस्य नहीं है। जो हम जान पाते हैं, वह कह नहीं पाते हैं। **जानने की क्षमता असीम है और कहने की, शब्दों की क्षमता बहुत सीमित है।** बड़े अनुभव दूर, छोटे अनुभव भी हम नहीं कह पाते हैं। अगर मेरे सिर में दर्द है तो वह भी मैं नहीं कह पाता हूँ। और अगर मेरे हृदय में प्रेम की पीड़ा है तो वह भी नहीं कह पाता हूँ। पर ये तो बहुत छोटे अनुभव हैं। और जब परमात्मा हम पर गिर पड़ता है, तब जो होता है उसे तो कहना बिलकुल ही कठिन है। लेकिन जान हम जरूर पाते हैं।

पर उस जानने के लिए हमे सब भाँति शक्ति का एक स्पन्दन मात्र रह जाना जरूरी है। जैसे एक आँधी, एक तूफान, ऐसा शक्ति का एक उगलता हुआ झरना भर हम हो जायें। हम इतने जोर से स्पन्दित हों—हमारा रोयाँ-रोयाँ, हृदय की धड़कन-धड़कन, श्वास-श्वास उसकी प्यास, उसकी प्रार्थना, उसकी प्रतीक्षा से इस भाँति भर जाय कि हम प्यास ही रह जायें, प्रतीक्षा ही रह जायें। हमारा होना ही मिट जाय। उस क्षण मे ही उससे मिलन है और वह मिलन कहीं बाहर घटित नहीं होता है। जैसा मैंने कल रात कहा, वह मिलन हमारे भीतर ही घटित होता है। हमारे भीतर ही सोये हुए केन्द्र हैं। हमारे सोये केन्द्र से ही शक्ति उठेगी और ऊपर फैल जायेगी।

एक बीज पड़ा है। फिर एक फूल खिलता है। फूल और बीज को जोड़ने के लिए वृक्ष को तना बनाना पड़ता है, शाखाएँ फैलानी पड़ती हैं। फूल छिपा था बीज में ही, कहीं बाहर से नहीं आता। लेकिन प्रकट होने के लिए बीज और फूल तक के बीच में जोड़नेवाला एक तना चाहिए। वह तना भी बीज से निकलेगा, वह फल भी बीज से निकलेगा। हमारे भीतर भी बीज-ऊर्जा, सीड-फोर्स (Seed

Force) पड़ी हुई है। उठेगी। तने की जरूरत है। वह तना भी हमारे भीतर उपलब्ध है।

जिसे हम रीढ़ की तरह जानते हैं बाहर से, ठीक उसके निकट ही वह यात्रा-पथ है जहाँ से बीज-ऊर्जा उठेगी और फूल तक पहुँच जायगी। वह फूल बहुत नामों से पुकारा गया है। हजार पंखुड़ियो वाले कमल की तरह, जिन्हे उसका अनुभव हुआ है, उन्होने कहा है, हजार पखुडियों वाले कमल की तरह है। जैसे हजार पंखुडियो वाला कमल खिल जाय, ऐसा हमारे मस्तिष्क मे कुछ खिलता है। कुछ फ्लावर होता है। लेकिन उसके खिलने के लिए नीचे से शक्ति का ऊपर तक पहुँच जाना जरूरी है।

६. शक्ति-जागरण का साहसपूर्वक स्वीकार

और जब यह शक्ति ऊपर की तरफ उठना शुरू होगी तो जैसे भूकम्प आ जायेगा, जैसे अर्थ-क्वेक (Earth quake) हो गया हो ऐसा पूरा व्यक्तित्व कंप उठेगा। उस कम्पन को रोकना नही है। उस कम्पन में सहयोगी होना है, को-आपरेट (Co-operate) करना है, साधारणत: हम रोकना चाहेंगे। मुझे कई लोग आकर कहते हैं कि डर लगता है कि पता नही क्या हो जायेगा। अगर डरेंगे तो गति न हो पायेगी। भय से ज्यादा अधार्मिक और कोई वृत्ति नहीं है। भय से बड़ा और कोई पाप नही है। फीयर (Fear) जो है शायद वह सबसे गहरा, नीचे रखने मे हमे सबसे बडा पत्थर वही है।

और भय बड़े अजीब से हैं, और बड़े क्षुद्र। कोई मुझे आकर कहता है कि ऐसा लगता है कि पास-पड़ोस के बैठे लोग क्या कहेंगे कि मुझे क्या हो रहा है। पास-पड़ोस के लोगों का भय हमे परमात्मा से रोक ले सकता है।

शिष्ट और सभ्य मनुष्य ने पूरी तरह हँसना बन्द कर दिया है पूरी तरह रोना बन्द कर दिया है। ऐसी कोई वृत्ति, ऐसा कोई भाव नही है जिसमे वह पूरा डूबे। वह हर चीज के बाहर खड़ा रह जाता है, त्रिशंकु की तरह लटका रह जाता है। हँसते हैं तो हम डरे हुए, रोते हैं तो हम डरे हुए। पुरुषो ने तो जैसे रोना छोड़ ही दिया है। उनको ख्याल ही नही है कि रोना भी कुछ आयाम है जीवन का, वह भी कोई दिशा है जीवन की।

हमारे ख्याल मे नही है कि जो नही रो सकता उस व्यक्तित्व में कुछ बुनियादी कमी हो गयी, उस व्यक्तित्व का कोई एक हिस्सा सदा के लिए कुण्ठित हो गया है। और वह हिस्सा सदा पत्थर के बोझ की तरह उसके ऊपर अटका रहेगा। जिन्हें ऊर्जा के जगत् में प्रवेश करना है, उस सुप्रीम-एनर्जी (Supreme Energy) की यात्रा करनी है, उन्हें सब भय छोड़ देने पड़ेंगे। और सरल होकर अगर शरीर कंपता हो, कम्पित होता हो, नाचने लगता हो तो उसे हो जाने दें।

७. आन्तरिक रूपान्तरण की ध्यान-प्रक्रिया : योग-विद्या का स्रोत

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा, लेकिन जान लेना जरूरी है कि जितने भी योगासन हैं वे सब ध्यान की स्थितियों में आकस्मिक रूप से ही उपलब्ध हुए हैं। उन्हें किसी ने बैठ कर, सोच कर निर्मित नहीं किया है। वह तो ध्यान की अवस्था में शरीर ने वैसी स्थितियाँ ले ली हैं और तब पता चला कि ये स्थितियाँ है। और तब धीरे-धीरे एसोसिएशन (Association) भी पता चला कि जब मन एक दशा मे जाता है तो शरीर इस दशा में चला जाता है। तब फिर यह ख्याल मे आ गया कि अगर शरीर को इस दशा में ले जाया जाय तो मन उस दशा मे चला जायेगा।

जैसे हमे पता है कि अगर भीतर रोना भर जाय तो आँख से आँसू आ जाते है। अगर आँख से आँसू आ जाय तो भीतर रोना भर जायेगा। ये एक ही चीज के दो छोर हो गये। जैसे हमे क्रोध आता है तो किसी के सिर के ऊपर हमारा हाथ उसे मारने को उठ जाता है, मुट्ठियाँ बँध जाती हैं, दाँत भिच जाते है, आँखें लाल हो जाती है। और जब प्रेम आता है तब तो मुट्ठियाँ नही भिचती, तब तो दाँत नहीं भिचते, तब तो आँखे लाल नही हो जाती। जब प्रेम आता है तो कुछ और होता है। अगर मुट्ठियाँ भिची भी हो तो खुल जाती हैं, अगर दाँत भिचे भी हो तो खुल जाते हैं, अगर आंख लाल भी हो तो शान्त हो जाती है।

प्रेम की अपनी व्यवस्था है। ऐसे ही ध्यान की प्रत्येक स्थिति में भी शरीर की अपनी व्यवस्था है। इसको ऐसा समझे कि अगर शरीर की उस व्यवस्था में आपने बाधा डाली तो भीतर चित्त की व्यवस्था में बाधा पड जायेगी। जैसे— अगर कोई आपसे कहे कि क्रोध करिये लेकिन आँखें लाल न हो, मुट्ठी न भिचे, दाँत न भिचे तो आप क्रोध न कर पायेंगे। क्योंकि शरीर की ये जो आनुषांगिक हिस्सा है इसके बिना आप कैसे क्रोध कर पायेंगे ? अगर कोई कहे कि सिर्फ क्रोध करिये शरीर पर कोई परिणाम न हो तो आप क्रोध न कर पायेंगे। अगर कोई कहे कि सिर्फ प्रेम करिये लेकिन आपकी आँखो से अमृत न बरसे और आपके हाथों में प्रेम की लहरें न दौड़ें और आपका हृदय न धड़कने लगे और आपकी श्वास और तरह से न चलने लगे। आप सिर्फ प्रेम करिये, शरीर पर कुछ प्रकट मत होने दीजिये, तो आप कहेंगे कि बहुत मुश्किल है, यह नही हो सकता है।

८. योगासन व मुद्राओं का सहज प्रकटीकरण

तो जब ध्यान की स्थितियों में शरीर विशेष विशेष रूप से मुड़ने लगे, घूमने लगे, तब अगर आप उसे रोकते हैं तो भीतर की स्थिति को भी आप पंगु कर देंगे। वह स्थिति फिर आगे नहीं बढ़ेगी।

जितने योगासन हैं वे सब ध्यान की स्थितियों में ही उपलब्ध हुए हैं। मुद्राओं का बहुत विस्तार हुआ है। अनेक प्रकार की आपने बुद्ध की मूर्तियाँ देखी होंगी, बहुत मुद्राओं में। **वे मुद्राएँ भी मन की किन्हीं विशेष अवस्थाओं में पैदा हुई हैं।** फिर तो मुद्राओं का एक शास्त्र बन गया। फिर तो बाहर से देखकर कहा जा सकता है, अगर आप झूठ न कर रहे हो और ध्यान मे सीधे बह जायें तो आपकी जो मुद्रा बनेगी उसे देख कर भी बाहर से कहा जा सकता है कि भीतर आपके क्या हो रहा है, उसको भी रोक नही लेना है।

९. ध्यान-साधना से ही नृत्य-विद्या का जन्म

मेरी अपनी समझ मे तो नृत्य भी पहली बार ध्यान में ही जन्मा है। मेरी समझ मे तो जीवन मे जो भी महत्त्वपूर्ण है उसके मूल स्रोत कही न कहीं ध्यान से सम्बन्धित है। मीरा कही नाचना सीखने नही गई थी। और लोग सोचते होंगे कि मीरा ने नाच-नाच कर भगवान् को पा लिया तो गलत सोचते हैं। **मीरा ने भगवान् को पा लिया इसलिए नाच उठी।** बात बिलकुल दूसरी है। नाच-नाच कर कोई भगवान् को नही पाता है। लेकिन कोई भगवान् को पा ले तो नाच सकता है। और सब समुद्र गिरे बूंद मे और बूंद नाचने न लगे तो क्या करे? और जब किसी भिखारी के द्वार पर अनन्त खजाना टूट पड़े और भिखारी न नाचे तो क्या करे?

१०. सभ्यता जनित दमित व्यक्तित्व और ध्यान में उनका विसर्जन

लेकिन सभ्यता ने मनुष्य को ऐसा जकड़ा है कि वह नाच भी नहीं सकता है। मेरी समझ मे दुनिया को अगर वापिस धार्मिक बनाना हो तो हमें जीवन की सहजता को वापिस लौटाना पडे।

तो यह हो सकता है कि जब ध्यान की ऊर्जा जगे आपके भीतर तो सारे प्राण नाचने लगें, उस वक्त आप शरीर को मत रोक लेना अन्यथा बात वही ठहर जायेगी, रुक जायेगी। और कुछ होने वाला था वो नही हो पायेगा। लेकिन हम बड़े डरे हुए लोग है। हम कहेंगे कि अगर मैं नाचने लगूं, मेरी पत्नी पास बैठी है, मेरा बेटा पास बैठा है वे क्या सोचेंगे कि पिता जी और नाचते हैं? अगर मैं नाचने लगूं तो पति पास बैठे हैं, वे क्या सोचेंगे कि मेरी पत्नी पागल तो नहीं हो गयी है।

अगर यह भय रहे तो उस भीतर की यात्रा पर गति नही हो पायेगी। और शरीर की मुद्राओं, आसनों के साथ-साथ और बहुत-कुछ भी प्रकट होता है।

एक बड़े विचारक हैं। न मालूम कितने सन्यासियो, साधुओ, आश्रमो में गये, न मालूम कहाँ-कहाँ गये। इधर कोई छह महीने पहले मेरे पास आये। तो

उन्होंने कहा कि सब समझ में आता है, लेकिन मुझे कुछ होता नहीं है। तो मैंने उनसे कहा कि आप होते न देते होंगे। वे कुछ विचार में पड़ गये। उन्होंने कहा, यह मेरे ख्याल में नहीं आया। शायद आप ठीक कहते हैं। लेकिन, एक बार आपके ध्यान में आया था, वहाँ मैंने किसी को रोते देखा तो मैं तो बहुत सम्हल कर बैठ गया कि कहीं भूल-चूक से ऐसा मुझे न हो जाय, अन्यथा लोग क्या कहेंगे ?

लोगों से प्रयोजन क्या है ? ये लोग कौन हैं, जो सबके पीछे पड़े हुए हैं ? और लोग, जब आप मरेंगे तब बचाने न आयेंगे। और लोग जब आप दुख में होंगे तब दुख छीनने न आयेंगे। और लोग जब आप भटकेंगे अंधेरे में तो दिया न जलायेंगे। लेकिन जब आपका दिया जलने को हो, तब अचानक लोग आपको रोक लेंगे। ये लोग कौन हैं ? कौन आपको रोकने आता है ? आप ही अपने भय को 'लोग' बना लेते हैं। आप ही अपने भय को फैला लेते हैं चारों तरफ।

वे मुझसे कहने लगे, हो सकता है, मैं तो डर गया जब मैंने किसी को रोते देखा। और मैं सम्हल कर बैठ गया कि कहीं कुछ ऐसा मुझसे न हो जाय। मैंने उनसे कहा कि आप एक महीने एकान्त में चले जायें। और जो होता हो होने दें। उन्होंने कहा कि क्या मतलब ? मैंने कहा कि अगर गालियाँ बकने का मन होता हो तो बकें, चिल्लाने का मन होता हो तो चिल्लायें, रोने का मन होता हो तो रोयें, नाचने का होता हो तो नाचें, दौड़ने का होता हो तो दौड़ें, पागल होने का मन होता हो तो महीने भर के लिए पागल हो जायें। उन्होंने कहा, मैं न जा सकूँगा। मैंने कहा, क्यों ? उन्होंने कहा कि आप जैसा कहते हैं मुझे कई बार डर लगता है, कि अगर मैं अपने को बिलकुल छोड़ दूँ सहज, जैसा आप कहते हैं, तो ठीक है कि मुझमें पागलपन प्रकट हो जायेगा।

तो मैंने उनसे कहा कि आप दबाये रहेंगे इससे कुछ फर्क तो नहीं पड़ता है। प्रकट होगा तो निकल जायेगा, दबा रहेगा तो सदा आपके साथ रह जायेगा।

हम सबने बहुत कुछ सप्रेस किया है, दबाया है। न हम रोये हैं, न हम हँसे हैं, न हम नाचे हैं, न हम खेले हैं, न हम दौड़े हैं। हमने सब दबा लिया है। हमने अपने भीतर सब तरफ से द्वार बन्द कर लिये हैं। और हर द्वार पर हम पहरेदार होकर बैठ गये हैं। अगर हमें परमात्मा से मिलने जाना हो तो ये दरवाजे खोलने पड़ेंगे। तो डर लगेगा, क्योंकि जो-जो हमने रोका है वह प्रकट हो सकता है। अगर आपने रोना रोका है तो रोना बहेगा, हँसना रोका है, हँसना बहेगा। उस सबको बह जाने दें। उस सबको निकल जाने दें।

यहाँ तो हम आये ही है इसलिए एकान्त में कि यहाँ लोगों का भय न हो। और सरू के वृक्ष बिलकुल ही उनका संकोच न करेंगे, वे आपसे कुछ भी न कहेंगे। बल्कि वे बड़े प्रसन्न होंगे। और सागर की लहरें भी आपसे कुछ न कहेंगी। वे

किसी से भयभीत नहीं हैं। जब उन्हें शोर करना होता है, वे शोर करती हैं, जब उन्हें सो जाना होता है, वे सो जाती है। और आपके नीचे पड़े हुए रेत के कण भी कुछ न कहेंगे। यहाँ कोई कुछ न कहेगा।

११. जागृत-जीवन-ऊर्जा के प्रति समर्पण और सहयोग

आप अपने को पूरी तरह छोड़ दें और जो आपके भीतर होता है उसे होने दें। नाचना हो, नाचें। चिल्लाना हो, चिल्लायें। दौडना हो, दौड़ें। गिरना हो, गिरें। छोड़ दें सब भाँति। और जब आप सब भाँति छोड़ेंगे तब आप अचानक पायेंगे कि आपके भीतर वर्तुल बनाती हुई कोई ऊर्जा उठने लगी है। कोई शक्ति आपके भीतर जगने लगी है। सब तरफ द्वार टूटने लगे हैं। उस वक्त भय मत करना। उस वक्त समग्र रूप से उस आन्दोलन में, उस मूव्हमेण्ट (Movement) में जो आपके भीतर पैदा होगा, जो शक्ति आपके भीतर वर्तुल बनाकर घूमने लगेगी उसके साथ एक हो जाना, अपने को उसमें छोड़ देना। तो घटना घट सकती है।

घटना घटनी बहुत आसान है। लेकिन हम अपने को छोडने को तैयार नहीं होते हैं और कैसी छोटी चीजें हमें रोकती हैं, जिस दिन आप कहीं पहुँचेंगे उस दिन पीछे लौट कर बहुत हँसेंगे कि कैसी चीजों ने मुझे रोका था। रोकने वाली बडी चीजें होतीं तो ठीक था, रोकने वाली बहुत छोटी चीजें हैं।

कुछ पूछना हो, कुछ बात करनी हो तो थोडी देर हम बात कर लें और फिर ध्यान के लिए बैठें। कुछ भी पूछना हो तो पूछें।

१२. जीना ही जीवन का उद्देश्य है

वे मित्र पूछते हैं कि प्रकृति में सभी निरुद्देश्य हैं, तो हम ही क्यों उद्देश्य लेकर चलें ? अगर सब उद्देश्य छोड़ सको तो इससे बड़ा कोई उद्देश्य नहीं हो सकता है। अगर प्रकृति जैसे हो सको तो सब हो गया। लेकिन आदमी अप्राकृतिक हो गया है, इसलिए वापिस लौटने के लिए उसे प्रकृति तक जाने के लिए भी उद्देश्य बनाना पड़ता है। यह दुर्भाग्य है। वही तो मैं कह रहा हूँ कि सब छोड़ दो। लेकिन अभी तो हमने इतना पकड़ लिया है कि छोड़ना भी हमें एक उद्देश्य ही होगा। वह भी हमें छोडना पडेगा। हमने इतने जोर से पकड़ा है कि हमें छोड़ने में भी मिहनत करनी पड़ेगी। हालाँकि छोड़ने मे कोई मिहनत की जरूरत नहीं है। छोडने मे क्या मिहनत करनी होगी ?

यह ठीक है कि कहीं कोई उद्देश्य नहीं है, क्यों नहीं है लेकिन ? नहीं होने का कारण यह नहीं है कि निरुद्देश्य है प्रकृति। नहीं होने का कारण यह है कि जो है, उसके बाहर कोई उद्देश्य नहीं है।

एक फूल खिला है। वह किसी के लिए नहीं खिला है। और किसी बाजार मे बिकने के लिए भी नहीं खिला है। राह से कोई गुजरे और उसकी सुगन्ध ले इसलिए भी नहीं खिला है। कोई स्वर्णपदक, गोल्ड मेडल (Gold Medal) उसे मिले, कोई महावीर चक्र मिले, कोई पद्मश्री मिले, इसलिए भी नही खिला है। **फूल बस खिला है, क्योंकि खिलना आनन्द है। खिलना ही खिलने का उद्देश्य है।** इसलिए ऐसा भी कह सकते हैं कि फूल निरुद्देश्य खिला है। और जब कोई निरुद्देश्य खिलेगा तभी पूरा खिल सकता है, क्योंकि जहाँ उद्देश्य है भीतर वहाँ थोड़ा अटकाव हो जायगा। अगर फूल, कोई निकले इसलिए खिला है तो अगर वह आदमी अभी रास्ते से नहीं निकल रहा है तो फूल अभी बन्द रहेगा। जब वह आदमी आयेगा तब खिलेगा। लेकिन जो फूल बहुत देर बन्द रहेगा, हो सकता है कि उस आदमी के पास आ जाने पर भी खिल न पायेगा, क्योंकि न खिलने की आदत मजबूत हो जायगी। नही, फूल इसीलिए पूरा खिल पाता है कि कोई उद्देश्य नहीं है।

१३. आदमी की असहजता की विकृति

ठीक ऐसा ही आदमी भी होना चाहिए, लेकिन आदमी के साथ कठिनाई यह है कि वह सहज नहीं रह गया है, वह असहज हो गया है। उसे सहज तक वापिस लौटना है और यह लौटना फिर एक उद्देश्य ही होगा।

मैं जब उद्देश्य की बात करता हूँ तो वह उन्हीं अर्थों मे जैसे पैर में काँटा लग गया हो और दूसरे काँटे से उसे निकालना पड़े। अब कोई आकर कहे कि मुझे काँटा लगा ही नहीं है तो मैं क्यों काँटे को निकालूं? उससे मै कहूँगा कि निकालने का सवाल ही नहीं है, तुम पूछने ही क्यों आये हो? काँटा नहीं लगा है तब बात ही नहीं है, लेकिन काँटा लगा है तो फिर दूसरे काँटे से निकालना पड़ेगा। वे मित्र यह भी कह सकते है कि एक काँटा तो वैसे ही मुझे परेशान कर रहा है, अब आप दूसरा काँटा और पैर में डालने को कहते हैं। पहला काँटा परेशान कर रहा है, लेकिन, **एक काँटे को दूसरे काँटे से ही निकालना पड़ेगा।** हाँ, एक बात ध्यान रखनी जरूरी है कि दूसरे काँटे को घाव में वापिस मत रख लेना कि इस काँटे ने बड़ी कृपा की है। एक काँटे को निकाला तो इस काँटे को अब हम अपने पैर में रख लें। तब नुकसान हो जायगा। **जब काँटा निकल जाय तब दोनों काँटे फेंक देना।**

हमने जो अप्राकृतिक जीवन बना लिया है, जब वह सहज हो जाय तो अप्राकृतिक को भी फेंक देना और सहज को भी फेंक देना, क्योंकि जब सहज पूरा होना हो तो सहज होने का ख्याल भी बाधा देता है। फिर तो जो होगा, होगा।

नहीं, मैं नहीं कहता हूँ कि उद्देश्य चाहिए। इसलिए कहना पड़ता है उद्देश्य

क्योंकि आपने उद्देश्य पकड़ रखे है, काँटे लगा रखे हैं, अब उन काँटों को काँटों से ही निकालना पड़ेगा ।

मित्र पूछते है कि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये अलग अलग एन्टाइटीज हैं, अलग-अलग वस्तुएँ हैं या एक ही हैं ? और वे यह भी पूछते है कि ये आत्मा से अलग हैं या आत्मा के साथ ही एक हैं ? और वे यह भी पूछते हैं कि वे जड़ हैं या चेतन हैं या क्या जड़ है और क्या चेतन है ?

(पुन: प्रश्न—और उनका विशिष्ट स्थान कौन सा है ?)

१४. जड़ और चेतन

पहली बात तो यह कि इस जगत् में जड़ और चेतन जैसी दो वस्तुएँ नहीं हैं । **जिसे हम जड़ कहते हैं वह सोया हुआ चेतन है और जिसे हम चेतन कहते हैं वह जागा हुआ जड़ है ।** असल में जड़ और चेतन जैसे दो पृथक् अस्तित्व नहीं है । अस्तित्व तो एक का ही है । उस एक का नाम ही परमात्मा है, ब्रह्म है, कोई और नाम दें, और वह एक ही जब सोया हुआ है तब जड़ मालूम होता है और जब जागा हुआ है तब चेतन मालूम पड़ता है ।

इसलिए जड़ और चेतन के ऐसे दो भेद करके न चलें । काम-चलाऊ शब्द हैं । लेकिन ऐसी कोई दो चीजें नहीं हैं । विज्ञान भी इस नतीजे पर पहुँच गया है कि जड़ जैसी कोई चीज नहीं है, मैटर (Matter), पदार्थ जैसी कोई चीज नहीं है ।

१५. पदार्थ और परमात्मा

यह बड़े मजे की बात है कि आज से ५०-६० साल पहले नीत्शे ने यह घोषणा की कि ईश्वर मर गया है । और ५० साल बाद विज्ञान को यह घोषणा करनी पड़ेगी कि ईश्वर मरा हो या न मरा हो, लेकिन मैटर (Matter), पदार्थ जरूर मर गया है, पदार्थ अब नहीं है, क्योंकि जैसे जैसे पदार्थ के भीतर विज्ञान उतरा तो पाया कि **पदार्थ के गहरे उतरो, गहरे उतरो तो पदार्थ खो जाता है और सिर्फ एनर्जी (Energy), ऊर्जा रह जाती है ।**

अणु के विस्फोट पर जो बचता है परमाणु वह सिर्फ ऊर्जा-कण है । परमाणु के विस्फोट पर जो इलेक्ट्रान्स, पॉजिट्रॉन्स और न्यूट्रॉन्स बचते है वे केवल विद्युत-कण हैं । उन्हें कण कहना भी ठीक नहीं है । क्योंकि कण से पदार्थ का बोध होता है । इसलिए अंग्रेजी में एक नया शब्द ही खोजना पड़ा है—क्वाटा । क्वांटा (Quanta) का मतलब ही कुछ और होता है । क्वांटा का मतलब होता है कि जो दोनों है—कण भी और लहर भी, एक साथ । समझना ही मुश्किल पड़ जाता है कि कोई चीज कण और लहर एक साथ कैसे होगी । वे दोनों एक साथ हैं । ये दोनों उसके 'बिहेवियर' (Behaviour) हैं, स्वभाव हैं । वह

कभी कण की तरह दिखाई पड़ती है और कभी लहर की तरह। अब लहर यानी ऊर्जा और कण यानी पदार्थ। और वे दोनों एक ही हैं।

१६. विज्ञान और धर्म

विज्ञान गहरे गया तो उसने पाया कि सिर्फ ऊर्जा है, एनर्जी (Energy) है। और अध्यात्म गहरे गया तो उसने पाया कि सिर्फ आत्मा है। और आत्मा एनर्जी है। आत्मा ऊर्जा है। इसलिए बहुत शीघ्र, बहुत जल्दी वह सिन्थेसिस, वह समन्वय उपलब्ध हो जायगा जहाँ विज्ञान और धर्म के बीच फासला तोड़ देना पड़ेगा।

जब पदार्थ और परमात्मा के बीच का फासला झूठा सिद्ध हुआ तो कितने दिन लगेंगे कि विज्ञान और धर्म के बीच के फासले को हम बचा सकें ? अगर जड़ और चेतन दो नहीं हैं तो धर्म और विज्ञान भी दो नहीं रह सकते हैं। वे उसी भेद पर दो थे।

१७. अद्वैत अस्तित्व

मेरी दृष्टि में दो का अस्तित्व नहीं है। एक ही है। तब फिर यह सवाल नहीं उठता कि कौन जड़ है और कौन चेतन है। अगर आपको जड़ की भाषा पसन्द है तो आप कहिये कि सब जड़ है। अगर आपको चेतन की भाषा पसन्द है तो कहिये कि सब चेतन है। लेकिन मुझे चेतन की भाषा पसन्द है और क्यों पसन्द है ? क्योंकि भाषा सदा ऊपर की चुननी चाहिए जिसमें सम्भावना ज्यादा हो। नीचे की नहीं चुननी चाहिए, उसमें सम्भावना कम हो जाती है।

जैसे कि हम यह कह सकते हैं कि वृक्ष हैं ही नहीं, बस बीज हैं। गलत नहीं है यह बात, क्योंकि वृक्ष सिर्फ बीज का ही रूपान्तरण है। हम कह सकते हैं कि बीज ही हैं, वृक्ष नहीं हैं। लेकिन खतरा है इसमें। इसमें खतरा यह है कि कुछ बीज कहें कि जब बीज ही हैं तब हम वृक्ष क्यों बनें ? बीज ही रह जायें। नहीं, अच्छा होगा कि हम कहें कि वृक्ष ही हैं, बीज नहीं हैं। तब बीज को वृक्ष बनने की सम्भावना खुल जाती है।

चेतन की भाषा मुझे पसन्द है। वह इसलिए कि जो सोया हुआ है वह जाग सके, उस सम्भावना का द्वार खुल सके। पदार्थवादी और अध्यात्मवादी में एक समानता है कि वे एक को ही स्वीकार करते हैं। असमानता एक है कि पदार्थवादी बहुत प्राथमिक चीज को मान लेता है और इसलिए अन्तिम से वंचित रह सकता है। अध्यात्मवादी अन्तिम को स्वीकार करता है इसलिए पहला तो उसमें आ ही जाता है, वह कहीं जाता नहीं है। मुझे अध्यात्म की भाषा प्रीतिकर है और इसलिए कहता हूँ कि सब चेतन है। सोया हुआ चेतन जड़ है और जागा हुआ चेतन चेतन है। समस्त अस्तित्व चेतना है।

१८. मन के विविध रूप : बुद्धि, चित्त, अहंकार

दूसरी बात उन्होंने पूछी है कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—ये क्या अलग अलग हैं ? ये अलग अलग नहीं हैं। ये मन के ही बहुत चेहरे हैं। जैसे कोई हमसे पूछे कि बाप अलग है, बेटा अलग है, पति अलग है तो हम कहें कि नहीं, वह आदमी तो एक ही है। लेकिन किसी के सामने वह बाप है और किसी के सामने वह बेटा है और किसी के सामने वह पति है। और किसी के सामने मित्र है और किसी के सामने शत्रु है। और किसी के सामने सुन्दर है और किसी के सामने असुन्दर है। और किसी के सामने मालिक है और किसी के सामने नौकर है। पर वह आदमी एक है। और अगर हम उस घर में न गये हों और हमें कभी कोई आकर खबर दे कि आज मालिक मिल गया था और कभी कोई आकर खबर दे कि आज नौकर मिल गया था और कभी कोई आकर कहे कि आज पिता से मुलाकात हुई। और कभी कोई आकर कहे कि आज पति घर में बैठा हुआ था। तो हम शायद सोचें कि बहुत लोग इस घर में रहते हैं, कोई मालिक, कोई पिता, कोई पति।

हमारा मन बहुत तरह से व्यवहार करता है। हमारा मन जब अकड़ जाता है और कहता है, मैं ही सब कुछ हूँ और कोई कुछ नही, तब वह अहकार की तरह प्रतीत होता है। वह मन का एक ढंग है। वह मन के व्यवहार का एक रूप है। जब वह कहता है कि मैं ही सब कुछ हूँ, मेरे सामने और कोई कुछ भी नही है, तब मन अहंकार है।

और जब मन विचार करता है, सोचता है तब वह बुद्धि है। और जब मन न सोचता, न विचार करता सिर्फ तरगों में बहा चला जाता है, अन-डायरेक्टेड (Un-Directed), तब वह चित्त है। जब मन डारेक्शन (Direction), दिशा लेकर सोचता है जैसे कि एक वैज्ञानिक बैठा है प्रयोगशाला में और सोच रहा है कि अणु का विस्फोट कैसे हो ? जब यह डायरेक्टेड थिंकिंग होता है तब मन बुद्धि है। और जब मन निरुद्देश्य, निर्लक्ष्य, सिर्फ बहा जाता है, कभी सपना देखता है, कभी धन देखता है, कभी राष्ट्रपति हो जाता है, तब वह चित्त है। जब मन सिर्फ तरंगें मात्र है असगत, असम्बद्ध तब वह चित्त है। और जब मन एक सुनिश्चित मार्ग पर बहता है तब वह बुद्धि है। ये मन के ढंग हैं बहुत, लेकिन मन ही हैं।

१९. विक्षुब्ध चेतना है मन और शान्त चेतना है आत्मा

और वे पूछते हैं कि ये मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और आत्मा अलग हैं या एक हैं। सागर में तूफान आ जाय, तो तूफान और सागर एक होते हैं या अलग ? विक्षुब्ध जब हो जाता है सागर तो हम कहते हैं तूफान है। आत्मा जब विक्षुब्ध

हो जाती है तब हम कहते हैं कि मन है। और मन जब शान्त हो जाता है तब हम कहते हैं कि आत्मा है। **मन जो है वो आत्मा की विक्षुब्ध अवस्था है। और आत्मा जो है वो मन की शान्त अवस्था है।**

ऐसा समझें कि चेतना जब हमारे भीतर विक्षुब्ध है, विक्षिप्त है, तूफान से घिरी है तब हम इसे मन कहते है। इसलिए जब तक आपको मन का पता चलता है तब तक आत्मा का पता न चलेगा। और इसलिए ध्यान में मन खो जाता है। खो जाता है इसका मतलब ? इसका मतलब, वे जो लहरें उठ रही थीं आत्मा पर वे सो जाती हैं। वापिस शान्त हो जाती हैं। तब आपको पता चलता है कि मैं आत्मा हूँ। जब तक विक्षुब्ध हैं तब तक पता चलता है कि मन हूँ।

विक्षुब्ध मन बहुत रूपों में प्रकट होता है, कभी अहंकार की तरह, कभी बुद्धि की तरह, कभी चित्त की तरह। वे विक्षुब्ध मन के अनेक चेहरे हैं।

आत्मा और मन अलग नहीं है। आत्मा और शरीर भी अलग नहीं है। क्योंकि तत्त्व तो एक है और उस एक के सारे के सारे रूपान्तरण हैं। और उस एक को जान ले तो फिर कोई झगड़ा नहीं है। शरीर से भी नहीं, मन से भी नहीं। उस एक को एक बार पहचान ले तो फिर वही है। फिर रावण में भी वही है, राम में भी वही है। फिर ऐसा नहीं कि राम को नमस्कार कर आयेंगे और रावण को जला आयेंगे। ऐसा नहीं, फिर नमस्कार दोनों को ही कर आयेंगे या दोनों को ही जला आयेंगे। क्योंकि दोनो में वही है।

एक है तत्त्व, अनन्त हैं अभिव्यक्तियां। एक है सत्य, अनेक हैं रूप। एक है अस्तित्व, बहुत हैं उसके चेहरे, मुद्राएं।

२०. अद्वैत सत्य विचारणा नहीं, अनुभूति है

लेकिन, इसे फिलॉसोफी की तरह समझेंगे तो नही समझ में आ सकेगा। इसे अनुभव की तरह समझेंगे तो समझ मे आ सकता है। तो यह तो मैंने समझाने के ख्याल से कहा, लेकिन जब आप ही उतरेंगे उस एक में तभी आप जानेंगे कि अरे ! जिसे जाना था शरीर की तरह, वह भी तू ही है और जिसे जाना था मन की तरह वह भी तू ही है। और जिसे जाना था आत्मा की तरह, वह भी तू ही है।

जब जानते हैं तब सिर्फ एक ही रह जाता है। इतना ज्यादा एक रह जाता है कि जो जानता है और जो जाना जाता है, इनमें भी कोई फासला नहीं रह जाता है। वहाँ जानने वाला और जाना जाने वाला दोनों एक ही रह जाते हैं। उप-निषद् का एक ऋषि पूछता है कौन है वहाँ जानता ? कौन है वहाँ जो जाना जाता ? किसने वहाँ देखा ? कौन है जो वहाँ देखा गया ? कौन था जिसने अनुभव किया ? कौन था जिसका अनुभव हुआ ? नहीं, वहाँ इतना भी दो

नहीं रह जाते हैं। वहाँ अनुभव करने वाला भी नहीं बचता है। सब फासले गिर जाते हैं।

लेकिन विचार तो फासले बनाये बिना नहीं चल सकता है। विचार तो फासले बनायेगा। वह कहेगा यह शरीर है, यह मन है, यह आत्मा है, यह परमात्मा है। विचार फासले बनायेगा। क्यों ? क्योंकि विचार समग्र को एक साथ नहीं ले (समेट) सकता है। विचार बहुत छोटी खिड़की है। उससे हम टुकड़े टुकड़े को ही देख पाते हैं।

जैसे एक बड़ा मकान हो और उसमें एक छोटा छेद हो। और उस छोटे छेद से मैं देखूं। तो कभी कुर्सी दिखाई पड़े, कभी टेबल दिखाई पड़े, कभी मालिक दिखाई पड़े, कभी फोटो दिखाई पड़े, कभी घड़ी दिखाई पड़े। छोटे छेद से सब टुकड़े टुकड़े दिखाई पड़ें। पूरा कमरा कभी दिखाई न पड़े। क्योंकि वह छेद बहुत छोटा है। और फिर दीवाल गिरा कर मैं भीतर पहुँच जाऊँ, तो पूरा कमरा एक साथ दिखाई पड़ेगा।

विचार बहुत छोटा छेद है जिससे हम सत्य को खोजते है। उसमें सत्य खण्ड-खण्ड होकर दिखाई पड़ता है। लेकिन जब विचार को छोड़कर हम निर्विचार में पहुँचते हैं, ध्यान में पहुँचते हैं तब समग्र, दी टोटल (The Total) दिखाई पड़ता है। और जिस दिन वह पूरा दिखाई पड़ता है, उस दिन बड़ी हैरानी होती है कि अरे ! एक ही था, अनन्त होकर दिखाई पड़ता था, पर वह अनुभव से ही होगा।

२१. ध्यान में प्रवेश : काल-शून्यता (Time-Lessness) में

वे मित्र पूछते हैं कि मुझे ध्यान में प्रवेश करने में कितने साल लगे ? ध्यान में प्रवेश तो एक क्षण में हो जाता है। हाँ, दरवाजे के बाहर कितने ही जन्म हो सकते हैं। दरवाजे में प्रवेश तो एक ही क्षण में हो जाता है। क्षण भी ठीक नहीं है। क्योंकि क्षण भी काफी बड़ा है। क्षण के भी हजारवें हिस्से में हो जाता है, वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि क्षण का हजारवां हिस्सा भी टाइम (काल) का ही हिस्सा है। असल में ध्यान में तो प्रवेश होता है टाइम-लेसनेस (Time-Lessness) में, समय रहता ही नहीं है और प्रवेश हो जाता है।

इसलिए अगर कोई कहे कि ध्यान में प्रवेश में मुझे घण्टा भर लगा तो गलत कहता है; कहे कि साल भर लगा, तो गलत कहता है। क्योंकि जब ध्यान में प्रवेश होता है तो वहाँ समय नहीं होता है, समय होता ही नहीं है। हाँ, ध्यान का जो मन्दिर है, उसके बाहर आप जन्मों तक चक्कर काटते रहें, लेकिन वह प्रवेश नहीं है।

तो चक्कर तो मैंने भी बहुत जन्म काटे, लेकिन वह प्रवेश नहीं है, लेकिन जब

प्रवेश हुआ तब वह प्रवेश बिना समय के ही हो गया। इसलिए यह सवाल बड़ा कठिन पूछ लिया है आपने।

अगर उस सब का हिसाब हम रखें जो मन्दिर के बाहर घूमने में वक्त बिताया, तो वह अन्तहीन हिसाब है। वह अनन्त जन्मों का हिसाब है। उसको भी बताना मुश्किल है, क्योंकि बहुत लम्बा है। उसकी कोई गणना नहीं की जा सकती। और अगर प्रवेश को ही ध्यान में रखें सिर्फ, तो उसे समय की भाषा में नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि वह दो क्षणों के बीच में घट जाती है घटना। एक क्षण गया, दूसरा अभी आया नहीं और बीच में वह घटना घट जाती है। आपकी घड़ी में एक बजा और फिर एक बजकर एक सेकेण्ड हुआ तब बीच में जो गैप (Gap), अन्तराल छूट गया उस गैप में होती है वह घटना। वह सदा गैप में, इण्टरवल (Interval) में, दो मोमेण्ट्स (Moments), क्षणों के बीच में जो खाली जगह है, वहाँ होती है। और इसलिए उसको नहीं बताया जा सकता कि कितना समय लगा।

समय बिलकुल नहीं लगता है। समय लग ही नहीं सकता है, क्योंकि समय के द्वारा इटरनल (Eternal), अनन्त में प्रवेश नहीं हो सकता है। जो समय से बाहर है उसमें समय के द्वारा जाना नहीं हो सकता है।

तो आपकी बात मैं समझ गया हूँ। मन्दिर के बाहर जितना घूमना हो, घूम सकते हैं। वह चक्कर लगाना है। जैसे एक आदमी चक्कर लगा रहा है। एक हमने गोल घेरा खींच दिया है, एक सर्किल (Circle) बना दिया है और सर्किल के बीच में एक सेण्टर (Centre) है। और एक आदमी सर्किल में चक्कर लगा रहा है। वह सर्किल पर अनन्त जन्मों तक चक्कर लगाता रहे तो भी सेण्टर पर पहुँचने वाला नहीं है। वह सोचे कि और जोर से दौड़ूँ तो और जोर से दौड़े। सोचे कि हवाई जहाज ले आऊँ तो हवाई जहाज ले आवे। उसे जो भी करना हो वह करे, जितनी ताकत लगानी हो लगाये। अगर वह सर्किल पर ही दौड़ता है तो दौड़ता रहे, दौड़ता रहे, दौड़ता रहे, वह सेण्टर पर नहीं पहुँच सकता है। और सर्किल पर वह कहीं भी हो सेण्टर से दूरी बराबर होगी।

इसलिए वह कितना दौड़ा यह बेमानी है। कहीं भी खड़ा हो जाय उसकी सेण्टर से दूरी उतनी ही है, जितनी दौड़ने के पहले थी। वह अनन्त जन्मों तक दौड़ता रहे और अगर सेण्टर पर पहुँचना है तो सर्किल पर दौड़ना छोड़ना पड़ेगा। सर्किल ही छोड़नी पड़ेगी। सर्किल को छोड़कर छलाँग लगानी पड़ेगी।

अगर फिर वह आदमी सेण्टर पर पहुँच जाय तो आप उससे पूछें कि सर्किल पर कितनी यात्रा करके तुम सेण्टर पर पहुँचे ? तो वह क्या कहे ? वह कहे कि सर्किल पर तो बहुत यात्रा की, बहुत चले, लेकिन उससे पहुँचे ही नहीं, तो आप

उससे पूछें कि कितने मील चल कर पहुँचे ? तो वह कहे कि कितने ही मील चले, उससे पहुँचे नहीं। चले तो बहुत लेकिन उससे पहुँचना न हुआ। और जब पहुँचे तब सर्किल से छलाँग लगा कर पहुँचे। और वहाँ मील का सवाल नहीं है।

ठीक ऐसी बात है। समय में नहीं घटती है। घटना और समय तो हम सबने बहुत गँवाया है। जिस दिन आपको भी घटेगी उस दिन आप भी न बता सकेंगे कि कितनी देर में यह हुआ। नहीं, देरी का सवाल ही नहीं है।

जीसस से किसी ने पूछा है कि तुम्हारे उस स्वर्ग मे कितनी देर हम रुक सकेंगे ? तो जीसस ने कहा कि तुम बड़ा कठिन सवाल पूछते हो। "देयर शैल बी टाइम नो लाँगर"। (There shall be time no longer)। तुम पूछते हो, तुम्हारे उस स्वर्ग में कितनी देर हम रुक सकेंगे। बड़ी मुश्किल का सवाल पूछते हो, क्योंकि वहाँ तो समय न होगा। इसलिए देरी का हिसाब कैसे लगेगा ?

२२. प्रतीति : दुख में समय लम्बा और सुख में छोटा

यह समझने जैसा है कि समय जो है वह हमारे दुख से जुड़ा है। आनन्द में समय नहीं होता है। आप जितने दुख मे हैं, समय उतना बड़ा होता है। रात भर में कोई खाट पर पड़ा है, मरने के लिए, तो रात बहुत लम्बी हो जाती है। घड़ी में तो उतनी ही होगी, कैलेण्डर में तो उतनी ही होगी। लेकिन वह जो खाट के पास बैठा है जिसका प्रियजन मर रहा है उसके लिए रात इतनी लम्बी, इतनी लम्बी हो जाती है कि लगता है कि चुकेगी कि नहीं चुकेगी ? यह रात खत्म होगी कि नहीं होगी ? सूरज उगेगा कि नहीं उगेगा ? यह रात कितनी लम्बी होती चली जाती है और घड़ी उतना ही कहती है। और तब देखने वाले को लगेगा कि घड़ी आज धीरे चलती है या रुक गयी है ? कैलेण्डर की पँखुड़ी उखड़ने के करीब आ गयी है, सुबह होने लगी है, लेकिन ऐसा लगता है कि लम्बा, लम्बा ..

बर्ट्रेण्ड रसेल ने कहीं लिखा है कि मैंने अपनी जिन्दगी में जितने पाप किये हैं, अगर सख्त से सख्त न्यायाधीश के सामने भी मुझे मौजूद कर दिया जाय तो मैंने जो पाप किये हों और जो मैं करना चाहता था और नहीं कर पाया वह भी अगर जोड़ लिये जायें तो भी मुझे चार-पाँच साल से अधिक की सजा नहीं हो सकती है। लेकिन जीसस कहते हैं कि नरक मे अनन्त काल तक सजा भोगनी पड़ेगी। तो यह न्याय-युक्त नहीं है। मैंने जो पाप किये और जो नहीं किये वह भी जोड़ लें, क्योंकि मैंने सोचे, तो भी सख्त से सख्त अदालत भी मुझे चार-पाँच साल की सजा दे सकती है। और ये जीसस की अदालत कहती है कि अनन्त काल तक, इटरनिटी (Eternity) तक नरक में सड़ना पड़ेगा। यह जरा ज्यादती मालूम पड़ती है।

रसेल तो मर गये, अन्यथा उनसे कहना चाहता था कि आप समझे नहीं।

जीसस का मतलब ख्याल मे नही आया आपके। जीसस यह कह रहे हैं कि नरक में अगर एक क्षण भी रहना पडा तो वह इटरनिटी (अनन्त काल) मालूम पड़ेगा। दुख इतना ज्यादा है कि उसका अन्त ही नही मालूम पड़ेगा, कि वह कब समाप्त होगा। वह समाप्त होगा ही नहीं।

दुख समय को लम्बाता है। सुख समय को छोटा करता है। इसलिए तो हम कहते हैं कि सुख क्षणिक है। जरूरी नहीं है कि सुख क्षणिक हो, सुख की प्रतीति क्षणिक होती है कि वह आया और गया, क्योंकि टाइम छोटा हो जाता है। सुख क्षणिक है, मोमेण्टरी (Momentary) है, ऐसा नही है। सुख की भी लम्बाइयाँ हैं, लेकिन सुख सदा क्षणिक मालूम पड़ता है, क्योंकि सुख मे समय छोटा हो जाता है। प्रियजन मिला नही कि बिदाई का वक्त आ गया। आये नही कि गये। इधर फूल खिला नही कि कुम्हलाया। तो **सुख की प्रतीति क्षणिक है, क्योंकि सुख में समय छोटा हो जाता है।** घड़ी फिर भी वैसी ही चलती है, कैलेण्डर वही खबर देता है, लेकिन हमारे मन का सुख समय को छोटा कर देता है।

२३. आनन्द में समय का मिट जाना

आनन्द में समय मिट ही जाता है, छोटा-मोटा नही होता है। आनन्द में **समय होता ही नहीं है।** जब आप आनन्द मे होंगे तब आपके पास समय नही होगा। असल में समय और दुख एक ही चीज के दो नाम हैं। टाइम जो है वह दुख का ही नाम है। समय जो है वह दुख का ही नाम है। **मानसिक अर्थों में समय ही दुख है।** और इसलिए हम कहते हैं कि आनन्द समयातीत, कालातीत, बियाण्ड टाइम (Beyond Time), समय के बाहर है। तो जो समय के बाहर है उसे समय के द्वारा नही पाया जा सकता है।

२४. मुक्ति में समकालीनता (Contemporarity) का रहस्य

चक्कर तो मैंने भी लगाये है, उतने ही जितने आपने लगाये हैं। और मजा यह है कि इतना लम्बा है हमारा चक्कर कि उसमें किसने कम लगाये हैं और किसने ज्यादा, कहना बहुत मुश्किल है। महावीर पच्चीस सौ साल पहले पा गये उसे, बुद्ध पा गये, जीसस दो हजार साल पहले पा गये, और शंकर हजार साल पहले उसे पा गये, लेकिन अगर कोई कहे कि शंकर ने हमसे हजार साल कम चक्कर लगाये तो गलत कह रहा है, क्योंकि चक्कर अनन्त हैं। जैसे उदाहरण के लिए :

आप बम्बई में थे। बम्बई से आप नारगोल आये तो सौ मील की आपने यात्रा की, लेकिन जो तारा अन्तहीन दूरी पर हमसे है, उस तारे के ख्याल से आपने कोई यात्रा ही नहीं की है। आप वहीं के वहीं हैं। कोई फर्क नहीं पड़ा है कि आप बम्बई से सौ मील इधर आ गये हैं। उस तारे को ख्याल में रखें तो आपने कोई यात्रा ही नहीं की है। उस तारे से आपकी दूरी अब भी वही है जो आपकी

बम्बई में थी। आप पृथ्वी पर कहीं भी चले जायें, उस तारे से आपकी दूरी वही है। क्योंकि वह तारा इतनी दूरी पर है कि आपके ये फासले कोई अन्तर नहीं लाते हैं।

हमारे जन्मों की यात्रा इतनी लम्बी है कि कौन पच्चीस सौ साल पहले, कौन पाँच सौ साल पहले, कोई पाँच दिन पहले, कोई पाँच घण्टे पहले, पहुँचा इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। जिस दिन हम उस केन्द्र पर पहुँचते हैं तो देखते हैं कि अरे! अभी बुद्ध आ ही रहे हैं, अभी महावीर घुस ही रहे हैं, अभी जीसस का प्रवेश ही हुआ है। और हम भी पहुँच गये हैं: मगर वह जरा समझना कठिन है, क्योंकि हम जिस दुनिया में जीते हैं, वहाँ समय बहुत महत्वपूर्ण है। वहाँ समय बहुत महत्वपूर्ण है।

२५. बाहर चक्कर लगाना बन्द करें

इसलिए स्वभावतः हमारे मन में सवाल उठता है कि कितनी देर? लेकिन मत उठायें यह सवाल। **देरी की बात ही मत करें। चक्कर लगाना बन्द करें।** चक्कर में देरी लग जायगी। मन्दिर के बाहर मत घूमें, भीतर चले जायें। लेकिन डर लगता है मन्दिर के भीतर जाने मे कि पता नहीं क्या होगा! मन्दिर के बाहर सब परिचित हैं। मित्र हैं, प्रियजन हैं, पत्नी है, बेटा है, घर है, द्वार है, दुकान है। मन्दिर के बाहर सब अपना है। और मन्दिर में **एक शर्त है कि वहाँ अकेले ही भीतर प्रवेश होता है।** वहाँ दो आदमी दरवाजे से एकदम जा नहीं सकते हैं। तो इस सब मकान को, पत्नी को, बच्चे को, धन को, तिजोड़ी को, यश को, पद-प्रतिष्ठा को—इस सबको लेकर घुस नहीं सकते भीतर। सब बाहर छोड़ना पड़ता है। इसलिए हम कहते हैं कि ठीक है, अभी थोड़ा बाहर और चक्कर लगा लें। फिर हम बाहर चक्कर लगाते रहें। हम उग्र क्षण की प्रतीक्षा में हैं जब दरवाजा जरा ज्यादा खुला हो तब हम सबके सब एकदम से भीतर हो जायेंगे। वह दरवाजा ज्यादा कभी नही खुलता है। वहाँ से एक ही प्रवेश करता है। आप भी अपने पद को लेकर भी प्रविष्ट नही हो सकते, क्योंकि दो हो जायेंगे, आप और आपका पद। अपने नाम को लेकर भी प्रवेश नही कर सकते, क्योंकि दो हो जायेंगे, आप और आपका नाम। वहाँ कुछ भी ले करके प्रवेश सम्भव नहीं है। **वहाँ तो बिलकुल नग्न, टोटली नेकेड (Totally Naked) और अकेले वहाँ प्रवेश करना पड़ता है।**

(इसलिए हम बाहर घूमते रहते हैं। हम मन्दिर के बाहर ही डेरा डाल देते हैं। हम कहते हैं कि भगवान् के पास ही तो हैं, कोई ज्यादा दूर तो नहीं हैं। लेकिन मन्दिर के बाहर आप गज भर की दूरी पर हैं कि हजार गज की दूरी पर हैं, कि हजार मील की दूरी पर हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता है। मन्दिर के बाहर हैं

तो बस बाहर हैं। और भीतर जाना हो तो एक क्षण के हजारवें हिस्से में मैं कह रहा हूँ, ठीक नहीं है वह कहना, बिना क्षण के भी भीतर प्रवेश हो सकता है।

२६. ज्ञान की उपलब्धि निर्विचार में

इसको अन्तिम प्रश्न मान लें, फिर और कोई प्रश्न हो तो रात कर लेंगे। आप पूछते हैं कि जो ज्ञान है वह निर्विचार अवस्था में ही रहता है और विचार में नहीं रहता है क्या ?

ज्ञान की उपलब्धि निर्विचार में होती है। और उपलब्धि हो जाय तो वह हर अवस्था में रहती है। फिर तो विचार की अवस्था में भी रहती है। फिर तो उसे खोने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन उपलब्धि निर्विचार में होती है। अभिव्यक्ति विचार से भी हो सकती है, लेकिन उपलब्धि निर्विचार में होती है। उसे पाना हो तो निर्विचार होना पड़े। क्यों निर्विचार होना पड़े ? क्योंकि **विचार की तरंगें मन को दर्पण नहीं बनने देती हैं।**

जैसे समझें, एक चित्र उतारना हो कैमरे से। तो उतारने में तो एक विशेष अवस्था का ध्यान रखना पड़े कि कैमरे में प्रकाश न चला जाय, कैमरा न हिल जाय। लेकिन एक दफा चित्र उतर गया, फिर खूब हिलाइये और खूब प्रकाश में रखिये, उससे कोई फिर फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन उतारने के क्षण में तो कैमरा हिल जाय तो सब खराब हो जाय। एक दफा उतर जाय तो बात खतम हो गयी। फिर खूब हिलाइये और नाचिये लेकर के तो कोई फर्क नहीं पड़ता है।

२७. विचारों से कम्पित मन की असमर्थता

ज्ञान की उपलब्धि चित्त की उस अवस्था में होती है जब उसमें कुछ भी नहीं होता है, सब शान्त और मौन होता है। तब तो ज्ञान का चित्र पकड़ता है। लेकिन पकड़ जाये एक दफे तब फिर खूब नाचिये, खूब हिलिये, कुछ भी करिये, फिर कोई फर्क नहीं पड़ता है। ज्ञान की उपलब्धि निर्विचार में है और विचार फिर कोई बाधा नहीं डालता है। लेकिन अगर सोचते हों कि विचार से उपलब्धि कर लेंगे तो कभी न होगी। विचार उपलब्धि में बहुत बाधा डालेगा। उपलब्धि के बाद विचार बिलकुल नपुंसक है। फिर उसकी कोई ताकत नहीं है। फिर वह कुछ भी नहीं करता है। यह बहुत मजे की बात है कि शान्ति की जरूरत प्राथमिक है, ज्ञान को पाने में। ज्ञान पा लेने के बाद किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन वह बाद की बातें हैं। **और बाद की बातें पहले कभी नहीं करनी चाहिए। नहीं तो नुकसान होता है।**

नुकसान यह होता है कि हम सोचने लगते हैं कि जब बाद में कोई फर्क नहीं पड़ेगा तो अभी भी क्या हर्ज है। तब नुकसान हो जायगा। फिर हम कैमरा हिला देंगे। सब गड़बड़ हो जायगा। चित्र तो हिला हुआ कैमरा भी उतारता है, लेकिन

वह सत्य चित्र नहीं होता है। वह ट्रू (True) नहीं होता है। वह भी उतारता है। विचार में भी ज्ञान का ही पता चलता है, लेकिन वह ठीक नहीं होता है, क्योंकि हिलता रहता है, मन पूरे समय कँपता रहता है। इसलिए कुछ का कुछ बन जाता है।

जैसे चाँद निकला हो और सागर में लहरें हों—तो चाँद का प्रतिबिम्ब तो बनेगा ही, लेकिन सागर में हजार चाँद के टुकड़े टूट कर फैल जायेंगे। और अगर किसी ने आकाश का चाँद न देखा हो तो सागर में देखकर पता न लगा पायेगा कि चाँद कैसा है। हजार टुकड़े होकर चाँद लहरों में फैल जायगा। चाँदी बिखर जायगी उसकी, लेकिन चाँद का बिम्ब नहीं पकड़ में आयगा। एक दफा बिम्ब पकड़ में आ जाय कि चाँद कैसा है? फिर तो सागर में बिखरी लहरों में भी हम पहचान लेते हैं कि 'तुम' ही हो। लेकिन एक बार हम उसे देख तो लें। एक बार उसकी शक्ल हमारे ख्याल में आ जाय फिर तो सभी शक्लों में वह मिल जाता है। लेकिन, एक दफा पहचान ही न हो पाये तो वह कहीं भी हमें नहीं मिलता है। मिलता है रोज, लेकिन हम रिकॅगनाइज (Recognize) नहीं कर पाते हैं, हम पहचान नहीं पाते हैं कि यही है। एक छोटी-सी घटना से मैं कहूँ, फिर हम ध्यान के लिए बैठें।

साँई बाबा के पास एक हिन्दू संन्यासी बहुत दिन तक था। साँई तो रहते थे मस्जिद में। साँई बाबा का कुछ पक्का नहीं था कि वे हिन्दू थे कि मुसलमान। ऐसे आदमियों का कभी कुछ पक्का नहीं है। लोग पूछते तो वे हँसते थे। हँसने से तो कुछ पता चलता नहीं है। एक ही बात पता चलती है कि पूछने वाला ना-समझ है। हिन्दू संन्यासी था, लेकिन वह मस्जिद में कैसे रुके, साँई के पास! तो वह गाँव के बाहर एक मन्दिर में रुकता था। लगाव उसका था, प्रेम उसका था। रोज खाना बनाकर लाता था। साँई को खाना देता, फिर जाकर खाना खाता था। साँई बाबा ने उससे कहा कि क्यों इतनी दूर आता है, हम तो कई बार वहीं से निकलते हैं तब तू वहीं खिला दिया कर। उसने कहा, आप वहाँ से निकलते हैं! कभी देखा नहीं! तो साँई ने कहा कि जरा गौर से देखना। हम कई बार तेरे मन्दिर के पास से निकलते हैं। वहीं खिला देना। कल हम आ जायेंगे, तू मत आना।

कल उस हिन्दू संन्यासी ने बनाकर खाना रखा। अब देखता है, देखता है, देखता है। वे आते नहीं, आते नहीं, आते नहीं। वह घबड़ा गया। दो बज गये। तो उसने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गयी है। वे भी भूखे होंगे और मैं भी भूखा बैठा हूँ। फिर वह थाली लेकर भागा। साँई के पास पहुँचा। साँई से उसने कहा कि हम राह देखते रहे, आप आज आये नहीं। उन्होंने कहा कि आज

भी आया था। रोज आता हूँ, लेकिन तूने तो दुत्कार दिया। उसने कहा, कहाँ दुत्कारा ? सिर्फ एक कुत्ता आया था। तो साँई ने कहा कि वही मैं था। तब तो वह हिन्दू संन्यासी बहुत रोया। बहुत दुखी हुआ। उसने कहा कि आप आये और मैं पहचान न पाया। कल जरूर पहचान जाऊँगा। अगर कुत्ते की ही शकल में कल भी आते तो पहचान जाता। कल भी वे आये, लेकिन एक कोढ़ी था, रास्ते पर मिला। उस संन्यासी ने कहा कि जरा दूर से, दूर से। भोजन लिये हुए हूँ साँई का, जरा दूर से निकलो। वह कोढ़ी हँसा भी। फिर दो बज गये। फिर भागा हुआ मस्जिद आया। उसने कहा कि आज आप आये नहीं। आज मैंने बहुत रास्ता देखा। तो साँई ने कहा, मैं तो फिर भी आया था। लेकिन तेरे चित्त में इतनी तरंगें हैं कि रोज मैं वही तो दिखाई नहीं पड़ सकता। तू ही कँप जाता है। आज भी एक कोढ़ी आया था तो तूने कहा कि दूर हट। तो मैंने कहा कि हद हो गयी। मैं आता हूँ तो तू तो भगा देता है और यहाँ आकर कहता है कि आये नहीं।

वह संन्यासी रोने लगा। उसने कहा कि मैं आपको पहचान ही नहीं पाया। तो साँई ने उससे कहा था कि तू अभी मुझे ही नहीं पहचान पाया, इसलिए दूसरी शकलों में मुझे कैसे पहचान पायेगा।

एक बार हम सत्य की झलक पा लें तो फिर असत्य है ही नहीं। एक बार हम परमात्मा को झांक ले तो परमात्मा के अतिरिक्त फिर कुछ है ही नहीं। लेकिन वह झांकना तब हो पाये जब हमारे भीतर सब शान्त और मौन हो। फिर इसके बाद तो कोई सवाल ही नहीं है। फिर तो विचार भी उसके हैं, वृत्तियां भी उसकी है, वासनाएँ भी उसकी है। फिर तो सब उसीका है। लेकिन प्राथमिक चरण मे उसे झांकने और पहचानने के लिए सब का रुक जाना जरूरी है।

अब हम ध्यान के लिए बैठें। ●

२. (ब) प्रथम ध्यान-प्रयोग

साधना-शिविर, नारगोल, प्रात:काल, ३ मई, १९७०

●

प्रयोग——कुण्डलिनी-जागरण और ध्यान का

आप लोग फासले पर हो जायें, दूर-दूर बैठ जायें, ताकि लेटना पड़े तो लेट भी सकें। और कोई बात नहीं करेगा। चुपचाप जिसे जहाँ हटना हो, हट जाय। बातचीत बिलकुल नहीं करेंगे। कोई किसी को छूता हुआ न बैठे। और यहाँ तो बहुत जगह है, इसलिए कंजूसी न करें जगह की। नाहक बीच में कोई आपके ऊपर गिर जाय, कुछ हो तो सब खराब होगा। हट जायें दूर-दूर...शीघ्रता से बैठ जायें या लेट जायें, जिसको जैसा करना है वैसा कर ले...आँख बन्द कर लें... और जैसा कहूँ वैसा करें।

प्रथम चरण : दस मिनट तीव्र व गहरी श्वास की चोट

आँख बन्द कर लें और गहरी श्वास लेना शुरू करें। जितनी गहरी ले सकें, लें और जितनी गहरी छोड़ सकें, छोड़ें। सारी शक्ति श्वास के लेने और छोड़ने में लगा देनी है। गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें। सिर्फ श्वास ही रह जायें। सारी शक्ति लगा देनी है। जितनी गहरी श्वास लेंगे-छोड़ेंगे, उतनी ही भीतर ऊर्जा के जगने की सम्भावना बढ़ेगी। गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें, गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें...१० मिनट गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें। बस, आप श्वास लेने वाले यन्त्र मात्र रह जायें, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। सिर्फ श्वास ले रहे हैं, छोड़ रहे हैं, १० मिनट तक। फिर मैं दूसरा सूत्र कहूँगा। पहले १० मिनट पूरा श्रम श्वास के साथ करें....।

गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें पूरी शक्ति लगायें। सिर्फ श्वास लेने के एक यन्त्र मात्र रह जायें, एक धौंकनी जो श्वास ले रही, श्वास छोड़ रही... एक-एक रोआं कँपने लगे...पूरी गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें...गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें...बस श्वास लेने के एक यन्त्र मात्र रह जायें...सारी शक्ति, सारा ध्यान श्वास लेने में ही लगा दें...गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें और भीतर देखते रहें—श्वास भीतर गयी, श्वास बाहर गयी। श्वास भीतर गयी, श्वास बाहर गयी। साक्षी रह जायें। देखते रहें—श्वास भीतर जा रही है, श्वास बाहर आ रही है। सारा ध्यान श्वास पर रखें और सारी शक्ति लगा दें। अब मैं दस मिनट के लिए चुप हो जाता हूँ। आप गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें और भीतर ध्यानपूर्वक देखते रहें—श्वास आयी, श्वास गयी....

दूसरे की जरा भी फिक्र न करें, अपनी फिक्र करें...पूरी शक्ति लगा दें। दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। भीतर देखते रहें—श्वास भीतर गयी, श्वास बाहर गयी....श्वास स्पष्ट दिखाई पड़ने लगेगी—यह श्वास भीतर गयी, श्वास बाहर गयी...पूरी शक्ति लगायें ताकि जिसे मैं शक्ति का कुण्ड कह रहा हूँ वहाँ से ऊर्जा उठनी शुरू हो जाय... यह पूरा वातावरण श्वास लेता हुआ मालूम पड़ने लगे....गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें....और गहरी, और गहरी, और गहरी। सारा व्यक्तित्व कँप जाय तूफान की तरह... गहरी श्वास लें और छोड़ें। गहरी श्वास लें और गहरी छोड़ें...गहरी श्वास, गहरी श्वास...(साधकों को अनेक प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाएँ होने लगीं और उनके मुँह से अनेक तरह की आवाजें भी निकलने लगीं...कुछ लोग ऊँऽऽऽ ऊँऽऽऽ ऊँऽऽऽ करने लगे)...भीतर देखते रहें, भीतर देखते रहें...श्वास आयी, श्वास गयी... श्वास आ रही, श्वास जा रही . अपने को जरा भी न बचायें, पूरी शक्ति लगायें...

श्वास के गहरे कम्पन भीतर किसी शक्ति को जगाने में शुरूआत करेंगे। गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें...भीतर कोई सोयी हुई ज्योति गहरी श्वास से जगेगी...गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें...एक यन्त्र मात्र रह जायें...श्वास भीतर जा रही है, श्वास बाहर जा रही है...पूरी शक्ति लगा दें... पूरी शक्ति लगा दें...पूरी शक्ति लगा दें...दूसरे सूत्र पर आने के पहले पूरी शक्ति लगायें...गहरी से गहरी श्वास लें और छोड़ें...सारा शरीर कँप जाय, सारी जड़ें कँप जाय, सारा व्यक्तित्व कँप जाय...एक आँधी की तरह हालत पैदा कर दें... श्वास ही रह जाय। पूरी शक्ति लगा दें...दूसरे सूत्र पर प्रवेश के पहले पूरी शक्ति लगायें...आपकी चरम स्थिति में ही दूसरे सूत्र में प्रवेश होगा... (चारों ओर साधकों को अनेक तरह की यौगिक क्रियाएँ हो रही हैं...तीव्रता के साथ

उन्हें बहुत से योगासन, प्राणायाम, अनेक तरह की मुद्राएँ और बंध आप ही आप हो रहे हैं...कई लोगों के मुंह से विचित्र तरह की आवाजें निकल रही है...आवाजें ॐऽऽऽऽ अऽऽऽऽऽऽऽऽऽ...आदि। आचार्यश्री का प्रोत्साहित करना जारी रहता है)।

गहरी ताकत लगायें। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास...अपने को बचायें मत, पूरा लगा दें। जरा भी न बचायें...भीतर सोयी हुई शक्ति को जगाना है। पूरी शक्ति लगा दें...गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास...(अनेक लोग रोने-चिल्लाने और उछलने-कूदने लगे)...छोड़ दें...पूरी ताकत लगायें। अपने को रोकें नहीं। भीतर सोयी हुई विद्युत् के जागने के लिए जरूरी है कि गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें...शरीर का रोआं-रोआं जीवन्त हो जाय। शरीर का रोआं-रोआं कंपने लगे...पूरी ताकत लगायें...गहरी श्वास, गहरी श्वास...(५ बार)...सारी ताकत लगा दें...पूरी ताकत लगायें...दो मिनट पूरी ताकत लगायें तो हम दूसरे सूत्र में प्रवेश करें...पूरा वातावरण चार्ज्ड (Charged) हो जाय। गहरी श्वास लें और छोड़ें। यह सारा वातावरण विद्युत् की लहरों से भर जायगा...गहरी श्वास लें और छोड़ें...गहरी लें, गहरी छोड़ें...पूरी शक्ति लगायें...गहरी श्वास...और गहरी...और गहरी...और गहरी...(६ बार)...(अनेक तरह की आवाजें आ रही हैं...लोग रो और चीख रहे हैं...एक व्यक्ति चिल्ला उठता है—महबूबाऽऽऽ...महबूबाऽऽऽ...) गहरी श्वास, गहरी श्वास...अब दूसरा सूत्र जोड़ना है। एक मिनट और गहरी श्वास लें। पूरी गहरी श्वास, पूरी गहरी श्वास ..और गहरी...और गहरी...और गहरी... किसी दूसरे पर ध्यान न दें। अपने भीतर सारी ताकत लगायें। और गहरी श्वास, और गहरी.. और गहरी, और गहरी...और दूसरा सूत्र जोड़ दें।

दूसरा चरण : दस मिनट तीव्र श्वास के साथ शारीरिक क्रियाओं को सहयोग

दूसरा सूत्र है, शरीर को पूरी तरह छोड़ देना। गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें। रोना आये, आने दें। आंसू निकले, बहने दें। हाथ-पैर कंपने लगें, कंपने दें। शरीर डोलने लगे, घूमने लगे, घूमने दें। शरीर खड़ा हो जाय, नाचने लगे, नाचने दें। पूरी गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें...शरीर को जो होता हो, होने दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास। अब १० मिनट तक गहरी श्वास जारी रहेगी और शरीर को बिलकुल ढीला छोड़ दें। जो मुद्राएँ बनती हों, बनें। जो आसन बनते हों, बनें। शरीर लोटता हो लोटे, नाचता हो नाचे। शरीर को छोड़ दें। सिर्फ द्रष्टा रह जायें। शरीर को जरा भी रोकें नहीं। गहरी श्वास...गहरी श्वास...गहरी श्वास और शरीर को बिलकुल छोड़ दें। शरीर को जो होता हो, होने दें। शरीर को जरा भी रोकें नहीं। अब

१० मिनट तक श्वास जारी रहेगी और शरीर को बिलकुल ढीला छोड़ दें। शरीर को जो होता है, होने दें। कोई संकोच न लें... गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास...आंसू आयें, आने दें। रोना निकले, निकले। जो भी होता हो होने दें...(चारों ओर साधकों का नाचना, कूदना, चिल्लाना और अनेक तरह की आवाजें निकालना...एक व्यक्ति के मुंह से लम्बे सायरन की सी आवाज निकलने लगी...आचार्यश्री का सुझाव चलता रहा)।

शरीर को बिलकुल छोड़ दें। शरीर अपने आप डोलने लगेगा, चक्कर खाने लगेगा। शक्ति भीतर उठेगी तो शरीर कंपित होगा, डोलेगा। भीतर से शक्ति उठेगी तो शरीर आन्दोलित होगा, उसे छोड़ दें। शरीर को बिलकुल छोड़ दें... गहरी श्वास जारी रखें और शरीर को छोड़ दें। शरीर को जो होता हो, होने दें। उसे जरा भी न रोकें। गहरी श्वास, और गहरी श्वास, और गहरी श्वास... (लोगों का चीखना, चिल्लाना, मुंह से अनेक तरह की आवाजें निकालना तथा शरीर में विविध गतियों का होना)...गहरी श्वास...गहरी श्वास...गहरी श्वास...और शरीर को छोड़ दें... ध्यान रहे, शरीर पर कहीं कोई रुकावट न रहे। जो शरीर को होता है, होने दें। उससे शक्ति के ऊपर पहुँचने में मार्ग बनेगा। छोड़ दें...शरीर को ढीला छोड़ दें। गहरी श्वास जारी रखें। उसे ढीला न करें...श्वास गहरी चले, शरीर को शिथिल छोड़ दें। शरीर को जो होता है, होने दें...बैठता हो बैठे, गिरता हो गिरे, खड़ा होता हो, हो जाय। जो होता है, होने दें। गहरी श्वास जारी रखें...(अनेक आवाजों के साथ लोगों का तेजी से उछलना, कूदना)।...गहरी, गहरी, और गहरी.. और गहरी...और गहरी... (कुछ लोगों का तीव्र आवाज में हुंकारना...अनेक शारीरिक प्रतिक्रियाएँ चलती रहीं)...

कुछ बचायें मत। सब दाँव पर लगा दें। पूरी शक्ति दाँव पर लगा दें। देखें, बचा रहे हैं। बहुत कुछ बचा लेते हैं। पूरा दाँव पर लगा दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास...शरीर को छोड़ें। जो होता है, होने दें...छोड़ें...हँसना आये, आ जाने दें। रोना आये, आ जाने दें। आवाज निकल जाये, निकल जाने दें। उसकी कोई चिन्ता न लें। जरा भी न रोकें। बस आप गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें...(लोगों का चीखना, चिल्लाना, नाचना, कूदना, हुँकार और चीत्कार करना)...छोड़ें...शक्ति उठ रही है। छोड़ें शरीर को। गहरी श्वास लें। गहरी श्वास लें...गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें। शरीर में कुछ जागेगा तो शरीर कंपित होगा, घूमेगा, नाच सकता है, रो सकता है, चिल्ला सकता है। छोड़ दें। शरीर को छोड़ दें। शरीर को बिलकुल छोड़ दें...जरा संकोच न लें...(अनेक साधकों के मुंह से पशुओं की आवाजें निकलना...रोना, चिल्लाना,

नाचना...मुंह से कुत्ते की आवाज...सिंह की गर्जना...हाथ-पैर पीटना...छट-पटाना)...।

गहरी श्वास, और गहरी...सारी शक्ति श्वास पर लगायें और शरीर को छोड़ दें। शरीर को जो होता है, होने दें। जरा भी संकोच नहीं। जरा भी न रोकें। दूसरे की फिक्र न लें। शरीर को छोड़ दें। शक्ति जगेगी तो बहुत-कुछ होगा। रोना आ सकता है, शरीर कंपेगा, अंग हिलेंगे, मुद्राएँ बनेंगी, शरीर खड़ा हो सकता है। छोड़ दें। जो होता है, होने दें। आप अकेले हैं और कोई नहीं है। छोड़ें। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास...एक दो मिनट गहरी मिहनत करें। तीसरे सूत्र पर जाने के पहले पूरी मिहनत लें। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास लें...(५ बार) और शरीर को छोड़ दें। जो होता है, होने दें। जरा भी नहीं रोकेंगे। देखें, कुछ मित्र रोक लेते हैं, रोकें मत, छोड़ें। छोड़ें, पूरी शक्ति लगायें और छोड़ें।...रोना है, पूरे मन से रोयें, रोकें नहीं। आवाज निकलती है, दबायें नहीं निकल जाने दें। शरीर खड़ा होता है, सँभालें न, हो जाने दें। नाचता है, नाचने दें। शरीर को पूरी तरह छोड़ दें, तभी सोयी हुई शक्ति अपना मार्ग बना सकती है। छोड़ें, गहरी श्वास लें। गहरी श्वास, गहरी श्वास...(५ बार)...और गहरी, और गहरी... (५ बार)...(कुछ लोगों का तीव्र हुंकार करना...अनेक लोगों का रोना... चीखना...नाचना...आदि)।

पूरी शक्ति लगायें। पूरी शक्ति लगायें...श्वास गहरी, और गहरी, और गहरी। कँप जाने दें पूरे व्यक्तित्व को, हिल जाने दें। जो होता है, होने दें... छोड़ दें। गहरी शक्ति लगायें, गहरी शक्ति लगायें। और गहरी श्वास लें, और गहरी श्वास लें। पूरे शरीर में विद्युत् दौड़ने लगेगी...छोड़ें...अन्तिम १ मिनट है। जोर से ताकत लगायें, तीसरे सूत्र में जाने के लिए। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास...और गहरी, और गहरी, और गहरी...पूरी ताकत लगायें ताकि तीसरे चरण में गति हो सके...और गहरी श्वास लें...पूरी शक्ति लगा दें और गहरी श्वास लें...और गहरी, और गहरी, और गहरी...और अब तीसरा सूत्र जोड़ दें।

तीसरा चरण : दस मिनट—तीव्र श्वास, शरीर की गतियाँ और मन में तीव्रता से लगातार 'मैं कौन हूँ ?' पूछना

श्वास गहरी जारी रहेगी, शरीर की गति जारी रहेगी और तीसरा सूत्र—भीतर पूरी शक्ति से पूछने लगें 'मैं कौन हूँ ?', मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ? भीतर पूछें...श्वास श्वास में एक ही प्रश्न भर जाये, मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ? श्वास तेजी से जारी रहे और भीतर पूछें, मैं कौन हूँ ? शरीर की कम्पन और गति जारी

रहे और भीतर पूछें, मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं के बीच में जगह न रहे। पूरी शक्ति लगायें. . .मैं कौन हूं ?. . .मैं कौन हूं ?. . .एक १० मिनट सारी शक्ति लगा दें। मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .(६ बार)। पूरी ताकत लगायें। प्राण भीतर एक ही गूंज से भर जाये—मैं कौन हूं, मैं कौन हूं. . .(५ बार) ताकत से पूछें। भीतर सारे प्राणों में एक गूंज उठने लगे—'मैं कौन हूं ?'. . .गहरी श्वास जारी रहे। शरीर को जो होना है, होने दें। और पूछें—मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ? एक १० मिनट पूरी शक्ति लगा दें, फिर १० मिनट के बाद हम विश्राम करेंगे। लगायें पूरी शक्ति. . .मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .(१४ बार कहा गया). . .(अनेक आवाजों के साथ साधकों की तीव्र प्रतिक्रियाएँ). . .।

पूरी शक्ति लगायें। जरा भी रोकें नहीं। जोर से भीतर पूछें—मैं कौन हूं, मैं कौन हूं. . .(५ आवृत्ति). . .एक आंधी उठा दें भीतर. . .मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .श्वास गहरी रहे, सवाल गहरा रहे—'मैं कौन हूं ?' शरीर को जो होता है होने दें। मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .(७ आवृत्ति)। यह सारा वातावरण पूछने लगे। ये रेत के कण-कण पूछने लगें, यह आकाश, ये वृक्ष, सब पूछने लगें—मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .पूरा वातावरण 'मैं कौन हूं ?' से भर जाय. . .मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .(चारों ओर से रोने की आवाजें. . .तीव्र शारीरिक हलचल. . .अनेक तरह की आवाजें). . .पूरी शक्ति लगायें, फिर विश्राम करना है. . .जितनी शक्ति लगायेंगे उतने ही विश्राम में प्रवेश होगा। जितनी ऊँचाई पर आंधी उठेगी, उतनी ही गहरे ध्यान में गति होगी। चौथा सूत्र ध्यान का होगा। आप पूरी शक्ति लगायें, क्लाइमेक्स (Climax), चरम पर। आप जितना कर सकते हो, लगा दें। बाद में कहने को न बचे कि मेरे पास कोई ताकत शेष रह गयी थी. . .मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .(४ आवृत्ति)। गहरी श्वास, गहरी श्वास. . .भीतर पूछें—मैं कौन हूं ?. . .(७ आवृत्ति)। पूरी ताकत से पूछें. . .बाहर भी निकल जाय, फिक्र न करें। भीतर पूछें—मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . . (७ आवृत्ति)। पूरी ताकत लगायें, पूरी ताकत लगायें. . .शरीर को जो होता है, होने दें। शरीर गिरे, गिर जाय। रोना निकले तो निकले। पूरी ताकत लगायें। मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .(७ आवृत्ति)।. . .(रोने-चिल्लाने की अनेक आवाजें)।

पूरी शक्ति लगायें। जरा भी रोकें नहीं। मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . . पूरी लगायें। रोकें नहीं, रोकें नहीं. . .मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .(१० आवृत्ति)। पूरी शक्ति लगा दें. . .(कुछ लोगों का रुक-रुक कर हुँकार करना. . . अनेक आवाजें. . .रोना,चीखना, चिल्लाना पशुओं की आवाजें मुंह से निकलना). . . पूरी शक्ति लगायें। ५ ही मिनट बचे हैं, पूरी शक्ति लगा दें. . .मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?. . .(५ आवृत्ति)। शरीर का रोआं-रोआं पूछने लगे. . . हृदय की

धड़कन-धड़कन पूछने लगे—मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?...पूरे क्लाइमेक्स पर (चरम पर) अपने को पहुंचा दें। आखिरी सीमा पर पहुंचा दें। बिलकुल पागल हो जायें...मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?...(६ आवृत्ति)। बिलकुल पागल हो जायें पूछने में। सारी शक्ति लगा दें...पूरी शक्ति लगायें। आखिरी, पूरी शक्ति लगायें। फिर तो विश्राम करना है, शक्ति पूरी लगायें। मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?...(७ आवृत्ति)...थका डालें अपने को...मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ? (५ आवृत्ति)। आंधी उठा दें। अब दो मिनट ही बचे हैं। पूरी शक्ति लगाये...मैं कौन हूं ?...मैं कौन हूं ?...शरीर को जो होता है, होने दें। शक्ति पूरी लगा दें। दो मिनट, तूफान उठा दें। मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?...(१२ आवृत्ति)। एक मिनट बचा है, पूरी शक्ति लगायें। फिर विश्राम करना है। मैं कौन हूं ? मैं कौन हूं ?...शरीर को जो होता है, होने दें। गहरी श्वास... गहरी श्वास...गहरी श्वास...(अनेक लोगों का तीव्र चीत्कार करना.. उछलना, कूदना...आदि)...मैं कौन हूं ?...मैं कौन हूं ?...शरीर कंपता है, शरीर नाचता है—छोड़ दें...मैं कौन हूं ?...मैं कौन हूं ?...(साधकों पर चल रही प्रतिक्रियाएँ बड़ी तेजी पर हैं)...चौथे सूत्र पर जाने के लिए पूरी शक्ति लगा दें... मैं कौन हूं ?...लगायें पूरी शक्ति...(लोगो का चीखना, चिल्लाना...अनेक क्रियाएँ करना)...लगायें पूरी शक्ति। जब तक आप लगायेंगे नही तब तक चौथे सूत्र पर नही चलेंगे...मैं कौन हूं ?...मैं कौन हूं ?...(८ आवृत्ति)...। पूरा डूब जायें...मैं कौन हूं ?...(१० आवृत्ति)। पूरी शक्ति लगा दे। मैं कौन हूं ?...फिर हम चौथे चरण पर चलेंगे...मैं कौन हूं ?...मैं कौन हूं ?... (८ आवृत्ति)।...(अनेक लोगों का हुंकार, चीत्कार...आदि करना)।...पूरी शक्ति लगायें। छोड़ें मत। जरा भी न बचायें, पूरी शक्ति लगायें...गहरी श्वास...गहरी श्वास...(५ आवृत्ति)।...और अब सब छोड़ दें। चौथे सूत्र पर चले जायें—विश्राम में।...

चौथा चरण : दस मिनट पूर्ण विश्राम—शान्त, शून्य, जागृत, मौन, प्रतीक्षारत

न पूछें, न गहरी श्वास लें। सब छोड़ दें। १० मिनट के लिए सिर्फ पड़े रह जायें। जैसे मर गये। जैसे हैं ही नहीं। सब छोड़ दें। १० मिनट सिर्फ छोड़ कर पड़े रह जायें, उसकी प्रतीक्षा में। छोड़ दें। न पूछें, न गहरी श्वास लें, बस पड़े रह जायें। सागर का गर्जन सुनाई पड़े, सुनते रहें। हवाएँ वृक्षो मे आवाज करें, सुनते रहें। कोई पक्षी शोर करे, सुनते रहें। १० मिनट जैसे मर गये...हैं ही नहीं...१० मिनट के लिए मर गये...(समुद्र की गर्जन है...पक्षियों की आवाजें... हवा की सरसराहट...कहीं-कहीं किसी का कभी-कभी सुबकना...हिचकी लेना...

कराहना. . .शेष सब शान्त है. . .साधकों का क्रमशः शान्त तथा निःशब्द होते चले जाना. . .किसी का बीच में दो-चार तीव्र श्वास-प्रश्वास लेना और शान्त हो जाना. . .किसी साधक का शरीर की स्थिति में कुछ परिवर्तन करना. . .फिर गहरी शान्ति तथा स्थिरता में चले जाना. . .)।

धीरे-धीरे अब आंख खोल लें। आँख न खुलती हो तो दोनों आँखों पर हाथ रख लें। जो लोग गिर गये हैं, उनसे उठते न बने तो धीरे-धीरे गहरी श्वास लें और फिर उठें। जल्दी कोई न उठे। झटके से कोई न उठे। बहुत आहिस्ता से उठ आयें। फिर भी किसी ने से उठते न बने तो थोड़ी देर लेटा रहे। धीरे-धीरे उठ कर बैठ जायें। आँख खोल लें. . .जिससे उठते न बने वह थोड़ी गहरी श्वास ले, फिर आहिस्ता से उठे।

दो-एक छोटी-सी सूचनाएँ हैं। दोपहर ३ से ४ मौन मे बैठेंगे। मैं यहाँ बैठूंगा। ३ बजने के ५ मिनट पहले ही आप सब आ जायें। मैं ठीक ३ बजे आ जाऊँगा। बिलकुल भी बात यहाँ न करें। एक शब्द भी प्रयोग न करें। चुपचाप आकर बैठ जायें। एक घण्टे मैं चुपचाप यहाँ बैठूंगा। उस बीच किसी के भी मन में लगे कि मेरे पास आना है तो वह दो मिनट के लिए आकर चुपचाप बैठ जाय और फिर अपनी जगह चला जाय। दो मिनट के बाद न रुके ताकि दूसरों को आना हो तो आ सकें। एक घण्टे चुपचाप बैठ कर प्रतीक्षा करें।

इस बीच अगर आप कहीं भी घूमने जाते हैं—सागर के तट पर या कहीं भी एकान्त में तो कही भी अकेले में बैठ कर ध्यान में ही रहें। यह तीन दिन सतत ध्यान में ही बिताने की कोशिश करें। हमारी सुबह की बैठक पूरी हुई।

●

३. (अ) तृतीय प्रवचन—प्रश्नोत्तर और ध्यान-प्रयोग

साधना-शिविर, नारगोल, रात्रि, दिनांक ३ मई, १९७०

●

ध्यान है महा-मृत्यु और महा-मृत्यु है द्वार अमृत का

१. कुण्डलिनी-जागरण से आत्म-रूपान्तरण

एक मित्र पूछ रहे हैं कि कुण्डलिनी-जागरण में खतरा है, तो कौन सा खतरा है ? और यदि खतरा है तो फिर उसे जागृत ही क्यों किया जाय ?

खतरा तो बहुत है। असल मे जिसे हमने जीवन समझ रखा है, उस पूरे जीवन को ही खोने का खतरा है। जैसे हम हैं, वैसे ही हम कुण्डलिनी जागृत होने पर न रह जायेंगे। सब कुछ बदलेगा, सब कुछ। हमारे सम्बन्ध, हमारी वृत्तियाँ हमारा संसार, हमने कल तक जो जाना था वह सब बदलेगा। उस सबके बदलने का ही खतरा है। लेकिन अगर कोयले को हीरा बनना हो, तो कोयले को कोयला होना तो मिटना ही पड़ता है।

खतरा बहुत है। कोयले के लिए खतरा है। अगर हीरा बनेगा तो कोयला मिटेगा, तो ही हीरा बनेगा। शायद यह आपको ख्याल में न हो कि हीरे और कोयले में जातिगत कोई फर्क नही है। कोयला और हीरा एक ही तत्त्व हैं। कोयला ही लम्बे अर्से में हीरा बन जाता है। हीरे और कोयले में रासायनिक तौर पर, केमिकली (Chemically) कोई बहुत बुनियादी फर्क नही है। लेकिन कोयला अगर हीरा बनना चाहे तो कोयला न रह सकेगा। कोयले को बहुत खतरा है। और ऐसे ही मनुष्य को भी खतरा है. परमात्मा होने के रास्ते पर कोई जाय तो मनुष्य तो मिटेगा।

नदी सागर की तरफ दौड़ती है। सागर से मिलने में उसे बड़ा खतरा है। नदी मिटेगी। नदी बचेगी नहीं। और खतरे का मतलब क्या होता है? खतरे का मतलब होता है मिटना। तो जिनकी मिटने की तैयारी है, वे ही केवल परमात्मा की तरफ यात्रा कर सकते हैं।

२. ध्यान है महामृत्यु और महामृत्यु है द्वार अमृत का

मौत इस बुरी तरह नहीं मिटाती जिस बुरी तरह ध्यान मिटा देता है। क्योंकि मौत तो सिर्फ एक शरीर से छुड़ाती है, और दूसरे शरीर से जुड़ा देती है। आप नहीं बदलते मौत में। आप वही के वही होते हैं, जो थे, सिर्फ वस्त्र बदल जाते हैं। इसलिए मौत बहुत बड़ा खतरा नहीं है। और हम सारे लोग तो मौत को बड़ा खतरा समझते हैं। तो ध्यान तो मृत्यु से भी ज्यादा बड़ा खतरा है। क्योंकि मृत्यु केवल वस्त्र छीनती है, ध्यान आपको ही छीन लेगा। ध्यान महा-मृत्यु है।

पुराने दिनों मे जो जानते थे, वे कहते ही यही थे कि ध्यान मृत्यु है, टोटल-डेथ (Total Death)। उसमें कपड़े नहीं बदलते, सब बदल जाता है। लेकिन सागर होना हो जिस सरिता को, उसे खतरा उठाना पड़ता है। खोती कुछ भी नहीं है। सरिता जब सागर में गिरती है तो खोती कुछ भी नही है, सागर हो जाती है। और कोयला जब हीरा बनता है तो खोता कुछ भी नही है, हीरा हो जाता है। लेकिन कोयला जब तक कोयला है तब तक तो उसे डर है कि कही खो न जाऊँ। और नदी जब तक नदी है तब तक भयभीत है कि कही खो न जाऊं। उसे क्या पता कि सागर से मिल कर खोयेगी नही, सागर हो जायगी।

वही खतरा आदमी को भी है। और वे मित्र पूछते है कि फिर खतरा हो तो खतरा उठाया ही क्यो जाय? यह भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। जितना खतरा उठाते हैं हम, उतने ही जीवित है और जितना खतरे से भयभीत होते हैं, उतने ही मरे हुए है। असल में मरे हुए को कोई खतरा नही होता है। एक तो बड़ा खतरा यह नही होता कि मरा हुआ मर नहीं सकता है, जीवित जो है वह मर सकता है। और जितना ज्यादा जीवित है, उतनी ही तीव्रता से मर सकता है।

एक पत्थर पड़ा है और पास में एक फूल खिला है। पत्थर कह सकता है फूल से कि तू ना-समझ है। क्यों खतरा उठाता है, फूल बनने का? क्योंकि साँझ न हो पायेगी और मुरझा जायेगा। फूल होने में बड़ा खतरा है, पत्थर होने में खतरा नहीं है। पत्थर सुबह भी पड़ा था, सांझ जब फूल गिर जायेगा तब भी वहीं होगा। पत्थर को ज्यादा खतरा नहीं है, क्योंकि पत्थर को ज्यादा जीवन नही है। जितना जीवन, उतना खतरा है।

इसलिए जो व्यक्ति जितना जीवन्त होगा, जितना लिविंग (Living)

होगा, उतना खतरे में है। ध्यान सबसे बड़ा खतरा है, क्योंकि ध्यान सबसे गहरे जीवन की उपलब्धि में ले जाने का द्वार है।

नहीं, वे मित्र पूछते हैं कि खतरा है तो जायें ही क्यों ? मैं कहता हूँ, खतरा है, इसलिए ही जायें। खतरा न होता तो जाने की बहुत जरूरत न थी। जहाँ खतरा न हो वहाँ जाना ही मत, क्योंकि वहाँ सिवाय मौत के और कुछ भी नहीं है। जहाँ खतरा हो वहाँ जरूर जाना, क्योंकि वहाँ जीवन की सम्भावना है। लेकिन हम सब सुरक्षा के प्रेमी हैं, सिक्योरिटी (Security) के प्रेमी हैं। इन-सिक्योरिटी (Insecurity) का, असुरक्षा का खतरा है तो भागते हैं, भयभीत होते हैं, डरते हैं, छिप जाते हैं। ऐसे ऐसे हम जीवन खो देते हैं।

जीवन को बचाने मे बहुत लोग जीवन खो देते हैं। जीवन को तो वे ही जी पाते हैं जो जीवन को बचाते नहीं, बल्कि उछालते हुए चलते हैं। खतरा तो है, इसीलिए जाना, क्योकि खतरा है। और बड़े से बड़ा खतरा है। गौरीशंकर की चोटी पर चढ़ने में इतना खतरा नहीं है। और न चाँद पर जाने में इतना खतरा है। अभी यात्री भटक गये थे। बड़ा खतरा है, लेकिन खतरा वस्त्रों को ही है। शरीर ही बदल सकते हैं। लेकिन ध्यान में खतरा बड़ा है, चाँद पर जाने से बड़ा है।

पर खतरे से हम डरते क्यों हैं ? यह कभी सोचा है कि हम खतरे से इतने डरते क्यों हैं ? सब तरह के खतरे से डरने के पीछे अज्ञान है। डर लगता है कि कहीं मिट न जायें, डर लगता है कि कही खो न जायें। डर लगता है कि कही समाप्त न हो जायें। तो बचाओ, सुरक्षा करो, दीवाल उठाओ, किला बनाओ, छिप जाओ, अपने को बचा लो, सब खतरों से।

मैंने सुनी है एक घटना। मैंने सुना है कि एक सम्राट ने एक महल बना लिया। पर उसमें सिर्फ एक ही द्वार रखा था कि कहीं कोई खतरा न हो। कोई खिड़की, दरवाजे से आ न जाये दुश्मन। एक ही दरवाजा रखा था, सब द्वार-दरवाजे बन्द कर दिये थे। मकान तो क्या था, कब्र बन गयी थी। एक थोड़ी सी कमी थी कि एक दरवाजा था। उससे कोई भीतर जाकर बाहर निकल सकता था। उस दरवाजे पर भी उसने हजार सैनिक रख छोड़े थे। पड़ोस का सम्राट उसे देखने आया था उसके महल को। सुना उसने कि सुरक्षा का कोई इन्तजाम कर लिया है मित्र ने, और ऐसी सुरक्षा का इन्तजाम किया है जैसा पहले कभी किसीने भी नहीं किया होगा, तो वह सम्राट देखने आया। देख कर प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि दुश्मन आ नहीं सकता है। खतरा कोई हो नहीं सकता है। ऐसा भवन मैं भी बना लूँगा।

फिर वे बाहर निकले। भवन के मालिक ने बड़ी खुशी से विदा दी। और

जब मिस्र-सम्राट अपने रथ पर बैठता था तो फिर उसने दुबारा-दुबारा कहा, बहुत सुन्दर बनाया है, बहुत सुरक्षित बनाया है। मैं भी ऐसा ही बना लूँगा। बहुत, बहुत धन्यवाद। लेकिन सड़क के किनारे बैठा एक भिखारी जोर से हँसने लगा। तो उस भवनपति ने पूछा कि पागल, तू क्यों हँस रहा है? तो उस भिखारी ने कहा कि मुझे आपके इस भवन में एक भूल दिखाई पड़ रही है। मैं यहाँ बैठा रहता हूँ, यह भवन बन रहा था तब से। तब से मैं सोचता हूँ कि कभी मौका मिल जाय आपसे कहने का तो बता दूँ। एक भूल है। तो सम्राट ने कहा कि कौन सी भूल है? उसने कहा कि यह जो एक दरवाजा है, यह खतरा है। इससे और कोई भला न आ सके, किसी दिन मौत भीतर चली आयेगी। ऐसा करो कि तुम भीतर हो जाओ और यह दरवाजा ही बन्द करवा दो। ईंटें जुड़वा दो। तुम बिलकुल सुरक्षित हो जाओगे। फिर मौत भी भीतर न आ सकेगी।

उस सम्राट ने कहा कि पागल, आने की जरूरत ही न रहेगी, क्योंकि अगर यह दरवाजा बन्द हुआ तो मैं मर ही गया। यह कब्र बन जायेगी। उस भिखारी ने कहा, कब्र तो बन ही गयी है सिर्फ एक दरवाजे की कमी रह गयी है। तो तुम भी मानते हो, उस भिखारी ने कहा कि एक दरवाजा बन्द हो जायगा तो यह मकान कब्र हो जायेगा? सम्राट ने कहा, मानता हूँ। उसने कहा कि जितने दरवाजे बन्द हो गये, उतनी ही कब्र हो गयी है। एक ही दरवाजा और रह गया है।

उस भिखारी ने कहा, कभी हम भी मकान में छिप कर रहते थे, फिर हमने देखा कि छिप कर रहना यानी मरना। और जैसा, तुम कहते हो कि एक दरवाजा और बन्द करेंगे तो कब्र हो जायेगी, तो मैंने अपनी सब दीवालें भी गिरवा दीं और मैं खुले आकाश के नीचे रह रहा हूँ। अब जैसा तुम कहते हो, सब बन्द होने से मौत हो जायेगी, सब खुले होने से जीवन हो गया है। मैं तुमसे कहता हूँ कि सब खुले होने में जीवन हो गया है। खतरा बहुत है, लेकिन सब जीवन हो गया है।

खतरा है इसीलिए निमन्त्रण है। इसीलिए जायें। और खतरा कोयले को है, हीरे को नहीं। खतरा नदी को है, सागर को नहीं। खतरा आपको है, आपके भीतर जो परमात्मा है, उसको नहीं। अब सोच लें। अपने को बचाना है, तो परमात्मा खोना पड़ता है। और परमात्मा को पाना है तो अपने को खोना पड़ता है।

जीसस से किसीने एक रात आकर पूछा था कि मैं क्या करूँ कि उस ईश्वर को पा सकूँ, जिसकी तुम बात करते हो? तो जीसस ने कहा कि तुम कुछ और मत करो। सिर्फ अपने को खो दो। अपने को बचाओ मत। उसने कहा, कैसी बातें कर रहे हैं आप। खोने से मुझे क्या मिलेगा? तो जीसस ने कहा, जो खोता है, वह अपने को पा लेता है और जो अपने को बचाता है वह सदा के लिए खो देता है।

कोई और सवाल हों तो हम बात कर लें।

३. कुण्डलिनी के विकास में एकमात्र अवरोध—प्यास की, अभीप्सा की, संकल्प की कमी

पूछा जा रहा है कि कुण्डलिनी जागृत हो तो कभी-कभी किन्हीं केन्द्रों पर अवरोध हो जाता है, वह रुक जाती है। तो उसके रुक जाने का कारण क्या है और गति देने का उपाय क्या है?

कारण कुछ और नहीं, सिर्फ एक है कि हम पूरी शक्ति से नहीं पुकारते और पूरी शक्ति से नहीं जगाते हैं। हम सदा ही अधूरे हैं और आंशिक हैं। हम कुछ भी करते हैं तो आधा-आधा ही, हाफ-हार्टेडली (Half-Heartedly) ही करते हैं। हम कुछ भी पूरा नहीं कर पाते हैं। बस इसके अतिरिक्त कोई और बाधा नहीं है। अगर हम पूरा कर पायें तो कोई बाधा नहीं है। लेकिन, हमारी पूरे जीवन में सब-कुछ आधा करने की आदत है। हम प्रेम भी करते हैं तो आधा करते हैं और जिसे प्रेम करते है उसे घृणा भी करते हैं। बहुत अजीब-सा मालूम पड़ता है कि जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे घृणा भी करते हैं। और जिसे हम प्रेम करते हैं और जिसके लिए जीते हैं, उसे हम कभी मार डालना भी चाहते है। ऐसा प्रेमी खोजना कठिन है जिसने अपनी प्रेयसी के मरने का विचार न किया हो।

ऐसा हमारा मन है, आधा-आधा है। और विपरीत आधा चल रहा है। जैसे हमारे शरीर में बायां और दायां पैर है, वे दोनों एक ही तरफ चलते हैं, लेकिन हमारे मन के बायें दायें पैर उलटे चलते हैं। वही हमारा तनाव है। हमारे जीवन की अशान्ति यह है कि हम हर जगह आधे-आधे हैं।

अब एक युवक मेरे पास आया और उसने मुझे कहा कि मेरा २० साल से आत्म-हत्या करने का विचार चल रहा है। तो मैंने कहा, 'पागल, कर क्यों नहीं लेते हो? २० साल बहुत लम्बा वक्त है। २० साल से आत्म-हत्या का विचार कर रहे हो तो कब करोगे? मर जाओगे पहले ही, फिर करोगे?' वह बहुत चौंका। उसने कहा कि 'आप क्या कहते हैं? मैं तो आया था कि आप मुझे समझायेंगे कि आत्म-हत्या मत करो।' मैंने कहा, 'मुझे समझाने की जरूरत? २० साल से तुम कर ही नहीं रहे हो!' उसने कहा कि 'जिसके पास भी मैं गया वही मुझे समझाता है कि ऐसा कभी मत करना।' मैंने कहा, 'उन समझाने वालों की वजह से ही न तो तुम जी पा रहे हो, न तो तुम मर पा रहे हो। आधे-आधे हो गये हो। या तो मरो या जीओ। जीना हो तो फिर आत्म-हत्या का ख्याल छोड़ो और जी लो। मरना हो तो मर जाओ, जीने का ख्याल छोड़ दो।'

वह दो-तीन दिन मेरे पास रहा। रोज मैं उससे यही कहता रहा कि अब

तू जीवन का ख्याल मत करना। अगर २० साल से सोचा है मरने का तो मर ही जा। तीसरे दिन उसने मुझसे कहा, 'आप कैसी बातें कर रहे हैं ? मैं जीना चाहता हूँ।' तो मैंने कहा, 'मैं कब कहता हूँ कि तुम मरो। तुम ही पूछते थे कि मैं २० साल से मरना चाहता हूँ !'

अब यह थोड़ा सोचने जैसा मामला है कि कोई आदमी २० साल तक मरने का सोचे तो यह आदमी मरा तो है ही नहीं, जी भी नहीं पाया है। क्योंकि जो मरने का सोच रहा है, वह जियेगा कैसे ? हम आधे-आधे हैं और हमारे पूरे जीवन में आधे-आधे होने की आदत है। न हम मित्र बनते किसी के, न हम शत्रु बनते हैं। हम कुछ भी पूरे नहीं हो पाते हैं। और आश्चर्य है कि अगर हम पूरे शत्रु भी हो तो वह आधे मित्र होने से ज्यादा आनन्ददायी है।

असल में कुछ भी पूरा होना आनन्ददायी है, क्योंकि जब भी व्यक्तित्व पूरा का पूरा उतरता है तो शरीर में सोयी हुई सारी शक्तियाँ साथ हो जाती हैं। और जब व्यक्तित्व आपस मे बँट जाता है, स्प्लिट (Split) हो जाता है, दो टुकड़े हो जाता है, तो हम आपस में भीतर ही लड़ते रहते हैं। अब जैसे कुण्डलिनी जागृत न हो, बीच में अटक जाय तो उसका केवल एक मतलब है कि आपके भीतर जगाने का भी ख्याल है और जग जाय इसका डर भी है।

आप चले जा रहे हैं मन्दिर की तरफ और मन्दिर मे प्रवेश की हिम्मत भी नहीं है। दोनों काम कर रहे हैं। आप ध्यान की तैयारी भी कर रहे हैं और ध्यान में उतरने का, ध्यान में छलाँग लगाने का साहस भी नहीं जुटा पाते हैं। तैरने का मन है, नदी के किनारे पहुँच गये हैं और तट पर खड़े होकर सोच रहे हैं। तैरना भी चाहते हैं, पानी मे भी नहीं उतरना चाहते हैं। इरादा कुछ ऐसा है कि कहीं कमरे मे गद्दा-तकिया लगाकर, उस पर लेट कर हाथ-पैर फड़फड़ा कर तैरने का मजा मिल जाय तो ले लें। नहीं, पर गद्दे-तकिये पर तैरने का मजा नहीं मिल सकता है। तैरने का मजा तो खतरे के साथ जुड़ा है।

आधापन अगर है तो कुण्डलिनी मे बहुत बाधा पड़ेगी। इसलिए अनेक मित्रो को अनुभव होगा कि कहीं चीज जाकर रुक जाती है। रुक जाती है तो एक ही बात ध्यान में रखना और कोई बहाने मत खोजना, बहुत तरह के बहाने हम खोजते है कि पिछले जन्म का कर्म बाधा पड़ रहा होगा, भाग्य बाधा पड़ रहा होगा, अभी समय नहीं आया होगा। हम ये सब बातें सोचते हैं। इनमें से कोई भी बात सच नहीं है। सच सिर्फ एक बात है कि आप पूरी तरह जगाने में नहीं लगे हैं। अगर कहीं भी, कोई अवरोध आता हो तो समझना कि छलाँग पूरी नहीं ले रहे हैं और ताकत से कूदना। अपने को पूरा लगा देना। अपने को समग्री-भूत छोड़ देना। तो किसी केन्द्र पर, किसी चक्र पर कुण्डलिनी रुकेगी नहीं।

वह तो एक क्षण में भी पार कर सकती है पूरी यात्रा । वर्षों भी लग सकते हैं । हमारे अधूरेपन की बात है । अगर हमारा मन पूरा हो तो अभी एक क्षण में भी सब हो सकता है ।

कहीं भी रुके तो समझना कि हम पूरे नहीं हैं । तो पूरा साथ देना । और शक्ति लगा देना । शक्ति का अनन्त सामर्थ्य हमारे भीतर है । हमने कभी किसी काम में कोई बड़ी ताकत नहीं लगायी है । हम सब ऊपर-ऊपर जीते हैं । हमने अपनी जड़ों को कभी पुकारा ही नहीं है । इसीलिए बाधा पड़ सकती है । और ध्यान रहे कि और कोई बाधा नहीं है ।

४. आध्यात्मिक प्यास का अभाव

एक मित्र पूछते हैं कि जन्म के साथ ही भूख होती है, नींद होती है, प्यास होती है, लेकिन प्रभु की प्यास तो नहीं होती है ?

इस बात को थोड़ा समझ लेना उपयोगी है । प्यास तो प्रभु की भी जन्म के साथ ही होती है । लेकिन पहचानने में बड़ा समय लग जाता है । जैसे, उदाहरण के लिए : बच्चे सभी सेक्स के साथ पैदा होते हैं, लेकिन पहचानने में १४ साल लग जाते हैं । काम की, सेक्स की भूख तो जन्म के साथ ही होती है, लेकिन १४-१५ साल लग जाते हैं, उसकी पहचान आने में । और पहचान आने में १४-१५ साल क्यों लग जाते हैं ? प्यास तो भीतर होती है, लेकिन शरीर तैयार नहीं होता है । १४ साल में शरीर तैयार होता है । तब प्यास जग पाती है । अन्यथा सोयी पड़ी रहती है ।

परमात्मा की प्यास भी जन्म के साथ ही होती है, लेकिन शरीर तैयार नहीं हो पाता है । जब भी शरीर तैयार हो जाता है तब ही तत्काल जग जाती है । तो कुण्डलिनी शरीर की तैयारी है । लेकिन आप कहेंगे कि यह अपने आप क्यों नहीं हो जाता है ? कभी-कभी अपने आप होता है । लेकिन इसे समझ लें ।

मनुष्य के विकास में कुछ चीजें, पहले व्यक्तियों को होती हैं, फिर समूह को होती हैं । जैसे, उदाहरण के लिए—ऐसा प्रतीत होता है कि पूरे वेद को पढ़ जायें, ऋग्वेद को पूरा देख जायें तो ऐसा नहीं लगता कि ऋग्वेद में सुगन्ध का कोई बोध है । ऋग्वेद के समय के जितने शास्त्र हैं, सारी दुनिया में, उनमें कहीं भी सुगन्ध का कोई भाव नहीं है । फूलों की बात है, लेकिन सुगन्ध की बात नहीं है । तो जो जानते हैं वे कहते हैं कि ऋग्वेद के समय तक आदमी की जो सुगन्ध की प्यास है वह जाग नहीं पायी थी । फिर कुछ लोगों को जागी । अभी भी सुगन्ध मनुष्यों में बहुत कम लोगों को अर्थ रखती है, बहुत कम लोगों में । अभी सारे लोगों में सुगन्ध की इन्द्रिय पूरी तरह जाग नहीं पायी है । जितनी विकसित कौमें हैं, उतनी ज्यादा जाग गयी हैं । जितनी अविकसित कौमें हैं, उतनी कम जागी है । कुछ

तो कबीले अभी भी दुनिया में ऐसे हैं जिनके पास सुगन्ध के लिए कोई शब्द नहीं है। पहले कुछ लोगों को सुगन्ध का भाव जागा, फिर उसने धीरे-धीरे गति की और वह कलेक्टिव-माइण्ड (Collective Mind), सामूहिक मन का हिस्सा बना।

और भी बहुत-सी चीजें धीरे-धीरे जागी हैं, जो एक दिन था कि नहीं थीं। रंग का बोध भी बहुत हैरान करने वाला है। अरस्तू ने अपनी किताबों में तीन रंगों की बात की है सिर्फ। अरस्तू के जमाने तक यूनान में लोगों को तीन रंगों का ही बोध होता था, बाकी रंगों का कोई बोध नहीं होता था। फिर धीरे-धीरे बाकी रंग दिखाई पड़ने शुरू हुए। और अभी भी जितने रंग हमें दिखाई पड़ते हैं, उतने ही रंग हैं, ऐसा मत समझ लेना। रंग और भी हैं, लेकिन अभी बोध नहीं जगा है। इसलिए कभी एल एस डी या मैस्केलीन या भाँग या गाँजा के प्रभाव में बहुत-से और रंग दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं जो हमने कभी भी नहीं देखे हैं। और रंग हैं अनन्त। उन रंगों का बोध धीरे-धीरे जागा है। अभी भी बहुत लोग हैं जो कलर-ब्लाइण्ड (Colour-blind) हैं। यहाँ अगर हजार मिल जायें हों तो कम-से-कम ५० आदमी ऐसे निकल आयेंगे जो किसी रंग के प्रति अन्धे हैं। उनको खुद पता नहीं होगा, उनको ख्याल नहीं होगा। कुछ लोगों को हरे और पीले रंग में कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता है। साधारण लोगों को ही नहीं, कभी-कभी बड़े-बड़े, असाधारण लोगों को भी। बर्नार्ड शॉ को खुद कोई फर्क पता नहीं चलता था, हरे और पीले रंग में। और साठ साल की उम्र तक उन्हें पता नहीं चला कि उन्हें पता नहीं चलता है। वह तो पता चला जब साठवीं वर्ष-गाँठ पर किसी ने एक सूट भेंट किया उनको। वह हरे रंग का था। सिर्फ टाई देना भूल गया था, जिसने भेंट की थी। तो बर्नार्ड शा बजार टाई खरीदने गये। उन्होंने पीले रंग की टाई खरीदनी चाही तो उस दूकानदार ने कहा कि अच्छा न मालूम पड़ेगा, इस हरे सूट में यह पीली टाई। उन्होंने कहा कि यह क्या कह रहे हैं? बिलकुल दोनों एक-से हैं। उस दूकानदार ने कहा कि एक-से हैं? आप मजाक तो नहीं कर रहे हैं, क्योंकि बर्नार्ड शॉ आमतौर से मजाक करते थे। उसने कहा, मजाक तो नहीं कर रहे हैं, इन दोनों को एक रंग कह रहे हैं आप? यह पीला है और यह हरा है। शॉ ने कहा, दोनों हरे हैं। पीला यानी? तब बर्नार्ड शॉ ने आँख की जाँच करवायी तो पता चला कि पीला रंग उन्हें दिखाई नहीं पड़ता है। पीले रंग के प्रति वे अन्धे हैं।

एक जमाना था कि पीला रंग किसी को दिखाई नहीं पड़ता था। पीला रंग मनुष्य की चेतना में नया रंग है। बहुत-से रंग नये आये हैं, मनुष्य की चेतना में। संगीत सभीको अर्थपूर्ण नहीं है, कुछ को अर्थपूर्ण है। उसकी बारीकियों

में कुछ लोगों को बड़ी गहराइयाँ हैं। कुछ के लिए वह सिर्फ सिर पीटना है। अभी उनके लिए स्वर का बोध गहरा नहीं हुआ है। अभी मनुष्य-जाति के लिए संगीत सामूहिक अनुभव नहीं बना है। और परमात्मा तो बहुत ही दूर. आखिरी, अतीन्द्रिय अनुभव है। इसलिए बहुत थोड़े-से लोग जाग पाते हैं। लेकिन सबके भीतर जागने की क्षमता जन्म के साथ है।

लेकिन जब भी हमारे बीच कोई एक आदमी हमारे बीच जाग जाता है, तो उसके जागने के कारण भी हममें से बहुतों की प्यास जो सोयी हो वह जागना शुरू हो जाती है। जब कोई एक कृष्ण हमारे बीच उठ आता है तो उसे देख कर भी, उसकी मौजूदगी में भी हमारे भीतर जो सोया है, वह जागना शुरू हो जाता है।

५. धर्म-विरोधी मूर्छित समाज

हम सबके भीतर है, जन्म के साथ ही वह प्यास भी, वह भूख भी, लेकिन वह जाग नहीं पाती है। बहुत कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यही है कि जो बड़ी भीड़ है हमारे चारों तरफ, उस भीड़ में वह प्यास कहीं भी नहीं है। और अगर किसी व्यक्ति मे उठती भी है तो उसे दबा लेता है, क्योंकि वह उसे पागलपन मालूम पड़ती है। चारो तरफ जहाँ सारे लोग धन की प्यास से भरे हों, यश की प्यास से भरे हों, वहाँ धर्म की प्यास पागलपन मालूम पड़ती है। और चारो तरफ के लोग संदिग्ध हो जाते हैं कि कुछ दिमाग तो नहीं खराब हो रहा है। आदमी अपने को दबा लेता है। उठ नही पाती, जग नहीं पाती, सब तरफ से दमन हो जाता है। और जो हमने दुनिया बनायी है, उस दुनिया में हमने परमात्मा के लिए जगह नही छोड़ी है, क्योंकि जैसा मैंने कहा कि बड़ा खतरनाक है परमात्मा के लिए जगह छोड़ना—हमने वह जगह नहीं छोड़ी है।

पत्नी डरती है कि कही पति के जीवन मे परमात्मा न आ जाय क्योंकि परमात्मा के आने से पत्नी तिरोहित भी हो सकती है। पति डरता है कि कहीं पत्नी के जीवन में परमात्मा न आ जाय, क्योंकि अगर परमात्मा आ गया तो पति-परमात्मा का क्या होगा? यह 'सब्स्टीट्यूट' (Substitute) परमात्मा कहाँ जायेगा? उसकी जगह कहाँ होगी? हमने जो दुनिया बनायी है, उसमें परमात्मा को जगह नहीं रखी है। और परमात्मा वहाँ डिस्टर्बिंग (Disturbing) असुविधाजनक साबित होगा। वह अगर वहाँ आता है तो गड़बड़. होगी। गड़बड़ सुनिश्चित है। वहाँ कुछ-न-कुछ अस्त-व्यस्त होगा। वहाँ नींद टूटेगी, कहीं कुछ होगा, कहीं कुछ चीजें बदलनी पड़ेगी। हम ठीक वही तो नहीं रह जायेंगे, जो हम थे। तो इसलिए उसे हमने घर के बाहर छोड़ा है। लेकिन कहीं जग ही न जाय उसकी प्यास, इसलिए हमने झूठे परमात्मा अपने घरों में बना लिये हैं कि अगर किसीको जगे भी तो यह रहे भगवान्। एक पत्थर की मूर्ति

खड़ी है, उसकी पूजा करो। ताकि असली भगवान् की तरफ प्यास न चली जाय। तो 'सब्स्टीट्यूट-गॉड्स' (Substitute gods) हमने पैदा किये हुए हैं। यह आदमी की सबसे बड़ी कनिंगनेस (Cunningness), सबसे बड़ी चालाकी, सबसे बड़ा षडयन्त्र है। परमात्मा के खिलाफ जो बड़े से बड़ा षडयन्त्र है, वह आदमी के बनाये हुए परमात्मा है।

इनकी वजह से जो प्यास उसकी खोज में जाती वह उसकी खोज में न जाकर मन्दिरों और मस्जिदों के आस-पास भटकने लगती है, जहाँ कुछ भी नहीं है। और जब हमें कुछ भी नहीं मिलता है तो आदमी को लगता है कि इससे तो अपना घर ही बेहतर है। इस मन्दिर और मस्जिद मे क्या रखा है ? तो मन्दिर और मस्जिद हो आता है, घर लौट आता है। उसे पता नहीं है कि ये मन्दिर और मस्जिद बहुत धोखे की ईजादें हैं।

मैंने तो सुना है कि एक दिन शैतान ने लौट कर अपनी पत्नी को कहा कि अब मैं बिलकुल बेकार हो गया हूँ, अब मुझे कोई काम नहीं रहा है। उसकी पत्नी बहुत हैरान हुई, जैसा कि पत्नियाँ हैरान होती हैं अगर कोई पति बेकार हो जाय तो। तो उसकी पत्नी ने कहा कि आप और बेकार ! लेकिन आप कैसे बेकार हो गये ? आपका काम तो शाश्वत है। **लोगों को बिगाड़ने का काम** तो सदा चलेगा। यह बन्द तो होने वाला नहीं है। यह कैसे बन्द हो गया ? आप कैसे बेकार हो गये ? उस शैतान ने कहा, मैं बेकार बड़ी मुश्किल से हो गया हूँ, बड़े अजीब ढंग से हो गया हूँ। **अब मेरा जो काम था वह मन्दिर और मस्जिद, पण्डित और पुजारी कर लेते हैं।** मेरी कोई जरूरत नहीं है। आखिर भगवान से ही लोगों को भटकाता था। अब भगवान की तरफ कोई जाता ही नहीं है। बीच में मन्दिर खड़े हैं, वहीं भटक जाता है। हम तक कोई आता ही नहीं मौका कि हम भगवान् से भटकायें।

परमात्मा की प्यास तो है। और बचपन से ही हम परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ सिखाना शुरू कर देते हैं, उससे नुकसान होता है। जानने के पहले यह भ्रम पैदा होता है कि जान लिया है। हर आदमी परमात्मा को जानता है। प्यास पैदा ही नहीं हो पाती और हम पानी पिला देते हैं। उससे ऊब पैदा हो जाती है, और घबड़ाहट पैदा हो जाती है। **परमात्मा अरुचिकर हो जाता है, हमारी शिक्षाओं के कारण।** कोई रुचि नहीं रह जाती है। और दिमाग में ठूँस देते हैं, दिमाग को स्टफ (Stuff) कर देते हैं, गीता, कुरान, बाइबिल से। महात्माओं, साधुओं और सन्तों से, वाणियों से इस बुरी तरह सिर भर देते हैं कि मन होता है कि कब इससे छुटकारा हो। तो परमात्मा तक जाने का सवाल ही नहीं उठता है।

हमने जो व्यवस्था की है वह ईश्वर-विरोधी है। इसलिए प्यास बड़ी मुश्किल हो गयी है और अगर कभी उठती है तो आदमी फौरन पागल मालूम होता है। तत्काल पता चलता है कि यह आदमी पागल हो गया है। क्योंकि वह हम सबसे भिन्न हो जाता है। वह और ढंग से जीने लगता है। वह और ढंग से श्वास लेने लगता है। उसका सब तौर-तरीका बदल जाता है। वह हमारे बीच का आदमी नहीं रह जाता है। वह स्ट्रेंजर (Stranger) हो जाता है। वह अजनबी हो जाता है।

हमने जो दुनिया बनायी है वह ईश्वर-विरोधी है। बड़ा पक्का षड़यन्त्र है। और अभी तक हम सफल ही रहे हैं। अभी तक हम सफल ही हुए चले जा रहे हैं। हमने ईश्वर को बिलकुल बाहर कर दिया है। उसकी ही दुनिया से हमने उसे बिलकुल बाहर किया हुआ है। और हमने एक जाल बनाया है जिसके भीतर उसके घुसने के लिए हमने कोई दरवाजा नहीं छोड़ा है। तो प्यास कैसे जगे? लेकिन प्यास भले न जगे, प्यास का भले पता न चले, लेकिन तड़पन भीतर और गहरी घुमनी रहती है, जिन्दगी भर। यश मिल जाता है, फिर भी लगता है कि कुछ खाली रह गया, धन मिल जाता है और लगता है कि कुछ अन-मिला रह गया, प्रेम मिल जाता है और लगता है कि कुछ छूट गया है, नहीं मिला, नहीं पाया जा सका। वह क्या है जो हर बार छूट गया मालूम पड़ता है?

६. आध्यात्मिक घुटन और दिशा-शून्य जीवन-व्यवस्था

वह हमारे भीतर की एक प्यास है। जिसको हमने पूरा होने से, बढ़ने से, जागने से, सब तरह से रोका है। वह प्यास जगह-जगह खड़ी हो जाती है। हमारे हर रास्ते पर प्रश्न-चिह्न बन जाती है। और वह कहती है, इतना धन पा लिया, लेकिन कुछ मिला नहीं है। इतना यश पा लिया, लेकिन कुछ मिला नहीं है। सब पा लिया, लेकिन खाली हो तुम। **वह प्यास जगह-जगह से हमें कोंचती है, कुरेदती है, जगह-जगह से छेदती है। लेकिन हम उसको झुठला कर फिर हम अपने काम में और जोर से लग जाते हैं, ताकि वह आवाज सुनाई न पड़े।** इसलिए धन कमाने वाला और जोर से कमाने लगता है, और जोर से कमाने लगता है। यश की दौड़ वाला और तेजी से दौड़ने लगता है। वह अपने कान बन्द कर लेता है कि सुनाई न पड़े कि कुछ भी नहीं मिला। हमारा सारा का सारा इन्तजाम प्यास को जगने से रोकता है। अन्यथा एक दिन जरूर पृथ्वी पर ऐसा होगा कि जैसे बच्चे भूख और प्यास लेकर, सेक्स (यौन) लेकर पैदा होते हैं, ऐसे ही वे डिव्हाइन-थर्स्ट (Divine-Thirst), परमात्मा की प्यास लेकर भी पैदा होते हुए मालूम पड़ेंगे। **वह दुनिया कभी बन सकती है। बनाने जैसी है।** कौन बनाये उसे? वहुत प्यासे लोग जो परमात्मा को खोजते हैं, उस दुनिया

को बना सकते है। लेकिन, जैसा अब तक है, इस सारे षडयन्त्र को तोड देने की जरूरत है, तब ऐसा हो सकता है।

७. वंचना—आध्यात्मिक प्यास के लिए कृत्रिम उपाय की

प्यास तो है। लेकिन आदमी कृत्रिम उपाय कर ले सकता है। अब चीन में हजारो साल तक स्त्रियो के पैर में लोहे का जूता पहनाया जाता था, ताकि पैर छोटा रहे। छोटा पैर सौन्दर्य का चिह्न था। जितना छोटा पैर हो, उतने बड़े घर की लड़की थी। तो स्त्रियाँ चल ही नही सकती थीं, पैर इतने छोटे रह जाते थे। शरीर तो बड़े हो जाते थे, पैर छोटे रह जाते थे। वे चल ही न पाती थीं। जो स्त्री बिलकुल ही न चल पाती वह उतने ही शाही खानदान की स्त्री कहलाती, क्योंकि गरीब की स्त्री तो अफोर्ड (Afford) नही कर सकती थी। उसको तो पैर बड़े ही रखना पड़ता था। उसको तो चलना पडता था, काम करना पड़ता था। सिर्फ शाही स्त्रियाँ चलने से बच सकती थी। तो कन्धों का, हाथों का सहारा लेकर चलती थी। अपग हो जाती थी, लेकिन समझा जाता था कि सौन्दर्य है। आज चीन की कोई लड़की तैयार न होगी। कहेगी, पागल थे वे लोग। लेकिन हजारो साल तक यह चला।

जब कोई चीज चलती है तो पता नही चलता। जब हजारो लोग करते हैं, इकट्ठी भीड करती है तब पता नही चलता है। जब सारी भीड़ पैरो मे जूते पहना रही हो लोहे के, तो सारी लडकियाँ पहनती थीं। जो नही पहनती, लोग उसको कहते कि तू पागल है। उसे अच्छा, सुन्दर पति न मिलता, सम्पन्न परिवार न मिलता, वह दीन और दरिद्र समझी जाती थी। और जहाँ भी उसका पैर दीख जाता वही वह गँवार समझी जाती थी—अशिक्षित, असस्कृत, क्योंकि पैर इतना बड़ा है। बड़े पैर सिर्फ गँवार के ही चीन मे होते थे। सुसस्कृत का पैर तो छोटा होता था। तो हजारो साल तक इस ख्याल ने वहाँ की स्त्रियो को पगु बनाये रखा। ख्याल भी नही आया कि यह हम क्या पागलपन कर रहे है? लेकिन वह चला। जब टूटा तब पता चला कि यह तो पागलपन था।

ऐसे ही सारी मनुष्यता का मस्तिष्क पगु बनाया गया है, ईश्वर की दृष्टि से। **ईश्वर की तरफ जाने की जो प्यास है, उसे सब तरफ से काट दिया जाता है। उसको पनपने के मौके नहीं दिये जाते।** और कभी उठती भी हो तो झूठे पूरक, सब्स्टीट्यूट (Substitute) खड़े कर दिये जाते है और बता दिता जाता है। परमात्मा चाहिए? चले जाओ मन्दिर। परमात्मा चाहिए, पढ़ लो गीता, पढ़ लो कुरान। पढ़ो वेद, मिल जायेगा। वहाँ कुछ भी नहीं मिलता है, शब्द मिलते हैं। मन्दिर में पत्थर मिलते हैं। तब आदमी सोचता है कि शायद अपनी प्यास ही झूठी रही होगी। और फिर प्यास ऐसी चीज है कि आयी और

गयी। जब तक आप मन्दिर गये तब तक प्यास चली गयी। जब तक आपने गीता पढ़ी तब तक प्यास चली गयी। फिर धीरे-धीरे प्यास कुण्ठित हो जाती है। और जब किसी प्यास को तृप्त होने का मौका न मिले तो वह मर जाती है। वह धीरे धीरे मर जाती है। अगर आप तीन दिन भूखे रहे तो बहुत जोर से भूख लगेगी, पहले दिन। दूसरे दिन और जोर से लगेगी। तीसरे दिन और जोर से लगेगी। चौथे दिन कम हो जायेगी, पाँचवें दिन और कम हो जायेगी, छठवें दिन और कम हो जायेगी। पन्द्रह दिन के बाद भूख लगनी बन्द हो जायेगी। महीने भर भूखे रह जायें, फिर पता ही नहीं चलेगा कि भूख क्या है। कमजोर होते चले जायेंगे, क्षीण होते चले जायेंगे, रोज वजन कम होता चला जायेगा, अपना माँस पचा जायेंगे, लेकिन भूख लगनी बन्द हो जायेगी। क्योंकि अगर महीने भर तक भूख को मौका न दिया भरने का, तो वह मर जायेगी।

मैंने सुना है कि काफ्का ने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। उसने एक कहानी लिखी कि एक बड़ा सर्कस है। और उस बड़े सर्कस में बहुत तरह के लोग हैं। और बहुत तरह के खेल-तमाशे है। उस सर्कस वाले ने एक उपवास, फास्ट (Fast) करने वाले को भी इकट्ठा कर लिया है। वह उपवास करने का प्रदर्शन करता है। उसका भी एक झोपड़ा है। सर्कस में और बहुत चीजों को लोग देखने आते है, जगली जानवरो को देखते हैं, अजीब-अजीब जानवर हैं। इस अजीब आदमी को भी देखते हैं। यह महीनो बिना खाने के रह जाता है। तीन-तीन महीने तक बिना खाने के रह कर उसने दिखलाया है। निश्चित ही, उसको भी लोग देखने आते है। लेकिन कितनी बार देखने को आयें? एक गाँव मे सर्कस ६-७ महीने रुका। महीने-पन्द्रह दिन लोग उसको देखने आये। फिर ठीक है, अब भूखा रहता है तो रहता है, कब तक लोग देखने आयेंगे ?

सर्कस हैं, साधु-संन्यासी है, इसलिए इनको गाँव बदलते रहना चाहिए। एक ही गाँव में ज्यादा दिन रहें तो बहुत मुश्किल हो जाय। कितने दिन तक लोग आयेंगे? इसलिए दो-तीन दिन में गाँव बदल लेने से ठीक होता है। दूसरे गाँव में फिर लोग आ जाते है।

उस गाँव में सर्कस ज्यादा दिन रुक गया। लोगों ने उसको देखने आना बन्द कर दिया। उसकी झोपडी की फिक्र ही भूल गये। वह इतना कमजोर हो गया था कि मैनेजर को जाकर खबर भी नही कर पाया। उठ भी नही सकता था। पड़ा रहा, पड़ा रहा। बड़ा सर्कस था, लोग भूल ही गये। ४-५ महीने हो गये तब अचानक एक दिन पता चला कि भई, उस आदमी का क्या हुआ जो उपवास किया करता था? तो मैनेजर भागा कि वह आदमी मर न गया हो। उसका तो पता ही नही है। जाकर देखा तो वह जिस घास की गठरी में पड़ा

रहता था वहाँ घास ही घास है। आदमी तो था नहीं। आवाज दी, उसकी तो आवाज नहीं निकलती थी। घास को अलग किया तो बिलकुल हड्डी-हड्डी रह गया था। आँखें उसकी जरूर थी। मैनेजर ने पूछा कि भाई, हम भूल ही गये थे, क्षमा करो, लेकिन तुम कैसे पागल हो गये हो, लोग नहीं आते थे तो तुम्हें खाना लेना शुरू कर देना चाहिए था। उसने कहा कि लेकिन अब खाना लेने की आदत ही छूट गयी है। भूख ही नही होती है। अब मैं कोई खेल नही कर रहा हूँ, अब तो खेल करने में फँस गया हूँ। मै खेल नही करता हूँ, लेकिन अब भूख ही नही है। अब मैं जानता ही नहीं हूँ कि भूख क्या है, भूख कैसी चीज है। वह मेरे भीतर होती ही नही है। क्या हो गया है इस आदमी को ?

लम्बी भूख व्यवस्था से की जाय तो भूख मर जाती है। परमात्मा की भूख को हम जगने नही देते है। क्योंकि परमात्मा से ज्यादा डिस्टर्बिंग फैक्टर (Disturbing Factor) गडबड़ करने वाला तत्त्व और कुछ नहीं हो सकता है। इसलिए हमने इन्तजाम किया हुआ है। हम बडी व्यवस्था से, सब तरफ से उसे रोके हुए हैं ताकि वह कही से भीतर न आ जाय। अन्यथा हर आदमी प्यास को लेकर जन्म लेता है। और अगर उसे जगाने की सुविधा दी जाय तो धन की प्यास, यश की प्यास तिरोहित हो जाय। वही प्यास रह जाय।

८. आध्यात्मिक-प्यास से जीवन के मूल्यों (Values) में क्रांति

और भी एक कारण है कि या तो परमात्मा की प्यास रहे और या फिर दूसरी प्यासें रहे। सब साथ नही रह सकते हैं। इसलिए इन प्यासों को—धन की, यश की, काम की इन प्यासों को बचाने के लिए परमात्मा की प्यास को रोकना पड़ा है। अगर उसकी प्यास जगेगी तो सभी को तिरोहित कर लेगी, समाहित कर लेगी। वह अकेली ही रह जायेगी। परमात्मा बहुत ईर्ष्यालु है। वह जब आता है तो बस अकेला ही रह जाता है। फिर वह किसी को टिकने नही देता है। जब वह आपको अपना मन्दिर बनायेगा तो वहाँ छोटे-मोटे देवी-देवता और न टिकेंगे। कई रखे हुए हैं, हनुमान जी भी वहीं विराजमान हैं, और देवी-देवता भी विराजमान हैं। ऐसा परमात्मा न टिकने देगा। जब वह आयेगा तो सब देवी-देवताओं को बाहर कर देगा। वह अकेला ही विराजमान हो जाता है। बहुत ही ईर्ष्यालु है।

९. कर्ता होने के भ्रम का टूटना

यह सवाल ठीक पूछा है कि व्यक्ति जो कार्य करता है, वह परमात्मा के द्वारा ही नहीं होता है क्या ?

जब तक करता है, तब तक नही होता है। जब तक व्यक्ति को लगता है

कि मैं कर रहा हूँ, तब तक नहीं होता है। जिस दिन व्यक्ति को लगता है कि मैं हूँ ही नहीं, हो रहा है, उस दिन परमात्मा का हो जाता है। जब तक डूइंग (Doing) का, 'कर रहा हूँ' का ख्याल है, तब तक नहीं। जिस दिन 'हो रहा है' की अनुभूति हो जाती है, उस दिन ही घटना घट जाती है। जैसे हवाओं से पूछो कि बह रही हो ? हवाएँ कहेंगी, नही। बहाई जा रही है। वृक्षों से पूछो, बडे हो रहे हो ? वे कहेंगे, नही। बड़े किये जा रहे है। सागर की लहरों से पूछो, तुम्ही तट से टकरा रही हो ? वे कहेगी, नही, बस टकराना हो रहा है। तब तो परमात्मा का हो गया। आदमी कहता है, मै कर रहा हूँ। बस, वही से द्वार अलग हो जाता है। वही से आदमी का अहकार घेर लेता है। वही से आदमी अपने को अलग मान कर खड़ा हो जाता है।

जिस दिन आदमी को भी पता चलता है कि जैसी हवाएँ बह रही हैं, और जैसे सागर की लहरे चल रही है और वृक्ष बड़े हो रहे हैं और फूल खिल रहे हैं और आकाश में तारे चल रहे हैं, ऐसा ही मै चलाया जा रहा हूँ। कोई है जो मेरे भीतर चलता है और कोई है जो मेरे भीतर बोलता है। मैं अलग से कुछ भी नही हूँ। बस उस दिन परमात्मा है।

कर्ता होने का हमारा भ्रम है। वही भ्रम हमें दुःख देता है। वही भ्रम दीवाल बन जाता है। जिस दिन हम कर्ता नही है, उस दिन कोई भ्रम शेष नही रह जाता है। उस दिन वही रह जाता है। अभी भी वही है। ऐसा नही है कि आप अपने को कर्ता मानते है तो कर्ता हो गये। ऐसा मैं नही कह रहा हूँ। जब आप समझ रहे हैं कि मैं कर्ता हूँ तो सिर्फ आपको भ्रम है। अभी भी वही है, लेकिन आपको उसका कोई पता नही है।

हालत बिलकुल ऐसी है जैसे आप रात सो जाये आज---नारगोल में, और रात सपना देखें कि कलकत्ता पहुँच गये है। कलकत्ता पहुँच नही गये हैं, कितना ही सपना देखे, है नारगोल में ही। लेकिन सपने में कलकत्ता पहुँच गये हैं। और आप कलकत्ते में पूछ रहे हैं कि मुझे नारगोल वापिस जाना है, अब मैं कौन-सी ट्रेन पकड़ूँ, अब मैं हवाई जहाज से जाऊँ कि रेल गाड़ी से जाऊँ, कि पैदल चला जाऊँ ? मैं कैसे पहुँच पाऊँगा ? रास्ता कहाँ है ? मार्ग कहाँ है ? कौन मुझे पहुँचायेगा ? गाइड कौन है ? नक्शे देख रहे हैं, पता लगा रहे हैं। और तभी आपकी नींद टूट गयी है। और नींद टूटने पर आपको पता लगता है कि मैं कहीं गया नहीं था। मैं वहीं था। फिर आप नक्शे वगैरह नही खोजते हैं। फिर आप गाइड नहीं खोजते हैं। फिर अगर कोई आपसे कहे भी कि क्या इरादा है ? कलकत्ते से वापिस न लौटियेगा ? तो आप हँसते हैं। आप कहते हैं, कलकत्ता कभी गया नहीं, सिर्फ जाने का ख्याल हुआ था।

आदमी जब अपने को कर्ता समझ रहा है तब भी कर्ता है नहीं। तब भी ख्याल ही है, सपना ही है कि मैं कर रहा हूँ। सब हो रहा है। यह सपना ही टूट जाय तो जिसे ज्ञान कहें, जिसे जागरण कहें, वह घटित हो जाय। और जब हम ऐसा कहते हैं कि वह मुझसे करवा रहा है, तब भी भ्रम जारी है, क्योंकि तब भी मैं फासला मान रहा हूँ। मैं मान रहा हूँ कि मैं भी हूँ, वह भी है, वह करवाने वाला है और मैं करने वाला हूँ। नहीं, जब सच में ही आप जागेंगे तो आप ऐसा नहीं कहेंगे कि हाँ, मैं अभी-अभी कलकत्ते से लौट आया हूँ। आप कहेंगे, गया ही नहीं हूँ।

जिस दिन आप इस नींद से जागेंगे जो कर्ता होने की है, अहंता की, इगो (Ego) की नींद है। उस दिन आप ऐसा नहीं कहेंगे कि वह करवा रहा है और मैं करने वाला हूँ। उस दिन आप कहेंगे, वही है। मैं हूँ कहाँ! मैं कभी था ही नहीं। एक स्वप्न देखा था, जो टूट गया है। और स्वप्न भी हम जीवन-जीवन तक देख सकते हैं। अनन्त जन्मों तक देख सकते है। स्वप्न के देखने का कोई अन्त नहीं है। कितने ही स्वप्न देखें। और स्वप्नो का बडा से बडा मजा तो यह है कि जब आप स्वप्न देखते हैं तब वह बिलकुल सत्य मालूम होता है। आपने बहुत बार सपने देखे हैं। रोज रात देखते हैं। रोज सुबह जानते हैं कि सपना था, झूठा था। फिर आज रात देखेंगे जब, तब ख्याल न आयेगा कि सपना है, झूठा है। तब फिर जँचेगा कि बिलकुल ठीक है। फिर सुबह जाग कर कहेंगे कि झूठा था। कितनी कमजोर है स्मृति। सुबह उठ कर कहते हैं, सब सपने झूठे थे। रात फिर सपने देखते हैं और सपने मे वे फिर सच हो जाते हैं। वह सारा बोध जो सुबह हुआ था, वह फिर खो गया। निश्चित ही वह कोई गहरा बोध न था। ऊपर-ऊपर हुआ था। गहरे मे फिर वही भ्रान्ति चल रही है।

ऐसे ऊपर-ऊपर हमें बोध हो जाते हैं। कोई किताब पढ लेता है। और उसमे पढ लेता है कि सब परमात्मा करवा रहा है। एक क्षण को ऊपर से एक बोध हो जाता है कि मैं करने वाला नहीं हूँ, परमात्मा करवा रहा है। लेकिन अभी भी वह कहता है कि मैं करने वाला नहीं, परमात्मा करवा रहा है। लेकिन वह 'मैं' अभी जारी है। वह अभी कह रहा है कि 'मैं' करने वाला नहीं हूँ। वह एक क्षण में खो जायेगा। एक जोर से धक्का दे दें उसे और वह क्रोध से भर जायगा। और कहेगा कि जानते नहीं कि मैं कौन हूँ। वह भूल जायगा कि अभी वह कह रहा था कि मैं करने वाला नहीं हूँ, मैं नहीं हूँ। मैं कोई नहीं हूँ परमात्मा ही है। एक जोर से धक्का दे दें, सब भूल जायेगा। एक क्षण में सब खो जायगा। वह परमात्मा वगैरह एक-दम विदा हो जायगा। 'मैं' वापिस लौट आयगा।

मैंने सुना है, एक संन्यासी हिमालय में रहा ३० वर्षों तक। शान्ति में था,

एकान्त में था। भूल गया, अहंकार न रहा। **अहंकार के लिए दूसरे का होना जरूरी है।** क्योंकि वह दूसरा, 'दी अदर' (The Other) अगर न हो तो अहंकार खड़ा कहाँ करें ? तो दूसरे का होना जरूरी है। दूसरे की आँख मे जब अकड़ कर झाँको, तब वह खड़ा होता है। अब दूसरा ही न हो तो किस पर अकड कर झाँकोगे ? कहाँ कहोगे कि मैं हूँ ? क्योंकि 'तू' चाहिए। **'मैं' को खड़ा करने के लिए एक और झूठ चाहिए। वह तू है।** उसके बिना वह खडा नही होता है।

झूठ के लिए एक सिस्टम चाहिए, बहुत-से झूठों की, तब एक झूठ खडा होता है। सत्य अकेला खड़ा हो जाता है। झूठ कभी अकेला खडा नही होता है। झूठ के लिए और झूठो की बल्लियाँ लगानी पडती है। **'मैं' का झूठ खड़ा करना हो तो 'तू' 'वह', 'वे' इन सबके झूठ खड़े करने पड़ते हैं,** तब 'मैं' बीच मे खडा हो पाता है।

वह आदमी अकेला था जगल में, पहाड पर कोई 'तू' न था, कोई 'वह' न था, कोई 'वे' न थे, कोई 'हम' न था। भूल गया 'मैं' को। ३० साल लम्बा वक्त था। शान्त हो गया। नीचे से लोग आने लगे। फिर लोगो ने प्रार्थना की कि एक मेला भर रहा है, पहाड़ ऊँचा है, बहुत लोग यहाँ तक न आ सकेंगे, और प्रार्थना हम करते हैं कि आप नीचे चलकर दर्शन दे दें। सोचा कि अब तो मेरा 'मैं' रहा नही, अब चलने मे हर्ज क्या है। ऐसा बहुत बार मन धोखा देता है। अब तो मेरा 'मैं' न रहा, अब चलने मे हर्ज क्या है। नीचे आ गये। नीचे बहुत भीड़ थी। लाखो लोगो का मेला था। अपरिचित लोग थे। उसे कोई जानता न था। ३० साल पहले वह आदमी गया था। उसको लोग भूल भी चुके थे। जब वह भीड मे चला तो किसी का जूता उसके पैर में पड़ गया। जूता पैर पर पड़ा, उसने उसकी गरदन पकड़ ली और कहा कि जानता नही मैं कौन हूँ ? वह ३० साल एकदम खो गये, जैसे एक सपना था, बिदा हो गया। वह ३० साल, वह पहाड, वह शान्ति, वह शून्यता, वह 'मैं' का न होना, वह परमात्मा होना, सब बिदा हो गया। एक सेकेण्ड मे, वह था ही नही, ऐसा बिदा हो गया। गरदन पर हाथ कस गये और कहा कि जानता नही कि मैं कौन हूँ ?

तब अचानक उसे ख्याल आया कि यह मैं क्या कह रहा हूँ। मैं तो भूल गया था कि मैं हूँ। यह वापिस कैसे लौट आया। तब उसने लोगो से क्षमा माँगी और उसने कहा कि अब मुझे जाने दो। लोगों ने कहा, कहाँ जा रहे हैं ? उसने कहा कि अब पहाड पर न आऊँगा, अब मैदान की तरफ जा रहा हूँ। उन्होंने कहा, लेकिन यह क्या हो गया ? उसने कहा कि जो ३० साल पहाड़ के एकान्त में मुझे पता न चला, वह एक आदमी के सम्पर्क में पता चल गया है। अब मैं मैदान

की तरफ जा रहा हूं। वहीं पहुँचूंगा। वहीं पहचानूंगा कि 'मैं' है, या नहीं है। सपना हो गया ३० साल। समझता था सब खो गया है, सब वहीं के वहीं थे। कहीं कुछ खोया नहीं था।

तो भ्रान्तियाँ पैदा हो जाती है। लेकिन भ्रान्तियों से काम नही चल सकता है।

अब हम ध्यान की तैयारी करें। ●

३. (ब) द्वितीय ध्यान-प्रयोग

साधना-शिविर, नारगोल, रात्रि, दिनांक ३ मई, १९७०

●

प्रयोग—कुण्डलिनी-जागरण और ध्यान का

अब हम ध्यान के लिए बैठें। क्योंकि कल से तो फर्क हो जायगा। कल से सुबह सिर्फ ध्यान करेंगे और रात सिर्फ चर्चा करेंगे। लेकिन आज तो आज के हिसाब से। थोड़े-थोड़े फासले पर हो जायें। लेकिन बहुत फासले पर न जायें, क्योंकि सुबह मैंने अनुभव किया कि जो लोग बहुत दूर चले गये, वे यहाँ जो एक साइकिक-एटमॉस्फियर (ऊर्जा क्षेत्र निर्मित) होता है, उसके फायदे से वंचित रह गये थे। इसलिए फासले पर हो जायें, लेकिन बहुत दूर न जायें। बीच में बहुत जगह न छोड़ें। जिनको लेटना है, वे अपनी जगह बना लें, लेट जायें। जिनको बैठना है, वे बैठें। लेकिन बहुत दूर भी न जायें। और बातचीत बिलकुल न करें। बिना बातचीत किये जो काम हो सकता है, उसमें बातचीत न करें।

(...सभा में किसी तरफ से एक-दो पत्थर गिरे। आचार्यश्री अपनी शान्त आवाज में कहते रहे)...क्या बात है ? पत्थर पड़े हैं !..चलो कोई बात नहीं है, उन्हें सम्हाल कर रखें। किसीने प्रेम से फेंका होगा।...जो लोग पीछे बात कर रहे हैं वे बात न करें। बैठते हों तो चुपचाप बैठ जायें, या फिर चले जायें।...कोई भी दर्शक की हैसियत से न बैठे और दर्शक की हैसियत से भी बैठे तो कम-से-कम चुप बैठे। ध्यान रखें किसी को किसी के द्वारा बाधा न पड़े।

और कोई मित्र मालूम होता है कि पत्थर फेंकते हैं। दो-तीन पत्थर फेंके हैं।

पत्थर ही फेंकना है तो मेरी तरफ फेंकना चाहिए, किसी दूसरे की तरफ नहीं फेंकना चाहिए ।

प्रथम चरण :

जो जहाँ है, वही बैठ जाय । आँख बन्द कर ले । एक घण्टे पूरी ताकत लगानी है । आँख बन्द कर ले और गहरी श्वास लेना शुरू करे । **देखें, सागर इतने जोर से श्वास लेता है, सदवन इतने जोर से श्वास लेता है । जोर से श्वास लें ।** पूरी श्वास भीतर ले जायें, और पूरी श्वास बाहर निकाले । एक ही काम रह जाय १० मिनट तक---श्वास ले रहे, श्वास छोड रहे । श्वास ले रहे, श्वास छोड़ रहे । और भीतर साक्षी बन जायें । भीतर देखते रहें---श्वास भीतर आयी, श्वास बाहर गयी । **१० मिनट श्वास लेने की प्रक्रिया में गहरे उतरें ।** शुरु करे ।

गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोडे (४ बार कहा गया)। . .पूरी शक्ति लगाये । **यह रात हमें मिली, यह मौका हमें मिला । फिर मिले, न मिले. . . शक्ति पूरी लगायें । कुछ हो सकता है तो पूरी शक्ति से होगा । एक इंच भी बचायेंगे तो नहीं होगा ।**. . .पूरी गहरी श्वास ले । बस एक यन्त्र की तरह रह जायें । शरीर एक यन्त्र की तरह श्वास ले रहा है । एक यन्त्र मात्र रह गये है और देखे, **संकोच न करें और दूसरे की फिक्र न करें, अपनी फिक्र करें ।**. . .एक १० मिनट तक गहरी से गहरी श्वास ले और गहरी श्वास छोडे । बस श्वास लेने वाले ही रह जायें । श्वास ले रहे, श्वास छोड रहे . .**और भीतर देखते रहें, साक्षी मात्र । देखते रहे**---श्वास भीतर आयी, श्वास बाहर गयी । श्वास भीतर आयी, श्वास बाहर गयी । लगाये, शक्ति लगाये ।

दस मिनट मै चुप हो जाऊँ । आप पूरी शक्ति लगाये । ऐसा नही कि जब मैं कहूँ तब आप एक-दो गहरी श्वास ले और फिर धीमी लेने लगे । दस मिनट पूरी ताकत लगाये. श्वास मे पूरी शक्ति लगा दे । गहरी श्वास ले और गहरी श्वास छोडें । सारा शरीर कँप जाय, रोआँ-रोआँ कँप जाय । **सारे शरीर में विद्युत् जग जायेगी । भीतर कोई शक्ति उठने लगेगी और रोयें-रोयें में फैलने लगेगी ।**. . .पूरी ताकत लगाये । गहरी श्वास ले रहे, छोड रहे । गहरी श्वास ले रहे, छोड रहे । . (७ बार) । शरीर सिर्फ श्वास लेने का एक यन्त्र रह जाये । सागर की गर्जन मे एक हो जायें, हवाओ लहरो मे एक हो जायें । सब श्वास ले रहे है और कुछ भी नही करना है---सिर्फ गहरी श्वास ले रहे, छोड रहे । गहरी श्वास ले और छोडे और भीतर साक्षी बने रहे . .शक्ति पूरी लगाये । स्मरणपूर्वक गहरी श्वास लें गहरी श्वास छोड़े . भीतर जागकर देखते रहें---श्वास भीतर आयी,श्वास बाहर गयी । श्वास भीतर आयी,श्वास बाहर गयी । . **अपने को जरा भी बचायें न ।** अपने को बचायें न, **पूरा लगा दें ।** गहरी श्वास, और गहरी,

और गहरी। श्वास लेने और छोड़ने के अतिरिक्त और कुछ भी न बचे। गहरी श्वास, गहरी श्वास, और गहरी, और गहरी...(५ बार)।

देखें, कहने को न बचे कि हमने कम किया, पूरा नहीं किया। कहीं बात रुक न जाय, पूरी शक्ति लगायें। दूसरे सूत्र पर जाने के पहले अपने को पूरी तरह थका डालें...पूरी ताकत लगायें। गहरी श्वास, गहरी श्वास...(५ बार)। श्वास ही रह गयी, श्वास ही हो गये हैं। गहरी श्वास...(७ बार)। और भीतर देखते रहें—श्वास आयी, श्वास गयी ..हम केवल साक्षी रह गये हैं। श्वास आती दिखायी पड़ेगी, जाती दिखायी पड़ेगी। भीतर देखते रहें, देखते रहें। तीव्र, और तीव्र, और तीव्र...(लोगों का नाचना, कँपना, आवाजें निकालना...)दूसरे सूत्र पर जाने के लिए और तीव्र करें। जब हम पूरी तीव्रता पर होंगे तब ही मैं दूसरे सूत्र पर ले जाऊँगा। पूरी शक्ति लगायें, पूरी शक्ति लगायें। सब तरह से अपनी सारी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास...(४ बार)। बस श्वास ही रह गयी, और कुछ भी नहीं। सारी शक्ति लगा दें। और गहरी, और गहरी . (५ बार)। (...रोने, चिल्लाने की आवाजें)...और गहरी लगा सकते हैं, रोकें मत। और गहरी और गहरी ..

कँपने दें शरीर को . डोलता है, डोलने दें। घूमता है, घूमने दें। गहरी श्वास लें। गहरी से गहरी श्वास लें. .(आवाजें—ऊँSSSSS की) गहरी श्वास, गहरी श्वास...(रोना, चीखना...) गहरी श्वास, गहरी श्वास। दूसरे सूत्र में प्रवेश करना है, एक आखिरी मिनट गहरी श्वास लें...अनेक तरह की आवाजें... गहरी श्वास लें...आखिरी मिनट है, पूरी शक्ति लगायें। गहरी श्वास, गहरी श्वास...पूरे क्लाइमेक्स (चरम तीव्रता)पर ही बदलाहट ठीक होती है।...गहरी श्वास...(६ बार)। सारी शक्ति श्वास में लगा दें...श्वास ही रह गयी, श्वास ही रह गयी।

दूसरा चरण :

अब दूसरे सूत्र में प्रवेश करना है। श्वास गहरी रखें और शरीर को जो करना है, छोड़ दें, करने दें। **शरीर मुद्राएँ बनाये, आसन बनाये, शरीर कँपने लगे, घूमने लगे, रोने लगे, छोड़ दें।** शरीर को पूरी तरह छोड़ देना है। श्वास गहरी रहेगी और शरीर को छोड़ देना है। शरीर गिरे, गिर जाय। उठे, उठ जाय। नाचने लगे तो चिन्ता न करें। शरीर को पूरी तरह छोड़ दें। शरीर को जो करना हो, करने दें। जरा भी रोकेंगे नहीं। सहयोग करें। शरीर जो करना चाहता है उसे Co-operate करें, उसके साथ सहयोगी हो जायें। शरीर घूमता है, घूमे। डोलता है, डोले। गिरता है, गिर जाय। रोता है, रोने दें। हँसता है, हँसे। छोड़ दें। जो भी होता है, होने दें। श्वास गहरी रहे और शरीर को छोड़ दें।

(सैकड़ों लोगों का रोना, चीखना, चिल्लाना, नाचना और शरीर की अनेक तीव्र क्रियाएँ करना जारी रहा और आचार्यश्री आह्वान करते रहे :) एक दस मिनट के लिए शरीर को पूरी तरह छोड़ दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास और शरीर को छोड़ दें। रोता है रोये, चिल्लाता हो चिल्लाये। आप कोई नियन्त्रण न करें और शरीर की क्रियाओं में सहयोग करें। शरीर जो भी कर रहा है, करने दें। जो भी हो रहा है, होने दें। मुद्राएँ बनेंगी, शरीर चक्कर लेगा।...भीतर शक्ति जगेगी तो शरीर में बहुत कुछ होगा। आवाजें निकल सकती हैं, रोना निकल सकता है। कोई चिंता न करें, छोड़ें।...शरीर को छोड़ दें। आज शरीर को पूरा थका डालना है। सोने के पहले पूरा श्रम ले लेना है। शरीर को छोड़ें, सहयोग करें...गहरी श्वास, गहरी श्वास...(१३ बार)।

इसके बाद टेप रिकार्डर पर धक्का लगने से वह बन्द हो गया। लेकिन आचार्यश्री का सुझाव और प्रयोग जारी रहा।

दूसरे दस मिनट साधक गहरी श्वास लेते रहे तथा शरीर में हो रही प्रति-क्रियाओं को सहयोग देकर उसकी तीव्रता बढ़ाते रहे।

तीसरा चरण :

फिर तीसरे दस मिनट में तेज श्वास जारी रही, शरीर नाचता-चिल्लाता-गाता रहा, इसके साथ ही साधको को तीव्रता से मन मे "मैं कौन हूँ ?" "मैं कौन हूँ ?" लगातार पूछते रहने का सुझाव दिया गया। साधकों को सहज ही हो रही अनेक यौगिक क्रियाओं में तीव्रता आती चली गयी। उसका चरम बिन्दु (Climex) आ गया।

चौथा चरण :

चौथे दस मिनट मे सब छोड़ कर केवल विश्राम करने को कहा गया। न गहरी श्वास, न 'मैं कौन हूँ ?' पूछना। बस विश्राम, शान्ति, मौन, शून्यता—जैसे मर गये, हैं ही नहीं। सैकड़ों साधकों का गहरे ध्यान मे प्रवेश हो गया। पूरा सघन ध्यान की तरंगों से भर गया। सारे साधक जैसे विराट् प्रकृति से एक हो गये हों ऐसा लगने लगा।

४० मिनट पूरा होते ही ध्यान की बैठक विसर्जित कर दी गयी। लेकिन फिर भी अनेक साधक बहुत देर तक अपने अन्दर ही डूबे हुए पड़े रहे। किसी अज्ञात अन्तर्जगत् में उनकी गति होती रही। धीरे-धीरे लोग अपने निवास-स्थान की ओर लौट पड़े। कई साधक आध घण्टे, एक घण्टे, दो घण्टे तक ध्यान में ही पड़े रहे। बाद मे उठकर धीरे-धीरे प्रस्थान किया।

४. चतुर्थ प्रवचन : प्रश्नोत्तर

साधना-शिविर, नारगोल, रात्रि, दिनांक ४ मई, १९७०

साधना का पथ है संकल्पवान् और साहसी के लिए

१. प्रभु-कृपा और साधक का प्रयास

एक मित्र ने पूछा है कि क्या ध्यान प्रभु की कृपा से उपलब्ध होता है ?

इस बात को थोड़ा समझना उपयोगी है। इस बात से बहुत भूल भी हुई है। न मालूम कितने लोग यह सोच कर बैठ गये हैं कि प्रभु की कृपा से उपलब्ध होगा तो हमें कुछ भी नहीं करना है। यदि प्रभु-कृपा का ऐसा अर्थ लेते हों कि आपको कुछ भी नहीं करना है तो आप बड़ी भ्रांति में हैं। दूसरी ओर भी इसमें भ्रान्ति है कि प्रभु की कृपा सबके ऊपर समान नहीं है, लेकिन प्रभु-कृपा किसी पर कम और ज्यादा नहीं हो सकती है। प्रभु के चहेते, चूजन (Chosen) कोई भी नहीं हैं। और अगर प्रभु के भी चहेते हों तो फिर इस जगत् मे न्याय का कोई उपाय न रह जायगा।

प्रभु की कृपा का तो यह अर्थ हुआ कि किसी पर कृपा करता है और किसी पर अकृपा भी रखता है। ऐसा अर्थ लिया हो तो वैसा अर्थ गलत है। लेकिन किसी और अर्थ मे सही है। प्रभु की कृपा से उपलब्ध होता है, यह उनका कथन नहीं है जिन्हें अभी नहीं मिला है। यह उनका कथन है, जिन्हें मिल गया है। और उनका कथन इसलिए है कि जब वह मिलता है तो अपने किये गये प्रयास बिलकुल इर्रिलेवेण्ट (Irrelevent), असंगत मालूम पड़ते हैं। जब वह मिलता है तो

जो हमने किया था वह इतना क्षुद्र और जो मिलता है वह इतना विराट् कि हम कैसे कहें कि जो हमने किया था उसके कारण यह मिला है ?

जब मिलता है तब ऐसा लगता है, हमसे कैसे मिलेगा ? हमने किया ही क्या था ? हमने दिया ही क्या था ? हमने सौदे में दाँव क्या लगाया था ? हमारे पास था भी क्या जो हम करते ? था भी क्या जो हम देते ? जब उसकी अनन्त-अनन्त आनन्द की वर्षा होती है तो उस वर्षा के क्षण में ऐसा ही लगता है कि तेरी कृपा से ही, तेरे प्रसाद से ही, तेरी ग्रेस (Grace) से ही उपलब्ध हुआ है। हमारी क्या सामर्थ्य, हमारा क्या बल ?

लेकिन यह बात उनकी है जिनको मिला। यह बात अगर उन्होने पकड़ ली जिनको नहीं मिला है, तो वे सदा के लिए भटक जायेंगे। प्रयास करना ही होगा। निश्चित ही प्रयास करने पर मिलने की जो घटना घटती है वह ऐसी है, जैसे किसी का द्वार बन्द है, सूरज निकला है और घर में अँधेरा है। वह द्वार खोल कर प्रतीक्षा करे, सूरज भीतर आ जायगा। सूरज को गठरियों मे बाँध कर भीतर नहीं लाया जा सकता है। वह अपनी ही कृपा से भीतर आता है। यह मजे की बात है, सूरज को हम भीतर नहीं ला सकते अपने प्रयास से, लेकिन अपने प्रयास से भीतर आने से रोक जरूर सकते हैं। द्वार बन्द करके, आँख बन्द करके बैठ सकते है। तो सूरज की महिमा भी हमारी बन्द आँखों को पार न कर पायेगी।

सूरज की किरणों को हम द्वार के बाहर रोक सकते हैं। रोक सकने में समर्थ हैं, ला सकने में समर्थ नहीं। द्वार खुल जाय, सूरज भीतर आ जाता है। सूरज जब भीतर आ जाय तो हम यह नहीं कह सकते कि हम लाये। हम इतना ही कह सकते हैं, उसकी कृपा, वह आया। और हम इतना ही कह सकते हैं कि हमारी अपने पर ही कृपा है कि हमने द्वार बन्द न किये।

२. साधना अर्थात् द्वार खोलना प्रभु की कृपा के लिए

आदमी सिर्फ एक ओपनिंग (Opening), एक खुला द्वार बन सकता है उसके आगमन के लिए। हमारे प्रयास सिर्फ द्वार खोलते हैं। आना तो उसकी कृपा से ही होता है। लेकिन उसकी कृपा हर द्वार पर प्रकट होती है, लेकिन कुछ द्वार बन्द है, वह क्या करे ? बहुत द्वारों पर ईश्वर खटखटाता है और लौट जाता है। वे द्वार बन्द हैं। मजबूती से हमने बन्द किये हैं। और जब वह खटखटाता है, तब हम न मालूम कितनी व्याख्याएँ करके अपने को समझा लेते हैं।

एक छोटी सी कहानी मुझे प्रीतिकर है। वह मैं कहूँ। एक बड़ा मन्दिर है। उस मन्दिर में सौ पुजारी हैं। बड़े पुजारी ने एक रात स्वप्न देखा कि प्रभु ने खबर की है स्वप्न में कि कल मैं आ रहा हूँ। विश्वास तो न हुआ पुजारी को। क्योंकि पुजारियों से ज्यादा अविश्वासी आदमी खोजना सदा ही कठिन है। विश्वास

इसलिए भी न हुआ कि जो दूकान करते हैं धर्म की, उन्हें धर्म पर कभी विश्वास नहीं होता है। धर्म से वे शोषण करते हैं, धर्म उनकी श्रद्धा नहीं है। और जिसने श्रद्धा को शोषण बनाया है, उससे ज्यादा अश्रद्धालु कोई भी नहीं होता है। पुजारी को भरोसा तो न आया कि भगवान् आयगा। कभी नहीं आया। वर्षों से पुजारी है, वर्षों से पूजा की है,लेकिन भगवान् कभी नही आया है। भगवान् को भोग भी लगाया है, वह भी अपने को ही लग गया है। भगवान् के लिए प्रार्थनाएँ भी की हैं, वह भी खाली आकाश मे। जानते हुए कि कोई नही सुनता है। पुजारी ने समझाया अपने मन को कि सपने कही सच होते हैं। लेकिन फिर डरा भी, भयभीत भी हुआ कि कहीं सच ही न हो जाय। कभी-कभी जिसे हम सपना कहते हैं वह भी सच हो जाता है और कभी-कभी जिसे हम सच कहते हैं, वह भी सपना हो जाता है। तो अपने निकट के पुजारियो को उसने कहा कि सुनो, बड़ी मजाक मालूम पड़ती है, लेकिन बता दूं। रात सपना देखा कि भगवान् कहते हैं कि कल आता हूँ। दूसरे पुजारी भी हँसे। उन्होने कहा, पागल हो गये हो। सपने की बात किसी और से मत कहना, नही तो लोग पागल समझेंगे। पर उस बड़े पुजारी ने कहा कि कही अगर वह आ ही गया तो कम से कम हम तैयारी तो कर लें। नहीं आया तो कोई हर्ज नही है. आया तो हम तैयार तो मिलेंगे। तो मन्दिर धोया गया, पोंछा गया, साफ किया गया। फूल लगाये गये, दिये जलाये गये। सुगन्ध छिड़की गयी, धूप-दीप सब। भोग बना, भोजन बने। दिन में पुजारी थक गये। कई बार देखा सड़क की तरफ, कोई आता हुआ दिखाई न पड़ा। और हर बार जब देखा तब लौट कर कहा, सपना सपना है, कौन आता है ? नाहक हम पागल बने। अच्छा हुआ, गाँव मे खबर न की, अन्यथा लोग हँसते।

साँझ हो गयी। फिर उन्होने कहा, अब भोग हम अपने को लगा लें। जैसे सदा भगवान् के लिए लगा भोग हमको मिला है, यह भी हमी को लेना पड़ेगा। कभी कोई आता है। सपने के चक्कर में पड़े हम, पागल बने हम। हम जानते हुए पागल बने। दूसरे पागल बनते है, न जानते हुए। हम, हम जो जानते है; भलीभाँति—कभी कोई भगवान् नही आता है। भगवान् है कहाँ ? बस यह मन्दिर की मूर्ति है, हम पुजारी हैं, यह हमारी पूजा है, यह व्यवसाय है। फिर साँझ उन्होने भोग लगा लिया। दिन भर के थके थे, वे जल्दी ही सो गये।

आधी रात गये कोई रथ मन्दिर के द्वार पर रुका। रथ के पहियो की आवाज सुनाई पड़ी। पुजारी को नींद मे लगा कि मालूम होता है उसका रथ आ गया है। उसने जोर से कहा, सुनते हो, जागो। मालूम होता है जिसकी हमने दिन भर प्रतीक्षा की है वह आ गया है। रथ के पहियों की जोर-जोर की आवाज सुनायी पड़ती है। दूसरे पुजारियो ने कहा, पागल, अब चुप भी रहो। दिन भर पागल

बनाया, अब रात ठीक से सो लेने दो। यह पहियों की आवाज नहीं, बादलों की गड़गड़ाहट है। और वे सो गये। उन्होंने व्याख्या कर ली, फिर कोई मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ा। रथ द्वार पर रुका। फिर किसी ने द्वार खटखटाया। फिर किसी पुजारी की नींद खुली। फिर उसने कहा कि मालूम होता है, वह आ गया है मेहमान, जिसकी हमने प्रतीक्षा की। कोई द्वार खटखटाता है। लेकिन दूसरों ने कहा, कैसे पागल हो। रात भर सोने दोगे या नहीं? हवा के थपेड़े हैं। कोई द्वार नहीं खटखटाता है। उन्होंने फिर व्याख्या कर दी। फिर वे सो गये। फिर वे सुबह उठे। फिर वे द्वार पर गये। किसी के पद-चिह्न थे। कोई सीढ़ियाँ चढ़ा था। और ऐसे पद-चिह्न थे जो बिलकुल अज्ञात थे। और किसी ने द्वार आकर खटखटाया था। और राह तक कोई रथ भी आया था। रथ के चाकों के चिह्न थे।

वे छाती पीट कर रोने लगे। वे द्वार पर गिरने लगे। गाँव की भीड़ इकट्ठी हो गयी। वह उनसे पूछने लगी क्या हो गया है तुम्हें? वे पुजारी कहने लगे, मत पूछो। हमने व्याख्या कर ली और हम मर गये। उसने द्वार खटखटाया, हमने समझा कि हवा के थपेड़े है। उसका रथ आया, हमने समझा बादल की गड़गड़ाहट है। और सच यह है कि हम कुछ भी न समझे थे। हम केवल सोना चाहते थे और इसलिए हम व्याख्या करते थे।

तो, वह तो सभी के द्वार खटखटाता है। उसकी कृपा तो सब द्वारों पर आती है। लेकिन हमारे द्वार हैं बन्द। और कभी हमारे द्वार पर दस्तक भी है तो हम कोई व्याख्या कर लेते है।

पुराने दिनों के लोग कहते थे, अतिथि देवता है। थोड़ा गलत कहते थे। देवता अतिथि है। देवता रोज ही अतिथि की तरह खड़ा है। लेकिन द्वार तो खुला हो। उसकी कृपा सब पर है। इसलिए ऐसा मत पूछें कि उसकी कृपा से मिलता है। लेकिन उसकी कृपा से ही मिलता है। हमारे प्रयास सिर्फ द्वार खोल पाते हैं। सिर्फ मार्ग की बाधाएँ अलग कर पाते हैं। जब वह आता है, अपने से आता है।

३. प्रथम तीन चरण ध्यान की तैयारी के लिए

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, ध्यान की चार सीढ़ियों की बात की है; उन चारों का पूरा पूरा अर्थ बतायें?

पहली बात तो यह समझ लें कि तीन सिर्फ सीढ़ियाँ हैं, ध्यान नहीं। ध्यान तो चौथा ही है। द्वार तो चौथा ही है, तीन तो सिर्फ सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियाँ द्वार नहीं हैं। सीढ़ियाँ द्वार तक पहुँचाती हैं। चौथा ही द्वार है, विश्राम, विराम, शून्य, समर्पण, मर जाना, मिट जाना, द्वार तो वही है। अब तीन जो सीढ़ियाँ हैं वे उस

द्वार तक पहुँचाती हैं। उन तीन सीढ़ियों का मौलिक आधार एक है कि यदि विश्राम में जाना हो तो पूरे तनाव में जाने के बाद बहुत आसान हो जाता है।

जैसे कोई आदमी दिन भर श्रम करता है तो रात सो पाता है। जितना श्रम उतनी गहरी नींद। अब कोई पूछ सकता है कि श्रम करने से नींद तो उल्टी चीज है, तो जिसने दिन भर श्रम किया है उसे तो नींद आनी ही नहीं चाहिए, क्योंकि श्रम और विश्राम उल्टी चीजें हैं। तो नींद तो उसे आना चाहिए जो दिन भर बिस्तर पर पड़ा हो, विश्राम करता रहा हो। लेकिन दिन भर जो बिस्तर पर पड़ा रहा हो वह रात सो ही न सकेगा। इसलिए दुनिया में जितनी सुविधा बढ़ती है, जितना कम्फर्ट बढ़ता है, उतनी नींद विदा होती जाती है। दुनिया में जितना आराम बढ़ेगा, उतनी नींद मुश्किल हो जायगी। और मजा यह है कि आराम हम इसीलिए बढ़ा रहे हैं कि चैन से सो सकें। न, आराम बढ़ा कि नींद गयी। क्योंकि नींद के लिए श्रम जरूरी है। जितना श्रम, उतनी गहरी नींद।

४. चरम तनाव से चरम विश्राम

ठीक ऐसे ही जितना तनाव, अगर चरम हो सके, क्लाइमेक्स (Climax) पर हो सके, उतना गहरा विश्राम उपलब्ध होगा। ये जो तीन सीढ़ियाँ हैं वे बिलकुल उल्टी हैं। ऊपर से दिखाई पड़ेगा कि इन तीनों में तो हम बहुत श्रम में पड़ रहे हैं, शक्ति लगा रहे हैं, बहुत तनाव पैदा कर रहे हैं, अपने को थका रहे हैं, तूफान में डाल रहे हैं, विक्षिप्त हुए जा रहे हैं। और फिर इनसे कैसे विश्राम आयेगा ? इनसे ही आयेगा। जितने ऊँचे पहाड़ से गिरेंगे, उतनी गहरी खाई में चले जायेंगे।

ध्यान रहे, सब पहाड़ों के पास गहरी खाइयाँ होती हैं। असल में पहाड़ बनता ही नहीं बिना गहरी खाई को बनाये। जब पहाड़ उठता है तो नीचे गहरी खाई बन जाती है। जब आप तनाव में जाते हैं तो उसी के किनारे विश्राम की शक्ति इकट्ठी होने लगती है। इसलिए मैं कहता हूँ कि पूरी ताकत लगा दें, कुछ बचे न, पूरे चुक जायें, सब भाँति सब लगा दें, सब हार जायें तो जब गिरेंगे उस ऊँचाई से तो गहरी अतल खाई में डूब जायेंगे। वह विराम और विश्राम होगा। उसी विश्राम के क्षण में ध्यान फलित होता है।

मूल आधार तो आपको पूरे तनाव में ले जाना और फिर तनाव को एकदम से छोड़ देना है। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, अगर हम यह तनाव का कार्य न करें तो सीधा विश्राम नहीं हो सकता है क्या ? नहीं होगा। नहीं होगा। और होगा भी तो बहुत सेलो (Shallow), बहुत उथला होगा। गहरे कूदना हो पानी में तो ऊँचे चढ़ जाना चाहिए। जितने ऊँचे तट से कूदेंगे, उतने पानी में गहरे चले जायेंगे।

ये वृक्ष हैं सब के, ४० फीट ऊँचे होंगे। इतनी ही इनकी जड़ें नीचे चली

जाती हैं। जितना ऊपर जाना हो वृक्ष को उतनी जड़ें नीचे चली जाती हैं। जितनी जड़ें नीचे जाती हैं, उतना ही वृक्ष ऊपर चला जाता है। अब यह सरू का वृक्ष पूछ सकता है कि ६ इंच ही जड़ें नीचे भेजें तो कोई हर्जा तो नहीं है ? हर्ज कुछ भी नहीं है, ६ इंच ऊँचे भी जायेंगे। मजे से भेजें। ६ इंच भी क्यों भेजते हैं, भेजें ही मत तो बिलकुल ही ऊँचे नहीं जायेंगे।

नीत्शे ने कहीं बहुत अन्तर्दृष्टि का वाक्य लिखा है कि जिन्हें स्वर्ग की ऊँचाई छूनी हो उन्हें नरक की गहराई भी छूनी पड़ती है। बहुत अन्तर्दृष्टि की बात है। इसलिए साधारण आदमी कभी भी धर्म की ऊँचाई नहीं छू पाता है। पापी अक्सर छू लेते हैं। क्योंकि जो पाप की गहराई में उतरता है, वह पुण्य की ऊँचाई में भी चला जाता है।

यह जो विधि है, एक्स्ट्रीम्स (Extreme) से, अतियों से परिवर्तन की है। सब परिवर्तन अति पर होते हैं। एक अति और फिर परिवर्तन होता है। घड़ी का पेण्डुलम देखा है आपने ? वह जाता है, जाता है, बायें, बायें, बायें और फिर गिरता है और दायें चला जाता है। आपने कभी ख्याल न किया होगा। जब घड़ी का पेण्डुलम बायी तरफ जाता है तब वह दायी तरफ जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है। जा रहा है बायी तरफ और ताकत इकट्ठी कर रहा है दायीं तरफ जाने की। जितना बायी तरफ जायगा ऊँचा, उतनी ही दायी तरफ डोल सकेगा। तो आपके चित्त के पेण्डुलम को जितने तनाव मे ले जाया जा सके फिर जब विराम का क्षण आयेगा, तब उतने ही गहरे विराम मे चित्त उतर जायेगा। अगर आप तनाव में न ले जायें तो विराम मे भी नही जायेगा।

और लोग बहुत अजीब अजीब बातें पूछते हैं। ऐसा लगता है कि वे वृक्ष नही लगाना चाहते, सिर्फ फूल तोड़ना चाहते हैं। ऐसा लगता है कि फसल नहीं बोना चाहते, सिर्फ फल काटना चाहते हैं। एक मित्र आये, वे बोले कि अगर शरीर न हिलायें, न कम्पन हो शरीर में तो कोई कठिनाई तो नही है ? कठिनाई कुछ भी नहीं है। कठिनाई तो कुछ भी न करें तो कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन शरीर के कम्पन से इतने भयभीत हो रहे हैं तो जब भीतर के कम्पन उठेंगे तब क्या होगा ? शरीर के कंपने को रोकना चाहते हैं तो जब भीतर शक्ति की ऊर्जा कँपेगी तब क्या होगा ? नहीं, वे चाहते हैं कि भीतर कुछ हो जाय और बाहर सभ्य, सुसंस्कृत, शिष्ट, जैसी शकल उन्होंने बनायी है, जो मूर्ति खड़ी कर ली है अपनी, वे वैसे ही मोम के बने खड़े रहें और भीतर कुछ हो जाय। वह नहीं होगा। वह जब भीतर ऊर्जा उठेगी तो यह सब मोम का पुतला बह जायेगा बिलकुल। यह हटेगा, इसको जगह देनी पड़ेगी।

तनाव अति पर पहुँच जाय, इसकी चेष्टा करें। ताकि फिर विश्रान्ति अति

पर हो सके। विश्रान्ति फिर अपने आप हो जायगी। तनाव आप कर लें, विश्रांति प्रभु की कृपा से हो जायेगी। तनाव आप उठा लें, फिर तो लहर गिरेगी और शान्ति छा जायगी। तूफान के बाद जैसी शान्ति होती है वैसी कभी भी नहीं होती है। तूफान उठना जरूरी है। और तूफान के बाद जो शान्ति होती है वह जिन्दा होती है। क्योंकि वह तूफान से पैदा होती है। एक जिन्दा शान्ति के लिए जरूरी है, जो मैं कह रहा हूँ उसमे कोई चरण छोड़ा नहीं जा सकता है। इसलिए कोई मुझसे आकर बार-बार न पूछे कि यह हम छोड़ दें, यह हम छोड़ दें, शरीर को न हिलायें, सिर्फ श्वास लें, श्वास न चलायें, सिर्फ 'मैं कौन हूँ ?' यह पूछें। नहीं, ये तीनों चरण बहुत व्यवस्थित रूप से, वैज्ञानिक ढंग से तनाव की एक अति से दूसरी अति पर ले जाने के लिए हैं।

और इसीलिए मैं कहता हूँ, एक चरण जब पूरी अति पर पहुँचे तब दूसरे में बदला जा सकता है। जैसे कार के गियर (Gear) आप बदलते हैं। पहले गियर में गाड़ी आपने चलायी है तो गति में लानी पड़ती है। जब पहले गियर में गति पूरी आती है तब आप उसे दूसरे गियर में डालते हैं। दूसरे गियर पर वह मंदी गति में है तो आप तीसरे गियर मे नही डाल सकते हैं गाडी को। सब परिवर्तन तीव्रता में होते हैं। चित्त का परिवर्तन भी तीव्रता में होता है।

५. तीव्र श्वास की चोट का रहस्य

और तीनों चरण का क्या अर्थ है, वह भी समझ लेना चाहिए। पहला चरण, जो कि पूरे समय जारी रहेगा, श्वास को गहरी और तीव्रता से लेने का है। गहरा भी लेना है, डीप (Deep) भी और तीव्रता से भी, फास्ट (Fast) भी। जितनी गहरी जा सके उतनी गहरी लेनी है और जितनी तेजी से यह लेने और छोड़ने का काम हो सके, यह करना है। क्यों, श्वास से क्या होगा ?

श्वास मनुष्य के जीवन में सर्वाधिक रहस्यपूर्ण तत्त्व है। श्वास के ही माध्यम से, सेतु से आत्मा और शरीर जुड़ी हैं। इसलिए जब तक श्वास चलती है, हम कहते हैं, आदमी जीवित है। श्वास गयी और आदमी गया।

अभी मैं एक घर में गया, जहाँ नौ महीने से एक स्त्री बेहोश पड़ी है। वह कोमा (Coma) मे आ गई है। और चिकित्सक कहते हैं कि अब वह कभी होश में नहीं आयेगी। लेकिन कम-से-कम तीन साल जिन्दा रह सकती है अभी और। अब उसको बेहोशी में ही दवा और इंजेक्शन और ग्लूकोज दे देकर किसी तरह जिन्दा रखे हुए हैं। वह बेहोश पड़ी है। नौ महीने से उसे कभी होश नहीं आया है। उस स्त्री की माँ से मैंने पूछा कि अब यह तो करीब करीब मर गयी है। उन्होंने कहा, 'नहीं, जब तक श्वास तब तक आस।' उस बूढ़ी औरत ने कहा, जब तक श्वास है तब तक आशा है। अब चिकित्सक कहते हैं कि कोई आशा नहीं है,

लेकिन कौन जाने क्या होगा ? चिकित्सक किसी को कहते हैं, नही मरेगा और वह मर जाता है। कौन जाने एक दफा होश आ जाय, अभी श्वास तो है। अभी सेतु गिरा नही है। अभी ब्रिज (Bridge) है। अभी वापिस लौटना हो सकता है।

६. श्वास की चोट से व्यक्तित्व की सारी जड़ों का कँप उठना

श्वास हमारी आत्मा और शरीर के बीच जोडने वाला सेतु है। श्वास को जब आप बहुत तीव्रता से लेते हैं और बहुत गहराई में लेते हैं तो शरीर ही नही कँपता है, भीतर के आत्म-तन्तु भी कँप जाते है। जैसे एक बोतल रखी है। उसमे बहुत दिनो से कोई चीज भरी रखी है। कभी किसी ने हिलायी नही है। तो ऐसा पता नही चलता कि बोतल और भीतर भरी चीजें दो है। बहुत दिनो से रखी हुई है, मालूम होता है एक ही हैं। बोतल हिला दे जोर से। बोतल हिलती है, भीतर की चीज हिलती है—और तब बोतल और भीतर की चीज के पृथक् होने का स्पष्टीकरण होता है। तो जब श्वास को प्राण समग्र गति से लेते है तो एक झंझावात पैदा होता है, जो शरीर को भी कँपा जाता है और भीतर आत्मा के तन्तुओ को भी कँपा जाता है।

७. शरीर और श्वास से तादात्म्य विच्छेद

उस कम्पन के क्षण मे ही अहसास होता है, दोनों के पृथक् होने का। अब आप मुझसे आकर कहते है कि न ले गहरी श्वास तो कोई हर्ज तो नही है। हर्ज इतना ही है कि आप कभी न जान पायेंगे कि शरीर से पृथक् है। इसीलिए उसमें एक शर्त और जोडी हुई है कि गहरी श्वास ले और भीतर देखते रहें कि श्वास आयी और श्वास गयी। जब आप श्वास को देखेंगे कि श्वास आयी और श्वास गयी तो न केवल शरीर अलग है, यह पता चलेगा बल्कि यह भी पता चलेगा कि श्वास भी अलग है। मैं देखने वाला हूँ, अलग हूँ।

शरीर की पृथकता का पता तो गहरी श्वास के लेने से भी चल जायगा, लेकिन श्वास से भी भिन्न हूँ मैं, इसका पता श्वास के प्रति साक्षी होने से चलेगा। इसलिए पहले चरण मे ये दो बातें है। यह दोनो अन्तिम चरण तक जारी रहेगी, तीसरे चरण तक।

८. दूसरे चरण में दमित देह व मनो-ग्रंथियों का विसर्जन

दूसरे चरण मे शरीर को छोड देने के लिए मै कहता हूं। श्वास गहरी ही रहेगी। शरीर को इसलिए छोड देने को कहता हूँ कि उसके तो बहुत से इम्प्ली-केशन्स (Implications), सम्बन्ध है। दो तीन की बात आपसे कहूँ। पहली तो बात यह है कि शरीर मे हजारो तनाव इकट्ठे आपने कर रखे हैं, जिनका

आपको पता ही नहीं है। सभ्यता ने हमको इतना असहज किया है कि जब आपको किसी पर क्रोध आता है तब भी आप मुस्कराते रहते हैं। शरीर को कुछ पता नहीं है। शरीर तो कहता है कि गर्दन दबा दो इसकी। मुट्ठियाँ बँधती हैं, लेकिन आप मुस्कराते रहते हैं। मुट्ठी नहीं बाँध सकते है। तो शरीर के जो स्नायु मुट्ठी बँधने के लिए तैयार हो गये थे, वे बड़ी मुश्किल में पड़ जाते है। उन्हें पता ही नहीं चलता कि क्या हो रहा है। एक बहुत ही बेचैन स्थिति शरीर में पैदा हो जाती है। मुट्ठी बँधनी चाहिए थी।

अभी जो लोग क्रोध के सम्बन्ध को बहुत गहराई से समझते हैं, वे कहेंगे और मैं भी आपसे कहूँगा, अगर आपको क्रोध आये तो बजाय इसके कि आप झूठे मुस्कराते रहें, टेबल के नीचे जोर से पाँच मिनट मुट्ठियाँ बाँधें और छोड़ें। और तब आपको जो हँसी आयगी, वह बहुत और तरह की होगी।

शरीर को कुछ भी पता नहीं कि आदमी सभ्य हो गया है। शरीर का सारा काम तो बिलकुल यन्त्रवत् है। लेकिन आदमी ने सब पर रोक लगा दी है। *उस रोक के कारण शरीर में हजारों तनाव इकट्ठे हो गये हैं।* और जब बहुत तनाव इकट्ठे हो जाते है, तो कॉम्प्लेक्स (Complex) पैदा होते हैं, ग्रन्थियाँ पैदा होती हैं। तो जब मैं आपसे कहता हूँ शरीर को पूरी तरह से छोड़ दें, तो आपकी हजारों ग्रन्थियाँ जो आपने बचपन से इकट्ठी की हैं, वे सब बिखरनी शुरू होती हैं, पिघलनी शुरू होती हैं। उनका पिघल जाना जरूरी है। अन्यथा आप कभी भी बॉडीलेसनेस (Bodilessness), वह शून्य (देहातीत) न हो पायेंगे, देह तब फूल की तरह हल्की हो जायगी, सब ग्रन्थियों से मुक्त।

महावीर का एक नाम शायद आपने सुना हो। महावीर का एक नाम है, **निर्ग्रन्थ**। नाम बड़ा अद्भुत है। उसका मतलब है, काम्प्लेक्स-लेस (Complex-less)। निर्ग्रन्थ का मतलब है, जिसकी सारी गंथियाँ और गाँठें खो गयी, जिसमें कोई गाँठ नहीं है भीतर। जो बिलकुल सरल हो गया है, निर्दोष हो गया है।

९. सभ्यता प्रदत्त झूठी शिष्टताएँ, संस्कार और संकोच

तो जब शरीर की ग्रन्थियों का जो जाल है हमारे भीतर वह मुक्त होना चाहे तो आप छोड़ते नहीं हो। आपकी सभ्यता, शिष्टता, संस्कार, सकोच, किसी का स्त्री होना, किसी का बड़े पद पर होना, किसी का कुछ, किसी का कुछ होना वह इस बुरी तरह से पकड़े हुए है कि वह छोड़ता नहीं है। अब आज ही एक महिला ने मुझे आकर कहा कि उसे यही डर लगा रहता है कि किसी का हाथ उसको न लग जाय। तो वह बेचारी दूर जाकर बैठी होगी आज। मगर कोई दो-चार करवट लेकर उसके पास पहुँच गया। तो उसका ध्यान फिर गड़बड़ हो गया। वह मुझे पूछने आयी कि क्या मैं और बहुत दूर जाकर बैठूं। मैंने कहा कि भेजने

जाता वहाँ भी भेज दे सकता है किसी को। यह अच्छा ही है कि कोई आता है। वहाँ भी आ जायगा कोई। तुम जहाँ बैठती हो, वहीं बैठो। किसी का हाथ लग जायगा तो क्या हर्ज हो जायगा?

स्त्रियों की हालत तो ऐसी है कि अगर परमात्मा भी मिले तो वे ऐसी साड़ी बचा कर निकल जायेंगी कि वह भी कहीं छू न जाय। स्त्रियों का तो पूरा शरीर ग्रन्थि-ग्रस्त है। बचपन से उनका सारा प्रशिक्षण ऐसा है कि शरीर उनका एक रोग है, शरीर स्त्रियाँ ढो रही हैं। शरीर में जी नहीं रहीं हैं। वह एक बोझ है जिसको पूरे वक्त सुरक्षित करके ढोये चली जा रही हैं। और कुछ भी बचाने जैसा नहीं है उसमें। तो यह छोटा-छोटा आग्रह हमारा बहुत-कुछ रोक लेता है।

अब कोई बहुत पढ़े-लिखे हैं तब उनको ऐसा लगता है, कोई सज्जन आज मुझसे कह रहे थे कि यह इमोशनल (Emotional) लोगों को हो जाता होगा, भावुक लोगों को। इन्टेलेक्चुअल (Intellectual), बौद्धिक लोगों को कैसे होगा? अब कोई दो-चार क्लास पढ़ गया तो वह इण्टेलेक्चुअल, बुद्धिशाली हो गया है। उसकी माँ मरेगी तो रोयेगा कि नहीं वह? उसका किसी से प्रेम होगा कि नहीं होगा? वह इण्टेलेक्चुअल हो गया है। वह चार क्लास पढ़ गया है, उसने युनीवर्सिटी से सर्टिफिकेट ले लिया है। अब वह प्रेम करेगा तो सोच कर करेगा कि चुम्बन लेना कि नहीं, कितने कीटाणु ट्रान्सफर (Transfer) हो जायेंगे। वह किताब पढ़ेगा और जाकर हिसाब-किताब लगायेगा कि इमोशनल होना कि नहीं होना। इण्टेलेक्ट (बुद्धि) भी बीमारी की तरह हो गयी है। इन्टेलेक्ट हमारा कुछ गौरव नहीं बन पायी है। बुद्धि हमारी गरिमा नहीं बनी है। रोग बन गयी है।

१०. भाव की पहुँच बुद्धि से अधिक गहरे

कोई सोचता है कि हम इण्टेलेक्चुअल हैं, बुद्धिवादी हैं। यह हमको नहीं हो सकता है। यह तो उनको हो रहा है जो जरा भावुक हैं। क्यों, भावुक होना कुछ बुरा है? जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, वह भाव से आता है। बुद्धि से किसी श्रेष्ठता का कोई जन्म न कभी हुआ और न कभी हो सकता है। हाँ, गणित का हिसाब लगता है, खाते-बही जोड़े जाते हैं। यह सब होता है। लेकिन जो भी श्रेष्ठ है, वह भाव की संवेदनशीलता से आता है। और आश्चर्य की बात यह है कि विज्ञान, जिसको हम समझते हैं सबसे बड़ी बौद्धिक प्रक्रिया है, उसमें भी जो श्रेष्ठतम आविष्कार होते हैं वे भी भाव से होते हैं, वे भी बुद्धि से नहीं होते हैं।

अगर आइन्स्टीन से जाकर कोई पूछे कि कैसे तुमने रिलेटिविटी (Relativity), सापेक्षता का नियम खोजा? तो वह कहेगा कि मुझे पता नहीं। आ गयी। वह

बड़ी धार्मिक भाषा है कि आ गयी । इट हैपेण्ड (It Happened) । अगर क्यूरी से कोई पूछे कि कैसे तुमने यह रेडियम खोज निकाला ? तो वह कहेगी कि मुझे कुछ पता नहीं है । ऐसा हुआ है । हो गया है । मेरे बस की बात नहीं है । अगर बड़े वैज्ञानिक से जाकर पूछें तो वह भी कहेगा हमारे बस के बाहर हुआ है कुछ । हमारी खोज से नहीं हुआ है । हमसे कहीं ऊपर से कुछ हुआ है । हम सिर्फ माध्यम थे, इन्स्ट्रूमेण्ट (Instrument) थे । बड़ी धार्मिक भाषा है ।

भाव बहुत गहरे में हैं । बुद्धि बहुत ऊपर है । बुद्धि बहुत काम-चलाऊ है । बुद्धि वैसे ही है, जैसे कि गवर्नर की गाड़ी निकलती है और आगे एक पायलट निकलता है । उस पायलट को गवर्नर मत समझ लेना । बुद्धि पायलट से ज्यादा नहीं है । वह रास्ता साफ करती है । लोगों को हटाती है, हिसाब रखती है कि रास्ते पर कोई टक्कर न हो जाय । लेकिन मालिक बहुत पीछे है । वह भाव है, वह इमोशन (Emotion) है । जीवन में जो भी सुन्दर है, श्रेष्ठ है, वह भाव से ही जन्मता और पैदा होता है । लेकिन कुछ लोग पायलट को नमस्कार कर रहे हैं । वे कहते हैं कि हम इण्टेलेक्चुअल हैं, हम बुद्धिवादी हैं । हम पायलट को ही गवर्नर मानते हैं । मानते रहें । पायलट भी बड़ा होकर हँस रहा है ।

११. ध्यान की सफलता संकल्पवान् को ही उपलब्ध

कुछ लोगों को ख्याल है कि कमजोर लोगों को हो जाता है । हम शक्तिशाली हैं, हमको बहुत मुश्किल है । उनको पता नहीं, उनको कुछ भी पता नहीं है । शक्ति-शालियों को होता है । कमजोर खड़े रह जाते हैं । क्योंकि एक घण्टे तक संकल्पपूर्वक किसी भी स्थिति में होना, बहुत स्ट्रांग-विल्ड (Strong Willed), दृढ़ संकल्पवान् के लिए संभव है, कमजोरों के लिए नहीं । कमजोर तो दो मिनट गहरी श्वास लेते हैं, फिर बैठ जाते हैं । अब दूसरों को हो रहा है, उसे वे कहते हैं कि कमजोरों को हो रहा है । वे घण्टे भर गहरी श्वास भी नहीं ले सकते हैं । वे दस मिनट 'मैं कौन हूँ ?' यह भी नही पूछ सकते हैं । इस ख्याल में आप मत पड़ना ।

१२. तथाकथित बुद्धिवादियों का वंचनात्मक अहंकार पोषण

लेकिन ये हमारे रेशनलाइजेशन्स (Rationalizations), बौद्धिक-बचाव हैं । ये हमारी बौद्धिक तरकीबें हैं, जिनसे हम अपने को बचाते हैं । हम कहते हैं, जो कमजोर हैं उनको हो रहा है । हम बहुत ताकतवर हैं । हमको कैसे होगा ? बड़े आश्चर्य की बात है । इस दुनिया में सब चीजें ताकतवरों से से होती हैं । कमजोरों से कुछ भी नहीं होता है । और ध्यान ? ध्यान तो अन्तिम ताकत माँगता है । वे कहेंगे कि कमजोर को हो रहा है और उनको इसलिए नहीं हो पा रहा है कि बगल वाला आदमी जोर से रो रहा है, और जिसको हो रहा है,

रोने का उसे पता नहीं है, कौन देख रहा है, उसे पता नहीं। कौन सोच रहा है, क्या सोच रहा है, पता नहीं। वह अपनी धुन में पूरा लगा है। उतनी धुन का सातत्य बड़ी शक्ति है। कमजोरों को नहीं होता है।

इसलिए अपने अहंकार को व्यर्थ बचाने की कोशिश में मत लगना कि हम ताकतवर हैं, स्ट्रांग-विल्ड हैं, संकल्पवान् हैं, हम इन्टलेक्चुअल हैं, हमको नहीं होगा। नहीं होना इतना ही जानें। नहीं होने के लिए वह और अकड़ कर क्यों चढ़ा रहे हैं, ऊपर से। इससे न होना भी मीठा लगने लगेगा। और फिर होना हमेशा के लिए असम्भव हो जायगा। इतना ही जानें कि मुझे नहीं हो रहा है। नहीं हो रहा है तो कहीं कोई कमजोरी है। उस कमजोरी को पहचानें, समझें और हल करें। उसको बहादुरी न समझें कि हमको नहीं हो रहा है तो हम ताकतवर हैं।

अब एक मित्र आये और उन्होंने कहा कि यह तो हिस्टीरिक (Hysteric) है। किसी को हिस्टीरिया, उन्माद जैसा हो जाता है। उन्हें पता नहीं कि जीवन के भीतर क्या क्या छिपा है! हिस्टीरिक कह कर वे अपने को बचा लेंगे। अब उन्होंने समझ लिया कि ये तो विक्षिप्त लोग हैं, जिनको यह सब हो रहा है। हम, हम तो विक्षिप्त नहीं हैं। इसलिए हमको नहीं हो रहा है। तो फिर बुद्ध भी विक्षिप्त थे और महावीर भी और जीसस और सुकरात और रूमी और मंसूर— सब विक्षिप्त। इन विक्षिप्तों की जात में शामिल होना, आप स्वस्थों की जात में शामिल होने से बेहतर है। इन पागलों की जमात में ही शामिल हो जायेंगे। क्योंकि इन पागलों को जो मिला, वह बुद्धिमानों को नहीं मिला है।

जब शक्ति बहुत तीव्रता से भीतर उठेगी तो सारे व्यक्तित्व में तूफान आ जायगा। यह विक्षिप्तता नहीं है। क्योंकि विक्षिप्तता हो तो फिर शान्त नहीं हो सकते हैं। और जब तीनों चरण के बाद एक क्षण में हम शान्त हो जाते हैं तो हिस्टीरिक नहीं है यह। क्योंकि हिस्टीरिया वाले से कहो, शान्त हो जाओ, अब विश्राम करो। वह उसके वश के बाहर है। यहाँ जो भी हो रहा है, वह हमारे वश के भीतर हो रहा है। हम को-आपरेट (Co-operate) कर रहे हैं। सहयोग कर रहे हैं, इसलिए हो रहा है। इसलिए जिस क्षण अपने सहयोग को अलग कर लेते हैं, वह विदा हो जाता है।

१३. सभ्य लोगों की आन्तरिक विक्षिप्तता

विक्षिप्तता और स्वास्थ्य का एक ही लक्षण है। जिसकी मालकियत हाथ में हो उसको स्वास्थ्य समझना और जिसकी मालकियत हाथ में न हो, उसको विक्षिप्तता समझना। अब यह बड़े मजे का क्राइटेरियन (Criterian) पहचान है। कुछ हो रहा है जिनको, जब मैं कहता हूँ—शान्त हो जायें तो तत्काल वे शान्त हो जाते हैं। और वे जो स्वस्थ बैठे हैं, उनसे मैं कहूँ कि अपने विचारों को

शान्त कर दो, वे कहते हैं, होता ही नहीं, हम कितना ही करें, यह नहीं होता है। विक्षिप्त हैं आप, पागल हैं आप। (जिस पर आपका बस नहीं है, वह पागलपन है। जिस पर आपका बस है, वह स्वास्थ्य है। जिस दिन आप अपने विचार ऑन-ऑफ (On-off) कर सकेंगे, आप कह दें उनको कि बस, तो मन वहीं ठहर जाय—तब आप समझना कि स्वस्थ हुए। लेकिन स्थिति यह है कि आप कह रहे हैं बस, और मन कहता है, कहते रहो, हम जा रहे हैं जहाँ जाना है। जो करना है, कर रहे हैं। सिर पटक रहे हैं, लेकिन वह मन जो करना है, कर रहा है। आप भगवान् का भजन कर रहे हैं और मन सिनेमा-गृह में बैठा है तो वह कहता है कि बैठेंगे, यहीं देखेंगे। करो भजन कितना ही।)

(लेकिन आदमी बहुत चालाक है। और वह अपनी कमजोरियों को भी अच्छे शब्दों में छिपा लेता है। और दूसरे की श्रेष्ठताओं को बहुत बुरे शब्द दे कर निश्चिन्त हो जाता है। इससे बचना। सच तो यह है कि दूसरे के सम्बन्ध में सोचना ही मत। किस को क्या हो रहा है, कहना बहुत मुश्किल है। जीवन इतना रहस्यपूर्ण है कि दूसरे के सम्बन्ध में सोचना ही मत। अपने ही सम्बन्ध में सोच लेना, वही काफी है। कहीं मैं तो पागल नहीं हूँ, इतना सोच लेना। मैं कमजोर हूँ, ताकतवर हूँ, क्या हूँ, अपने बाबत सोचना। लेकिन हम सदा सब दूसरों के बाबत सोच रहे हैं कि किस को क्या हो रहा है। गलत है वह बात।)

शरीर को पूरी तरह छोड़ देने में, एक तो मैंने कहा, कैथे-रेचन होता है, वे जो रुके हुए अवरोध हैं वे सब बह जाते हैं। दूसरा जब शरीर अपनी गति से चलता है, आप नहीं चलाते, अपनी गति से चलता है, तब शरीर की पृथकता बहुत स्पष्ट होती है। क्योंकि आप देख रहे हैं और शरीर घूम रहा है। आप देख रहे हैं और शरीर खड़ा हो गया है। आप देख रहे हैं कि मैं नहीं कँपा रहा हूँ और हाथ कँप रहा है। तब आपको पहली दफा पता चलता है कि मेरा होना और शरीर का होना कुछ अलग मामला है। तब आपको यह भी पता चल जायगा कि जवान भी मैं नहीं हुआ, शरीर हुआ है। बूढ़ा भी शरीर होगा, मैं नहीं होऊँगा। और अगर यह गहरा आपको पता चला तो पता चलेगा कि मरेगा भी शरीर, मैं नहीं मरूँगा। इसलिए शरीर की पृथकता बहुत गहरे में दिखाई पड़ेगी जब शरीर यन्त्रवत् घूमने लगेगा।

उसे पूरी तरह छोड़ देना, तभी पता चलेगा।

१४. 'मैं कौन हूँ ?' की चोट स्व-अस्तित्व के केन्द्र पर

और तीसरी सीढ़ी में हम पूछते हैं, 'मैं कौन हूँ ?' क्योंकि यह पता चल जाय कि शरीर नहीं हूँ, यह भी पता चल जाय कि श्वास नहीं हूँ, तब भी यह पता नहीं चलता कि मैं कौन हूँ ? यह निगेटिव हुआ—शरीर नहीं हूँ, श्वास नहीं हूँ।

यह तो निगेटिव हुआ। लेकिन पॉजीटिव ? यह अभी पता नहीं चलता कि 'मैं कौन हूँ।' इसलिए तीसरा कदम है जिसमें हम पूछते हैं कि मैं कौन हूँ। किस से पूछते हैं ? किसी से पूछने को नहीं है। खुद से ही पूछ रहे हैं। अपने को ही पूरी तरह से सवाल से भर रहे हैं कि मैं कौन हूँ। जिस दिन यह सवाल पूरी तरह आपके भीतर भर जायगा, उस दिन आप पायेंगे कि उत्तर आ गया, आपके ही भीतर से। क्योंकि यह नहीं हो सकता कि गहरे तल पर आपको पता न हो कि आप कौन हैं। जब हैं, तो यह भी पता होगा कि कौन हैं। लेकिन वहाँ तक सवाल को ले जाना जरूरी है।

जैसे कि जमीन में पानी है। ऊपर हम खड़े हैं, प्यासे हैं और जमीन में पानी है। लेकिन बीच में ३० फीट की खुदाई करनी जरूरी है। वह ३० फीट खुद जाय तो पानी निकल आये। हमें जिज्ञासा है कि 'कौन हूँ' तो जवाब भी कहीं ३० फीट गहरे हममें है, लेकिन बीच में बहुत सी पर्तें हैं, जो कट जायें तो उत्तर मिल जाय। तो वह जो 'मैं कौन हूँ ?' है, वह कुदाली का काम करता है। मैं कौन हूँ, इसे जितनी गति से पूछते हैं, उतनी ही खुदाई होती है, लेकिन पूछ नहीं पाते हैं।

कई दफा बहुत अद्भुत घटना हो जाती है। एक मित्र को सुबह एक बहुत अद्भुत घटना दो दिन से घटती है। वह बहुत समझने जैसी है। वे बड़ी ताकत से पूछते हैं, वे पूरा श्रम लगाते हैं। उनके श्रम में कोई कमी नहीं है, उनके संकल्प में कोई कमी नहीं है। लेकिन मन की कितनी पर्तें हैं ! वे ऊपर से पूछते जाते हैं, मैं कौन हूँ ? इतने जोर से पूछते हैं कि उनका ऊपर भी निकलने लगता है कि 'मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ?' और इसमें बीच-बीच में एक-एक दफा यह भी आवाज आती है, इससे क्या होगा, इससे क्या होगा। मैं कौन हूँ, यह भी पूछते चले जाते हैं और बीच में कभी-कभी यह भी मुँह से निकलता है, इससे क्या होगा। यह कौन कह रहा है ? मैं कौन हूँ, यह आप पूछ रहे हैं। 'इससे क्या होगा', यह कौन कह रहा है ? यह मन की दूसरी पर्त कह रही है। वह कह रही है— कुछ भी न होगा, क्यों पूछ रहे हो, चुप हो जाओ ?

मन की एक पर्त पूछ रही है मैं कौन हूँ, दूसरी पर्त कह रही है कुछ भी न होगा। चुप हो जाओ, क्या पूछ रहे हो ?(अगर मन में खण्ड-खण्ड रह गये तो फिर भीतर न घुस पायेंगे। इसलिए मैं कहता हूँ पूरी ताकत लगा कर पूछना है ताकि पूरा मन धीरे-धीरे इनह्वाल्वड (Involveld) हो जाय, जुट जाय, पूरा मन ही पूछने लगे कि मैं कौन हूँ। जिस क्षण प्रश्न ही रह जायगा, तब प्रश्न तीर की तरह भीतर उतरता है। उस दिन उत्तर आने में देर न लगेगी। उत्तर आ जायगा। उत्तर भीतर है।)

१५. तीन चरण आप करेंगे, चौथा आप ही आप घटित होगा

ज्ञान भीतर है। हमने कभी पूछा नहीं है। हमने कभी जगाया नहीं है। वह जगने को तैयार है। इसलिए ये तीन चरण हैं। लेकिन ये तीन, दरवाजे के बाहर की बातें हैं। दरवाजे तक छोड़ देती हैं। दरवाजे के भीतर प्रवेश तो चौथे चरण में होगा। लेकिन जो तीन सीढ़ियाँ नहीं चढ़ा वह दरवाजे में प्रवेश भी नहीं कर सकेगा। इसलिए ध्यान रखें, कल तो अन्तिम दिन है हमारा, कल पूरी ताकत लगाना जरूरी है। इन तीन चरणों में पूरी ताकत लगायें। तो चौथा चरण घटित हो जायेगा। वह चौथा आप करेंगे नहीं, वह होगा।

तीन आप करेंगे, चौथा होगा।

एक महिला का प्रश्न : आचार्य जी, चौथा चरण उपलब्ध हो जाने के बाद पहले तीन चरण छूट ही जायेंगे न ?

चौथा हो जायगा, फिर कोई सवाल नहीं है। फिर जैसा जिन्हें लगेगा, वह दिखाई पड़ेगा। करने जैसा लगेगा तो जारी रहेगा, नहीं करने जैसा लगेगा तो छूट जायगा। लेकिन यह भी पहले से नहीं कहा जा सकता है। इसलिए नही कहा जा सकता है कि जब हम पहले से ही यह सवाल पूछते हैं कि 'जब चौथा हो जायगा तब ये तीन छूट जायेंगे न' तब अभी जो हो रहा है, हमारा मन उसे नहीं करना चाह रहा है, इसलिए नही कर पा रहा है।

इन तीन के छूटने में हमें बड़ी उत्सुकता, आतुरता, प्रतीक्षा है।...मैं नहीं कहूँगा कि ये छूट जायेंगे। क्योंकि अगर मैं कह दूँ कि छूट जायेंगे तो अभी ही नहीं पकड़ पायेंगे उनको आप। छूट जायेंगे, लेकिन वह चौथे के बाद की बात है। पहले बात नहीं उठानी चाहिए।

हमारा मन बहुत तरह से डिसीव (Deceive) करता है, वंचना करता है। जब तुम पूछ रही हो तो तुम्हें ख्याल नहीं है कि तुम क्यों पूछ रही हो। बिलकुल इसलिए पूछ रही हो कि इन तीन से किस तरह छुटकारा हो। इन तीन से छुटकारा अगर होगा तो चौथा पैदा ही नहीं होने वाला है। पर इन तीन का भय क्यों है ? इनका भय है। और वही भय मिटाने के लिए तो ये तीन हैं।

१६. दमित वृत्तियों के रेचन (Catharsis) का साहस

इनका भय है कि शरीर कुछ भी कर सकता है। तो कहीं ऐसा कुछ न कर दे। पर क्या करेगा ? नाच सकती हो, रो सकती हो, चिल्ला सकती हो, गिरोगी...आखिर कठिनाई क्या है ? पहले चरण पर तीव्र श्वास जारी करो। दूसरे चरण पर तीव्र श्वास जारी रखो और शरीर को ढीला छोड़ दो। तीव्र श्वास और शरीर के ढीले होने में कोई बाधा नहीं है, किसी तरह की बाधा नहीं

है। (तीसरे चरण में श्वास जारी रहेगी, शरीर ढीला रहेगा और तीव्रता से पूछेंगे, मैं कौन हूँ।)...तुम्हें कुछ करना थोड़े ही है कि नाचो। अगर तुम नाचो तो श्वास में बाधा पड़ेगी। लेकिन अगर नाचना हो जाय तो श्वास में बाधा नहीं पड़ेगी। तुम्हें नहीं नाचना है। अगर नाचना हो जाय तो हो जाय। तो जो होता हो, हो जाय। हमारी कठिनाई यह है कि या तो हम रोकेंगे या हम करेंगे। होने हम न देंगे। लोग कुछ भी करने को राजी हैं। या तो हम नाच को रोक लेंगे या फिर हम नाच सकते हैं। लेकिन हम होने न देंगे।

आदमी की पूरी सभ्यता सप्रेसिव (Suppressive), दमन से भरी हुई है। हमने बहुत-सी चीजें दबाई हुई हैं और हमें डर है कि वह सब निकल न आये। हम बहुत भयभीत हैं। हम ज्वालामुखी पर बैठे हैं। बहुत डर है हमें। नाचने का ही सवाल नहीं है।

डर बहुत गहरे हैं। हमने खुद को इतना दबाया है कि हमें बहुत पता है कि क्या-क्या निकल सकता है उसमें से। बेटे ने बाप की हत्या करनी चाही है। डरा हुआ है कि कहीं यह ख्याल न निकल आये। पति ने पत्नी की गर्दन दबा देनी चाही है, हालांकि गर्दन जब दबाना चाह रहा था; तभी वह कह रहा था कि तेरे बिना मैं एक क्षण नहीं जी सकता। और उसकी गर्दन भी दबा देनी चाही थी। उसने दबाया हुआ है भीतर। उसे डर लगता है कि किसी क्षण में यह निकल न आये।

गुरजिएफ एक फकीर था और इस जमाने में कुछ कीमती लोगों में से एक था। उसके पास आप जाते तो पहला काम वह यह करता कि १५ दिन तो आपको शराब पिलाता, रात-रात आपको शराब पिलाता और जब तक १५ दिन आपको वह शराब पिला-पिलाकर आपकी स्टॅडी (Study), अध्ययन न कर लेता, तब तक वह आपको साधना में न ले जाता। क्योंकि १५ दिन वह शराब पिला-पिला कर आपके सब दमित रोगों को निकलवा लेता और पहचान लेता कि आदमी कैसे हो, क्या क्या दबाया है, तब फिर उसके बाद साधना में लगाता। अगर कोई कहता कि नहीं, यह १५ दिन हम शराब पीने को राजी नहीं हैं तो वह कहता— दरवाजा खुला है, एकदम बाहर हो जाओ। शायद ही दुनिया में किसी फकीर ने शराब पिलायी हो। लेकिन वह समझदार था। उसकी समझ कीमती थी। और वह ठीक कर रहा था। क्योंकि हमने बहुत दबाया है। हमारे दमन का कोई हिसाब नहीं है। कोई अन्त नहीं है हमारे दमन का।

उस दमन की वजह से हम डरते हैं कि कहीं कुछ प्रकट न हो जाय। कहीं मुँह से कोई बात न निकल जाय। कहीं ऐसा न हो जाय कि जो बात नहीं कहनी थी, नहीं बतानी थी, वह आ जाय। अब किसी ने चोरी की है, तो वह पूछने से डरेगा

कि मैं कौन हूँ। क्योंकि मन कहेगा कि तुम चोर हो। यह जोर से निकल सकता है कि चोर हो, बेईमान हो, काला-बाजारी हो। यह कहीं न निकल जाय! तो वह कहेगा कि पूछना कि नहीं? जरा धीरे-धीरे पूछो कि मैं कौन हूँ, क्योंकि पता तो है कि 'मैं कौन हूँ?' मैं चोर हूँ। तो वह दबा रहा है उसे। तो वह डर रहा है। वह धीरे-धीरे पूछ रहा है कि बगल वाले को कहीं यह सुनाई न पड़ जाय, कहीं मुँह से न निकल जाय कि मैंने चोरी की है। यह निकल सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है बहुत। तो हमारे कारण हैं, हमारे पूछने के कारण हैं कि हम क्यों पूछते हैं कि ये जल्दी छूट जायँ, न करना पड़े। लेकिन नहीं, करने ही पड़ेंगे। छूट सकते हैं, करने से छूटेंगे। और भीतर से जो आता है उसे आने दें। वहाँ बहुत गंदगी छिपी है, वह बाहर आयेगी। हमने एक चेहरा ऊपर बनाया है, वह हमारा असली चेहरा नहीं है। तो हम डरते हैं।

१७. नकली चेहरों का प्रकटीकरण

अब एक आदमी अपना चेहरा लीप-पोत कर किसी तरह बना कर बैठा हुआ है। अब वह डरता है कि अगर छोड़ा तो चेहरा कुरूप हो जाता है। तो वह डरता है कि यह कुरूप चेहरा कोई देख न ले। क्योंकि वह तो कितना आइने में तैयार होकर आया है घर से। अब वह डरता है कि कहीं मैंने चेहरा बिलकुल छोड़ दिया तो चेहरा कुरूप भी हो सकता है। और जब छोड़ूँगा तो पाउडर और लिपिस्टिक उस पर काम नहीं पड़ेंगे, एकदम गड़बड़ा जायेंगे। असली चेहरा निकल सकता है। तो वह डरेगा, वह कहेगा कि नहीं, और सब छोड़ा जा सकता है, लेकिन चेहरे को नहीं छोड़ा जा सकता। उसे किसी तरह बना कर रखेगा। हमारे सब चेहरे मेकअप, सजावट के चेहरे हैं, असली चेहरे नहीं हैं। और ऐसा मत सोचना कि जो पाउडर नहीं लगाते उनके मेकअप के नहीं हैं। मेकअप बहुत गहरा है, बिना पाउडर के भी चलता है। तो असली चेहरा निकल आयेगा। अब असली चेहरा निकल आये तो घबड़ाहट हो सकती है, कोई देख न ले। इसलिए हमारे डर हैं, लेकिन ये डर खतरनाक हैं। इन डरों को लेकर भीतर नहीं जाया जा सकता है। ये डर छोड़ने पड़ेंगे।

१८. शक्तिपात और अहंशून्य माध्यम

एक अन्तिम सवाल। एक मित्र पूछते हैं कि शक्ति-पात क्या है? क्या कोई शक्ति-पात कर सकता है?

शक्तिपात कोई कर नहीं सकता, लेकिन किसी से हो सकता है। कोई कर नहीं सकता है। और अगर कोई कहता हो कि मैं शक्ति-पात करता हूँ, तो फिर सब धोखे की बातें हैं। कोई कर नहीं सकता है, लेकिन किसी क्षण में किसी से

हो सकता है। अगर कोई बहुत शून्य व्यक्ति है, सब भाँति समर्पित, सब भाँति शून्य, तो उसके सान्निध्य में शक्ति-पात हो सकता है। वह कण्डक्टर (Conductor), माध्यम का काम कर सकता है। जान कर नहीं। परमात्मा की विराट् शक्ति उसके माध्यम से किसी दूसरे में प्रवेश कर सकती है।

लेकिन कोई जान कर कण्डक्टर नहीं बन सकता है। क्योंकि कण्डक्टर बनने की पहली शर्त यह है कि आपको पता न हो। इगो (·Ego), अहंकार न हो। नहीं तो नॉन-कण्डक्टर (Non-Conductor), माध्यम के अयोग्य हो जाते हैं फौरन। जहाँ इगो है बीच में, वहाँ आदमी नॉन-कण्डक्टर हो जाता है, फिर वहाँ से शक्ति प्रवाहित नहीं होती है। तो अगर ऐसे व्यक्ति के पास जो समग्र भाँति भीतर से शून्य है और जो कुछ नहीं करना चाहता है, आपके लिए कुछ करता ही नहीं है। उसके वेक्यूम (Vacuum) से, उसके शून्य से, उसके द्वार से, उसके मार्ग से परमात्मा की शक्ति आप तक पहुँच सकती है। और गति बहुत तीव्र हो सकती है। कल दोपहर के मौन में इसको ख्याल में लें।

शक्ति-पात का अर्थ है कि परमात्मा की शक्ति आप पर उतर गयी। शक्ति का विस्फोट दो तरह से सम्भव है—या तो आपसे शक्ति उठे और परमात्मा तक मिल जाय या परमात्मा से शक्ति आये और आप तक मिल जाय। बात एक ही है। दो तरफ से देखने के ढंग हैं। यह ऐसे ही है जैसे कि एक गिलास में आधा गिलास पानी रखा हो। कोई कहे कि आधा गिलास खाली है और कोई कहे कि आधा गिलास भरा है। और अगर पण्डित हों तो विवाद करें और तय न हो पाये कभी भी कि क्या मामला है, क्योंकि दोनों ही बातें सही हैं। ऊपर से भी शक्ति उतरती है और नीचे से भी शक्ति जाती है और जब उनका मिलन होता है, जहाँ आपके भीतर सोयी हुई ऊर्जा विराट् की ऊर्जा से मिलती है, तब एक्सप्लोजन (Explosion), विस्फोट हो जाता है।

(उस विस्फोट के लिए कोई भविष्य-वाणी नहीं की जा सकती है। उस विस्फोट से क्या होगा, यह भी नहीं कहा जा सकता है। उस विस्फोट के बाद क्या होगा, यह भी नहीं कहा जा सकता है। वैसे दुनिया में जिन लोगों को भी वह विस्फोट हुआ है, वे जिन्दगी भर यही चिल्लाते रहे कि आओ तुम भी उस विस्फोट से गुजर जाओ। कुछ हुआ है जो अनिर्वचनीय है।)

शक्ति-पात का अर्थ है, ऊपर से शक्ति आ जाय। आ सकती है। रोज आती है। और किसी ऐसे व्यक्ति के माध्यम को ले सकती है वह शक्ति, जो सब भाँति शून्य हो। तो वह कण्डक्टर हो जाता है। और कुछ भी नहीं। लेकिन अगर अहंकार थोड़ा भी है, इतना भी कि मैं कर दूँगा शक्ति-पात, तो नॉन-कण्डक्टर हो गया वह आदमी। उससे शक्ति नहीं प्रवाहित होगी।

१९. खड़े होकर प्रयोग करने से गति तीव्रतम

कल सुबह और सांझ के लिए दो सूचनाएँ ख्याल में ले लें। कल आखिरी दिन है और बहुत-कुछ सम्भव हो सकता है। बहुत सम्भावनाओं से भर कर ही कल सुबह प्रयोग करना है। एक तो, जिनको थोड़ा भी शरीर में कहीं भी कुछ हो रहा है, कल सुबह वे खड़े होकर प्रयोग करेंगे। क्योंकि खड़े होकर तीव्रतम गति सम्भव होती है। यह आपको पता न होगा कि महावीर ने सारा ध्यान खड़े होकर किया है।

खड़ी हालत में तीव्रतम प्रवाह होता है। मैंने आपको इसलिए अब तक खड़े होने को नहीं कहा कि आप बैठने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं, तो खड़े होने की हिम्मत कैसे जुटाते। खड़े होने पर बहुत जोर से शक्ति का आघात होता है। तो बिलकुल पागल होकर नाच उठ सकते हैं, वह खड़े होने में सम्भव हो जाता। तो कल चूँकि आखिरी दिन है और कुछ दस-पच्चीस मित्रों को तो बहुत गहराई हुई है तो वे तो कल खड़े हो जायें। मैं नाम नहीं लूँगा। अपने आप खड़े हो जायें। और शुरू से ही खड़े होकर करना है। कुछ लोग जिनको बीच में लगेगा वे भी खड़े हो जायेंगे। और खड़े होकर जो भी होता हो, होने दें। और दोपहर के लिए, कल दोपहर के मौन में जब हम बैठेंगे तो मेरे पास थोड़ी ज्यादा जगह छोड़ना और मेरे पास जो भी लोग आयेंगे और जब मैं उनके सिर पर हाथ रखूँ तब उनको जो भी हो तब उन्हें उसमें भी होने देना है। अगर उनके मुँह से चीख निकल जाय, हाथ-पैर हिलने लगें, वे गिर पड़ें, खड़े हो जायें, उन्हें जो भी हो, वह होने देना है। इसलिए मेरे पास कल दोपहर थोड़ी ज्यादा जगह छोड़ कर बैठेंगे। और जिनको भी हिम्मत हो उनको खड़े होकर ही सुबह का प्रयोग करना है। मेरे आने के पहले ही आप चुपचाप खड़े रहें। कोई सहारा लेकर खड़ा नहीं होगा कि आप किसी वृक्ष से टिक कर खड़े हो जायें। कोई सहारा लेकर खड़ा नहीं होगा, सीधे आप खड़े रहेंगे।

शक्ति-पात की बात आपने पूछी है। खड़ी हालत में बहुत लोगों को शक्ति-पात की स्थिति हो सकती है। और वातावरण बना है, उसका पूरा उपयोग किया जा सकता है। तो कल चूँकि आखिरी दिन होगा शिविर का, कल पूरी शक्ति लगा देनी है।

प्रश्न : जो तीन चरण आपने कहे उनका बॉडी के ऊपर, हार्ट के ऊपर, नर्वस सिस्टम और ब्रेन के ऊपर क्या फिजिकल और मेण्टल असर होता है ?

बहुत-से असर पड़ते हैं।

(एक आवाज :) हार्ट-फेल तो नहीं हो जायगा ? (. . .हँसी, चारों ओर से) हार्ट-फेल ही हो जाय तो मजा ही आ जाय, फिर क्या है ! वही तो नहीं होता है, उसे हो जाने दें, हो जाने दें। उसको बचाये फिरियेगा, फिर होगा

तो फेल, तो मत बचाइये, हो जाने दीजिये। और इतना तो आनन्द रहेगा कि भगवान् के रास्ते पर हुआ। उतना काफी है।

२०. इस ध्यान-प्रयोग के शारीरिक व मानसिक परिणाम

वे मित्र पूछते हैं कि क्या-क्या परिणाम होंगे ? परिणाम तो बहुत होंगे। जिस प्रयोग को मैं कह रहा हूँ ध्यान, उससे शरीर पर बहुत फीजियोलाजिकल परिणाम होंगे। शरीर की बहुत-सी बीमारियाँ विदा हो सकती हैं, शरीर की उम्र बढ़ सकती है, बहुत केमिकल (Chemical), रासायनिक परिवर्तन होंगे। शरीर में बहुत-सी ग्रन्थियाँ हैं जो करीब-करीब मृतप्राय पड़ी रहती हैं, वे सब सक्रिय हो सकती हैं।

जैसे हमें ख्याल नहीं है, अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं, फीजियोलॉजिस्ट (Physio-Logist), शरीरशास्त्री भी कहते हैं कि क्रोध में शरीर में विशेष तरह के विष छूट जाते हैं। लेकिन अभी तक मनोवैज्ञानिक और फीजियोलॉजिस्ट यह नहीं बता पाते कि प्रेम में क्या होता है। क्रोध में तो विशेष प्रकार के केमिकल्स शरीर में छूट जाते हैं, विष छूट जाते हैं। सारा शरीर विषाक्त हो जाता है। प्रेम में भी अमृत छूटता है, लेकिन चूँकि मुश्किल से कभी छूटता है, इसलिए फीजियोलॉजिस्ट की लेबोरेटरी (Laboratory), प्रयोगशाला में अभी वह आदमी नहीं पहुँचा है। इसलिए उसे पता नहीं चल पाता है। अगर ध्यान का पूरा परिणाम हो तो जैसे शरीर में क्रोध में विष छूटता है, ऐसे प्रेम के अमृत रस छूटने शुरू हो जाते हैं। केमिकल परिणाम और भी गहरे होते हैं। जैसे जो लोग भी ध्यान में थोड़े गहरे उतरते हैं उन्हें अद्भुत रंग दिखाई पड़ते हैं, अद्भुत सुगन्धें मालूम पड़ने लगती हैं, अद्भुत ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगती हैं, प्रकाश की धाराएँ बहने लगती हैं, नाद सुनाई पड़ने लगते हैं। यह सबके सब केमिकल परिणाम हैं। ऐसे रंग जो आपने कभी नहीं देखे, दिखाई पड़ने लगते हैं, शरीर की पूरी केमिस्ट्री (Chemistry), रासायनिक रचना बदलती है। शरीर और ढंग देखना, सोचना, पहचानना शुरू कर देता है। शरीर के भीतर बहने वाली विद्युत् धारा की सारी धाराएँ बदल जाती हैं। उन विद्युत्-धाराओं के सारे सर्किट बदल जाते हैं।

बहुत-कुछ होता है शरीर के भीतर। मानसिक तल पर भी बहुत-कुछ होता है, लेकिन वह विस्तार की बात है। वे जो मित्र पूछते हैं, उनसे कभी अलग से बात कर लूँगा। बहुत-कुछ सम्भावनाएँ हैं।

२१. गहरी श्वास का रासायनिक प्रभाव

प्रश्न : गहरी श्वास, डीप ब्रीदिंग का ब्रेन (Brain), मस्तिष्क, हार्ट (Heart), हृदय आदि पर क्या असर पड़ता है ?

जैसे ही शरीर में डीप-ब्रीदिंग (Deep Breathing) शुरू करेंगे तो कार्बन डाय-ऑक्साइड और ऑक्सीजन की मात्राओं का जो अनुपात है, वह बदल जायगा। और जैसे ही कार्बन डाय-ऑक्साइड का अनुपात बदलता है वैसे ही सारे मस्तिष्क, सारे शरीर और खून और स्नायुओं में, सब में परिवर्तन शुरू हो जायगा। क्योंकि हमारे व्यक्तित्व का सारा आधार आक्सीजन और कार्बन डाय-ऑक्साइड के विशेष अनुपात पर है। उनके अनुपात में परिवर्तन, सारा परिवर्तन ले आयेगा। तो इसीलिए मैंने कहा कि अलग से आप आ जायें। वह तो टेकनीकल बात है। सबको उस सब में रस नहीं भी हो सकता है, तो आपसे बात कर लूँगा।

२२. ध्यान का प्रयोग और आत्म-सम्मोहन

एक मित्र इधर पूछते हैं कि यह जो ध्यान की बात है, यह कहीं आटो-हिप्नोसिस (Auto-Hypnosis), आत्म-सम्मोहन तो नहीं है ?

आत्म-सम्मोहन से बहुत दूर तक मेल है। आखिरी बिन्दु पर रास्ता अलग हो जाता है। हिप्नोसिस (Hypnosis), सम्मोहन से बहुत दूर तक सम्बन्ध है। सारे तीनो चरण हिप्नोसिस के हैं। सिर्फ साक्षी-भाव हिप्नोसिस का नहीं है। इस प्रयोग मे पूरे समय विटनेसिंग (Witnessing), साक्षी-भाव चाहिए कि मैं जान रहा हूँ, देख रहा हूँ कि श्वास आयी और गयी, शरीर कम्पित हो रहा है। 'मैं जान रहा हूँ, देख रहा हूँ', यह जो भाव है वह सम्मोहन का नहीं है। वही फर्क है। और यह बहुत बुनियादी फर्क है। बाकी तो सारा सम्मोहन की प्रक्रिया है।

सम्मोहन की प्रक्रिया बड़ी कीमती है, अगर वह साक्षी-भाव से जुड़ जाय तो ध्यान बन जाती है। और अगर साक्षी-भाव से अलग हो जाय तो मूर्छा बन जाती है। अगर सिर्फ हिप्नोसिस का उपयोग करें तो बेहोश हो जायेंगे। अगर साक्षी-भाव का भी साथ में उपयोग करें, तो जागृत हो जायेंगे। फर्क दोनों में बहुत है, लेकिन रास्ता बहुत दूर तक एक-सा है, आखिरी बिन्दु पर अलग हो जाता है।

और कुछ प्रश्न रह गये, उनके बारे में कल रात हम बात कर लेंगे।

●

५. (अ) ध्यान का चौथा, अंतिम प्रयोग
साधना-शिविर, नारगोल, प्रातःकाल, ५ मई १९७०

●

ध्यान : एक नये आयाम की खोज : कुण्डलिनी, शक्तिपात व प्रभु-प्रसाद

मेरे प्रिय आत्मन्,

बहुत आशा और संकल्प से भर कर आज का प्रयोग करें। जानें कि होगा ही। जैसे सूर्य निकला है, ऐसे ही भीतर भी प्रकाश फैलेगा। जैसे सुबह फूल खिले हैं, ऐसे ही आनन्द के फूल भीतर भी खिलेंगे। **पूरी आशा से जो चलता है वह पहुँच जाता है और जो पूरी प्यास से पुकारता है उसे मिल जाता है।** जो मित्र खड़े हो सकते हों वे **खड़े होकर ही प्रयोग को करेंगे।** जो मित्र खड़े हैं, उनके आसपास जो लोग बैठे हैं, वे थोड़ा हट जायेंगे ताकि कोई गिरे तो किसी के ऊपर न गिर जाय। खड़े होने पर बहुत जोर से क्रिया होती है। पूरा शरीर नाचने लगेगा, आनन्द-मग्न होकर। इसलिए पास कोई बैठा हो वह हट जाय। जो मित्र खड़े हुए हैं उनके आस-पास थोड़ी जगह छोड़ दें, शीघ्रता से। और **पूरा साहस करना है, जरा भी अपने भीतर कोई कमी नहीं छोड़नी है।**

प्रथम चरण : तीव्र व गहरी श्वास की चोट

आँख बन्द कर लें...गहरी श्वास लेना शुरू करें। गहरी श्वास लें और **गहरी श्वास छोड़ें...और भीतर देखते रहें, श्वास आयी, श्वास गयी।** गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। (प्रयोग शुरू करते ही चारों तरफ अनेक स्त्री और पुरुष साधक रोने, चिल्लाने और चीखने लगे। बहुत लोगों का शरीर कँपने लगा और अनेक तरह की क्रियाएँ होने लगीं)।...गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें।

...(३ बार सुझाव)। शक्ति पूरी लगायें। दस मिनट के लिए गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें...(बहुत से साधक अनेक तरह से नाचने, कूदने, उछलने, रोने, चीखने और चिल्लाने लगे, साथ ही उनके मुँह से अनेक प्रकार की आवाजें निकलने लगीं,...कुछ लोग हुँकारने लगे,...'हूँ—ऊँ' की लम्बी आवाजें,...आऽऽऽऽऽऽऽऽ की तीव्र आवाजें निकलने लगी)...।

आचार्यश्री का सुझाव देना चलता रहा...गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें...पूरी शक्ति लगायें।...गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें और भीतर देखते रहें...(चीत्कार...चीख...इत्यादि)...गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें. .गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें और भीतर देखते रहें—श्वास आ रही, श्वास जा रही। . .शक्ति पूरी लगा दें...और गहरी, और गहरी...और गहरी...श्वास मे पूरी शक्ति लगा दें। एक १० मिनट पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास. .गहरी श्वास...गहरी श्वास। (कुछ लोगों का हँसना, अट्टहास करना) ..गहरी श्वास...गहरी श्वास...गहरी श्वास...(लोगों का चीखना, चिल्लाना ..)। गहरी श्वास...गहरी श्वास.. गहरी श्वास . भीतर देखते रहें—श्वास आयी, श्वास गयी.. पूरी शक्ति लगा दें। कुछ भी बचायें नही, शक्ति पूरी लगा दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास ..(४ बार)।..शरीर ऊर्जा का एक पुंज मात्र रह जायेगा। श्वास ही श्वास रह जायगी। शरीर एक विद्युत् बन जायगा। गहरी श्वास. .(रोना, चीखना इत्यादि...एक व्यक्ति का जोर से चिल्लाना—बोल रजनीश!)

(आचार्यश्री का कहना जारी रहा)—गहरी श्वास, गहरी श्वास.. (५ बार) ...कोई पीछे न रहे, पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास...गहरी श्वास...(साधकों का हँसना, बडबड़ाना, हुँकार करना, चीखना नाचना, कूदना ..)। ५ मिनट बचे हैं, पूरी शक्ति लगायें। फिर हम दूसरे सूत्र में प्रवेश करेंगे...गहरी श्वास.. (६ बार)। (बीच-बीच में अनेक साधको का चीखना, चिल्लाना, उछलना और मुंह से अनेक तरह की आवाजें निकालना.. आऽऽऽऽ आऽऽऽऽऽऽ...)। शरीर सिर्फ एक यन्त्र मात्र रह जाय, श्वास लेने का एक यन्त्र मात्र रह जाय ..सिर्फ श्वास ही रह जायँ .गहरी श्वास, गहरी श्वास...(४ बार)।.. (एक साधक का तीव्रतम आवाज मे चीखना...) पूरी शक्ति लगा दें.. गहरी श्वास ..गहरी श्वास, गहरी श्वास.. सिर्फ श्वास ही रह गयी है, सिर्फ श्वास ही रह गयी है...कमजोरी न करें, रुकें न, ताकत पूरी लगा दें ..कुछ बचाये न, ताकत पूरी लगा दें...(अनेक तरह की चीखने और चीत्कार की आवाजें. .)। पूरी शक्ति लगा दें, पूरी शक्ति लगा दें ..(४ बार)...(साधको का मुँह से तीव्र आवाजें निकालना और हाँफना... चिल्लाना, उछलना, कूदना)।

(आचार्यश्री कहते रहे)—पूरी शक्ति लगा दें। पीछे न रुकें, पीछे न रुके। यह पूरा वातावरण चार्ज्ड (Charged) हो जायगा। शक्ति पूरी लगा दें... घटना घटेगी ही। शक्ति पूरी लगा दें...गहरी श्वास...और गहरी श्वास... और गहरी श्वास...(५ बार)...(बीच-बीच में कुछ लोगों का रोना, चीखना... शरीर एवं श्वास की अनेक प्रक्रियाएँ लगातार चलती ही रहीं)...शक्ति पूरी लगायें...देखें, रुकें न। मैं आपके पास ही आकर कह रहा हूँ—शक्ति पूरी लगा दें। पीछे कहने को न हो कि नहीं हुआ। पूरी शक्ति लगायें...पूरी शक्ति लगायें... (४ बार)।...गहरी श्वास, और गहरी, और गहरी। जितनी गहरी श्वास होगी सोयी हुई शक्ति के जगने में उतनी ही सहायता मिलेगी...कुण्डलिनी ऊपर की ओर उठने लगेगी। गहरी श्वास लें...गहरी श्वास लें...(४बार)।...(कुछ लोगों का जोर से रोना, चीखना...)कुण्डलिनी ऊपर की ओर उठनी शुरू होगी, गहरी श्वास लें। शक्ति ऊपर उठने लगेगी, गहरी श्वास लें...(एक साधक का तीव्रतम आवाज में चीत्कार करना—क्याऽऽऽऽऽ क्याऽऽऽऽऽऽ..., चारों ओर सैकड़ों साधक अनेक प्रकार की प्रक्रियाओं में संलग्न हैं। किसी को योगासन हो रहे हैं, किसी को अनेक प्रकार के प्राणायाम हो रहे हैं, किसी को अनेक मुद्राएँ हो रही हैं, कई हँस रहे हैं, कई रो रहे हैं। चारों ओर एक अजीब सा दृश्य उपस्थित हो गया है। आचार्यश्री कुछ देर चुप रह कर फिर साधकों को प्रोत्साहन देने लगते हैं...)।

दो मिनट बचे हैं, पूरी ताकत लगायें...गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास...कुण्डलिनी ऊपर उठने लगेगी...गहरी श्वास लें...(४ बार)। जितनी गहरी ले सकें लें। दो मिनट बचे हैं, पूरी ताकत लगायें। फिर हम दूसरे सूत्र में प्रवेश करेंगे...गहरी श्वास...गहरी श्वास...गहरी श्वास...भीतर कुछ उठ रहा है, उसे उठने दें...(कुछ साधकों का चीखना, मुँह से अनेक तरह की आवाजें निकालना और नाचना)...एक मिनट बचा है, पूरी शक्ति लगायें। फिर हम दूसरे सूत्र में जायेंगे...गहरी श्वास...ताकत पूरी लगा दें—(३ बार)।... भीतर शक्ति उठ रही है। छोड़ें नहीं अपने को। ताकत पूरी लगा दें...गहरी, और गहरी, और गहरी, और गहरी...चूक पड़ें। पूरी ताकत लगा दें...सारी शक्ति लगा दें...गहरी, गहरी, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास...श्वास की चोट होने दें भीतर, सोयी हुई शक्ति उठेगी...गहरी श्वास...(५ बार)। अब दूसरे सूत्र में जाना है गहरी श्वास, और गहरी, और गहरी। आपसे ही कह रहा हूँ। पूरी ताकत लगा दें। गहरी श्वास, और गहरी...(५ बार)। दूसरे सूत्र में प्रवेश कर जायें।

दूसरा चरण : हो रही प्रक्रियाओं को सहयोग कर तीव्र करना

श्वास गहरी रहेगी। शरीर को छोड़ दें। शरीर को जो भी होता है, होने

दें। शरीर रोये, रोने दें। हँसे, हँसने दें। चिल्लाये, चिल्लाने दें। शरीर नाचने लगे, नाचने दें। शरीर को जो होता है, होने दें। शरीर को छोड़ दें अब। शरीर को जो होता है, होने दें...(अनेक तरह की आवाजें मुँह से निकलना और शरीर की प्रतिक्रियाओं में, विविध गतियों में तीव्रता का आना)...शरीर को छोड़ दें बिलकुल। जो होता है, होने दें। शरीर के अंगों में जो होता है, होने दें...शरीर को छोड़ दें...दस मिनट के लिए शरीर में जो होता है, होने दें।...(शरीर की गतियाँ और चीखना, चिल्लाना...चलता रहा...और आचार्यश्री कहते रहे)—शरीर को छोड़ दें, पूरी तरह छोड़ दें...शरीर नाचेगा, कूदेगा, छोड़ दें...भीतर शक्ति उठेगी तो शरीर नाचेगा, कूदेगा...छोड़ दें। शरीर को बिलकुल छोड़ दें। जो होता है, होने दें...(कुछ लोग अट्टहास कर रहे हैं, कुछ अंगों को पीट रहे हैं, कई रो रहे हैं, कई हँस व नाच रहे हैं,...एक महिला तीव्र आवाज से चीत्कार व रुदन करने लगती है,...अनेक लोगों के मुँह से विचित्र आवाजें निकल रही हैं,...एक व्यक्ति का तीव्रता से चिल्लाना—आऽऽऽऽ...आऽऽऽऽऽऽऽ...)।

(सुझाव चलता रहा) 'शरीर को छोड़ दें...श्वास गहरी रहे, शरीर को छोड़ दें। भीतर शक्ति जागेगी...शरीर नाचने लगेगा, कूदने लगेगा, कँपने लगेगा...जो भी होता है, होने दें...शरीर लोटने लगे, चीखने लगे, हँसने लगे—छोड़ दें...शरीर को पूरी तरह छोड़ दें ताकि अलग दिखाई पड़ने लगे मैं अलग हूँ, शरीर अलग है। शरीर को छोड़ें, शरीर को छोड़ें, शरीर को बिलकुल छोड़ दें...छोड़ें, शरीर को छोड़ दें। शरीर एक विद्युत् का यन्त्र भर रह गया है। शरीर नाच रहा है, शरीर कूद रहा है, शरीर कँप रहा है...शरीर को छोड़ दें। शरीर रो रहा है, शरीर हँस रहा है—शरीर को छोड़ दें। आप शरीर से अलग हैं, शरीर को छोड़ दें। शरीर को जो होता है, होने दें'...(आवाजें—चीखें...रुदन...हिचकियाँ।) छोड़ें, छोड़ें...शरीर को बिलकुल छोड़ दें। रोकें नहीं। कुछ मित्र रोक रहे हैं। रोकें नहीं, छोड़ दें। जरा भी न रोकें, जो होता है होने दें...(किसी का तीव्र रुदन)...शरीर को बिलकुल थका डालना है, सहयोग करें। शरीर को छोड़ दें, सहयोग करें। जो होता है, होने दें...शरीर को थका डालना है...छोड़ दें, बिलकुल छोड़ दें। जो होता है, होने दें...(अनेक तरह की आवाजें...चीखना, चिल्लाना, फूट फूटकर रोना)...छोड़ें, छोड़ें, रोकें नहीं। देखें, कोई रोके नहीं, छोड़ दें, बिलकुल छोड़ दें। शरीर को जो होता है होने दें...(चीख—आऽऽऽऽऽ)...होने दें, होने दें...छोड़ दें...(चारों तरफ अनेक तरह की धीमी और तीव्र आवाजों का संयोग एक शोर-गुल सा पैदा कर रहा है,...सुझाव चलता रहा)।

५ मिनट बचे हैं, शरीर को पूरी तरह छोड़ दें। सहयोग करें...शरीर को जो हो रहा है उसमें को-आपरेट (Co-operate), सहयोग करें। शरीर जो

कर रहा है, उसे करने दें। रोना है रोये, हँसना है हँसे—रोकें नहीं...शरीर नाचने लगेगा, नाचने दें। शरीर उछलने लगे, उछलने दें...(अनेक तीव्र आवाजें, कराहना, चीखना, चिल्लाना, रोना, हँसना, भागना-दौड़ना)...छोड़ें, पूरी तरह छोड़ें। सहयोग करें...भीतर शक्ति उठ रही है, उसे छोड़ दें...पाँच मिनट बचे हैं, पूरी तरह छोड़ें। शरीर को पूरी तरह छोड़ें...(कई चीखें, चीत्कार और शरीर की तीव्र प्रतिक्रियाएँ...अचानक माइक काम करना बन्द कर देता है। व्यवस्था करने वाले व्यक्ति सब ध्यान में हैं। लाउड-स्पीकर का आपरेटर, संचालक भी ध्यान में नाच कूद रहा है। कुछ देर बाद उसे किसी के द्वारा झकझोर कर सामान्य अवस्था में लाया गया, शान्त किया गया। तब उसने माइक की खराबी खोजनी शुरू की...आचार्यश्री बिना माइक के ही बोलते रहे)।

छोड़ें, पूरी तरह छोड़ दें। शरीर को जो हो रहा है, पूरी तरह होने दें... (अनेक आवाजें...अट्टहास...रुदन...चीखें)...पूरी शक्ति से छोड़ें। छोड़ें। दो मिनट बचे हैं। शरीर को पूरी तरह छोड़ दें...शरीर अलग है, आप अलग हैं। शरीर को जो होना है, होने दें...आप अलग हैं...दो मिनट के लिए पूरी तरह छोड़ें; फिर हम तीसरे सूत्र के लिए चलेंगे...छोड़ें, छोड़ें, बिलकुल छोड़ दें। ...शरीर को थका डालें। छोड़ें, छोड़ें, छोड़ें...गहरी श्वास लें। शरीर को छोड़ दें...शरीर नाचता है, नाचने दें। बिलकुल छोड़ दें...तीसरे सूत्र में चलने के पहले पूरी शक्ति लगा दें...शरीर को छोड़ें, छोड़ें। एक मिनट बचा है, पूरी तरह छोड़ें। ...पूरी तरह छोड़ें, पूरी तरह छोड़ें...(एक साधक का तीव्रता से चिल्लाना...आऽऽऽऽऽऽ)...जो होता है, होने दें...एक मिनट बचा है, पूरी तरह छोड़ें...पूरी तरह छोड़ दें, जो होता है, होने दें। एक मिनट के लिए सब छोड़ दें...(लम्बी रेंकने की सी आवाज...रुदन...अट्टहास...हँसी)...छोड़ें, बिलकुल छोड़ दें। शरीर को बिलकुल नाचने दें, छोड़ दें...चिल्लाने दें, रोने दें, हँसने दें—छोड़ दें...शरीर जो कर रहा है, करने दें...साफ दिखाई पड़ेगा, आप अलग हैं शरीर अलग है। पूरी तरह छोड़ें, फिर तीसरे सूत्र में प्रवेश करेंगे...छोड़ें, छोड़ें... सहयोग करें। शरीर को छोड़ दें और अब तीसरे सूत्र में प्रवेश कर जायें।

तीसरा चरण : प्रश्न—'मैं कौन हूँ ?' की तीव्र चोट

भीतर पूछें मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ...(६ बार)। १० मिनट तक शरीर नाचता रहे,श्वास गहरी रहे और भीतर पूछें 'मैं कौन हूँ ?'...(३ बार)।... ...(लोगों का अनेक क्रियाओं को करते हुए रोना, चिल्लाना...कराहना..., हिचकियाँ लेना...हाँफना...एक साधक का जोर से लगातार चिल्लाना—'कौन हूँ ?, कौन हूँ ?, कौन हूँ ?...आचार्यश्री कहते रहे)—मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ ?...पूरी ताकत लगा दें। मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ ?...

(अनेक तरह की आवाजें लोगों के मुँह से निकलना...हिचकियों के साथ रोना... चिल्लाना...नाचना...एक व्यक्ति का असाधारण तीव्रता से चिल्लाना—क्वाSSSSS, क्वाSSSSSSSSS, क्वाSSSSSSSSSSS)...'मैं कौन हूँ ?...मैं कौन हूँ ?... (८ बार कहा जाना)...(आवाजें...चिंघाड़ना...अट्टहास करना)...मैं कौन हूँ ?...(६ बार)।.. (एक साधक का कराहपूर्वक चिल्लाना—आSSSSS आSSSSSSS आSSSSSSS)...

आचार्यश्री कहते रहे—मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ?...(७ बार)... (एक साधक का बोल उठना—मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ?...४ बार)...पूरी ताकत से पूछें—मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ?...(५ बार)...(रोना, चीखना, तड़फना, नाचना आदि...मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ ?...की अनेक आवाजें साधकों के मुँह से बाहर निकलना...सुझाव चलता रहा)—मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ?. . (७ बार)।...शक्ति पूरी लगा दें, शक्ति पूरी लगा दें...मैं कौन हूँ ?...(४ आवृत्ति) शक्ति पूरी लगायें...मैं कौन हूँ ?...(अनेक लोगों की चीत्कार... चिंघाड़...पछाड़ खाकर रोना...गिरना.. रेत पर लोटना...उछलना, कूदना) ...मैं कौन हूँ ?...(६ आवृत्ति)।(एक व्यक्ति की कराह के साथ आवाज—आSSSSS आSSSSSSSS)...मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ ? पाँच मिनट बचे हैं, पूरी शक्ति लगायें। फिर हम विश्राम करेंगे...शरीर को छोड़ दें...और भीतर पूछते रहें—मैं कौन हूँ ?... मैं कौन हूँ ?...पूरी शक्ति लगायें, पूरी शक्ति लगायें... (एक लम्बी चीत्कार...और अनेकों का रोना, चीखना, चिल्लाना)।...मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ?...पूरी ताकत लगायें, पूरी ताकत लगायें...मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ ? ...पूरी ताकत लगायें, पूरी ताकत लगायें...मैं कौन हूँ ?, मैं कौन हूँ ?...तीन मिनट बचे हैं। फिर हम विश्राम करेंगे...अपने को थका डालें...भीतर शक्ति उठ रही है...(रोना, चीखना, उछलना, कूदना, भागना-दौड़ना)।...

(सुझाव चलता रहा—) मैं कौन हूँ ?...(४ आवृत्ति)...शक्ति पूरी लगायें...मैं कौन हूँ ?...दो मिनट बचे हैं, शक्ति पूरी लगायें...मैं कौन हूँ ?. . (३ आवृत्ति)...(शरीर की क्रियाएँ...शोरगुल...आवाजें .एक तीव्र आवाज क्वाSSSS क्वाSSSS)...मैं कौन हूँ ? ..(४ आवृत्ति)। आखिरी दो मिनट बचे हैं, शक्ति पूरी लगायें ..फिर हम विश्राम करेंगे...मैं कौन हूँ ?...(२ बार)। ...शक्ति भीतर जाग रही है। शरीर को नाच जाने दें, छोड़ दें...मैं कौन हूँ ? ...मैं कौन हूँ ?...(आSSSSS आSSSS की आवाजें)...मैं कौन हूँ ?...मैं कौन हूँ ?...शक्ति भीतर पूरी जग जाने दें। मैं कौन हूँ ?...(५ आवृत्ति)...बिलकुल पागल हो जायें...मैं कौन हूँ ?.. मैं कौन हूँ ?...(एक व्यक्ति का जोर से चिल्लाना—वाSSSS वाSSSSS, वाSSSS वाSSSSS)...मैं कौन हूँ ?. मैं कौन हूँ ?...

थका डालें अपने को, फिर विश्राम करना है...मैं कौन हूं ?...(३ आवृत्ति)... एक मिनट और—मैं कौन हूं ?...शरीर नाचता है, नाच जाने दें...(तीव्र चीत्कार, रुदन)...मैं कौन हूं ?, मैं कौन हूं ?...(साधकों की तीव्रतम गतियाँ)...मैं कौन हूं ?...मैं कौन हूं ?...विश्राम में आना है, पूरी ताकत लगा दें...आखिरी क्षण में पूरी ताकत लगा दें...मैं कौन हूं ?...(४ बार) ...अवसर न खोयें। पूरी ताकत लगा दें...मैं कौन हूं ?...(५ आवृत्ति)... आखिरी ताकत, फिर विश्राम में आना है...मैं कौन हूं ?, मैं कौन हूं ?... (८ बार)।

चौथा चरण : विश्राम, शान्ति, आगत्कता व शून्य प्रतीक्षा का

बस। बस, छोड़ दें। सब छोड़ दें—पूछना छोड़ दें। तीव्र श्वास लेना छोड़ दें। जो जहाँ पड़ा है, पड़ा रह जाय। जो जहाँ खड़ा है, खड़ा रह जाय। गिरना हो गिर जायें...लेटना हो लेट जायें, बैठना हो बैठे रहें...सब शान्त, सब शून्य हो जाने दें....न कुछ पूछें, न कुछ करें। बस पड़े रह जायें, जैसे मर गये, जैसे हैं ही नहीं...तूफान चला गया, भीतर शान्ति छूट गयी...सब मिट गया। सब शान्त हो गया। तूफान गया...पड़े रह जायें, १० मिनट बिलकुल पड़े रह जायें... इस शान्ति में, इस शून्य में ही उसका आगमन होता है, जिसकी खोज है...पड़े रह जायें...न श्वास जोर से लेनी है, न प्रश्न पूछना है, न कुछ करना है। सब कुछ बिलकुल छोड़ दें। खड़े हों, खड़े रह जायें, गिर गये हों, गिरे रह जायें, पड़े हैं, पड़े रह जायें। १० मिनट के लिए मर जायें, जैसे हैं ही नहीं...तूफान गया। सब शान्त हो गया है। सब मौन हो गया है।...(चारों ओर सब साधक शान्त और स्थिर हो गये हैं। बीच-बीच में कोई कराह उठता है, कोई हिचकियाँ लेने लगता है, कोई सुबकने लगता है और फिर शान्त व चुप हो जाता है)...।

आचार्यश्री कहते रहते हैं—इस शून्य में ही कुछ घटित होगा, कोई फूल खिलेंगे, कोई प्रकाश फैल जायगा...कोई शान्ति की धारा फूट पड़ेगी...कोई आनन्द का संगीत सुनाई पड़ता है। इस शून्य में ही प्रभु का आना होता है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...पड़े रह जायें, पड़े रह जायें। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें। बस प्रतीक्षा करें। सब थक गया। सब शून्य हो गया...(कराहने की कुछ आवाजें)। ...प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...अब मैं चुप हो जाता हूं। १० मिनट चुपचाप पड़े रह जायें...(पक्षियों की सुरीली आवाजें...किसी का हिलना, डुलना, किसी का सुबकना, श्वास लेना...एक साधक का जोर से चिल्लाना— प्रभुऽऽऽऽ मने माफ कर...प्रत्येक गुनाह बदल मने शिक्षा कर...हे प्रभु,...किसी-किसी का हुंऽऽऽ, हुंऽऽऽ हुंऽऽऽ करना,...कराहने की आवाजें...एक व्यक्ति का जोरों से चीखना—पाऽऽऽ पी...कुछ देर बाद दूर कोने से एक साधक के मुँह से आवाज

ज्ञिकलती है, 'कौन कहता है पापी हूँ ?'...पुन: किसी का कराहना,...ऊँ...ऊँ...ऊँ...करना, कौवों का काँव-काँव करना,...सरूवन में हवा की सरसराहट,...सागर का गर्जन,...सब तरफ सन्नाटा, जैसे सरूवन बिलकुल निर्जन हो...एक महिला का रोना, हिचकियाँ लेना...)।

...जैसे मर ही गये। जैसे मिट ही गये। शून्य मात्र रह गया। सब मिट गया। शान्त हो गया। सब मौन रह गया। इस मौन में ही उसका आगमन है...(एक महिला का रो उठना)...इस शून्य में ही उसका द्वार है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...(एक महिला का सुबक-सुबक कर रोना...एक व्यक्ति का हूँ...हूँ...हूँ...की आवाज करना...दूर कोने से एक साधक का तीव्रता से प्राणायाम (श्वास लेना छोड़ना) करना...कुछ लोगों का कराहना...फुसफुसाना...एक व्यक्ति का पुन: चीख उठना—पाऽऽऽ पीऽऽऽ...किसी का बड़बड़ाना..माइक अब सुधर पाया...(माइक पर आचार्यश्री बोलते हैं) : जैसे मर ही गये। जैसे मिट ही गये। तूफान गया, शान्ति छूट गयी। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...

इसी क्षण में कुछ घटित होता है। मौन प्रतीक्षा करें, मौन प्रतीक्षा करें...सब शून्य हो गया। (प्रतीक्षा करें...(३ आवृत्ति)...जैसे मर ही गये, लेकिन भीतर कोई जागा हुआ है। सब शून्य हो गया है, लेकिन भीतर कोई ज्योति जागी हुई है...जो जानती है, देखती है, पहचानती है। आप तो मिट गये, लेकिन कोई और जागा हुआ है...भीतर सब प्रकाश हो गया है। भीतर आनन्द की धारा बहने लगी है।) परमात्मा बहुत निकट है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...(एक व्यक्ति का फुसफुसाना—पापीचारा, पापीचारा, पापीचारा...एक साधक का सोये-सोये ही कह उठना—यह साधना चालू रखें, यह साधना चालू रखें...कहीं से दोनों हथेलियों को तेजी से पीटने की आवाज—पट, पट, पट...एक साधक की तीव्र चीत्कार—बचाऽऽऽऽ ओऽऽऽऽऽऽऽऽ)...जैसे मर गये। जैसे मिट गये। जैसे मर गये। जैसे मिट गये जैसे बूँद सागर में गिर कर खो गयी हो, ऐसे खो जायें...प्रतीक्षा करें...

इस खो जाने में ही उसका मिलन जाना है। प्रतीक्षा करें, भीतर शान्त, मौन प्रकाश फैल गया है। भीतर एक गहरा आनन्द झलकना शुरू होगा...गहरा आनन्द उठना शुरू होगा...भीतर आनन्द की धारा बहने लगेगी...प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...(प्रभु, प्रभु, हे प्रभु...की आवाज)...भीतर आनन्द बहने लगेगा। भीतर प्रकाश उतरने लगेगा...प्रतीक्षा, प्रतीक्षा, प्रतीक्षा...जैसे मर ही गये, जैसे मिट ही गये, सब शून्य हो गया...।

इसी शून्य में उसका दर्शन है। इसी शून्य में उसकी झलक है। इसी शून्य में उसकी उपलब्धि है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...देखें भीतर

कोई प्रवेश कर रहा है... देखें, भीतर कोई आ गया है। देखें, भीतर कोई आनन्द प्रकट हो गया है। आनन्द जो कभी नहीं जाना, आनन्द जो अपरिचित है, आनन्द जो अज्ञात है। प्राण के कोर कोर में कुछ भर गया है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें... ...(पक्षियों की आवाजें...सरू वृक्षों की सरसराहट...सब शान्त है) । आनन्द ही आनन्द शेष रह जाता है। प्रकाश ही प्रकाश शेष रह जाता है। शान्ति ही शान्ति शेष रह जाती है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें। इन्हीं मौन क्षणों में आगमन है उसका। इन्हीं मौन क्षणों में मिलन है उससे। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें...(एक साधक का तीव्र श्वास-प्रश्वास लेना...एक व्यक्ति का कराहना)...जिसकी खोज है, वह बहुत पास है। जिसकी तलाश है वह इस समय बहुत निकट है। प्रतीक्षा करें, प्रतीक्षा करें।

अब धीरे-धीरे आनन्द के इस जगत् से वापस लौट आयें। धीरे-धीरे प्रकाश के इस जगत् से वापस लौट आयें। धीरे-धीरे भीतर के इस जगत् से वापस लौट आयें। बहुत आहिस्ता-आहिस्ता आँख खोलें। आँख न खुलती हो तो दोनों हाथ आँख पर रख लें। फिर धीरे-धीरे खोलें। जल्दी कोई भी न करे। जो गिर गये हैं और न उठ सकें वे दो चार गहरी श्वास लें, फिर आहिस्ता-आहिस्ता उठें। बिना बोले, बिना आवाज किये चुपचाप उठ आयें। जो खड़े हैं, वे चुपचाप बैठ जायें। धीरे-धीरे आँख खोल लें। वापस लौट आयें...(एक महिला का हिचकी ले लेकर रोना)...हमारी सुबह की बैठक समाप्त हुई।

●

५. (ब) पाँचवाँ समापन प्रवचन

साधना-शिविर, नारगोल, रात्रि, दिनांक ५ मई, १९७०

●

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ

मेरे प्रिय आत्मन्,

तीन दिनों में बहुत से प्रश्न इकट्ठे हो गये हैं और इसलिए आज बहुत संक्षेप में जितने ज्यादा प्रश्नों पर बात हो सके, मैं करना चाहूँगा।

१. ईश्वर-साक्षात्कार के लिए चुनौती

एक मित्र ने पूछा है कि विवेकानन्द ने रामकृष्ण से पूछा कि 'क्या आपने ईश्वर देखा है' तो रामकृष्ण ने कहा, 'हाँ, जैसा मैं तुम्हें देख रहा हूँ ऐसा ही मैंने परमात्मा को भी देखा है।' तो वे मित्र पूछते हैं कि जैसा विवेकानन्द ने रामकृष्ण से पूछा, क्या हम भी वैसा आपसे पूछ सकते हैं।

पहली बात तो यह कि विवेकानन्द ने रामकृष्ण से पूछते समय यह नहीं पूछा कि हम आपसे पूछ सकते हैं या नहीं पूछ सकते हैं। (हँसी...) विवेकानन्द ने पूछ ही लिया और आप पूछ नहीं रहे हैं। पूछ सकते हैं या नहीं पूछ सकते हैं, यह पूछ रहे हैं। विवेकानन्द चाहिए वैसा प्रश्न पूछने वाला। और वैसा उत्तर रामकृष्ण किसी और दूसरे को न देते। यह ध्यान रहे, रामकृष्ण ने जो उत्तर दिया है, वह विवेकानन्द को दिया है। वह किसी दूसरे को न दिया जाता।

अध्यात्म के जगत् में सब उत्तर नितान्त वैयक्तिक हैं, परसनल (Personal) हैं। उसमें देने वाला तो महत्त्वपूर्ण है ही, उससे कम महत्त्वपूर्ण नहीं

है जिसको कि दिया गया है। उसमें समझने वाला उतना ही महत्त्वपूर्ण है। न मालूम कितने लोग मुझसे आकर पूछते हैं कि विवेकानन्द को रामकृष्ण के छूने से अनुभूति हो गयी, आप हमें छू दें और हमें अनुभूति हो जाय। वे यह नहीं पूछते कि विवेकानन्द के सिवाय रामकृष्ण ने हजारों लोगों को छुआ है, उनको अनुभूति नहीं हुई है। उस छूने में जो अनुभूति हुई है उसमें रामकृष्ण ५० प्रतिशत महत्त्वपूर्ण हैं, ५० प्रतिशत विवेकानन्द। वह अनुभूति आधी आधी है। और ऐसा भी जरूरी नहीं है कि विवेकानन्द को भी किसी दूसरे दिन छुआ होता तो बात हो जाती। एक खास क्षण में वह घटना घटी।

आप चौबीस घण्टे भी वही आदमी नही होते हैं। चौबीस घण्टे में आप न मालूम कितने आदमी होते हैं। किसी खास क्षण में ही वह घटना सम्भव है। अब विवेकानन्द पूछ रहे हैं, ईश्वर को देखा है? ये शब्द बड़े सरल हैं। हमें भी लगता है कि हमारी समझ में आ रहा है कि विवेकानन्द क्या पूछ रहे हैं। नही समझ में आ रहा है। ईश्वर को देखा है? ये शब्द इतने सरल नहीं हैं। ऐसे तो पहली कक्षा भी जो नहीं पढ़ा, वह भी समझ लेगा। सरल शब्द हैं। ईश्वर को देखा है? बहुत कठिन है शब्द। और विवेकानन्द के प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हैं रामकृष्ण, विवेकानन्द की प्यास का उत्तर दे रहे हैं। (उत्तर प्रश्नों के नहीं होते, प्यास के होते हैं। इस प्रश्न के पीछे वह जो आदमी खड़ा है प्रश्न बन कर, उसको उत्तर दिया जा रहा है।)

बुद्ध एक गाँव में गये और एक आदमी ने पूछा, ईश्वर है? बुद्ध ने कहा, नहीं। और दोपहर दूसरे आदमी ने पूछा कि मै समझता हूँ, ईश्वर नहीं है। आपका क्या ख्याल है? बुद्ध ने कहा, है। और साँझ एक तीसरे आदमी ने पूछा कि मुझे कुछ पता नहीं है, ईश्वर है या नहीं है? बुद्ध ने कहा कि चुप ही रहो तो अच्छा है। न हाँ, न ना। जो साथ में था भिक्षु वह बहुत घबड़ा गया। उसने तीनों उत्तर सुन लिये। रात उसने बुद्ध से कहा, मैं पागल हो जाऊँगा। सुबह आपने कहा, हाँ। दोपहर आपने कहा, नहीं। साँझ आपने कहा, न हाँ, न नहीं। मैं क्या समझूँ? बुद्ध ने कहा, तुझे तो मैंने एक भी उत्तर नहीं दिया, जिनको दिये थे उनसे बात थी। तुझसे कोई सम्बन्ध नहीं। तूने सुना क्यों? तूने जब पूछा ही नहीं था तो तुझे उत्तर कैसे दिया जा सकता था। जिस दिन तू पूछेगा उस दिन तुझे उत्तर मिल जायगा। पर उस भिक्षु ने कहा, मैंने सुन तो लिया है। बुद्ध ने कहा, वे उत्तर दूसरों को दिये गये थे। और दूसरों की जरूरतों के अनुसार दिये गये थे। सुबह जिस आदमी ने कहा था कि ईश्वर है, वह आस्तिक था और चाहता था कि मैं भी उसकी हाँ में हाँ भर दूँगा। उसे कुछ पता नहीं है ईश्वर के होने का। लेकिन सिर्फ अपने अहंकार को तृप्त करने आया था कि बुद्ध भी

वही मानते हैं, जो मैं मानता हूँ। वह बुद्ध से भी अपनी स्वीकृति लेने, कन्फर्मेशन (Conformation) लेने आया था। तो मैंने उसको कहा, नहीं। मैंने उसकी जड़ों को हिला दिया। और उसे कुछ पता नहीं था अन्यथा मुझसे पूछने क्यों आता ? जिसे पता हो गया है, वह कन्फर्मेशन नहीं खोजता है। सारी दुनिया भी इंकार करे तो वह कहता है, इंकार करो। वह है, इंकार का कोई सवाल नहीं है। अभी वह पूछ रहा है, वह पता लगा रहा है कि 'है ?' तो मुझे कहना पड़ा कि नहीं है। उसकी खोज रुक गयी थी, वह मुझे शुरू करनी पड़ी। दोपहर जो आदमी आया था, वह नास्तिक था। वह मानता था कि 'नहीं है'। उसे मुझे कहना पड़ा कि 'है'। उसकी भी खोज रुक गयी थी। वह भी मुझसे स्वीकृति लेने आया था, अपनी नास्तिकता की। साँझ जो आदमी आया था, वह न आस्तिक था, न नास्तिक था। उसे किसी भी बन्धन में डालना ठीक न था। क्योंकि हाँ भी बाँध लेता है, नहीं भी बाँध लेता है। तो उससे कहा कि चुप रह जाना। न हाँ, न ना। तो पहुँच जायगा। और तेरा तो सवाल ही नहीं है, क्योंकि तूने अभी पूछा नहीं है।

धर्म बड़ी निजी बात है। जैसे प्रेम। और प्रेम में अगर कोई अपनी प्रेयसी को कुछ कहता है तो वह बाजार में चिल्लाने की बात नहीं है। वह नितान्त वैयक्तिक है और बाजार में कहते ही अर्थ उसका बेकार हो जायगा। ठीक ऐसे धर्म के सम्बन्ध में कहे गये सत्य भी इतने ही परसनल (वैयक्तिक) हैं, एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति से कहे गये, हवा में फेंके गये नहीं।

इसलिए विवेकानन्द बन जायें तो जरूर पूछने आ जाना। लेकिन विवेकानन्द पूछने नहीं आते कि पूछें या न पूछें। मैं अभी एक गाँव में गया। एक युवक आया और (उसने कहा कि मैं आपसे पूछने आया हूँ, मैं संन्यास ले लूँ ? तो मैंने उससे कहा, जब तक तुझे पूछने जैसा लगे तब तक मत लेना, नहीं तो पछतायेगा) और मुझे क्यों झंझट में डाल रहा है। तुझे लेना हो ले, न लेना हो न ले। (हँसी...) (जिस दिन तुझे ऐसा लगे कि अब सारी दुनिया रोकेगी तो भी तू नहीं रुक सकता, उस दिन ले लेना। उसी दिन संन्यास आनन्द बन सकता है, उसके पहले नहीं। तो उसने कहा, और आप ? मैंने कहा, मैं किसी से पूछने नहीं गया। अपनी इस जिन्दगी में तो किसी से पूछने नहीं गया। क्योंकि पूछना ही है तो अपने ही भीतर पूछ लेंगे, किसी से पूछने क्यों जायेंगे ? और कोई कुछ भी कहे, उस पर भरोसा कैसे आयेगा ? दूसरे पर कभी भरोसा नहीं आ सकता है। लाख उपाय करें, दूसरे पर भरोसा नहीं आ सकता है।)

अगर मैं कह भी दूँ कि हाँ, ईश्वर है, क्या फर्क पड़ेगा। जैसा आपने किताब में पढ़ लिया कि रामकृष्ण ने कहा कि हाँ, है। और जैसा मैं तुझे देखता हूँ उससे

भी ज्यादा साफ उसे देखता हूँ। क्या फर्क पड़ गया आप में? एक किताब और लिख लेना आप कि आपने पूछा था और मैंने कहा, हाँ, है। और जैसा मैं आपको देखता हूँ, उससे भी ज्यादा साफ उसे देखता हूँ। क्या फर्क पड़ेगा। एक किताब, दो किताब, हजार किताब में लिखा हो कि 'है', बेकार है। जब तक कि भीतर से न उठे कि 'है'। तब तक कोई उत्तर दूसरे का काम नहीं दे सकता है। ईश्वर के सम्बन्ध में उधारी न चलेगी। और सब सम्बन्ध में उधारी चल सकती है, ईश्वर के सम्बन्ध में उधारी नहीं चल सकेगी।

२. अटूट मुमुक्षा : गहनतम प्राणों में

इसलिए मुझसे क्यों पूछते हैं? मेरे हाँ और ना का क्या मूल्य? अपने से ही पूछें और अगर कोई उत्तर न आये तो समझ लें कि यही भाग्य है कि कोई उत्तर नहीं है। फिर चुप होकर प्रतीक्षा करें। उसके साथ ही जियें। अनुत्तर के साथ जियें, किसी दिन आ जायगा। किसी दिन उत्तर आयेगा। और अगर पूछना ही आ जाय, ठीक पूछना आ जाय, राइट क्वेश्चनिंग (Right Questioning) आ जाय तो सब उत्तर हमारे भीतर हैं। और ठीक पूछना न आये तो हम सारे जगत् में पूछते फिरें, कोई उत्तर काम का नहीं है।

और जब विवेकानन्द जैसा आदमी रामकृष्ण से पूछता है तो रामकृष्ण जो उत्तर देते हैं, वह रामकृष्ण का उत्तर थोड़े ही विवेकानन्द के काम पड़ता है। विवेकानन्द इतनी प्यास से पूछते हैं कि जब वह रामकृष्ण का उत्तर आता है तो वह रामकृष्ण का नहीं मालूम पड़ता, वह अपने ही भीतर से आया हुआ मालूम पड़ता है। इसीलिए काम पड़ता है, नहीं तो काम नहीं पड़ सकता है। जब हम बहुत गहरे में किसी से पूछते है, इतने गहरे में कि हमारा पूरा प्राण लग जाय दाँव पर तो जो उत्तर आता है फिर वह हमारा अपना ही हो जाता है। वह दूसरे का नहीं होता है। दूसरा फिर सिर्फ एक दर्पण हो जाता है। अगर रामकृष्ण ने यह कहा कि हाँ, 'है', तो यह उत्तर रामकृष्ण का नही है। यह आथेंटिक (Authentic), प्रामाणिक बन गया, विवेकानन्द को प्रामाणिक लगा, क्योंकि रामकृष्ण एक दर्पण से ज्यादा न मालूम पड़े। अपनी ही प्रतिध्वनि, बहुत गहरे में अपने ही प्राणों का स्वर वहाँ सुनाई पड़ा।

विवेकानन्द ने रामकृष्ण से पूछने के पहले एक आदमी से और पूछा था। रवीन्द्रनाथ के दादा थे देवेन्द्रनाथ। वे महर्षि देवेन्द्रनाथ कहे जाते थे। वह बजरे पर रहते थे रात। बजरे पर एकान्त में साधना करते थे। आधी रात अमावस की, विवेकानन्द पानी में कूद कर, गंगा पार करके बजरे पर चढ़ गये। बजरा कँप गया। अन्दर गये, धक्का देकर दरवाजा खोल दिया। अटका था दरवाजा। भीतर घुस गये। अँधेरा है। देवेन्द्रनाथ आँख बन्द किये कुछ मनन

में बैठे हैं। जाकर झकझोर दिया, उनका कालर पकड़ कर कंठ का। आँखें खुलीं तो वे घबड़ा गये कि इतनी रात, पानी से तरबतर कौन नदी में तैर कर आ गया है। सारा बजरा कँप गया है। जैसे ही उन्होंने आँख खोली, विवेकानन्द ने कहा, मैं पूछने आया हूँ—ईश्वर है ? देवेन्द्रनाथ ने कहा जरा बैठो भी। झिझके। ऐसी आधी रात, अँधेरे में गंगा पार करके कोई ऐसा छाती पर छुरा लगा कर पूछे, ईश्वर है ? तो क्या स्थिति हो ? तो उन्होने कहा, जरा रुको भी, बैठो भी, कौन हो भाई ? क्या बात है ? कैसे आये ? बस विवेकानन्द ने कालर छोड़ दिया। वापस नदी में कूद पड़े। उन्होंने चिल्लाया कि युवक रुको। विवेकानन्द ने कहा, झिझक ने सब कुछ कह दिया। अब मैं जाता हूँ।

झिझक ने सब कुछ कह दिया। इतने झिझक गये कि असली सवाल ही छोड़ दिया। कहते 'हैं', या 'नहीं'। फिर देवेन्द्रनाथ ने बाद में कहा कि मैं सच में ही घबड़ा गया था, क्योंकि मुझसे कभी ऐसा आउट आफ द वे (Out of the way), आउट लैंडिश (Out landish), ऐसा कोई अचानक गर्दन पकड़ कर कभी पूछा नहीं गया था। सभा में, मीटिंग में, मन्दिर में, मस्जिद में देवेन्द्रनाथ से लोग पूछते थे, ईश्वर है ? तो वे समझाते थे—उपनिषद्, गीता, वेद। ऐसा किसी ने पूछा ही न था। तो जरूर घबड़ा गये। उन्होंने कहा, मैं जरूर घबड़ा गया था। मुझे कुछ भी नहीं सूझा था। और वह युवक कूद कर चला गया था और मुझे भी मेरी झिझक से पहली दफा पता चला, अभी मुझे भी मालूम नहीं है।

पूछें जरूर। जिस दिन पूछने की तैयारी हो उस दिन जरूर पूछें। पर पूछने की तैयारी लेकर आ जायें। क्योंकि फिर उत्तर के बाद बात खतम न हो गयी। रामकृष्ण का उत्तर और फिर वह विवेकानन्द नहीं था जो पूछने आया था, वह था नरेन्द्रनाथ। रामकृष्ण के उत्तर के बाद हो गया विवेकानन्द। पूछें जरूर लेकिन फिर पूरी जिंदगी बदलने की तैयारी चाहिए। उत्तर तो मिल सकता है। फिर वह नरेन्द्रनाथ, नरेन्द्रनाथ की तरह घर वापिस नहीं लौटा, क्योंकि वह जो रामकृष्ण ने कहा, 'है', और तुमसे ज्यादा मुझे दिखायी पड़ता है कि वह है। एक दफा मैं कह सकता हूँ कि तू झूठ, लेकिन उसे नहीं कह सकता कि झूठ है। तो फिर विवेकानन्द ने ऐसा नहीं कहा कि ठीक महाराज, उत्तर बहुत अच्छा लगा, परीक्षा में दे देंगे जाकर। फिर वापिस नहीं लौट गया। फिर विवेकानन्द के लिए वह उत्तर ले डूबा। फिर वह लड़का वापिस लौटा ही नहीं।

उत्तर तो मिल सकता है। मुझे कोई कठिनाई नहीं है उत्तर देने में। आप दिक्कत में पड़ जायेंगे। जिस दिन पूछने का मन हो आ जाना और आउट लैंडिश (Out landish), अचानक ही ठीक रहेगा, किसी अँधेरी रात में आकर मेरी गर्दन पकड़ कर पूछ लेना। लेकिन ध्यान रखना गर्दन मेरी पकड़ेंगे,

पकड़ा जायगी आपको। (हँसी...) फिर भाग न सकेंगे। स्कालरली (Scholorly) बात नहीं हैं, ये कोई शास्त्रीय और पाण्डित्य की बातें नहीं हैं कि पूछ लिया, समझ लिया, चले गये। कुछ भी न हुआ। सारी जिंदगी को दाँव पर लगाने की बात है।

३. ध्यान में छलाँग एक साहसपूर्ण कृत्य

एक दूसरे मित्र पूछते हैं कि बीज बोते हैं तो अंकुर आने में समय लगता है और आप तो कहते हैं कि इसी क्षण हो सकती है सब बात और आदमी को परमात्मा का बीज कहते हैं।

जरूर कहता हूँ। बीज बोते हैं, समय लगता है। समय बीज के टूटने में लगता है, अंकुर के निकलने में नहीं। अंकुर तो एक क्षण में ही निकल आता है, विस्फोट होता है अंकुर का। लेकिन बीज के टूटने में वक्त लग जाता है। आपके टूटने में वक्त लग सकता है, वह मैं नहीं कहता, लेकिन परमात्मा के आने में वक्त नहीं लगता है, वह एक क्षण में ही आ जाता है। जैसे हम पानी को गरम करते हैं तो गरम करने में वक्त लग सकता है। सौ डिग्री तक गरम होना तो वक्त लगेगा, लेकिन भाप बनने में वक्त नहीं लगता है। वह छलाँग है। पानी सौ डिग्री पर गरम हुआ कि जम्प (Jump), गुम गया, भाप हो गया। ऐसा नहीं है कि भाप बनने में वक्त लगेगा कि पानी थोड़ा अभी भाप बना आधा, अभी आधा भाप नहीं बना। अभी बूँद थोड़ी सी भाप बन गयी एक कोने से, अभी दूसरे कोने से भाप नहीं बनी। ऐसा नहीं, वह तो अकेली छलाँग में। हाँ, लेकिन भाप तक पहुँचने में वक्त लगता है। लेकिन जब तक भाप नहीं बनी तब तक वह पानी ही है, चाहे १०० डिग्री गरम हो, चाहे ९९ डिग्री गरम हो, चाहे ९८ डिग्री गरम हो।

परमात्मा एक विस्फोट है, एक छलाँग है। उसके पहले आप आदमी ही हैं, चाहे ९८ डिग्री पर गरम हों, चाहे ९९ डिग्री पर गरम हो। १०० डिग्री पर गरम होंगे कि भाप बन जावेंगे। परमात्मा शुरू होगा, आप मिट जावेंगे।

तो मैं कहता हूँ कि इसी क्षण भी हो सकता है। इसी क्षण होने का मतलब? इसी क्षण होने का मतलब यह है कि अगर हम उत्तप्त होने को तैयार हों और क्या काफी समय नहीं बीत गया है उत्तप्त होने के लिए? कड़ाई पर कड़ाई कब से चढ़ी है चूल्हे पर, कितने जन्मों से। कितने ही जन्मों से गरम हो रहे हैं और १०० डिग्री तक नहीं पहुँच पाये हैं। जन्म-जन्म, जन्म-जन्म गरम होते रहे हैं, और १०० डिग्री पर नहीं पहुँच पाये अब तक? और कितना समय चाहिए? इतना समय कम है? नहीं, समय तो बहुत लग गया है। गरम होने की कला ही हमें नहीं आती है। तो अगर हम ९९ डिग्री पर भी पहुँच जायें तो जल्दी से

वापिस हो जाते हैं, कूल डाउन (Cool down) हो जाते हैं। फिर ठण्डे होकर वापिस लौट आते हैं। १०० डिग्री से बहुत डरते हैं। इधर मैं देखता था, ध्यान में कितने ही लोग ९९ डिग्री से वापिस लौट जाते हैं।

और कैसी कैसी व्यर्थ की बातें उनको वापिस लौटा लेती हैं। देखकर हैरानी होती है कि वे जरूर लौटना ही चाहते होंगे। अन्यथा ये कारण हैं वापिस लौटने का। एक आदमी को बम्बई जाना हो। वह ट्रेन पर बैठे और रास्ते पर दो लोग जोर से बात करते मिल जायें और वह घर लौट आये कि दो आदमियों ने डिस्टर्ब (Disturb), गड़बड़ कर दिया, वे रास्ते में जोर से बातें कर रहे थे। हम बम्बई नहीं जा पाये। तो आप कहेंगे बम्बई जाना ही नहीं होगा अन्यथा रास्ते पर तो डिस्टर्बेन्सेज (Disturbances) बाधाएँ हैं ही। कौन लौटता है, जिसको बम्बई जाना है, वह चला जाता है। बल्कि रास्ते पर डिस्टर्बेंस है तो जरा तेजी से चला जाता है कि बीच में व्यर्थ की बातें न सुननी पड़े।

लेकिन ध्यान से बड़े-बड़े आसान कारणों से आदमी वापिस लौटता है। वह लौट आता है कि हमें किसी का धक्का लग गया, किसी का हाथ लग गया, कोई पड़ोस में गिर पड़ा, कोई रोने लगा तो हम वापिस लौट आये। नहीं, ऐसा लगता है कि वापिस लौटना चाहते थे, सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे थे कि कोई कोई कारण मिल जाय और हम कूल-डाउन (Cool down), ठण्डे हो जायें। कुछ बहाना भर मिल जाय कि फलाँ आदमी जोर से चिल्लाने लगा इसलिए हमको वापिस लौटना पड़ा। फलाँ आदमी के जोर से चिल्लाने से आपका सम्बन्ध ? आपको प्रयोजन ? और आप क्या खो रहे हैं, इस बहाने, आपको पता ही नहीं है। आप क्या कह रहे हैं, आपको पता ही नहीं है।

अब अभी एक मित्र मिले रास्ते में। उन्होंने कहा कि जरा लोगों को समझा दें, थोड़ा उनको ठण्डा कर दें, कूल-डाउन करें, क्योंकि दो लोग नग्न खड़े हो गये हैं उससे बड़ी एक्सप्लोजिव स्थिति बन गयी है। उन्होंने बड़े प्रेम से कहा कि जरा लोगों को समझा दें। कुछ लोग बड़े बचैन हो गये हैं, क्योंकि दो लोग नग्न खड़े हो गये हैं।

४. ध्यान में वस्त्रों का गिर जाना

सब लोग कपड़ो के भीतर नग्न है और कोई बेचैन नही है। कपड़ो के भीतर सभी लोग नग्न हैं। कोई बचैन नहीं है। दो आदमियो ने कपड़े छोड़ दिये, सब बैचैन हो गये। बड़ा मजा है। आपके कपड़े भी किसी ने छुड़ाये होते तो बैचन होते तो भी समझ में आता। अपने ही कपड़े कोई छोड़ रहा है और बेचैन आप हो रहे हैं। अगर कोई आपके कपडे छीनता तो बेचैनी कुछ समझ में भी आ सकती थी। हालांकि वह भी बेमानी थी। जीसस ने कहा है कि कोई तुम्हारा कोट छीने

तो अपना कमीज भी उसको दे देना। कहीं बेचारा संकोच वश कम न छीन रहा हो। कोई आपका कोट छीनता तो समझ में भी आता। कोई अपना ही कोट उतार कर रख रहा है, आप बेचैन हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि आप प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि कोई कोट उतारे और हम कूल-डाउन हो जायें। और हम कहें, हमारा सारा ध्यान खराब कर दिया।

अब बड़े आश्चर्य की बात है कि कोई आदमी नग्न हो गया है इससे आपके ध्यान के खराब होने का क्या मतलब? और आप किसी के नग्न होने को बैठकर देख रहे थे? आप ध्यान कर रहे थे या क्या कर रहे थे? आपको तो पता ही नहीं होना चाहिए था कि कौन ने कपड़े छोड़ दिये, कौन ने क्या किया। आप अपने में होना चाहिए थे। या कौन क्या कर रहा है इसमें? आप कोई धोबी हैं, कोई टेलर हैं? कौन हैं? आप कपड़ों के लिए चिन्तित क्यों हैं? आपकी परेशानी बेवजूद है, अर्थहीन है।

और जिसने कपड़े छोड़े हैं...थोड़ा सोचते नहीं है। आपसे कोई कहे कि आप कपड़े छोड़ दें। तब आपको पता चलेगा जिसने कपड़े छोड़े हैं उसके भीतर कोई बड़ा कारण ही होगा, कुछ हो गया होगा इसलिए उसने कपड़े छोड़े हैं। आपसे कोई कहे कि लाख रुपया देते हैं, आप कहेंगे कि छोड़ते हैं लाख रुपया, लेकिन कपड़े न छोड़ेंगे। उस बेचारे को किसी ने कुछ भी नहीं दिया है और उसने कपड़े छोड़े हैं। आप क्यों परेशान हैं? उसके भीतर कोई कारण उपस्थित हो गया होगा, लेकिन ज़िंदगी को समझने की, सहानुभूति से देखने की हमारी आदत ही नहीं है।

५. साधक की निर्दोषता और नग्न शरीर का भय

जब महावीर पहली दफे नग्न हुए तो पत्थर पड़े। अब पूजा हो रही है। और जितने लोग पूजा कर रहे हैं वे सब कपड़े बेच रहे हैं। (...चारों ओर से हँसी) महावीर के मानने वाले सब कपड़े बेचने वाले हैं। बड़ा आश्चर्यजनक है। और इस आदमी को इन्हीं लोगों ने पत्थर मारे होंगे। और उसी के बदले में कपड़ा बेच रहे हैं कि कोई नंगा न हो जाय। तो वे कपड़े बेच रहे हैं। महावीर नग्न हुए तो लोगों ने गाँव-गाँव से निकाला। एक गाँव में न टिकने दिया। जिस गाँव में ठहर जाते, लोग उनको गाँव के बाहर कर देते कि यह आदमी नग्न हो गया है। अब पूजा चल रही है, लेकिन महावीर को तो हमने टिकने न दिया गाँव में, धर्मशाला में न रुकने दिया, गाँव के बाहर मरघट में न ठहरने दिया। कहीं गाँव के आस-पास न आ जायें तो जंगली कुत्ते उनके पीछे लगा देते कि उनको दूर गाँव के बाहर निकाल आयें। क्या तकलीफ हो गयी थी महावीर से उन लोगों को? एक तकलीफ हो गयी थी कि उस आदमी ने कपड़े छोड़ दिये थे।

लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है कि किसी के कपड़े छोड़ देने से...क्या, कारण

क्या है ? डर कुछ दूसरे हैं । डर कुछ बहुत भयंकर है । हम इतने नंगे हैं भीतर कि नग्न आदमी को देख कर हम घबड़ा जाते हैं कि बड़ी मुश्किल हो गयी । हमें अपने नंगेपन का ख्याल आ जाता है । और कोई कारण नहीं हैं । और ध्यान रहे नग्नता और बात है और नंगापन बिलकुल दूसरी बात है । महावीर को देख कर कोई कह नही सकता कि वे नंगे खड़े हैं । और हमको कपड़ों में भी देख कर कोई कहेगा कि कितने ही कपड़े पहने हैं, हैं तो नंगे ही फर्क नहीं पड़ता है ।

गौर से देखा है, जो लोग नग्न खड़े हो गये उनको गौर से देखा है ? हिम्मत ही न पड़ी होगी उस तरफ देखने की । हालांकि बीच-बीच में आँख बचा कर देखते रहे होगे, नहीं तो बेचैन कैसे होते ? ऐक्सप्लोसिव (Explosive), विस्फोटक स्थिति कैसे पैदा होती ? अब उन मित्र ने लिखा है कि स्त्रियाँ बहुत परेशान हो गयीं । स्त्रियों को मतलब ? स्त्रियां इसलिए आई हैं कि कोई नग्न हो तो उसको देखती रहें ? उनको अपना ध्यान करना था । नही, लेकिन देखते रहे होंगे आँख बचा कर, फिर सब छोड़ कर । वह आत्म-ध्यान वगैरह छोड़ कर, अपने को देखना वगैरह छोड़कर वह ही देखते रहे होंगे । तो एक्सप्लोसिव (Explosive), विस्फोटक हो ही जायगा । आपसे कौन कह रहा था कि आप देखें ? आप आँख बन्द किये हुए थे । कोई नग्न खड़ा था तो खड़ा रहता । वह आपको बिलकुल नहीं देख रहा था । वह नग्न आदमी आकर मुझसे कहता कि स्त्रियों की वजह से मेरी बड़ी संकोचपूर्ण स्थिति हो गयी, तो कुछ समझ में आता । स्त्रियों की एक्सप्लोसिव स्थिति हो गयी, उस आदमी की वजह से !

उसको जरा गौर से देखते तो मन प्रसन्न होता । उसको नग्न खड़ा देखते तो तो लगता कि कितना सादा, सीधा, निर्दोष है । हल्का होता मन, फर्क होता, लाभ होता, लेकिन लाभ को तो हम खोने की जिद्द किये बैठे हैं । हम तो हानि को पकड़ने के लिए बड़े आतुर है । और हमने ऐसी विक्षिप्त धारणाएँ बना रखी हैं जिनका कोई हिसाब नहीं है ।

६. ध्यान की भार शून्य स्थिति में कपड़े बाधक

एक स्थिति आती है ध्यान की, कुछ लोगों को अनिवार्य रूप से आती है कि वस्त्र छोड़ देने की हालत हो जाती है । वे मुझसे पूछ कर नग्न हुए हैं । इसलिए उन पर एक्सप्लोसिव मत होना । होना हो तो मुझ पर होना । जो लोग भी यहाँ नग्न हुए हैं वे मुझसे आज्ञा लेकर नग्न हुए हैं । मैंने उनसे कह दिया कि ठीक है । वे मुझसे पूछ गये हैं आकर कि हमारी हालत ऐसी है कि हमें ऐसा लगता है एक क्षण में, अगर हमने वस्त्र न छोड़े तो कोई चीज अटक जायगी । तो मैंने उनको कहा कि छोड़ दें ।

यह उनकी बात है । आप क्यों परेशान हो रहे हैं ? इसलिए उनसे किसी

ने भी कुछ कहा हो तो बहुत गलत किया है। आपको हक नही है यह, किसी को कुछ कहने का। थोड़ा समझना चाहिए कि निर्दोष चित्त की एक घड़ी है जब कई चीजें बाधाएँ बन सकती हैं। कपड़े आदमी का गहरा से गहरा इनहीबीशन (Inhibition), वर्जना, निषेधात्मक संकोच है। कपड़ा जो है वह आदमी का सबसे गहरा टेबू (Taboo), अंध-परम्परा है। वह सबसे गहरी रूढ़ि है जो आदमी को पकड़े हुए है। और एक क्षण आता है कि कपड़े करीब-करीब प्रतीक हो जाते हैं हमारी सारी सभ्यता के। और एक क्षण आता है मन का कि कपड़े अनावश्यक बोझ मालूम पड़ते हैं। कभी किसी को आता है, सबको जरूरी नही है।

बुद्ध कपड़े पहने हुए जिए, जीसस कपड़े पहने हुए जिए, महावीर ने कपड़े छोड़े। एक औरत ने भी हिम्मत की। महावीर के वक्त मे औरतें हिम्मत न कर सकी। महावीर की शिष्याएँ कम न थी, ज्यादा थी शिष्यों से। दस हजार शिष्य थे और चालीस हजार शिष्याएँ थी। लेकिन शिष्याएँ हिम्मत न जुटा सकीं, कपड़े छोड़ने की। तो महावीर को तो इसी वजह से यह कहना पडा कि इन स्त्रियों को दुबारा जन्म लेना पड़ेगा। जब तक ये एक बार पुरुष न हो तब तक इनकी कोई मुक्ति नही है। क्योकि जो कपड़ा छोड़ने से डरती हैं वे शरीर छोड़ने से कैसे न डरेंगी। तो महावीर को इसलिए यह नियम ही बनाना पडा कि स्त्री योनि से मुक्ति नही हो सकती है। उसे एक दफे पुरुष-योनि में आना पडेगा। और कोई कारण न था। लेकिन हिम्मतवर औरतें हुई, अगर कश्मीर की लल्ला महावीर को मिल जाती तो उनको यह सिद्धान्त न बनाना पड़ता। महावीर की तरह एक औरत थी कश्मीर में लल्ला और अगर कश्मीरी से जाकर पूछेंगे तो वह कहेगा कि हम सिर्फ दो ही शब्द जानते हैं, अल्ला और लल्ला। एक औरत हुई जो नग्न रही। और सारे कश्मीर ने उसको आदर दिया। क्योकि उसकी नग्नता में उन्हें पहली दफा दिखाई पड़ा और तरह का सौंदर्य, और तरह की निर्दोषता, और तरह का आनन्द, एक बच्चे का भाव। अगर लल्ला महावीर को मिल जाती तो महावीर के ऊपर एक कलंक लग गया है, वह बच जाता। महावीर के ऊपर एक कलंक है, और वह कलंक यह है कि उन्होंने कहा कि स्त्री-योनि से मुक्ति न हो सकेगी। और उसका कारण महावीर नही है, उसका कारण जो स्त्रियां उनके आस-पास इकट्ठी हुई, वे ही है। क्योकि उन्होने कहा कि यह तो असम्भव है। महावीर ने कहा, वस्त्र न छोड़ सकोगे तो शरीर कैसे छूटेगा ? इतनी उनकी पकड़ है तो भीतर की पकड कैसे जायगी ?

७. शिविर साधकों के लिए है, दर्शकों के लिए नही

नहीं मैं कहता हूँ कि आप नग्न हो जायँ, लेकिन कोई होता हो तो उसे रोकने

की तो कोई बात नही है। और साधना-शिविर में भी हम इतनी स्वतन्त्रता न दे पायें कि कोई अगर इतना मुक्त होना चाहे तो हो सके तो फिर यह स्वतन्त्रता कहाँ मिल पायेगी? साधना-शिविर साधकों के लिए है, दर्शकों के लिए नहीं। यहाँ जब तक कोई दूसरे को छेड़खानी नहीं कर रहा है तब तक उसकी परम स्वतन्त्रता है। दूसरे पर जब कोई ट्रेसपास (Trespass) सीमा-अतिक्रमण करता है तब बाधा शुरू होती है। अगर नंगा होकर कोई आपको धक्का देने लगे तो बात ठीक है, कोई अगर आपको आकर चोट पहुँचाने लगे तो बात ठीक है कि रोका जाय। लेकिन जब तक एक आदमी अपने साथ कुछ कर रहा है, आप कुछ भी नहीं हैं, बीच मे आपको कोई कारण नहीं है आपत्ति उठाने को।

अब अजीब बाते बाधा पड़ती है। कोई नग्न हो गया है इसलिए कई लोगो का ध्यान खराब हो गया है। ऐसा सस्ता ध्यान बच भी जाता तो किसी काम का नही है। उसका मूल्य कितना है? इतना ही था कि कोई आदमी नग्न नही हुआ, इसलिए आपको ध्यान हो गया। कैसे हो जायगा? नही ये छोटी बातें अत्यन्त ओछी बाते छोड़नी पड़ेंगी। साधना बडी हिम्मत की बात है। वहाँ पर्त-पर्त अपने को उखाड़ना पड़ता है। साधना बहुत गहरे में आन्तरिक नग्नता है। जरूरी नही कि कपड़े कोई छोड़े, लेकिन किसी मूमेन्ट (Moment), क्षण मे किसी की स्थिति यह हो सकती है कि वह कपड़ा छोड़े। और इस बात को ध्यान रखना सदा कि जब किसी को होती है तब आप बाहर से सोच नहीं सकते है, न आपको कोई हक है कि आप सोचें कि ठीक हुआ कि गलत हुआ, कि क्यों छोड़ा कि नही छोड़ा। आप कौन है? आप कहाँ आते हैं? और आपको कैसे पता चलेगा? नही तो महावीर को जिन्होंने गाँव के बाहर निकाला वे कोई गलत लोग रहे होंगे? आप ही जैसे शिष्ट, समझदार, गाँव के सब सज्जनो ने उनको बाहर किया कि यह आदमी नग्न खड़ा है, हम न टिकने देगे यहाँ। लेकिन बार बार हम वही भूलें दुहराते हैं।

मेरे मित्र अभी रास्ते में मिले, उन्होंने बड़े प्रेम से समझपूर्वक कहा कि आप ठीक से समझा दें, नही तो बम्बई मे ध्यान मे आने वाली संख्या कम हो जायगी। बिलकुल कम हो जाय, एक आदमी न आये। लेकिन गलत आदमियों की कोई जरूरत नहीं है। एक आदमी आये, इससे क्या प्रयोजन है। उन्होंने कहा कि महिलाएँ बिलकुल अब शिविर में नहीं आयेंगी। बिलकुल न आयें। किसने कहा है कि वे आयें? उनको लगा तो आयें। आयें तो मेरी शर्त पर आना होगा। उनकी शर्त पर शिविर नहीं हो सकता है। और जिस दिन मैं आपकी शर्त पर शिविर करूँ, उस दिन आप आना ही मत। उस दिन मैं आदमी दो कौड़ी का हूँ मुझसे फिर उसको कोई मतलब नहीं होगा।

मेरी शर्त पर ही होगा शिविर। मैं आपके लिए नहीं आता हूँ। और आपके हिसाब से नहीं आऊँगा। और आपके हिसाब से नहीं चलूँगा। इसीलिए तो मुर्दा गुरु बहुत प्रीतिकर होते हैं। क्योंकि आपके हिसाब से उनको आप चला लेते हैं। जिन्दा होता है तब बहुत मुश्किल हो जाती है। इसलिए महावीर मर जायें तो पूजे जा सकते हैं, जिन्दा को पत्थर मारने पड़ते हैं। बिलकुल स्वाभाविक है। इसलिए दुनिया भर में मुर्दों को पूजा जाता है। जिन्दे से बड़ी तकलीफ है, क्योंकि जिन्दे को आप बाँध नहीं सकते हैं। और कोई दूसरे कारण मेरे लिए मूल्य के नहीं हैं। कौन आता है, कौन नहीं आता है, यह बिलकुल बे-मूल्य है। जो आता है अगर वह आता है तो समझ पूर्वक आये कि किसलिए आया है और क्या करने आया है।

८. सहज योग

एक मित्र ने पूछा है कि सहज-योग के विषय में कुछ खुला करके समझाइए।

सहज-योग सबसे कठिन योग है। क्योकि सहज होने से ज्यादा कठिन और कोई बात नही है। सहज का मतलब क्या होता है? सहज का मतलब होता है जो हो रहा है, उसे होने दें। आप बाधा न बनें। अब एक आदमी नग्न हो गया है। वह उसके लिए सहज हो सकता है, लेकिन बड़ा कठिन हो गया है। सहज का अर्थ होता है कि हवा, पानी की तरह हो जायं। बीच में बुद्धि से बाधा न डालें, जो हो रहा है, उसे होने दें।

९. सहज होना सबसे कठिन हो गया है

बुद्धि बाधा डालती है, असहज होना शुरू हो जाता है। जैसे ही हम तय करते हैं क्या होना चाहिए और क्या नही होना चाहिए, बस हम असहज होना शुरू हो जाते हैं। जब हम उसी के लिए राजी हैं, जो होता है, उसी के लिए राजी हैं। तभी हम सहज हो पाते हैं। तो इसलिए पहली बात समझ लें कि सहज-योग सबसे ज्यादा कठिन है। ऐसा मत सोचना कि सहज-योग बहुत सरल है। ऐसी भ्रान्ति है कि सहज-योग बड़ी सरल साधना है। कबीर का लोग वचन दुहराते रहते हैं, साधो सहज समाधि भली। भली तो है, पर बड़ी कठिन है। क्योंकि सहज होने से ज्यादा कठिन आदमी के लिए कोई दूसरी बात ही नहीं है। क्योंकि आदमी इतना सहज हो चुका है, इतना दूर जा चुका है सहज होने से कि उसे असहज होना ही आसान, सहज होना मुश्किल हो गया है।

पर फिर कुछ बातें समझ लेनी चाहिए, क्योंकि जो मैं कह रहा हूँ वह सहज-योग ही है।

जीवन में सिद्धान्त थोपना जीवन को विकृत करना है। लेकिन हम सारे

लोग सिद्धान्त थोपते हैं। कोई हिंसक है और अहिंसक होने की कोशिश कर रहा है, कोई क्रोधी है, शान्त होने की कोशिश कर रहा है। कोई दुष्ट है, वह दयालु होने की कोशिश कर रहा है। कोई चोर है, वह दानी होने की कोशिश कर रहा है। यह हमारे सारे जीवन की व्यवस्था है। जो हम हैं, उस पर हम कुछ थोपने की कोशिश में लगे हैं। हम सफल हों तो भी असफल और असफल हों तो भी असफल हैं। क्योंकि चोर लाख उपाय करे तो दानी नहीं हो सकता है। हाँ, दान कर सकता है। दानी नहीं हो सकता है। दान करने से भ्रम पैदा हो सकता है कि चोर दानी हो गया है। लेकिन चोर का चित्त दान में भी चोरी की तरकीबें निकाल लेगा।

मैंने सुना है कि एकनाथ यात्रा पर जा रहे थे। गाँव में एक चोर था उसने एकनाथ से कहा कि मैं भी चलूँ तीर्थ-यात्रा पर आपके साथ। बहुत पाप हो गये, गंगा-स्नान मैं भी कर आऊँ। एकनाथ ने कहा, चलने में तो कोई हर्ज नहीं है। बाकी भी सब तरह-तरह के चोर जा रहे हैं, तू भी चल सकता है। लेकिन एक बात है। बाकी जो चोर मेरे साथ जा रहे हैं वे कहते हैं कि उस चोर को मत ले जाना नहीं तो वह हमारी सब चीजें रास्ते में गड़बड़ कर देगा। तो तू एक पक्की शर्त बाँध ले कि रास्ते में तीर्थ यात्रियों के साथ चोरी नहीं करना। उसने कहा, कसम खाता हूँ। जाने से लेकर आने तक चोरी नहीं करूँगा। फिर तीर्थयात्रा शुरू हुई। वह चोर भी साथ हो गया। बाकी भी चोर थे। भिन्न-भिन्न तरह के चोर हैं। कोई एक तरह के चोर हैं? कई तरह के चोर हैं। कोई चोर मजिस्ट्रेट बन कर बैठा है, कोई चोर कुछ और बन कर बैठा है। सब तरह के चोर गये, वह चोर भी साथ गया। लेकिन चोरी की आदत, दिन भर तो गुजार दे, रात बड़ी मुश्किल में पड़ जाय। सब यात्री तो सो जायें, उसकी बड़ी बेचैनी हो जाय। उसके धन्धे का वक्त आ जाय। एक दिन, दो दिन किसी तरह बीते। फिर उसने कहा, मर जायेंगे। न मालूम तीन चार महीने की यात्रा है, ऐसा कैसे चलेगा? और सबसे बड़ा खतरा यह है कि किसी तरह यात्रा भी गुजार दी और कहीं चोरी करना भूल गये तो और मुसीबत। लौट कर क्या करेंगे? तीर्थ कोई जिन्दगी भर होता है? (हँसी...) तीसरी रात गड़बड़ शुरू हो गयी। गड़बड़ व्यवस्थित हुई, धार्मिक ढंग की हुई। चोरी तो उसने की, लेकिन तरकीब से की। एक बिस्तर में से सामान निकाला और दूसरे में डाल दिया, अपने पास न रखा। (जोर की हँसी...) सुबह ही आदमी बड़े परेशान होने लगे। किसी का सामान किसी की सन्दूक में मिले और किसी का सामान किसी के बिस्तर में। १००-५० यात्री थे, खोजबीन में मुश्किल हो गयी। सबने कहा, यह मामला क्या है? यह हो क्या रहा है? चीजें जाती तो नहीं हैं लेकिन इधर-उधर चली जाती हैं। (हँसी...)

फिर एकनाथ को शक हुआ कि वही चोर होना चाहिए जो तीर्थयात्री बन गया है। वे रात जगते रहे। देखा कोई दो बजे रात वह चोर उठा और उसने एक की चीज दूसरे के पास करनी शुरू कर दी। एकनाथ ने उसे पकड़ा और कहा, यह क्या कर रहा है? उसने कहा, मैंने कसम खा ली है कि चोरी न करूँगा। चोरी मैं बिलकुल नहीं कर रहा हूँ, लेकिन कम से कम चीजें तो इधर-उधर कर लूँ। (हँसी...) मैं कोई चीज रखता नहीं, अपने पास के लिए छूता नहीं। बस इधर से उधर कर लेता हूँ। यह तो मैंने आपसे कहा भी नही था कि ऐसा मैं नहीं करूँगा। एकनाथ बाद में कहते थे, चोर अगर बदलने की भी कोशिश करे तो फर्क नही पड़ता है।

१०. जो हैं, उसी को जानें और जीएँ

हमारे सारे जीवन में जो असहजता है वह इसमें है कि जो हम हैं उससे हम भिन्न होने की पूरे समय कोशिश में लगे हुए हैं। नहीं, सहज-योग कहेगा, जो हैं, उससे भिन्न होने की कोशिश मत करें। जो है, उसी को जानें और उसी को जीये। अगर चोर हैं, तो जाने कि मैं चोर हूँ। और अगर चोर है तो पूरी तरह से चोर होकर जीयें। बड़ी कठिन बात है। क्योंकि चोर को भी इससे तृप्ति मिलती है कि मैं चोरी छोड़ने की कोशिश कर रहा हूँ। छूटती नहीं, लेकिन एक राहत रहती है कि मैं चोर हूँ आज भला लेकिन कल न रह जाऊँगा। चोर के अहंकार को भी एक तृप्ति है कि कोई बात नही आज चोरी करनी पड़ी लेकिन जल्द ही वह वक्त आयगा जब हम भी दानी हो जाने वाले है। चोर न रहेंगे। तो कल की आशा मे चोर आज सुविधा से चोरी कर पाता है। सहज-योग कहता है कि अगर तुम चोर हो तो जानो कि तुम चोर हो। जानते हुए चोरी करो, लेकिन इस आशा में नही कि कल अ-चोर हो जाओगे।

और जो हम हैं अगर उसको ठीक से जान लें और उसी के साथ जीने को राजी हो जायें तो क्रान्ति आज ही घटित हो सकती है। चोर अगर जान ले कि मैं चोर हूँ तो ज्यादा दिन चोर नहीं रह सकता है। यह तरकीब है उसकी चोर बने रहने के लिए। वह कहता है कि भला चोर हूँ, मुश्किल है आज इसलिए चोरी कर रहा हूँ कल सुविधा हो जायगी तो फिर चोरी नहीं करूँगा। असल में मैं चोर नही हूँ, परिस्थितियों ने मुझे चोर बना दिया है। इसलिए उसको चोरी करने में सुविधा बन जाती है। वह अ-चोर बना रहता है। वह कहता है मैं हिंसक नहीं हूँ, परिस्थितियों ने मुझे हिंसक बना दिया है। मैं क्रोधी नहीं हूँ, वह जो दूसरे आदमी ने मुझे गाली दी थी इसलिए क्रोध आ गया और फिर क्रोधी आकर क्षमा माँग आता है, वह कहता है, माफ कर देना भाई। न मालूम कैसे मेरे मुँह से वह गाली निकल गयी। मैं तो क्रोधी आदमी नहीं हूँ! उसने अहंकार को वापिस रख लिया अपनी

जगह। सब पाश्चाताप अहंकार को पुनः स्थापित करने के उपाय हैं। उससे अहंकार रख लिया, क्षमा माँग ली।

नहीं, सहज-योग यह कहता है कि तुम जो हो जानना कि वही हो और इंच भर यहाँ-वहाँ हटने की कोशिश मत करना, बचने की कोशिश मत करना। तो उस पीड़ा से, उस दंश से, उस दुख से, उस पाप से, उस आग से, उस नर्क से जो तुम हो, अगर उसका पूरा तुम्हें बोध हो जाय तो तुम छलाँग लगाकर तत्काल बाहर हो जाओगे, बाहर होना नहीं पड़ेगा। अगर कोई चोर है और पूरी तरह चोर होने को जान ले। और अपने मन में कहीं भी गुन्जाइश न रखे कि कभी मैं चोर नहीं रहूँगा। मैं चोर हूँ तो मैं चोर ही रहूँगा और अगर आज चोर हूँ तो कल और बड़ा चोर हो जाऊँगा, क्योंकि चौबीस घण्टे का अभ्यास और बढ़ जायगा। अगर कोई अपनी इस चोरी के भाव को पूरी तरह पकड़ ले और ग्रहण कर ले और समझे कि ठीक है यही मेरा होना है। तो आप समझते हैं कि आप चोर रह सकेंगे? यह इतने जोर से छाती में तलवार की तरह चुभ जायगी कि मैं चोर हूँ, तो इसमें जीना असम्भव हो जायगा एक क्षण भी। क्रान्ति अभी हो जायगी, यहीं हो जायगी।

११. सिद्धान्तों के (सुरक्षा कवच) शाक-एब्जार्बर और बफर

नहीं, लेकिन हम होशियार हैं। हमने तरकीबें बना ली हैं। चोर हम हैं और अ-चोर होने के सपने देखते रहते हैं। वे सपने हमें चोर बनाये रहने में सहयोगी हो जाते हैं। बफर (Buffer) का काम करते हैं। रेलगाड़ी के डब्बों के बीच में बफर लगे रहते हैं। धक्के लगते हैं, बफर पी जाते हैं धक्के। डब्बे के भीतर के यात्री को पता नहीं चलता है। कार में स्प्रिंग लगे हुए हैं, शॉक-एब्जार्बर्स (Shock-absorbers), लगे हुए हैं। कार चलती है, रास्ते में गड्ढे हैं, शॉक एब्जार्बर पी जाता है। भीतर के सज्जन को पता नहीं कि धक्का लगा है। ऐसे हमने सिद्धान्तों के शॉक एब्जार्बर और बफर लगाये हुए हैं। चोर हूँ मैं और सिद्धान्त है मेरा अचौर्य। अहिंसक हूँ मैं, 'अहिंसा परम धर्म' की तख्ती लगाये हुए हूँ। यह बफर है। यह मुझे हिंसक रहने में सहयोगी बनेगा। क्योंकि जब भी मुझे ख्याल आयगा कि मैं हिंसक हूँ, मैं कहूँगा, क्या हिंसक? अहिंसा परम धर्म। मैं अहिंसा को धर्म मानता हूँ। आज नहीं सध रहा है, कमजोर हूँ कल सध जायगा। इस जन्म में नहीं सधता अगले जन्म में सध जायगा। लेकिन सिद्धान्त मेरा अहिंसा है। तो मैं झण्डा लेकर अहिंसा का सिद्धान्त सारी दुनिया में गाड़ता फिरूँगा। और भीतर हिंसक रहूँगा। वह झण्डा सहयोगी हो जायगा। जहाँ अहिंसा परम धर्म लिखा हुआ दिखायी पड़े तो यह समझ लेना कि आस-पास हिंसक निवास करते होंगे। और कोई कारण नहीं है। आस-पास हिंसक बैठे होंगे। जिन्होंने वह तख्ती लगायी है—अहिंसा परम धर्म, वह हिंसक की तरकीब है। और

आदमी ने इतनी तरकीबें ईजाद की हैं कि तरकीबें, तरकीबें ही रह गयी हैं आदमी खो गया है।

सहज होने का मतलब है, जो है दैट व्हिच इज, इज (That which is, Is) जो है, वह है। अब उस होने के बाहर कोई उपाय नहीं है। उस होने में रहना है। उसमें रहूँगा। लेकिन वह होना इतना दुखद है कि उसमें रहा नहीं जा सकता है। नरक में आपको डाल दिया जाय तो आप हैरान होंगे कि नरकमें रहने में आपके सपने ही सहयोगी बनेंगे। तो आप आँख बन्द करके सपना देखते रहेंगे। उपवास किया है किसी दिन आपने तो आप आँख बन्द करके भोजन के सपने देखते रहते हैं। उपवास के दिन भी भोजन का सपना ही सहयोगी बनता है, उपवास पार करने में। भोजन का सपना चलता रहता है। अगर भोजन का सपना बन्द कर दें तो उपवास उसी वक्त टूट जाय। लेकिन कल कर लेंगे सुबह।

एक प्रोफ़ेसर मेरे साथ थे युनिवर्सिटी में। बहुत दिन साथ रहने पर पहले तो मुझे पता नहीं चला, कभी-कभी अचानक एकदम वे मिठाइयों आदि की बात करने लगते। मैंने कहा कि यह बात क्या है? कभी-कभी करते हैं। फिर मैंने पकड़ा। अन्दाज लगाया तो पता चला कि हर शनिवार को करते हैं। (हँसी...) तो एक दिन शनिवार था और वे आये। और मैंने कहा कि अब तो आप जरूर मिठाई की बात करेंगे। उन्होंने कहा कि आप क्यों ऐसी बात करते हैं! (हँसी...) मैंने कहा कि मैं इधर दो महीने से रिकार्ड रख रहा हूँ आपका। शनिवार को जरूर मिठाई की बात करते हैं। आप शनिवार को उपवास तो नहीं करते है? उन्होंने कहा, आपको किसने कहा? मैंने कहा, कोई कहने का सवाल ही नहीं है। (हँसी...) मैंने हिसाब लगाया है। उन्होंने कहा, करता हूँ। आपने कैसे पकड़ा? मैंने कहा, पकड़ा क्या, मैं देखता हूँ कोई भी स्वस्थ आदमी जो ठीक से खाता-पीता हो मिठाई की क्यों बात करे? और फिर आप ठीक खाते-पीते आदमी हैं। शनिवार को जरूर यह बात करते हैं। कोई न कोई बहाना वह फौरन निकाल लेते और वह मिठाई की बात शुरू करते। उन्होंने कहा, मैं शनिवार...आपने अच्छा पकड़ा, लेकिन शनिवार को मैं दिन भर सोचता रहता हूँ कि कल यह खाऊँ, वह खाऊँ, यह करूँ, वह करूँ। उसी के सहारे तो गुजार पाता हूँ। शनिवार मैं उपवास करता हूँ। (हँसी...) तो मैंने उनसे कहा कि एक दिन ऐसा करो कि ये सपने मत देखो, उपवास करो। उन्होंने कहा, फिर उपवास टूट जायगा। इसी के सहारे मैं दिन भर खींच पाता हूँ। (हँसी...) कल की आशा आज को गुजार देती है।

१२. आदर्शों और सिद्धान्तों की वंचना

हिंसक अपनी हिंसा गुजार रहा है अहिंसा की आशा में। क्रोधी अपने क्रोध

को गुजार रहा है, दया की आशा में। चोर अपनी चोरी को गुजार रहा है, दान की आशा में। पापी अपने पाप को गुजार रहा है, पुण्यात्मा होने की आशा में। ये आशाएँ बड़ी अधार्मिक हैं। नहीं, तोड़ दें इनको। जो हैं, हैं। उसे जान लें और उसके साथ जीयें। वह जो फैक्ट (Fact), तथ्य है, उसके साथ जीयें वह कठिन है, कठोर है, बहुत दुखद है। बहुत मन को पीड़ा दे जाती है, मैं ऐसा आदमी हूँ। अब एक आदमी सेक्सुअलिटी (*Sexuality*), कामुकता से भरा है, ब्रह्मचर्य की किताब पढ़ कर गुजार रहा है। काम से भरा है, किताब ब्रह्मचर्य की पढ़ता है। तो वह सोचता है कि हम बड़े ब्रह्मचर्य के साधक हैं। काम से भरा है। अब वह ब्रह्मचर्य की किताब बड़ा सहारा बन रही है, उसको कामुक रहने में। वह कह रहा है आज कोई हर्ज नहीं है, आज तो गुजर जाय, आज और भोग लो। कल से तो पक्का ही कर लेना है।

मैं एक घर मे मेहमान था। एक बूढ़े ने मुझसे कहा कि एक संन्यासी ने मुझे तीन दफे ब्रह्मचर्य का व्रत दिलवाया है। तीन दफा, मैंने कहा। ब्रह्मचर्य का व्रत एक दफा काफी है। दूसरी दफे कैसे लिया ? (हँसी...) ब्रह्मचर्य का व्रत तीन दफे कैसे लेना पड़ेगा ? तो उन्होने कहा, मैं तो कई लोगों से कह चुका हूँ लेकिन किसी ने मुझे पकड़ा नही। वे कहते हैं, अच्छा आपने तीन दफे व्रत लिया ! कोई कुछ कहता नही है, लेकिन आप ? मैंने कहा, ब्रह्मचर्य का व्रत तो एक ही दफा हो सकता है। दुबारा कैसे लिया ? उन्होने कहा, वह टूट गया। फिर तिबारा लिया। मैंने कहा, फिर चौथी बार नही लिया ? उसने कहा कि नहीं, फिर मेरी हिम्मत ही टूट गयी लेने की। (हँसी...) लेकिन तीन दफे लेते, लेते (हँसी...) वे साठ साल के हो गये। (हँसी...) गुजार दी कामुकता। ब्रह्मचर्य का व्रत ले ले कर गुजार दी कामुकता।

हम बड़े अद्भुत हैं। यह हमारा असहज-योग है जो चल रहा है। असहज-योग। —रहेंगे कामुक, पढ़ेंगे ब्रह्मचर्य की किताब। वह ब्रह्मचर्य की किताब हमारी सेक्सुअलिटी, कामुकता में बड़ा बफर का काम करती है। उसे पढ़े जायेंगे और मन मे समझाये जायेंगे कि कौन कहता है कि मैं कामुक हूँ। किताब ब्रह्मचर्य की पढ़ता हूँ। अभी मैं कमजोर हूँ, पिछले जन्मों के कर्म बाधा दे रहे हैं। अभी समय नहीं आया है, इसलिए थोड़ा चल रहा है, लेकिन बाकी हूँ मैं ब्रह्मचारी ही। ब्रह्मचारी की धारणा मेरी है। इधर सेक्स (Sex) काम चलेगा, उधर ब्रह्मचर्य। दोनों साथ। ब्रह्मचर्य बफर बन जायगा, शॉक एब्जार्बर बन जायगा। सेक्स की गद्दी लगी रहेगी भीतर, वहाँ कोई धक्के न पहुँचेंगे। यात्रा ठीक से हो जायगी।

यह असहज स्थिति है। सहज स्थिति का मतलब है कि बफर हटा दें। सड़क पर गड्ढे हैं तो जानें। गाड़ी बिना बफर की, बिना शॉक एब्जार्बर की

चलायें। पहले ही गड्ढे पर प्राण निकल जायगा, कमर टूट जायगी, गाड़ी के बाहर निकल आओगे कि नमस्कार। इस गाड़ी में अब नहीं चलते। (हँसी...) गाड़ी के स्प्रिंग निकाल कर चलेंगे रास्ते पर, पहले ही गड्ढे में प्राण निकल जायेंगे, हड्डी टूट जायगी, गाड़ी के बाहर हो जायेंगे। कहेंगे, नमस्कार। अब इस गाड़ी में हम कभी न बैठेंगे। लेकिन वे नीचे लगे शॉक एब्जार्वर गड्ढों को पी जाते हैं।

१३. अ-सहज होने की चेष्टा न करें जो है, उसे जानें, स्वीकारें, पहचानें

सहज-योग का मतलब है जो है, वह है। असहज होने की चेष्टा न करें। जो है उसे जानें, स्वीकार करें, पहचानें और उसके साथ रहने को राजी हो जायें। और फिर क्रान्ति सुनिश्चित है। **जो है, उसके साथ जो भी रहेगा बदलेगा।** क्योंकि फिर साठ साल उपाय नहीं है कामुकता में गुजारने का। कितना ही व्रत लेंगे। व्रत लेंगे तो उपाय हो जायगा। अगर मैंने आप पर क्रोध किया और क्षमा माँगने न जाऊँ और जाकर कल कह आऊँ कि मैं आदमी गलत हूँ, और अब मुझसे दोस्ती रखनी हो तो ध्यान रखना मैं फिर से क्रोध करूँगा। क्षमा मैं क्या माँगू मैं आदमी ऐसा हूँ कि मैं क्रोध करता हूँ। सब दोस्त टूट जायेंगे। सब सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जायेंगे। अकेले क्रोध को लेकर जीना पड़ेगा फिर। फिर क्रोध ही मित्र रह जायगा। क्रोध करने वाला भी कोई, क्रोध सहने वाला भी कोई, क्रोध उठाने वाला भी कोई पास न होगा। तब उस क्रोध के साथ जीना पड़ेगा। **जी सकेंगे उस क्रोध के साथ? छलाँग लगाकर बाहर हो जायेंगे।** कहेंगे, यह क्या पागलपन है? नहीं, लेकिन तरकीब हमने निकाल ली है।

सुबह पत्नी पर नाराज हो रहा है पति। घण्टे भर बाद मना समझा रहा है। साड़ी खरीद कर ले आ रहा है। और पत्नी समझ रही है कि बड़े प्रेम से भर गया है। वह बेचारा अपने क्रोध का पश्चाताप करके फिर पुर्नस्थापित, पुराने स्थान पर पहुँच रहा है। (हँसी...) पुरानी सीमा पर जहाँ से झगड़ा शुरू हुआ था। उस लाइन पर फिर पहुँच रहा है। साड़ी आ जायगी, पत्नी वापिस लौट आयगी, पुरानी जगह फिर खड़ी हो जायगी। साँझ फिर वही होना है। उसी रेखा पर सुबह हुआ था, वही रेखा फिर स्थापित होगी। फिर साँझ वही होना है, फिर रात वही समझाना है। फिर सुबह वही होना है। पूरी जिन्दगी वही दौड़ना है। लेकिन दोनों में से कोई भी सत्य को न समझेगा कि सत्य क्या है? यह हो क्या रहा है? यह क्या जाल है? बेईमानी क्या है यह? **दोनों एक दूसरे को धोखा दिये चले जायेंगे।** हम सब एक-दूसरे को धोखा दिये चले जा रहे हैं। और दूसरे को धोखा देना तो ठीक, अपने को ही धोखा दिये चले जा रहे हैं।

सहज-योग का मतलब है, अपने को धोखा मत देना। जो हैं, जान लेना यही हूँ। ऐसा ही हूँ। और अगर ऐसा जान लेंगे तो बदलाहट तत्काल हो जायगी,

युगपत, उसके लिए रुकना न पड़ेगा कल के लिए। किसी के घर में आग लगी हो और उसे पता चल जाय कि घर में आग लगी है। तो रुकेगा कल तक ? अभी छलांग लगा कर बाहर हो जायगा। जिस दिन जिंदगी जैसी हमारी है उसे पूरा देख लेते हैं, उसी दिन छलांग की नौबत आ जाती है। लेकिन घर में आग लगी है और हमने अन्दर फूल सजा रखे है। हम आग को देखते नहीं हैं, हम फूल को देखते हैं। जंजीरें हाथ मे बँधी हैं, हमने सोने का पालिश चढ़ा रखा है। हम जंजीरें देखते नहीं हैं, हम आभूषण देखते हैं। बीमारियो से सब घाव हो गये हैं, हमने पट्टियाँ बाँध रखी हैं। पट्टियों पर रंग पोत दिये हैं। हम रगों को देखते है, भीतर के घावों को नहीं देखते हैं।

१४. असत्य बांधता है, सत्य मुक्त करता है

धोखा लम्बा है और पूरी जिन्दगी बीत जाती है और परिवर्तन का क्षण नहीं आ पाता है। उसे हम पोस्टपोन (Postpone), स्थगित करते चले जाते है। मौत पहले आ जाती है, वह पोस्टपोन किया हुआ क्षण नही आता है। मर पहले जाते है, बदल नहीं पाते हैं। बदलाहट कभी भी हो सकती है। सहज-योग बदलाहट की बहुत अद्‌भुत प्रक्रिया है। सहज-योग का मतलब यह है कि जो है उसके साथ जीओ, बदल जाओगे। बदलने की कोशिश करने की कोई जरूरत नहीं है। सत्य बदल देता है। जीसस का वचन है, 'ट्रुथ लिबरेट्स' (Truth Liberates)। वह जो सत्य है वह मुक्त करता है। लेकिन सत्य को हम जानते ही नहीं। हम असत्य को लीप-पोत कर खड़ा कर लेते हैं। असत्य बाँधता है, सत्य मुक्त करता है। दुखद से दुखद सत्य भी, सुखद से सुखद असत्य से बेहतर है। क्योंकि सुखद असत्य बहुत खतरनाक है। वह बाँधेगा। दुखद सत्य भी मुक्त करेगा। उसका दुख भी मुक्तिदायी है। इसलिए दुखद सत्य के साथ जीना, सुखद असत्य को मत पालना। सहज-योग इतना ही है। और फिर तो समाधि आ जायगी। फिर समाधि को खोजने न जाना पड़ेगा। वह आ जायगी।

जब रोना आये तब रोना, रोकना मत। और जब हँसना आये तो हँसना, रोकना मत। जब जो हो, उसे होने देना और कहना कि यह हो रहा है।

मैंने सुना है कि जापान मे एक फकीर मरा। उसके मरते समय लाखो लोग इकट्ठे हुए। उसकी बड़ी कीर्ति थी। लेकिन उससे भी ज्यादा कीर्ति उसके एक शिष्य की थी। उस शिष्य के कारण ही गुरु प्रसिद्ध हो गया। लेकिन जब लोग आये तो उन्होने देखा वह जो शिष्य है, वह बाहर बैठकर छाती पीट कर रो रहा है। लोगों ने कहा कि आप और रो रहे हैं। हम तो समझते थे कि आप ज्ञान को उपलब्ध हो गये हैं। और आप रोते हैं ? तो उस शिष्य ने कहा कि पागलों, तुम्हारे ज्ञान के पीछे मैं रोना न छोड़ूंगा। रोने की बात ही और है। रखो अपने

ज्ञान को सम्हालो। मुझे नहीं चाहिए। पर उन्होंने कहा, अरे, लोग क्या कहेंगे ? अन्दर जाओ। बदनामी फैल जायगी। हम तो सोचते थे कि तुम स्थित-प्रज्ञ हो गये हो। हम तो समझे थे कि तुम परम ज्ञानी हो गये हो। और हम तो समझे थे कि अब तुम्हें कुछ भी नहीं छुयेगा। उसने कहा, तुम गलत समझे। बल्कि पहले मुझे बहुत कम छूता था, संवेदनशीलता मेरी कम थी, मैं कठोर था। **अब तो सब मुझे छूता है और आर-पार निकल जाता है। मैं तो रोऊँगा, मैं दिल भर कर रोऊँगा। तुम्हारे ज्ञान को फेंको।** पर वे लोग, जैसा कि भक्तजन होते हैं, उन्होंने कहा कि सब में बदनामी फैल जायगी। भीड़ करके, घेरा करके किसी को देखने मत दो। बदनामी हो जायगी कि परम ज्ञानी रोता है। किसी एक ने कहा, तुम तो सदा समझाते थे कि आत्मा अमर है। अब क्यों रो रहे हो ? तो उस फकीर ने कहा, आत्मा के लिए कौन रो रहा है ? वह तो सदा रहेगी। मैं तो उस शरीर के लिए रो रहा हूँ। वह शरीर भी बहुत प्यारा था जो टूट गया। और वह शरीर अब दुबारा इस पृथ्वी पर कभी नहीं होगा। और वह मन्दिर भी बहुत प्यारा था जिसमें उस आत्मा ने निवास किया। अब वह दुबारा नहीं होगा। मैं उसके लिए रो रहा हूँ। अरे, उन्होने कहा, पागल, शरीर के लिए रोते हो ? उस फकीर ने कहा कि रोने में भी शर्तें लगाओगे क्या मुझे रोने भी नहीं दोगे ? (हँसी...)

१५. तथ्य के साथ जीने से आता है रूपान्तरण

मुक्त-चित्त वही हो सकता है जो सत्य-चित्त हो गया है। सत्य-चित्त का मतलब जो हो रहा है—रोना है तो रोएँ, हँसना हो तो हँसें, क्रोध करना है तो बी आथेंटिक (Be authentic), क्रोध मे भी पूरे प्रामाणिक हों। अगर क्रोध करें तो पूरे क्रोध ही हो जायें ताकि आपको भी पता चल जाय कि क्रोध क्या है और आस-पास के लोगो को भी पता चल जाय कि क्रोध क्या है। वह मुक्तिदायी होगा। बजाय इंच-इंच क्रोध जिन्दगी भर करने के, पूरा क्रोध एक ही दफे कर ले और जान ले। तो उससे आप भी झुलस जायँ और आपके आस-पास भी झुलस जायँ। और पता चल जाय कि क्रोध क्या है। क्रोध का पता ही नही चलता है। आधा-आधा चल रहा है। वह भी इनआथेंटिक (In-authentic), अ-प्रामाणिक चल रहा है। इंच भर करते हैं और इंच भर नही करते। हमारी यात्रा ऐसी है, एक कदम चलते हैं, एक कदम वापिस लौटते हैं। न कही जाते, न कही लौटते। एक जगह पर खड़े होकर नाचते रहते है। कही जाना आना नही है। सहज-योग का इतना ही मतलब है कि जो है जीवन में उसे स्वीकार कर लें, उसे जाने और जीये। और इस जीने. जानने और स्वीकृति से आयेगा परिवर्तन, म्यूटेशन (Mutation) बदलाहट। और वह बदलाहट आपको वहाँ पहुँचा देगी जहाँ परमात्मा है।

१६. ध्यान की यह प्रक्रिया है सहज-अवस्था में लौटने के लिए

यह जिसे मैं ध्यान कह रहा हूँ, यह सहज-योग की ही प्रक्रिया है। इसमें आप स्वीकार कर रहे हैं उसे जो हो रहा है, अपने को छोड़ रहे हैं पूरा और स्वीकार कर रहे हैं, जो हो रहा है। नहीं तो आप सोच सकते हैं, पढ़े-लिखे आदमी, सुशिक्षित, सम्पन्न, सोफिस्टिकेटेड, सुसंस्कृत रो रहे हैं खड़े होकर, चिल्ला रहे हैं, हाथ पैर पटक रहे हैं, विक्षिप्त की तरह नाच रहे हैं। **यह सामान्य नहीं है। कीमती है यह,** असामान्य (Extra-ordinary) है यह। इसलिए जो देख रहा है उसकी समझमें नहीं आ रहा है कि यह क्या हो रहा है। उसे हँसी आ रही है कि यह क्या हो रहा है। उसे पता नहीं कि वह भी इस जगह खड़े होकर प्रामाणिक रूप से जो कहा जा रहा है, करेगा तो उसे भी यही होगा। और हो सकता है कि उसकी हँसी सिर्फ डिफेंस-मेजर (Defense measure) बचाव का साधन हो। वह सिर्फ हँस कर अपनी रक्षा कर रहा है। वह कह रहा है कि हम ऐसा नही कर सकते। वह हँस कर बता रहा है, हम ऐसा नहीं कर सकते। लेकिन उसकी हँसी कह रही है कि उसका कुछ सम्बन्ध है, इस मामले से। अगर वह भी इस जगह इसी तरह खड़ा होगा, यही करेगा तो उसे भी यह सब होगा ही। उसने भी अपने को रोका है, दबाया है, रोया नहीं, हँसा नहीं, नाचा नहीं है।

बर्टण्ड रसल ने पीछे एक बार कहा कि मनुष्य की सभ्यताने आदमी से कुछ कीमती चीजें छीन ली है। उसमें नाचना एक है। बर्टण्ड रसल ने कहा, आज मैं ट्रेफलगार स्क्वायर पर खड़े होकर लन्दन में नाच नहीं सकता। कहते हैं हम स्वतन्त्र हो गये हैं। कहते हैं कि दुनिया में स्वतन्त्रता आ गयी है लेकिन मैं चौरस्ते पर खड़े होकर नाच नहीं सकता। ट्रैफिक का आदमी फौरन मुझे पकड़ कर थाने भेज देगा कि आप ट्रैफिक में बाधा डाल रहे हैं। और आप आदमी पागल मालूम होते हैं। चौरस्ता, राह नाचने की जगह नहीं है। बर्टण्ड रसल ने कहा कि कई दफे आदिवासियों में जाकर देखता हूँ और जब उन्हें नाचते देखता हूँ रात, आकाश की तारों की छाया में तब मुझे ऐसा लगता है कि सभ्यता ने कुछ पाया या खोया।

कुछ पाया है। बहुत कुछ खोया है। सरलता खोयी है, सहजता खोयी है, प्रकृति खोयी है और बहुत तरह की विकृति पकड़ ली है। ध्यान आपको सहज अवस्था में ले जाने की प्रक्रिया है।

१७. साधक के लिए पाथेय

अन्तिम बात जो मैं आपसे कहना चाहूँगा वह यह कि तीन दिन में जो यहाँ

हुआ वह महत्वपूर्ण है । कुछ लोगों ने बहुत अद्‌भुत प्रतीति पाई, कुछ लोग प्रतीति की झलक तक पहुँचे, कुछ लोग प्रयास तो किये लेकिन पूरा नहीं कर पाये, फिर भी प्रयास किये और निकट थे, प्रवेश हो सकता था । लेकिन सभी ने कुछ किया, सिर्फ दो चार दस मित्रों को छोड़कर, उनको जिन्हें बुद्धिमान होने का भ्रम है । उनको छोड़ कर, जिनके पास बुद्धि कम किताबें ज्यादा हैं, उनको छोड़कर बाकी सारे लोग संलग्न हुए । और सारा वातावरण, बहुत सी बाधाओं के बावजूद भी एक विशेष प्रकार की शक्ति से निर्मित हुआ और बहुत कुछ घटा । लेकिन वह सिर्फ प्रारम्भ है ।

१८. घर जाकर ध्यान का प्रयोग जारी रखें

आप घर जाकर घण्टे भर इस प्रयोग को चौबीस घण्टे म देते जायँ तो आपकी जिन्दगी में कोई द्वार खुल सकता है । और घर के लिए कमरा बन्द कर लें और घर के लोगों को कह दें कि घण्टे भर इस कमरे में कुछ भी हो, इस सम्बन्ध में चिन्तित होने का कारण नहीं है । कमरे के भीतर नग्न हो जायें, सब वस्त्र फेंक दें । खड़े होकर प्रयोग करें । गद्दी बिछा लें ताकि गिर जायें तो कोई चोट न लग जाय । खड़े होकर प्रयोग करें और घर के लोगों को पहले ही बता दें कि बहुत कुछ हो सकता है । आवाजें आ सकती हैं, रोना निकल सकता है । कुछ भी हो सकता है । भीतर, लेकिन घर के लोगों को बाधा नहीं देनी है । यह पहले बता दें । और इस प्रयोग को घण्टे भर दुहराते रहें । दुबारा शिविर में मिलने के पहले । और अगर जो मित्र यहाँ प्रयोग किये हैं वे सारे लोग अगर घर जाकर दोहरायें इसे तो उनके लिए फिर मैं अलग शिविर ले सकूँगा । तब उन्हें और गति दी जा सकेगी ।

बहुत सम्भावना है । अनन्त सम्भावना है । लेकिन आप कुछ करें... आप एक कदम चलें तो परमात्मा आपकी तरफ सौ कदम चलने को सदा तैयार है। लेकिन आप एक कदम भी न चलें तब फिर कोई उपाय नही है । जाकर इस प्रयोग को जारी रखें । सकोच बहुत घेरेंगे । क्योंकि घर में छोटे बच्चे कहेंगे कि पिता को क्या हो गया है । वे तो कभी ऐसे न थे । सदा गुरु गम्भीर थे । अब ऐसा नाचते हैं, कूदते हैं, चिल्लाते हैं । हम नाचते कूदते थे बच्चे घर में तो वे डाँटते-डपटते थे कि गलत है यह । अब खुद को क्या हो गया है ? (हँसी...) जरूर बच्चे हँसेंगे । लेकिन उन बच्चो से माफी माँग लेना और उन बच्चों से कह देना कि भूल हो गयी । तुम अभी भी नाचो और कूदो और आगे भी नाचने कूदने की क्षमता को बचाये रखना, वह काम पड़ेगी । बच्चों को जल्दी हम बूढ़ा बना देते हैं । घर में सबको बता देना कि इस घण्टे भर कुछ भी हो, उसके सम्बन्ध में कोई व्याख्या नहीं करनी है, कोई पूछ-ताछ नहीं करनी है । एक दिन कह देने

से बात हल हो जाती है। दो या तीन दिन चलने पर घर के लोग समझ लेते हैं कि ठीक है, ऐसा होता है। और न केवल आपमें बल्कि आपके पूरे घर में परिणाम होने शुरू हो जायेंगे।

१९. ऊर्जावान ध्यान-कक्ष

जिस कमरे में आप करें इस प्रयोग को अगर उस कमरे को, सम्भव हो सके आपके लिए, तो फिर इसी प्रयोग के लिए रखें। उसमें कुछ दूसरा काम मत करें। छोटी कोठरी हो। ताला बन्द कर दें। उसमें सिर्फ यही प्रयोग करें। और अगर घर के दूसरे लोग भी उसमें आना चाहें तो वे प्रयोग करने के लिए आयें तो ही आ सकें अन्यथा उसे बन्द कर दें। नहीं सम्भव हो सके तो बात अलग है। सम्भव हो सके तो इसके बहुत फायदे होंगे। वह कमरा चार्ज्ड (Charged), ऊर्जापूर्ण हो जायगा। रोज आप उसके भीतर आयेंगे तो पता चलेगा कि साधारण कमरा नहीं है, क्योंकि हम पूरे अपने चारों तरफ रेडिएशन (Radiation), ऊर्जा-किरणें फैला रहे हैं। हमारे चारों तरफ हमारी चित्त-दशा की किरणें फिक रही हैं। और कमरे और जगह भी किरणों को पी जाते हैं। और इसीलिए हजारों-हजारों साल तक भी कोई जगह पवित्र बनी रहती है। उसके कारण हैं। अगर वहाँ कभी कोई महावीर या बुद्ध या कृष्ण जैसा व्यक्ति बैठा हो तो वह जगह हजारों साल के लिए एक और तरह का इम्पैक्ट (Impact) छाप ले लेती है। उस जगह पर खड़े होकर आपको दूसरी दुनिया में प्रवेश करना बहुत आसान हो जाता है।

जो सम्पन्न हैं, सम्पन्न का तो मैं एक ही लक्षण मानता हूँ कि उसके घर में मन्दिर हो सके, बस वही सम्पन्न है। बाकी सब दरिद्र ही हैं। घर में एक कमरा तो मन्दिर का हो सके, जो एक दूसरी दुनिया की यात्रा का द्वार हो। वहाँ कुछ न करें। वहाँ जब आयें मौन आयें और वहाँ ध्यान को ही करें। और घर के लोगों को भी धीरे-धीरे उत्सुकता बढ़ जायगी, क्योंकि आप में जो फर्क होने शुरू होंगे वे दिखायी पड़ने लगेंगे। अब यहाँ जिन दो चार लोगों को कीमती फर्क हुए हैं, दूसरे लोगों ने उनसे जाकर पूछना शुरू कर दिया कि आपको क्या हो गया है। उन्होंने मुझसे भी आकर कहा कि हम क्या जवाब दें, हमसे लोग पूछ रहे हैं कि क्या हो गया है। तो आपके घर के बच्चे, पत्नी, पति, पिता, बेटे वे सब पूछने लगेंगे, मित्र पूछने लगेंगे कि क्या हो रहा है। वे भी उत्सुक होंगे। और अगर इस प्रयोग को जारी रखते हैं तो दूर नहीं है वह क्षण जब आपके जीवन में वह घटना घट सकती है—जिस घटना के लिए अनन्त जन्मों की यात्रा करनी होती है और जिस घटना के लिए हम अनन्त जन्मों तक चूक सकते हैं।

२०. विराट ध्यान-आन्दोलन : विक्षिप्त मनुष्यता के लिए एकमात्र हल

मनुष्य जाति के इतिहास में आने वाले कुछ वर्ष बहुत महत्वपूर्ण हैं। अब दो-चार लोगों से काम नहीं चलेगा। अगर एक बहुत बड़ी स्प्रीचुअलिटी (Spirituality), अध्यात्म का जन्म नहीं होता है, एक ऐसा आध्यात्मिक आन्दोलन नहीं होता है जिसमें लाखों करोड़ों लोग प्रभावित हो जायें तो दुनिया को भौतिकवाद के गर्त से बचाना असम्भव होगा। और बहुत मोमेण्टस (Momentus), (निर्णायक) क्षण है कि पचास साल में भाग्य का निपटारा होगा। या तो धर्म बचेगा या निपट अधर्म बचेगा। इन पचास सालों में बुद्ध, महावीर, कृष्ण, मुहम्मद, राम, जीसस सबका निपटारा होने को है। इन पचास सालों में एक तराजू पर ये सारे लोग हैं और दूसरे तराजू पर सारी दुनिया के विक्षिप्त राजनीतिज्ञ, सारी दुनिया के विक्षिप्त भौतिकवादी, सारी दुनिया के भ्रान्त और अज्ञान में स्वयं और दूसरे को भी धक्का देने वाले लोगो की बड़ी भीड़ है। और एक तरफ तराजू पर बहुत थोड़े से लोग हैं। पचास सालों में निपटारा होगा। वह जो सघर्ष चल रहा है सदा से वह बहुत निपटारे के मौके पर आ गया है। और अभी तो जैसी स्थिति है उसे देखकर आशा नही बनती है। लेकिन मैं निराश नहीं हूँ। क्योंकि मुझे लगता है कि बहुत शीघ्र, बहुत सरल, सहज मार्ग खोजा जा सकता है जो करोड़ों लोगों के जीवन में क्रान्ति की किरण बन जाय।

२१. भारत की आध्यात्मिक सम्पत्ति

और अब इक्का-दुक्का आदमियो से नही चलेगा। जैसा पुराने जमाने मे चल जाता था कि एक आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। अब ऐसा नही चलेगा। ऐसा नही हो सकता है। अब एक आदमी इतना कमजोर है, क्योंकि इतनी बड़ी भीड़ पैदा हुई है, इतना बड़ा एक्सप्लोज़न (Explosion), विस्फोट हुआ है जनसंख्या का कि अब इक्का-दुक्का आदमियों से चलने वाली बात नहीं है। अब तो उतने ही बड़े व्यापक पैमाने पर लाखों लोग अगर प्रभावित हों तो ही कुछ किया जा सकता है। लेकिन मुझे दिखायी पड़ता है कि लाखों लोग प्रभावित हो सकते हैं। और थोड़े से लोग अगर न्यूक्लियस (Nucleus), प्रेरणा-केन्द्र बन कर काम करना शुरू करे तो यह हिन्दुस्तान उस मूमेण्टस फाइट में, उस निर्णायक युद्ध में बहुत कीमती हिस्सा अदा कर सकता है। कितना ही दीन हो, कितना ही दरिद्र हो, कितना ही गुलाम रहा हो, कितना ही भटका हो, लेकिन इस भूमि के पास कुछ संरक्षित सम्पत्तियाँ हैं, इस जमीन पर कुछ ऐसे लोग चले हैं, उनकी किरणें हैं, हवा में उनकी ज्योति, उनकी आकाक्षाएँ सब पत्तों-पत्तों पर फूट गयी हैं।

आदमी गलत हो गया है, लेकिन अभी जमीन की कणों को बुद्ध के चरणों का स्मरण है, आदमी गलत हो गया है, लेकिन वृक्ष पहचानते हैं कि कभी महावीर उनके नीचे खड़े हैं। आदमी गलत हो गया है, लेकिन सागर ने सुनी हैं और तरह की आवाजें, आदमी गलत हो गया है, लेकिन आकाश अभी भी आशा बांधे है। आदमी भर वापिस लौटे तो बाकी सारा इन्तजाम है।

इधर मैं इस आशा में निरन्तर प्रार्थना करता रहता हूँ कि कैसे लाखों लोगों के जीवन में एक साथ विस्फोट हो सके। आप उसमें सहयोगी बन सकते हैं। आपका अपना विस्फोट बहुत कीमती हो सकता है, आपके लिए भी, पूरी मनुष्य जाति के लिए भी। इस आशा और प्रार्थना से ही इस शिविर से आपको बिदा देता हूँ कि आप अपनी ज्योति तो जलायेंगे ही आपकी ज्योति दूसरे बुझे दियों की भी ज्योति बन सके। मेरी बातों को इतनी शान्ति और प्रेम से सुना उससे बहुत अनुग्रहीत हूँ और अन्त मे सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ, मेरे प्रणाम स्वीकार करे।

●

६. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक १५ जून, १९७०

●

अन्तर्यात्रा के पथ पर कुण्डलिनी जागरण और शक्तिपात

प्रश्नकर्ता : तीव्र श्वास-प्रश्वास लेना और मैं कौन हूँ पूछना इसका कुण्ड-लिनी-जागरण और चक्र-भेदन की प्रक्रिया से किस प्रकार का सम्बन्ध है ?

१. कुण्डलिनी-शक्ति—शरीर और आत्मा के मिलन-बिन्दु पर

आचार्यश्री : सम्बन्ध है और बहुत गहरा सम्बन्ध है। असल में श्वास से ही हमारी आत्मा और शरीर का जोड़ है। श्वास सेतु है। इसलिए श्वास गयी कि प्राण गये। मस्तिष्क चला जाय तो चलेगा, आँखें चली जायें तो चलेगा, हाथ-पैर कट जायें तो चलेगा। श्वास कट गयी कि गये। श्वास से जोड़ है हमारे आत्मा और शरीर का। आत्मा और शरीर के मिलन का जो बिन्दु है उसी बिन्दु पर वह शक्ति है जिसको कुण्डलिनी कहते हैं। नाम कुछ भी दिया जा सकता है। वह ऊर्जा वहीं है।

२. अधोगामी यौन-शक्ति और ऊर्ध्वगामी कुण्डलिनी शक्ति

इसलिए उस ऊर्जा के दो रूप हैं। अगर कुण्डलिनी की ऊर्जा शरीर की तरफ बहे तो काम-शक्ति बन जाती है, सेक्स (Sex) बन जाती है। और अगर वह ऊर्जा आत्मा की तरफ बहे तो वह कुण्डलिनी बन जाती है। शरीर की तरफ बहने से वह अधोगामी हो जाती है और आत्मा की तरफ बहने से वह ऊर्ध्व-गामी हो जाती है। पर जिस जगह वह है उस जगह पर चोट श्वास से पड़ती है।

इसलिए तुम हैरान होओगे कि सम्भोग करते समय श्वास को शान्त नहीं रखा जा सकता है। सम्भोग करते समय श्वास की गति में तत्काल अन्तर पड़ जायगा। कामातुर होते ही चित्त श्वास को तेज कर लेगा। क्योंकि उस बिन्दु पर चोट श्वास करेगी तभी वहाँ से काम-शक्ति बहनी शुरू होगी। श्वास की चोट के बिना सम्भोग भी असम्भव है और श्वास की चोट के बिना समाधि भी असम्भव है। समाधि उसके ऊर्ध्वगामी बिन्दु का नाम है और सम्भोग उसके अधोगामी बिन्दु का नाम है। पर श्वास की चोट तो दोनों पर पड़ेगी।

३. श्वास को धीमा करने से क्रोध व कामोत्तेजना आदि की शान्ति

तो अगर चित्त काम से भरा हो तब श्वास को धीमा करना, शिथिल करना। जब चित्त में काम-वासना घेरे, या क्रोध घेरे या और कोई वासना घेरे तब श्वास को शिथिल करना, कम करना और धीमे लेना। तो काम और क्रोध दोनों विदा हो जायेंगे। टिक नहीं सकते हैं। क्योंकि जो ऊर्जा उनको चाहिए वह श्वास की बिना चोट पड़े नहीं मिल सकती है। इसलिए कोई आदमी क्रोध नहीं कर सकता है, श्वास को धीमे लेकर। और अगर करे तो वह बिलकुल चमत्कार है, साधारण घटना नहीं है। यह हो नहीं सकता है। श्वास धीमी हुई कि क्रोध गया। कामोत्तेजित भी नहीं हो सकता कोई श्वास को शान्त रख कर। क्योंकि श्वास शान्त हुई कि कामोत्तेजना गयी। तो जब कामोत्तेजित हो मन, क्रोध से भरे मन तब श्वास को धीमे रखना। और जब ध्यान की अभीप्सा से भरे मन तो श्वास की तीव्र चोट करना। क्योंकि जब ध्यान की अभीप्सा भीतर हो और श्वास की चोट पड़े तो जो ऊर्जा है वह ध्यान की यात्रा पर निकलनी शुरू हो जाती है।

४. तीव्र श्वास की चोट से सोई कुण्डलिनी शक्ति का जागरण

कुण्डलिनी पर गहरी श्वास का बहुत परिणाम है। प्राणायाम अकारण ही नहीं खोज लिया गया था। बहुत लम्बे प्रयोगों और अनुभवों से ज्ञात होना शुरू हुआ कि श्वास की चोट से, आघात से बहुत कुछ किया जा सकता है। और यह आघात जितना तीव्र हो उतनी त्वरित गति होगी। और हम सब साधारण जनों में जिनकी कुण्डलिनी जन्मों-जन्मों से सोयी हुई है, उसको बड़े तीव्र आघात की जरूरत है, घने आघात की जरूरत है, सारी शक्ति इकट्ठी करके आघात करने की जरूरत है।

श्वास से तो कुण्डलिनी पर चोट पड़नी शुरू होती है, उसके मूल केन्द्र पर चोट पड़नी शुरू होती है। और जैसे-जैसे तुम्हें अनुभव होना शुरू होगा तुम बिलकुल आँख बन्द करके देख पाओगे कि श्वास की चोट कहाँ पड़ रही है। इसलिए अक्सर ऐसा ही आयगा कि जब श्वास की तेज चोट पड़ेगी तो बहुत बार

कामोत्तेजना भी हो सकती है। वह इसलिए हो सकती है कि तुम्हारे शरीर का एक ही अनुभव है, श्वास तेज पड़ने का। उस ऊर्जा पर चोट पड़ने का एक ही अनुभव है, सेक्स (Sex) का। तो जो अनुभव है उस लीक पर शरीर फौरन काम करना शुरू कर देगा। इसलिए बहुत साधकों को, साधिकाओं को एकदम तत्काल यौन-केन्द्र पर चोट पड़नी शुरू हो जाती है।

गुरजिएफ के पास अनेक लोगों को ऐसा ख्याल हुआ। अनेक स्त्रियों को ऐसा ख्याल हुआ कि उसके पास जाते ही उनके यौन-केन्द्र पर चोट होती है। यह बिलकुल स्वाभाविक है। इसकी वजह से गुरजिएफ को बहुत बदनामी मिली। इसमें उसका कोई कसूर न था। असल में ऐसे व्यक्ति के पास जिसकी अपनी कुण्डलिनी जागृत हो उसकी चारों तरफ की तरंगों से तुम्हारी कुण्डलिनी पर चोट होनी शुरू होती है। लेकिन तुम्हारी कुण्डलिनी तो अभी बिलकुल सेक्स सेण्टर (Sex Centre), यौन-केन्द्र के पास सोयी हुई होती है। इसलिए पहली चोट वहीं पड़ती है।

५. जागी हुई कुण्डलिनी का चक्रों को सक्रिय करना

तीव्र श्वास तो गहरा परिणाम लाने वाली है, कुण्डलिनी के लिए। और सारे केन्द्र जिन्हें तुम चक्र कहते हो, वे सब कुण्डलिनी के यात्रा पथ के स्टेशन हैं। जहाँ-जहाँ से कुण्डलिनी होकर गुजरेगी वे स्थान हैं। ऐसे तो बहुत स्थान हैं। इसलिए कोई कितने ही चक्र गिन सकता है। लेकिन बहुत मोटे विभाजन करें तो जहाँ कुण्डलिनी थोड़ी देर ठहरेगी, विश्राम करेगी, वे सात स्थान हैं। तो सब चक्रों पर परिणाम होगा। और जिस व्यक्ति का जो चक्र सर्वाधिक सक्रिय है उस पर सबसे पहले परिणाम होगा। जैसे कि अगर कोई व्यक्ति मस्तिष्क से ही दिन रात काम करता है तो तेज श्वास के बाद उसका सिर एकदम भारी हो जायगा। क्योंकि उसका जो मस्तिष्क का चक्र है वह सक्रिय चक्र है। श्वास का पहला आघात सक्रिय चक्र पर पड़ेगा। उसका सिर एकदम भारी हो जायगा। कामुक व्यक्ति हो तो उसकी कामोत्तेजना बढ़ जायेगी। बहुत प्रेमी व्यक्ति है तो उसका प्रेम बढ़ जायगा। भावुक व्यक्ति है तो भावना बढ़ जायगी।

६. व्यक्तित्व के सुप्त केन्द्रों का सक्रिय होना

उसका जो अपने व्यक्तित्व का केन्द्र बहुत सक्रिय है पहले उस पर चोट होगी शुरू हो जायगी। लेकिन तत्काल दूसरे केन्द्रों पर भी चोट होनी शुरू होगी। इसलिए व्यक्तित्व में रूपान्तरण भी तत्काल अनुभव होना शुरू हो जायगा कि मैं बदल रहा हूँ। यह मैं वही आदमी नहीं हूँ जो कल तक था। क्योंकि हमें आदमी का पता ही नहीं है कि हम कितने हैं। हमें तो पता है उसी चक्र का जिस

पर हम जीते हैं। जब दूसरा चक्र हमारे भीतर खुलता है तो हमें लगता है कि हमारा पहला व्यक्तित्व गया, हम तो दूसरे आदमी हुए। या हम अब वह आदमी नहीं हैं जो कल तक थे। यह ऐसे ही हैं जैसे कि इस मकान में हमें इसी कमरे का पता हो, यही नक्शा हो कमरे का हमारे दिमाग में। अचानक एक दरवाजा खुले और एक और कमरा हमें दिखायी पड़े। तो हमारा पूरा नक्शा बदलेगा। अब जिसको हमने अपना मकान समझा था वह दूसरा हो गया। अब एक नयी व्यवस्था उसमे हमें देनी पड़ेगी।

७. सक्रिय केन्द्रों से नये व्यक्तित्व का आविर्भाव

तो तुम्हारे जिन-जिन केन्द्रों पर चोट होगी वहाँ-वहाँ से व्यक्तित्व का नया प्रविर्भाव होगा। तो जब सारे केन्द्र सक्रिय होते हैं एक साथ, उसका मतलब है कि जब सबके भीतर से ऊर्जा एक-सी प्रवाहित होती है तब पहली दफे हम अपने पूरे व्यक्तित्व में जीते हैं। हममें से कोई भी अपने पूरे व्यक्तित्व में साधारणतः नहीं जीता है। और हमारे ऊपर के केन्द्र तो अछूत रह जाते हैं। तो श्वास इन केन्द्रो पर भी चोट करेगी।

और मैं कौन हूँ का जो प्रश्न है वह भी चोट करने वाला है। वह दूसरी दिशा से चोट करने वाला है। इसे थोड़ा समझो। श्वास से तो ख्याल में आया। अब 'मैं कौन हूँ?' इससे कुण्डलिनी पर कैसे चोट होगी?

८. विपरीत लिंगी नग्न शरीर की कल्पना से यौन केन्द्र सक्रिय

यह कभी हमारे ख्याल में नहीं है कि अगर तुम आँख बन्द कर लो और एक नग्न स्त्री का चित्र सोचो तो तुम्हारा सेक्स सेण्टर, यौन-केन्द्र फौरन सक्रिय हो जायगा। क्यों? तुम सिर्फ एक कल्पना कर रहे हो तुम्हारा सेक्स सेण्टर क्यों सक्रिय हो गया? असल में प्रत्येक सेन्टर की अपनी कल्पना (Imagination) है। और अगर उसकी कल्पना (इमेजिनेशन) के करीब की कल्पना (इमेजिनेशन) करनी तुमने शुरू की तो वह सेण्टर तत्काल सक्रिय हो जायगा। इसलिए काम-वासना का विचार करते ही तुम्हारा सेक्स सेण्टर वर्क (कार्य) करना शुरू कर देगा। और तुम हैरान होओगे, नग्न स्त्री हो सकता है इतना प्रभावी न हो जितना नग्न स्त्री का विचार प्रभावी होगा। उसका कारण है कि नग्न स्त्री का विचार तुम्हें कल्पना में ले जायगा और कल्पना चोट करेगी। लेकिन नग्न स्त्री तुम्हें कल्पना में नहीं ले जायगी। वह तो प्रत्यक्ष खड़ी है। इसलिए प्रत्यक्ष जितनी चोट कर सकती है करेगी। कल्पना भीतर से चोट करती है तुम्हारे सेण्टर पर, प्रत्यक्ष स्त्री सामने से चोट करती है। सामने की चोट उतनी गहरी नहीं है जितनी भीतर की चोट गहरी है। इसलिए बहुत से ऐसे लोग

हैं जो स्त्री के सामने तो नपुंसक इम्पोटेंण्ट सिद्ध होंगे, लेकिन कल्पना में बहुत पोटेण्ट (पुंसक) हैं। कल्पना में उनकी पोटेंसी (पुंसकत्व) का कोई हिसाब नहीं है, क्योंकि कल्पना की जो चोट है वह तुम्हारे भीतर से जाकर सेण्टर को छूती है। प्रत्यक्ष की जो चोट है वह भीतर से जाकर नहीं छूती है. बाहर से तुम्हें सीधा छूती है। और मनुष्य चूंकि मन में जीता है इसलिए मन से ही गहरी चोटें कर पाता है।

९. 'मैं कौन हूं ?' की चोट—पूरे व्यक्तित्व के मौलिक आधार पर

तो जब तुम पूछते हो 'मैं कौन हूं' तो तुम एक जिज्ञासा कर रहे हो। एक जानने की कल्पना कर रहे हो, एक प्रश्न उठा रहे हो। यह प्रश्न तुम्हारे किस सेण्टर को छुएगा ? यह प्रश्न तुम्हारे किसी सेण्टर को छुएगा ही। जब तुम यह प्रश्न पूछते हो, जब तुम इसकी जिज्ञासा करते हो, इसकी अभीप्सा से भरते हो और तुम्हारा रोआं-रोआं पूछने लगता है 'मैं कौन हूं' तब तुम भीतर जा रहे हो। और भीतर किसी केन्द्र पर चोट होनी शुरू होगी। 'मैं कौन हूं' ऐसा प्रश्न है जो तुमने पूछा ही नहीं है कभी। इसलिए तुम्हारे किसी ज्ञात सक्रिय केन्द्र पर उसकी चोट नहीं होने वाली है। तुमने कभी पूछा ही नहीं है उसे, उसकी अभीप्सा ही कभी तुमने नहीं की है। तुमने अक्सर पूछा है वह कौन है, यह कौन है ? तुमने यह सारे प्रश्न पूछे हैं। लेकिन 'मैं कौन हूं' यह अन-पूछा प्रश्न है। वह तुम्हारे बिलकुल अज्ञात केन्द्र पर चोट करेगा, जिस पर तुमने कभी चोट नहीं की है। और वह अज्ञात केन्द्र जहां 'मैं कौन हूं' चोट करेगा बहुत बेसिक (आधारभूत) है। क्योंकि यह प्रश्न बहुत बेसिक है, बहुत आधारभूत प्रश्न है कि 'मैं कौन हूं ?', बहुत एक्जिसटेंशियल (Existencial), अस्तित्वगत है यह सवाल। वह पूरे अस्तित्व की गहराई का सवाल है कि 'मैं कौन हूं ?' यह मुझे वहां ले जायेगा जहां मैं जन्मों के पहले था, यह मुझे वहां ले जायेगा जहां मैं जन्मों-जन्मों के पहले था। यह मुझे वहां ले जा सकता है जहां कि मैं आदि में था। इस प्रश्न की गहराई का कोई हिसाब नहीं है। इसकी यात्रा बहुत गहरी है। इसलिए तुम्हारा जो मूल, गहरा से गहरा केन्द्र है कुण्डलिनी का वहां इसकी तत्काल चोट होनी शुरू हो जायेगी।

१०. तीव्र श्वास से शरीरगत चोट और 'मैं कौन हूं ?' से मनोगत चोट

श्वास फीजियोलॉजिकल (शारीरिक) चोट है और 'मैं कौन हूं' यह मेन्टल, (मानसिक) चोट है। वह तुम्हारी माइण्ड-इनर्जी (Mind Energy) से चोट पहुंचाता है। और वह तुम्हारी बॉडी-इनर्जी (Body Energy) से चोट पहुंचाता है। तो दो ही रास्ते हैं वहां तक चोट पहुंचाने के। तुम्हारे पास सामान्यतया। और तरकीबें भी हैं लेकिन वे जरा उलझी हुई हैं। दूसरा आदमी

तुम्हें सहयोगी हो सकता है। इसलिए अगर तुम मेरे सामने करोगे तो तुम्हें चोट जल्दी पहुँच जाती है। क्योंकि तीसरी दिशा से भी चोट पहुँचनी शुरू होती है जिसका तुम्हें ख्याल नहीं है। वह एस्ट्रल (Astral) (सूक्ष्म-जगत् का) है। जो तुम श्वास गहरी लेते हो वह शारीरिक है और जब तुम पूछते हो 'मैं कौन हूँ' तब यह मेंटल (मानसिक) है।

११. शक्तिपात में तीसरी दिशा से चोट

और अगर तुम एक ऐसे व्यक्ति के पास बैठे हो जिससे कि तुम्हारे एस्ट्रल पर चोट पहुँच सके, तुम्हारे सूक्ष्म शरीर पर चोट पहुँच सके तो एक तीसरी यात्रा शुरू हो जाती है। इसलिए अगर यहाँ पचास लोग ध्यान करें तो तीव्रता से होगा बजाय एक के। क्योंकि पचास लोगों की तीव्र आकांक्षाएँ और पचास लोगों की तीव्र श्वासों का संवेदन इस कमरे को एस्ट्रल-एटमॉस्फियर से भर देगा। यहाँ नयी तरह की विद्युत् किरणें चारों ओर घूमने लगेंगी। और वह भी तुम्हें चोट पहुँचाने लगेंगी।

१२. 'मैं कौन हूँ ?' की चोट के लिए विशेष स्थिति आवश्यक

पर तुम्हारे पास साधारणतः दो सीधे उपाय हैं। शरीर का और मन का। तो 'मैं कौन हूँ' श्वास से भी गहरी चोट करेगा। श्वास से इसलिए हम शुरू करते हैं कि वह शरीर का है। उसे करने में ज्यादा कठिनाई नहीं है। 'मैं कौन हूँ' थोड़ा कठिन है। क्योंकि मन का है। शरीर से शुरू करते हैं और जब शरीर पूरी तरह से व्हाइब्रेट (Vibrate) (कम्पित) होने लगता है तब तुम्हारा मन भी इस योग्य हो जाता है कि पूछने लगे। पर पूछने की एक ठीक सिचुएशन (Situation), स्थिति चाहिए। हर कभी तुम 'मैं कौन हूँ' पूछोगे तो नहीं बनेगा काम। सब सवालों के लिए भी ठीक स्थितियाँ चाहिए, जब वे पूछी जा सकती हैं। जैसे कि जब तुम्हारा पूरा शरीर कपने लगता है और डोलने लगता है तब तुम्हें खुद ही सवाल उठता है कि यह हो क्या रहा है। यह मैं कर रहा हूँ ? यह मैं तो नहीं कर रहा हूँ। यह सिर मैं नहीं घुमा रहा हूँ। यह पैर मैं नहीं उठा रहा हूँ। यह नाचना मैं नहीं कर रहा हूँ, लेकिन यह हो रहा है। और अगर यह हो रहा है तो तुम्हारी जो आइडेंटिटी (Identity) है, तादात्म्य है कि यह शरीर मैं हूँ वह ढीली पड़ गयी। अब तुम्हारे सामने नया सवाल उठ रहा है कि फिर मैं कौन हूँ। अगर यह शरीर कर रहा है और मैं नहीं कर रहा हूँ। अब एक नया सवाल है कि कर कौन रहा है ! फिर तुम कौन हो अब ? तो यह ठीक सिचुएशन (Situation), स्थिति है जब इस छेद में से तुम्हारा 'मैं कौन हूँ' का प्रश्न गहरा उतर सकता है। तो उस ठीक मौके पर उसे पूछना जरूरी है। असल में

हर प्रश्न का भी ठीक वक्त है। और ठीक वक्त खोजना बड़ी कीमती बात है। हर कभी पूछ लेने का सवाल नहीं है उतना बड़ा। तुम अगर यहीं बैठ कर पूछ लो कि 'मैं कौन हूँ' तो यह हवा में ही घूम जायेगा। इसकी चोट कहीं नहीं होगी। क्योंकि तुम्हारे भीतर जगह चाहिए, रन्ध्र चाहिए जहाँ से यह प्रवेश कर जाय।

१३. कुण्डलिनी-पथ पर अनेक जन्मों व योनियों के अनुभवों का प्रकटीकरण

इन दोनों की चोट से कुण्डलिनी जगेगी और उसका जागरण जब होगा तो अनूठे अनुभव शुरू हो जायेंगे। क्योंकि उस कुण्डलिनी के साथ तुम्हारे समस्त जन्मों के अनुभव जुड़े हुए हैं। जब तुम वृक्ष थे तब के भी और जब तुम मछली थे तब के भी। और जब तुम पक्षी थे तब के भी। तुम्हारे अनन्त-अनन्त योनियों के अनुभव उस पूरे यात्रा-पथ पर पड़े हैं। तुम्हारी उस कुण्डल शक्ति ने ही सबको आत्मसात् किया है। इसलिए बहुत तरह की घटनाएँ घट सकती हैं। उन अनुभवों के साथ तादात्म्य जुड़ सकता है। किसी भी तरह की घटना घट सकती है। और बड़े सूक्ष्म अनुभव जुड़े हैं जिसका तुम्हें ख्याल नहीं है। एक वृक्ष खड़ा हुआ है बाहर। अभी हवा चली है जोर से, वर्षा हुई है। वृक्ष ने जैसा वर्षा को जाना वैसा हम कभी न जान सकेंगे। कैसे जान सकेंगे? हम वृक्ष के पास भी खड़े हो जायें तो भी हम न जान सकेंगे। हम वैसा ही जानेंगे जैसा हम जान सकते हैं। लेकिन कभी तुम वृक्ष भी रहे हो अपनी किसी जीवन-यात्रा में। और अगर कुण्डलिनी उस जगह पहुँचेगी, उस अनुभूति के पास जहाँ वह संगृहीत है वृक्ष की अनुभूति तो तुम अचानक पाओगे कि वर्षा हो रही है और तुम वह जान रहे हो जो वृक्ष जान रहा है। तब तुम बहुत घबड़ा जाओगे कि यह क्या हो रहा है। तब सागर जो अनुभव कर रहा है वह तुम अनुभव कर पाओगे। जो हवाएँ अनुभव कर रही हैं वह तुम अनुभव कर पाओगे। इसलिए तुम्हारी एस्थेटिक (सौन्दर्यगत) न मालूम कितनी सम्भावनाएँ खुल जायेंगी जो तुम्हें कभी भी नहीं थीं ख्याल में।

जैसे कि गोगां का एक चित्र है। एक वृक्ष है, आकाश को छू रहा है। तारे नीचे रह गये हैं और वृक्ष बढ़ता ही चला जा रहा है। चाँद नीचे पड़ गया है, सूरज नीचे पड़ गया है, वे छोटे-छोटे रह गये हैं और वृक्ष ऊपर चढ़ता जा रहा है। तो किसी ने कहा कि तुम पागल हो गये हो। वृक्ष कहीं ऐसे होते हैं—चाँद-तारे नीचे पड़ गये हैं और वृक्ष ऊपर चला जा रहा है। तो गोगां ने कहा कि तुमने कभी वृक्ष को जाना ही नहीं है। तुमने कभी वृक्ष के भीतर नहीं देखा है। मैं उसको भीतर से जानता हूँ। नहीं बढ़ पाता चाँद-तारों के ऊपर यह बात दूसरी है। बढ़ना तो चाहता है। नहीं बढ़ पाता यह बात दूसरी है। अभीप्सा तो यही है।

मजबूरी है, नहीं बढ़ पाता, लेकिन भीतर प्राण तो सब चाँद-तारे पार करते चले जाते हैं। गोगां कहता था कि वृक्ष जो है वह पृथ्वी की आकांक्षा है आकाश को छूने की। पृथ्वी की वह डिजायर (Desire), कामना है। पृथ्वी अपने हाथ पैर बढ़ा रही है, आकाश को छूने को। तब वैसा देख पायेंगे। मगर वृक्ष जैसा देखेगा वैसा फिर भी हम नही देख पायेंगे। पर यह सब हम रहे हैं। इसलिए कुछ भी होगा। और जो हम हो सकते हैं उसकी भी सम्भावनाएँ अनुभव में आनी शुरू हो जायेंगी। जो हम रहे हैं वह तो अनुभव में आयेगा, जो हम हो सकते हैं कल, उसकी सम्भावनाएँ भी आनी शुरू हो जायेंगी।

१४. कुण्डलिनी के यात्रा-पथ पर समस्त जीवन-विकास का इतिहास अंकित

और तब कुण्डलिनी के यात्रा-पथ पर प्रवेश करने के बाद हमारी कहानी व्यक्ति की कहानी नहीं है। वह समस्त चेतना की कहानी हो जाती है। अरविन्द इसी भाषा में बोलते थे इसलिए बहुत साफ नही हो पाया मामला। तब फिर एक व्यक्ति की कहानी नहीं है वह। तब फिर कॉशशनेश (चेतना) की कहानी है वह। तब तुम अकेले नही हो, तुममें अनन्त हैं भीतर जो बीत गये और तुममें अनन्त हैं आगे जो प्रकट होंगे। एक बीज जो खुलता ही जा रहा हो, मेनीफेस्ट (Manifest), प्रकट होता चला जा रहा हो और जिसका कोई अन्त नही दिखाई पड़ता हो। और जब इस तरह ओर-छोर हीन तुम अपने विस्तार को देखोगे, पीछे अनन्त और आगे अनन्त तब स्थिति और हो जायेगी। तब सब बदल जाता है। और वह सबके सब कुण्डलिनी पर छिपे हैं।

१५. कुण्डलिनी विकास में अनेक अतीन्द्रिय अनुभव

बहुत से रंग खुल जायेंगे जो तुमने कभी नही देखे है। असल में इतने रंग बाहर नहीं हैं जितने रंग तुम्हारे भीतर तुम्हें अनुभव मे आ सकते हैं। क्योंकि वे रंग कभी तुमने जाने हैं और और तरह से जाने है। जब एक चील आकाश के ऊपर मँडराती है तो रंगो को और ढंग से देखती है। हम और ढंग से देखते हैं। अभी तुम जाओगे वृक्षों के पास से तो तुम्हें सिर्फ हरे रंग दिखाई पड़ते हैं। लेकिन अगर चित्रकार जाता है तो उसे हजार तरह के हरे रंग दिखाई पड़ते हैं। हरा रंग एक रंग नहीं है। उसमें हजार शेड है। और कोई दो शेड एक से नहीं हैं। उनका अपना-अपना व्यक्तित्व है। हमको तो सिर्फ हरा रंग दिखाई पड़ता है। हरा रंग, बात खतम हो गयी। एक मोटी धारणा है हमारी, बात खतम हो गयी। हरा रंग एक रंग नही है। हरा रंग हजार रग है। हर रंग में हजार रंग हैं। तो जब तुम भीतर प्रवेश करोगे तो वहाँ तुम्हें हजारों बारीक अनुभव होंगे।

१६. कुछ पशु-पक्षियों की अतीन्द्रिय क्षमताएँ

मनुष्य जो है वह इन्द्रियों की दृष्टि से बहुत कमजोर प्राणी है। सारे पशु-पक्षी बहुत शक्तिशाली हैं। उनकी अनुभूति और उनके अनुभव की गहराइयाँ ऊँचाइयाँ बहुत हैं। कमी है कि उन सबको पकड़ कर वे चेतन में विचार नहीं कर पाती हैं। लेकिन उनकी अनुभूतियाँ बहुत गहरी हैं। उनके संवेदन बहुत गहरे हैं। अब जापान में एक चिड़िया है, आम चिड़िया है जो भूकम्प के चौबीस घण्टे पहले गाँव छोड़ देती है। बस वह चिड़िया नहीं दिखायी पड़ेगी गाँव में तो समझो कि चौबीस घण्टे के भीतर भूकम्प आयेगा। अभी हमारे पास भी जो यन्त्र हैं वे भी छः घण्टे के पहले खबर नहीं दे पाते हैं। और फिर भी बहुत सुनिश्चित नहीं है वह खबर लेकिन उस चिड़िया का मामला तो सुनिश्चित है। और इतनी आम चिड़िया है कि गाँव भर को पता चल जाय कि चिड़िया आज दिखायी नही पड़ रही है। तो चौबीस घण्टे के भीतर भूकम्प होने वाला है। उसका मतलब है कि भूकम्प से पैदा होने वाली अति सूक्ष्म व्हाइब्रेशन्स (कम्पन) उस चिड़िया को किसी-न-किसी तल पर अनुभव होती है। वह गाँव छोड़ देगी। अब तुम कभी अगर यह चिड़िया रहे हो तो तुम्हारी कुण्डलिनी के यात्रा-पथ पर तुम्हें ऐसे व्हाइब्रेशन्स अनुभव होने लगेंगे जो तुम्हें कभी नहीं हुए हैं। मगर तुम्हें कभी हुए हैं, तुम्हें पता नहीं, ख्याल में नहीं। तभी हो सकते हैं। तुम्हें ऐसे रंग दिखायी पड़ने लगेंगे जो तुमने कभी नहीं देखे हैं।

तुम्हें ऐसी ध्वनियाँ सुनायी पड़ने लगेंगी, जिसको कबीर कहते हैं नाद। कबीर कहते हैं, अमृत बरस रहा है साधुओं। नाचो। तो साधु पूछते हैं, कहाँ अमृत बरस रहा है? अब वह अमृत कही बाहर नहीं बरस रहा है। और कबीर कहते हैं, सुना, नाद बज रहे हैं, बड़े नगाड़े बज रहे हैं। पर साधु पूछते हैं, कहाँ बज रहे है? और कबीर कहते हैं, तुम्हें सुनायी नहीं पड़ रहा है? अब वह कबीर को जो सुनायी पड़ रहा है वे नाद तुम्हें सुनायी पड़ेंगे, ध्वनियां सुनायी पड़ेंगी। ऐसे स्वाद आने शुरू होंगे जो तुम्हें कभी कल्पना में नहो है कि ये स्वाद हो सकते हैं।

तो सूक्ष्म अनुभूतियों का बड़ा लोक कुण्डलिनी के साथ जुड़ा है। वह सब जग जायगा। और सब तरफ से तुम पर हमला बोल देगा। और इसलिए अक्सर ऐसी स्थिति में आदमी पागल मालूम पड़ने लगता है। क्योंकि जब हम सब बैठे थे गम्भीर तब वह हँसने लगता है, क्योंकि उसे कुछ दिखायी पड़ रहा है जो हमें दिखायी नहीं पड़ रहा है। जब हम हँस रहे है तब वह रोने लगता है, क्योंकि उसे कुछ हो रहा है जो हमें नहीं हो रहा है।

१७. शक्तिपात में ऊर्जा का नियंत्रित अवतरण

इन सब पर सामान्य मनुष्य के पास चोट करने के दो उपाय हैं। और असामान्य रूप से जिसको शक्ति-पात कहें, वह तीसरा उपाय है। वह एक्सज है। उसमें कोई माध्यम चाहिए। उसमें दूसरा व्यक्ति सहयोगी हो तो तुम्हारे भीतर तीव्रता बढ़ सकती है। और उस स्थिति में दूसरा व्यक्ति कुछ करता नहीं है सिर्फ उसकी मौजूदगी काफी है। वह सिर्फ एक मीडियम (Medium) माध्यम बन जाता है। अनन्त शक्ति चारों तरफ पड़ी हुई है। अब जैसे हम घर के ऊपर लोहे की शलाक लगाये हुए हैं कि बिजली गिरे तो घर के नीचे चली जाय। शलाक न हो तब भी बिजली गिर सकती है। लेकिन तब पूरे घर को तोड़ जायेगी। अन्यथा शलाक से पार हो जायेगी। लेकिन शलाक हमको अभी ख्याल में आयी है, बिजली बहुत पहले से गिरती रही है। बिजली का शक्तिपात बहुत दिन से हो रहा है, शलाक हमें अब ख्याल में आयी है।

अनन्त शक्तियाँ हैं चारों तरफ मनुष्य के, मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में उन सबका उपयोग किया जा सकता है। लेकिन कोई माध्यम चाहिए। तुम खुद भी माध्यम बन सकते हो। लेकिन प्राथमिक रूप से माध्यम बनना खतरनाक हो सकता है। क्योंकि इतना बड़ा शक्तिपात हो सकता है कि तुम उसे न झेल पाओ। बल्कि तुम्हारे कुछ तन्तु जाम, अवरुद्ध हो जायें या टूट भी जायें। क्योंकि शक्ति का एक व्होल्टेज (Voltage) है। वह तुम्हारे सहने की क्षमता के अनुकूल होना चाहिए। तो दूसरे व्यक्ति के माध्यम से तुम्हारे अनुकूल बनाने की सुविधा हो जाती है। अगर एक दूसरा व्यक्ति उन शक्तियों का तुम्हारे ऊपर अवतरण कराना चाहता है तो उस पर अवतरण हो चुका है तब ही। तब वह उसनी धारा में तुम तक पहुँचा सकता है जितनी धारा में तुम्हें जरूरत है। और इसके लिए कुछ भी नहीं करना होता है। इसके लिए सिर्फ मौजूदगी जरूरी है, बस। तब वह कैटेलिटिक एजेन्ट (Catalytic Agent), प्रेरक-तत्व की तरह काम करता है। वह कुछ करता नहीं है। इसलिए कोई अगर कहता हो कि मैं शक्तिपात करता हूँ तो गलत कहता है। कोई शक्ति पात करता नहीं है। लेकिन हाँ, किसी की मौजूदगी में शक्तिपात घटित हो सकता है।

१८. कुण्डलिनी-उत्थान और शक्तिपात पर अनुभव

अब इधर मैं सोचता हूँ, जरा साधक थोड़ी गहराई में तो यह यहाँ होने लगेगा बड़े जोरों से। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। किसी को कुछ करने की जरूरत नहीं है। वह होने लगेगा। बस तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे भीतर कुछ और तरह की शक्ति प्रवेश कर गयी है जो कहीं बाहर से आ गयी है, जो तुम्हारे

भीतर से नहीं आयी है। तुम्हें कुण्डलिनी का जब भी अनुभव होगा तो तुम्हारे भीतर से उठता हुआ मालूम होगा और जब तुम्हें शक्तिपात का अनुभव होगा तो वह तुम्हारे बाहर से, ऊपर से आता हुआ मालूम होगा। यह इतना ही साफ होगा जैसा कि ऊपर से आपके पानी गिरे और नीचे से पानी बढ़े। नदी में खड़े हैं और पानी बढ़ता जा रहा है। और नीचे से पानी ऊपर की तरफ आता जा रहा है। और आप डूब रहे हैं। तो कुण्डलिनी का अनुभव सदा डूबने का होगा। नीचे से कुछ बढ़ रहा है और तुम उसमें डूबे जा रहे हो। कुछ तुम्हें घेरे ले रहा है। शक्तिपात का अगर भी तुम्हें अनुभव होगा तो वर्षा का होगा। वह जो कबीर कह रहे हैं, अमृत बरस रहा है साधुओं। पर वे साधु पूछते हैं कि कहाँ बरस रहा है। वह ऊपर से गिरने का होगा। और तुम उसमें भीगे जा रहे हो। और ये दोनों अगर एक साथ हो सकें तो गति बहुत तीव्र हो जाती है। ऊपर से वर्षा हो रही है और नीचे से नदी बढ़ती आ रही है। इधर नदी का पूर आता है, उधर वर्षा बढ़ती जा रही है। दोनों तरफ से तुम डूबे जा रहे हो और मिटे जा रहे हो। यह दोनों तरफ से हो सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

१९. शक्तिपात से स्वयं में ही छिपी हुई ऊर्जा-क्षमता का विकास

प्रश्नकर्ता : शक्तिपात का प्रभाव अल्पकालीन होता है या दीर्घकालीन होता है? वह अन्तिम यात्रा तक ले जाता है या अनेक बार शक्तिपात की आवश्यकता पड़ती है?

आचार्यश्री : असल बात यह है कि दीर्घकालीन प्रभाव तो तुम्हारे भीतर जो उठ रहा है उसका ही होगा। शक्तिपात जो है वह सिर्फ सहयोगी हो सकता है। मूल नहीं बन सकता है कभी भी। तुम्हारे भीतर जो हो रहा है वही मूल बनेगा। असली सम्पत्ति तो तुम्हारी वही है। शक्तिपात से तुम्हारी सम्पत्ति नहीं बढ़ेगी, शक्तिपात से तुम्हारी सम्पत्ति के बढ़ने की क्षमता बढ़ेगी। इस फर्क को ठीक से समझ लेना। शक्तिपात से तुम्हारी सम्पदा नहीं बढ़ेगी लेकिन तुम्हारी सम्पदा के बढ़ने की जो गति है, फैलाव की जो गति है वह तीव्र हो जायेगी।

इसलिए शक्तिपात तुम्हारी सम्पदा नहीं है। यह ऐसा ही है जैसा कि तुम दौड़ रहे हो और मैं एक बन्दूक लेकर तुम्हारे पीछे लग गया। बन्दूक लेकर लगने से मेरी बन्दूक तुम्हारे दौड़ने की सम्पत्ति नहीं बनने वाली लेकिन तुम मेरी बन्दूक की वजह से तेजी से दौड़ोगे। दौड़ोगे तुम्हीं। शक्ति तुम्हारी ही लगेगी, लेकिन जो नहीं लग रही थी तुम्हारे भीतर वह भी लग जायेगी। बन्दूक का इसमें कोई भी हाथ नहीं है। बन्दूक में से इंच भर शक्ति नहीं खोयेगी इसमें। बन्दूक की माप-तौल पीछे करोगे तो वह उतनी की उतनी ही रहेगी। उसमें से कुछ जाने-आने वाला नहीं है। लेकिन तुम उस बन्दूक के प्रभाव में तीव्र हो जाओगे। जहाँ

चल रहे थे धीमें, वहाँ दौड़ने लगोगे। तो शक्तिपात से तुम्हारी सम्पत्ति नहीं बढ़ती, लेकिन तुम्हारी सम्पत्ति की बढ़ने की क्षमता एकदम गतिमान हो जाती है।

२०. शक्तिपात में से अन्तर्यात्रा में प्रोत्साहन

एक दफा तुम्हें अनुभव हो जाय, बिजली चमक जाय एक। बिजली चमकने से तुम्हें कोई रास्ता प्रकाशित नहीं हो जाता है। हाथ में दिया नहीं बन जाता है बिजली का चमकना, सिर्फ एक झलक। लेकिन झलक बड़ी कीमत की हो जाती है। तुम्हारे पैर मजबूत हो जाते हैं, इच्छा प्रबल हो जाती है, पहुँचने की कामना तय हो जाती है, रास्ता दिखायी पड़ जाता है। रास्ता है, तुम यूँ ही अँधेरे में नहीं भटक रहे हो। यह सब साफ एक बिजली की झलक में तुम्हें रास्ता दिख जाता है, दूर तुम्हें मन्दिर दिख जाता है तुम्हारी मंजिल का, फिर बिजली खो गयी। फिर घुप अँधेरा हो गया। लेकिन अब तुम दूसरे आदमी हो। वहीं खड़े हो जहाँ थे, लेकिन दौड़ तुम्हारी बढ़ जायेगी। मंजिल पास है, रास्ता साफ है। न भी दिखायी पड़ता हो अँधेरे में तो भी है। अब तुम आश्वस्त होते हो। तुम्हारा आश्वासन बढ़ जाता है। तुम्हारे आश्वासन का बढ़ना तुम्हारे संकल्प को बढ़ाता है।

तो शक्तिपात के इन-डारेक्ट (अप्रत्यक्ष) परिणाम हैं और इसलिए बार-बार जरूरत पड़ती है। एक बार से हल नहीं होता है। बिजली दुबारा चमक जाय तो और फायदा होगा, बिजली तिबारा चमक जाय तो और फायदा होगा। पहली बार कुछ चूक गया होगा। न दिखायी पड़ा होगा, दूसरी बार दीख जाय। तीसरी बार दीख जाय। और इतना तो है कि आश्वासन गहरा होता जायेगा। तो शक्तिपात से अन्तिम परिणाम हल नहीं होगा। अन्तिम परिणाम तक तुम्हें पहुँचना है।

शक्तिपात के बिना भी पहुँच सकोगे। थोड़ी देर-अबेर होगी। इससे ज्यादा कुछ होना नहीं है। थोड़ी देर-अबेर होगी। अँधेरे में आश्वासन कम होगा, चलने में ज्यादा हिम्मत जुटानी पड़ेगी, ज्यादा बल लगाना पड़ेगा। भय पकड़ेगा, संकल्प-विकल्प पकड़ेंगे कि पता नहीं रास्ता है या नहीं। यह सब होगा। लेकिन फिर भी पहुँच जाओगे। लेकिन शक्तिपात सहयोगी बन सकता है।

२१. सामूहिक शक्तिपात भी सम्भव

इधर मैं चाहता ही हूँ कि तुम्हारी जरा गति बढ़े तो एकाध-दो पर क्या इकट्ठा सामूहिक शक्तिपात घटित हो सकता है। एक-दो पर क्या करना? इकट्ठा दस हजार लोगों को खड़ा करके शक्तिपात हो, इसमें कोई कठिनाई भी नहीं है। क्योंकि जितना आप पर होने में वक्त लगता है उतना ही दस हजार लोगों पर होने में लगेगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

२२. शक्तिपात का प्रभाव धीरे-धीरे क्षीण होना सम्भव

प्रश्नकर्ता : यदि माध्यम से सम्बन्ध न हो तो क्या इसका प्रभाव घटते-घटते मिट जाता है पूरा ?

कम तो होगा ही । सब प्रभाव क्षीण होने वाले होते हैं । असल में प्रभाव का मतलब ही यह है कि जो बाहर से आया । वह क्षीण हो जायेगा । जो भीतर से आया वह क्षीण नहीं होगा । वह तुम्हारा अपना है । प्रभाव तो सब घटने वाले हैं । वह घट जाते हैं । लेकिन जो तुम्हारे भीतर से आता है वह नहीं घटता है । उस प्रभाव में भी जो आ जाता है वह भी नहीं घटता है । वह तो बना रह जाता है । तुम्हारी मूल सम्पत्ति नहीं घटती है । प्रभाव तो घट जाता है ।

प्रश्नकर्ता : क्या बुरी संगति करने से हमारी मूल सम्पत्ति भी नहीं घट जायेगी ? क्या हम अपनी स्थिति से भी नीचे नहीं चले जायेंगे ?

२३. आध्यात्मिक विकास-क्रम में पीछे लौटना असम्भव

आचार्यश्री : नहीं, नीचे की तरफ जाने का कोई उपाय नहीं है । इस बात को भी ठीक से समझ लेना चाहिए । यह बड़े मजे की बात है कि नीचे की तरफ जाने का कोई उपाय नहीं है । तुम जहाँ तक गये हो, तुम्हें उससे ऊँचा ले जाने में तो सहायता पहुँचायी जा सकती है । तुम्हें वहीं तक ठहराये रखने की भी बाधा डाली जा सकती है । तुम्हें उससे नीचे नहीं ले जाया जा सकता है । उसका कारण है कि ऊँचे जाने में तुम बदल गये हो तत्काल. . .एक इंच भी कोई व्यक्तित्व में ऊपर गया कि पीछे नहीं लौट सकता है । पीछे लौटना असम्भव है ।

यह मामला ऐसा ही है कि किसी बच्चे को हम पहली कक्षा से दूसरी में प्रवेश करवा सकते हैं । एक ट्यूटर (Tutor), अतिरिक्त-शिक्षक रख सकते हैं जो उसे पहली में पढ़ाने में सहायता दे दे और दूसरी में पहुँचा दे । लेकिन ऐसा ट्यूटर खोजना बहुत मुश्किल है जो पहली में इसने पढ़ा है उसको भुला दे और एक बच्चा दूसरी कक्षा में जाकर ना-समझ लड़कों की सोहबत करे तो इतना ही हो सकता है कि दूसरी में फेल होता रहे । लेकिन पहली में उतार देंगे ना-समझ लड़के, ऐसा नहीं है उपाय । यह हो सकता है कि वह दूसरी में ही रुक जाय और जनम भर दूसरी में रुका रहे, तीसरी में न जा सके लेकिन दूसरी से नीचे उतारने का कोई उपाय नहीं है । वह वहाँ अटक जायेगा ।

आध्यात्मिक जीवन में कोई पीछे लौटना नहीं होता, सदा आगे जाना है या रुक जाना है । बस रुक जाना ही पीछे लौट जाने का मतलब रखता है । तो रोक तो सकते हैं साथी, हटा नहीं सकते पीछे, हटाने का कोई उपाय नहीं है ।

२४. शक्तिपात व प्रभु-कृपा (ग्रेस) में अन्तर

प्रश्न कर्ता : क्या शक्तिपात और ग्रेस (प्रभु-कृपा) में फर्क है ?

आचार्यश्री : शक्तिपात और प्रसाद में बहुत फर्क है। शक्तिपात जो है वह एक टेकनीक (प्रक्रिया) है और आयोजित है। उसकी आयोजना करली पड़ेगी। हर कभी और हर कहीं नहीं हो जायगा। साधक इस स्थिति में होना चाहिए कि उस पर हो सके। मीडियम (माध्यम) इस स्थिति में होना चाहिए कि वह माध्यम बन सके। जब ये दोनों बातें व्यवस्थित हों, तालमेल खा जायें, क्षण के बिन्दु पर दोनों का मेल हो जाय तो हो जायेगा। यह टेकनीक की बात है। ग्रेस (प्रभु-कृपा) अन-कॉल्ड फॉल (Uncalled fall) (अनपेक्षित-अवतरण) है। उसके लिए कभी कोई बुलावा नहीं है। उसके लिए कभी कोई इन्तजाम नहीं है। वह कभी होती है। यानी फर्क इतना ही है, जैसे कि हम बटन दबा कर बिजली जलाते हैं और आकाश की बिजली चमकती है। वैसा ही फर्क है। यह टेकनीक है। यह वही बिजली है जो आकाश मे चमकती है लेकिन यह टेकनीक से बँधी हुई है। हम बटन दबाते हैं जलती है, बटन ऊपर करते हैं बुझती है। आकाश की बिजली हमारे हाथ में नहीं है।

ग्रेस जो है वह आकाश की बिजली है। कभी किसी क्षण में चमकती है और तुम भी अगर उस मौके पर उस हालत में हुए तो घटना घट जाती है। लेकिन वह शक्तिपात नहीं है फिर। शक्ति वही है जो ग्रेस में है। लेकिन ग्रेस में कोई मीडियम नहीं होता है। उसमें कोई मीडियम भी नही है बीच मे। वह सीधे तुम पर होगी और आकस्मिक और सदा सडन (Sudden), अचानक। उसकी आयोजना नहीं की जा सकती है। शक्तिपात को आयोजित किया जा सकता है कि कल पाँच बजे आ जाओ, इतनी तैयारी, इतनी व्यवस्था करके आ जाना हो जायेगा। लेकिन ग्रेस के लिए पाँच बजे आकर बैठने से कुछ मतलब नहीं होगा। हो जाय, हो जाय, न हो, न हो। उसे हम अपने हाथ में नहीं ले सकते हैं। घटना वही है, लेकिन इतना फर्क है।

२५. अहंशून्य स्थिति में शक्तिपात की आयोजना कैसे सम्भव ?

प्रश्न कर्ता : शक्तिपात अहं-शून्य, इगो-लेस (Ego-less) स्थिति मे होती है तो उसकी आयोजना कैसे सम्भव होगी ?

आचार्यश्री : इगोलेस स्थिति में आयोजना हो सकती है। इगो (अहंकार) का आयोजना से कोई सम्बन्ध नही होता है, उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। इगोलेस आयोजना बिलकुल हो सकती है। इगो तो बात ही और है। जैसा कि हमने तय किया कि पाँच बजे इस-इस तैयारी में बैठेंगे हम सब। इसमें साधक की ओर

इगोलेस होने का सवाल नहीं है। इसमें सिर्फ मीडियम जो बनने वाला है उसके इगोलेस होने का सवाल है। और इगोलेस होने का मामला ऐसा नहीं है कि कभी तुम हो सकते हो और कभी न हो जाओ। हो गये तो हो गये (हमेशा के लिए), नहीं हुए तो नहीं हुए। अगर मैं इगोलेस हूँ तो हूँ और नहीं हूँ तो नहीं हूँ। ऐसा नहीं है कि कल पाँच बजे इगोलेस हो जाऊँगा। (हँसी...) कैसे हो जाऊँगा ? कोई उपाय नहीं है। अगर मैं अभी हूँ तो कल पाँच बजे भी रहूँगा, चाहे कोई आयोजन करें या चाहे न करें। चाहे तुम पाँच बजे आओ तो और न आओ तो। मैं जाऊँ तो और छोड़ें तो। अगर हूँ तो हूँ। नहीं हूँ तो नहीं हूँ।

२६. अहं-शून्यता क्रमिक नहीं

असल में हमारा जो सारा सोचना-विचारना है वह डिगरीज (Degrees) का होता है। वह ऐसा है कि ६८ डिग्री पर बुखार है तो हम कहते हैं बिलकुल ठीक है यह आदमी और ६६ डिग्री पर बुखार होगा तो हम कहते हैं कि बुखार है। ६८ डिग्री भी बुखार है, लेकिन वह नॉरमल (Normal), सामान्य बुखार है। ६६ डिग्री में वह एब-नॉरमल अ-सामान्य हो जाता है। फिर ६८ हो जाता है तो हम कहते हैं, बिलकुल ठीक है नॉरमल हो गया है। अभी भी बुखार है। मतलब इतना बुखार है जितना सबको है। सबसे जरा इधर-उधर होता है तो गड़बड़ हो जाता है। वैसे ही हमारे इगो का मामला है। वह हमारा बुखार है। जब उतनी ही डिग्री में है जितना सबको है। तब तक हम कहते हैं कि आदमी बिलकुल विनम्र है, अच्छा आदमी है। जरा हमसे डिग्री उसकी ६६ हुई और हमने कहा कि बहुत इगोइस्ट, अहंकारी आदमी मालूम होता है। जरा ६७ हुआ कि हमने कहा कि बिलकुल महात्मा, विनम्र हो गया है। (हँसी...)

इगो और नो-इगो बिलकुल ही अलग बातें हैं। उनका कोई डिग्री से सम्बन्ध नहीं है। बुखार और बुखार का न होना यह ६८ और ६६ डिग्री का मामला नहीं है। सिर्फ मरे हुए आदमी को हम कह सकते हैं कि इसको बुखार नहीं है। क्योंकि जब तक भी गर्मी है, बुखार है ही, नॉरमल और एब-नॉरमल का फर्क है। इसलिए तकलीफ अनुभव होती है। और फिर ऐसा है कि अगर किसी आदमी की इगो हमारी इगो को चोट पहुँचाती है तो वह इगोइस्ट है। अगर किसी की इगो हमारी इगो को रस पहुँचाती है तो वह आदमी इगोलेस है।

हम जानें कैसे ? पता कैसे चले ? एक आदमी मेरे पास आये और अकड़ भी मुझ पर दिखलाये हम कहते हैं कि इगोइस्ट है। आये और पैर छुए, हम कहते हैं कि बहुत विनम्र है। (लोगों का हँसना...) और उपाय क्या है जाँच का ? हमारी इगो जाँचने का एक उपाय है, उससे हम जाँचते हैं कि यह आदमी हमारी इगो की गड़बड़ तो नहीं कर रहा है। गड़बड़ कर रहा रहा है तो इगोइस्ट है।

और अगर फुसला रहा है और कह रहा है आप बहुत बड़े महात्मा हैं तो यह आदमी विनम्र है। इसमें अहंकार बिलकुल भी नहीं है। अगर अहंकार है या नहीं है यह हमारा अहंकार ही इन सबका तौल है। इनके पीछे जो मेजरमेण्ट (माप) है हमारा वह हमारा अहंकार है।

इसलिए जो नॉन-इगो की स्थिति है उसको तो हम पहचान ही नहीं पाते हैं। क्योंकि उसे हम कैसे पहचानें ? हम डिग्री तक पहचान पाते हैं कि कितनी डिग्री है। लेकिन यदि डिग्री है ही नहीं तब हम बहुत कठिनाई में पड़ जाते हैं। अगर वह जो घटना है शक्तिपात की उसमें मीडियम तो इगोलेस चाहिए ही। इगोलेस कहना ठीक नही है, नो-इगो वाला मीडियम चाहिए।

२७. अहं-शून्य व्यक्ति पर हमेशा प्रभु-कृपा की वर्षा

ऐसे आदमी को चौबीस घण्टे ग्रेस बरसती रहती है यह ख्याल में रख लेना। वह तो तुम्हारे लिए आयोजन कर देगा लेकिन उस पर तो चौबीस घण्टा अमृत बरस रहा है। इसलिए तुम्हारे लिए भी आयोजन कर देगा कि तुम जरा एक क्षण के लिए द्वार खोल कर खड़े रह जाना, उसको तो बरसता ही है, शायद दो-चार बूंद तुम्हारे द्वार के भीतर भी पड़ जायें।

२८. अहं-शून्यता पर ही प्रभु-कृपा (ग्रेस) उपलब्ध

प्रश्नकर्ता : यह जो डायरेक्ट (सीधे) ग्रेस मिलता है इसका प्रभाव क्या स्थायी होता है ? और यह क्या उपलब्धि तक ले जाता है ?

आचार्यश्री : डायरेक्ट (सीधा) ग्रेस तो मिलता ही उपलब्धि पर है। इसके पहले तो मिलता ही नहीं है। वह तो जब तुम्हारा अहंकार जायगा तब ही ग्रेस उतरता है नीचे। अहंकार ही बाधा है। उपलब्धि वह स्थिति है कि जिसके आगे फिर उपलब्ध करने को कुछ भी शेष न रह जाय।

२९. मनोगत (साइकिक) कुण्डलिनी-ऊर्जा की यात्रा परमात्मा तक

प्रश्नकर्ता : कुण्डलिनी साधना साइकिक (मनोगत) है या स्पिरीचुअल (आध्यात्मिक) है ?

...तुम यह जानते हो कि खाना शारीरिक है। लेकिन न खाने से आत्मा का बहुत जल्दी विलोप हो जायेगा। यद्यपि खाना शरीर को जाता है लेकिन शरीर एक स्थिति में हो तो आत्मा उसमें बनी रहती है। तो कुण्डलिनी जो है यह मानसिक है। लेकिन कुण्डलिनी एक स्थिति में हो तो आत्मा तक गति होती है। कुण्डलिनी दूसरी स्थिति में हो तो आत्मा तक गति नहीं होती है। तो साइकिक है, लेकिन स्टेप (द्वार) बनती है स्पिरीचुअल (आध्यात्मिक) के लिए। स्पिरी-चुअल नहीं है खुद। अगर कोई कहता है कि कुण्डलिनी स्पिरीचुअल है तो गलत

कहता है। कोई अगर कहता है कि जाना स्पिरीचुअल है तो गलत कहता है, जाना तो फिजिकल (शारीरिक) ही है। लेकिन फिर भी आधार बनता है आध्यात्मिक के लिए। श्वास भी भौतिक है और विचार भी भौतिक है। सब भौतिक है। इनका जो सूक्ष्मतम रूप है उसे हम साइकिक कह रहे हैं। वह भूत का सूक्ष्मतम रूप है। लेकिन यह सब आधार बनते हैं। उस अभौतिक में छलांग लगाने के लिए ये जम्पिंग बोर्डस (Jumping Boards) बनते हैं। जैसे कोई आदमी नदी में छलांग लगा रहा है तो किनारे पर एक बोर्ड पर खड़े होकर छलांग लगा रहा है। बोर्ड नदी नहीं है। अब कोई तर्क कर सकता है कि बोर्ड नदी है नहीं और तुम्हें नदी में छलांग लगाने हैं तो बोर्ड पर किस लिए खड़े हो ? नदी में छलांग लगानी है तो नदी में खड़े होओ। नदी में कभी कोई खड़ा हुआ है ? खड़ा तो बोर्ड में ही होना पड़ता है। छलांग नदी में लगती है। और बोर्ड बिलकुल अलग चीज है। वह नदी नहीं है।

तो तुम्हें जो छलांग लगानी है, वह शरीर से लगानी है, मन से लगानी है। लगानी है उसमें जो आत्मा है। वह तो जब लग जायेगी तब मिलेगी। अभी तो तुम जहां खड़े हो वहीं से तैयारी करनी पड़ेगी। तो शरीर से और मन से ही कूदना पड़ेगा। और इसलिए यहीं काम करना पड़ेगा। हां, जब छलांग लग जायगी तब तुम जहां पहुंचोगे वह होगा स्पिरीचुअल, वह होगा आध्यात्मिक।

३०. सीधे शान्त-ध्यान और कुण्डलिनी-जागरण से ध्यान के बीच चुनाव

प्रश्नकर्ता : पहले आप जिस साधना की बातें करते थे उसमें आप साधक को शान्त, शिथिल, मौन, सजग और साक्षी होने के लिए कहते थे। अब आप तीव्र श्वास और 'मैं कौन हूं ?' पूछने के अन्तर्गत साधक को पूरी शक्ति लगाकर प्रयत्न करने के लिए कहते हैं। पहली साधना करने वाला साधक जब दूसरे ढंग के प्रयोग में जाता है तो थोड़ी देर के बाद उससे प्रयत्न करना छूट जाता है तो उसके लिए कौन-सी विधि अच्छी है ?

आचार्यश्री : अच्छे और बुरे का सवाल नहीं है यहां। तुम्हें जिससे ज्यादा शान्ति और गति मिलती हो उसकी फिक्र करो। क्योंकि सब के लिए अलग-अलग होगा। कुछ लोग हैं जो दौड़ कर गिर जायें तो ही विश्राम कर सकते हैं। कुछ लोग हैं जो अभी विश्राम कर सकते हैं। ऐसे बहुत कम लोग हैं। एकदम सीधा मौन में जाना कठिन है मामला। वह थोड़े से लोगों के लिए सम्भव है। अधिक लोगों के लिए तो पहले दौड़ जरूरी है, तनाव जरूरी है। मतलब एक ही है। अन्त में प्रयोजन एक ही है।

३१. सभी शक्ति-साधना — तनाव की साधनाएँ हैं

प्रश्नकर्ता : आपने तीव्र श्वास वाले प्रयोग के सम्बन्ध में कहा है कि यह अतियों से परिवर्तन की विधि है। इसमें हमें तनाव की चरम सीमा तक जाना है ताकि विश्राम की चरम स्थिति उपलब्ध हो सके। तो क्या कुण्डलिनी साधना तनाव की साधना है ?

आचार्यश्री : बिलकुल तनाव की साधना है। असल में शक्ति की कोई भी साधना तनाव की ही साधना होगी। शक्ति का मतलब ही तनाव है। जहाँ तनाव है वहीं शक्ति पैदा होती है। जैसे हमने एटम से इतनी बड़ी शक्ति पैदा कर ली क्योंकि हमने सूक्ष्मतम अणुओं को भी तनाव में डाल दिया, दो हिस्से तोड़ दिये और दोनों को टेंशन (Tension), तनाव में डाल दिया। तो शक्ति की समस्त साधना जो है वह तनाव की है। अगर हम ठीक से समझें तो तनाव ही शक्ति है। टेंशन जो है वही शक्ति है।

प्रश्नकर्ता : साधना की दो पद्धतियाँ आप कहते हैं। पॉजीटिव और निगेटिव, विधायक और निषेधात्मक। कुण्डलिनी साधना पॉजीटिव है या निगेटिव ?

आचार्यश्री : पॉजीटिव है। बिलकुल पॉजीटिव है।

३२. बुद्ध और कुण्डलिनी-साधना

प्रश्नकर्ता : बुद्ध ने कुण्डलिनी और चक्रों की बात क्यों नहीं की है ?

आचार्यश्री : असल में बुद्ध ने जितनी बातें की हैं वह सब रिकॉर्डेड (Recorded), लिपिबद्ध नहीं है। बड़ा प्रॉबलम (Problem), समस्या जो है वह यही है। बुद्ध ने जो कहा है उसमें से बहुत-सा ज्ञान कर रिकॉर्डेड नहीं है। और बुद्ध ने जो कहा है वह उनके मरने के पाँच सौ वर्ष बाद रिकार्ड हुआ है। उस वक्त तो रिकार्ड ही नहीं हुआ था। पाँच सौ वर्ष तक तो जिन भिक्षुओं के पास वह ज्ञान था उन्होंने उसे रिकार्ड करने से इन्कार किया। पाँच सौ वर्ष बाद एक ऐसी घड़ी आ गयी कि वे भिक्षु लोप होने लगे जिनको बात पता थी। और तब एक बड़ा संघ बुलाया गया और उसमें यह तय किया गया कि अब तो यह मुश्किल है, अगर ये दस-पाँच भिक्षु हमारे और खो गये तो वह ज्ञान की सारी सम्पदा खो जायेगी। इसलिए उसे रिकार्ड कर लेना चाहिए। जब तक उसे स्मरण रखा जा सकता था तब तक जिद्द पूर्वक उसे नहीं लिखा गया। ऐसा जीसस के साथ भी हुआ और महावीर के साथ भी हुआ। यह जरूरी था।

उसके कारण हैं बहुत। क्योंकि ये लोग बोल रहे थे सिर्फ। इस बोलने में बहुत-सी बातें थीं जो बहुत से तल के साधकों के लिए कही गयी थीं। और पहले

तल के साधक के लिए वे सारी बातें जरूरी रूप से सहयोगी नहीं थीं। वे नुकसान पहुँचातीं। अक्सर ऐसा होता है कि जिस सीढ़ी पर हम खड़े नहीं हैं उसकी बातचीत हमें उस सीढ़ी पर भी ठीक से खड़ा नहीं रहने देती जहाँ हमें खड़ा होना है, जहाँ हम खड़े हैं। आगे की सीढ़ियाँ अक्सर हमें आगे की सीढ़ियों पर जाने का ख्याल दे देती हैं और हम पहली सीढ़ी पर खड़े ही नहीं हैं। और भी कठिनाई है कि पहली सीढ़ी पर बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो दूसरी सीढ़ी पर आकर गलत हो जाती हैं। अगर आपको दूसरी सीढ़ी की बात पहले से ही पता चल जाय तो आपको वह पहली ही सीढ़ी पर गलत मालूम होने लगेगी। तब आप पहली सीढ़ी से कभी भी पार न हो सकेंगे। पहली सीढ़ी पर तो उनका सही होना जरूरी है। तभी आप पहली सीढ़ी पार कर सकेंगे।

हम छोटे बच्चे को पढ़ाते हैं 'ग' गणेश का। अब इसका कोई मतलब नहीं है, 'ग' गधे का भी होता है और गधा और गणेश में कोई सम्बन्ध नहीं है। (हँसी...) कोई भाई-चारा नहीं है, 'ग' का कोई सम्बन्ध ही नहीं है किसी से। लेकिन यह पहली क्लास (कक्षा) के लड़के को बताना खतरनाक होगा। जब वह पढ़ रहा है 'ग' गणेश का तब उसका बाप कहे, नालायक 'ग' से गणेश का कोई सम्बन्ध नहीं है। 'ग' तो और हजार चीजों का भी है। गणेश से क्या लेना-देना है? तो वह लड़का 'ग' को ही नहीं पकड़ पायेगा। अभी उसको 'ग' गणेश का, इतना ही पकड़ लेना उचित है। अभी हजार चीजें भी 'ग' में सम्मिलित हैं यह ज्ञान रहने ही दो। अभी तो उसको गणेश भी 'ग' में आ जाय तो काफी है। कल और हजार चीजे भी आ जायेंगी। और हजार चीजें आ जायेंगी तो यह खुद भी जान लेगा कि ठीक है, 'ग' से गणेश की कोई अनिवार्यता नहीं है। वह भी एक सम्बन्ध था और भी बहुत से सम्बन्ध हैं। फिर यह जब 'ग' पढ़ेगा हमेशा तो 'ग' गणेश का, ऐसा नहीं पढ़ेगा गणेश छूट जायेंगे और 'ग' रह जायगा।

३३. गुह्य (Secret, Esoteric) साधनों की गोपनीयता

तो हजार बातें हैं, हजार तल की हैं और फिर कुछ बातें तो निजी और सीक्रेट (Secret), रहस्यपूर्ण हैं। जैसे मैं भी जिस ध्यान की बात कर रहा हूँ यह बिलकुल ऐसी बात है जो सामूहिक की जा सकती है। बहुत बातें हैं जो मैं समूह में नहीं कर सकता हूँ, नहीं करूँगा। वह तो तभी करूँगा जब मुझे समूह में से कुछ लोग मिल जायेंगे जिनको कि वे बातें कही जा सकती हैं।

तो बुद्ध ने तो कहा है बहुत। वह सब रिकॉर्डेड नहीं हैं। मैं, भी जो कहूँगा वह सब रिकॉर्डेड नहीं हो सकता है। क्योंकि मैं वही कहूँगा जो रिकार्ड हो सकता है। सामने तो वही कहूँगा। (हँसी...) जो रिकार्ड नहीं हो सकता है, वह सामने नहीं कहूँगा। उसे तो स्मृति में ही रखना पड़ेगा।

प्रश्न : तो क्या कुण्डलिनी और चक्रों की बातों को रिकार्ड नहीं किया जाना चाहिए ? क्या उन्हें गुप्त रखना चाहिए ?

आचार्यश्री : नहीं, नहीं । उसमें और बहुत-सी बातें हैं । जो मैंने कहा है इसे रिकार्ड करने में तो कोई कठिनाई नहीं है । पर उसमें और बहुत बातें हैं । मेरी कठिनाई यह है कि बुद्ध और आज में २५०० साल का फर्क पड़ा है । मनुष्य की चेतना में बहुत फर्क पड़ा है । जिस चीज को बुद्ध समझते थे कि न बताया जाय, मैं समझता हूँ कि बताया जा सकता है । २५०० साल में बहुत बुनियादी फर्क पड़ गये हैं । अर्थात् बुद्ध ने जितनी चीजों को कहा कि नहीं बताया जाय, मैं कहता हूँ कि उनमें से बहुत कुछ बताया जा सकता है आज । और जो मैं कहता हूँ कि नहीं बताया जाय, २५०० साल बाद बताया जा सकेगा, बताया जा सकना चाहिए, विकास अगर होता है तो ।

बुद्ध भी लौट आयें तो बहुत-सी बातें बता देना चाहेंगे । बुद्ध ने तो बहुत ही समझ का काम किया । उन्होंने ११ तो प्रश्न तय कर रखे थे कि कोई पूछ न सकेगा । क्योंकि पूछो तो उन्हें कुछ-नकुछ तो उत्तर देना पड़े, गलत दें उत्तर तो उचित नहीं मालूम होता और ठीक उत्तर दें तो देना नहीं चाहिए । तो ११ प्रश्न उन्होंने अव्याख्य करके तय कर रखे थे । वह जाहिर घोषणा थी सारे गाँव में कि कोई बुद्ध से यह ११ प्रश्न न पूछे । क्योंकि बुद्ध को अड़चन में नहीं डालना है । क्योंकि वे उनका उत्तर नहीं देंगे । न देने का कारण है । अगर दें तो नुकसान होगा और न दें तो उन्हें ऐसा लगता है कि मैं सत्य को छिपाता हूँ । इसलिए यह पूछना ही मत ।

इसलिए गाँव-गाँव में भिक्षु ढिंढोरा पीट देते थे कि बुद्ध आते हैं, ये ११ प्रश्न मत पूछें । सुन कर उन्हें बहुत परेशानी होगी । तो वे अव्याख्य मान लिये गये । वे प्रश्न नहीं पूछे जाते थे । कभी कोई विरोधी आता और पूछ लेता तो बुद्ध उससे कहते कि रुको, कुछ दिन ठहरो, कुछ दिन साधना करो । जब इस योग्य हो जाओगे, तब मैं उत्तर दूंगा । लेकिन कभी उन्होंने दिये नहीं । इसलिए जैनों का, हिन्दुओं का बहुत बड़ा आरोप तो यही था कि उन्हें पता नहीं है । उनका यही आरोप था कि इन ११ प्रश्नों का वे उत्तर नहीं देते, हमारे शास्त्रों में तो हम सब का उत्तर देते हैं । इनको मालूम होता है कि पता नहीं है । लेकिन उनके शास्त्र में जो लिखा हुआ है, उतना उत्तर तो वह भी दे सकते थे । असल में असली उत्तर शास्त्र में भी नहीं लिखा हुआ है । और असली दिया नहीं जा सकता था ।

तो इसलिए यह सवाल नहीं उठता कि बुद्ध ने कुण्डलिनी और चक्रों पर बातें क्यों नहीं की है ।

७. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक १ जुलाई, १९७०

●

कुण्डलिनी-साधना—स्थूल से सूक्ष्म और दृश्य से अदृश्य की ओर

प्रश्नकर्ता : आपने नारगोल शिविर में कहा है कि कुण्डलिनी-साधना शरीर की तैयारी है। कृपया इसका अर्थ स्पष्ट समझायें।

१. शरीर और आत्मा—एक ही सत्य के दो छोर

आचार्यश्री : पहली बात तो यह है कि **शरीर और आत्मा** बहुत गहरे में **दो नहीं हैं।** उनका भेद भी बहुत ऊपर है और जिस दिन दिखायी पड़ता है पूरा सत्य, उस दिन ऐसा दिखायी नहीं पड़ता है कि शरीर और आत्मा अलग-अलग है। उस दिन ऐसा दिखायी पड़ता है कि शरीर आत्मा का वह हिस्सा है जो इन्द्रियों की पकड़ में आ जाता है और आत्मा शरीर का वह हिस्सा है जो इन्द्रियों की पकड़ के बाहर रह जाता है। **शरीर का ही अदृश्य छोर आत्मा है और आत्मा का ही दृश्य छोर शरीर है।** यह तो बहुत आखिरी अनुभव मे ज्ञात होगा।

साधारणतः हम सब यही मानकर चलते हैं कि शरीर और आत्मा एक हैं। लेकिन यह भ्रान्ति है, हमें आत्मा का कोई पता ही नहीं। हम शरीर को ही आत्मा मानकर चलते हैं। लेकिन इस भ्रान्ति के पीछे भी वही सत्य काम कर रहा है, इस भ्रान्ति के पीछे भी कहीं अदृश्य हमारे प्राणों के कोने में वही प्रतीति है कि 'एक है'। उस एक ही प्रतीति ने दो तरह की भूलें पैदा की हैं। एक अध्यात्मवादी है, वह कहता है शरीर है ही नहीं, आत्मा ही है। एक भौतिकवादी है, चारवाक

है, ऐपीकुरस है वह कहता है कि शरीर ही है, आत्मा है ही नहीं। यह उसी गहरी प्रतीति की भ्रान्तियाँ हैं और प्रत्येक साधारण जन, जिसको हम अज्ञानी कहते हैं, वह भी यह एहसास करता है कि शरीर ही मैं हूँ। लेकिन जैसे ही भीतर की यात्रा शुरू होगी, पहले तो यह टूटेगी बात। और पता चलेगा कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। क्योंकि जैसे ही पता चलेगा आत्मा है, वैसे ही पता चलेगा कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। लेकिन यह मध्य की बात है। और गहरे जब उतरोगे, और गहरे जब उतरोगे, और चरम अनुभूति जब होगी, तब पता चलेगा कि वहाँ दूसरा तो कोई है नहीं! फिर आत्मा और शरीर दो नहीं है, फिर एक ही है, उसके ही दो रूप हैं।

जैसे मैं एक हूँ और मेरा बायाँ हाथ है और दायाँ हाथ है। बाहर से जो देखने आयेगा अगर वह कहे कि बायाँ और दायाँ हाथ एक ही है तो गलत कहता है। क्योंकि बायाँ बिलकुल अलग है, दायाँ बिलकुल अलग है। जब मेरे करीब आकर समझेगा तो पायेगा बायाँ अलग है, दायाँ अलग है। दायाँ दुखता है, बायाँ नहीं दुखता है। दायाँ कट जाय तो बायाँ बच जाता है। दोनों एक तो नहीं हैं। लेकिन मेरे भीतर और प्रवेश करेगा तो पायेगा कि मैं तो एक ही हूँ जिसका बायाँ है और जिसका दायाँ है। और जब बायाँ टूटता है तब भी मैं ही दुखता हूँ और जब दायाँ टूटता है तब भी मैं ही दुखता हूँ। और जब बायाँ उठता है तब मैं ही उठता हूँ और जब दायाँ उठता है तब मैं ही उठता हूँ।

तो बहुत अन्तिम अनुभूति में तो शरीर और आत्मा दो नहीं हैं। वे एक ही सत्य के दो पहलू हैं, दो हाथ हैं। इसका यह मतलब है, इसलिए मैंने यह बात कही कि जिससे तुम्हें यह समझ में आ सके, फिर तब यात्रा कहीं से भी शुरू हो सकती है। अगर कोई शरीर से यात्रा शुरू करे और गहरे से गहरा उतरता चला जाय तो आत्मा पर पहुँच जायेगा। अगर कोई मेरा बायाँ हाथ पकड़ना शुरू करे और पकड़ता जाय, पकड़ता जाय और बढ़ता जाय, बढ़ता जाय तो आज नही कल मेरा दायाँ हाथ उसकी पकड़ में आ जायगा। या कोई चाहे कि दूसरे तरफ से भी यात्रा शुरू करे, कि सीधी आत्मा से यात्रा शुरू करे तो शरीर पकड़ में आ जायगा। लेकिन आत्मा की यात्रा शुरू करनी बहुत कठिन है। कठिन इसलिए है कि उसका हमें पता ही नही है।

हम खड़े हैं शरीर पर, तो हमारी यात्रा शरीर से शुरू होगी। ऐसी विधियाँ भी हैं जिनमें यात्रा सीधी आत्मा से ही शुरू होती है। लेकिन साधारणतः वैसी विधियाँ बहुत थोड़े से लोगों के काम की हैं। कभी लाख में एक आदमी मिलेगा जो उस यात्रा को कर सकता है। अधिकतम लोगों को तो यात्रा शरीर से ही शुरू करनी पड़ेगी क्योंकि वहाँ हम खड़े हैं। जहाँ हम खड़े हैं वहीं से यात्रा शुरू होगी।

और शरीर की जो यात्रा है उसकी तैयारी कुण्डलिनी है। शरीर के भीतर में जो गहरे से गहरे अनुभव हैं, उन गहरे अनुभवों का जो मूल केन्द्र है, वह कुण्डलिनी है। असल में जैसा हम शरीर को जानते हैं और जैसा शरीर शास्त्री जानता है, शरीर उतना ही नहीं है। शरीर उससे बहुत ज्यादा है।

एक पंखा चल रहा है। उस पंखे को हम उतार लें और तोड़कर पूरा जाँच कर डालें तो भी बिजली हमें कहीं भी नहीं मिलेगी। और यह हो सकता है कि एक बहुत बुद्धिमान आदमी भी यह कहे कि पंखे में बिजली जैसी कोई भी चीज नही है। एक-एक अंग को काट डाले, तो भी बिजली नहीं मिलेगी। फिर भी पंखा बिजली से चल रहा था। और पंखा उसी क्षण बन्द हो जायगा जिस क्षण बिजली की धारा बन्द होगी। तो शरीर शास्त्री ने एक तरह शरीर का अध्ययन किया है काट-काट कर तो उसे कुण्डलिनी कहीं भी नही मिलती, मिलेगी भी नहीं। फिर भी कुण्डलिनी की ही विद्युत-शक्ति से सारा शरीर चलता है। यह जो कुण्डलिनी की विद्युत शक्ति है इसको बाहर के शरीर के विश्लेषण से कभी नही जाना जा सकता। क्योंकि विश्लेषण में वह तत्काल छिन्न-भिन्न होकर विदा हो जाती है, विलीन हो जाती है। उसे जानना हो तो भीतरी अनुभव से जाना जा सकता है।

शरीर को भी जानने के दो ढंग हैं। बाहर से शरीर को जानना, जैसा कि एक शरीर शास्त्री (Physiologist), डाक्टर टेबुल पर आदमी के शरीर को रखकर काट रहा है, जाँच रहा है। और एक शरीर को भीतर से जानना है। जो व्यक्ति शरीर के भीतर बैठा है वह अपने शरीर को भीतर से जानता है। और यह ख्याल रखना कि हम अपने शरीर को बाहर से ही जानते हैं। अगर मुझे मेरे बायें हाथ का पता है तो वह भी मेरी आँखें जो मेरे हाथ को देख रही हैं उसका पता है। यह बाँयें हाथ का जो अनुभव है, यह शरीर-शास्त्री का अनुभव है। लेकिन आँख बन्द करके, इस बायें हाथ की जो आन्तरिक प्रतीति है, भीतर से जो इसका अनुभव है, वह मेरा अनुभव है। तो अपने ही शरीर को अगर कोई भीतर से जानने जायगा तो बहुत शीघ्र वह उस कुण्ड पर पहुँच जायगा जहाँ से शरीर की सारी शक्तियाँ उठ रही हैं। उस कुण्ड में सोयी हुई शक्ति का नाम ही कुण्डलिनी है। और तब वह अनुभव करेगा कि सब कुछ वहीं से फैल रहा है पूरे शरीर में। जैसे कि एक दिया जल रहा है, पूरे कमरे में प्रकाश है। लेकिन हम खोज बीन करते करते दिये तक पहुँच जायें और पायें कि इस ज्योति से ही सारी प्रकाश की किरणें फैल गयी हैं। वह दूर तक फैल गयी हैं, लेकिन वह जा रही हैं यहाँ से।

२. कुण्ड—जीवन-ऊर्जा का

तो कुण्ड से मतलब है शरीर के भीतर उस बिन्दु की खोज, जहाँ से जीवन की

ऊर्जा पूरे शरीर में फैल रही है। निश्चित ही उसका कोई सेण्टर (केन्द्र) होगा। असल में ऐसी कोई ऊर्जा नहीं होती जिसका कोई केन्द्र न हो। चाहे दस करोड़ मील दूर हो सूरज, लेकिन किरण है हमारे हाथ में तो हम कह सकते हैं कि कहीं केन्द्र होगा, जहाँ से ये यात्रा कर रही हैं और जहाँ से ये चल रही हैं। असल में **कोई भी शक्ति केन्द्र शून्य नहीं हो सकती।** शक्ति होगी तो केन्द्र होगा, यह ऐसे ही है जैसे परिधि होगी तो केन्द्र होगा। कोई परिधि बिना केन्द्र के नहीं हो सकती है। तो तुम्हारा शरीर एक शक्ति का पुंज है, इसे तो सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है। वह शक्ति का पुंज है, उठ रहा है, बैठ रहा है, चल रहा है, सो रहा है। फिर ऐसा भी नहीं है कि उसकी शक्ति हमेशा एक सी ही काम करती है और कभी ज्यादा भी शक्ति उसमें होती है, कभी कम भी होती है। जब तुम क्रोध में होते हो तो इतना बड़ा पत्थर उठाकर फेंक देते हो, जिसे तुम क्रोध में नहीं हो तो हिला भी न सकोगे। जब तुम भय में होते हो तो इतना तेजी से दौड़ लेते हो जितना कि तुम किसी ओलम्पिक के खेल में दौड़ रहे हो तो भी न दौड़ सकोगे। तो ऐसा भी नहीं है कि शक्ति तुम्हारे भीतर एक-सी है। उसमें तारतम्य हैं—वह कभी ज्यादा हो रही है, कभी कम हो रही है। इससे यह भी साफ होता है कि तुम्हारे पास कुछ रिजर्वायर (Resrevoir), संचय-कक्ष भी है जिसमें से कभी शक्ति आ जाती है, कभी नहीं आती है। जरूरत होती है तो आ जाती है, नहीं जरूरत होती है तो छिपी रहती है।

तो तुम्हारे पास एक केन्द्र है, जिससे शक्ति तुम्हें मिलती है सामान्यतया भी, असामान्यतया भी। रोजमर्रा के काम के लिए भी तुम्हें शक्ति मिलती है और असाधारण काम के लिए भी शक्ति मिलती है। फिर भी उस केन्द्र को कभी तुम रिक्त नहीं कर पाते हो। वह केन्द्र कभी रिक्त नहीं होता है। और कभी तुम उस केन्द्र का पूरा उपयोग भी नहीं कर पाते हो। इस सम्बन्ध में जिन्होंने खोज की है उनका ख्याल है कि पन्द्रह प्रतिशत से ज्यादा अपनी ऊर्जा का असाधारण से असाधारण आदमी भी उपयोग नहीं करता है। यह हमारा महापुरुष जिसको हम कहते हैं वह भी पन्द्रह प्रतिशत से ऊपर नहीं जाता है। और जिसको हम साधारण जन कहते हैं वह तो दो-ढाई प्रतिशत तक काम चलाता है। उसकी ९८ प्रतिशत यों ही पड़ी-पड़ी विदा हो जाती है। **इसलिए बड़े आदमी में और छोटे आदमी में कोई पोटेंशियल (Potential), मौलिक क्षमतागत भेद नहीं होता है।** बीज शक्ति का कोई भेद नहीं होता है। उपयोग का ही भेद होता है। महान् से महान् प्रतिभा का व्यक्ति भी जिस शक्ति का उपयोग कर रहा है वह साधारण से साधारण बुद्धि के आदमी के पास भी है, बस अनुपयोग में है, उसे कभी पुकारा नहीं गया। उसे कभी चुनौती नहीं दी गयी। उसे कभी जगाया

नहीं गया, वह पड़ी रह गयी और वह राजी हो गया है जितना है उससे ही। और उसको उसने अपना मैक्सिमम (Maximum), अधिकतम समझ लिया है जो उसका मिनिमम (Minimum), न्यूनतम है। हमारी जो न्यूनतम सीमा रेखा है उसको हम अपनी परम सीमा रेखा मानकर जी रहे हैं और इसलिए कई क्षणों में, जबकि संकट का क्षण हो साधारण से साधारण आदमी भी असाधारण क्षमता प्रकट कर पाता है। तो कई बार क्राइसिस (Crisis), संकट में अचानक हमें ही पता चलता है कि हमारे भीतर क्या था। एक केन्द्र है, जिस पर वह सारी शक्ति ठहरी हुई है, छिपी हुई है, सोयी हुई है। कहना चाहिए बीज की तरह है, जिसमें सब कुछ अभी बन्द है, प्रकट (मेनिफेस्ट) हो सकती है। इसको कुण्ड कहते हैं।

३. अनन्त सम्भावनाओं वाला सुप्त कुण्ड

कुण्ड शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसके कई अर्थ हैं। पहला तो अर्थ यह है कि जहाँ जरा-सी लहर भी नहीं उठ रही है। क्योंकि, जरा सी भी लहर उठे तो सक्रिय हो गयी शक्ति। कुण्ड का मतलब है, जहाँ जरा-सी भी लहर नहीं उठ रही है। जरा सा कम्पन नहीं है, सब प्रसुप्त है, सब सोया हुआ है। दूसरा अर्थ यह है कि प्रसुप्त तो है लेकिन किसी भी क्षण सक्रिय हो सकता है। मृत नहीं है, सूखा नहीं है कुण्ड, लेकिन भरा है। किसी भी क्षण सक्रिय हो सकता है, लेकिन सब सोया हुआ है। और इसलिए हो सकता है कि हमें पता भी न चले कि हमारे भीतर क्या सोया हुआ है। क्योंकि हमें उतना ही पता चलेगा जितना हम जगायेंगे। इसे समझ लेना, क्योंकि जगाने के पहले हमें पता ही नहीं चल सकता है कि हमारे भीतर क्या सोया हुआ है। उतना ही पता चलेगा जितना जगेगा। यानी तुम्हारे भीतर जितनी शक्ति सक्रिय होगी उतनी ही तुम्हारे चेतन में आयेगी। और जो निष्क्रिय शक्ति है वह तुम्हारे अनकांसस (Unconscious) में, अचेतन में खोयी रहेगी। इसलिए महान्-से-महान व्यक्ति को भी, जबतक वह महान हो नहीं जाता पता नहीं चलता। न महावीर को पता है, न बुद्ध को, न जीसस को, न कृष्ण को। वह जिस दिन महान् हो जाते हैं उसी दिन पता चलता है। और इसलिए अनायास, जिस दिन यह घटना घटती है उनके भीतर, उस दिन उनको अनुकंपा मालूम पड़ती है कि पता नहीं कहाँ से यह दान मिला, पता नहीं कहाँ से यह आया, कौन दे गया! तो जो भी निकटतम होता है—अगर गुरु हो तो वह सोचेंगे कि गुरु से मिल गया। अगर गुरु न हो, मूर्ति हो भगवान् की, तो वे सोचेंगे उससे मिल गया। उपलब्धि उनके ही भीतर से है सदा, लेकिन वे सोचेंगे कि तीर्थंकर होगा, आसमान में बैठा हुआ भगवान होगा, कुछ भी होगा उससे मिल गया है। जो पूर्व-गामी होगा उसे वह कारण समझ लेंगे। असल में हम तो उसी को कारण समझ लेते हैं जो पहले आया।

अभी मैं एक कहानी पढ़ रहा था कि दो किसान पहली दफा ट्रेन में सवार हुए। उन दोनों का जन्म दिन था और एक पहाड़ी गाँव में वे रहते थे। गाँव के लोगों ने उनको कुछ भेंट करना चाहा। नयी-नयी ट्रेन चली थी। तो उन्होंने कहा कि हम तुम्हें टिकट भेंट करते हैं और तुम ट्रेन में घूम आओ दोनों और इससे बढ़िया क्या हो सकती थी भेंट उनको। तो वे दोनों ट्रेन में गये। अब वे हर चीज के लिए उत्सुक थे कि क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है। कोई शर्बत की बोतल बेचता हुआ आदमी आया तो उन्होंने सोचा कि हमें भी चखनी चाहिए तो उन्होंने कहा, एक बोतल ले लें और आधी-आधी चख लें और फिर अच्छी लगे तो दूसरी भी ले सकते हैं। पहले आदमी ने आधी बोतल चखी, जब वह आधी बोतल चख रहा था तभी एक टनल (Tunnel) में, एक बोगदे में गाड़ी प्रवेश कर गयी। दूसरे आदमी ने उसके हाथ से बोतल छीनी और कहा कि भई, तुम पूरी मत पी जाना, आधी मुझे दे दो। उसने कहा, तुम छूना ही मत। क्योंकि इसने मुझे अंधा कर दिया है। (I have been struck blind) टनल में गाड़ी चली गयी। जो पूर्वगामी था कि उसने उस बोतल को पिया था तो उसने कहा छूना ही मत, भूल के मत छूना। नहीं तो अंधे हो जाओगे। स्वाभाविक है। जो पूर्वगामी है, वह हमें कारण मालूम पड़ता है। लेकिन शक्ति जहाँ से आ रही है, उसका हमें पता ही नहीं और जब तक घटित न हो जाय तब तक पता नहीं होगा। और शक्ति भी आ सकती है वहाँ से उसका भी हमें पता नहीं। और कितनी आ सकती है इसका भी हमें पता नहीं।

४. जागृत कुण्डलिनी का आत्मिक द्वार तक पहुँचना

(यह जो सोया हुआ कुण्ड है, अचेतन, इसमें से जितनी शक्ति जग जाती है, वह कुण्डलिनी है। कुण्ड तो अचेतन है। कुण्डलिनी चेतन है। कुण्ड तो सोयी हुई शक्ति का नाम है, कुण्डलिनी जागी हुई शक्ति का नाम है। उस कुण्ड से जितना जाग कर ऊपर, बाहर आ गया उतनी कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी पूरा कुण्ड नहीं है। कुण्डलिनी उसमें से बहुत छोटी-सी एक लहर है जो उठ गयी। इसलिए दोहरी खोज है इस यात्रा में। तुम्हारे भीतर जो कुण्डलिनी जगी है वह तो सिर्फ खबर है तुम्हारे भीतर के एक स्रोत का, जहाँ और भी बहुत कुछ सोया होगा। जब एक किरण आयी है तो अनन्त किरणों की वहाँ सम्भावना है। तो एक रास्ता तो कुण्डलिनी को जगाने का है जिसमें से कि तुम्हारी शरीर की शक्ति का तुम्हें पूरा बोध हो सकेगा।)और इस शक्ति को जगा कर तुम शरीर के उन बिन्दुओं पर, और उन द्वारों पर पहुँच जाओगे जहाँ से शरीर के अदृश्य रूपों में, आत्मा में प्रवेश आसान है।

इसको भी समझ लेना जरूरी है क्योंकि हम जो कुछ भी कर रहे हैं वह हमारी

शक्ति किन्हीं द्वारों के द्वारा कर रही है। अगर तुम्हारे कान खराब हो जायें तो शक्ति वहाँ तक आकर लौट आयेगी, लेकिन तुम सुन न सकोगे। फिर धीरे-धीरे शक्ति वहाँ आनी बन्द हो जायेगी। क्योंकि शक्ति वहीं आती है जहाँ उसको सक्रिय होने का कोई मौका हो। वह वहाँ नहीं आयेगी। इससे उल्टा भी हो सकता है कि कोई आदमी बहरा है, और अगर वह अपनी अँगुली से बहुत ज्यादा संकल्प करे सुनने का तो अँगुली भी सुन सकती है। ऐसे लोग हैं जमीन पर आज भी, जो शरीर के दूसरे हिस्सों से सुनने लगे हैं। ऐसे लोग भी हैं जो शरीर के दूसरे हिस्सों से देखने लगे हैं। असल में जिसको तुम आँख कहते हो वह है क्या ? तुम्हारी चमड़ी का ही हिस्सा है। लेकिन अनन्त काल से मनुष्य उस हिस्से से देखता रहा है इतना ही। लेकिन, पहले दिन; जिस दिन मनुष्य के पहले प्राणी ने उस अंग से देखा होगा, वह बिलकुल ही संयोग की बात थी, वह कहीं और से भी देख सकता था। दूसरे प्राणियों ने और हिस्सों से देखा। तो दूसरी तरफ उनकी आँखें आ गयीं। ऐसे भी पशु पक्षी हैं, कीड़े-मकोड़े हैं, जिनके पास असली आँख भी है और नकली, (False) फाल्स आँख भी है। असली आँख, जिससे वह देखते हैं और झूठी आँख जिससे वह दूसरों को धोखा देते हैं, कि अगर कोई हमला करे तो झूठी आँख पर हमला करे। असली आँख पर हमला न करे। साधारण सी मक्खी जो तुम्हारे घर में है, उसकी हजार आँख है। उसकी एक आँख हजार आँखों का जोड़ है। देखने की क्षमता बहुत ज्यादा है उसके पास। मछलियाँ हैं जो पूँछ से देखती हैं क्योंकि उनको पीछे से दुश्मन का डर होता है। अगर हम सारी दुनिया के प्राणियों की आँखों का अध्ययन करें तो हमको पता चलेगा कि आँख का कोई इसी जगह होना मतलब नहीं है। कान का इसी जगह होना कोई मतलब नहीं है। ये कहीं भी हो सकते हैं। इस जगह हैं क्योंकि अनन्त बार मनुष्य जाति ने वहीं-वहीं उन्हें पुनरुक्त किया है, इसलिए वह वहाँ स्थिर हो गये हैं और हमारे भीतर उनकी जो स्मृति है, वह गहरी हो गयी है हमारी चेतना में। इसलिए वहाँ वह अंग उभर आता है। यहाँ जो-जो अंग हमारे पास हैं उन अंगों में से एक अंग भी खो जाय तो उस दुनिया का दरवाजा बन्द हो जायगा। जैसे आँख खो जाय तो फिर हमें प्रकाश का कोई अनुभव न हो सकेगा। फिर कितने ही अच्छे कान हों हमारे पास और कितने ही अच्छे हाथ हों, प्रकाश का अनुभव नहीं हो सकेगा।

५. नये द्वार पर चोट

तो जब कुण्डलिनी तुम्हारी जागनी शुरू होती है तो वह कुछ ऐसे नये द्वारों पर भी चोट करती है जो सामान्य नहीं है। जिनसे तुम्हें कुछ और चीजों का पता चलना शुरू होता है जो कि इन आँखों से पता नहीं चलता था, इन हाथों से पता नहीं चलता था। अगर ठीक से कहें तो ऐसा कह सकते हैं कि तुम्हारी अन्तःइन्द्रियों

पर चोट होनी शुरू हो जाती है। अभी भी तुम्हारी कुण्डलिनी की शक्ति ही इन आँखों और कानों को चला रही है। लेकिन ये बहिर-इन्द्रियाँ हैं। और बहुत छोटी सी मात्रा कुण्डलिनी की इनको चला लेती है। अगर तुम इस मात्रा में थोड़ी-सी भी बढ़ती कर दो तो तुम्हारे पास अतिरिक्त शक्ति होगी जो नये द्वारों पर चोट कर सके। जैसे कि हम यहाँ से पानी बहा दें। अगर पानी की एक छोटी-सी मात्रा हो तो पानी की एक लीक बन जायेगी और फिर पानी उसी लीक में से बहता हुआ जायगा, लेकिन पानी की मात्रा एकदम से बढ़ जाय तो तत्काल नयी धारायें शुरू हो जायेंगी। क्योंकि उतने पानी को पुरानी धारा न ले जा सकेगी।

६. अतिरिक्त ऊर्जा का कार्य

तो कुण्डलिनी को जगाने का जो गहरा शारीरिक अर्थ है वह यह है कि इतनी ऊर्जा तुम्हारे पास है कि तुम्हारे पुराने द्वार उसको बहाने में समर्थ न रह जायें। तब अनिवार्यरूपेण उस ऊर्जा को नये द्वारों पर चोट करनी पड़ेगी और तुम्हारी नयी इन्द्रियाँ जगनी शुरू हो जायेंगी। उन इन्द्रियों में बहुत तरह की इन्द्रियाँ हैं—उनसे टेलीपैथी होगी, क्लैरवायन्स होगा, तुम्हें कुछ चीजें दिखायी पड़ने लगेंगी, कुछ सुनायी पड़ने लगेंगी जो कि आँख की नहीं है, कान की नहीं है। तुम कुछ चीजें अनुभव करने लगोगे जिनमें तुम्हारी किसी इन्द्रिय का कोई योगदान नहीं। तुम्हारे भीतर नयी इन्द्रियाँ सक्रिय हो जायेंगी। और इन्हीं इन्द्रियों की सक्रियता का जो गहरे से गहरा फल होगा वह तुम्हारे शरीर के भीतर जो अदृश्य लोक है, जिसको आत्मा हम कह रहे हैं, तुम्हारे शरीर का जो सूक्ष्मतम अदृश्य छोर है उसकी प्रतीति उसे पकड़नी शुरू हो जायेगी। तो यह कुण्डलिनी के जागने से तुम्हारे भीतर सम्भावनाएँ बढ़ेंगी। शरीर से काम शुरू होगा।

७. सीधे समग्र चेतना को ही कुण्ड में डुबा देने की विधि

दूसरी बात, मैंने छोड़ दी। यह साधारणतः प्रयोग हुआ कुण्डलिनी को जगाने का। पर फिर भी कुण्डलिनी पूरा कुण्ड नहीं है। एक दूसरा प्रयोग भी है जिस पर तुमसे अलग ही फिर कभी पूरी बात करनी पड़े। बहुत से थोड़े लोगों ने पृथ्वी पर उस पर काम किया है—वह कुण्डलिनी जगाने का नहीं है बल्कि कुण्ड में डूब जाने का है। उसमें से कोई एक छोटी-मोटी शक्ति को उठा कर काम कर लेना नहीं, बल्कि समग्र चेतना को अपने उस कुण्ड में डुबा देना। तब कोई इन्द्रिय नहीं जागेगी नयी, कोई अतीन्द्रिय अनुभव नहीं होंगे, और आत्मा का अनुभव एकदम खो जायगा। और सीधा परमात्मा का अनुभव होगा। कुण्डलिनी की शक्ति जगा कर जो अनुभव होगा वह तुम्हें पहले आत्मा का अनुभव

होगा। और उसके साथ एक प्रतीति होगी कि दूसरे की आत्मा अलग है और मेरी आत्मा अलग है। जिन लोगों ने कुण्डलिनी की शक्ति जगा कर अनुभव किये हैं वह अनेक आत्मवादी हैं। वे कहेंगे कि अनेक आत्माएँ हैं, हरेक के भीतर अलग आत्माएँ हैं। लेकिन, जिन लोगों ने कुण्ड में डुबकी लगायी है, वे कहेंगे आत्मा है ही नहीं, परमात्मा है। अनेक नहीं, एक ही है। क्योंकि उस कुण्ड में डुबकी लगा कर सिर्फ तुम अपने ही कुण्ड में डुबकी नहीं लगाते, तुम सबका जो सम्मिलित कुण्ड है, उसमें प्रवेश कर जाते हो तत्काल। तुम्हारा कुण्ड और मेरा कुण्ड और उनका कुण्ड अलग-अलग नहीं है। इसीलिए तो कुण्ड अनन्त अक्षि-मान है। उसमें से कितना ही उठाओ तो भी कुछ नहीं उठता और तुम उसमें से कितनी ही बाल्टी पानी भर के ले आये हो अपने घर के काम के लिए, उससे वहाँ कुछ फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तुम अपना मटका भर लाये हो, मैं अपना मटका भर लाया हूँ। मेरे मटके का पानी अलग है, तुम्हारे मटके का पानी अलग है।

हम सागर से कुछ ले आये हैं। लेकिन एक आदमी सागर में कूद गया, अब वह कहता है, मटके-मटके की कोई बात नहीं है और किसी का पानी अलग नहीं है, सागर एक है, वह जिसे तुम भर ले गये हो, वह भी इसी का हिस्सा है और कुछ दूर नहीं हो गया है और तुम दूर न रख सकोगे, वह लौट आयेगा। अभी धूप पड़ेगी और भाप बनेगी और बादल बनेंगे, वह सब लौट आयेगा। वह कहीं दूर नहीं गया है, वह दूर जा नहीं सकता है। वह सब यहीं लौट आयेगा। तो जिन लोगों ने कुण्डलिनी को जगाने के प्रयोग किये उन लोगों को अतीन्द्रिय अनुभव हुए। जो कि मनस की (Psychic) बड़ी अद्भुत अनुभूतियाँ हैं। और उन्हें आत्म अनुभव हुआ। जो कि परमात्मा का सिर्फ एक अंश है, जहाँ से तुम परमात्मा को पकड़ रहे हो। जैसे एक सागर के किनारे से मैं सागर को छू रहा हूँ। मैं उसी सागर को छू रहा हूँ जिसे करोड़ों मील दूर तुम भी छू रहे होगे। लेकिन मैं कैसे जानूँ कि तुम भी इसी सागर को छू रहे हो। तुम अपने किनारे छू रहे हो, मैं अपने किनारे छू रहा हूँ। तो मेरा सागर अलग होगा। मेरा सागर हिन्द महासागर होगा, तुम्हारा सागर अटलांटिक महासागर होगा, उनका सागर पैसिफिक महासागर होगा। महासागर नहीं छुयेंगे, हम अपने-अपने सागर हो जायेंगे, अपना-अपना तट भी हो जायगा। हम कहीं विभाजन रेखा खींच लेंगे, जहाँ मैंने छुआ है। तो आत्मा का अनुभव जो है वह परमात्मा को एक कोने से छूना है। और कोने से छूने का रास्ता है कि एक छोटी-सी शक्ति जग जाय तो तुम छू लोगे। और इसलिए इस मार्ग पर चलने से एक दिन आत्मा को भी खोना पड़ता है। नहीं तो रुकावट हो जाती है, वह पूरा नहीं है मामला। फिर आत्मा को भी खोना पड़ता है, फिर छलांग लगानी पड़ती है कुण्ड में, लेकिन यह

आसान है। कई बार ऐसा होता है कि लम्बा रास्ता आसान रास्ता होता है और निकटतम रास्ता कठिन रास्ता होता है। इसके कारण हैं। लम्बा रास्ता सदा आसान रास्ता होता है। अब जैसे, मुझे अगर मेरे ही पास आना हो तो भी मुझे दूसरे के माध्यम से आना पड़ेगा। और मुझे अगर अपनी ही शकल देखनी हो तो भी मुझे एक आइना रखना पड़ेगा। अब यह फिजूल की लम्बी यात्रा है कि आइने में मेरी शकल जायगी और आइने से वापस लौटेगी तब मैं देख पाऊँगा। लेकिन अपनी शकल को सीधा देखना निकटतम तो है लेकिन कठिनतम भी है।

८. कुण्डलिनी से आत्मा, फिर आत्मा से परमात्मा

तो यह जो कुण्डलिनी की छोटी शक्ति को उठाकर थोड़ी लम्बी यात्रा तो होती है लेकिन अन्तः इन्द्रियों का सारा-का-सारा जगत खुलता है और हम आत्मा पर पहुँचते हैं। फिर वहाँ से छलांग तो लेनी ही है। लेकिन बड़ी सरल हो जाती है। क्योंकि जिसको आत्म अनुभव हुआ, जिसने अपने को जाना, और आनन्द पाया, वह आनन्द उसे पुकारने लगता है कि अब अपने को भी खो दो तो और परम आनन्द पा लोगे। अपने को जानने का एक आनन्द है, अपने को पाने का एक आनन्द है और अपने को खोने का एक परम आनन्द है। क्योंकि जब तुम अपने को जान लोगे तब तुम्हें सिर्फ एक ही पीड़ा रह जायगी कि मैं हूँ। बस इतनी पीड़ा और रह जायेगी। सब पीड़ाएँ मिट जायेंगी। एक ही पीड़ा रह जायेगी कि मेरा होना भी क्यों है। यह भी अनावश्यक है। यह मेरा होना भी व्यर्थ और अनावश्यक है। इसलिए इससे भी तुम छलांग लगाओगे ही। एक दिन तुम कहोगे कि अब मैंने होना जान लिया, अब मैं न होना भी जानना चाहता हूँ। मैंने बीइंग (Being) भी जान लिया, अब मैं नानबीइंग (Non-Being) भी जानना चाहता हूँ। मैंने जान लिया प्रकाश, अब मैं अन्धकार भी जानना चाहता हूँ। और प्रकाश कितना ही बड़ा हो उसकी सीमा है। और अन्धकार असीम है। और बीइंग कितना ही महत्वपूर्ण हो, फिर भी सीमा है। अस्तित्व की सीमा होगी अनस्तित्व की कोई सीमा नहीं है।

इसलिए बुद्ध को लोग नहीं समझ पाये, क्योंकि बुद्ध से जब लोगों ने आकर पूछा कि हम बचेंगे कि नहीं वहाँ, तो उन्होंने कहा कि तुम कैसे बचोगे? तुमसे ही तो छूटना है। तो उन्होंने पूछा कि मोक्ष में कम-से-कम हम तो होंगे, और सब मिट जायगा, वासना मिटे, दुख मिटे, पाप मिटे, हम तो बचेंगे? बुद्ध ने कहा, तुम कैसे बचोगे? जब वासना मिट जायेगी, पाप मिट जायगा, दुख मिट जायगा तो एक दुख बचेगा, तुम्हारा होने का दुख। होना भी खलने लगेगा। यह बड़े मजे की बात है, क्योंकि जब तक वासना है तब तक 'होना' नहीं खलता है तुम्हें। क्योंकि तुम होने को काम में लगाये रहते हो। धन कमाना है तो होने को तुमने

धन कमाने में लगाया है। यश कमाना है तो यश कमाने में लगाये हो। जब यश की कामना न होगी, धन की कामना न होगी, काम की वासना न होगी, जब कुछ भी न होगा करने को, जब डूइंग (Doing), करना बिलकुल न बचेगी तब बीइंग (Being)'होने' का करोगे क्या ? तब बीइंग सीधा गड़ने लगेगा। होना ही घबराने लगेगा कि अब यह होना भी नहीं चाहिए। तब बुद्ध कहते हैं कि नहीं, वहाँ कुछ भी नहीं होगा। जैसे दिया बुझ जाता है, फिर तुम पूछते हो कहाँ गया ? मरते समय तक लोग बुद्ध से पूछ रहे हैं कि तथागत का मरने के बाद क्या होता है। जब आप मर जायेंगे तो फिर क्या होगा ? तो बुद्ध कहते हैं जब मर ही गये तो फिर होने को बचेगा क्या ? फिर कुछ बचेगा नहीं, जैसे दिया बुझ गया है, ऐसे सब बुझ जायेगा। तुम कब पूछते हो कि दिया बुझ गया है अब क्या हुआ ? दिया बुझ गया, बुझ गया।

आत्मा की उपलब्धि, चरम ही है एक, आत्मा को खोने की तैयारी का। लेकिन ऐसे ही आसान है क्योंकि जो अभी वासना ही नहीं खो सका उससे अगर सीधा कहो कि कुण्ड में डूब जाओ, अपने को ही खो दो तो असम्भव है। क्योंकि वह कहेगा, अभी मुझे बहुत काम है। हम अपने को खोने से डरते क्यों हैं ? हम अपने को खोने से इसलिए डरते हैं कि काम तो बहुत करने को है, मैं को खो दूँगा तो फिर काम कौन करेगा ? एक मकान बनाया हुआ है, वह अधूरा है तो इसे मैं पूरा बना लूँ। फिर तैयार हो जाऊँगा। लेकिन तब तक दूसरे काम अधूरे रह जायेंगे। असल में काम की वासना कुछ पूरा करना है। उसकी वजह से तो मैं अपने को चला रहा हूँ। तो जब तक वासना है तब तक अगर कोई कहे कि आत्मा को खो दो तब तक बिलकुल सम्भव नहीं है, निकटता तो है लेकिन सम्भव नहीं है। क्योंकि वह आदमी जिसकी अभी वासना नहीं खोयी, वह आत्मा को कैसे खोयेगा। हाँ, वासना खो जाय, तो फिर एक दिन वह आत्मा को खोने को राजी हो सकता है क्योंकि अब आत्मा का भी करना क्या है ? मेरा मतलब यह है कि जिसने अभी दुख नहीं खोया, उससे कहो कि आनन्द को खो दो, वह कहेगा पागल हैं है आप ? लेकिन जिस दिन दुख खो जाय, आनन्द ही रह जाय, फिर आनन्द का भी क्या करोगे ? फिर आनन्द को भी खोने के लिए तुम तैयार हो जाओगे। और जिस दिन कोई आनन्द को भी खोने को तैयार है उसी दिन कोई घटना घटती है। दुख खोने को तो कोई भी तैयार हो जाता है, लेकिन एक घड़ी आती है जब हम आनन्द को भी खोने को तैयार हो जाते हैं। वह परम अस्तित्व में लीनता उससे उपलब्ध होती है। यह सीधा भी हो सकता है, सीधे कुण्ड में जाया जा सकता है। लेकिन इसके लिए राजी होना मुश्किल होता है। धीरे-धीरे राजी होना आसान हो जाता है। वासना खोती है, वृत्तियाँ खोती हैं, क्रिया खोती

है। वह सब खो जाता है जिनके सहारे तुम हो। फिर आखिर मैं तुम्हीं बचते हो जिसमें न नींव बची, न सहारे बचे। अब तुम कहते हो कि इसको भी क्या बचाना, इसको भी जाने दे सकते हैं। तब तुम कुण्ड में डूब जाते हो। कुण्ड में डूबना निर्वाण है।

अगर सीधा कोई डूबना चाहे तो कुण्डलिनी नहीं मार्ग में आती है। इसलिए कुछ मार्गों ने उसकी बात नहीं की है। जिन्होंने सीधे ही डूबने की बात की उन्होंने उसकी बात नहीं की, क्योंकि उसकी कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन मेरा अपना अनुभव यह है कि वह नहीं सम्भव हो सका। वह कभी एकाध दो लोगों के लिए सम्भव हो सकता है, लेकिन एकाध दो लोगों से कुछ हल नहीं होता है। इसलिए लम्बे रास्ते से ही जाना पड़ेगा। बहुत बार अपने घर पहुँचने के लिए दूसरों के घर के द्वार खटखटाने ही पड़ते हैं। अपने ही घर पहुँचने के लिए। और अपनी ही शकल पहचानने के लिए न मालूम कितनी शकलों को पहचानना पड़ता है। और खुद को प्रेम करने के लिए न मालूम कितने लोगों को प्रेम करना पड़ता है। सीधा तो यही था कि अपने को प्रेम कर लेते। इसमें कौन कठिनाई थी, इसमे कौन बाधा डालता था? उचित तो यही था कि अपने घर में सीधे आ जाते। लेकिन ऐसा नहीं है। असल में जब तक हम दूसरों के घरों में न भटक लें तब तक अपने घर को पहचानना ही मुश्किल होता है। और जब तक हम दूसरों से प्रेम न मांग लें और दूसरों को प्रेम न कर लें तब तक यह पता ही नहीं चलता कि असली सवाल अपने को प्रेम करने का है।

९. कुण्डलिनी साधना—तैयारी शरीर से अशरीर में, आत्मा में प्रवेश की

यह कुण्डलिनी को जो मैंने कहा कि शरीर की तैयारी है, तैयारी है अशरीर में प्रवेश की, आत्मा में प्रवेश की। और तुम्हारी जितनी ऊर्जा अभी जगी है उससे तुम आत्मा में प्रवेश न कर सकोगे। क्योंकि तुम्हारी वह ऊर्जा तुम्हारे रोजमर्रा के काम में पूरी चुक जाती है। बल्कि करीब-करीब उसमें भी पूरी नहीं पड़ती है, उसमें भी हम थक जाते हैं। वह उसमें भी पूरी नहीं पड़ रही है। बहुत मन्द-मन्द जल रही है लौ। इतने से इसको आत्मा तक नहीं ले जाया जा सकता है।

१०. शक्ति बचाने की कंजूसी नहीं वरन् अतिरिक्त शक्ति जगाने का साहस

और इसीलिए सन्यास की वृत्ति पैदा हुई ताकि रोजमर्रा का काम बन्द कर दिया जाय, क्योंकि शक्ति तो इतनी सी है हमारे पास। अब इसको लगाना है किसी और यात्रा पर। तब यह काम बन्द करते हैं, दूकान बन्द करो, बाजार

मत जाओ, नौकरी मत करो। लेकिन मेरा मानना है, वह भ्रान्ति में है। क्योंकि यह जो दो पैसे की शक्ति उसकी इस काम में लग रही है। यह अगर वह किसी तरह बचा भी ले तो बचाने में यह उतनी व्यय हो जायेगी क्योंकि बचाने में भी बड़ी ताकत लगती है। बहुत बार क्रोध करने में उतनी ताकत व्यय नहीं होती है जितनी क्रोध रोकने में व्यय हो जाती है। बहुत बार लड़ने में उतनी व्यय नहीं होती जितनी लड़ने से बचने में व्यय हो जाती है। तो मैं इसको उचित नहीं मानता, यह कंजूस का रास्ता है, यह सन्यास है वह यह कह रहा है कि इतने में ही हम इधर से बचा लेते हैं, उधर से बचा लेते हैं। मेरा मानना है कि कंजूस के रास्ते से नहीं चलेगा। और जगा लो। बहुत है, अनन्त है। बचाते क्यों हो, और जगा लो। और खर्च करती है तो और जगा लो। तुम खर्च कर नहीं सकते इतनी तुम्हारे पास है तो तुम उसे बचाने की फिक्र क्यों करते हो।

अब वह आदमी डर रहा है कि अगर मैंने अपनी पत्नी को प्रेम किया है तो परमात्मा को कैसे प्रेम करूँगा। क्योंकि उसके पास प्रेम की इतनी छोटी-सी तो ऊर्जा है कि इसी में चुक जायेगी। तो वह कह रहा है कि इससे बचा लो। लेकिन अगर इसको बचा भी लिया तो इस बचाने में उसको लड़ना पड़ेगा। लड़ने में शक्ति व्यय होगी। और इतनी छोटी-सी ऊर्जा से जिससे तुमने पत्नी को प्रेम किया था उससे तुम परमात्मा से प्रेम कर पाओगे? उतनी-सी ऊर्जा से पत्नी तक नहीं पहुँच पाये पूरी तरह, तो परमात्मा तक कैसे पहुँच पाओगे। यानी छोटा सा ब्रिज (पुल) जो तुमने बनाया था वह पत्नी तक भी पूरा नहीं पहुँचता था। उसमें भी बीच में ही सीढ़ियाँ चुक जाती थीं। वह वहाँ तक भी सेतु पूरा नहीं बनता था कि तुम उसके हृदय तक भी पहुँच गये हो ठीक। वह भी नहीं हो पाता था। उतनी-सी ऊर्जा बचाकर तुम अनन्त तक सेतु बनाने की सोचने बैठे हो तो पागलपन में पड़ गये हो। उसे बचाने का सवाल नहीं है। (और बहुत ऊर्जा है, उसे जगाने का सवाल है। और इतनी अनन्त ऊर्जा है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। और एक बार वह जगनी शुरू हो जाय तो वह जितनी ही जगती है उतनी ही और जगने की सम्भावना प्रगट होने लगती है। उसका झरना फूटना शुरू हो जाय तो अनन्त है। उसे तुम चुकता नहीं कर सकते कभी। यानी ऐसा कोई क्षण नहीं आ सकता कि जब तुम कह दो कि अब मेरे भीतर जगने को और कुछ भी शेष नहीं रहा।)

जगने की, (Awakening) अनन्त सम्भावना है। जितना भी श्रम जगा सकते हो। और जितना तुम जगाते हो उतना और जगाने के लिए तुम शक्तिशाली होते चले जाते हो। और जब तुम्हारे पास अतिरिक्त होती है,

(Affluence) अन्तरऊर्जा का, तभी तुम उसे उन रास्तो पर खर्च कर सकते हो, जो अनजान हैं। बाहर की दुनिया में भी एफ्लुएंस (Affluence), अतिरेक समृद्धि होती है। एक आदमी के पास अतिरिक्त धन है, अब वह सोचता है कि चलो चाँद की यात्रा कर आयें। हालांकि बेमानी है, चाँद पर कुछ मिलने का नहीं। लेकिन, हर्ज भी कुछ नहीं है, क्योंकि उसका खोने को भी क्या है। उसके पास अतिरिक्त है, वह खो सकता है। जब तक तुम्हारे पास अतिरिक्त नहीं है, उतना ही है जितनी तुम्हें जरूरत है, उससे भी कम है, तब तक तुम इंच-इंच जाँच पड़ताल करके खर्च करोगे। इसलिए तुम ज्ञात की दुनिया से कभी बाहर न हटोगे। अज्ञात में जाने के लिए तुम्हारे पास अतिरेक-ऊर्जा चाहिए। तो कुण्डलिनी की शक्ति तुम्हें अतिरेक-ऊर्जा से भर देगी। और तुम्हारे पास इतनी शक्ति होती है कि तुम्हारे सामने सवाल होता है कि इसको कहाँ खर्च करें।

११. अतिरिक्त जागृत शक्ति को बहाने के लिए नये द्वारों का खुलना

और ध्यान रहे, जिनके पास अतिरिक्त शक्ति होती है, अचानक वे पाते हैं कि उनके जो पुराने द्वार थे वे एकदम बन्द हो गये। क्योंकि उस अतिरिक्त शक्ति को वे बहाने में समर्थ नहीं होते। जैसे कि एक छोटी नदी हो और उसमे पूरा सागर आ गया है। वह नदी मिट जायेगी फौरन। उसको यह पता ही नहीं चलेगा कि वह कहाँ गयी। तो तुम्हारे क्रोध का एक मार्ग था, तुम्हारे सेक्स का एक मार्ग था, वे अचानक खो जायेंगे। जिस दिन अतिरिक्त ऊर्जा जागेगी उस दिन वह सब घाट, सब तट तोड़-फोड़ कर उनको खतम कर देगी। तुम अचानक पाओगे कुछ और ही हो गया, वह सब कहाँ गया जो कल मैं छोटा-छोटा बचा-बचा कर कंजूस की तरह सब चल रहा था, ब्रह्मचर्य साध रहा था और क्रोध दबा रहा था और यह कर रहा था, वह कर रहा था, वह सब अब कहाँ है ? क्योंकि वे नदियाँ न रही थे, नहरें न रहीं। अब तो यह पूरा सागर आ गया। अब इसको खर्च करने का तुम्हारे पास जब उपाय नही है तब अनायास तुम पाते हो कि इसकी दूसरी यात्रा शुरू हो गयी। यात्रा तो होगी ही। वह तो नही रुक सकती है। ऊर्जा बहेगी ही, वह रुक सकती नहीं।

एक बार जगा लेने की बात है। और तब तुम्हारे दैनंदिन के द्वार बेमानी हो जाते हैं। और अनजान अपरिचित द्वार, जो बन्द पड़े हैं, उनमें पहली दफे दरारें पड़ती हैं और उनसे ऊर्जा धक्के देकर बहने लगती है। तो वहाँ तुम्हें अतीन्द्रिय अनुभव शुरू हो जाते हैं। और जैसे ही अतीन्द्रिय द्वार खुलते हैं वैसे तुम्हें अपने शरीर का अशरीरी छोर, जिसको आत्मा कहें उसकी तुम्हें प्रतीति शुरू हो जाती है। कुण्डलिनी तुम्हारे शरीर की तैयारी है अशरीर में प्रवेश के लिए। इस अर्थ में मैंने यह बात कही थी।

१२. कुण्डलिनी शक्ति का आरोहण और अवरोहण

प्रश्नकर्ता : कुण्डलिनी-साधना में कुण्डलिनी के एसेण्ड (Ascend) और डिसेण्ड (Descend) की बात आती है। पहले उसका आरोहण होता है उसके बाद अवरोहण होता है। उसका जो डिसेण्ड (Descend) है क्या यह कुण्ड में डूबना है या और कोई दूसरी बात है? कृपया कुण्डलिनी के (Ascend) और (Descend), आरोहण और अवरोहण को समझायें।

आचार्यश्री : असल में कुण्ड में डूबना जो है वह न तो उतरना है न वह चढ़ना है। कुण्ड में डूबने में तो ये दोनों बातें ही नहीं हैं। वह उतरना-चढ़ना नहीं है, मिट जाना है। समाप्त हो जाना है। बूँद जब सागर में गिरती है, न चढ़ती है न उतरती है। हाँ, बूँद जब सूरज की किरणों में सूखती है तब चढ़ती है आकाश की तरफ। और जब बादल में ठंडक पाकर गिरती है जमीन की तरफ तब उतरती है। लेकिन जब सागर में जाती है तब उतरना चढ़ना नहीं है। डूबना है, मिटना है, मरना है। तो ये जो उतरने चढ़ने की बात है, आरोहण की, अवतरण की यह बहुत दूसरे अर्थों मे है। यह इस अर्थ में है कि कुण्ड से जिस शक्ति को हम उठाते हैं इसे बहुत बार वापिस कुण्ड मे भी भेज देना पड़ता है। इस शक्ति को हम उठाते भी हैं इसे हमें वापिस भी भेज देना पड़ता है बहुत बार। कई कारण हो सकते हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह होता है कि बहुत बार ऐसा होता है कि जितनी शक्ति के लिए तुम तैयार नहीं होते हो झेलने के लिए उतनी शक्ति जग जाती है तब उसे वापिस लौटाना पड़ता है, अन्यथा खतरे हो सकते हैं।

हमारे झेलने की भी क्षमताएँ हैं—सुख झेलने की भी क्षमता है, दुख झेलने की भी क्षमता है, शक्ति झेलने की भी क्षमता है। अगर हमारी क्षमता से बहुत बड़ा आघात हमारे ऊपर हो जाय तो हमारा जो संस्थान है व्यक्तित्व का, वह टूट सकता है। वह हितकर नहीं होगा। इसलिए बहुत बार ऐसी शक्ति उठ आती है जिसको वापिस भेज देना पड़ता है। लेकिन जिस प्रयोग की मैं बात कर रहा हूँ उस प्रयोग में इसकी कोई जरूरत कभी नहीं पड़ेगी। यह प्रयोग पर निर्भर बात है। ऐसे प्रयोग हैं जो तुम्हारे भीतर आकस्मिक रूप से तत्काल (Instantly) शक्ति को जगा देते हैं, जिनको तात्कालिक ज्ञान (Sudden Enlightenment) के प्रयोग कहते हैं। ऐसे प्रयोग में सदा खतरा है। क्योंकि शक्ति इतनी आ सकती है जितनी के लिए तुम तैयार न थे। वोल्टेज (Voltage) इतना हो सकता है कि तुम्हारा बल्ब बुझ जाय, फ्यूज उड़ जाय, तुम्हारा पंखा जल जाय, तुम्हारी मोटर में आग लग जाय। जिस प्रयोग की मैं बात कर रहा हूँ वह प्रयोग तुम्हारे भीतर पहले पात्रता पैदा करता है, पहले शक्ति को नहीं जगाता।

१३. कुण्डलिनी-साधना में दूसरों की सहायता

इसे ऐसे भी समझें कि यदि एक बड़ा बाँध अचानक टूट जाय तो उसके पानी से बड़ा भारी नुकसान हो जायगा। लेकिन उससे नहरें निकाल कर उसी पानी को सुविधानुसार नियन्त्रित रूप से प्रवाहित किया जा सकता है।

एक अद्भुत घटना है कि किशोरावस्था में कृष्णमूर्ति को थियासॉफी के कुछ विशेष लोगों द्वारा कुण्डलिनी की सारी साधनाओं से गुजारा गया। उन पर अनेक प्रयोग किये गये, जिनकी स्पष्ट स्मृति उन्हें न रही। उन्हें बोध नहीं है कि क्या हुआ। उनको तो बोध तभी हुआ जब उस नहर में सागर उतर आया। इसलिए उन्हें तैयारी का कोई भी पता नहीं है। इसलिए वे स्वीकार न करेंगे कि किसी तैयारी की जरूरत है। लेकिन उनपर बड़ी तैयारी की गयी। जैसा कि सम्भवतः पृथ्वी पर पहले किसी आदमी के साथ नहीं की गयी। तैयारियाँ तो बहुत लोगों ने की, लेकिन अपने साथ की। पहली दफा कुछ दूसरे लोगों ने उनके साथ तैयारी की। बिलकुल कर सकते हैं। क्योंकि दूसरे बहुत गहरे में दूसरे नहीं हैं। इधर से जो हमें दूसरे दिखायी पड़ रहे हैं वे इतने दूसरे नहीं हैं। तो वह तैयारी दूसरों ने की और किसी एक बहुत बड़ी घटना के लिए की थी और वह घटना भी चूक गयी। वह घटना थी किसी और बड़ी आत्मा को प्रवेश कराने के लिए। कृष्णमूर्ति को तो सिर्फ एक विहिकल (वाहन) की तरह उपयोग करना था। इसलिए उन्हें तैयार किया था। इसलिए नहर खोदी थी, इसलिए शक्ति को, ऊर्जा को जगाया था। लेकिन वह प्रारम्भिक काम था। कृष्णमूर्ति जो थे वह खुद लक्ष्य नहीं थे उसमें। एक बड़े लक्ष्य के लिए उनका साधन की तरह प्रयोग करना था। किसी और आत्मा को उनके भीतर जगह देने की बात थी। वह नहीं हो सका, क्योंकि जब पानी आ गया तो कृष्णमूर्ति ने साधन बनने से इन्कार कर दिया। इसका डर था, इसका डर सदा है। इसलिए इसका प्रयोग नहीं किया गया था। इसका डर सदा है। क्योंकि जब व्यक्ति उस हालत में आ जाय जब कि वह खुद ही साध्य बन सके तो वह दूसरे के लिए क्यों साधन बनेगा। वह इन्कार कर गये ऐन वक्त पर।

जैसे मैं तुम्हें अपने मकान की चाभी दूँ इसलिए कि कल कोई मेहमान आ रहा है, उसके लिए तुम मकान तैयार करके रखना। लेकिन जब मैं तुम्हें चाभी देकर जाऊँ और तुम मालिक हो जाओ तो कल जब मेहमान आने की बात हो तो तुम इन्कार ही कर दोगे। तुम कह सकते हो कि मालिक तो मैं हूँ। चाभी मेरे पास है। और यह चाभी किन्हीं और ने तैयार की थी। और यह मकान भी किन्हीं और ने बनाया था। इसलिए न तुम्हें बनाने का पता है और न तुम्हें यह चाभी कब ढाली गयी, कैसे ढाली गयी, इसका पता है। लेकिन इस चाभी के मालिक तुम हो और मकान तुम खोलना जानते हो तो बात खत्म हो गयी।

१४. पहले तैयारी—पीछे उपलब्धि

ऐसी घटना घटी है। कुछ लोगों को तैयार किया जा सकता है, कुछ लोग पिछले जन्मों में तैयार हो करके आते हैं। लेकिन वह साधारण मामला नहीं है। साधारणतः तो प्रत्येक को अपने को तैयार करना होता है। और उचित यही है कि ऐसा प्रयोग हो जिसमें तैयारी पहले चलती हो और घटना पीछे घटती हो। तुम्हारी जितनी क्षमता बनती जाती हो उतना जल आता जाता हो। तुम्हारी क्षमता से ज्यादा शक्ति कभी न जग पाये। ऐसे बहुत से प्रयोग थे जिनमें ऐसा हुआ इसलिए बहुत से लोग उन्मादग्रस्त होंगे। पागल हो जायेंगे। धर्म से बहुत बड़ा भय इस तरह के प्रयोगों की वजह से पैदा हुआ था। तो प्रयोग दो तरह के हो सकते हैं। इसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है।

अमरीका में बिजली की जो व्यवस्था की गयी है उसमें उन्होंने जो काम किया है, उसके कई दफे क्या परिणाम हो सकते हैं वह मैं कहता हूँ। इस तरह की स्थिति भीतर भी हो सकती है। उन्होंने यह व्यवस्था की है कि इस गाँव को जितनी बिजली की जरूरत है उससे अगर ज्यादा कोटा (निश्चित हिस्सा) इसके पास है आज और आज रात गाँव में कम बिजली का उपयोग किया जा रहा है तो जितनी बिजली बचे वह दूसरे गाँवों की तरफ आटोमेटिकली (स्वनियन्त्रित रूप से) प्रवाहित हो जाय। अर्थात् इस गाँव के पास कुछ भी अतिरिक्त बिजली न पड़ी रह जाय, वह दूसरे गाँव के काम आ जाय। आज एक फैक्टरी बन्द है जो कल शाम तक चल रही थी। आज बन्द है उसकी हड़ताल हो गयी है। तो जितनी बिजली उसको चाहिए थी वह आज एक गाँव में बेकार पड़ी रहेगी जबकि दूसरे गाँव में हो सकता है बिजली की जरूरत हो और एक फैक्टरी को बिजली न दी जा सके। तो पूरा आटोमेटिक इन्तजाम किया है कि सारे जोन (Zone) की बिजली पूरे वक्त प्रवाहित होती रहेगी दूसरी तरफ, जहाँ भी अतिरिक्त है वह तत्काल दूसरी तरफ बह जायेगी। पिछले तीन चार वर्ष पहले कोई आठ-दस-बारह घण्टे के लिए पूरी बिजली चली गयी अमरीका की। वह इस इन्तजाम में चली गयी। जब एक गाँव की बिजली गयी और वहाँ (Vacuum) शून्य पैदा हुआ तो उल्टा प्रवाह शुरू हो गया। वह जो प्रवाह अतिरिक्त बिजली का था वह सारी बिजली उस तरफ दौड़ी। वह इतने जोर से दौड़ी कि उस गाँव के सारे फ्यूज चले गये और गाँव की मुसीबत हो गयी। और पूरा का पूरा जितना जोन (Zone) का इन्तजाम था वह सबका सब एक दम से खत्म हो गया। और बारह घण्टे के लिए अमरीका बिलकुल कोई दो हजार साल पहले लौट गया। एकदम अन्धकार हो हो गया। जो जहाँ था वह वहाँ अन्धकार में हो गया और सब काम ठप्प हो गया। और उस वक्त पहली दफा उनको पता चला कि हम जिस लिए इन्तजाम करते हैं

उससे उल्टा भी हो सकता है। अगर एक-एक गाँव का अलग-अलग इन्तजाम होता तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। हिन्दुस्तान में ऐसा कभी नहीं हो सकता कि पूरे हिन्दुस्तान की बिजली चली जाय। अमरीका में हो सकता है। क्योंकि वहाँ सबका सब इण्टर-कनेक्टेड (आपस में जुड़ा हुआ) है पूरा का पूरा। और पूरे वक्त धाराएँ एक गाँव से दूसरे गाँव शिफ्ट होती रहेंगी। और कभी भी खतरा हो सकता है।

मनुष्य के भीतर भी ठीक विद्युत् धारा की तरह इन्तजाम है। और ये विद्युत् धाराएँ अगर तुम्हारी क्षमता से ज्यादा तुम्हारी तरफ प्रवाहित हो जायें बड़ा खतरा हो सकता है। और ऐसे इन्तजाम हैं जिनसे वे प्रवाहित हो सकती हैं। जैसे पचास लोग यहाँ बैठे हुए हैं। ऐसे मेथड्स (विधियाँ) हैं कि तुम चाहो तो इन पचास लोगों की सारी विद्युत धारा तुम्हारी तरफ प्रवाहित हो जाय। यह सब पचास लोग यहाँ बिलकुल ही फेंट (मूर्छित) हालत में हो जायेंगे और तुम एकदम ऊर्जा के केन्द्र बन जाओगे। मगर खतरे भी हैं इसमें। क्योंकि धाराएँ इतनी ज्यादा हो सकती हैं कि तुम उसे न झेल पाओ। और इससे उल्टा भी हो सकता है कि जिस मार्ग से विद्युत धारा तुम तक आयी, उसी मार्ग से तुम्हारी भी सारी विद्युत् दूसरी तरफ बह जाय। इन सबके प्रयोग हुए हैं।

वह जो उतरना है वह तुम्हारे भीतर अगर कभी कोई अतिरिक्त मात्रा में शक्ति तुम्हारी ही शक्ति ऊपर चली जाय तो उसे वापस लौटाने की विधियाँ हैं। लेकिन जिस विधि की मैं बात कर रहा हूँ उसमें उनकी कोई जरूरत नहीं है। उसमें कोई प्रयोजन ही नहीं है। तुम्हारे भीतर जितनी पात्रता बनती जायगी उतनी ही तुम्हारे भीतर शक्ति आती जायगी। पहले जगह बनेगी फिर शक्ति आयेगी। इसलिए कभी तुम्हारे पास ऐसा नहीं होगा कि तुम्हें कुछ भी वापस लौटाना पड़े। हाँ, एक दिन तुम खुद ही वापिस लौटोगे, वह दूसरी बात है। एक दिन तुम खुद ही सब जान कर छलाँग लगा जाओगे कुण्ड में, वह दूसरी बात है।

इन शब्दों का और अर्थों में भी प्रयोग हुआ है जैसे कि श्री अरविन्द जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं वह बहुत दूसरा है। दो तरह से हम परमात्म-शक्ति को सोच सकते हैं। या तो अपने से ऊपर, कहीं आकाश में, किसी भी ऊपर के भाव में या अपने से गहरे, पाताल के भाव में। और जहाँ तक जगत की व्यवस्था का सम्बन्ध है ऊपर और नीचे शब्द बेमानी हैं। उनका कोई अर्थ नहीं है। यह सिर्फ हमारे सोचने की धारणाएँ हैं कि हम कैसा सोचते हैं। इस छत को तुम ऊपर कह रहे हो, यह ऊपर नहीं है। क्योंकि यदि हम यहाँ जमीन में छेद करें तो वह जाकर अमेरिका में निकल जायगा। और वहाँ से अगर कोई झाँक कर देखे तो यह छत हमारे नीचे मालूम पड़ेगी। हमारे सिर के नीचे, उस छेद से झाकने पर। हम

उल्टे मालूम पड़ेंगे सब, शीर्षासन करते हुए और यह छत हमारे सिर के नीचे मालूम पड़ेगी। अभी भी वही है वह। हम कहाँ से देखते हैं इस पर सब निर्भर करता है।

जैसे हमारा पूर्व पश्चिम सब झूठा है। क्या पूर्व क्या पश्चिम? और पूर्व चलते जाओ, चलते जाओ तो पश्चिम पहुँच जाओगे और पश्चिम चलते जाओ, चलते जाओ तो पूर्व पहुँच जाओगे। जिस पश्चिम में चलते-चलते पूर्व पहुँच जाते हो उसको पश्चिम कहने का क्या मतलब है? कोई मतलब नहीं है (सापेक्ष), Relative है, Relative का मतलब है कि बेमानी है। इसका मतलब यह है कि कोई मतलब नहीं है उसका। हमारी काम चलाऊ सीमा रेखा है कि यह रहा पूर्व, यह रहा पश्चिम नहीं तो हम कैसे हिसाब बाटेंगे। लेकिन पूर्व किस जगह से शुरू होता है? कलकत्ते से, रंगून से, टोकियो से? कहाँ से पूर्व शुरू होता है? पश्चिम कहाँ से शुरू होता है और कहाँ खतम होता है? न कहीं शुरू होता है, न कहीं खतम होता है। ये काम-चलाऊ ख्याल हैं। जिनमें हमें सुविधा बनती है और हम एक दूसरे को बाँट लेते हैं। ठीक ऐसे ही ऊपर नीचे दूसरे डायमेंशन (आयाम) में काम चलाऊ हैं। पूर्व पश्चिम होरिजंटल (Horizontal), क्षैतिजीय काम चलाऊ बातें हैं और ऊपर नीचे वर्टिकल (Vertical), ऊर्ध्वगत काम चलाऊ बातें हैं। न कुछ ऊपर है, न कुछ नीचे है! क्योंकि इस जगत का कोई छत नहीं है और इस जगत का कोई बॉटम (तलहटी) नहीं है। इसलिए ऊपर नीचे की सब बातें बेमानी हैं। लेकिन यह काम चलाऊ धारणा हमारे धर्म की धारणा में भी घुस जाती है।

कुछ लोग ईश्वर को अनुभव करते हैं अबव (Above), ऊपर तो जब शक्ति आयेगी तो उतरेगी, डिसेंड (Descend) करेगी, हम तक आयेगी। कुछ लोग अनुभव करते हैं ईश्वर को नीचे, रूट्स में, जड़ों में। तो जब शक्ति आयेगी तो चढ़ेगी, उठेगी, हम तक आयेगी। लेकिन कोई मतलब नहीं है। कहाँ हम रखते हैं ईश्वर को, यह सिर्फ काम-चलाऊ बात है। लेकिन इस काम-चलाऊ बात मे भी अगर चुनाव करना हो तो मैं मानता हूँ बजाय उतरने के, उठना ही ज्यादा सहयोगी होगा। बजाय उतरने के शक्ति का तुम्हारे भीतर से उठना ही ज्यादा सहयोगी होगा। उसके कारण है। क्योंकि जब शक्ति के उठने की धारणा तुम पकड़ोगे, तो उठाने का सवाल उठेगा। तब तुम्हें कुछ करना पड़ेगा। और जब उतरने की बात है तो सिर्फ प्रार्थना रह जायेगी और तुम कुछ भी कर न सकोगे। जब ऊपर से नीचे आना है तो हम हाथ जोड़ के प्रार्थना कर सकते हैं। इसलिए दो तरह के धर्म दुनिया में बने, ध्यान करने वाले और प्रार्थना करने वाले।

१५. धर्म के दो आयाम—ध्यान और प्रार्थना

प्रार्थना करने वाले वे धर्म हैं जिन्होंने ईश्वर को ऊपर अनुभव किया है। अब हम कर भी क्या कर सकते हैं, उसको ला तो सकते नहीं। क्योंकि अगर लायें तो उतने ऊपर हमको जाना पड़े, और उतने ऊपर हम जायेंगे भी कैसे? उतने ऊपर जायेंगे तो परमात्मा ही हो जायेंगे हम। वहाँ हम जा नहीं सकते। जहाँ हम खड़े हैं वहाँ हम खड़े रहेंगे। हम चिल्ला कर प्रार्थना कर सकते हैं कि हे पर-मात्मा उतर। लेकिन जिन धर्मों ने और जिन धारणाओं ने इस तरह सोचा कि उठाना है नीचे से, कहीं हमारी ही जड़ों में सोया हुआ है कुछ। और हम ही कुछ करेंगे तो वह उठेगा, तो वह प्रार्थना के धर्म न बनकर फिर ध्यान के धर्म बने। तो मेडीटेशन (ध्यान) में और प्रेयर (प्रार्थना) में इस ऊपर नीचे की धारणा का फर्क है। प्रार्थना करने वाला धर्म ईश्वर को ऊपर मानता है, ध्यान करने वाला धर्म ईश्वर को जड़ों में मानता है, वहाँ से उसको उठाता है। और ध्यान रहे, प्रार्थना करने वाले धर्म धीरे-धीरे हारते जा रहे हैं। खत्म होते जा रहे हैं, उनका कोई भविष्य नही है। ध्यान करने वाले धर्म की सम्भावना रोज प्रगाढ़ होती जा रही है। उसका बहुत भविष्य है।

तो मैं पसन्द करूँगा कि हम समझें कि यात्रा नीचे से ऊपर की है। इसके और भी अर्थ होंगे। धारणा तो सापेक्ष है। इसलिए किसी को ऊपर मानना हो तो मुझे कोई अड़चन नहीं आती। लेकिन मैं मानता हूँ कि आपको अड़चन आयेगी काम करने में। जैसे मैंने कहा कि अगर हम पूर्व की ओर चलते रहे तो पश्चिम पहुँच जाते हैं, फिर भी हमें पश्चिम जाना है तो हम पूर्व की तरफ नहीं चलते। हम पश्चिम की तरफ ही चलते हैं। धारणा बेमानी है। लेकिन फिर भी हमें पश्चिम जाना है तो हम पश्चिम की तरफ ही चलना शुरू करते हैं। हालाँकि पूर्व की तरफ चलें तो चलते-चलते पश्चिम पहुँच जायेंगे, लेकिन वह नाहक लम्बा रास्ता हो जायगा। मेरा मतलब समझे न तुम? तो साधक के लिए और भक्त के लिए फर्क पड़ेगा। भक्त ऊपर मानेगा इसलिए हाथ जोड़कर प्रतीक्षा करेगा और साधक नीचे मानेगा, इसलिए कमर कसकर जगाने की कोशिश करेगा।

और भी अर्थ हैं। जो ख्याल में आ जाने चाहिए। असल में जब हम नीचे मानते हैं परमात्मा को, तो हमारी, जिनको हम निम्न वृत्तियाँ कहते हैं उनमें भी वह मौजूद हो जाता है। इसलिए हमारे चित्त में कुछ भी निम्न नहीं रह जाता। क्योंकि जब परमात्मा ही नीचे है तो जिसको हम निम्नतम कहते हैं वहाँ भी वह मौजूद है। और वहाँ से भी जगेगा। अगर सेक्स है तो वहाँ से भी जगेगा। यानी ऐसी कोई जगह ही नहीं हो सकती, जहाँ वह न हो। नीचे-से-नीचे, नरक में भी अगर कहीं कुछ है कोई तो वहाँ भी वह मौजूद है। लेकिन जैसे ही हम उसे

ऊपर मानते हैं तो कंडेमनेशन (निन्दा) शुरू हो जाता है। जो नीचे है वह कंडेम्ड (Condemned), निंदित हो जाता है। उसकी निन्दा शुरू हो जाती है, क्योंकि वहाँ परमात्मा नहीं है। और अनजाने स्वयं की भी हीनता शुरू हो जाती है कि हम नीचे हैं और वह ऊपर है। तो उसके मनोवैज्ञानिक घातक परिणाम हैं।

१६. ध्यान वाला धर्म अधिक प्रभावकारी

जितनी शक्ति से खड़े होना हो, उतना उचित है कि शक्ति नीचे से आये। क्योंकि वह तुम्हारे पैरों को मजबूत करेगी। शक्ति ऊपर से आये तो तुम्हारे सिर को स्पर्श करेगी। और तुम्हारी जड़ों तक जाना चाहिए मामला। और जब ऊपर से आयेगी तो तुम्हें हमेशा विजातीय फॉरेन (Foreign) मालूम पड़ेगी। इसलिए जिन लोगों ने प्रार्थना की वह कभी नहीं मान पाते कि भगवान् और हम एक हैं। मुसलमानों का निरन्तर सख्त विरोध रहा कि कोई कहे कि मैं भगवान हूँ। क्योंकि कहाँ वह ऊपर है और कहाँ हम नीचे। इसलिए वह मंसूर का गला काट देंगे। सरमत को मार डालेंगे। क्योंकि सबसे बड़ा कुफ्र एक ही है उनकी नजर में कि तुम कह रहे हो कि हम भगवान हैं। क्योंकि कहाँ वह ऊपर और कहाँ तुम जमीन पर सरकते, कीड़े-मकोड़े ! तुम उसके साथ अपनी आइडेन्टिटी (तादात्म्य) नहीं जोड़ सकते। तो उसका कारण था क्योंकि जब हम उसको ऊपर मानेंगे और अपने को नीचे मानेंगे तो हम दो हो जायेंगे तत्काल। इसलिए सूफी कभी पसन्द नहीं पड़ सके इस्लाम को। क्योंकि सूफी दावा कर रहे हैं इस बात का कि हम और वे एक हैं। लेकिन हम और वे एक तभी हो सकते हैं जब वह नीचे से आता हो। क्योंकि हम नीचे हैं। जब वह जमीन से ही आता हो, आकाश से नहीं, तभी हम और वह एक हो सकते हैं।

जैसे ही हम परमात्मा को ऊपर रखेंगे, पृथ्वी का जीवन निन्दित हो जायगा। और जन्म लेना पाप का फल हो जायगा। और जैसे ही हम उसे नीचे रखेंगे वैसे ही पृथ्वी का जीवन एक आनन्द हो जायगा। वह पाप का फल नहीं, वह परमात्मा की अनुकम्पा हो जायगा। और प्रत्येक चीज चाहे वह कितनी ही अँधेरी हो उसमें भी उसकी प्रकाश की किरण मौजूद अनुभव होगी। और कैसा ही बुरा-से-बुरा आदमी हो, कितना ही शैतान हो फिर भी उसके अन्तरतम कोर पर वह मौजूद रहेगा।

इसलिए मैं पसन्द करूँगा कि हम उसे नीचे से ऊपर की तरफ उठना मानें। फर्क नहीं है इन धारणाओं में। जो जानता है उसके लिए कोई फर्क नहीं है। वह कहेगा ऊपर नीचे दोनों बेकार की बातें हैं। लेकिन जब हम नहीं जानते हैं और यात्रा करनी है तो उचित होगा कि हम वही मानें जिससे यात्रा आसान हो

सकती है। इसलिए मेरे मन में तो साधक के लिए उचित तो यही है कि वह समझे कि नीचे से शक्ति उठेगी और ऊपर की तरफ जायेगी। ऊपर की तरफ यात्रा है।

इसलिए जिन्होंने ऊपर की तरफ की यात्रा को स्वीकार किया है उन्होंने अग्नि को परमात्मा का प्रतीक माना है। क्योंकि वह निरन्तर ऊपर की तरफ जा रही है। इसलिए अग्नि जो है वह बहुत गहनतम मन में हमारे परमात्मा का प्रतीक बन गयी है। उसका कुल कारण इतना था कि कुछ भी करो वह ऊपर की तरफ ही जाती है। ऊपर बढ़ती है और थोड़ी देर में खो जाती है। थोड़ी दूर तक दिखायी पड़ती है, फिर अदृश्य हो जाती है। ऐसा ही साधक भी ऊपर की तरफ जायगा। थोड़ी देर तक दिखायी पड़ेगा और अदृश्य हो जायगा। इसलिए मैं अवतरण नहीं आरोहण पर और जोर देना पसन्द करूँगा।

प्रश्नकर्ता : नारगोल शिविर में आपने कहा है कि तीव्र श्वास-प्रश्वास और 'मैं कौन हूँ', पूछने के प्रयत्न से अपने को पूरा थका डालना है ताकि गहरे ध्यान में प्रवेश सम्भव हो सके। लेकिन ध्यान में प्रवेश के लिए अतिरिक्त ऊर्जा चाहिए तो थकान की ऊर्जा-क्षीणता से ध्यान में प्रवेश कैसे सम्भव होगा ?

१७. ध्यान-प्रयोग में बहिर् इन्द्रियों का थकान और अंतः इन्द्रियों का क्रियाशील होना

आचार्यश्री : ध्यान का मतलब ऊर्जा हीनता नही है। असल में जब तुम अपने को थका डालते हो, 'अपने' से मतलब क्या ? 'अपने' से मतलब तुम्हारे वे द्वार-दरवाजे, तुम्हारी वे इन्द्रियाँ जिनसे तुम्हारी ऊर्जा के बहने का दैनिक क्रम है। उस तुम की बात नहीं कर रहा हूँ, जो तुम हो सकते हो। बात कर रहा हूँ उसकी जो तुम हो। तो जब तुम अपने को थका डालते हो तो दोहरी घटनाएं घटती हैं। इधर तुम अपने को थका डालते हो तो तुम्हारी सारी इन्द्रियाँ, तुम्हारा मन, तुम्हारा शरीर थक जाता है। और किसी तरह की ऊर्जा को वहन करने के लिए तैयार नहीं होता, इन्कार कर देता है। थकान में तुम किसी तरह की ऊर्जा को वहन करने की तैयारी नहीं दिखलाते। तुम कहते हो कि अभी मैं थका हूँ। तो एक तरफ तो यह प्रयोग तुम्हारे शरीर को, तुम्हारे मन को, तुम्हारी इन्द्रियों को, थकाता है और दूसरी तरफ तुम्हारी कुण्डलिनी पर चोट करता है। वहाँ से ऊर्जा जगती है और यहाँ से तुम थकते हो। यह दोनों एक साथ चलता है। इधर से तुम थकते हो, उधर से शक्ति जगती है और शक्ति को वहन करने के योग्य भी तुम नहीं रहते हो ! तुम्हारी आँख देखना चाहे तो कहती है, थकी हूँ। देखने का मन नहीं। तुम्हारा मन सोचने का है तो मन कहता है थका हूँ।

सोचने का मेरा मन नहीं। तुम्हारे पैर चलना चाहें तो पैर कहते हैं कि हम थके हैं, चल नहीं सकते। अब अगर चलना है तो बिना पैरों की कोई यात्रा तुम्हारे भीतर करनी पड़ेगी और अगर देखना है तो बिना आँखों के देखना पड़ेगा। क्योंकि आँख थकी है।

तो तुम्हारा संस्थान, तुम्हारा व्यक्तित्व थक जाता है। तो वह इन्कार करता है कि हमें अभी कुछ करना नहीं है। और शक्ति जग गयी है जो कुछ करना चाहती है तो तत्काल वह उन दरवाजों पर चोट करेगी जो अनथके पड़े हैं। जो थके हुए नहीं हैं। जो तुम्हारे भीतर सदा ग्रहण करने के लिए तैयार हैं लेकिन कभी उनको मौका ही नहीं मिला था, तुम्हीं खुद इतने सशक्त थे कि तुम सारी शक्ति को बहिर इन्द्रियों में लगा डालते थे। ध्यान में थके ये दरवाजे इन्कार करेंगे कि क्षमा करो, इधर नहीं। वह जो शक्ति जग रही है, तो ये दरवाजे कहेंगे कि नहीं हमारी कोई इच्छा देखने की नहीं है। तो जब देखने को आँख इन्कार कर दे और मन देखने की इच्छा से इन्कार कर दे तब भी जो शक्ति जग गयी है देखने की, उसका क्या होगा? तो तुम किसी और आयाम में देखना शुरू कर दोगे। वह तुम्हारा बिलकुल नया हिस्सा होगा। कोई साइकिक सेण्टर तुम्हारे देखने के खुलने शुरू हो जायेंगे। तुम कुछ ऐसी चीजें देखने लगोगे जो तुमने कभी नहीं देखी। और ऐसी जगह से देखने लगोगे जहाँ से तुमने कभी नहीं देखी। लेकिन उसको तो कभी मौका नहीं मिला था तुम्हारे भीतर। तो उसके लिए मौका बनेगा।

१८. अतीन्द्रिय केन्द्रों का सक्रिय होना

तो थकाने का मेरा जोर है। इधर शरीर को थका डालना है, मन को थका डालना है, 'तुम जो हो' उसको थका डालना है। ताकि तुम जो अभी हो लेकिन तुम्हें पता नहीं, वह सक्रिय हो सके तुम्हारे भीतर। और ऊर्जा जगेगी तो वह कहेगी काम चाहिए। और काम तुम्हारे अस्तित्व को देना पड़ेगा उसे। वह खुद काम खोज लेगी। तुम्हारे कान थके हैं तो भी वह ऊर्जा जग गयी है तो वह सुनना चाहेगी तो वह नाद सुनेगी। उन नादों के लिए तुम्हारे कान की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारी आँखों की कोई जरूरत नहीं, ऐसा प्रकाश देखेगी। ऐसी सुगन्ध आने लगेगी जिसके लिए तुम्हारी नाक की कोई जरूरत नहीं है। तो तुम्हारे भीतर सूक्ष्मतर इन्द्रियाँ या अतीन्द्रियाँ जो भी नाम हम देना पसन्द करें वह सक्रिय हो जायेंगी। और हमारी सब इन्द्रियों के साथ एक-एक अतीन्द्रिय का जोड़ है। तुम्हारा एक कान तो वह है जो बाहर से सुनता है और एक कान और है तुम्हारे भीतर जो भीतर सुनता है। लेकिन उसको तो कभी मौका नहीं मिला। तो जब तुम्हारा बाहर का कान थका है और ऊर्जा जग कर कान के पास

आ गयी है और कान कहता है मुझे सुनना नही है, सुनने की कोई इच्छा ही नहीं है तब ऊर्जा क्या करेगी ? वह तुम्हारे उस दूसरे कान को सक्रिय कर देगी जो सुन सकेगा, जिसने कभी नहीं सुना । इसलिए ऐसी चीजें तुम सुनोगे, ऐसी चीजें देखोगे कि तुम किसी से कहोगे तो वह कहेगा पागल हो ! ऐसा कहीं होता है ? किसी वहम में पड़ गये होगे, कोई सपना देख लिया होगा, लेकिन तुम्हें तो वह इतना स्पष्ट मालूम पड़ेगा जितना कि बाहर की वीणा कभी मालूम नहीं पड़ी । वह भीतर की वीणा इतनी स्पष्ट होगी कि तुम कहोगे कि हम कैसे मानें । अगर यह झूठ है तो बाहर की वीणा का क्या होगा, वह तो बिलकुल ही झूठ हो जायेगी ।

तो तुम्हारी इन्द्रियों का थकना तुम्हारे अस्तित्व के नये द्वारो को खुलने के लिए प्रारम्भिक रूप से जरूरी है । एक दफा खुल जाय, फिर तो कोई बात नही । क्योंकि फिर तो तुम्हारे पास तुलना होती है कि अगर देखना ही है तो फिर भीतर ही देखो । इतना आनन्दपूर्ण है कि क्यों फिजूल बाहर देखता रहूँ । लेकिन अभी तुलना नहीं है तुम्हारे पास । अभी देखना है तो बाहर ही देखना है । एक ही विकल्प है । एक बार तुम्हारी भीतर की आँख भी देखने लगे तब तुम्हारे सामने विकल्प साफ है । तो जब भी देखने का मन होगा तुम भीतर देखना चाहोगे । क्यों मौका चूकना । बाहर देखने से क्या मतलब है !

राबिया के जीवन मे उल्लेख है कि साँझ को सूरज ढल रहा है और वह अन्दर अपने झोपड़े मे बैठी है । हसन नाम का फकीर उससे मिलने आया है । सूरज ढल रहा है और बड़ी सुन्दर साँझ है । तो हसन उससे चिल्ला कर कहता है कि राबिया तू क्या कर रही है भीतर । बहुत सुन्दर साँझ है । इतना सुन्दर सूर्यास्त मैंने कभी देखा नहीं । ऐसा सूर्य दोबारा देखने को नहीं मिलेगा । बाहर आ । तो राबिया उससे कहती है कि पागल कब तक बाहर के सूर्य को देखता रहेगा । मैं तुझसे कहती हूँ तू भीतर आ, क्योंकि हम उसे देख रहे हैं जिसने सूर्य को बनाया है । और हम ऐसे सूर्य देख रहे हैं जो अभी अनबने हैं और कभी बनेंगे । तो अच्छा हो कि तू भीतर आ । हसन नही समझ पाया कि वह क्या कह रही है । अब यह औरत बहुत अद्भुत हुई है । दुनिया में जिन स्त्रियों ने कुछ किया है उन दो चार स्त्रियों में वह एक है राबिया । पर हसन नही समझ पाया वह उससे फिर कह रहा है देख, साँझ चूकी जा रही है । और राबिया कह रही है, पागल तू साँझ में ही चूक जायगा । इधर भीतर बहुत कुछ चूका जा रहा है । वह बिलकुल दो तल पर बात हो रही है क्योंकि वह दो अलग इन्द्रियों की बात हो रही है । लेकिन अगर दूसरी इन्द्रिय का तुम्हे पता नहीं तो भीतर का कोई मतलब ही नही होता, बाहर से ही सब मतलब होता है । इस अर्थ में मैंने कहा कि वह थक जायें तो शुभ है ।

१९. प्रथम तीन चरण थकान के नहीं वरन् ऊर्जा जागरण के हैं

प्रश्नकर्ता : तो इस प्रयोग में थकाने का अर्थ ऊर्जा-हीनता नहीं है।

आचार्यश्री : नहीं, बिलकुल नहीं। ऊर्जा तो जग रही है। ऊर्जा को जगाने के लिए ही सारा काम चल रहा है। हाँ, इन्द्रियाँ थक रही हैं। इन्द्रियाँ ऊर्जा नहीं हैं, सिर्फ ऊर्जा के बहने के द्वार हैं। यह दरवाजा मैं नहीं हूँ, मैं तो और हूँ। इस दरवाजे से बाहर-भीतर आता-जाता हूँ। दरवाजा थक रहा है और दरवाजा कह रहा है कि कृपा करके हमसे बाहर मत जाओ। बहुत थके हुए हैं। क्योंकि तुम जाओगे तो हमें फिर काम में लगना पड़ेगा। आँख कह रही है कि हम थक गये हैं, अब इधर से यात्रा मत करो। इन्द्रियाँ थक रही हैं। इनका थकना प्राथमिक रूप से बड़ा सहयोगी है।

२०. ध्यान-प्रयोग में थकान का कारण—शरीर और इन्द्रियों से तादात्म्य

प्रश्नकर्ता : यदि ऊर्जा जग रही है तो थकान नहीं लगनी चाहिए, ताजगी लगनी चाहिए। लेकिन सामान्यतया थकान ही लगती है। इसका क्या कारण है ?

आचार्यश्री : शुरू में लगेगी। धीरे-धीरे तो तुम्हें बहुत ताजगी लगेगी, जैसी ताजगी तुमने कभी नहीं जानी। लेकिन शुरू में थकान लगेगी। शुरू में थकान इसलिए लगेगी कि तुम्हारी आइडेन्टिटी (तादात्म्य) इन इन्द्रियों से है। इन्हीं को तुम समझते हो 'मैं'। जब इन्द्रियाँ थकती हैं तो तुम कहते हो मैं थक गया। इससे तुम्हारी आइडेण्टिटी टूटनी चाहिए न। ऐसा मामला है कि तुम्हारा घोड़ा थक गया, तुम घोड़े पर बैठे हो। लेकिन, तुम सदा से समझते थे कि मैं घोड़ा हूँ। अब घोड़ा थक गया। अब तुमने कहा, हम मरे, हम थक गये। हमारी आइडेण्टिटी जिससे है उसका ही थकना हम जानते हैं। मैं घोड़ा हूँ, तो मैं थक गया। जिस दिन तुम जानोगे कि मैं घोड़ा नहीं हूँ उस दिन तुम्हारी फ्रेशनेस (ताजगी) बहुत और तरह से आनी शुरू होगी। और तब तुम जानोगे कि इन्द्रियाँ थक गयी हैं, लेकिन मैं कहाँ थका। बल्कि इन्द्रियाँ चूँकि थक गयी हैं और काम नहीं कर रही हैं। इसलिए बहुत सी ऊर्जा जो उनसे विकीर्ण होकर व्यर्थ हो जाती थी वह तुम्हारे भीतर संरक्षित हो गयी है, और पुंज बन गयी है। और तुम ज्यादा, जिसको कहना चाहिए 'कन्जर्वेशन ऑफ एनर्जी' (Conservation of Energy) ऊर्जा-संचय का अनुभव करोगे कि तुमने बहुत-सी ऊर्जा बचायी जो तुम्हारी सम्पत्ति बन गयी है। और चूँकि बाहर नहीं गयी इसलिए तुम्हारे रोएं-रोएं, पोए-पोए में भीतर फैल गयी है। लेकिन शरीर व इन्द्रियों से तुम एक नहीं हो, यह तुम्हें जब ख्याल आना शुरू होगा तभी तुम्हें फर्क लगेगा।

२१. ध्यान से ताजगी

तो धीरे-धीरे ध्यान के बाद बहुत ही ताजगी मालूम होगी। ताजगी कहनी गलत है, तुम ताजगी हो जाओगे। ऐसा नहीं कि लगेगा कि ताजगी मालूम हो रही है। तुम ताजगी हो जाओगे। (You will be the freshness) लेकिन वह तो आइडेण्टिटी बदलेगी तब। अभी तो घोड़े पर बैठे हो। बहुत मुश्किल से जिन्दगी भर यही समझा है कि मैं घोड़ा हूँ। सवार हूँ। इसको समझने में वक्त लगेगा। शायद घोड़ा थक के गिर पड़े तो आसानी हो जाये तुम्हें। अपने पैर पर चलना पड़े थोड़ा तो पता चले कि मैं तो अलग हूँ। लेकिन घोड़े पर चलते-चलते ख्याल ही भूल गया है कि मैं भी चल सकता हूँ। इसलिए थकेगा घोड़ा तो अच्छा होगा।

८. प्रश्नोत्तर

बम्बई, प्रातः, दिनांक २ जुलाई, १९७०

●

व्यक्तित्व में क्रांति और श्वास की कीमिया

प्रश्नकर्ता : आचार्यश्री, रूस के बहुत बड़े अध्यात्मविद् और मिस्टिक जार्ज गुरजिएफ ने अपनी आध्यात्मिक खोज-यात्रा के संस्मरण 'Meetings with the Remarkable Men' नामक पुस्तक में लिखे हैं। एक दरवेश फकीर से उनकी काफी चर्चा योग के प्राणायाम व आसनों के सम्बन्ध में हुई जिससे वे बड़े प्रभावित भी हुए। दरवेश ने उन्हें किसी भी प्रकार के श्वास के अभ्यास को न करने का सुझाव दिया। दरवेश का कहना था कि प्राकृतिक श्वास-प्रणाली में कुछ भी परिवर्तन करने से सारा व्यक्तित्व अस्त-व्यस्त हो जाता है और उसके घातक परिणाम होते हैं। आपका इस कथन पर क्या मत है?

आचार्यश्री : जो वे कह रहे हैं प्राणायाम और कृत्रिम श्वास के लिए, उसमें कुछ बातें सच हैं। असल में ऐसा कोई असत्य नहीं होता जिसमें कि कुछ सत्य न हो। होता ही नहीं। वह जो उसमें सत्य होता है वही प्रभाव लाता है और उसके साथ जो असत्य है वह भी सरक जाता है। अब इसमें बहुत सचाई है कि जहां तक बने, साधारणतः जीवन का जो सहज क्रम है उसमें बाधा नहीं डालनी चाहिए। नहीं तो उपद्रव होने का डर है। तो जो व्यवस्था चल रही है सहज आपकी श्वास की, उठने की, बैठने की, चलने की, जहां तक बने उसमें बाधा नहीं डालना उचित है, क्योंकि बाधा डालने से ही परिवर्तन शुरू होंगे।

तो यह ध्यान रहे कि हानि भी एक परिवर्तन है और लाभ भी एक परिवर्तन

है। दोनों ही परिवर्तन हैं। तो आप जैसे हैं अगर ऐसे ही रहना है तब तो कुछ भी छेड़छाड़ करनी उचित नहीं है लेकिन अगर जाना है कहीं भी, कोई भी परिवर्तन करना है, कोई भी ट्रांसफार्मेशन (Transformation), रूपान्तर करना है तो हानि का खतरा लेना पड़ेगा। वह जो हानि का खतरा है, कि आपकी जो श्वास चल रही है अभी अगर इसको और व्यवस्था दी जाय तो आपके पूरे व्यक्तित्व में अन्तर पड़ेगा। लेकिन अगर आप अपने व्यक्तित्व से राजी हैं और सोचते हैं कि जैसा है ठीक है तब तो उचित है। लेकिन अगर आप सोचते हैं कि यह व्यक्तित्व पर्याप्त नहीं मालूम होता है तो अन्तर करने पड़ेंगे।

१. श्वसन-प्रक्रिया में परिवर्तन से व्यक्तित्व में रूपान्तरण

और तब श्वास का अन्तर सबसे कीमती बात है। और जैसे ही श्वास पर आप अन्तर करेंगे वैसे ही आपके भीतर बहुत सी चीजें टूटनी और बहुत-सी नयी चीजें बननी शुरू हो जायेंगी। अब हजारों प्रयोग के बाद यह तय किया गया है कि श्वास के किस प्रयोग से कौन-सी चीजें बनेंगी, कौन-सी टूटेंगी और यह अब करीब करीब सुनिश्चित बात हो गयी है। जैसे, कुछ तो हम सबके अनुभव में भी होता है। जैसे, जब आप क्रोध में होते हैं तो श्वास बदल जाती है। वह वैसी नहीं रहती है, जैसी थी। अगर कभी बहुत ही साइलेन्स, मौन के अनुभव होंगे तो भी श्वास बदल जायेगी। वह वैसी नहीं रहेगी। जैसी थी। अगर आपको पता चल गया है कि साइलेन्स, मौन में श्वास कैसी हो जाती है तो आप अगर वैसी श्वास कर सकें तो साइलेंस पैदा हो जायगी। ये दोनों इन्टर कनेक्टेड, अन्तर सम्बन्धित हैं।

२. अशान्त श्वास—उत्तेजित चित्त

जब मन कामातुर होगा तो श्वास बदल जायेगी। अगर मन कामातुर हो और आप श्वास को न बदलने दें तो फौरन पायेंगे कि कामातुरता विदा हो गयी। वह काम विलीन हो जायेगा, टिक नहीं सकता। क्योंकि शरीर के मैकेनिज्म में सारी चीजों में तारतम्य होना चाहिए, तभी कुछ हो सकता है। अगर क्रोध जोर से आ रहा है और उस वक्त आप श्वास धीमी लेने लगें तो क्रोध टिक नहीं सकता। क्योंकि श्वास में उसको टिकने की जगह नहीं मिलेगी।

३. श्वास और मन के वैज्ञानिक नियम

तो श्वास के जो अन्तर हैं वे बड़े कीमती हैं। और श्वास के अन्तर से आपके मन का अन्तर पड़ना शुरू हो जायगा। और अब साफ हो चुका है और बहुत वैज्ञानिक रूप से साफ हो चुका है कि श्वास की कौन-सी गति पर मन की क्या गति होगी तब खतरे नहीं हैं। खतरे थे उनको जिन्होंने प्रारम्भिक प्रयोग किये।

खतरा आज भी है उसको जो जीवन की किसी भी दिशा में प्रारम्भिक प्रयोग करता है। लेकिन जब प्रयोग से चीजें साफ हो जाती हैं तो वे वैज्ञानिक हो जातीं हैं। जैसे यह असम्भव है कि एक आदमी श्वास को शान्त रखे और क्रोध कर ले। ये दोनों बातें एक साथ नहीं घट सकतीं। इससे उल्टा भी सम्भव है कि अगर आप उसी तरह की श्वास लेने लगें जैसे आप क्रोध में लेते हैं तो थोड़ी देर में आप पायेंगे कि आपके भीतर क्रोध जग गया। श्वास के अनेक नियमों को जानकर प्राणायाम ने आपके चित्त के परिवर्तन के लिए बहुत से उपाय खोजे हैं।

४. अप्राकृतिक श्वास और प्राकृतिक श्वास

दूसरी बात यह है कि जिसको हम कह रहे हैं कृत्रिम श्वास (Artificial Breathing) आर्टिफिशियल ब्रीदिंग और जिसको हम सहज श्वास (Natural Breathing) कह रहे हैं, यह फासला भी समझने जैसा है। जिसको आप नेचरल (सहज) कह रहे हैं वह भी बिलकुल नेचरल नहीं है, बल्कि बहुत ठीक से समझा जाय तो वह ऐसी आर्टिफिशियल ब्रीदिंग (कृत्रिम श्वास) है जिसके आप आदी हो गये हैं। जिसको आप बहुत दिन से कर रहे हैं इसलिए आदी हो गये हैं। बचपन से कर रहे हैं इसलिए आदी हो गये हैं। आपको पता नहीं है कि नेचरल ब्रीदिंग क्या है ? इसलिए दिन भर आप एक तरह से ही लेते हैं श्वास, रात में आप दूसरी तरह से लेते हैं। क्योंकि दिन में जो ली थी श्वास वह आर्टिफिशियल थी इसलिए रात में नेचरल शुरू होती है जो कि आप की हैबिट (आदत) के बाहर है।

तो रात की ही श्वास की प्रक्रिया ज्यादा स्वाभाविक है बजाय दिन के। दिन में तो हमने आदत डाली है ब्रीदिंग की और आदत के हमारे कई कारण हैं। जब आप भीड़ में चलते हैं तब आप एहसास करें, जब आप अकेले में बैठते हैं तब आप एहसास करें, तब आप पायेंगे कि आपकी ब्रीदिंग बदल गयी। भीड़ में आप और तरह की श्वास लेते हैं, अकेले में और तरह की। क्योंकि भीड़ में आप टेन्श (तने हुए) होते हैं। चारों तरफ लोग हैं तो आपकी ब्रीदिंग (श्वास-प्रश्वास) छोटी हो जायगी। ऊपर से जल्दी लौट जायेगी। पूरी तरह गहरी नहीं होगी। जब आप आराम से बैठे हैं, अकेले हैं तो वह पूरी गहरी होगी। इसलिए रात जब आप सो गये हैं तो वह पूरी गहरी हो जाती है।

५. निर्दोष चित्त—पेट से श्वास लेना

तो जिसको हम कह रहे हैं नेचरल वह नेचरल नहीं है सिर्फ कण्डीशण्ड आर्टिफिशियल (संस्कारित-कृत्रिम) है, निश्चित हो गयी है, आदत हो गयी है। इसलिए बच्चे एक तरह से ब्रीदिंग ले रहे हैं। अगर बच्चे को सुलायें तो आप

पायेंगे कि उसका पेट हिल रहा है और आप ब्रीदिंग ले रहे हैं तो छाती हिल रही है। बच्चा नेचरल ब्रीदिंग ले रहा है। अगर बच्चा जिस ढंग से श्वास ले रहा है, आप लें तो आपके मन में वही स्थितियां पैदा होनी शुरू हो जायेंगी जो बच्चे की हैं। उतनी इनोसेंस (निर्दोषता) आनी शुरू हो जायगी जितनी बच्चे की। या अगर आप इनोसेंट (निर्दोष) हो जायेंगे तो आपकी ब्रीदिंग पेट से शुरू हो जायगी।

इसलिए जापान में और चीन में बुद्ध की जो मूर्तियां उन्होंने भिन्न बनायी हैं, वे हिन्दुस्तानी मूर्तियों से भिन्न हैं। हिन्दुस्तान में बुद्ध का पेट छोटा है, जापानी और चीनी मुल्कों में बुद्ध का पेट बड़ा है। छाती छोटी है। हमें बेहूदी लगती हैं कि बेडौल कर दिया है। लेकिन वही ठीक है। क्योंकि बुद्ध जैसा शान्त आदमी जब श्वास लेगा तो वह पेट से ही लेगा। उतना इनोसेन्ट (निर्दोष) आदमी छाती से श्वास नहीं ले सकता। इसलिए पेट बड़ा हो जायगा वह प्रतीक है। उतना बड़ा न भी रहा हो, लेकिन वह बड़ा ही डिपिक्ट (Depict), चित्रित किया जायगा। उसका कारण है कि वह जो श्वास ले रहा है वह पेट से ले रहा है। वह छोटे बच्चे की तरह हो गया है। तो जब हमें यह ख्याल में साफ हो गया हो तो नेचरल ब्रीदिंग की तरफ हमें कदम उठाने चाहिए।

हमारी ब्रीदिंग आर्टिफिशियल है। वह दरवेश गलत कह रहा है कि आप आर्टिफिशियल ब्रीदिंग मत करें। आर्टिफिशियल ब्रीदिंग हम कर ही रहे हैं। तो जैसे ही हमें समझ बढ़ेगी और नेचरल ब्रीदिंग की तरफ कदम उठेंगे तो जितनी नेचरल ब्रीदिंग हो जायगी उतनी ही जीवन की अधिकतम सम्भावना हमारे भीतर से प्रगट होनी शुरू हो जायगी।

६. जहां लाभ—वहां हानि के खतरे भी

और यह भी समझने जैसा है कि कभी-कभी एकदम आकस्मिक रूप से अप्राकृतिक ब्रीदिंग करने के भी बहुत फायदे हैं। और एक बात तो बहुत साफ ही है कि जहां बहुत फायदे हैं वहीं बहुत हानियां हैं। एक आदमी दुकानदारी कर रहा है तो जितनी हानियां हैं उतने फायदे हैं। एक आदमी जुआ खेल रहा है तो जितने फायदे है उतनी हानियां हैं। क्योंकि फायदा और हानि का अनुपात तो वही होने वाला है। तो वह बात तो बहुत ठीक कह रहा है कि बहुत खतरे हैं। लेकिन आधी बात कह रहा है। बहुत सम्भावनाएं भी हैं वहां। वह जुआरी का दाव है। तो अगर हम कभी किसी क्षण में थोड़ी देर के लिए बिलकुल ही अस्वाभाविक, अस्वाभाविक इस अर्थों में कि जिसको हमने नहीं की है अभी तक, इस तरह की ब्रीदिंग करें तो हमें अपने ही भीतर नयी स्थितियों का पता चलना शुरू होगा। उन स्थितियों में हम पागल भी हो सकते हैं और उन स्थितियों में

हम मुक्त भी हो सकते हैं। विक्षिप्त हो भी सकते हैं, विमुक्त भी हो सकते हैं। और चूँकि उस स्थिति को हम ही पैदा कर रहे हैं इसलिए किसी भी क्षण उसे रोका जा सकता है। इसलिए खतरा नहीं है। खतरे का डर तब है जब कि आप रोक न सकें। जब आपने ही पैदा किया है तब आप तत्काल रोक सकते है। और आपको प्रतिपल अनुभव होता है कि आप किस तरफ जा रहे हैं। आप आनन्द की तरफ जा रहे है कि दुख की तरफ जा रहे हैं, खतरे में जा रहे हैं कि शान्ति में जा रहे हैं। वह आपको बहुत साफ एक-एक कदम पर मालूम पड़ेंगे।

७. अजनबी स्थिति की मूर्छा पर चोट

और जब बिलकुल ही आकस्मिक रूप से, तेजी से ब्रीदिंग बदली जाय तो आपके भीतर पूरी-की-पूरी स्थिति बदलती है एकदम से। जो हमारी सुनिश्चित आदत हो गयी है श्वास लेने की उसमें हमें कभी पता नहीं चल सकता है कि मैं शरीर से अलग हूँ। उसमें सेतु बन गया है, ब्रिज बन गया है। शरीर और आत्मा के बीच श्वास की एक निश्चित आदत ने एक ब्रिज बना दिया है। उसके हम आदी हो गये हैं। नही तो मामला ऐसा ही है जैसे आप रोज अपने घर जाते हैं और कार का आप व्हील घुमा लेते है। आपको कभी नही सोचना पड़ता है, न विचार करना पड़ता है आप अपने घर पर जाकर खड़े हो जाते हैं। लेकिन अचानक ऐसा हो कि व्हील आप दायें घुमायें और बायें मुड़ जायें, जो रास्ता रोज आपका था अचानक आप पायें कि वह रास्ता आज पूरा का पूरा घूम गया है और दूसरा रास्ता उसकी जगह आ गया है। तब एक स्ट्रेंजनेस (Strangeness), अजनबीपन, आश्चर्य की हालत में आप पहुँचेंगे और पहली दफा आप होश से भर जायेंगे। किसी भी चीज का अजनबीपन आपकी मूर्छा को तोड़ देता है तत्काल। व्यवस्थित दुनिया, जहाँ सब रोज वही हुआ है वहाँ आपकी मूर्छा कभी नहीं टूटती। आपकी मूर्छा टूटती है वहाँ जहाँ अचानक कुछ हो जाता है।

जैसे कि मैं बोल रहा हूँ। इसमें आपकी मूर्छा नहीं टूटेगी। अचानक आप पायें कि यह टेबल बोलने लगी है तो यहाँ एक आदमी भी बेहोश नहीं रह जायगा। उपाय नहीं है बेहोश रहने का। मैं हजार शब्द बोल रहा हूँ तो भी आप मूर्छित सुनेंगे। लेकिन, यह टेबल एक शब्द बोल दे तो आप सब अपनी अवेयरनेस (होश) में पहुँच जायेंगे जितना आप कभी नही गये थे। क्योंकि वह स्ट्रेंज है और स्ट्रेंज आपके भीतर की सब स्थिति को तोड़ देता है। तो श्वास के अनूठे अनुभव जब स्ट्रेंजनेस में, (अनोखेपन में, अजनबीपन में) ले जाते हैं तो आपके भीतर बड़ी नयी सम्भावनाएँ होती हैं और आप होश उपलब्ध कर पाते हैं, कुछ देख पाते हैं। और अगर कोई आदमी होशपूर्वक पागल हो सके तो इससे बड़ा कीमती अनुभव नहीं है।

८. ध्यान-प्रयोग में अजनबी, अज्ञात स्थितियों का बनना

यह जो मैं प्रयोग कर कह रहा हूँ, ऐसा है कि भीतर आपका पूरा होश है और बाहर आप बिलकुल पागल हो गये हैं। भीतर तो आपको पूरा होश है और आप देख रहे हैं कि मैं नाच रहा हूँ। और आप जानते हैं कि अगर यह कोई भी दूसरा आदमी कर रहा होता तो आप कहते कि यह पागल है। अब आप अपने को पागल कह सकते हैं। लेकिन दोनों बातें एक साथ हो रही हैं। आप जब यह यह जान भी रहे हैं कि यह हो रहा है। इसलिए आप पागल भी नहीं हैं। क्योंकि आप होश में पूरे हैं और फिर भी वही हो रहा है जो पागल को होता है। इस हालत में आपके भीतर एक ऐसा स्ट्रेंज मोमेन्ट (अनोखा क्षण) आता है कि आप अपने को अपने शरीर से अलग कर पाते हैं। कर नहीं पाते, हो ही जाता है। अचानक आप पाते हैं कि सब तालमेल टूट गया है। जहाँ कल रास्ता जुड़ता था, वहाँ नहीं जुड़ता है। और जहाँ कल आपका ब्रिज जुड़ता था वहाँ नहीं जुड़ता है। जहाँ व्हील घूमता था वहाँ नहीं घूमता। सब विसंगत हो गया है। वह जो रेलेवेन्सी (व्यवस्था) थी रोज-रोज की, वह टूट गयी है। कही कुछ और हो रहा है। आप हाथ को नहीं घुमाना चाह रहे हैं तो भी वह घूम रहा है। आप नही रोना चाह रहे हैं और आँसू बहे जा रहे हैं। आप चाहते है कि यह हँसी रुक जाय लेकिन यह नही रुक रही है।

तो ऐसी स्ट्रेंज मोमेण्ट (अनोखे क्षण) पैदा करना अवेयरनेस (होश) के लिए बड़े अद्भुत हैं। और श्वास से जितने जल्दी ये हो जाते हैं और किसी प्रयोग से नहीं होते हैं। और प्रयोग में वर्षों लगाने पड़ेंगे, श्वास मे दस मिनट में ही हो सकता है। क्योंकि श्वास का इतना गहरा सम्बन्ध है हमारे व्यक्तित्व में कि उस पर जरा भी लगी चोट सब तरफ प्रतिध्वनित हो जाती है।

९. अव्यवस्थित, बे-हिसाब श्वास की चोट

तो श्वास के जो प्रयोग थे वे बड़े कीमती थे। लेकिन प्राणायाम के जो व्यवस्थित प्रयोग हैं उन पर मेरा बहुत आग्रह नहीं है। क्योंकि जैसे ही वे व्यवस्थित हो जाते हैं वैसी उनकी स्ट्रेंजनेस, (अनोखापन) चली जाती है। जैसे कि आदमी एक श्वास इस नाक से लेता है फिर इतनी देर रोकता है, फिर इतनी देर निकालता है, इसका अभ्यास कर लेता है तो यह भी उसके अभ्यास का हिस्सा हो जाने के कारण सेतु बन जाता है, मेथाडिकल (विधिवत्) हो जाता है। मैं जिस श्वास को कह रहा हूँ वह बिलकुल नानमेथाडिकल है, (Non-methodical), बिना नियम है, एब्सर्ड, अर्थ शून्य है। उसमें न रोकने का सवाल है, न छोड़ने का सवाल है। वह एकदम से स्ट्रेंज फीलिंग (Strange Feeling), अज्ञात अनुभव पैदा करने की बात है, कि आप एकदम से ऐसी झंझट में पड़ जायें कि इस

सेंटर को आप व्यवस्था न दे पायें। अगर व्यवस्था दे दी तो आपका मन बहुत होशियार है। वह उसमें भी राजी हो जायगा कि ठीक है। वह इस नाक को दबा रहा है, इसको खोल रहा है, इतनी निकाल रहा है, इतनी बन्द कर रहा है तो उसका कोई मतलब नहीं। वह एक नया सिस्टम (व्यवस्था, ढाँचा) हो जायगा। लेकिन स्ट्रेंजनेस, अजनबीपन उसमें नहीं आयेगा।

पर आपको मैं चाहता हूँ कि किसी क्षण में आपकी जो भी रूट्स हैं, जितनी भी जड़ें हैं और जितना भी आपका अपना परिचय है सबका सब इसी क्षण में एकदम उखड़ जाय। एक दिन आप अचानक पायें कि न कोई जड़ है मेरी, न मेरी कोई पहचान है, न मेरी कोई माँ है, न पिता है, न कोई भाई है : न यह शरीर मेरा है। आप एकदम ऐसी एब्सर्ड (Absurd), अर्थशून्य हालत में पहुँच जायें जहाँ कि आदमी पागल होता है। लेकिन अगर आप इस हालत में अचानक पहुँच जायें, आपकी बिना किसी कोशिश के, तो आप पागल हो जायेंगे। और अगर आप अपनी ही कोशिश से इसमें पहुँचे तो आप कभी पागल नही हो सकते। क्योंकि यह आपके हाथ मे है। आप इसी सेकेण्ड वापस लौट सकते हैं।

१०. ध्यान-प्रयोग द्वारा पागलपन से मुक्ति

यह प्रयोग करने जैसा है। मेरा तो मानना है कि अगर हम पागल को भी यह श्वास का प्रयोग करवायें तो उसके स्वस्थ हो जाने की पूरी सम्भावना है। क्योंकि अगर वह पागलपन को भी देख सके कि मैं पैदा कर लेता हूँ तो वह यह भी जान पायेगा कि मैं मिटा भी सकता हूँ। अब यह पागलपन उसके ऊपर उतर आया है। वह उसके हाथ की बात नहीं है। यह जो प्रयोग है, इसके खतरे हैं। लेकिन खतरे के भीतर उतनी ही सम्भावनाएँ हैं। और पागल भी अगर इसको करे तो ठीक हो सकता है। और उधर मेरा ख्याल है पीछे कि इसको पागल के लिए भी इस प्रयोग को करवाने जैसा है। और जो आदमी इस प्रयोग को करता है इसकी गारन्टी है (निश्चित है) कि वह कभी पागल नहीं हो सकता। वह इसलिए पागल नही हो सकता क्योंकि पागल को पैदा करने की कला उसके खुद के पास है। जिस चीज को वह आन (On), चालू करता है उसको वह ऑफ (Off) बन्द भी कर लेता है। इसलिए आप उसको कभी पागल नहीं बना सकते। किसी दिन ऐसा नहीं हो सकता है कि वह अपने वश के बाहर हो जाय क्योंकि जो उसमें वश के बाहर था वह उसको भी वश में करके देख लिया है। इसके जिस श्वास की बात मैं कह रहा हूँ वह श्वास बिलकुल ही लयहीन और विधि शून्य (Non-rythemic, Non-methodical) है और कल जैसा किया था वैसा भी आज नहीं कर सकते। क्योंकि इसकी कोई विधि (Method) ही नहीं है। अभी शुरू जैसा किया था अन्त तक भी वैसा नहीं कर सकते। और

ख्याल सिर्फ इतना है कि आप की जो कम्पोज़ीशनिंग है साइकी की, आदतें हैं मन की वह ढीली पड़ जायें।

वह दरवेश कह रहा है जो ठीक कह रहा है कि कई नट और कई बोल्ट ढीले पड़ जायेंगे। वह करने हैं ढीले। वह नट-बोल्ट बहुत सख्ती से पकड़े हुए हैं और आत्मा और शरीर के बीच फासला नहीं हो पाता उनकी वजह से। वह एकदम से ढीले पड़ जायें तो ही आपको पता चले कि कुछ और भी है भीतर, जो जुड़ा था और अलग हो गया है। लेकिन चूँकि वह गलत श्वास की चोट से ही ढीले हुए हैं, वह श्वास की विशेष चोट के पड़ते ही अपने आप कस जाते हैं। उनको अलग से कसने के लिए कोई इन्तजाम नही करना पड़ता है।

हाँ, अगर श्वास पागलपन की हो जाय आपके भीतर जो आपके वश के बाहर हो, ऑबसेशन (Obsession), ग्रस्तता बन जाय और चौबीस घण्टे उस ढंग से चलने लगे तो फिर वह स्थिति खराब हो सकती है। लेकिन कोई घण्टे भर के लिए अगर एक प्रयोग कर रहा है और प्रयोग शुरू करता है और प्रयोग बन्द कर देता है तो जैसे ही वह प्रयोग बन्द कर देता है वैसे ही वह सब के सब अपनी जगह वापस बैठ जाते हैं। आपको याद भर रह जाता है पीछे कि एक अनुभव हुआ था जब मैं अलग था और अब सब चीजें फिर अपनी जगह सेट (व्यवस्थित) हो गयीं लेकिन अब सेट हो जाने के बाद भी आप जानते हैं कि मैं अलग हूँ। जुड़ गया हूँ संयुक्त हूँ, लेकिन फिर भी अलग हूँ। इसलिए श्वास के बिना तो काम ही नहीं हो सकता है।

यह बात वह ठीक कह रहा है कि खतरे हैं, तो खतरे तो हैं ही और जितने बड़े जीवन की हमारी खोज है उतने बड़े खतरे के लेने की हमें तैयारी होनी चाहिए। फर्क मैं इतना ही करता हूँ कि एक तो वह खतरा है जो हम पर अचानक आ जाता है, उससे हम बच नहीं सकते और एक वह खतरा है जो हम पैदा करते हैं, उससे हम कभी भी बच सकते हैं। शरीर में बहुत प्रकार की गतियाँ होती हैं—रो रहा है कोई, नाच रहा है, चिल्ला रहा है और एक सेकेण्ड उसको कहो कि 'नहीं', तो सब गया। चूँकि यह उसने ही पैदा किया है सब, यह एक बात है। और यह अपने आप हो जाता है तब बात ही दूसरी है। एक आदमी सड़क पर खड़े होकर नाच रहा है। खुद ही, उसने कुछ नहीं किया है, वह रोक भी नहीं सकता है क्योंकि कहाँ से यह आया है, कैसे यह हुआ, उसे कुछ पता नहीं यह दूसरी बात है। तो मेरी तो अपनी समझ है कि यह आज नहीं कल जो मैं कह रहा हूँ, एक बहुत बड़ी थेरेपी (Therapy), चिकित्सा सिद्ध होगी और आज नहीं कल पागल को स्वस्थ करने के लिए यह अनिवार्य रास्ता बन जायगा और अगर हम प्रत्येक बच्चे को स्कूल में इसे करा सकें तो हम उस बच्चे के पागल नहीं होने की व्यवस्था किये

दे रहे हैं। वह कभी पागल नहीं हो सकता है। वह इम्यून (Immune), रोग-निरोधित हो जायगा। वह एक और मालिक हो जायगा। इन सारी स्थितियों का मालिक हो जायगा।

११. अलग-अलग राहों का विरोधाभास

लेकिन जिस दरवेश से बात हुई है गुरजिएफ की वह दूसरे पथ के राही हैं। उन्होंने श्वास का कोई प्रयोग नही किया है, उन्होंने स्ट्रेंजनेस, अनोखापन दूसरी तरह से पैदा किया है, और यही तकलीफ है। **तकलीफ यह है कि एक रास्ते को जाननेवाला आदमी तत्काल दूसरे रास्ते को गलत कह देगा**, लेकिन कोई भी चीज किसी रास्ते के सन्दर्भ में गलत और सही होती है। एक बैलगाड़ी के चक्के मे एक डण्डी लगी हुई है, कील लगी हुई है। एक कार वाला कह सकता है कि यह बिलकुल बेकार है लेकिन कार के सन्दर्भ में बेकार होगी, वह बैलगाड़ी में उतनी ही सार्थक है जितनी कार में कोई चीज सार्थक हो सकती है। तो कोई चीज का गलत और सही होना एब्सल्यूट (परम) अर्थ नहीं रखता है। लेकिन हमेशा यह भूल होती है। अब जैसे कि यह सूफी दरवेश है, वह दूसरे ढंग से इस तरफ पहुँचा है, उसके ढंग और हैं। **जैसे सूफी जो है वह निद्रा पर चोट करेगा, श्वास पर नहीं।** तो नाइट व्हिजिल्स (Night Vigils), रात्रि जागरण की बड़ी कीमत है दरवेश के लिए। महीनो जागता रहेगा लेकिन जागने से भी वह स्ट्रेंजनेस पैदा हो जाती है जो श्वास से पैदा होती है। अगर महीने भर जाग जायें तो आप उसी तरह पागल हालत मे पहुँच जाते हैं जिस हालत में तीव्र श्वास से पहुँच जाते हैं।

१२. सूफी-विधि—लम्बा रात्रि-जागरण

एक तो नीद पर वह चोट करेगा क्योंकि नींद बड़ी स्वाभाविक व्यवस्था है। उस पर चोट करने से फौरन आपके भीतर विक्षिप्तताएँ शुरू हो जाती हैं, लेकिन उसमे भी खतरे उतने ही हैं, बल्कि उससे ज्यादा हैं, क्योंकि लम्बा प्रयोग करना पड़े। एक दिन की नींद के तोड़ने से नही होता कुछ फर्क, महीने भर, दो महीने की नींद तोड़ देनी पड़े, लेकिन दो महीने की नीद तोड़कर अगर कुछ हो जाय तो एक सेकेण्ड में आप बन्द नही कर सकते उसे। लेकिन दस मिनट की श्वास से कुछ भी हो जाय तो एक सेकेण्ड मे बन्द हो जाता है। दो महीने की नींद अगर नही ली है तो आप अगर आज सो भी जाओ तो भी दो महीने की नीद आज पूरी नही होने वाली है और दो महीने जो नहीं सोया है वह आज शायद सो भी न पाये क्योंकि खतरनाक जगह से उसने काम शुरू किया है, तो नाइट व्हिजिल (Night Vigil), रात्रि-जागरण का बड़ा उपयोग है। **फकीर रात-रात भर जागकर प्रतीक्षा करेंगे कि क्या होता है।** तो उन्होंने उससे शुरू किया है। दूसरा उन्होंने नृत्य से भी शुरू किया है।

१३. दूसरी सूफी-विधि—नृत्य का उपयोग

नृत्य को भी उपयोग किया जा सकता है शरीर से अलग होने के लिए लेकिन वह भी उनके प्रयोग ऐसे हैं कि अगर नृत्य सीखकर किया आपने तो नहीं हो सकेगा। जैसा कि मैंने कहा कि वह प्राणायाम से नहीं होगा, क्योंकि वह व्यवस्थित है। अब एक आदमी ने अगर नृत्य सीख लिया तो वह शरीर के साथ एक हो जाता है। नहीं, आप जो कि नाच जानते नहीं, आप से मैं कहूँ नाचिये, और आप एकदम नाचना शुरू कर दें, कूदना-फाँदना तो हो जायगा। इतना स्ट्रेंज (अनोखा) मामला है कि आप इसके साथ अपने को एक न कर पायेंगे कि यह मैं नाच रहा हूँ। तो नाच से उन्होंने प्रयोग शुरू किये हैं, रात के नींद से शुरू किये हैं।

१४. अनोखी स्थितियों के लिए—ऊन के वस्त्र, उपवास, काँटे की शैया

और तरह की विधियों का भी उपयोग किया गया है। जैसे कि ऊन के वस्त्र हैं, अब ठेठ रेगिस्तान के गरम हालत में ऊन पहने हुए हैं। तो शरीर के विपरीत चल रहे हैं। कोई उपवास कर रहा है, वह भी शरीर के विपरीत चल रहा है कोई काँटे पर पैर रखे बैठा है, कोई काँटे की शैया बिछाकर उस पर लेट गया है, यह सब स्ट्रेंजनेस पैदा करने की तरकीबें हैं।

लेकिन एक पथ के राही को कभी ख्याल में नहीं आता और स्वभावतः नहीं भी आता है कि दूसरे पथ से भी ठीक यही स्थिति पैदा हो सकती है। तो उस दरवेश को तो कुछ पता नहीं है प्राणायाम के बाबत। हाँ, अगर वह कुछ करेगा तो नुकसान उठा सकता है और खतरे ज्यादा हो सकते हैं। खतरे ऐसे हो सकते हैं जैसे कि एक बैलगाड़ी की कील को आपने कार के चाक में लगा दिया हो तो वह कहेगा कि भई यह कील बड़ी खतरनाक है, कभी मत लगाना क्योंकि इससे तो हमारी गाड़ी खराब हो गयी। अब जो आदमी रातभर जग रहा है, अगर वह प्राणायाम का प्रयोग करे तो फौरन पागल हो जायगा, उसके कारण हैं। क्योंकि ये दोनों चोटें एक साथ व्यक्तित्व नहीं सह सकता है।

१५. लम्बे उपवास में आसन और प्राणायाम हानिप्रद

इसलिए जैनों ने प्राणायाम का प्रयोग नहीं किया क्योंकि उपवास से वह स्ट्रेंजनेस पैदा कर रहे हैं। अगर उपवास के साथ प्राणायाम करें तो बहुत खतरे में पड़ जायेंगे। एकदम खतरे में पड़ जायेंगे इसलिए जैन के लिए कोई प्राणायाम का उपयोग नहीं रहा बल्कि जैन साधु कहेगा कि कोई जरूरत नहीं है। मगर उसे पता नहीं है कि वह प्राणायाम को इन्कार नहीं कर रहा है, वह सिर्फ इतना ही कह रहा है कि उसकी व्यवस्था में उसके लिए कोई जगह नहीं है। वह दूसरी चीज

से वही काम ले रहा है। इसलिए जैनों ने कोई योगासन वगैरह के लिए फिक्र नहीं की क्योंकि लम्बे उपवास की हालत में योगासन वगैरह बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। तो उनके लिए बहुत मृदु आहार चाहिए, घी चाहिए, दूध चाहिए, अत्यन्त तृप्तिदायी आहार चाहिए। उपवास कर देता है बिलकुल रूखा भीतर और जठराग्नि इतनी बढ़ जाती है कि उपवास से पेट बिलकुल आग हो जाता है। इस आग की हालत में कोई भी आसन खतरनाक हो सकते हैं। यह आग मस्तिष्क तक चढ़ सकती है और पागल कर सकती है। तो जैन संन्यासी कह देगा कि नहीं-नहीं, यह आसन वगैरह में कुछ सार नहीं है, सब बेकार है।

लेकिन जिस रास्ते का उनका उपयोग है उस रास्ते पर उनकी कीमत बड़ी अद्भुत है। अगर ठीक आहार लिया जाय तो आसन अद्भुत काम कर सकते हैं। लेकिन उसके लिए शरीर का बड़ा स्निग्ध होना जरूरी है, बिलकुल ऐसा ही मामला है जैसे कि लुब्रीकेटिंग (Lubricating), स्निग्ध तत्वयुक्त हालत होनी चाहिए शरीर की, क्योंकि एक-एक हड्डी और एक-एक नस और एक-एक स्नायु को फिसलना है, बदलना है। उसमें जरा भी रूखापन हुआ कि टूट जायेंगी। शरीर अत्यन्त लोचपूर्ण चाहिए।

१६. अनोखी हालतें पैदा करने के लिए आसनों का उपयोग

अब यह जो आसन है, यह भी स्ट्रेंज पोजीशन्स (Strange Positions), अनोखी देह-स्थितियाँ हैं जिनमें आप कभी नहीं होते। और हमें ख्याल नहीं है, हमारी सब पोजीशन्स, देह-स्थितियाँ हमारे चित्त से बँधी हुई हैं। अब एक आदमी चिन्तित होता है तो सिर खुजाने लगता है। कोई पूछे कि सिर किसलिए खुजा रहे हो? चिन्ता से सिर खुजाने का क्या सम्बन्ध है? लेकिन आप अगर उसका हाथ पकड़ लें तो आप पायेंगे कि वह चिन्तित नहीं हो सकता। उसके चिन्तित होने के लिए अनिवार्य है तो वह अपने सिर पर हाथ ले जाये। अगर उसका हाथ पकड़ लिया जाय तो वह चिन्ता नहीं कर सकता, क्योंकि उस चिन्ता के लिए उतना एसोसिएशन (आपसी सम्बन्ध) जरूरी है कि वह हाथ की मसल्स इस जगह पहुँचे, अँगुलियाँ इस स्थान को छुएँ, इस स्नायु को छुएँ। इस पोजीशन में जब वह जायगा तो बस तत्काल उसकी चिन्ता सक्रिय हो जायेगी। अब इसी तरह की सारी की सारी मुद्राएँ हैं, आसन हैं। तो वह बहुत अनुभव से हैं।

१७. देह-स्थितियों से चित्त-दशा का प्रकटीकरण

जैसा मैं अभी सुबह ही कह रहा था कि अब यह ध्यान का जो प्रयोग हुआ है इसमें अपने आप आसन बनेंगे, अपने आप मुद्राएँ आयेंगी। निरन्तर हजारों

प्रयोग के बाद यह पता चल गया है कि चित्त की कौन सी दशा में कौन सी मुद्रा बन जाती है। तब फिर उल्टा काम भी शुरू हो सकता है वह मुद्रा बनाओ तो होगा कि वैसी दशा के बनने की सम्भावना बढ़ जाती है। जैसे कि बुद्ध बैठे हुए हैं। अगर आप ठीक उसी हालत में बैठें तो आपको बुद्ध की चित्त दशा में जाने में आसानी होगी क्योंकि चित्त दशा भी शरीर की दशाओं से बँधी हुई है। बुद्ध जैसे चलते है, अगर वैसे ही आप चलो, बुद्ध जैसे श्वास लेते हैं, अगर वैसे ही श्वास लो, बुद्ध जैसे लेटते हैं, वैसे लेटो तो बुद्ध की जो चित्त की दशा है उसको पाना आपके लिए सुगमतर होगा और या आप बुद्ध की चित्त दशा को पा लो तो आप पाओगे कि आपके चलने, बैठने में बुद्ध से ताल मेल होने लगा। ये दोनो चीजें पैरेलल (Parallel), समानान्तर हैं।

१८. गुरजिएफ की विविध जानकारियों की गड़बड़

अब गुरजिएफ जैसे लोगों को जो कि एक अर्थ में अप-रूटेड (परम्परा शून्य) है, इनके पीछे कोई हजारों वर्ष का काम नहीं है तो इनको पता नही है। और फिर इस आदमी ने दस-पच्चीस अलग-अलग तरह के लोगो से मिलकर कुछ इकट्ठा किया है। उसमे कई यन्त्रो के सामान यह ले आया है। वह सब अपनी अपनी जगह ठीक थे। लेकिन, सब इकट्ठे हो कर बड़े अजीब हो गये हैं। उनमें से कभी कोई किसी पर काम कर जाता है लेकिन पूरा किसी पर काम नही कर पाता है। इसलिए गुरजिएफ के पास जितने लोगों ने काम किया है, पूर्णता पर उनमें से कोई भी नही पहुँच सका है। वह पहुँच ही नही सकता है। क्योंकि जब वह करता है तो कोई भी चीज काम कर जाती है उस पर, तो वह उत्सुक तो हो जाता है और प्रवेश कर जाता है लेकिन दूसरी चीजें उलटा काम करने लगती है क्योंकि पूरी सिस्टम (पद्धति) नही है एक, कहना चाहिए कि मल्टी-सिस्टम्स (बहु-पद्धति) का बहुत कुछ उसमें ले लिया है और कुछ सिस्टम्स (प्रणालियों) का उसे बिलकुल पता नही है।

उसकी ज्यादा जानकारी सूफी दरवेशो से है। उसे तिब्बतन योग का कुछ पता नहीं है, उसे हठ योग का भी कोई बहुत विशेष पता नहीं है। जो उसने सुना है वह भी विरोधियों के मुँह से सुना है, वह भी दरवेशों से सुना है। वह हठ योगी नही है। तो उसकी जो जानकारी हठ योग के बाबत या कुण्डलिनी के बाबत है, वह दुश्मन के मुँह से सुनी गयी जानकारी है, विपरीत पथगामियों के द्वारा सुनी गयी जानकारी है। उस जानकारी के आधार पर वह जो कह रहा है वह बहुत अर्थों मे कभी असंगत ही हो जाता है। जैसे, कुण्डलिनी के बाबत उसने निपट नासमझी की बात कही है। उसका उसे कुछ पता ही नहीं है। वह उसे 'कुण्डा-बफर' (Kunda-Buffer) ही कहे जा रहा है और बफर अच्छा शब्द

नहीं है। वह यह कह रहा है कि कुण्डलिनी एक ऐसी चीज है जिसके कारण आप ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। वह बफर की तरह काम कर रही है। और उसको पार करना जरूरी है। उसे मिटाकर पार करना जरूरी है। इसलिए उसको जगाने की तो चिन्ता में ही मत पड़ना। अब उसे पता ही नहीं है कि वह क्या कह रहा है।

बफर्स हैं व्यक्तित्व में, ऐसी चीजें हैं जिनकी वजह से हम कई तरह के शॉक्स (आघात) झेल जाते हैं। कुण्डलिनी वह नहीं है, कुण्डलिनी तो शॉक है मगर उसे पता नहीं है। कुण्डलिनी तो खूब बड़े से बड़ा शॉक है। जब कुण्डलिनी जगती है तो बड़े से बड़ा शॉक लगता है आपके व्यक्तित्व में। बफर और हैं दूसरे आपके भीतर जो शॉक एब्जार्बर, आघात-अवशोषक की तरह काम करते हैं। उनको, उन बफर्स को तोड़ने की जरूरत है। लेकिन वह कुण्डलिनी को भी बफर समझ रहा है क्योंकि उसको कुछ पता नहीं है। अनुभव तो है ही नहीं उसे उसका। जिसको अनुभव हो उनके पास बैठकर उसने कोई बात ही नहीं सुनी है। और इसलिए कई दफा बड़ी अजीब हालत हो जाती है।

१९. अन्य साधना-प्रणालियों का अज्ञान

गुरजिएफ कृष्णमूर्ति इन सब के साथ बहुत अजीब हालत हो गयी है। इनके साथ अजीब हालत यह है कि वह जो सीक्रेट्स (रहस्य) हैं उन शब्दों और उन शक्तियों के पीछे, उनका कभी भी उन्हें कोई व्यवस्थित ज्ञान नही हो सका है। और यह कठिन भी बहुत है। असल में एक जन्म मे सम्भव भी नहीं है। अगर एकाग्र आदमी दस बीस जन्मों — दस बीस व्यवस्थाओं के बीच बड़ा हो तभी सम्भव है, नहीं तो सम्भव नहीं है। तब कहीं अन्तिम जन्म में वह उन सबके बीच कोई सिंथेसिस (समन्वय) खोज सकता है नहीं तो नहीं खोज सकता है। लेकिन आमतौर से ऐसा होता है कि एक आदमी एक व्यवस्था से पहुँच जाता है तो वह दूसरा जन्म ही क्यों ले ? बात ही खत्म हो गयी। इसलिए सिंथेसिस नहीं हो पाती।

इधर मैं सोचता हूँ, इस पर कभी काम करने जैसा है कि सारी दुनिया की साधना व्यवस्थाओं के बीच एक सिंथेसिस सम्भव है। अलग-अलग छोर से पकड़ना पड़ेगा। घटनाएँ वही घटती हैं लेकिन अलग-अलग तरकीबें हैं उनको घटाने की।

२०. कुछ अनोखे उपाय

अब जैसे जैन फकीर है, वह आदमी को खिड़की से उठाकर फेंक देगा। सिर्फ स्ट्रेंजनेस (विलक्षणता, अनोखापन) पैदा होती है, और कुछ नहीं। लेकिन

वह कह देगा कि प्राणायाम की कोई जरूरत नहीं है। इस भस्त्रिका प्राणायाम से क्या होगा ? लेकिन भस्त्रिका से नहीं होगा तो एक आदमी को खिड़की से फेंकने से क्या होगा ? बुद्ध से, महावीर से जाकर कहो, किसी को खिड़की से फेंकने से ज्ञान हो गया तो वह कहेंगे, पागल हो। आदमी रोज गिर जाते हैं मकानों से, कहीं ज्ञान होते हैं ! लेकिन गिरना एक बात है, फेंका जाना बिलकुल दूसरी बात है। जब एक आदमी मकान से गिरता है तो यह वैसा ही है जैसे एक आदमी पागल हो गया है। लेकिन जब हम चार आदमी उठा कर किसी व्यक्ति को बाहर फेंक दें खिड़की के और वह व्यक्ति जानता है कि वह उठाकर फेंका जा रहा है तो एक स्ट्रेंजनेस (अनोखापन) अनुभव होती है। जब वह गिरते हैं जमीन पर और जाते हैं फिंके हुए तब पूरे वक्त अवेयर (होश में) होते हैं कि यह क्या हो रहा है। उस वक्त फौरन वह शरीर से अलग हो जाते हैं।

अब एक जैन गुरु के पास जाओ, उसने एक डण्डा उठाकर खोपड़ी पर मार दिया है। स्ट्रेंज (अजीब) है वह। आप कहते हैं आत्म शान्ति चाहिए, उसने एक डण्डा मार दिया, एकदम स्ट्रेंजनेस पैदा हो गयी लेकिन हिन्दुस्तान में नहीं पैदा होगी। अगर आप डण्डा मारेंगे तो वह आदमी भी आपको डण्डा मार देगा। वह लड़ने पर तैयार हो जायगा। जापान में सिर्फ होगी, क्योंकि जापान में उसकी व्यवस्था हो गयी है। ख्याल में आ गया है यह लोगों के कि जैन फकीर डण्डा मार कर भी कुछ कर सकते हैं। अगर एक फकीर है, वहाँ आप गये हैं और वह आपको माँ बहन की गाली देने लगा है। वह स्ट्रेंजनेस पैदा कर देगा उससे। कहाँ आप गये थे ब्रह्मज्ञानी के पास, वह माँ-बहन की गाली दे रहा है। लेकिन आपको पता हो तो ठीक है अन्यथा आपको दिक्कत पड़ जायेगी। यह आदमी गलत है, गाली बकता है, इसलिए आप दुबारा जायेंगे नहीं। लेकिन उस व्यवस्था के भीतर उसका भी उपयोग किया गया है। वह गाली बककर भी स्ट्रेंजनेस पैदा कर देगा।

एक फकीर है, गाडरवाड़ा (मध्यप्रदेश) के पास एक गाँव साँईखेड़ा में। उनके पास जाने पर वे कुछ भी कर सकते थे। गाली भी बकते थे और आप सब बैठे हैं और वे आप सबके सामने खड़े होकर वहीं पेशाब करने लगेंगे और आप एकदम चौंककर खड़े हो जायेंगे। एकदम स्ट्रेंज हो जायेगी उस कमरे की हालत कि यह क्या हो गया ! वह गाली तो देते ही थे, मारने भी दौड़ते थे और मारेंगे तो मीलों तक दौड़ते चले जायेंगे उस आदमी के पीछे। लेकिन जो उनके पास जाते थे और जो समझने लगे थे, उनको बहुत लाभ हो गया है। जो नहीं समझते थे वे कहते, पागल आदमी है। पर नहीं जो समझते थे उनसे कोई लेना देना भी क्या है। जो समझते थे उनको फायदा हो गया। क्योंकि जिस आदमी के पीछे

वे दो मील दौड़ते चले गये उसको बहुत स्ट्रेंज (अजीब) हालत में खड़ा कर दिया । हजार की भीड दौड़ रही है और वह उसको मारने दौड़ रहे हैं, वह आदमी भागा जा रहा है । तो बड़ा स्ट्रेंज एटमास्फियर, अजीब वातावरण हो जाता था ।

बहुत-सी व्यवस्थाओं से वही किया जा सकता है । दूसरी व्यवस्था वाले को कभी पता नही चलता है । एक कठिनाई और है । अगर कई बार पता भी हो जैसे मुझे कुछ पता है, तब भी जब मैं एक व्यवस्था की बात कर रहा हूँ तो मुझे उसकी एक्सट्रीम (समग्रता) पर बात करनी पड़ती है, नही तो उसका परिणाम नहीं होगा । अगर मुझे पता भी है कि दूसरी बात से भी हो सकता है, लेकिन जब मैं एक बात कह रहा हूँ तो मैं कहूँगा कि किसी से नहीं हो सकता, इसी से होगा । कारण है, क्योंकि आपके पास इतना दिमाग नहीं है । सबसे होगा ऐसा समझकर आपको लगेगा कि किसी से भी नहीं होगा । और वह सब इतनी विपरीत व्यवस्थाएँ हैं कि सबसे कैसे होगा, आप इसी झंझट में पड़ जायेंगे । इसलिए बहुत बार तो ज्ञानियों को, जो जानते हैं उनको भी अज्ञानी की भाषा बोलनी पड़ती है । उनको कहना पड़ता है, सिर्फ इसी से होगा, और किसी से नहीं हो सकता है । इसलिए मैं तो बहुत मुश्किल में पड़ गया हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ उससे भी हो सकता है ।

●

९. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक २ जुलाई, १९७०

कुण्डलिनी-जागरण और आंतरिक रूपान्तरण के तथ्य

१ आत्मा का कुण्ड और परमात्मा का सागर एक ही

प्रश्नकर्ता : कल की चर्चा में आपने कहा कि शक्ति का कुण्ड प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग नहीं है। लेकिन, कुण्डलिनी जागरण में तो साधक के शरीर में स्थित कुण्ड से ही शक्ति ऊपर उठती है। तो क्या कुण्ड अलग-अलग है या कुण्ड एक ही है ? इस स्थिति को कृपया समझायें।

आचार्यश्री : यह ऐसा है, जैसे एक कुएँ से तुम पानी भरो। तुम्हारे घर का कुआँ अलग है, मेरे घर का कुआँ अलग है। लेकिन फिर भी कुएँ के भीतर के जो झरने हैं वे सब एक ही सागर से जुड़े हैं। अगर तुम अपने कुएँ के ही झरने की धारा को पकड़ के खोदते ही चले जाओ तो उस मार्ग में मेरे घर का भी कुआँ पड़ेगा, औरों के घर के कुएँ भी पड़ेंगे और एक दिन तुम वहाँ पहुँच जाओगे जहाँ कुआँ नहीं, सागर ही होगा। जहाँ से शुरू होती है यात्रा वहाँ तो व्यक्ति है। और जहाँ समाप्त होती है यात्रा वहाँ व्यक्ति बिलकुल नहीं है, वहाँ समष्टि है। इण्डीवीजुअल (निज) से शुरू होती है और ऐबस्ल्यूट (परम) पर खतम होती है।

तो अगर यात्रा का प्रारम्भिक बिन्दु पकड़ोगे तब तो तुम अलग हो, मैं अलग हूँ। और अगर इस यात्रा का चरम बिन्दु पकड़ोगे तो न तुम हो, न मैं हूँ। और 'जो है', हम दोनों उसके ही हिस्से हैं, टुकड़े हैं। तो जब तुम्हारे भीतर कुण्डलिनी

का आविर्भाव होगा तो वह पहले तो तुम्हें व्यक्ति की ही मालूम पड़ेगी, तुम्हारी अपनी मालूम पड़ेगी। स्वभावतः कुएँ पर तुम खड़े हो गये हो, लेकिन जब कुण्डलिनी का आविर्भाव बढ़ता चला जायगा तब तुम धीरे-धीरे पाओगे कि तुम्हारा कुआँ तुम्हारा ही नहीं है, वह औरों से भी जुड़ा है। और जितनी तुम्हारी यह गहराई बढ़ती जायेगी उतना ही तुम्हारा कुआँ मिटता जायगा और सागर होता जायगा। अन्तिम अनुभव में तुम कह सकोगे कि यह कुण्ड सबका था। इसी अर्थ में मैंने यह कहा है। इसी भाँति हम व्यक्ति की तरह अलग-अलग मालूम हो रहे हैं।

ऐसा समझो कि वृक्ष का एक पत्ता होश में आ जाय तो उसे पड़ोस का जो पत्ता लटका हुआ दिखायी पड़ रहा है वह दूसरा मालूम पड़ेगा। उसी वृक्ष की दूसरी शाखा पर लटका हुआ पत्ता उसे स्वयं कैसे मालूम पड़ सकता है कि यह मैं ही हूँ। दूसरी शाखा भी छोड़ दें, उसी शाखा पर लगा हुआ दूसरा पत्ता भी उस वृक्ष के पत्ते को कैसे लग सकता है कि मैं ही हूँ। उतनी दूरी भी छोड़ दें। उसी की बगल में, पड़ोस में लटका हुआ जो पत्ता है वह भी दूसरा ही मालूम पड़ेगा। क्योंकि पत्ते का भी जो होश है वह व्यक्ति का है। फिर पत्ता अपने भीतर प्रवेश करे तो बहुत शीघ्र वह पायेगा कि मैं जिस डण्ठल से लगा हुआ हूँ उसी डण्ठल से मेरे पड़ोस का पत्ता भी लगा है और हम दोनों की प्राणधारा एक ही डण्ठल से आ रही है। वह और थोड़ा प्रवेश करे तो वह पायेगा कि मेरी शाखा ही नहीं पड़ोस की शाखा भी एक ही वृक्ष के दो हिस्से हैं और हमारी जीवन धारा एक ही है। वह और थोड़ा नीचे प्रवेश करे और वृक्ष की रूट पर पहुँच जाय तो उसे लगेगा कि सारी शाखाएँ और सारे पत्ते और मैं एक ही के हिस्से हैं। वह और वृक्ष के नीचे प्रवेश करे, उस भूमिमें पहुँच जाय जिस भूमि से पड़ोस का वृक्ष भी निकला हुआ है तो वह अनुभव करेगा कि मैं, मेरा यह वृक्ष, मेरे ये पत्ते और यह पड़ोस का वृक्ष यह हम एक ही भूमि के पुत्र हैं, और एक ही भूमि की शाखाएँ हैं। और अगर वह प्रवेश करता ही जाय तो यह पूरा जगत अन्ततः उस छोटे से पत्ते के अस्तित्व का अन्तिम छोर होगा। वह पत्ता इस बड़े अस्तित्व का एक छोर है। लेकिन छोर की तरह होश में आ गया था तो व्यक्ति था और समुद्र की तरह होश में आ जाय तो व्यक्ति नहीं है।

२. आत्मा से परमात्मा में छलाँग

कुण्डलिनी के जागरण पर पहला अनुभव तुम्हें आत्मा की तरह होगा और अन्तिम अनुभव तुम्हें परमात्मा की तरह होगा। अगर तुम पहले जागरण पर ही रुक गये और तुमने मेराबन्दी कर ली अपने कुएँ की और तुमने भीतर खोज न की तो तुम आत्मा पर ही रुक जाओगे। इसलिए बहुत से धर्म आत्मा पर ही रुक गये हैं। वह परम अनुभव नहीं है। वह अनुभव की आधी ही यात्रा है। और थोड़ा आगे जायेंगे तो आत्मा भी विलीन हो जायेगी। तब परमात्मा ही

शेष रह जायगा। और जैसा मैंने तुमसे कहा कि और अगर आगे जायें तो परमात्मा भी विलीन हो जायगा और तब निर्वाण और शून्य ही शेष रह जायगा या कहना चाहिए कुछ भी शेष नहीं रह जायगा। तो परमात्मा से भी जो एकदम आगे जाने की जिनकी सम्भावना थी वे निर्वाण पर पहुँच गये हैं। वे परम शून्य की बात कहेंगे। वे कहेंगे 'वहाँ कुछ भी नहीं रह जाता है।' असल में 'सब कुछ' का अनुभव जब तुम्हें होगा तो साथ ही 'कुछ नहीं' का अनुभव भी होगा। जो एबसोल्यूट है वह नथिंगनेस भी है।

३. शून्य और पूर्ण एक ही

इसे ऐसा हम समझें। शून्य और पूर्ण एक ही चीज के दो नाम हैं। इसलिए दोनों कनवर्टेबल परस्पर एक अर्थवाले है। शून्य ही पूर्ण है तुमने अधूरा शून्य न देखा होगा। आधा शून्य तुम नहीं कर सकते हो। अगर तुमसे हम कहें कि शून्य को आधा कर दो, दो टुकड़े कर दो तो तुम कहोगे यह कैसे हो सकता है। एक के दो टुकड़े हो सकते हैं। दो के दो टुकड़े हो सकते हैं, लेकिन शून्य के दो टुकड़े नही हो सकते। शून्य के टुकड़े ही नहीं हो सकते। अगर जब तुम कागज पर एक शून्य बनाते हो तो वह सिर्फ प्रतीक है। वह तुम्हारे बनाते ही शून्य नहीं रह जाता। क्योंकि तुम रेखा बाँध देते हो। इसलिए युक्लिड (Euclid) से तुम पूछोगे तो वह कहेगा कि शून्य हम उसे कहते हैं जिसमें न लम्बाई है, न चौड़ाई है। अब जैसे तुम कितना भी छोटा-सा बिन्दु बनाओगे तो उसमें भी लम्बाई और चौड़ाई होगी। इसलिए वह सिर्फ सिम्बालिक (प्रतीक) है। वह असली बिन्दु नही है। क्योंकि असली बिन्दु में तो लम्बाई चौड़ाई नही हो सकती है। लम्बाई-चौड़ाई होगी तो फिर बिन्दु नहीं रह जायगा। इसलिए उपनिषद् कह सके कि शून्य से तुम निकाल लो शून्य भी तो भी पीछे शून्य ही शेष रह जाता है। उसका मतलब है कि तुम निकाल नही सकते उसमें से कुछ। तुम अगर पूरे शून्य को भी लेकर भाग जाओ तब भी पीछे पूरा शून्य ही शेष रह जायगा। तुम आखिर मे पाओगे कि चोरी बेकार गयी। तुम उसे लेकर भाग नही सकते। वह वही शेष रह जायगा। लेकिन जो शून्य के सम्बन्ध में सही है वही पूर्ण के सम्बन्ध में भी सही है। असल में पूर्ण की कोई कल्पना सिवाय शून्य के और कोई नहीं हो सकती।

पूर्ण का मतलब है जिसमें अब और आगे विकास नहीं हो सकता। शून्य का मतलब है जिसमें अब और पतन नही हो सकता। शून्य के और नीचे उतरने का उपाय नहीं, पूर्ण के और आगे जाने का उपाय नही। तुम पूर्ण के भी खण्ड नही कर सकते, शून्य के भी खण्ड नहीं कर सकते। पूर्ण की भी कोई सीमा नहीं हो सकती, क्योंकि जब भी किसी चीज की सीमा होगी तब पूर्ण नही हो सकेगा।

क्योंकि इसका मतलब हुआ कि सीमा के बाहर फिर कुछ शेष रह जायगा। और अगर कुछ बाहर शेष रह जाय तो पूर्णता कैसी। फिर यह अपूर्णता हो जायेगी। जहाँ मेरा घर खतम होता है तुम्हारा घर शुरू होता है। मेरे घर की सीमा पर, मेरा घर समाप्त होता है और तुम्हारा शुरू होता है। अगर मेरा घर पूर्ण है तो तुम्हारा घर मेरे घर के बाहर नहीं हो सकता है। तो पूर्ण की कोई सीमा नहीं हो सकती, क्योंकि कौन इसकी सीमा बनायेगा। सीमा बनाने के लिए हमेशा नेबर (Neighbour), पड़ोसी चाहिए। अब पूर्ण है अकेला, उसका कोई पड़ोसी नही है जिससे उसकी सीमा इंगित हो सके। सीमा दो बनाते हैं एक नहीं। यह ख्याल मे रखना कि सीमा बनाने के लिए दो चाहिए। जहाँ मैं समाप्त होऊँ और कोई शुरू हो वहाँ सीमा बनेगी। अगर कोई शुरू ही न हो तो मैं समाप्त भी न हो सकूँगा। और अगर मैं समाप्त ही न हो सकूँ, हो ही न सकूँ समाप्त, तो फिर मेरी कोई सीमा न बनेगी। पूर्ण की कोई सीमा नही है क्योंकि कौन उसकी सीमा बनाये। शून्य की कोई सीमा नहीं है। क्योंकि जिसकी सीमा हो जाती है वह 'कुछ' हो गया, वह शून्य कैसे रहा। तो अगर इसको बहुत ठीक से समझोगे तो शून्य और पूर्ण जो हैं वह एक ही चीज को कहने के दो ढग है।

४. ब्रह्म की ओर यात्रा

तो धर्म भी दो तरफ से यात्रा कर सकता है। या तो तुम पूर्ण हो जाओ या तुम शून्य हो जाओ। दोनों स्थितियो मे तुम वही हो जाओगे, जो होने की बात है। तो जो पूर्ण की यात्रा करने वाला है, पूर्ण शब्द को प्रेम करता है, पाजिटिव (धनात्मक) को प्रेम करता है, वह कहेगा 'अहम् ब्रह्मास्मि', मैं ब्रह्म हूँ। वह यह कह रहा है कि मैं ही ब्रह्म हूँ। यह सब जो है यह मैं ही हूँ। और 'मेरे' अतिरिक्त कोई 'तू' नही है। सब 'तू' मैंने अपने 'मैं' में घेर लिये हैं। अगर यह हो सके तो यह बात हो जायेगी। लेकिन अन्तिम चरण मे 'मैं' को भी खोना पड़ेगा, क्योंकि **जब कोई 'तू' नहीं है तो तुम कैसे कहोगे कि 'मैं' हो ब्रह्म हूँ। क्योंकि 'मैं' की उद्घोषणा 'तू' की मौजूदगी पर ही सार्थक है।** और जब तुम ही ब्रह्म हो, तो यह कहना भी बहुत अर्थ का नहीं रह जायगा कि मैं ब्रह्म हूँ। क्योंकि इसमें भी दो की स्वीकृति है ब्रह्म की और मेरी। तो अन्त में 'मैं' भी व्यर्थ हो जायगा और ब्रह्म भी व्यर्थ हो जायगा और चुप हो जाना पड़ेगा।

५. शून्य की ओर यात्रा

दूसरा एक मार्ग है कि तुम इतने मिट जाओ कि तुम कह सको मैं हूँ ही नहीं। एक जगह तुम कह सके मैं ब्रह्म हूँ, अर्थात् मैं सब हूँ। दूसरी यात्रा है जिसमें तुम कह सको कि मैं हूँ ही नहीं, कुछ भी नहीं हूँ। सब परम शून्य है। लेकिन इससे

भी तुम वही पहुँच जाओगे और पहुँच के तुम यह भी न कह सकोगे कि मैं नहीं हूँ। क्योंकि मैं नहीं हूँ, यह कहने के लिए भी 'मैं' का होना जरूरी है। तो 'मैं' खो जायगा। तुम यह भी नहीं कह सकोगे कि सब शून्य है। क्योकि यह कहने के लिए 'सब' भी होना चाहिए और शून्य भी होना चाहिए। तब तुम फिर चुप हो जाओगे। **तो यात्रा चाहे कहीं से हो। चाहे वह पूर्णता की तरफ से हो चाहे शून्यता की तरफ से हो, लेकिन वह परम मौन में ले जायगी,** जहाँ बोलने को कुछ भी नही बचेगा। इसलिए कहाँ से कोई जाता है यह बड़ा सवाल नही है। कहाँ पहुँचता है यह जाँचने की बात है। उसकी अन्तिम मंजिल पकड़ी जा सकती है, पहचानी जा सकती है। अगर वह वहाँ पहुँच गया है तो वह जहाँ से भी गया हो ठीक ही रास्ते से गया है। कोई रास्ता गलत नही है, कोई रास्ता ठीक नही है इस अर्थ मे कि **जो पहुँचा दे वह ठीक है** और पहुँचना यहाँ है। लेकिन प्राथमिक अनुभव कही से भी 'मैं' से ही शुरू होगा, क्योकि हमारी वह स्थिति है, वह गिव्हन सिचुएशन (दी गयी स्थिति) है जहां से हमको चलना है।

तो चाहे हम कुण्डलिनी को जगाये तो भी वह व्यक्तिगत मालूम पड़ेगी। चाहे ध्यान मे जाये तो भी वह व्यक्तिगत मालूम पड़ेगी, चाहे शान्त हो तो व्यक्तिगत होगा। जो कुछ भी होगा वह व्यक्तिगत होगा, क्योकि अभी हम व्यक्ति हैं। लेकिन **जैसे-जैसे** इसमें प्रवेश करोगे, **भीतर जितने गहरे उतरोगे व्यक्ति मिटता जायगा।** और अगर बाहर गये तो व्यक्ति बढ़ता चला जायगा।

६. मूर्छा कुएँ की— बोध सागर का

जैसे समझ लो कि एक आदमी कुएँ पर खड़ा है। अगर वह कुएँ में भीतर जाय तो एक दिन सागर में पहुँच जाय और अनुभव करे कि कुआँ तो नही था, असल में कुआँ है क्या ? जस्ट ए होल (Just a hole), एक छेद मात्र— सागर को झाँकने के लिए। कुएँ का और अर्थ ही क्या ? एक छेद है जिससे तुम सागर को झाँक लेते हो। अगर पानी को कुआँ समझते हो तो गलत समझते हो। पानी तो सागर ही है। हाँ, वह छेद, जिससे तुमने झाँका है वह है कुआँ। तो वह जो छेद है वह जितना बड़ा होता जाय, सागर उतना बड़ा दिखायी पड़ने लगेगा। लेकिन अगर तुम कुएँ के भीतर प्रवेश नहीं किये और कुएँ से दूर हटते चले गये, तो तुम्हें कुएँ का पानी भी दिखायी पड़ना देर में बन्द हो जायगा। फिर तो जो कुछ कुएँ का छेद है और पाट है, वही दिखायी पड़ेगा। और उसका सागर से कभी तुम ताल मेल न कर पाओगे। एकदम तुम सागर के किनारे भी पहुँच जाओ तो भी तुम यह तालमेल न बिठा पाओगे कि वह जो कुएँ में झाँका था वह, और यह सागर एक हो सकता है। **अंतर्यात्रा तो तुम्हें एकता पर ले जायगी, बहिर्यात्रा तुम्हें अनेकता पर ले जायगी।** लेकिन सभी अनुभव का प्रारम्भिक छोर व्यक्ति होगा, कुआँ

होगा। अन्तिम छोर अव्यक्ति होगा, या परमेश्वर कहो, सागर होगा। इस अर्थ में मैंने कहा। अगर तुम गहरे जाओगे तो कुण्ड जो है तुम्हारा नही रह जायगा। कुछ भी तुम्हारा नही रह जायगा। कुछ भी नहीं रह सकता है।

प्रश्नकर्ता : आचार्य जी यदि सब कुएँ (व्यक्ति) एक ही हैं और सागर से मिले हुए ही हैं तो फिर सागर से मिलने के लिए कुएँ के भीतर जाने की अर्थात् शून्य होने के लिए साधना की क्या जरूरत है ?

७. पीड़ा कुएँ की—आनन्द सागर का

आचार्यश्री : यह बात इसलिए पूछ रहे हो क्योंकि तुम्हे समझ में आ रहा है कि शून्य, यानी कुछ भी नहीं। इसलिए साधना की क्या जरूरत है, कुछ हो तो जरूरत है। तुम्हें ख्याल मे आ रहा है कि शून्य, यानी 'ना कुछ' हो गये। तो साधना की क्या जरूरत है ? साधना की जरूरत तो तब लगती है, जब कुछ हम हो जायें। लेकिन तुम्हें यह पता नही कि शून्य का मतलब है पूर्ण। शून्य का मतलब है सब कुछ। शून्य का मतलब 'कुछ नही' नहीं, सब कुछ। लेकिन अभी तुम्हारे ख्याल में नही आ सकता कि शून्य यानी सब कुछ का क्या मतलब होता है। एक कुआँ भी कह सकता है कि अगर सागर की तरफ जाने का मतलब इसी बात का पता चलना है कि मैं हूँ ही नही, तो मैं जाऊँ ही क्यो। वह ठीक कह रहा है कुआँ। यह कहे कि मैं सागर की तरफ जाऊँ और आखिर में यही पता चलना है कि मैं हूँ ही नही, तो मैं जाऊँ क्यो ? लेकिन तुम्हारे न जाने से फर्क नही पड़ता है। तुम नही हो। एक बात। तुम्हारे जाने, न जाने का सवाल नही। न जाओ, कुएँ पर ही रुके रहो। कुएँ ही बने रहो लेकिन तुम कुआँ नही हो। यह झूठ है सरासर। **यह झूठ तुम्हें दुख देता रहेगा।** यह झूठ तुम्हे पीड़ा देता रहेगा। यह झूठ तुम्हें बाँधा रहेगा। इस झूठ मे आनन्द की कोई सम्भावना नही है।

कुआँ मिटेगा जरूर, सागर तक जाकर लेकिन मिटते ही उसकी सारी चिन्ता, दुख, सब मिट जायगा। क्योंकि वह उसके कुआँ और व्यक्ति होने से बँधा था, उसकी इगो (अहकार) मे बँधा था। और हमे तो ऐसा लगेगा कि कुआँ जाकर सागर मे मिट गया है, कुछ भी नही हुआ। लेकिन कुएँ को थोड़े ही ऐसा लगेगा। **कुआँ तो कहेगा कि मैं सागर हो गया, कौन कहता कि मैं मिट गया !** यह तो पड़ोस का जो कुआँ नही गया है वह उससे कहेगा पागल कहाँ जाता है, वहाँ तो मिट ही जाना है तो जाना क्यो ? लेकिन जो गया है वह कहेगा, कौन कहता है मिट जाना है। मैं तो मिटूँगा ही एक अर्थ मे—कुएँ के अर्थ में, लेकिन सागर के अर्थ हो भी जाऊँगा।

इसलिए चुनाव कुआँ बने रहने का या सागर होने का है सदा। क्षुद्र से बँधे रहने का, या विराट् के साथ एक हो जाने का है ? लेकिन वह अनुभव की बात

है। और अगर कुएँ ने कहा कि मैं मिटने से डरता हूँ तो फिर तो उसको सागर से सब सम्बन्ध तोड़ लेने पड़ेंगे। क्योंकि उन सम्बन्धों में सदा भय है कि कभी भी पता न चल जाय कि मैं सागर हूँ। तो उसको अपने सब झरने तोड़ लेने पड़ेंगे क्योंकि वह झरने सब सागर तक जाते हैं। या उसे झरने की तरफ से आँख मोड़ लेनी पड़ेगी। वह सदा बाहर देखता रहे, भीतर न देखे भूलकर, क्योंकि भीतर देखने से कभी भी सम्भावना है कि उसे पता चल जाय कि अरे, मैं नहीं हूँ, सागर ही है। तो फिर वह बाहर देखे। और तब झरने जितने छोटे हों उतने अच्छे है। क्योंकि उनसे बाहर जाना अधिक आसान रह जायगा। जितने सूखे हों उतने अच्छे, बिलकुल सूख जायें तो और भी अच्छे। लेकिन तब कुआँ मरेगा। समझेगा कि मैं बचा रहा हूँ अपने को, लेकिन मरेगा।

८. अपने को मिटा दो और पा लो—अनन्त को

जीसस का वचन है कि जो अपने को बचायगा वह मिटेगा और जो मिटायेगा वही केवल बच सकता है। तो हमारे मन में सवाल उठता ही है कि मिट जायेंगे, वहाँ जायें क्यो ? तो अगर यह मिटना ही हमारा सत्य है तो ठीक है। और बचाने से कैसे बचेंगे ? अगर सागर में पहुँच के मिटना होता है तो कुआँ बने रह कर कितने दिन बच सकोगे ? इतना बड़ा सागर होकर भी मिटना हो जाता है तो इतने से कुएँ को कैसे बचाओगे, कितने दिन बचाओगे ? जल्दी इसकी ईंटें गिर जायेंगी, जल्दी इस पर मिट्टी गिरेगी, जल्दी इसका पानी सूख जायगा। जब सागर से भी न बच सकोगे, तो कुएँ से कैसे बचोगे ? और कितनी देर बचोगे ? इसी से मृत्यु का भय पैदा होता है। वह कुएँ का भय है। सागर से मिलना नहीं चाहता, क्योंकि उसमे डर है मिटने का। इसलिए सागर से अपने को दूर कर लेता है और कुआँ बन जाता है। और फिर मौत का भय सताने लगता है क्योंकि सागर से जैसे ही टूटा कि मरने की स्थिति करीब आने लगी। क्योंकि सागर से जुड़कर जीवन है। इसलिए हम सब मृत्यु से भयभीत हैं। डरे हुए हैं कि कहीं मर न जायें। लेकिन, मरना पड़ेगा। और दो ही तरह की मृत्यु है। या तो तुम सागर में कूद कर मर जाओ। वह मरना बहुत आनन्दपूर्ण है। क्योंकि मरोगे नहीं, सागर हो जाओगे। और एक यह कि तुम कुएँ को जोर से पकड़े बैठे रहो सूखोगे, सड़ोगे, मिट जाओगे।

हमारा मन कहता है कोई प्रलोभन चाहिए। क्या मिलेगा क्या ? जिसकी वजह से हम सागर में जायें ? क्या मिलेगा जिससे हम समाधि को खोजें, शून्य को खोजें ? हम पहले पूछते हैं मिलेगा क्या ? हम इसको पूछते ही नहीं कि इस मिलने की दौड़ में हमने अपने को खो दिया है। सब तो मिल गया है, मकान मिल गया है, धन मिल गया है, वह सब मिल गया है और हम खो गये हैं। हम बिलकुल

नहीं हैं वहाँ। अगर मिलने की भाषा में पूछते हो तो मैं कहूँगा कि अगर खोने को तैयार हो जाओ तो तुम तुमको मिल जाओगे। अगर खोने को तैयार नहीं हो, बचाने की कोशिश की तो तुम खो जाओगे, और सब बच जायगा। और बहुत सी चीजें बच जायेंगी, बस तुम खो जाओगे।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि गहरी श्वास (Deep Breathing) से शरीर में ऑक्सीजन और कार्बन-डाय-ऑक्साइड का अनुपात बदल जाता है। तो इस अनुपात के बदलने का कुण्डलिनी जागरण के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है ?

९. तीव्र श्वास से प्राण-ऊर्जा की वृद्धि

आचार्यश्री : बहुत सम्बन्ध है। एक तो हमारे भीतर जीवन और मृत्यु दोनों की सम्भावनानाएँ हैं। उसमें जो **आक्सीजन** है वह हमारे **जीवन की सम्भावना** है। और जो **कार्बन** है—वह हमारी **मृत्यु की सम्भावना** है। जब ऑक्सीजन क्षीण होते होते समाप्त हो जायेगी और सिर्फ कार्बन रह जायेगी तुम्हारे भीतर तो तुम लाश रह जाओगे। ऐसे ही जैसे कि हम एक लकड़ी को जलाते हैं। जब तक ऑक्सीजन मिलती है, जलती चली जाती है। आग होती है, जीवन होता है। फिर ऑक्सीजन चुक गयी, आग बुक गयी फिर कोयला, कार्बन पड़ा रह जाता है—पीछे। **कोयला मरी हुई आग है।** तो हमारे भीतर दोनों का काम चल रहा है पूरे समय।

भीतर हमारे जितनी ज्यादा कार्बन होगी उतनी लिथार्जी (Lethargy), सुस्ती होगी। इसलिए दिन में नींद लेना मुश्किल पड़ता है, रात में आसान पड़ता है। क्योंकि रात में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो गयी है और कार्बन की मात्रा बढ़ गयी है। इसलिए रात में हम सरलता से सो जाते हैं और दिन में सोना इतना सरल नहीं होता है क्योंकि हवा में ऑक्सीजन बहुत मात्रा में है। सूरज के आ जाने के बाद ऑक्सीजन की अनुपात पूरी हवा में बदल जाता है। सूरज के हटते ही ऑक्सीजन का अनुपात नीचे गिर जाता है। इसलिए **अन्धेरा जो है, रात्रि जो है वह प्रतीक बन गया है सुस्ती का, आलस्य का, तमस का। सूर्य जो है वह तेजस् का प्रतीक बन गया है, क्योंकि उसके साथ ही जीवन आता है।** रात सब कुम्हला जाता है। फूल बन्द हो जाते हैं। पत्ते झुक जाते हैं। आदमी सो जाता है। सारी पृथ्वी एक अर्थों में 'टेम्परेरी डेथ' में चली जाती है। एक अस्थायी मृत्यु में समा जाती है। सुबह होते ही फिर फूल खिलने लगते हैं, पत्ते जीवित हो जाते हैं, वृक्ष हिलने लगते हैं, आदमी जाग जाता है, पक्षी गीत गाने लगते हैं सब तरफ फिर पृथ्वी जागती है। वह जो टेम्परेरी डेथ थी, वह जो अस्थायी मृत्यु थी रात आठ दस घण्टे की, वह गयी। अब जीवन फिर लौट रहा है।

तुम्हारे भीतर भी ऐसी घटना घटती है कि जब तुम्हारे भीतर ऑक्सीजन

की मात्रा तीव्रता से बढ़ती है तो तुम्हारे भीतर जो सोयी हुई शक्तियाँ हैं वह जगती हैं। क्योंकि किसी भी तरह की सोयी हुई शक्तियों के जगने के लिए सदा ही आक्सीजन चाहिए। अब एक आदमी मर रहा है। मरने के बिलकुल करीब है। हम उसकी नाक में ऑक्सीजन का सिलिण्डर लगाये हुए हैं। उसे हम दस-बीस घण्टे जिन्दा रख लेंगे। उसकी मृत्यु घट गयी होती दस बीस घण्टे पहले। लेकिन हम उसे दस-बीस घण्टे खींच लेंगे। वर्ष दो वर्ष भी खींच सकते हैं। क्योंकि उसकी बिलकुल क्षीण होती हुई शक्तियों को हम ऑक्सीजन दे रहे हैं। तो वह सो नही पा रही हैं। उसकी सब शक्तियाँ मौत के करीब जा रही हैं, डूब रही हैं लेकिन हम फिर भी ऑक्सीजन दिये जा रहे हैं।

आज यूरोप और अमेरीका में हजारो आदमी ऑक्सीजन पर अटके हुए है। सारा अमेरीका और यूरोप में बड़े से बड़ा सवाल है अथनेसिया का। वह यह है कि आदमी को स्वेच्छा-मरण का हक होना चाहिए क्योंकि डाक्टर अब उसको लटका सकता है बहुत दिन तक। बड़ा भारी सवाल है। क्योंकि अब डाक्टर चाहे तो कितने ही दिन तक एक आदमी को न मरने दे। और डाक्टर की तकलीफ यह है कि अगर वह उसे जानकर मरने दे तो हत्या का आरोपण उस पर हो सकता है। वह मर्डर हो गया। तो वह अभी ऑक्सीजन देकर इस अस्सी साल के मरते हुए बूढ़े को बचा सकता है। अगर न दे तो यह हत्या के बराबर जुर्म है। तो वह तो उसे ऑक्सीजन देगा। जिससे उसकी जो सोती हुई शक्तियाँ है वह कार्बन की कमी के कारण नहीं सो पायेगी। ठीक इससे उल्टा प्राणायाम, भस्त्रिका आदि और जिसे मैं श्वास की तीव्र प्रक्रिया कह रहा हूँ उसमें होता है।

१०. अधिक प्राण से अधिक जागृति

तुम्हारे भीतर तुम इतनी ज्यादा जीवन-वायु, प्राण-वायु ले जाते हो कि तुम्हारे भीतर जो सोये हुए तत्व हैं उनकी जगने की क्षमता बढ़ जाती है, तत्काल वे जगने शुरू हो जाते हैं। और तुम्हारे भीतर जो सोने की प्रवृति है भीतर वह भी टूटती है।

सुन कर हैरान होंगे, अभी मेरे पास चार वर्ष पहले सिलोन से एक बौद्ध भिक्षु आया। वह तीन साल से सो नही सका था। सब तरह के इलाज किये। वह काम नहीं किये, वह काम नही कर सकते थे। क्योंकि वह एक अनापानसती-योग का प्रयोग कर रहा था। चौबीस घण्टे गहरी श्वास पर ध्यान रख रहा था। अब जिसने उसे बता दिया था उसको कुछ पता नहीं होगा कि चौबीस घण्टे गहरी श्वास पर अगर ध्यान रखा जायगा तो नींद बिलकुल विदा हो जायेगी। तब नींद को लाया ही नहीं जा सकता है। तो इधर तो वह चौबीस घण्टे श्वास पर ध्यान रख रहा है और उधर उसको दवाइयाँ दिलवाये जा रहे हैं। इससे उसको बड़ी

तकलीफ खड़ी हो गयी थी, क्योंकि उसके शरीर में कॉन्फ्लिक्ट (द्वन्द्व) पैदा हो गयी। दवाइयाँ उसको सुला रही हैं। और वह गहरी श्वास का जो प्रयोग चौबीस घण्टे जारी रखे हुए है वह उसकी शक्तियों को जगा रहा है। उसके भीतर एक ऐसी खिंच (अन्तर विरोध) पैदा हो गयी कि जैसे कोई कार में एक्सीलरेटर और ब्रेक दोनों एक साथ दबाता हो। वह तो बहुत परेशानी में था। किसी ने कहा तो वह मेरे पास आया। तो मैं उसको देखकर समझा कि वह तो पागलपन में पड़ा है। तो मैंने उससे कहा कि अनापानसती-योग बन्द करो। तो उसने कहा इससे क्या सम्बन्ध है। तो उसे ख्याल ही नहीं था कि अगर श्वास का इतना ज्यादा प्रयोग करेंगे कि आक्सीजन इतनी मात्रा में हो जाय कि शरीर सो ही न सके। तो फिर कैसे सोओगे ? और या फिर मैंने उससे कहा कि सोने का ख्याल ही छोड़ दो और यह दवाइयाँ लेना बन्द कर दो। तुम्हें कोई जरूरत नही है दवाइयाँ लेने की। अगर यह प्रयोग जारी रखते हो तो नींद नहीं आने से कोई हर्ज नहीं होगा। एक आठ दिन उसने प्रयोग बन्द किया तो उसको नींद आनी शुरू हो गयी। कोई दवा की जरूरत नही रही।

११. अधिक कार्बन से अधिक मूर्छा

तो हमारे भीतर सोने की सम्भावना बढ़ती है कार्बन के बढ़ने पर। इसलिए जिन-जिन चीजों से हमारे भीतर कार्बन बढ़ता है वे सभी चीजें हमारे भीतर सोयी हुई शक्तियों को और सुलाती हैं। हमारी मूर्छा बढ़ती चली जाती है। जैसे दुनिया में जितनी संख्या आदमी की बढ़ रही है उतनी मूर्छा का तत्व ज्यादा होता चला जायगा। क्योंकि जमीन पर आक्सीजन कम और आदमी ज्यादा होते चले जायेंगे। कल एक ऐसी हालत हो सकती है कि हमारे भीतर जागने की क्षमता कम-से-कम रह जाय। इसलिए तुम सुबह ताजा अनुभव करते हो। एक जंगल में जाते हो तो ताजा अनुभव करते हो। समुद्रों के तट पर तुम ताजा अनुभव करते हो। बाजार की भीड़ से सुस्ती छा जाती है, सब तमस हो जाता है। वहाँ बहुत कार्बन है। ऑक्सीजन भी निरन्तर बन रहा है लेकिन हमारी भीड़ में रहने की आदतें, वह सारी ऑक्सीजन को पीये चली जाती हैं। इसलिए जहाँ भी आक्सीजन ज्यादा है वहाँ तुम प्रफुल्ल अनुभव करोगे। वह चाहे बगीचा हो, चाहे नदी का किनारा हो, चाहे पहाड़ हो, जहाँ भी ऑक्सीजन ज्यादा है वहाँ तुम एकदम प्रफुल्लित हो जाओगे। स्वस्थ हो जाओगे। जहाँ भीड़-भड़क्का है, सिनेमा गृह है, चाहे मन्दिर हो वहाँ तुम एक दम से सुस्त हो जाओगे, वहाँ मूर्छा पकड़ लेगी।

१२. तीव्र परिवर्तन में दर्शन की स्पष्टता

तो तुम्हारे भीतर ऑक्सीजन को बढ़ाने का प्रयोजन है। उससे तुम्हारे

भीतर का सन्तुलन बदलता है। तुम सोने की तरफ उन्मुख न रह कर के जागने की तरफ उन्मुख होते हो। और अगर यह मात्रा तेजी से और एकदम बढ़ायी जा सके तो तुम्हारे भीतर सन्तुलन में एकदम से इतना फर्क होता है जैसे तराजू का एक पल्ला जो नीचे लगा था एकदम ऊपर चला गया, ऊपर का तराजू का पल्ला बिलकुल नीचे आ गया। अगर झटके के साथ तुम्हारे भीतर का सन्तुलन बदला जा सके तो उसका तुम्हें अनुभव भी जल्दी होगा। अगर पल्ला बहुत धीरे-धीरे-धीरे-धीरे आये तो पता नहीं चलेगा कि कब बदलाहट हो गयी।' इसलिए मैं तीव्र श्वास के प्रयोग को कह रहा हूँ। इतने जोर से परिवर्तन करो कि दस मिनट में तुम एक स्थिति से ठीक दूसरी स्थिति में प्रवेश कर जाओ। और तुम साफ देख सको क्योंकि जल्दी चीज बदलती है, तभी देखी जा सकती है।

जैसे कि हम सब जवान से बूढ़े होते हैं, बच्चे से जवान होते हैं लेकिन हम कभी पता नहीं लगा पाते कि कब हम बच्चे थे और कब जवान हो गये। कब हम जवान थे और कब हम बूढ़े हो गये। अगर कोई तारीख हमसे पूछे कि किस तारीख को आप जवान से बूढ़े हुए हैं तो हम तारीख न बता सकेंगे। बल्कि बड़ी भ्रान्ति चलती रहती है। बूढ़ा मन में समझ ही नहीं पाता कि बूढ़ा हो गया है। क्योंकि उसकी जवानी और उसके बुढ़ापे के बीच कोई गैप (अन्तराल) नहीं है, कोई तीव्रता नहीं है। बच्चा कभी नहीं समझ पाता कि वह जवान हो गया है। वह अपने बचपन के ढंग अख्तियार किये चला जाता है। दूसरों को वह जवान दिखने लगता है और उसको पता नहीं चला है कि वह जवान हो गया है। माँ बाप समझते हैं कि जिम्मेदार होना चाहिए, यह होना चाहिए, वह होना चाहिए, लेकिन वह अपने को बच्चा समझे जा रहा है। क्योंकि कभी ऐसी तीव्रता से कोई घटना नहीं घटी जिसमें उसको पता चले कि अब वह बच्चा नहीं रहा, अब जवान हो गया है। बूढ़ा आदमी जवान की तरह व्यवहार किये चला जाता है। उसे पता नहीं चल पा रहा है कि वह बूढ़ा हो गया है। पता कैसे चले ? क्योंकि पता चलने के लिए तीव्र संक्रमण चाहिए। अगर ऐसा हो कि एक आदमी फलाँ तारीख को घण्टे भर में जवान से बूढ़ा हो जाय तो किसी को कहने की जरूरत न होगी कि तुम बूढ़े हो गये हो। एक बच्चा एक घण्टे में फलाँ तारीख को बीस साल का पूरा हो और एकदम जवान हो जाय। तो किसी बाप को कहना न पड़ेगा कि तुम्हारी उम्र अब बड़ी हो गयी है अब यह बचपना छोड़ो। वह खुद ही जान लेगा कि बात घट गयी है। अब मैं दूसरा आदमी हूँ।

मैं तो इतना ही तीव्र संक्रमण चाहता हूँ कि तुम पहचान सको इन दो स्थितियों का फर्क कि तुम्हारा सोया हुआ चित्त, तुम्हारा सोया हुआ व्यक्तित्व, तुम्हारी 'स्लीपिंग कान्सेसनेस' (Sleeping Consciousness) है और

तुम्हारी प्रबेकन्ड, जागी हुई, प्रबुद्ध चेतना है। यह इतनी तीव्रता से और झटके से होना चाहिए, छलाँग, जम्प की तरह कि तुम पहचान पाओ कि फर्क हो गया है। यह पहचान काम पड़ेगी। यह पहचान बहुत कीमत की है। इसलिए मैं ऐसे प्रयोगों का पक्षपाती हूँ जो तुम्हें तीव्रता से रूपान्तरण करते हों। अगर बहुत वक्त ले ले तो तुम कभी समझ न पाओगे कि क्या हो रहा है। और खतरा क्या है? अगर तुम समझ न पाओ तो हो सकता है कि थोड़ा बहुत रूपान्तरण भी हो जाय लेकिन उससे तुम्हारी समझ गहरी न हो पायेगी। कई बार ऐसा हो जाता है। बहुत बार ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति आत्मिक अनुभव से बहुत निकट पहुँच जाता है अनायास, चलते-चलते, कहीं से, लेकिन झटके से नहीं, तीव्रता से नहो तो वह पकड़ ही नही पाता कि क्या हुआ। और उसकी वह जो व्याख्या करता है वह कभी भी ठीक नहीं होती। क्योंकि उसकी व्याख्या के लिए उतना फासला नहीं होता। बहुत मौके पर ऐसी घटना घटती है जबकि तुम करीब होते हो एक नये अनुभव के, लेकिन तुम उसको टाल जाओगे। तुम उसकी व्याख्या अपने पुराने हिसाब में ही कर लोगे क्योंकि वह इतना धीरे-धीरे हुआ है कि उसका कभी पता नहीं चलेगा।

एक आदमी को मैं जानता हूँ जो कि भैंस को उठा लेता है। उसके घर मे भैंसे है और बचपन से उसके घर मे जब भैंस पैदा हुई तो उसे उठाता रहा है रोज। और उठाकर घूमता रहा है। भैंस रोज धीरेधीरे बड़ी होती गयी है और रोज उसका भी उठाने का बल थोड़ा-थोड़ा बढ़ता चला गया। अब वह पूरी भैंस को उठा लेता है। अब वह चमत्कार मालूम होता है। हालाँकि उसको भी नही लगता है कि यह कोई चमत्कार है। दूसरों को लगता है कि बड़ा मुश्किल का मामला है, भैंस को उठा ले एक आदमी। मगर वह इतना क्रमिक हुआ है कि उसे भी पता नही है और हमें यह चमत्कार दिखता है, क्योंकि हमारे लिए यह बड़ा फासला मालूम हो रहा है दोनो में। उसमे कही तालमेल नहीं दिखता है। हम उठा नही सकते है, वह उठा रहा है।

१३. अधिक जीवन-ऊर्जा से आत्मा की ओर यात्रा सरल

तो तीव्रता का प्रयोग इसीलिए कहता हूँ। और प्राण वायु का तो बहुत मूल्य है। असल में जितनी मात्रा मे तुम अपने शरीर को ऑक्सीजन से, प्राण वायु से भर लोगे उतनी ही त्वरा से, स्पीड से तुम शरीर के अनुभव से आत्म अनुभव की तरफ झुक जाओगे। क्योंकि अगर बहुत ठीक से समझो तो शरीर तुम्हारा डेड एण्ड (Dead End), मृत छोर है। यानी शरीर तुम्हारा वह हिस्सा है जो मर चुका है। इसलिए वह दिखायी पड़ रहा है। तुम्हारा वह हिस्सा जो सख्त हो चुका है, इसलिए दिखायी पड़ रहा है। तुम्हारा वह हिस्सा

जो अब तरल नहीं है, ठोस हो गया है। और आत्मा तुम्हारा वह हिस्सा है जो तरल है ठोस नहीं। हवाई है, पकड़ में नहीं आता है। तो जितनी ज्यादा तुम्हारे भीतर ऊर्जा होगी प्राण की, उतना जागरण और जीवन होगा उतना ही तुम दोनों के बीच साफ फासला कर पाओगे। ये बहुत भिन्नतम तुम्हें मालूम पड़ेंगे। एक हिस्सा यह, एक हिस्सा वह, बिलकुल अलग मालूम पड़ेगा। इसलिए श्वास का बहुत गहरा उपयोग है कुण्डलिनी जागरण के लिए।

१४. जीवन-ज्योति-कुण्डलिनी का ईंधन है प्राण

कुण्डलिनी जो है वह तुम्हारी सोयी हुई शक्ति है। उसको तुम कार्बन के साथ न जगा सकोगे। कार्बन उसे और सुला देगी। उसको जगाने के लिए ऑक्सीजन बहुत सहयोगी है। जिस तरह से भी हो सके। इसलिए निरन्तर समझा गया है कि सुबह का ध्यान उपयोगी है। उसका कोई और ज्यादा मूल्य नहीं है। उसका मूल्य इतना ही है कि सुबह तुम थोड़ी ही श्वास लो तो भी ज्यादा ऑक्सीजन तुम्हारे भीतर पहुँच जाता है। उधर सूर्य उगने के साथ घण्टे भर पृथ्वी बहुत ही अनोखी स्थिति में होती है। उस स्थिति का उपयोग करने के लिए सुबह सारी दुनिया में ध्यान का वक्त चुन लिया गया है। तुम्हारे भीतर जो सोयी हुई शक्ति है उस पर जितनी जोर से प्राण वायु की चोट होगी उतनी शीघ्रता से वह जगेगी। एक दिया जल रहा है तो हमें तो तेल दिखायी पड़ता है, बाती दिखायी पड़ती है, माचिस से आग लगायी, वह दिखायी पड़ती है। लेकिन जो जल रही है ऑक्सीजन वह भर नहीं दिखायी पड़ती है। न तेल मूल्य का है उतना, न बाती उतने मूल्य की है, न माचिस उतने मूल्य का है। लेकिन यह दृश्य हिस्सा है। यह शरीर है उसका। यह दिखायी पड़ता है। और ऑक्सीजन जो जल रही है वह दिखायी नहीं पड़ती है।

मैंने सुना है कि एक घर में बच्चे को लोग छोड़ गये हैं और भगवान का मन्दिर है उस घर में और दिया जलाकर रख गये हैं। जोर की तूफान की हवा आयी है। तो उस बच्चे ने सोचा, बाप कह गया है दिया बुझ न जाय। उसे चौबीस घण्टे घर में वह जलायें। अब जोर की हवा है, बच्चा क्या करे? तो उसने लाकर काँच का एक बड़ा बर्तन उस दिये पर ढाँक दिया। जोर की हवा से तो सुरक्षा हो गयी लेकिन थोड़ी देर में दिया बुझ गया। अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। शायद उतनी तेज हवा को भी दिया झेल जाता। लेकिन हवा के न होने को कैसे झेलेगा, वह मर ही गया। पर वह दिखायी नहीं पड़ता है! हमारे भीतर भी जिसको हम जीवन कह रहे हैं वह ऑक्सीडाइजेशन (ओषदी-करण) ही है, उसी तरह जैसे दिये की।

असल में अगर हम जीवन को वैज्ञानिक अर्थों में लें तो वह प्राण वायु के

जलने का नाम है। चाहे वह वृक्ष में हो चाहे आदमी में हो, चाहे दिये में, चाहे सूरज में, कहीं भी हो, जहाँ भी प्राण वायु जल रही है वहाँ जीवन है। तो जितना तुम प्राण वायु को जला सकोगे उतनी तुम्हारी जीवन की ज्योति प्रगाढ़ हो जायगी। तुम्हारी जीवन की ज्योति ही है कुण्डलिनी। वह उतनी ही प्रगाढ़ हो कर बहने लगेगी, उतनी ही तीव्र हो जायेगी। तो उस पर प्राण वायु का तीव्र आघात परिणामकारी है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन बहुत से योगी समाधि के प्रयोग के लिए गुफाओं का प्रयोग करते हैं। गुफा मे प्राण वायु का प्रवाह बिलकुल नही होता है। यह स्थिति समाधि के प्रयोग के लिए किस प्रकार से उपयोगी होती है ?

१५. प्राणवान व्यक्ति द्वारा गुफा का उपयोग

आचार्यश्री : असल में बहुत सी बातों का आधार है इस प्रयोग में। और जो लोग भी गुफाओं का प्रयोग करते हैं समाधि के लिए, उसमें अगर और बातें नही है तो समाधि में न जा कर मूर्छा में वह चले जायेंगे। और जिसे वे समाधि समझेंगे वह केवल प्रगाढ़ तंद्रा होगी और मूर्छा की अवस्था होगी।

गुफा का उपयोग सिर्फ वही कर सकता है जिसने बहुत प्राणायाम के द्वारा अपने को इतना ऑक्सीडाइज किया हुआ है कि गुफा उसके लिए बेमानी है। इसलिए अगर एक आदमी ने बहुत गहरा प्राणायाम किया है और उसके खून का कण-कण, रोआं-रोआं, रेशा-रेशा आक्सिडाइज हो गया है, तो आठ दिन वह जमीन के नीचे भी दब जाय तो मर नही जायगा। उसका और कोई कारण नही है। उसके शरीर को जितने ऑक्सीजन की जरूरत है उसके पास उतना अतिरिक्त संचय है। हमारे पास कोई अतिरिक्त संचय नही है। अगर तुम बिना प्राणायाम को समझे उस आदमी की बगल मे सो गये तो तुम मरे हुए निकलोगे और वह आदमी आठ दिन के बाद जिन्दा निकल आयेगा। असल मे आठ दिन के लिए जो न्यूनतम ऑक्सीजन की जरूरत है उसके पास उतना संचय है। उतना वह पी गया है। तो गुफा में जा सकता है एक आदमी और तब गुफा से उसको फायदे हो जायेंगे। ऑक्सीजन को तो इस तरह पूरा कर लेगा। उसका उसे डर नही है ज्यादा।

१६. गुफा में साधना करने के सूक्ष्म कारण

गुफा जो सुरक्षा देती है और बहुत सी चीजों से, वह उसके लिए गुफा का उपयोग कर रहा है। गुफा बहुत तरह की सुरक्षा देती है। बाहर की ओर गुल से ही नहीं, बाहर की बहुत सी तरंगों (Waves) से भी। पत्थर की, और खास तरह के पत्थर की गुफा के विशेष अर्थ हैं। कुछ विशेष पत्थर जैसे संगमरमर

कुछ तरंगों को भीतर प्रविष्ट नहीं होने देता है। इसलिए संगमरमर का मन्दिरों में विशेष प्रयोग किया गया है। **कुछ तरंगें उस मन्दिर के भीतर प्रवेश नहीं कर सकती हैं उस पत्थर की वजह से।** वह कारीगरी का उतना नहीं है मामला। उसके पीछे बहुत गहरे अनुभव हैं। **कुछ पत्थर किसी खास तरह की तरंगों को पी जाते हैं।** भीतर नहीं जाने देते है। कुछ पत्थरों पर से कुछ खास तरह की तरंगें वापिस लौट जाती हैं। कुछ पत्थर किसी खास तरह की तरंगो को आकर्षित करते हैं। तो विशेष तरह की गुफाएँ, विशेष आकार मे काटी गयी हैं। क्योंकि आकार का भी बड़ा मूल्य है। और वह **आकार भी विशेष तरंगों को हटाने में सहयोगी होता है।** पर हमें ख्याल में नहीं होता है, जब एक साइंस खो जाती है तो बड़ी मुश्किल हो जाती है।

हम एक कार बनाते हैं। कार को हम एक खास आकार का बनाते हैं। अगर खास आकार मे न बनायें तो उसकी गति कम हो जायेगी। कार का आकार ऐसा होना चाहिए कि वह हवा को चीर सके, हवा से लड़ने न लगे। अगर आकार उसका चपटा हो सामने से और हवा से लड़ने लगे तो वह गति को तोड़ेगा। अगर हवा को चीर सके। लड़े न सिर्फ तीर की तरह चीरे तो हवा की रिसिस्टेंस (रगड़) से जो उसकी गति को बाधा पड़ती है वह तो पड़ेगी नही बल्कि चीरने की वजह से पीछे जो वैक्यूम (वायुशून्यता) पैदा होगा वह भी उसकी गति को बढ़ाने मे सहयोगी हो जायगा।

तुम इलाहाबाद का ब्रिज (गंगा का पुल) कभी देखोगे। इलाहाबाद का ब्रिज बहुत मुश्किल से बना है। क्योंकि गंगा उसके पिलर्स (खम्भों) को खड़ा न होने देती थी। वे पिलर्स गिरते ही चले गये। और एक पिलर तो बनाना असम्भव ही हो गया। सारे पिलर्स बन गये लेकिन एक पिलर नहीं बना। तो तुम वहाँ देखोगे कि एक जूते के आकार का पिलर है। जिन्होंने बनाया है उसमें बडी मुश्किल हुई। उसने जूते के आकार का पिलर बनाया। तो वह गंगा का जो धक्का है उसे पी जाता है। जूते का आकार भी तुम्हें चलने में सहयोगी है। वह हवा को काटता है, रोकता नही। तो उस ख्याल से जूते के आकार का पिलर है। वह गंगा का जो धक्का था दुश्मनी का वह उसको अबशोषित, ऐब्जार्ब कर गया।

१७. गुफाओं के विशेष आकार, विशेष आयतन और विशेष पत्थर का रहस्य

तो गुफाओं के विशेष आकार हैं, विशेष आयतन हैं। विशेष आकार, विशेष पत्थर और विशेष आयतन हैं। एक व्यक्ति एक खास सीमा तक अपने व्यक्तित्व को आरोपित कर सकता है। और वह अनुभव में आ गया तो उनके सारे

रास्ते उसके ख्याल में आ जाते हैं। कि अगर मैं आठ फीट चौड़े और आठ फीट लम्बे चौकोर कमरे को अपने से आपूरित कर सकता हूँ, अर्थात् मैं तो एक ही जगह बैठा रहूँगा लेकिन मेरे व्यक्तित्व से निकलने वाली सारी किरणें इतने हिस्से को घेरा बाँध के भर सकती हैं, तो यह जगह बड़ी सुरक्षित हो जायेगी। इसलिए इसमें कम-से-कम रन्ध्र होने चाहिए, और कम-से-कम द्वार। एक ही द्वार होगा और उसके अपने आकार होंगे। उन आकारों की अपनी विशेषता होगी। जो बाहर के संवेदनों को भीतर न आने देंगे और भीतर में जो पैदा हो रहा है उसको बाहर न जाने देंगे। फिर अगर एक ही गुफा पर बहुत साधकों ने प्रयोग किया हो तब तो अद्भुत फायदा होता है, उसका मूल्य ही बहुत बढ़ जाता है। वह विशेष तरह की सारी की सारी तरंगें वह गुफा पी जाती है और नये साधक के लिए सहयोगी हो जाती है। इसलिए हजारों हजार साल तक एक-एक गुफा का प्रयोग चला है।

अजन्ता जब पहली दफा खोजा गया तो मिट्टी से बन्द मिली थीं सब गुफाएँ। उसके मिट्टी से बन्द करने के कारण हैं। ख्याल में नहीं है कि वे क्यों बन्द कर दी गयी थीं। तो सब गुफाएँ मिट्टी से ढँकी हुई मिलीं। सब मिट्टी से बन्द थीं पूरी की पूरी। सैकड़ों साल तक उनका कोई पता नहीं रहा था। वह पहाड़ ही रह गया था। क्योंकि मिट्टी भर दी गयी थी और उस मिट्टी पर वृक्ष पैदा हो गये थे। और वे इसलिए भर दी गयी थीं कि जब साधक उपलब्ध नहीं हो सके तब उन गुफाओं में जो विशेषता थी, उसको बचाने का और कोई रास्ता नहीं रहा। तो उसे बन्द कर दिया गया ताकि कभी भी कोई साधक खोजे तो वे फिर काम में लायी जा सकें। लेकिन वह दर्शकों के लिए नहीं थी। दर्शकों ने सब नष्ट कर दिया है। अब वहाँ कुछ भी नहीं है।

इन गुफाओं में ऑक्सीजन का तो फायदा नहीं मिलेगा। फायदे दूसरे हैं लेकिन साधना तो बहुत जटिल मामला है। उसके बहुत हिस्से हैं। पर उनके लिए गुफा फायदे की हो सकती है, जिन्होंने काफी प्रयोग किया है। फिर जो गुफा में बैठता था वह गुफे में ही नहीं बैठा रहता था। समय-समय पर गुफा में रहता था, समय-समय पर गुफा के बाहर रहता था। जो बाहर करने योग्य था वह बाहर कर रहा था, जो भीतर करने योग्य था वह भीतर कर रहा था।

मन्दिर हैं, मस्जिद हैं, वह कभी इसी अर्थ में खोजे गये थे जहाँ एक विशेष तरह के तरंगों और कम्पनों का संग्रह है। और उन तरंगों और कम्पनों का उपयोग किया जा सकता है। कहीं अचानक किसी स्थल पर पाओगे कि तुम्हारे विचार एकदम से बदल गये हैं। हालाँकि तुम पहचान नहीं पाओगे। तुम सोचोगे कि तुम्हारे भीतर ही कोई फर्क हो गया है। तुम अचानक किसी आदमी के पास

जाकर पाओगे कि तुम दूसरे आदमी हो गये हो थोड़ी देर के लिए। तुम्हारा कोई दूसरा पहलू ही ऊपर आ गया है। तुम यही समझोगे कि अपने भीतर ही कुछ हो गया है, (Mood) मूड की बात है। ऐसा नहीं है। इतना आसान नहीं है।

१८. महापुरुषों के मृत शरीर भी साधना-जगत् में कीमती

अब जैसे बड़ी खोज चलती है कि पिरामिड्स क्या हैं ? किसलिए बनाये गये हैं ? इतने बड़े पिरामिड्स मिश्र के रेगिस्तान में बनाने का क्या प्रयोजन है ? कितना धन व्यय हुआ है, कितनी शक्ति व्यय हुई है ? और सिर्फ आदमियों की लाशें गड़ाने के लिए इतनी बड़ी कब्रें बनाना बिलकुल बेकार है। लेकिन वे सबके सब साधना के लिए विशेष अर्थ में बनाये गये स्थान हैं। और साधना के उपयोग के लिए ही विशेष लोगों की लाशें भी वहाँ रखी गयी थीं। अभी तिब्बत में हजार-हजार दो-दो हजार साल पुराने साधकों की ममीज (सुरक्षित लाशें) हैं जिनको बहुत गहरे में सुरक्षित रखा हुआ है। जो शरीर बुद्ध के पास रहा हो वह शरीर साधारण नहीं रह जाता है। जिस शरीर के साथ अस्सी साल तक बुद्ध जैसी आत्मा सम्बन्धित रही हो वह शरीर भी साधारण नहीं रह जाता है, वह काया भी कुछ ऐसी चीजें पी जाती है और ऐसी तरंगें पकड़ लेती है जो कि अनूठी हैं। अब दोबारा शायद जगत में वैसा होगा कि नहीं होगा कहना कठिन हो जाता है।

जीसस के मरने के बाद उनकी लाश को एक गुफा में रख दिया गया था, सुबह दफना दिया जायगा लेकिन वह लाश फिर मिली नहीं। और यह बड़ी मिस्ट्री (रहस्य) है ईसाई के लिए कि वह क्या हुआ, वह कहाँ गयी। फिर कहानी है कि वह कहीं देखे गये, दिखायी पड़े तो वे पुनरुज्जीवित (Resurrected) हो गये लेकिन फिर कब मरे ? पुनरुज्जीवित हो कर फिर उनका जीवन क्या है ? ईसाई के पास उसकी कोई कथा नहीं है। असल में जीसस की लाश इतनी कीमती है कि उसे तत्काल उन जगहों में पहुँचा दिया गया जहाँ वह सुरक्षित रखी जा सके बहुत लम्बे समय तक के लिए। और इसकी कोई खबर सामान्य नहीं बनायी जा सकती थी। क्योंकि उस लाश को बचाना बहुत जरूरी था। ऐसा आदमी मुश्किल से कभी होता है।

तो ये जो पिरामिड्स हैं, मन्दिर है, गुफाएँ हैं, और उनके जो विशिष्ट आकार हैं उन सबका गहरा अर्थ है।

प्रश्नकर्ता : आचार्यजी, जब हमारा गहरे ध्यान में प्रवेश होता है तब शरीर क्रमशः निष्प्राण (जड़) होता जाता है और श्वास मन्द व क्षीण होने लगती है, मिटने लगती है। श्वास के इस धीमे होने के कारण शरीर में ऑक्सीजन तो घटता

है। तो ऑक्सीजन की इस कमी का और शरीर के जड़ होने का ध्यान व समाधि से क्या सम्बन्ध है ?

१९. गहरे ध्यान में कम श्वास की जरूरत

आचार्यश्री : असल में जब श्वास पूरी तीव्रता से जग जायेगी और तुम्हारे शरीर के बीच एक गैप पैदा हो जायगा उसकी तीव्रता के कारण तुम्हारा सोया हिस्सा और तुम्हारा जागा हिस्सा भिन्न मालूम होने लगेगा। तो जैसे ही तुम इस जागे हुए हिस्से की तरफ यात्रा शुरू करोगे, तो शरीर को फिर ऑक्सीजन की कोई जरूरत नहीं है। अब तो उचित है कि शरीर बिलकुल सो जाय। अब तो उचित है कि वह बिलकुल जड़ हो जाय, मुर्दे की तरह पड़ा रह जाय। क्योंकि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा अब शरीर की तरफ बह-नीरही है। अब तुम्हारी जीवन-ऊर्जा तो आत्मा की तरफ बहनी शुरू हो गयी है।

आक्सीजन की जो जरूरत है वह है शरीर की। वह जरूरत आत्मा की नहीं है। इसलिए जब आत्मा की तरफ तुम्हारी जीवन-ऊर्जा बहने लगे तो शरीर के लिए बहुत मिनिमम (अल्पतम) आक्सीजन की जरूरत है, जितने से कि वह सिर्फ जीवित रह जाय बस। इससे ज्यादा की कोई जरूरत नहीं है। इससे ज्यादा अगर उसको मिलेगी तो वह बाधा बनेगी। इसलिए क्षीण होती जायेगी श्वास पीछे तुम्हारी। सोयी हुई शक्ति को जगाने के लिए उसका उपयोग है। लेकिन जब वह जग गयी, तब उसका कोई उपयोग नहीं है। अब तुम्हारे शरीर को बहुत कम-से-कम श्वास की जरूरत है। कुछ क्षण तो ऐसे आ जायेंगे जब श्वास बिलकुल बन्द हो जायेगी।

२०. समाधि में श्वास का खो जाना

असल में जब तुम ठीक सन्तुलन (बैलेन्स) पर पहुँचोगे, जिसको हम समाधि कहें, उस पर पहुँचोगे तो श्वास बन्द हो जायेगी। लेकिन हमें श्वास बन्द होने का कोई ख्याल ही नहीं है कि उसका मतलब क्या होता है ? अगर अभी हम अनुभव भी करें तो हम बन्द करेंगे। वह अनुभव नहीं है। श्वास चल रही है, हमने रोक ली, यह एक अभ्यास है। श्वास बाहर जा रही है, श्वास भीतर आ रही है। ये दो अनुभव हमारे है, बाहर जाना, भीतर आना। लेकिन एक दिन ऐसा आता है कि श्वास आधी बाहर है आधी भीतर है और तब ठहर गया है। तो कुछ क्षण ऐसे आयेंगे ध्यान में जबकि तुम्हें लगेगा कि श्वास ठहर तो नहीं गयी है! कहीं बन्द तो नहीं हो गयी, कहीं मर तो नहीं जाऊँगा! बिलकुल ऐसे क्षण आयेंगे। जितना तुम गहरे जाओगे उतने ही श्वास के कम्पन कम होते जायेंगे। क्योंकि उस गहराई पर तुम्हें आक्सीजन की कोई जरूरत नहीं है। उसकी जरूरत थी बिलकुल

पहली चोट पर। यह ऐसे ही है जैसे कि मैंने चाभी लगायी ताले में लेकिन ताला खुल गया। अब मैं चाभी लगाये ही थोड़ा चला जाऊँगा। चाभी बेकार हो गयी। वह ताले में अटकी रह गयी, मैं भीतर चला गया। तुम कहोगे कि आपने पहले चाभी लगायी, अब आप भीतर चाभी क्यों नहीं लगा रहे हैं। वह चाभी लगायी इसलिए थी कि द्वार पर ही उसकी जरूरत थी।

जब तक तुम्हारे भीतर जगी नहीं है कुण्डलिनी, तब तक तो तुम्हें श्वास की चाभी का जोर से प्रयोग करना पड़ेगा। लेकिन जैसे ही वह जग गयी, यह बात बेकार हो गयी, अब तुम भीतर की यात्रा पर चल पड़े हो। और अब तुम्हारा शरीर बहुत कम श्वास माँगेगा। यह तुम्हें बन्द नहीं करनी है। यह अपने से होने लगेगी धीमी, धीमी और धीमी। और एक ऐसा क्षण आयेगा बीच में, एक ऐसी झलक आयेगी कि जैसे सब बन्द हो गया है, सब ठहर गया है।

२१. समाधि जीवन का नहीं, अस्तित्व का अनुभव

जब श्वास बिलकुल ठहरी हुई है, बाहर जाती है, न भीतर जाती है वह परम सन्तुलन का जो क्षण है वही समाधि का क्षण है। उस क्षण में तुम अस्तित्व (Existence) को जानोगे, जीवन (Life) को नहीं। इस फर्क को ठीक से समझ लेना। जीवन की जानकारी तो श्वास से ही बँधी है। जीवन तो ऑक्सी-डाइजेशन ही है, वह तो श्वास का ही हिस्सा है। लेकिन उस क्षण तुम उस अस्तित्व को जानोगे, जहाँ श्वास भी अनावश्यक है। जहाँ सिर्फ होना है। जहाँ पत्थर हैं, पहाड़ हैं, चाँद है, तारे हैं। जहाँ सब ठहरा हुआ है। जहाँ कोई कम्पन भी नहीं है। उस क्षण तुम्हारे श्वास का कम्पन भी रुक जायगा। वहाँ श्वास का भी प्रवेश नहीं है, क्योंकि वहाँ जीवन का भी प्रवेश नहीं है। वह जो है Beyond, जीवन के भी पार।

ध्यान रहे, जो चीज मृत्यु के पार है वह जीवन के भी पार होगी। इसलिए परमात्मा को हम जीवित नहीं कह सकते। क्योंकि जिसके मरने की कोई सम्भावना नहीं है उसे जीवित कहना फिजूल है, कोई अर्थ नहीं है। **परमात्मा का कोई जीवन नहीं है, अस्तित्व है।** हमारा जीवन है। अस्तित्व के बाहर जब हम आते हैं तो हमारा जीवन है। जब हम अस्तित्व में वापिस लौटते हैं तो हमारी मौत है। जैसे कि लहर उठी सागर में, यह उसका जीवन है। इसके पहले लहर तो नहीं थी, सागर था। उसमें कोई कम्पन न था, उसमें लहर थी नहीं। लहर उठी, यह जीवन शुरू हुआ। फिर लहर गिरी, यह लहर की मौत हुई। उठना लहर का जीवन है, गिरना मर जाना है। लेकिन सागर का जो अस्तित्व है, लहरहीन है। जब लहर नहीं उठी थी जो तब भी था और जब लहर गिर जायेगी तब भी होगा। उस अस्तित्व का, उस समता (Tranquillity) का जो अनुभव है वह समाधि

है। तो समाधि जीवन का अनुभव नहीं है अस्तित्व का अनुभव है। एकजीस्टेंशियल (अस्तित्वगत) है वह। वहाँ श्वास की कोई जरूरत नहीं है। वहाँ श्वास का कोई अर्थ नहीं। वहाँ न श्वास का कोई सवाल है और न बे-श्वास का कोई सवाल है। वहाँ सब ठहर जायगा।

२२. समाधि-साधक के वापिस लौटने की समस्या

इसलिए जब साधक की गहरी स्थिति हो तो अनेक बार उसे जीवित रखने के लिए और लोगों की जरूरत पड़ती है, अन्यथा वह खो जा सकता है। वह अस्तित्व से वापिस हो न लौटेगा। रामकृष्ण बहुत बार ऐसी हालत में पहुँच जाते थे। तो छः-छः दिन लग जाते, वे नहीं लौटने की हालत में हो जाते। रामकृष्ण का इतना सम्मान है। लेकिन जिस आदमी ने रामकृष्ण को दुनिया को दिया उसका हमे पता भी नही है। उनका एक भतीजा हृदयराम उनके पास था। उसने उनको बचाया निरन्तर। वह रात-रात भर जागता। जबर्दस्ती मुँह में पानी डालता। जबर्दस्ती दूध पिलाता। श्वास घुटने लगती तो मालिश करता। वह उनको वापिस लाता रहा। रामकृष्ण की विवेकानन्द ने तो चर्चा की दुनिया से, लेकिन जिस आदमी ने बचाया उसका हमे पता भी नही चलता है। उस आदमी ने सारी मेहनत की, वर्षों की मेहनत थी उसकी। रामकृष्ण तो कभी भी जा सकते थे। क्योंकि वह इतना आनन्दपूर्ण है कि लौटना कहाँ सम्भव है? तो अस्तित्व के उस क्षण मे खोना सम्भव है बिलकुल।

वह बहुत बारीक रेखा है जहाँ से तुम उस पार चले जा सकते हो। तो उससे बचाने के लिए स्कूल पैदा हुए, आश्रम पैदा हुए। इसलिए संन्यासियो ने आश्रम नही बनाये, वे संन्यासी समाधि मे बहुत गहरे नही जा सके। उनका सन्यास परिव्राजक का है, सिर्फ घूमते रहने का है। वे ज्यादा गहरे नहीं जा सके। क्योंकि उस गहरे जाने के लिए ग्रुप चाहिए, स्कूल चाहिए। उस गहरे जाने के लिए तथा बचाव के लिए और लोग भी चाहिए जो जानते हों। नहीं तो आदमी कभी भी खो जा सकता था। तो उन्होंने छोटी सी व्यवस्था कर ली कि कहीं ज्यादा देर रुकेंगे तो मोह हो जायगा। लेकिन जिसको ज्यादा देर रुकने से मोह पैदा हो जाता है उसको कम देर से भी होता होगा, थोड़ा कम होता होगा। और क्या फर्क पड़ेगा! तीन महीने से ज्यादा होता होगा, तीन दिन मे जरा कम होता होगा। मात्रा का ही फर्क पड़ेगा और तो कोई फर्क पडने वाला नहीं है। तो जिन जिन लोगों के *सन्यासी सिर्फ घूम रहे हैं* उनमें योग खो जायगा, उनमें समाधि खो जायेगी, उनमें समाधि नही बच सकती है। क्योंकि समाधि के लिए ग्रुप (साधकों का समूह) चाहिए। व्यक्ति तो समाधि में खो जा सकता है लेकिन उसको लौटाने का मामला बहुत और है।

तो ध्यान तक तो व्यक्ति को कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन समाधि के क्षणों के बाद बहुत सुरक्षा की जरूरत है। और वही क्षण है कि जब वह बचाया जा सके तो उस लोक की खबरें ला सकता है। जहाँ उसने 'पीप' (Peep), किया, जहाँ उसने झाँक लिया जरा-सा। उसको अगर हम लौटा सकें तो वहाँ की थोड़ी खबरें ला सकता है। जितनी खबरें हमें मिली हैं वह उन थोड़े से लोगों की वजह से मिली हैं जो वहाँ से थोड़ा सा लौट आये है। नहीं तो उस लोक की हमे कोई खबर नहीं मिल सकती है। उसके बाबत सोचा तो जाया ही नहीं जा सकता है। उसके सोचने का तो कोई उपाय ही नहीं है। और अक्सर यह है कि वहाँ जो जाय उसके लौटने की कठिनाई हो जाती है। वह वहाँ से खो सकता है। वह प्वाइण्ट आफ नो रिटर्न, न लौट सकने का बिन्दु है। वह वह जगह है जहाँ से छलाँग हो जाती है और खड्ड मिल जाता है। जहाँ से रास्ता टूट जाता है और पीछे लौटने के लिए रास्ता नहीं दिखायी पडता है।

उस वक्त बड़ी सावधानी की जरूरत है। इधर मैं निरन्तर चाहता हूँ कि जिस दिन भी तुम्हें मैं समाधि की तरफ उन्मुख करूँ, उस दिन व्यक्ति कीमती नहीं रह जाता है। उस दिन फौरन स्कूल चाहिए जा तुम्हारी फिक्र कर सके। अन्यथा तुम तो गये। लोग चाहिए जो तुम्हें लौटा सके। और तुम्हें जो अनुभव मिला है वह सुरक्षित करवा सकें। नहीं तो अनुभव खो जायगा।

प्रश्नकर्ता : सहज-समाधि के जीवन मे जो व्यक्ति जीता है, उसकी श्वास की क्या स्थिति होती है ?

२३. सहज समाधिस्थ व्यक्ति की लयबद्ध, संगीतपूर्ण, न्यूनतम श्वास

आचार्यश्री : बहुत ही विगलित (Dissolved) हो जाती है, बहुत लयबद्ध हो जाती है। संगीतपूर्ण हो जाती है। और बहुत-सी बातें होती है। जो आदमी चौबीस घण्टे ही सहज समाधि में है और जिसका मन डोलता नहीं, इधर-उधर नहीं होता है, जैसा है वैसा ही बना रहता है। जो जीता नहीं, अस्तित्व मे होता है। ऐसा जो आदमी है उसकी श्वास एक बहुत ही अपने तरह की लयबद्धता ले लेती है। और जब वह कुछ भी नहीं कर रहा है, बोल नहीं रहा है, खाना नहीं खा रहा है, चल नहीं रहा है तब श्वास उसके लिए बड़ी आनन्दपूर्ण स्थिति हो जाती है। तब सिर्फ होना, सिर्फ श्वास का चलना इतना रस देता है जितना और कोई चीज नहीं देती है। वह बहुत संगीतपूर्ण और बहुत नादपूर्ण हो जाता है।

उस अनुभव को थोडा-बहुत, श्वास की व्यवस्था से भी अनुभव किया जा सकता है। इसलिए श्वास की व्यवस्थाएँ पैदा हुई हैं। जैसा सहज समाधिस्थ व्यक्ति की श्वास होती है, जिस छन्द (Rythm) में चलती है उसी छन्द मे दूसरा आदमी भी अपनी श्वास चलाये तो उसे शान्ति का अनुभव होगा। इसलिए सब

प्राणायाम इत्यादि की अनेक व्यवस्थाएँ पैदा हुई। यह अनेक समाधिस्थ लोगों के पास उनकी श्वास की लयबद्धता को देखकर पैदा की गयी हैं। थोड़ा परिणाम होगा और सहायता मिलेगी।

(यह जो श्वास है, सहज समाधिस्थ व्यक्ति की, यह अत्यन्त मिनिमम, न्यूनतम हो जाती है। क्योंकि जीवन अब जो है, उतना अर्थपूर्ण नहीं रह जाता जितना अस्तित्व अर्थपूर्ण हो जाता है। इस व्यक्ति के भीतर एक और दिशा खुल गयी है जो अस्तित्व की है, जहाँ श्वास वगैरह की कोई जरूरत नहीं है। वह जीता तो वही है। वह रहता तो वहीं है। वह हमसे जब सम्बन्धित होता है तभी वह शरीर का उपयोग कर रहा है अन्यथा वह शरीर का उपयोग नहीं कर रहा है। वह खाना खा रहा है, कपड़े पहन रहा है, सो रहा है, स्नान कर रहा है वह सब हमसे सम्बन्धित होने की व्यवस्था है। उनका अब उसके लिए कोई अर्थ नहीं है। और इस सबके लिए जितनी जीवन-ऊर्जा चाहिए उतनी उसकी श्वास चलती है। वह बहुत न्यून हो जाती है। इसलिए वह बहुत कम ऑक्सीजन की जगह में भी जी सकता है।)

२४. अल्पतम वायु-प्रवाह के स्थानों में साधकों का रहना

इसलिए पुराने मन्दिरों या पुरानी गुफाओं में द्वार दरवाजे नहीं है जिसको हम आज की दुनियाँ में कहें तो बहुत हैरानी की बात है। क्योंकि वे सभी के सब हमें बिलकुल ही स्वास्थ्य विज्ञान के विपरीत मालूम पड़ेंगे। सारे पुराने मन्दिर व गुफाओं में न खिड़की है, न दरवाजा है, न कुछ है। उनमें वायु के आने जाने का कोई खास उपाय नहीं दिखायी पड़ता है। जो उनके भीतर रह रहा था उसे वायु का बहुत उपयोग नहीं था। और वायु को वह चाहता नहीं था कि वह ज्यादा भीतर आये जाये। क्योंकि वायु का जो कम्पन भीतर आता है वह भीतर के जो और सूक्ष्म (Astral) कम्पन है उनको सबको नष्ट कर डालता है। उनके धक्के से उनको जला जाता है। इसलिए वह इनकी सुरक्षा कर रहा था। उसे आने देने के लिए वह उत्सुक नहीं था। लेकिन आज नहीं हो सकता है क्योंकि आज उसके लिए पहले पूरी श्वास की लम्बी साधना चाहिए या समाधिस्थ स्थिति चाहिए।

२५. श्वास पर ध्यान देने से भी श्वास का तीव्र होना

प्रश्नकर्ता : बुद्धिस्ट साधना में अनापानसति अर्थात् श्वास पर ध्यान करने की जो साधना है उससे ऑक्सीजन की मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है?

आचार्यश्री : बहुत असर पड़ता है। यह बहुत मजे की बात है और समझने जैसी है। जीवन की जो भी क्रियाएँ हैं इन पर किसी पर भी अगर तुम ध्यान ले आओ तो उनकी गति बढ़ जाती है। जीवन की जो क्रियाएँ हैं वे ध्यान के बाहर

चल रही हैं, जैसे तुम्हारी नाड़ी चल रही है। अब तुम्हारा डाक्टर तुम्हारी नाड़ी जाँचता है तो वह उतनी ही नहीं होती जितनी जाँचने के पहले थी। थोड़ी-सी बढ़ जाती है। क्योंकि तुम्हारा और डाक्टर का दोनों का ध्यान उस पर चला जाता है। और अगर लेडी (महिला) डाक्टर जाँच रही है तो और ज्यादा बढ़ जायेगी। क्योंकि ध्यान और ज्यादा चला जायगा। नाड़ी की गति उतनी नहीं होती है, जितनी थी। थोड़ा-सा अन्तर पड़ जाता है। इसको तुम ऐसा प्रयोग करो। अपनी नाड़ी ही जाँचो पहले और फिर दस मिनट नाड़ी पर ध्यान रखो कि कैसी चल रही है। और इसके बाद जाँचो तो तुम पाओगे कि उसके कम्पन बढ़ गये हैं। असल में शरीर के भीतर जो भी क्रियाएँ चल रही हैं वह हमारे ध्यान के बाहर चल रही हैं। ध्यान के जाते ही उनकी गति बढ़ जायेगी। ध्यान की मौजूदगी उनकी गति बढाने के लिए 'कॅटेलिटिक' एजेण्ट, उत्प्रेरक तत्व का काम करती है।

अनापानसति बहुत कीमती प्रयोग है, वह श्वास पर ध्यान देने का प्रयोग है। श्वास को घटाना-बढ़ाना नहीं है। श्वास जैसी चल रही है उसे तुम्हें देखना है लेकिन तुम्हारे देखते ही वह बढ़ जाती है। तुमने देखा, ओब्जर्वर हुए कि श्वास की गति बढ़ी। उसको बढ़ना अनिवार्य है। तो उसके बढ़ जाने से परिणाम होंगे। और उसको देखने के भी परिणाम होंगे। लेकिन अनापानसति का मूल लक्ष्य है, उसको बढ़ाना नहीं है, उसको देखना है। (क्योंकि जब तुम अपनी श्वास को देख पाते हो तो धीरे-धीरे निरन्तर देखने से श्वास तुमसे अलग होती जाती है। क्योंकि जिस चीज को भी तुम दृश्य बना लेते हो तुम बहुत गहरे में उससे भिन्न हो जाते हो। असल में दृश्य से द्रष्टा एक हो ही नहीं सकता है। उससे वह तत्काल भिन्न होने लगता है। जिस चीज को भी तुम दृश्य बना लोगे उससे भिन्न होने लगोगे। तो श्वास को तुमने दृश्य बना लिया अपना और चौबीस घण्टे चलते, उठते, बैठते तुम उसको देखने लगे कि जा रही है, आ रही है, जा रही, आ रही। तो तुम्हारा फासला अलग होता जायगा। एक दिन अचानक पाओगे कि तुम अलग खड़े हो और श्वास, वह चल रही है। बहुत दूर तुमसे उसका आना जाना हो रहा है तो इससे वह घटना घट जायेगी। तुम्हारे शरीर से पृथक होने का अनुभव उससे हो जायगा। इसलिए किसी भी चीज को, अगर तुम शरीर की गतियों को देखने लगो, रास्ते पर चलते वक्त ख्याल रखो कि बाँया पैर उठा, दाँया पैर उठा। बस तुम अपने दोनों पैरों की गतियों को देखते रहो पन्द्रह दिन तो तुम अचानक पाओगे कि तुम पैर से अलग हो गये हो। अब तुम्हें पैर अलग से उठते हुए मालूम पड़ने लगेंगे और तुम बिलकुल देखने वाले रह जाओगे। तुम्हारे ही पैर तुम्हें बिलकुल ही मैकेनिकल मालूम होने लगेंगे कि उठ रहे हैं चल रहे हैं। और तुम बिलकुल अलग हो गये हो।)

इसलिए ऐसा आदमी कह सकता है कि वह चलता हुआ चलता नहीं, बोलता हुआ बोलता नहीं, सोता हुआ सोता नहीं। खाता हुआ खाता नहीं है। ऐसा आदमी कह सकता है। उसका दावा गलत नहीं है। मगर उसका दावा समझना बहुत मुश्किल है। अगर वह खाने में साक्षी है तो वह खाते हुए खाना नहीं है, ऐसा उसे पता चलता है। अगर वह चलने में साक्षी है तो चलते हुए चलता नहीं। क्योंकि वह उसका साक्षी है। तो अनापानसति का तो उपयोग है। पर दूसरी दिशा से वह यात्रा है।

प्रश्नकर्ता : तीव्र व गहरी श्वास से क्या आवश्यकता से अधिक ऑक्सीजन फेफड़े में नहीं चली जायेगी और उससे क्या कोई हानि नहीं होगी ?

२६. पूर्ण श्वास से पूर्ण जीवन

आचार्यश्री : असल में कोई भी आदमी ऐसा नहीं है जिसके पूरे फेफड़े में ऑक्सीजन जाती हो। कोई छः हजार छिद्र अगर हैं फेफड़े में तो हजार डेढ़ हजार छिद्रों तक पूर्ण स्वस्थ आदमी की श्वास जाती है। बाकी में कार्बनऑक्साइड भरी रहती है। वह सब गन्दी हवा से भरी रहती है। इसलिए ऐसा आदमी तो मिलना मुश्किल है जो जरूरत से ज्यादा ले ले। जरूरत में लेने वाला आदमी मिलना मुश्किल है। बहुत बड़ा हिस्सा बेकार पड़ा रहता है। उस पूरे तक आप श्वास पहुँचा दें तो उसके बड़े अद्भुत परिणाम होंगे। आप की कांशसनेस (चेतना) का एक्सपैंशन (विस्तार) एकदम से हो जायगा। क्योंकि जितनी मात्रा में आपके फेफड़े में आक्सीजन पहुँचती है उतना ही जीवन का आपको विस्तार मालूम पड़ता है, उतनी ही आपके जीवन की सीमा होती है। जैसे-जैसे आपके फेफड़े में ज्यादा पहुँचती है आपके जीवन का विस्तार बड़ा होता है। तो अगर पूरे फेफड़े तक ऑक्सीजन पहुँचा सकें तो मैक्जीमम (अधिकतम) जिन्दगी का हमें अनुभव होगा।

स्वस्थ और बीमार आदमी में यही फर्क है। बीमार आदमी और भी कम पहुँचा पाता है, और भी कम पहुँचा पाता है। बहुत बीमार आदमी को हमें ऑक्सीजन ऊपर से देनी पड़ती है, वह पहुँचा ही नहीं पाता। उस पर ही छोड़ दें तो वह मर जायगा। बीमार और स्वस्थ को अगर हम चाहें तो ऑक्सीजन की मात्रा से भी नाप सकते हैं कि उसके भीतर कितनी ऑक्सीजन जा रही है। इसलिए आप दौड़ेंगे तो स्वस्थ हो जायेंगे क्योंकि ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जायेगी। व्यायाम करेंगे तो स्वस्थ हो जायेंगे, क्योंकि ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जायेगी। आप कुछ भी ऐसा करेंगे जिससे ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती हो वह आपके स्वास्थ्य में वर्द्धक हो जायेगी। और आप कुछ भी ऐसा करेंगे जिससे ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है वह आपकी बीमारी के लाने में सहयोगी हो जायेगी। लेकिन जितनी

आप ले सकते हैं उतनी ही कभी नहीं ले रहे है। और जितनी आप पूरी ले सकते हैं उससे ज्यादा लेने का सवाल ही नहीं उठता। आप ले नहीं सकते। आपका पूरा फेफड़ा भर जाय, उससे ज्यादा आप ले नहीं सकते। उतनी भी नहीं ले पायेंगे। उतना भी बहुत मुश्किल मामला है।

प्रश्नकर्ता : हम श्वास में जो वायु लेते हैं उसमें केवल ऑक्सीजन ही नही है। उसमें नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि अनेक प्रकार की हवाएँ भी हैं। क्या उन सबका ध्यान के लिए सहयोग है ?

आचार्यश्री : बिलकुल ही ध्यान के लिए सहयोगी होगी, क्योंकि हवा में ऑक्सीजन ही नहीं है और बहुत कुछ है। वह सबका सब आपके लिए जीवन के लिए सार्थक है इसलिए आप जिन्दा हैं। जिस ग्रह पर, जिस उपग्रह पर हवा मे उतनी मात्रा में ये सब चीजें नहीं हैं वहाँ जीवन नही हो सकेगा। वह जीवन की पासिबिलिटी (सम्भावना) है उन सब से। इसलिए इतनी चिन्ता लेने की जरूरत नही है। और जितनी तीव्रता से आप लेंगे उतना हितकर है। क्योंकि उतनी तीव्रता में ऑक्सीजन ही ज्यादा से ज्यादा प्रवेश कर पायेगी और आपका हिस्सा बन पायेगी। बाकी चीजें फेंक दी जायेंगी। और वह जिस अनुपात में चीजें हैं वे सब की सब आपके जीवन के लिए उपयोगी हैं। उससे कोई हानि नहीं है।

२७. हल्केपन का अनुभव और उसकी अभिव्यक्ति

प्रश्नकर्ता : आचार्यजी, तीव्र श्वास-प्रश्वास के बाद शरीर बिलकुल हल्का क्यों लगने लगता है ?

आचार्यश्री : हल्का महसूस होगा, क्योंकि हमारे शरीर का बोध ही हमारा भारीपन है। जिसको हम भारीपन कहते हैं वह हमारे शरीर का बोध है। बीमार दुबला पतला हो तो भी उसको बोझ मालूम पड़ता है और स्वस्थ आदमी कितना ही वजनी हो तो भी उसे हल्का मालूम पड़ेगा। शरीर की जो कान्शसनेस (बोध) है हमारी, वह ही हमारा बोझ है। और शरीर का बोध उसी मात्रा में होता है जिस मात्रा में शरीर में तकलीफ हो। अगर पैर में दर्द है तो पैर का पता चलता है। अगर सिर में दर्द है तो सिर का पता चलता है। अगर कहीं कोई तकलीफ नहीं है तो शरीर का पता ही नहीं चलता है।

इसलिए स्वस्थ आदमी की परिभाषा ही है कि जो विदेह अनुभव करे। जिसको ऐसा न लगे कि मै शरीर हूँ, तो समझना चाहिए कि वह आदमी स्वस्थ है। अगर उसको कोई भी हिस्सा लगता हो कि यह मैं हूँ तो समझ लेना चाहिए वह हिस्सा बीमार है। तो जिस मात्रा में आक्सीजन बढ़ेगी और कुण्डलिनी जगेगी तो कुण्डलिनी को जगते ही आपको आत्मिक प्रतीतियाँ शुरू हो जायेंगी जो कि

शरीर की नहीं हैं और सब बोझ शरीर का है। तो उसकी वजह से तत्काल हल्कापन लगना शुरू हो जायगा। बहुत से लोगों को लगेगा जैसे हम जमीन से ऊपर उठ गये हैं। सभी उठ नहीं जाते, कभी सौ में एकाध दफा ऐसी घटना घटती है कि शरीर थोड़ा ऊपर उठता है। आमतौर से उठता नहीं है लेकिन अनुभव बहुत लोगों को होगा। जब आँख खोलकर देखेंगे तो पायेंगे कि बैठे तो वहीं हैं। लेकिन यह क्यों अनुभव हुआ ? असल में इतनी वेटलेसनेस (भारशून्यता) मालूम हुई, इतना हल्कापन मालूम हुआ कि हल्केपन को जब हम चित्रों की भाषा में कहेंगे तो कैसे कहेंगे। और हमारा जो गहरा मन है वह भाषा नहीं जानता है, वह चित्र जानता है। तो वह यह नहीं कह सकता कि हल्के हो गये वह चित्र बना लेता है कि जमीन से उठ गये।

२८. आन्तरिक अनुभव—चित्रों की भाषा में

हमारा जो गहरा मन है अचेतन, वह चित्र ही जानता है इसलिए रात सपने में भाषा नहीं होती आपके पास, चित्र ही चित्र होते हैं। और सपने की सारी बातों को चित्रों में बदलना पड़ता है। इसलिए हमारे सपने समझ में नहीं आते सुबह। क्योंकि हम जो सुबह जाग कर भाषा बोलते हैं वह सपने में नहीं होती। और जो भाषा हम सपने में अनुभव करते हैं वह सुबह नहीं होती। तो इतना बड़ा (अनुवाद) ट्रान्सलेशन है सपने से जिन्दगी में कि उसके लिए बहुत बड़े व्याख्याकार चाहिए। नहीं तो वह ट्रान्सलेट (अनुवादित) नहीं होता। अब एक आदमी बहुत महत्वाकांक्षी (एम्बीसस) है, तो वह सपने में एम्बीसन को कैसे अनुभव करे ? वह पक्षी हो जायगा। वह आकाश में ऊपर से ऊपर उड़ता जायगा। सब उसके नीचे आ जायेंगे। अब महत्वाकांक्षा सपने में जब प्रकट होती है तो उड़ान की तरह प्रकट होगी। उड़ रहा है एक आदमी। कुछ आदमी उड़ने के सपने देखेंगे, वह महत्वाकांक्षा का सपना है। लेकिन महत्वाकांक्षा सुबह वह होगी ही नहीं। सुबह वह आदमी कहेगा, क्या बात है कि मुझे उड़ने-उड़ने के सपने आ रहे हैं। उसकी जो महत्वाकांक्षा है वह सपने में उड़ना बन जाती है।

ऐसे ही ध्यान की गहराई में 'पिक्चोरियल लैंगवेज' (चित्र की भाषा) होगी। हल्कापन अनुभव होगा तो ऐसा लगेगा शरीर उठ गया है। शरीर उठ गया है, यही हलकेपन का पिक्चर (चित्र) बन सकता है। और तो कोई पिक्चर बन नहीं सकता। और कभी बहुत ही हल्केपन की हालत में शरीर उठ भी जाता है।

एक प्रश्नकर्ता : कभी-कभी टूटने का डर लगता है जैसे कि कुछ टूट जायगा।

आचार्यश्री : लग सकता है, बिलकुल लग सकता है।

प्रश्नकर्ता : इसका डर नहीं रखना चाहिए क्या ?

आचार्यश्री : रखने की तो कोई जरूरत नहीं है, लेकिन वह लगता है, यह स्वाभाविक है।

२९. शरीर का रूपान्तरण से गुजरना

प्रश्नकर्ता : गरमी भी बहुत पैदा होती है ?

आचार्यश्री : वह भी हो सकता है क्योंकि तुम्हारे भीतर सारी की सारी व्यवस्था बदलती है। जहाँ जहाँ हम शरीर से जुड़े हैं वहाँ-वहाँ ढिलाई होनी शुरू होती है। जहाँ हम नहीं जुड़े हैं वहाँ नये जोड़ बनने शुरू होते हैं। पुराने ब्रिज (सेतु) गिरते हैं, नये ब्रिज (सेतु) बनते हैं। पुराने दरवाजे बन्द होते हैं, नये दरवाजे खुलते हैं। तो पूरा मकान (रूपान्तर) अल्ट्रेशन में होता है। इसलिए बहुत-सी चीजें टूटती मालूम पड़ती हैं। बहुत से डर मालूम पड़ते हैं। सब व्यवस्था अव्यवस्था हो जाती है। तो ट्रांजीशन (संक्रमण) के वक्त में यह चलेगा लेकिन फिर नयी व्यवस्था आ जायेगी, वह पुरानी व्यवस्था से अद्भुत है, उसका तो कोई मुकाबला ही नहीं है। फिर कभी ख्याल भी नहीं आयेगा कि पुरानी व्यवस्था टूट गयी या थी भी ! बल्कि ऐसा लगेगा कि इतने दिनों उसको कैसे खींचा ! तो यह सब होगा।

३०. अन्तिम समाधान तक प्रयत्न जारी ही रखना

प्रश्नकर्ता : शक्तिपात हो जाने के बाद भी तीव्र श्वास और मैं कौन हूँ, पूछने का प्रयत्न करना पड़ेगा क्या ? वह तो सहज ही होने लगता है ना ?

आचार्यश्री : जब सहज होने लगे तब तो सवाल ही नहीं उठता। तब कोई सवाल नहीं है। तब तो सवाल भी असहज है। होने लगे वह तब तो कोई बात ही नही है। लेकिन जब तक नहीं हुआ है तब तक कई बार मन मानने का होता है कि अब छोड़ो, अब तो हो गया है। अब क्या बार-बार पूछते चले जा रहे हो। अब कितने दिन से तो पूछ रहे हैं। जब तक मन तुमसे कहे कि छोड़ो, अब क्या फायदा है, तब तक तो करते ही चले जाना। क्योंकि मन अभी है। एक दिन अचानक तुम पाओगे कि अब तो करने का कोई सवाल ही नहीं है, करना भी चाहो तो नहीं कर सकते हो। क्योंकि मैं कौन हूँ, तुम तभी तक पूछ सकते हो जब तक पता नहीं है। जिस दिन पता चल जायगा उस दिन तुम पूछोगे कैसे ? अब तो तुम्हें पता ही चल गया है।

मैं पूछता हूँ कि दरवाजा कहाँ है, दरवाजा कहाँ है ? अब मुझे पता चल गया कि यह रहा दरवाजा। क्या अब भी मैं पूछूँगा, दरवाजा कहाँ है ? यह भी नहीं पूछूँगा कि क्या मैं पूछूं अब कि दरवाजा कहाँ है ? इसका कोई मतलब नहीं है। जो हमें पता नहीं है, वहीं तक हम पूछ सकते हैं। जैसे ही हमें पता हुआ वैसे

ही बात खत्म हो गयी। तो जैसे ही मैं 'मैं कौन हूँ' इसकी अनुभूति तुम पर बरस जाय वैसे ही तुम्हारे प्रश्न की दुनिया गयी। (और जैसे ही तुम छलांग लगा जाओ उस लोक में, फिर 'करने' का कोई सवाल नहीं है। फिर तो तुम जो करोगे, वह सब ध्यान ही होगा। तुम चलोगे तो ध्यान होगा, तुम बैठोगे तो ध्यान होगा। तुम चुप रहोगे तो ध्यान होगा, तुम बोलोगे तो ध्यान रहेगा। ऐसा भी कि तुम लड़ने भी चले जाओगे तो भी ध्यान होगा। यानी तुम्हारा क्या करना है, इससे फिर कोई फर्क नहीं पड़ता है।)

३१. ध्यान-प्रयोग के श्रम से मन का पलायन

प्रश्नकर्ता : शक्तिपात का प्रभाव जब क्रियाशील होता है तब तो शरीर की क्रियाएँ व श्वास-प्रश्वास आप ही आप गतिशील हो जाती हैं लेकिन बीच-बीच मे शरीर शान्त हो जाता है व श्वास भी शान्त हो जाती है। तो क्या इस बीच मे भी प्रयास करना चाहिए ?

आचार्यश्री : करोगे तो फायदा होगा। सवाल यह नही कि श्वास चले कि कि नही। वह न चले तो कोई हर्जा नही। प्रश्न है कि तुमने प्रयास किया कि नहीं। वह नहीं चलेगी तो नही चलेगी, तुम क्या करोगे ? लेकिन तुम मत छोड़ देना प्रयास। तुम्हारा प्रयास ही सार्थक है। बड़ा सवाल इतना नहीं है कि वह हुआ कि नहीं हुआ। बड़ा सवाल है—तुमने किया कि नहीं ? तुमने अपने को पूरा दाँव पर लगाया ? तुमने कहीं बचा तो नहीं लिया ? नही तो मन बहुत बचाव करता है। वह कहता है, अब तो हो ही नहीं रहा है, अब छोड़ो। हमारे मन के साथ कठिनाई ऐसी है कि वह रोज हजार रास्ते खोजता है। अब तो हो ही नहीं रहा है, अब तो बिलकुल दम घुटा जा रहा है, अब तो तुम मर ही जाओगे, अब छोड़ो।

तो तुम यह मत सुनना। तुम कहना, घुट जाय तो बड़ा आनन्द है। नही आ सकेगी श्वास तो वह बिलकुल दूसरी बात है, उसमें तुम्हारा कोई वश नही है। लेकिन अपनी तरफ से तुम पूरी कोशिश करना। तुम अपने को पूरा दाँव पर लगाना। उसमें रत्ती भर अपने को बचाना मत, क्योंकि कभी-कभी रत्ती भर बचाना ही सब रोक देता है। कोई नही जानता कि ऊँट किस आखिरी तिनके से बैठ जाय। तुमने बहुत वजन लादा है ऊँट पर, लेकिन अभी इतना वजन नही हुआ है कि ऊँट बैठे। और हो सकता है कि सिर्फ आखिरी तिनका, घास का एक छोटा टुकड़ा और ऊँट बैठ जाय। क्योंकि सन्तुलन तो एक छोटे से तिनके से ही आखिर में तय होता है। पहले नहीं होता है तय। पहले तुमने दो मन लादा और उससे कुछ नही हुआ। ऊँट चलता ही चला गया। लेकिन क्षण में वह अचानक बैठ जाता है। इसे दूसरी तरह से भी समझें। जैसे तुमने एक हथौड़े से ताला तोड़ा, तुम पचास हथौड़े मार चुके थे पूरी ताकत से। और ईक्यावनवे में तुमने

बहुत धीमे ताकत से मारा और ताला टूट गया। संतुलन तो अन्त में बड़ी छोटी बात से तय होता है। कभी-कभी इंच भर से तय होता है, तिनके मे तय होता है। इसलिए ऐसा न हो कि तुम सारी मेहनत करो और एक तिनके से चूक जाओ। और चूक गये तो तुम पूरे चूक गये।

३२. दाँव पूरा ही लगाना पड़ेगा

अभी ऐसा हुआ है। एक मित्र अमृतसर मे तीन दिन से ध्यान कर रहे थे। पढ़े-लिखे डाक्टर हैं, पर कुछ नही हो रहा था। मुझे तो पता ही नही था कि वे क्या कर रहे है, क्या नहीं कर रहे हैं। जानता भी नहीं था उनको। (आखिरी दिन मैंने यह कहा कि हम पानी को गरम करते हैं तो वह १०० डिग्री पर भाप बनता है। और अगर ९९ डिग्री से भी वापिस लौट गये तो यह मत सोचना कि हमने ९९ डिग्री तक गरम किया था तो एक डिग्री की क्या बात है! वह पानी रह जायगा। साढ़े निन्यानबे में भी पानी रह जायगा। और रत्ती भर भी फासला रह जायगा तो भी पानी रह जायगा। वह तो आखिरी अंश भी जब १०० को पार करेगा, काम करेगा तभी भाप बनेगा। और इसमें कोई शिकायत नहीं की जा सकती। तो वे उसी दिन साँझ को मेरे पास आये और कहा कि आपने अच्छा कहा। मैं तो सोच रहा था कि धीरे-धीरे कर रहे हैं, बहुत नही होगा तो थोड़ा तो होगा। वह तो आपने जब कहा तब मुझे ख्याल आया कि बात तो ठीक है। ९८ डिग्री पर गर्म किया तो ऐसा नही कि थोड़ा पानी भाप बनेगा और थोड़ा नहीं बनेगा। वह बनेगा ही नही। एक भी बूंद को अगर भाप बनना हो तो वह १०० डिग्री पर ही बनेगा। उसकी उड़ान तो १०० डिग्री पर ही होगी। उसके पहले वह पानी होना नही छोड़ सकता। पानी होना छोड़ने के लिए उतनी यात्रा उसे करनी ही पड़ेगी। आखिरी इंच तक। उन्होंने कहा, आपने अच्छा कह दिया। आज मैंने पूरी ताकत लगायी। तो मैं हैरान हूँ कि तीन दिन से मैं मेहनत फिजूल कर रहा था। थक भी जाता था, कुछ होता भी नहीं था। आज थका भी नहीं हूँ और कुछ हो भी गया है। तो उन्होंने कहा कि मुझे १०० डिग्री की बात ख्याल रही पूरे वक्त और मैंने इंच भर भी नहीं छोड़ा। मैंने कहा कि अपनी तरफ से नहीं छोड़ना है; पूरी ताकत लगानी है।)

जिनको नही हो रहा है और जिनको हो रहा है उनमें और कोई फर्क नहीं है। सिर्फ इतना ही फर्क है। एक बात और ध्यान रखना कि कई दफा ऐसा लगता है कि तुम्हारा पड़ोसी तुमसे ज्यादा ताकत लगा रहा है और उसको नहीं हो रहा है। लेकिन उसकी १०० डिग्री तुम्हारी १०० डिग्री में फर्क है। जैसे एक आदमी के पास पाँच सौ रुपये हैं और वह तीन सौ रुपये लगा रहा है दाँव पर। और तुम्हारे पास पाँच रुपये हैं और तुम चार रुपये दाँव पर लगा रहे हो तो तुम आगे निकल

जाओगे। तीन सौ और चार से तय नहीं होगा, पूरे अनुपात से तय होगा। तुमने अपना पूरा लगाया तो सौ डिग्री पर हो। और सबकी सौ डिग्री अलग होगी। उसका कितना पूरा लगाने का सवाल है। अगर तुमने पाँच रुपये लगा दिये तो तुम जीत जाओगे। और वह तीन सौ या चार सौ भी लगा दे तो नहीं जीतेगा। उसके पास पाँच सौ थे। जब तक वह पाँच सौ न लगा दे तब तक वह जीतने वाला नहीं है।

३३. चरम-बिन्दु पर ही सावधानी

(इसलिए अन्तिम प्रयोगों में एक बात ध्यान रखना सदा जरूरी है कि तुम अपने को बचाना मत। कहीं भी यह मत सोचना कि अब ठीक है, फिर से हो जायगा। ऐसा तुमने सोचा कि तुम लौटना शुरू हो जाओगे। और अक्सर ऐसा होगा कि जिस बिन्दु से घटना घटती है उसी बिन्दु से ऐसा होगा। क्योंकि मन उसी बिन्दु पर घबड़ाना शुरू होता है कि अब तो भाप बनी, अब भाप बनी। अब वह कहता है बस काफी हो गया। उबल चुके। पानी भाग हुआ जा रहा है। अब क्या फायदा है। अब लौट आओ। वही क्षण बहुत कीमती है, जब तुम्हारा मन कहे कि अब लौट चलो। अब मन को लगने लगा कि अब मामला खतरे का है। अब टूटने का वक्त करीब आता है, अब मिटे, अब मरे। जब तक खतरा नहीं है तब तक वह कहेगा कि खूब मजे से करो। जैसे ही खतरे के करीब पहुँचे ('ब्वाइलिंग प्वाइण्ट', उबलने के बिन्दु के पास) कि वह तुमसे कहेगा कि अब बस। अब तो सारी ताकत लगा दी, अब तो होता ही नहीं। उसी वक्त सावधान रहना। वही क्षण है जब तुम्हें पूरा लगा देना है। उस एक क्षण में चूकने से कभी वर्ष चूकना हो जाता है। और निन्यानबे डिग्री तक पहुँचने में भी वर्षों लग जाते हैं कभी। और कभी पहुँच पाते हैं और तत्काल चूक जाते हैं। जरा सी बात और चुका सकती है।

इसलिए तुम मत बचाव करना।)

एक प्रश्न कर्ता : ज्यादा ताकत लगाने से नाड़ियाँ अगर टूट जायेंगी तो ?

आचार्यश्री : टूट जाने दो। बचा कर ही क्या करना है। टूट ही जायेगी। बचा के भी क्या करोगे।

प्रश्नकर्ता : हम अज्ञान में तो मरना नहीं चाहते हैं ना ?

आचार्यश्री : तो मरोगे अज्ञान में अगर नाड़ी बचाओगे। करोगे क्या ? हमारी तकलीफ यह है कि हम जिन चीजों को बचाने के लिए चिन्तित रहते हैं उनको बचाने से होना क्या है।

प्रश्नकर्ता : हमारे पास इतना ही अल्प सा तो है। उसे भी कैसे खो दें ?

आचार्यश्री : हाँ अगर वह भी होता तब भी कुछ था। तब तुम्हें डर न होता उसके खोने का। वह भी नहीं है। अक्सर नंगे आदमी कपड़े चोरी

जाने के डर से भयभीत रहते हैं। क्योंकि इससे एक मजा आता है कि अपने पास भी कपड़े हैं। उसका जो रस है भीतर, वह यह रहता है कि अरे अपने कोई नंगे थोड़े ही हैं। कपड़े चोरी न चले जायें। कपड़े हैं तो चोरी जाने की फिक्र नहीं रहती है। कपड़े ही हैं, चोरी चले जायेंगे तो चले जायेंगे। यह भय छोड़ना।

इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हारी नाड़ियाँ टूट जायेंगीं। भय से टूट सकती हैं, ध्यान से नहीं टूट सकती हैं। भय से तो टूट ही जाती हैं। लेकिन भय से हम भयभीत नहीं होते हैं। भय से टूट जायेंगे। चिन्ता से टूट जायेंगे, उससे हम भयभीत नहीं हैं। तनाव से टूट जायेंगे, उससे हम भयभीत नहीं हैं। ध्यान से हम भयभीत हैं जहाँ कि टूटने का कोई सवाल नहीं है। वहाँ कुछ टूटी भी होगा तो जुड़ सकता है। लेकिन हम अपने भय पालते हैं। और वह भय हमें सुविधा बना देते हैं कि ऐसा न हो जाय, ऐसा न हो जाय। लौट आने का हमें सारा इन्तजाम कर लेते हैं। तो मैं यह कहता हूँ, जाओ ही क्यों? यह दुविधा खतरनाक है। मैं कहता हूँ जाओ ही मत। बात ही छोड़ो। उसकी चिन्ता ही मत लो। लेकिन हम दोनों काम करना चाहते हैं।

३४. साधना के लिए हमारी आत्म-वंचना

हम जाना भी चाहते हैं और नहीं भी जाना चाहते हैं। तब दुविधा हमारे प्राण ले लेती है। और तब हम अकारण परेशान होते हैं। सैकड़ों, लाखों लोग अकारण परेशान होते हैं। उनको परमात्मा को खोजना भी है और बचना भी है कि कहीं मिल न जाय। अब ये दोहरी दिक्कतें हैं। हमारी सारी तकलीफ जो है, वह ऐसी है कि हम जो भी करना चाहते हैं उसको किसी दूसरे तल पर मन के नहीं भी करना चाहते हैं। दुविधा हमारा प्राण है। ऐसा नहीं है कि कुछ हम करना चाहते हैं तो करना ही चाहते हैं। जिस दिन ऐसा हो उस दिन तुम्हें कोई रुकावट नहीं होगी। उस दिन जिन्दगी गति बन जाती है। लेकिन हमारी हालतें ऐसी हैं कि एक पैर उठाते हैं और एक पैर वापस लौटा लेते हैं। एक ईंट मकान की रखते हैं और दूसरी उतार लेते हैं। रखने का भी मजा लेते रहते हैं और रोने का भी मजा लेते रहते हैं कि मकान बन नहीं रहा है। दिन भर मकान जमाते हैं रात भर उतार देते हैं। दूसरे दिन फिर दीवाल वहीं की वहीं हो जाती है, फिर हम रोने लगते हैं कि बड़ी मुश्किल है, मकान बन नहीं रहा है। यह जो कठिनाई है यह समझनी चाहिए अपने भीतर। और इसको ऐसे ही समझ सकोगे जब तुम यह समझो कि ठीक है टूटेगी न, तो टूट ही जाय। तीस चालीस साल नहीं भी टूटीं। तो करोगे क्या! एक दफ्तर में नौकरी करोगे। रोज खाना खाओगे। दो चार बच्चे पैदा करोगे। पति होगा, पत्नी होगी। यह होगा वह होगा, यही

सब होगा। और इन सबको छोड़ जाओगे तो ये बेचारे अपनी नाड़ियाँ न टूट जायें उसके लिए डरते रहेंगे। करोगे क्या ?

अगर हमको थोड़ा-सा भी यह ख्याल में आ जाय कि जिन्दगी जिसको हम बचाने की कोशिश में हैं, उसमें बचाने योग्य भी क्या है ! तो दाव पर लगा सकते हैं, नहीं तो नहीं लगा सकते हैं। और यह बहुत ही स्पष्ट हमारे मन में साफ हो जाना चाहिए कि जिस-जिस चीज को हम बचाने जाते हैं उनमें क्या है बचाने जैसा। और बचा के भी कहाँ बचता है। यह स्पष्ट हो तो फिर तुम्हें कठिनाई नहीं होगी। टूटेगी तो टूट जायेगी। टूटती नहीं है, अभी तक टूटी नहीं है। अगर तोड़ दो तो एक नयी घटना होगी।

१०. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक ४ जुलाई, १९७०

●

कुण्डलिनी साधना में परम-शून्य हो गये व्यक्ति का महत्व

१. शक्तिपात और प्रभु-प्रसाद (Grace)

प्रश्नकर्ता : आचार्यजी, आपने नारगोल शिविर में कहा है कि 'शक्तिपात का अर्थ है—परमात्मा की शक्ति आप में उतर गयी।' बाद की चर्चा में कहा कि 'शक्तिपात और प्रभु-कृपा (Grace) में फर्क है।' इन दोनों कथनों के बीच विरोधाभास लगता है। कृपया इसे समझायें।

आचार्यश्री : दोनों में थोड़ा फर्क है, और दोनों में थोड़ी समानता भी है। असल में दोनों के क्षेत्र एक दूसरे पर प्रवेश कर जाते हैं। शक्तिपात परमात्मा की ही शक्ति है। असल बात तो यह है कि उसके अलावा और किसी की शक्ति ही नहीं है। *लेकिन शक्तिपात में कोई व्यक्ति माध्यम की तरह काम करता है।* अन्ततः तो वह भी परमात्मा है। लेकिन प्रारम्भिक रूप से कोई व्यक्ति माध्यम की तरह भी काम कर सकता है।

जैसे आकाश में एक बिजली कौंधी। घर में भी बिजली जल रही है। वे दोनों एक ही चीज हैं। लेकिन घर में जो बिजली जल रही है वह एक माध्यम से प्रवेश कर रही है। आदमी का हाथ उसमें साफ और सीधा है।

वर्षा में जो बिजली कौंध रही है वह भी परमात्मा की है। लेकिन इसमें बीच में आदमी भी है। उसमें बीच में आदमी नहीं है। अगर दुनिया से आदमी मिट जाय तो आकाश की बिजली तो कौंधती रहेगी लेकिन घर की बिजली बुझ

जायेगी। शक्तिपात घर की बिजली जैसा है जिसमें आदमी माध्यम है और प्रसाद, ग्रेस (Grace) आकाश की बिजली जैसा है जिसमें आदमी माध्यम नहीं है।

२. परमात्मा शक्ति का संचार—व्यक्ति के माध्यम से

तो जिस व्यक्ति को ऐसी शक्ति उपलब्ध हुई है, जो परमात्मा से किसी अर्थों में संयुक्त हुआ है, वह तुम्हारे लिए माध्यम बन सकता है। क्योंकि वह तुमसे ज्यादा अच्छा विहिकल (Vehicle), वाहन है। उस शक्ति के लिए वह आदमी परिचित है, उसके रास्ते परिचित हैं। वह शक्ति उस आदमी के माध्यम से बहुत शीघ्रता से प्रवेश कर सकती है। तुम बिलकुल अपरिचित हो, अनगढ़ हो, वह आदमी गढ़ा हुआ है। और उसके माध्यम से तुममें प्रवेश करे तो एक तो वह गढ़ा हुआ वाहन है इसलिए बड़ी सरलता है। और वह दूसरा तुम्हारे लिए बहुत संकीर्ण द्वार है जहाँ से तुम्हारी पात्रता के योग्य शक्ति तुम्हें मिल जायगी। तो घर की बिजली में बैठ कर तुम पढ़ सकते हो, आकाश की बिजली के नीचे बैठ कर पढ़ नहीं सकते। घर की बिजली एक नियन्त्रण में है। आकाश की बिजली किसी नियन्त्रण में नहीं है।

तो कभी अगर किसी व्यक्ति के ऊपर आकस्मिक प्रसाद की स्थिति बन जाय, अनायास ऐसे संयोग इकट्ठे हो जायें कि उसके ऊपर शक्तिपात हो जाय तो बहुत सम्भावना है वह व्यक्ति पागल हो जाय, विक्षिप्त हो जाय, उन्मादग्रस्त हो जाय। क्योंकि यदि वह शक्ति बड़ी हो और उसकी पात्रता कम हो तो सब अस्त-व्यस्त हो सकता है। फिर अनजान, अपरिचित सुखद अनुभव भी दुखद हो जाते हैं। जो आदमी वर्षों तक अन्धेरे में रहा हो उसके सामने अचानक सूरज आ जाय तो उसे प्रकाश दिखायी नहीं पड़ेगा और भी ज्यादा अन्धेरा दिखायी पड़ेगा। अन्धेरे में तो वह थोड़ा देखने का आदी हो गया था। रोशनी में तो उसकी आँख ही बन्द हो जायेगी। तो कभी ऐसा हो जाता है कि ऐसी स्थितियाँ बन सकती हैं भीतर कि अनायास तुम पर विराट शक्ति का आगमन हो जाय लेकिन उससे तुम्हें सांघातिक नुकसान पहुँच सकते हैं। क्योंकि तुम तो तैयार नहीं हो। तुम तो चौंक कर पकड़ लिये गये हो। तो दुर्घटना हो सकती है। ग्रेस भी दुर्घटना बन सकती है।

३. शक्ति का नियंत्रित संचार

दूसरी जो शक्तिपात की स्थिति है उसमें दुर्घटना की सम्भावना बहुत कम है। नहीं के बराबर है। क्योंकि कोई व्यक्ति माध्यम है। और संकीर्ण माध्यम से एक तो शक्ति का मार्ग बहुत सँकरा हो जाता है। फिर वह व्यक्ति नियन्त्रण

भी कर सकता है। वह तुम तक उतना ही पहुंचने दे सकता है जितना तुम झेल सकते हो। लेकिन ध्यान रहे कि फिर भी वह व्यक्ति स्वयं शक्ति का मालिक नहीं है, सिर्फ वाहक है। इसलिए कोई कहता है, मैंने शक्तिपात किया तो वह गलत है। वह ऐसे होगा जैसे बल्ब कहने लगे कि मैं प्रकाश दे रहा हूँ तो वह गलत कह रहा है। हालांकि बल्ब को यह भ्रान्ति हो सकती है। इतने दिन से रोज-रोज प्रकाश देता है। इसलिए यह भ्रान्ति हो सकती है कि प्रकाश मैं दे रहा हूँ। बल्ब से प्रकाश प्रकट तो हो रहा है लेकिन बल्ब से प्रकाश पैदा नहीं हो रहा है। वह उद्‌गम का स्रोत नहीं है, अभिव्यक्ति का माध्यम है। तो जो कोई दावा करता हो कि मैं शक्तिपात करता हूँ वह भ्रान्ति में पड़ गया है, वह बल्ब जैसी भ्रान्ति में पड़ गया है।

शक्तिपात तो सदा परमात्मा का ही है। लेकिन कोई व्यक्ति माध्यम बने तो उसको शक्तिपात कहेंगे। कोई व्यक्ति माध्यम न हो तो यह आकस्मिक हो सकता है कभी, तो नुकसान पहुँच सकता है। लेकिन किसी व्यक्ति ने बड़ी अनन्त प्रतीक्षा की हो और किसी व्यक्ति ने अनन्त धैर्य से ध्यान किया हो तो भी प्रसाद के रूप में शक्तिपात हो जायगा। तब कोई माध्यम भी नहीं होगा। लेकिन तब दुर्घटना नहीं होगी। क्योंकि उसकी अनन्त प्रतीक्षा, उसका अनन्त धैर्य, उसकी अनन्त लगन, उसका अनन्त संकल्प उसमें अनन्तता के झेलने की सामर्थ्य पैदा करता है। तो दुर्घटना नहीं होगी। इसलिए दोनों तरफ से घटना घटती है। लेकिन तब उसे शक्तिपात मालूम नहीं पड़ेगा उसको प्रसाद ही मालूम पड़ेगा। क्योंकि कोई माध्यम नहीं है। कोई बीच में दूसरा व्यक्ति नहीं है।

४. अहं-शून्य व्यक्ति ही माध्यम

तो दोनों बातों में समानता है, दोनों बातों में भेद है। मैं इसी पक्ष में हूँ कि जहाँ तक हो सके प्रसाद, ग्रेस (Grace) उपलब्ध हो। जहाँ तक हो सके कोई व्यक्ति बीच में माध्यम न बने। लेकिन कई स्थितियों में यह सम्भव है। कई लोगों के लिए असम्भव है। तो बजाय इसके कि वे अनन्त काल तक भटकते रहें, किसी व्यक्ति को माध्यम भी बनाया जा सकता है। लेकिन वही व्यक्ति माध्यम बन सकता है जो व्यक्ति न रह गया हो। तब खतरा बहुत कम हो जाता है। वही व्यक्ति माध्यम बन सकता है जिसमें अब कोई अस्मिता, कोई अहंकार (इगो) शेष न रह गयी हो। तब खतरा न के बराबर हो जाता है। खतरा इसलिए न के बराबर हो जाता है कि ऐसा व्यक्ति माध्यम भी बन जायगा और फिर भी गुरु नहीं बनेगा। क्योंकि गुरु बनने वाला तो अब नहीं कोई रह गया। इस फर्क को ठीक से समझ लेना।

५. सद्गुरु—अर्थात् जो गुरु बनने की कामना से भी मुक्त हो चुका है

जब कोई व्यक्ति गुरु बनता है तो तुम्हारे सम्बन्ध में बनता है और जब माध्यम बनता है तब परमात्मा के सम्बन्ध में बनता है। तुमसे कुछ लेना देना फिर नहीं रह जाता। समझ गये न मेरा फर्क। अब परमात्मा के सम्बन्ध में कोई भी स्थिति बने वहाँ अहंकार नहीं टिक सकता। लेकिन तुम्हारे सम्बन्ध में कोई भी स्थिति बने, तो अहंकार टिक जायगा। तो जिसको ठीक गुरु कहें वह वही है जो गुरु नहीं बनता है। सद्गुरु की परिभाषा अगर करनी है तो यही है सद्गुरु की परिभाषा कि जो गुरु नहीं बनता। इसका मतलब यह है कि समस्त गुरु बनने वाले लोग गुरु नहीं होने की योग्यता रखते हैं। (गुरु बनने के दावे से बड़ी अयोग्यता और कोई नहीं है। यानी वही डिसक्वालिफिकेशन है। क्योंकि तुम्हारे सम्बन्ध में वह अहंकार की स्थिति ले रहा है और खतरनाक हो जायगा।)

अगर अनायास कोई व्यक्ति शून्य हो गया है, उसका अहंकार विलीन हो गया है, तो वह वाहन बन सकता है। 'बन सकता है' कहना भी गलत है। शायद कहना चाहिए वाहन बन गया है तो उसके निकट भी शक्तिपात की घटना घट सकती है। लेकिन तब उसमें दुर्घटना की कोई सम्भावना नहीं रहेगी। न तो तुम्हारे व्यक्तित्व को दुर्घटना की सम्भावना है और न जिस वाहन से शक्ति तुम तक आयी है उसके व्यक्तित्व को दुर्घटना की सम्भावना है। फिर भी मौलिक रूप से मैं ग्रेस के पक्ष में हूँ। और जब इतनी शर्तें पूरी हो जायें कि व्यक्ति न हो, अहंकार न हो तो फिर शक्तिपात ग्रेस के करीब पहुँच गया। बहुत करीब पहुँच गया। और अगर उस व्यक्ति को कोई पता ही न हो तब तो फिर वह बहुत ही करीब पहुँच गया है। तब उसके पास होने मात्र से घटना घट जायेगी। अब यह व्यक्ति तुम्हें व्यक्ति की तरह दिखायी पड़ रहा है, लेकिन वह परमात्मा के साथ एकाकार ही हो गया है। कहना चाहिए कि वह परमात्मा का फैला हुआ हाथ हो गया है जो तुम्हारे करीब है। अब यह बिलकुल इन्स्ट्रूमेन्टल है, साधन मात्र है। और ऐसी स्थिति में अगर यह व्यक्ति 'मैं की भाषा' भी बोले तो भूल हमें हो जाती है बहुत बार। क्योंकि ऐसी अवस्था में जब यह व्यक्ति 'मैं' बोलता है तो इसका मतलब होता है परमात्मा। लेकिन हमें बड़ी कठिनाई होती है।

इसलिए कृष्ण कह सकते हैं अर्जुन से "मामेकं शरणं व्रज—मेरी शरण में आ जा तू।" हजारों साल तक हम सोचेंगे कि यह आदमी कैसा रहा होगा जो कहता है मेरी शरण में आ जा। तो अहंकार पक्का है। लेकिन यह आदमी कह इसलिए पाया है कि यह बिलकुल 'नहीं है'। अब इसका यह 'मैं' किसी का फैला हुआ हाथ है। और वही बोल रहा है कि मेरी शरण आ जा। यह शब्द बड़ा कीमती है 'माम् एकम्'। मुझ एक की शरण आ जा। मैं तो एक कभी

नहीं होता। मैं तो अनेक है। वह किसी ऐसी जगह से बोल रहा है जहाँ 'मैं' एक ही होता है। लेकिन अब यह कोई अहंकार की भाषा नहीं है। लेकिन हम तो अहंकार की भाषा ही समझते हैं इसलिए हम समझेंगे कि कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि मेरी शरण आ जा। तब भूल हो जायेगी। इसलिए हमारे प्रत्येक शब्द को देखने के दो मार्ग हैं। एक हमारी तरफ से, जहाँ से भ्रान्ति सदा होती है और एक परमात्मा की तरफ से जहाँ कोई भ्रान्ति का सवाल नहीं है। तो कृष्ण जैसे व्यक्ति से घटना घट सकती है। उसमें कृष्ण के व्यक्तित्व का कोई लेना देना नहीं है।

इतने करीब आ जाना चाहिए शक्तिपात प्रसाद के कि तुम जो कहते हो कि आपकी दोनों बातों में विरोध दिखायी पड़ता है। दोनों घटनाएँ अपने प्रति पर बहुत विरुद्ध हैं। लेकिन दोनों घटनाएँ अपने केन्द्र पर अति निकट हैं। और मैं उसी पक्ष में हूँ जहाँ कि प्रसाद में और शक्तिपात में किंचित् फर्क करना मुश्किल हो जायगा। वहीं सार्थक है बात। वही कीमती है।

चीन में एक सन्यासी बड़ा समारोह मना रहा था। वह अपने गुरु का जन्म दिन मना रहा था। और उस तरह का त्यौहार गुरु के जन्म दिन पर ही मनाया जाता है। लेकिन लोग उससे पूछते हैं कि तुम तो कहते थे कि मेरा कोई गुरु नहीं है तो फिर जन्म दिन किसका मना रहे हो। और तुम तो सदा कहते थे कि गुरु की कोई जरूरत ही नही है तो तुम आज यह उत्सव किसका मना रहे हो? वह आदमी कहता है कि मुझे मुश्किल में मत डालो। अच्छा हो कि मैं चुप रहूँ। लेकिन जितना वह चुप रहता है उतना लोग और पूछते हैं कि बात क्या है, तुम यह मना क्या रहे हो? क्योंकि यह दिन तो गुरु पर्व है, इस दिन तो गुरु का उत्सव ही मनाया जाता है। तुम्हारा कोई गुरु है क्या? तो वह आदमी कहता है कि तुम नहीं मानोगे तो मुझे कहना पड़ेगा। मैं आज उस आदमी का स्मरण कर रहा हूँ जिसने मेरा गुरु बनने से इन्कार कर दिया था। क्योंकि अगर वह मेरा गुरु बन जाता तो मैं सदा के लिए भटक जाता। उस दिन तो मैं बहुत नाराज हुआ। आज लेकिन उसे धन्यवाद देने का मन होता है। वह चाहता तो गुरु तत्काल बन सकता था। क्योंकि मैं तो गया था खुद उसको मनाने। लेकिन, वह गुरु बनने को राजी नहीं हुआ। तो वे लोग पूछते हैं कि फिर धन्यवाद क्यों देते हो जब वह गुरु बनने को राजी न हुआ। वह सन्यासी कहता है तुम मुझे ज्यादा मुश्किल में मत डालो। अब इतना मैंने कह दिया है, यह काफी है। फिर भी वह आदमी गुरु तो नही बना था। लेकिन जो कोई गुरु नहीं कर सकता है, वह आदमी कर गया है। इसलिए ऋण दोहरा हो गया। एक तो वह आदमी गुरु भी बन जाता तो भी लेन-देन हो जाता न दोनों तरफ से? कुछ उसने भी

हमें दिया था, हमने भी उसे दिया था। आदर दी थी, श्रद्धा दी थी, पैर छू लिये थे, निपटारा हो गया था। कुछ हमने भी कर लिया था। लेकिन, वह आदमी गुरु भी न बना। उसने आदर भी नहीं माँगा, श्रद्धा भी नहीं माँगी तो ऋण दोहरा हो गया। बिलकुल इकतरफा हो गया। वह दे गया और हम धन्यवाद भी नहीं दे पाये। क्योंकि धन्यवाद देने का भी उसने स्थान नहीं छोड़ा।

६. शुद्धतम शक्तिपात प्रसाद के निकट

तो यहाँ शक्तिपात ऐसी स्थिति में और प्रसाद में कोई फर्क नहीं रह जायगा। और जितना फर्क हो उतना ही शक्तिपात से बचना और जितना फर्क कम हो उतना ही ठीक है। इसलिए मैं जोर देता हूँ प्रसाद पर, ग्रेस पर। और जिस दिन शक्तिपात भी प्रसाद के करीब आ जाय, इतना करीब आ जाय कि तुम डिस्टिंग्विश (Distinguish), फर्क न कर सको कि इन दोनों में क्या फर्क है, उस दिन समझ लेना कि बात ठीक हो गयी है। तुम्हारे घर की बिजली जिस दिन आकाश की बिजली की तरह स्वच्छन्द, सहज और विराट शक्ति का हिस्सा हो जाय और जिस दिन तुम्हारे घर का बल्ब दावा करना छोड़ दे कि मैं हूँ शक्ति का स्रोत, उस दिन तुम समझना कि अब शक्तिपात भी हो तो वह प्रसाद ही है। मेरी बात ख्याल में रखना।

७. कुण्डलिनी के चरम विकास पर प्रभु में विसर्जन घटित

प्रश्न : नारगोल में आपने कहा है कि 'आपसे शक्ति उठे और परमात्मा से मिल जाय या परमात्मा की शक्ति आये और आप में मिल जाय।' प्रथम कुण्डलिनी का उठना है, दूसरी बात ईश्वर की कृपा (Grace) के मिलने की है। आगे आपने कहा है कि 'आपके भीतर सोयी हुई ऊर्जा जब विराट की ऊर्जा से मिलती है तब (Explosion), विस्फोट (समाधि) होता है।' तो (Explosion) या समाधि के लिए कुण्डलिनी जागरण और प्रभु कृपा का मिलन आवश्यक है क्या? या कुण्डलिनी का सहस्रार तक विकास और प्रभुकृपा की उपलब्धि एक ही बात है?

उत्तर : असल में विस्फोट एक शक्ति से कभी नहीं होता। विस्फोट सदा दो शक्तियों का मिलन है। विस्फोट (Explosion), जो है वह एक शक्ति से कभी नहीं होता। अगर एक शक्ति से होता तो कभी का हो जाता है। तुम्हारी माचिस भी रखी है, तुम्हारी माचिस की काड़ी भी रखी है और वह रखी रहे अनन्त जन्मों तक। एक इंच के फासले पर, आधा इंच के फासले पर। रखी रहे, रखी रहे तो आग पैदा नहीं होती। उस विस्फोट के लिए उन दोनों की रगड़ जरूरी है तो आग पैदा होगी। आग छिपी है दोनों में। लेकिन किसी एक में अकेले

पैदा होने का उपाय नहीं है। जो विस्फोट है वह दो शक्तियों की मिलने पर पैदा हुई सम्भावना है। तो व्यक्ति के भीतर जो सोयी हुई है शक्ति वह उठे और उस बिन्दु (सहस्रार) तक आ जाय तो विस्फोट सम्भव है। सहस्रार वह बिन्दु है जिसके पहले मिलन बहुत असम्भव है। जैसे कि तुम्हारे दरवाजे बन्द हैं और सूरज बाहर खड़ा है। रोशनी तुम्हारे दरवाजे पर आ कर रुक गयी है। तुम अपने घर के भीतर से चलकर बाहर की तरफ आओ, आओ और दरवाजे तक आ कर भी खड़े हो जाओ तो भी तुम्हारा सूरज की रोशनी से मिलन नहीं होगा। दरवाजा खुले और मिलन हो जायगा।

८. सहस्रार पर प्रतीक्षारत् परमात्मा

तो जो हमारा अन्तिम चरम बिन्दु है कुण्डलिनी का वह सहस्रार है, वह हमारा द्वार है। वहाँ प्रेम सदा ही खड़ी हुई है। उस द्वार पर परमात्मा निरन्तर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। लेकिन तुम ही अपने द्वार पर नहीं हो। तुम ही अपने द्वार से बहुत भीतर कहीं और हो। तो तुम्हें अपने द्वार तक आना है, वहाँ मिलन हो जायगा। और वह मिलन विस्फोट होगा। विस्फोट इसलिए कह रहे हैं उसे कि उस मिलन में तुम तत्काल विलीन हो जाओगे। उस मिलन के बाद तुम बचोगे नहीं। वह जो माचिस की काड़ी है, वह बचेगी नहीं उस विस्फोट के बाद। माचिस तो बचेगी, काड़ी नहीं बचेगी, काड़ी तो जल कर राख हो जायेगी। काड़ी तो निराकार में विलीन हो जायेगी। उस घटना में तुम तो मिट जाओगे, विलीन हो जाओगे, टूट जाओगे, बिखर जाओगे, खो जाओगे। तुम बचोगे नहीं। तुम जैसे थे द्वार तक आने के पहले वैसे तुम नहीं बचोगे। तुम्हारा सब खो जायगा। जो द्वार के उस पार खड़ा था वही बचेगा। तुम उसी के हिस्से हो जाओगे। यह घटना तुमसे अकेले नहीं हो सकती। उस विस्फोट के लिए, उस विराट शक्ति के पास आना, तुम्हारा आना जरूरी है। उस विराट शक्ति के पास आने के लिए तुम्हारी शक्ति जहाँ सोयी है वहाँ से उसे उठ कर वहाँ तक आना पड़ेगा जहाँ वह शक्ति तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तो कुण्डलिनी की जो यात्रा है वह तुम्हारे सोये हुए केन्द्र से है। उस स्थान तक है, उस सीमान्त तक जहाँ तुम समाप्त होते हो। तुम्हारी जो सीमा है।

९. मनुष्य की सीमाएँ—प्रारम्भ और अन्त की

तो एक सीमा हमारे शरीर की है जो हमने मान रखी है। यह बड़ी सीमा नहीं है। क्योंकि मेरा हाथ कट जाय तो भी कुछ खास फर्क नहीं पड़ता। मेरे पैर कट जायें तो भी कुछ खास फर्क नहीं पड़ता। फिर भी मैं रहता हूँ। अर्थात् इन सीमाओं के घटने-बढ़ने से मैं मिटता नहीं। मेरी आँख चली जायें, मेरे कान

चले जायें तो भी मैं हूँ। तुम्हारी असली सीमा तुम्हारे शरीर की सीम नहीं है, तुम्हारी असली सीमा सहस्त्रार का बिन्दु है जिसके बाद तुम नहीं बच सकते। उस सीमा पर इन्क्रोचमेण्ट (Encroachment), प्रवेश हुआ कि तुम गये। फिर तुम नहीं बच सकते।

तुम्हारी कुण्डलिनी तुम्हारी सोयी हुई शक्ति है। वह तुम्हारे यौन के केन्द्र के निकट और तुम्हारे मस्तिष्क के केन्द्र के निकट तुम्हारी सीमा है। इसीलिए हमें निरन्तर यह ख्याल होता है कि हम अपने पूरे शरीर से चाहे अपनी आइडेन्टिटी (तादात्म्य) छोड़ दें लेकिन अपने सिर से, अपने चेहरे से आइडेन्टिटी छोड़ नही पाते। यह मानने में बहुत कठिनाई नहीं लगती कि हो सकता है यह हाथ मैं न हूँ लेकिन दर्पण में अपना चेहरा देख कर यह सोचें कि यह चेहरा मैं नहीं हूँ तो बहुत मुश्किल हो जाती है। वह सीमान्त है। इसलिए आदमी सब खोने को तैयार हो सकता है. लेकिन बुद्धि खोने को तैयार नहीं होता।

सुकरात से किसी ने पूछा है कि तुम एक असन्तुष्ट सुकरात होना पसन्द करोगे कि एक सन्तुष्ट सुअर होना पसन्द करोगे। क्योंकि सुकरात सन्तोष की बात कर रहा था। वह कह रहा था, सन्तोष परम धन है। तो कोई उससे पूछ रहा है कि तुम एक सन्तुष्ट सुअर होना पसन्द करोगे कि असन्तुष्ट सुकरात होना। तो वह सुकरात कहता है कि सन्तुष्ट सुअर होने से तो मैं एक असन्तुष्ट सुकरात होना ही पसन्द करूँगा। क्योंकि सन्तुष्ट सुअर को तो सन्तोष का पता भी नही हो सकता। असन्तुष्ट सुकरात को कम से कम असन्तोष का पता तो होगा। यह जो कह रहा है कि असन्तुष्ट सुकरात, यानी वह यह कह रहा है कि हम सब खोने को तैयार हैं लेकिन बुद्धि नहीं खोयेंगे, चाहे बुद्धि असन्तुष्ट क्यों न हो।

बुद्धि भी हमारे उस केन्द्र के बहुत निकट है। अगर हम ठीक से समझें तो हमारी सीमान्त दो हैं। एक यौन-केन्द्र हमारी सीमा रेखा है जिसके पार, जिसके नीचे (बिलो दैट) प्रकृति की दुनिया शुरू होती है। जहाँ हम सेक्स के बिन्दु पर होते है वहाँ हममें, पशु में, पक्षी में, पौधे में कोई फर्क नहीं होता। क्योंकि पशु की, पौधे की वह अन्तिम सीमा है जो हमारी प्रथम सीमा है। वहाँ उनकी सीमा खतम होती है। इसलिए सेक्स के बिन्दु पर पशु में और हममें कोई फर्क नहीं होता। वह पशु की अन्तिम सीमा है और हमारी पहली सीमा है। उस बिन्दु पर हम जब खड़े होते हैं तो हम पशु ही होते हैं। हमारी दूसरी सीमा है बुद्धि की। वह हमारे दूसरे सीमान्त के निकट है जिसके पार परमात्मा है। उस बिन्दु पर होकर फिर हम नहीं होते। फिर हम परमात्मा ही होते हैं। और यह हमारी दो सीमा रेखाएँ हैं और इनके बीच हमारी शक्ति का आन्दोलन है।

१०. व्यक्ति का प्रकृति प्रदत्त सक्रिय केन्द्र—यौन-केन्द्र

अभी हमारी सारी शक्ति जिस कुण्ड पर सोयी है वह यौन केन्द्र के पास है। इसलिए आदमी का ९९ प्रतिशत चिन्तन, स्वप्न, क्रिया-कलाप, ९९ प्रतिशत जीवन उसी कुण्ड के आसपास व्यतीत होता है। सभ्यता कितना ही झुठलाये समाज कितना ही और कुछ कहे, आदमी जीता वहीं है। वह काम के पास ही जीता है। वह कमाता है तो इसलिए, मकान बनाता है तो इसलिए। यश कमाता है तो इसलिए। वह जो भी कर रहा है उसके बहुत मूल में खोजने पर उसका काम (सेक्स) मिल जायगा।

११. प्रथम केन्द्र काम का—अन्तिम केन्द्र मोक्ष का

जिनको समझ थी उन्होंने दो ही लक्ष्य बताये। काम और मोक्ष, ये दो लक्ष्य हैं। और अर्थ और धर्म दो साधन हैं। धन (अर्थ) काम का साधन है। इसलिए जितना कामुक युग होगा उतना धन-पिपासु होगा। जितना मोक्ष की आकांक्षा करने वाला युग होगा उतना धर्म-पिपासु होगा। धर्म साधन है। जैसे धन साधन है। अगर मोक्ष पाना हो तो धर्म साधन बन जाता है और अगर काम तृप्ति पानी है तो धन साधन बन जाता है। तो दो हैं लक्ष्य, दो हैं साधन। क्योंकि दो हमारी सीमाएँ हैं। और यह बड़े मजे की बात है कि इन दो सीमाओं के बीच में तुम कहीं भी नहीं टिक सकते। उनके बीच में तुम कहीं नहीं ठहर सकते। क्योंकि उनके बीच में तुम ऐसे मालूम पड़ोगे कि जैसा 'गधा न घर का न घाट का' हो जाता है। कुछ लोग उस हालत में पड़कर बड़ी मुसीबत में पड़ जाते हैं। बहुत लोग पड़ जाते हैं उस मुसीबत में। उनको मोक्ष की अभीप्सा नहीं होती है, अगर काम का विरोध किसी वजह से पैदा हो गया तो वह कठिनाई में पड़ जायेंगे। और काम के बिन्दु से दूर रहते हैं लेकिन वह मोक्ष के बिन्दु के पास नहीं जायेंगे। तब वे एक ऐसी दुविधा में पड़ जायेंगे जो बहुत ही कठिन है, बहुत दुखद व नारकीय है। और उनका जीवन सारा का सारा अन्तर्द्वन्द्व से भर जायगा।

बीच के बिन्दु पर टिकना न उचित है न स्वाभाविक है, न अर्थपूर्ण है। इसे हम ऐसा समझ लें कि जैसे कोई सीढ़ी पर चढ़े और बीच में रुक जाय तो हम उससे कहेंगे कि कुछ भी करो। या तो वापिस लौट आओ या ऊपर चले जाओ। क्योंकि सीढ़ी कोई मकान नहीं है, सीढ़ी कोई निवास नहीं है। उसमें बीच में रुक जाना किसी भी अर्थ का नहीं है। अगर एक आदमी सीढ़ी पर रुक जाय तो समझो कि उससे ज्यादा व्यर्थ आदमी खोजना मुश्किल होगा, क्योंकि उसे कुछ भी करना है तो उसे सीढ़ी के या तो नीचे के बिन्दु पर आना पड़ेगा या ऊपर के बिन्दु पर जाना पड़ेगा।

तो हमारी जो रीढ़ है, समझ लो कि सीढ़ी है। है भी सीढ़ी। रीढ़ का एक

एक सुरिया समझो, एक-एक स्टेप (सीढ़ी) है। और वह जो हमारी कुण्डलिनी है वह नीचे के केन्द्र से यात्रा शुरू करती है और ऊपर के अन्तिम केन्द्र तक जाती है। ऊपर के केन्द्र पर वह पहुँच जाय तो विस्फोट निश्चित है। और वहाँ फिर विस्फोट नहीं बच सकता। और नीचे के केन्द्र पर पहुँच जाय तो स्खलन निश्चित है। वहाँ स्खलन नहीं बच सकता। इन दोनों बातों को ठीक से समझ लेना।

१२. निम्न बिन्दु पर स्खलन और ऊपरी बिन्दु पर विस्फोट

कुण्डलिनी नीचे की बिन्दु पर है तो स्खलन निश्चित है। ऊपर के बिन्दु पर पहुँच जाय तो विस्फोट निश्चित है। दोनों ही विस्फोट हैं और दोनों के लिए ही दूसरे की जरूरत है। वह जो यौन का स्खलन है उसमें भी दूसरा अपेक्षित है। चाहे कल्पना में ही सही, लेकिन दूसरा अपेक्षित है। उस जगह से भी तुम्हारी ऊर्जा विकीर्ण होगी। तो उस जगह से तुम्हारी पूरी ऊर्जा विकीर्ण नहीं हो सकती। नहीं हो सकती इसलिए कि वह बिन्दु तुम्हारा प्राथमिक बिन्दु है। तुम उससे बहुत ज्यादा हो। उस बिन्दु से तुम आगे आ चुके हो। पशु तो वहाँ कृत-कृत्य हो जाता है। इसलिए पशु मोक्ष नहीं खोजता।

अगर पशु कोई शास्त्र लिखे तो वहाँ दो ही पुरुषार्थ होंगे। अर्थ और काम। धन भी पशु की दुनिया का धन होगा और जिस पशु के पास ज्यादा माँस है, ज्यादा शक्ति है तो उसके पास ज्यादा धन है। वह दूसरे पशुओं से काम की प्रतियोगिता में जीत जायगा। वह अपने आसपास दस मादाएँ इकट्ठी कर लेगा। वह भी एक तरह से धन इकट्ठा किया हुआ है। उसके पास जो ज्यादा चर्बी है, वह धन है। एक के पास तिजोरी ज्यादा है वह भी चर्बी है जो कभी भी चर्बी में कनवर्ट (परिवर्तित) हो सकती है। एक राजा है, वह हजार रानियाँ इकट्ठी कर लेगा। एक जमाना था कि आदमी के पास कितनी सम्पदा है, वह उसकी स्त्रियों से नापा जाता था कि उसके पास कितनी स्त्रियाँ हैं। गरीब आदमी है तो वह कैसे चार स्त्री रख सकता है। तो जैसे हम आज शिक्षा से या धन से नापते हैं कि कौन आदमी कितना शिक्षित है और कौन आदमी के पास कितना बैंक बैलेंस है। यह सब बहुत बाद के मेजरमेण्ट (परिमाण नाप), हैं। पहला मेजरमेण्ट तो एक ही था कि उसके पास कितनी स्त्रियाँ हैं। इसलिए बहुत बार हमें अपने महापुरुषों को बड़ा बताने के लिए बहुत स्त्रियाँ गिनानी पड़ीं, जो झूठी हैं। जैसे कृष्ण की सोलह हजार रानियाँ। उस समय कृष्ण को बड़ा बताने का और कोई उपाय नहीं था। अगर कृष्ण बड़े आदमी हैं तो औरतें कितनी हैं? वह एक मात्र मेजरमेण्ट (नाप) होने की वजह से हमको फिर गिनती करानी पड़ी कि बहुत हैं। और सोलह हजार अब बहुत कम मालूम पड़ती हैं। क्योंकि अब हमारे पास बहुत बड़ी संख्याएँ हैं। उन दिनों संख्याएँ बहुत बड़ी नहीं थी। अगर अफ्रीका

में जायें तो अब भी ऐसी कौमें हैं कि जिनकी कुल संख्या तीन तक खतम हो जाती है। अगर किसी के पास चार औरतें हैं तो वह यह कहेगा कि बहुत असंख्य हैं। क्योंकि तीन के बाद संख्या खतम हो जाती है और वह गिन तो सकता नहीं है।

१३. विस्फोट या स्खलन, दोनों के लिए दूसरा अपेक्षित

उस तल पर भी दूसरा अपेक्षित है। अगर दूसरा वस्तुतः मौजूद न हो तो भी कल्पना में अपेक्षित है। दूसरे के बिना स्खलन भी नहीं हो सकता ऊर्जा का। लेकिन कल्पना में भी दूसरा उपस्थित हो तो स्खलन हो सकता है। इसी वजह से ख्याल पैदा हुआ कि अगर कल्पना में भी परमात्मा उपस्थित हो तो विस्फोट हो सकता है। इसलिए भक्ति की लम्बी धारा चली जिसने कि कल्पना को ही विस्फोट का आधार बनाने की कोशिश की। क्योंकि जब कल्पना में वीर्य स्खलन हो सकता है तो सहस्रार में ऊर्जा का विस्फोट क्यों नहीं हो सकता है! इस स्खलन ने काल्पनिक ईश्वर को भी जोर से मन में बिठा लेने की सम्भावनाओं को प्रगाढ़ कर दिया। उसका कारण यही था। लेकिन यह नहीं हो सकता है। स्खलन इसलिए हो सकता है कल्पना में क्योंकि वस्तुतः स्खलन हुआ है। इसलिए उसकी कल्पना की जा सकती है। लेकिन परमात्मा से तो कभी मिलन नहीं हुआ। इसलिए कोई कल्पना नहीं की जा सकती। कल्पना हम उसकी ही कर सकते हैं जो हुआ है। तो फिर उसकी कल्पना से भी काम लिया जा सकता है। यानी एक आदमी ने कोई एक तरह का सुख लिया है तो फिर वह आँख बन्द करके उसका सपना भी देख सकता है। लेकिन अगर लिया ही नहीं है तो फिर सपना नहीं देख सकता है। जैसे बहरा आदमी लाख कोशिश करे, सपने में भी शब्द नहीं सुन सकता। उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। अन्धा आदमी हजार उपाय करे तो भी सपने में भी प्रकाश नहीं देख सकता। हाँ यह हो सकता है कि एक आदमी की आँखें चली गयीं। अब वह सपने में बराबर प्रकाश देख सकता है। बल्कि अब सपने में ही देख सकता है। क्योंकि अब तो आँख तो नहीं है। इसलिए असलियत में तो नहीं देख सकता।

तो जो हमारा अनुभव हुआ है उसकी हम कल्पना भी कर सकते हैं। लेकिन जो अनुभव नहीं हुआ है उसकी तो कल्पना करने का भी उपाय नहीं है। और विस्फोट हमारा अनुभव नहीं है। इसलिए वहाँ कल्पना काम नहीं कर सकती। वहाँ वस्तुतः जाना होगा और वस्तुतः ही घटना घट सकती है। तो जो सहस्र चक्र है वह तुम्हारी अन्तिम सीमा है, जहाँ से तुम समाप्त होते हो।

१४. मनुष्य : पशु और परमात्मा के बीच एक तनावयुक्त सेतु

जैसा कि मैंने कहा कि आदमी एक सीढ़ी है। वैसे ही नीत्से का एक वचन

बहुत कीमती है। वह कहता है कि (मैन इज ए ब्रिज बिट्वीन टू इटर्निटीज) आदमी दो अनन्तताओं के बीच में सिर्फ एक सेतु है। एक अनन्तता है प्रकृति की, उसकी भी कोई सीमा नहीं है और एक अनन्तता है परमात्मा की, उसकी भी कोई सीमा नहीं है। आदमी दोनों के बीच में झूलता हुआ एक सेतु है। इसलिए आदमी पड़ाव नहीं है। या तो पीछे जाओ या आगे जाओ। इस सेतु पर मकान बनाने की जगह नहीं है। और जो भी इस पर मकान बनायेगा वह पछतायेगा। क्योंकि सेतु कोई मकान बनाने की जगह नहीं है सिर्फ पार होने के लिए है।

फतहपुर सीकरी में अकबर ने एक सर्व धर्म मन्दिर बनाने की कल्पना की थी। उसमें एक दीन-ए-इलाही का ख्याल था जो कि सब धर्मों का सारभूत हो। तो उसने उस दरवाजे पर जो वचन खुदवाया है वह जीसस का वचन है। वह वचन यह है कि (यह जगह मुकाम नहीं है, सिर्फ पड़ाव है। यहाँ थोड़ी देर ठहर सकते हो लेकिन रुक ही मत जाना। यह कोई यात्रा का अन्त नहीं है। यह सिर्फ थकान मिटाने की एक पड़ाव है। एक सराय है। जहाँ हम रात भर रुकते हैं और सुबह फिर चल पड़ते हैं। और रुकते सिर्फ इसीलिए हैं कि सुबह चल सकें और रुकने का कोई प्रयोजन नहीं है। यानी रुकने के लिए नहीं रुकते हैं।)

१५. पशु-वृत्तियों का सुख हमेशा क्षणिक

आदमी एक सीढ़ी है जिस पर यात्रा है। इसलिए आदमी सदा तनावग्रस्त है। अगर हम ठीक से कहें तो तनाव-ग्रस्त है आदमी, यह कहना शायद ठीक नहीं है। यही कहना ठीक है कि मनुष्य एक तनाव है। क्योंकि ब्रिज जो है तनाव ही है, तना हुआ है। तना हुआ होकर ही ब्रिज हो सकता है। दो छोरों पर बीच में एक सहारा तना हुआ है। यह मनुष्य एक अनिवार्य तनाव है। इसलिए मनुष्य कभी शान्त नहीं हो सकता। या तो वह पशु होता है तो थोड़ी सी शान्ति मिलती है। और या फिर वह परमात्मा होता है तो फिर पूरी शान्ति मिलती है। पशु हो के भी तनाव उतर जाता है क्योंकि वह वापिस लौट आया है सीढ़ी से, नीचे जमीन पर खड़ा हो गया है। परिचित जमीन पर, पहचानी हुई जमीन पर जिसमें वह अनन्त अनन्त जन्मों रहा है, वहीं वापिस आ गया है। झंझट के बाहर हो गया है। अभी कोई तनाव नहीं है। इसलिए या तो आदमी सेक्स में खोजता है तनाव की मुक्ति या सेक्स से सम्बन्धित और अनुभवों में खोजता है, शराब में, नशे में, जहाँ भी मूर्छा है वहाँ वह खोज लेता है। लेकिन वहाँ तुम थोड़ी देर ही रुक सकते हो। क्योंकि तुम अगर चाहो तो भी स्थायी रूप से पशु नहीं हो सकते हो। बुरे से बुरा आदमी भी क्षण काल को ही पशु हो सकता है। वह जो आदमी किसी की हत्या कर देता है, वह भी क्षण भर में ही कर पाता है। अगर क्षण भर और रुक गया होता तो शायद नहीं कर पाता। हमारा पशु होना करीब करीब ऐसा है जैसे एक आदमी

जमीन पर छलांग लगाता है। वह एक सेकेण्ड को हवा में रह पाता है फिर वापिस जमीन पर लौट आता है।

तो बुरे से बुरा आदमी भी स्थायी बुरा नहीं होता, न हो सकता है। बुरे से बुरा आदमी भी किन्हीं क्षणों में बुरा होता है। और इन क्षणों के बाहर वह ऐसा ही आदमी होता है जैसे सारे आदमी हैं। पर उस एक क्षण को उसे राहत मिल सकती है क्योंकि वह परिचित भूमि पर पहुँच गया है जहाँ कोई तनाव नहीं रहा। इसलिए पशु के मन में तुम्हें कोई तनाव नहीं दिखेगा। उसकी आँखों में झाँकोगे तो कोई तनाव नहीं दिखेगा। पशु पागल नहीं होता, आत्म-हत्या नहीं करता। उसे हृदय का दौरा नहीं पड़ता, उसे ये सब बातें नहीं होतीं। हाँ, आदमी के चक्कर में पड़ जाय तो हो सकता है। आदमी के बैलगाड़ी में जुट जाय तो हृदय का दौरा हो सकता है। आदमी का घोड़ा बन जाय तो मुश्किल में पड़ सकता है। आदमी का कुत्ता हो तो पागल भी हो सकता है। वह दूसरी बात है। वह भी इसीलिए है कि वह आदमी अपने खिंच पर उसको खींच लेता है। इसलिए वह झंझट में डाल देता है। जैसे एक कुत्ता इस कमरे में आये तो वह अपनी मौज से घूमेगा। लेकिन अगर किसी आदमी का पाला हुआ कुत्ता हो तो उससे कहेगा कि बैठ जाओ उस कोने में। तो कुत्ता उस कोने में बैठेगा। वह आदमी की दुनिया में प्रवेश कर गया है। वह पशु की दुनिया से बाहर हो गया है। अब वह झंझट में पड़ने वाला है कुत्ता। है तो वह कुत्ता। लेकिन, वह बैठा है आदमी की तरह। तुमने उसको तनाव में डाल दिया है। अब वह बड़ी झंझट में है कि कब आज्ञा हटे और वह वहाँ से बाहर हो जाय।

आदमी कुछ देर के लिए, क्षण दो क्षण के लिए वहाँ पहुँच सकता है। इसीलिए जो हम निरन्तर कहते हैं कि हमारे सब सुख क्षणिक हैं उसका और कोई कारण नहीं है। सुख शाश्वत हो सकता है। लेकिन जहाँ हम सुख खोजते हैं वह स्थिति क्षणिक है। सुख क्षणिक नहीं है। हम खोजते हैं पशु होने में, तो वह क्षणिक ही हो सकता है। क्योंकि हम पशु क्षण भर को मुश्किल से हो पाते हैं। किसी स्थिति में वापिस लौटना सदा मुश्किल है। अगर तुम कल में वापिस लौटना चाहो, बीते कल में, तो तुम आँख बन्द करके एकाध क्षण को ऐसी कल्पना में हो सकते हो कि लौट गये, लेकिन कितनी देर? आँख खोलोगे तो पाओगे कि वहीं वापिस खड़े हो और जहाँ थे वहीं आ गये हो। पीछे लौटा नहीं जा सकता। क्षण भर की कोई जबर्दस्ती की जा सकती है। फिर पछतावा होगा। इसलिए जितने भी क्षणिक सुख हैं उनके पीछे पछतावा (Repentance) है, एक दुख बोध है कि बेकार मेहनत की। सब व्यर्थ गया। लेकिन फिर चार दिन बाद तुम भूल जाओगे और फिर छलांग लगा लेओगे।

पशु के तल पर जाकर क्षण भर को सुख पाया जा सकता है। प्रभु के तल पर जाकर शाश्वत सुख में डूबा जा सकता है। लेकिन यह यात्रा तुम्हारे भीतर पहले पूरी होगी। तुम्हें अपने सेतु के एक कोने से दूसरे कोने पर पहुँचना होगा तब दूसरी घटना घटेगी।

१६. सम्भोग और समाधि में समानता

इसलिए मैं सम्भोग और समाधि को बड़ी समतुल बातें मानता हूँ। समतुल मानने का कारण है। असल में वे ही दो समतुल घटनाएँ हैं और कोई घटना समतुल नहीं है। सम्भोग की स्थिति में हम ब्रिज के एक छोर पर होते हैं, सीढ़ी के नीचे वाले हिस्से पर होते हैं। जहाँ से हम प्रकृति से मिलते हैं। और समाधि में हम सीढ़ी के दूसरे छोर पर होते हैं जहाँ हम परमात्मा से मिलते हैं। दोनों मिलन हैं, दोनों विस्फोट हैं एक अर्थों में। दोनों में किसी खास अर्थ में तुम खोते हो। सम्भोग में क्षण भर के लिए और समाधि में सदा के लिए। यह दूसरी बात है। लेकिन दोनों स्थितियों में तुम मिटते हो। यह बड़ा क्षणिक विस्फोट है जो वापिस लौट आता है। तुम री-क्रिस्टेलाईज (पुनः संगठित) हो जाते हो। क्योंकि तुम जहाँ गये थे वह तुमसे पीछे की अवस्था थी। उसमें तुम लौट नहीं सकते। लेकिन परमात्मा में जाकर तुम री-क्रिस्टलाईज (पुनः संगठित) नहीं हो सकते हो। क्योंकि जिसमें तुम गये हो उसमें जाते ही फिर तुम्हारा वापिस लौटना उतना ही असम्भव है जैसे कि पहले तुम्हारा पीछे वापिस लौटना असम्भव था। अब तो और भी असम्भव है। अब तो उतना असम्भव है ऐसे कि जैसे एक आदमी बड़ा हो गया है और उसके बचपन के पाजामें में उसे वापस लौट आना पड़े। तो वह भी सम्भव हो सकता है, लेकिन यह सम्भव नहीं है। क्योंकि तुम विराट के साथ एक हो गये हो। अब तुम व्यक्ति में नहीं लौट सकते। अब वह व्यक्ति इतनी क्षुद्र, संकीर्ण जगह है कि जहाँ तुम्हारे प्रवेश का कोई उपाय नहीं है। तुम सोच नहीं सकते कि इसमें जाना कैसे हो सकता है ! तुम यह भी नहीं सोच सकते कि मैं इसमें कभी था तो कैसे था ! इतने छोटे होने में मैं कैसे हो सकता हूँ ! वह बात खत्म हो जाती है। तो उस विस्फोट के लिए दोनों बातें जरूरी हैं, तुम्हारे भीतर की यात्रा तुम्हारे अन्तिम बिन्दु सहस्रार तक आनी चाहिए। और क्यों उसे हम सहस्र कहते हैं वह भी थोड़ा ख्याल में ले लेना जरूरी है।

१७. सहस्र-दल-कमल का खिलना

ये सारे शब्द आकस्मिक नहीं हैं। हमारी भाषा आम तौर से आकस्मिक है, उपयोग से पैदा हुई। जैसे किसी चीज को हम दरवाजा कहते हैं, दरवाजा न कहें कुछ और कहें तो कोई हर्ज नहीं होगा। दुनिया में हजार भाषाएँ हैं तो

हजार शब्द होंगे दरवाजे के लिए, और सभी शब्द काम कर आते हैं। लेकिन फिर भी कोई एक बात जो सांयोगिक नहीं है वह शायद सभी में मेल खायेगी। तो दरवाजा, डोर (Door) या द्वार का भाव है कि जिसके द्वारा हम बाहर-भीतर आते हैं, वह सभी भाषाओं में मेल खायेगा। क्योंकि वह अनुभव का हिस्सा है। वह सांयोगिक नहीं है। जिससे हम बाहर भीतर आते-जाते हैं। दरवाजा, जिससे जगह मिलती है, बाहर-भीतर आने-जाने की, यह स्पेस का ख्याल जो उसमें है, वह सबमें होगा। तो सहस्र शब्द बड़ा अनुभव का है, सांयोगिक नहीं है। जैसे ही तुम उस अनुभूति को उपलब्ध होते हो तो तुम्हें यह लगता है कि तुम्हारे भीतर जैसे हजार-हजार कमल फूल एकदम से खिल गये हैं। हजार भी इसी अर्थ में कि संख्या के बाहर जैसी घटना घटती है। और फूल इस अर्थ में कि फ्लावरिंग (खिलना) होती है। कोई चीज जब बन्द थी कली की तरह वह खुलती है। फूल का मतलब है खिलना। फूल का मतलब वही होता है जो प्रफुल्ल होने का होता है। फ्लावरिंग का भी वही मतलब होता है। कोई चीज, जो बन्द थी, वह खुल गयी है। कली की तरह कोई चीज थी जो अब फूल की तरह हो गयी है। फिर एकाध चीज नहीं खिल गयी है, अनन्त चीजें हैं जो पूरी तरह से खिल गयी हैं। इसलिए कहा जाता है कि सहस्र कमल, हजार कमल खिल गये हैं। यह ख्याल आना भी बिलकुल स्वाभाविक है। तुमने कभी सुबह कमल को खिलते देखा है ? नहीं देखा हो तो गौर से देखना चाहिए। बहुत निकटता से, बहुत चुपचाप बैठ कर उसके धीरे-धीरे पूरे खिलने को देखना चाहिए। तो तुम्हें ख्याल आ सकेगा कि अगर मस्तिष्क के हजार कमल एकदम से खिल जायेंगे तो कैसी प्रतीति होगी। इसकी तुम थोड़ी सी रूप रेखा कल्पना में ले सकोगे।

और भी एक अद्भुत अनुभव हुआ है। जिन लोगों को सम्भोग का बहुत गहरा अनुभव होगा उन्हें भी खिलने का एक अनुभव होता है, क्षण भर के लिए। उनके भीतर भी कोई चीज खिलती है, क्षण भर को, फिर बन्द हो जाती है। लेकिन उस खिलने में और इस खिलने में एक और अनुभव होगा जैसे कि फूल नीचे की तरफ लटका हुआ खिले और फूल ऊपर की तरफ खिले। पर यह तुलना तभी हो सकती है जब दूसरा अनुभव तुम्हारे ख्याल में आ जाय, तब तुम्हें पता चलेगा कि नीचे की तरफ फूल खिल रहे थे और अब ऊपर की तरफ फूल खिल रहे हैं। नीचे की तरफ जो फूल खिले हैं, स्वभावतः वे नीचे के जगत से जोड़ देते हैं। ऊपर की तरफ जो फूल खिलते हैं स्वभावतः वे ऊपर के जगत से जोड़ देते हैं। असल में उनका खिलना (ओपनिंग) तुम्हें (Vulnerable) बना देती है, तुम्हें खोल देती है और तुम किसी दूसरी दुनिया के लिए दरवाजा

बन जाते हो। वहाँ से कुछ तुममें प्रवेश करता है। और उस प्रवेश से तुम्हारे भीतर विस्फोट घटित होता है।

इसलिए ये दोनों बातें जरूरी हैं। तुम जाओगे वहाँ तक और वहाँ कोई प्रतीक्षा ही कर रहा है। यह कहना ठीक नहीं है कि वहाँ से कोई आयेगा। तुम जाओगे वहाँ तक, कोई वहाँ प्रतीक्षा कर रहा है तो घटना घट जायेगी।

प्रश्नकर्ता : क्या केवल शक्तिपात के माध्यम से कुण्डलिनी सहस्रार तक विकसित हो सकती है ? उसके सहस्रार पर पहुँचने पर क्या समाधि का विस्फोट हो जाता है ? यदि शक्तिपात से कुण्डलिनी सहस्रार तक विकसित हो सकती हो तो इसका अर्थ यह न हो जायगा कि दूसरे से समाधि उपलब्ध हो सकती है ?

१८. शक्तिपात के लिए साधक और माध्यम दोनों की तैयारी आवश्यक

आचार्यश्री : असल में इसे ठीक से समझना पड़ेगा। इस जगत में, इस जीवन में कोई भी घटना इतनी सरल नहीं है जिसको तुम एक ही तरफ से देखो और समझ लो। उसे बहुत तरफ से देखना पड़ेगा। अब जैसे मैं दरवाजे पर जाऊँ और जोर से एक हथौड़ा मारूँ और दरवाजा खुल जाय तो मैं यह कह सकता हूँ कि मेरे हथौड़े से दरवाजा खुला। और यह कहना एक अर्थ में सच भी है, क्योंकि अगर मैं हथौड़ा नहीं मारता तो दरवाजा अभी खुलता नहीं। लेकिन इसी हथौड़े को मैं दूसरे दरवाजे पर मारूँ और दरवाजा न खुले, हथौड़ा ही टूट जाय। तब तुम्हें दूसरा पहलू भी ख्याल में आयेगा कि जब तक एक दरवाजे पर मैंने हथौड़ा मारा और दरवाजा खुला तो सिर्फ हथौड़े के मारने से नहीं खुला। दरवाजा भी खुलने के लिए पूरी तरह तैयार था। किसी भी कारण से तैयार था, कमजोर था, जरा जीर्ण था, पर उसकी तैयारी थी। यानी खुलने में सिर्फ हथौड़ा ही नहीं खोल दिया उसे, दरवाजा भी खुला। क्योंकि और दूसरे दरवाजों पर हथौड़े की चोट करके देखी तो हथौड़ा ही टूट गया, कहीं हथौड़ा नहीं टूटा, दरवाजा खुला। कहीं थक गये चोट कर करके और नहीं खुला।

इस घटना में जहाँ शक्तिपात से कुछ घटना घटती है वहाँ शक्तिपात से ही ही घटती है इस भ्रान्ति में पड़ने की जरूरत नहीं है। वहाँ वह दूसरा व्यक्ति भी किसी बहुत आन्तरिक तैयारी के एक छोर पर पहुँच गया है, जहाँ जरा सी चोट सहयोगी हो जाती है। यह चोट नहीं लगती तो शायद थोड़ी देर लग सकती थी। तो इस शक्तिपात से जो हो रहा है वह कुण्डलिनी सहस्रार तक नहीं पहुँच रही है। इस शक्तिपात से इतना ही हो रहा है कि समय का जो थोड़ा व्यवधान (Time element जो है) था वह कम हो रहा है और कुछ भी नहीं हो रहा है। वह आदमी पहुँच तो जाता ही। समझ लो कि मैं इस हथौड़े से चोट

नहीं मारता इस दरवाजे पर और यह जरा जीर्ण दरवाजा है, यह बिलकुल गिरने को हो रहा है। कल हवा के थपेड़े से गिर जाता। हवा का थपेड़ा भी न आता, क्योंकि दरवाजे का भाग्य न आये हवा का थपेड़ा ही न आये उस तरफ तो क्या तुम सोचते हो दरवाजा खड़ा ही रहता ! यह दरवाजा जो एक ही चोट से गिर गया, जो हवा के थपेड़े से डरता था कि गिर जायगा, यह बिना हवा के थपेड़े के भी एक दिन गिर जायगा। अब तुम्हें कारण भी बताना मुश्किल हो जायगा कि किसने गिराया, तब यह अपने से भी गिर जायगा। यह गिरने की तैयारी इकट्ठी करता जा रहा है। तो ज्यादा से ज्यादा जो फर्क लाया जा सकता है वह सिर्फ समय की परिधि का है, टाइम गैप का है।

तो जो घटना रामकृष्ण के पास अगर विवेकानन्द को घटी उसमें अगर अकेले रामकृष्ण ही जिम्मेदार हैं तो फिर और किसी को भी घट जाती, बहुत लोग उनके करीब गये। सैकड़ों उनके शिष्य हैं। तो और किसी को नहीं घट गयी है। और विवेकानन्द भी जिम्मेवार थे अकेले तो वह रामकृष्ण के पहले और बहुत लोगों के पास गये। लेकिन उनके पास वह नहीं घटी थी। तो विवेकानन्द की अपनी एक तैयारी थी, रामकृष्ण की अपनी एक सामर्थ्य थी। यह तैयारी और यह सामर्थ्य किसी बिन्दु पर अगर मिल जायें तो टाइम गैप कम हो सकता है। विवेकानन्द को, हो सकता है अगले जन्म में, यह घटना घटती। वर्ष भर बाद घटती, दो वर्ष बाद घटती। दस जन्मों बाद घटती, यह सवाल नहीं है। इस व्यक्ति की अपनी भीतरी तैयारी अगर हुई थी तो घटना घटती।

टाइम गैप कम हो सकता है और समझने की बात यह है कि टाइम बड़ी ही फिक्टीशस (Fictitious) बड़ी मायिक घटना है इसलिए उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। असल में समय इतनी ज्यादा स्वप्निल घटना है कि उसका कोई बड़ा मूल्य नहीं है। अभी तुम एक झपकी लो और हो सकता है कि घड़ी में एक ही मिनट गुजरे और तुम जाग कर कहो कि मैंने इतना लम्बा स्वप्न देखा कि मैं बच्चा था जवान था, बूढ़ा हुआ, मेरे लड़के थे, मेरी शादी हुई, धन कमाया, सट्टे में हार गये। यह सब हो गया। और यहाँ बाहर हम कहें कि यह तुम कैसी बातें कर रहे हो ! इतना लम्बा सपना देखने के लिए भी वक्त लगेगा। क्योंकि अभी एक सेकेण्ड तुम्हारी आँख बन्द हुई सिर्फ, तुमने झपकी भर ली है। असल में ड्रीम टाइम, स्वप्न का जो समय है उसकी यात्रा बहुत अलग है। बहुत छोटे से समय में बहुत घटनाएँ घटाने की उसकी सम्भावना है। इसलिए बड़ी भ्रान्ति होती है।

अभी कुछ कीड़े हैं जो कि पैदा होते हैं और सुबह और साँझ मर जाते हैं। हम कहते हैं बेचारे ! लेकिन हमें यह पता नहीं कि उनका टाइम का जो अनुभव है

वह उतना ही है जितना हमें ७० साल में होता है। कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह इस बारह घण्टे में सब काम कर लेते हैं, घर बना लेते हैं, पत्नी खोज लेते हैं, शादी विवाह रचा लेते हैं, लड़ाई झगड़ा कर लेते हैं जो भी करना है सब कर-करा के मर जाते हैं। इसमें कुछ कमी नहीं छोड़ते हैं, इसमें सब हो जाता है। इसमें शादी विवाह तलाक, लड़ाई झगड़ा सब घटना घट-घटाकर वह सन्यास वगैरह सब कर जाते हैं, सुबह से शाम तक। पर वह जो समय का उनका बोध है उसमें फर्क है। इसलिए हमें लगता है, बेचारे! और वह अगर सोचते हैं तो हमारे बाबत सोचते होंगे कि हम जो बारह घण्टे में कर लेते हैं वह तुम्हें ७० साल लग जाते हैं। बेचारे! इतना काम तो हम बहुत जल्दी निपटा लेते हैं। इन लोगों को क्या हो गया है! कैसी मन्द बुद्धि के हैं। ७० साल लगा देते हैं।

समय जो है वह बिलकुल ही मनोनिर्भर (Mental entity) है। हमारे मन के अनुसार समय का अनुपात छोटा बड़ा होता है। जब तुम सुखमें होते हो तो समय एकदम छोटा हो जाता है। जब तुम दुख में होते हो तो समय एकदम लम्बा हो जाता है। घर में कोई मर रहा हो और तुम खाट के पास बैठे हो तब रात बहुत लम्बी हो जाती है। कटती ही नहीं है। ऐसा लगता है कि अब यह रात कभी खत्म होगी कि नहीं होगी। सूरज उगेगा कि नहीं उगेगा। रात इतनी लम्बी होती जाती है कि लगता है कि अब यह आखिरी रात है। अब यह कभी समाप्त होगा नहीं। दुख समय को बहुत लम्बा कर देता है। क्योंकि दुख में तुम जल्दी से समय को बिताना चाहते हो। तुम्हारी अपेक्षा (Expectation) जल्दी की हो जाती है। जितनी तुम्हारी अपेक्षा तीव्र हो जाती है, समय उतना मंदा मालूम पड़ने लगता है क्योंकि उसका अनुभव रिलेटिव (सापेक्ष) है। जब तुम्हारी अपेक्षा बहुत तीव्र होती है और समय अपनी गति से चला आ रहा है तो तुम्हें ऐसा लगता है कि बहुत धीमें आ रहा है। जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी से मिलने बैठा है और वह चली आ रही है। वह तो चाहता है कि बिलकुल दौड़ती हुई जेट की रफ्तार से आये। लेकिन वह आदमी की रफ्तार से आ रही है। उसे लगता है कैसी मन्द गति से चलती है।

तो दुख में तुम्हारा समय का बोध एकदम लम्बा हो जाता है। सुख आता है, तुम्हारा मित्र मिलता है, प्रियजन मिलता है तो रात भर जाग कर तुम गपशप करते रहते हो। सुबह बिदा होने का वक्त आता है तो तुम कहते हो रात कैसे बीत गयी क्षण भर में! यह तो आयी न आयी बराबर हो गयी। ऐसा लगता ही नहीं कि आयी थी। सुख में तुम्हारे समय का बोध एकदम भिन्न हो जाता है, दुख में भिन्न हो जाता है।

१९. शक्तिपात से सुप्त सम्भावनाओं के प्रकटीकरण में शीघ्रता

तुम्हारी मनोनिर्भर इकाई है समय। इसलिए इसमें तो फर्क पैदा ही किये जा सकते हैं। वह तुम्हारे मन तक तो चोट की जा सकती है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अगर मैं तुम्हारे सिर पर लट्ठ मार दूँ तो तुम्हारा सिर खुल जाता है। तुम क्या यह कहोगे कि तुम्हारा सिर एक आदमी ने खोल दिया तो उस पर निर्भर हो गये! हो ही गये निर्भर। तुम्हारे शरीर को चोट की जा सकती है, तुम्हारे मन को भी चोट की जा सकती है। तुमको चोट नहीं की जा सकती है। क्योंकि तुम न शरीर हो, न तुम मन हो। लेकिन अभी तो तुम मन पर ठहरे हुए अपने को मन मान रहे हो या अपने को शरीर मान रहे हो तो इन सब पर तो चोट की जा सकती है। और इनकी चोट से तुम्हारे समय के अन्तर को बहुत कम किया जा सकता है। कल्पों को क्षणों में बदला जा सकता है, क्षणों को कल्पों में बदला जा सकता है।

२०. अस्तित्व में, मुक्ति में समय का एक हो जाना

जिस दिन तुम जागोगे, आश्चर्य में पड़ जाओगे। यह बहुत मजे की बात है कि बुद्ध को जागे तो पच्चीस सौ साल हो गये। जीसस को दो हजार साल हो गये। कृष्ण को शायद पाँच हजार साल हो गये। जरथुस्त्र को बहुत समय हुए, मूसा को बहुत समय हो गये। लेकिन जिस दिन जागोगे तुम अचानक पाओगे कि अरे, वे भी अभी जागे हैं। क्योंकि वह जो टाइम गैप (काल-अन्तराल) है वह एकदम खतम हो गया है। वह पच्चीस सौ साल, दो हजार, और पाँच हजार साल एकदम सपने के मालूम पड़ेंगे। इसलिए जब कोई जागता है तो एक ही क्षण में सब जागते हैं कोई क्षण में फर्क नहीं पड़ता। लेकिन यह बड़ा कठिन है ख्याल में लेना। यह बड़ा कठिन है कि जिस दिन तुम जागोगे उस दिन तुम एकदम कनटेम्परेरी (समकालीन) हो जाओगे बुद्ध के, महावीर के। वे सब तुम्हें चारों तरफ खड़े हुए मालूम पड़ेंगे कि जैसे सब अभी-अभी जागे। अभी, तुम्हारे साथ ही। एक क्षण का भी फासला वहाँ नहीं है। वहाँ नहीं हो सकता।

असल में ऐसा समझो कि हम एक बड़ा वृत्त (Circle) खींचें, और वृत्त के केन्द्र से हम वृत्त की परिधि तक बहुत-सी रेखाएँ खींचें। हजार रेखाएँ परिधि से खींचें और केन्द्र पर जोड़ दें। परिधि पर तो बहुत फासला होगा दो रेखाओं के बीच में। फिर तुम केन्द्र की तरफ बढ़ने लगे, फासला कम होने लगेगा। तुम जब केन्द्र पर पहुँचोगे तो पाओगे फासला खतम हो गया। दोनों रेखाएं एक हो गयीं। तो जिस दिन अनुभूति की उस प्रगाढ़ता के केन्द्र पर कोई

पहुँचता है तो वे जो परिधि पर फासले में ढाई हजार साल के, दो हजार साल के वे सब खत्म हो जाते हैं। इसलिए बहुत दिक्कत (कठिनाई) होती है। क्योंकि उस जगह से बोलने से कई बार भूल हो जाती है। क्योंकि जिनसे हम बोल रहे हैं वह परिधि की भाषा समझते हैं। इसलिए बहुत भूल की सम्भावना है।

एक आदमी मेरे पास आया। जीसस का भक्त था। उसने मुझसे पूछा, आपका जीसस के बाबत क्या ख्याल है? तो मैंने उससे कहा, अपने बाबत ख्याल बनाना अच्छा नहीं होता है। थोड़ा चौंककर उसने मुझे देखा और कहा, आप सुने नहीं। मैं पूछ रहा हूँ जीसस के बाबत आपका क्या ख्याल है? तो मैंने कहा कि मैं भी समझता कि हूँ तुमने शायद सुना नहीं। मैं कहता हूँ कि अपने ही बाबत ख्याल बनाना ठीक नहीं होता। उसने कुछ परेशानी से मुझे देखा। मैंने उससे कहा कि जीसस के बाबत ख्याल तभी तक बनाया जा सकता है जब तक जीसस को नहीं जानते। जिस दिन जानोगे उस दिन तुममें और जीसस में क्या फर्क है? कैसे ख्याल बनाओगे?

ऐसा हुआ कि रामकृष्ण के पास कभी कोई चित्रकार आया और उनका एक चित्र बनाकर लाया और वह रामकृष्ण को लाकर उसने बताया कि देखिये आपका चित्र बनाया है, कैसा बना है। रामकृष्ण उस चित्र के पैरों में सिर लगाकर नमस्कार करने लगे। वहाँ जितने लोग बैठे थे उन सबने सोचा कि कुछ भूल हो गयी है। क्योंकि अपने ही चित्र के पैर पड़ रहे हैं! क्या गड़बड़ी क्या है? शायद समझे नहीं! चित्र उन्हीं का है। तो चित्रकार ने कहा माफ करिये, यह चित्र आपका ही है। और आप ही इसके पैर पड़ रहे हैं। तो उन्होंने कहा कि अरे मैं भूल गया। उन्होंने कहा कि असल में यह चित्र इतना समाधिस्थ है कि मेरा कैसे हो सकता है? रामकृष्ण ने कहा यह चित्र इतना समाधि का है कि मेरा कैसे हो सकता है! क्योंकि समाधि में कहाँ 'मैं' और कहाँ 'तू'। तो मैं तो समाधि के पैर पड़ने लगा। तुमने ठीक याद दिला दी और वक्त पर याद दिला दी नहीं तो लोग बहुत हँसते। और लोग तो हँस ही चुके थे।

परिधि और केन्द्र की भाषाएँ अलग हैं। इसलिए अगर कृष्ण कहते हैं कि मैं ही था राम, और अगर जीसस कहते हैं कि मैं ही पहले भी आया था और तुम्हें कह गया था। और अगर बुद्ध कहते हैं कि मैं फिर आऊँगा तो इस सबमें वह सब केन्द्र की भाषा बोल रहे हैं जिससे हमको बड़ी कठिनाई होती है। जैन बौद्ध भिक्षु प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह कब आयेंगे। वह बहुत बार आ चुके। वह रोज खड़े होंगे तो भी नहीं पहचान में आयेंगे। क्योंकि उसी शकल में आने का तो कोई उपाय नहीं है। वह शकल तो सपने की शकल थी, वह खो गयी। तो वहाँ कोई समय का अन्तराल नहीं है। और इसीलिए तुम्हारे समय की स्थिति में तो तीव्रता

और कमी की जा सकती है, बहुत कमी की जा सकती है। उतना शक्तिपात से हो सकता है।

२१. दूसरे के होने का भ्रम

और दूसरी बात जो तुम उसमें पूछते हो उसमें तो वह दूसरे का जो दूसरा होना है वह भी हमारी अपना सीमा को जोर से पकड़े होने की वजह से मालूम पड़ रहा है। तो विवेकानन्द को लगेगा कि रामकृष्ण की वजह से मुझे हो गया है। रामकृष्ण को लगे तो बड़ी नासमझी हो जायेगी। रामकृष्ण के लिए तो ऐसी घटना घटी है जैसे मेरे हाथ पर कोई चोट लगी हो और मैंने मलहम लगा ली है। मेरा यह बाँया हाथ समझेगा कि कोई और मेरी सेवा कर रहा है। दायें हाथ से मैं लगाऊँगा तो लगेगा कि कोई और कर रहा है। हो सकता है धन्यवाद भी दे, हो सकता है इन्कार भी कर दे कि भई रहने दो, मैं स्वावलम्बी हूँ। मैं दूसरे की सहायता नहीं लेता। लेकिन उसे पता नहीं कि जिसने प्रवेश किया है बायें में वही दायें में भी प्रविष्ट है और वह एक ही है। तो जब कभी कोई किसी दूसरे के लिए दूसरे की तरफ से सहायता पहुँचती है तो सचमुच कोई दूसरा नहीं है। तुम्हारी तैयारी ही उस सहायता को तुम्हारे ही दूसरे हिस्से से बुलाती है और पुकारती है।

(मिस्र में एक बहुत पुरानी किताब है जो यह कहती है कि तुम गुरु को कभी मत खोजना, क्योंकि जिस दिन तुम तैयार हो, गुरु तुम्हारे दरवाजे पर हाजिर हो जायगा। तुम खोजने जाना ही मत। और वह यह भी कहते हैं कि अगर तुम खोजने भी जाओगे तो तुम खोज कैसे सकोगे? तुम पहचानोगे कैसे? क्योंकि अगर तुम इस योग्य हो गये कि गुरु को भी पहचान लो तब फिर और क्या कमी रह गयी। इसलिए सदा ही गुरु शिष्य को पहचानता है, शिष्य कभी गुरु को नहीं पहचान सकता। इसका कोई उपाय नहीं है। इसका उपाय कहाँ है? अभी तुम अपने को नहीं पहचानते तो तुम गुरु को कैसे पहचानोगे कि यह आदमी है! तुम नहीं पहचान सकते। हाँ लेकिन जिस दिन तुम तैयार हो उस दिन तुम्हारा ही कोई हाथ तुम्हारी सहायता के लिए मौजूद हो जाता है। वह दूसरे का हाथ तभी तक है जब तक तुम्हें पता नहीं चला है। जिस दिन तुम्हें पता चलेगा उस दिन तुम धन्यवाद देने को भी नहीं रुकोगे।)

जापान में झेन मॉनेस्ट्री (आश्रम) का एक हिसाब है कि जब कोई आता है आश्रम में ध्यान सीखने तो अपनी चटाई बगल में दबा कर लाता है, भिक्षा देता है और बैठ जाता है। समझ लेता है, ध्यान करके चला जाता है, चटाई वहीं छोड़ देता है। फिर वह रोज आता रहता है और अपनी चटाई पर बैठता है और चला जाता है। जिस दिन ध्यान पूरा हो जाता है उस दिन अपनी चटाई गोल कर

चला जाता है। गुरु समझ जाता है कि ध्यान पूरा हो गया है। धन्यवाद देने की भी क्या जरूरत है? क्योंकि किसको धन्यवाद देना है! गुरु यह भी नहीं कहता है कि हो गया। साधक अपनी चटाई लपेटने लगता है तो गुरु समझता है कि चलो बस ठीक है। चटायी लपेटने का वक्त आ गया, अच्छी बात है। इतनी औपचारिकता की भी कहाँ जरूरत है कि धन्यवाद दो। किसको धन्यवाद दो! और अगर कोई धन्यवाद देने देगा तो गुरु डण्डा भी मार सकता है उसको कि खोल चटाई वापिस। अभी तेरा नहीं हुआ है। किसको धन्यवाद देते हो?

तो वह जो दूसरे का ख्याल है वह हमारे अज्ञान की ही धारणा है, अन्यथा कौन है दूसरा। हमी हैं बहुत रूपों में, हमी हैं बहुत यात्राओं पर, हमी हैं बहुत दर्पणों में। निश्चित ही सभी हैं दर्पणों में। लेकिन दिखायी तो कोई और ही पड़ रहा है।

एक सूफी कहानी है कि एक कुत्ता एक राजमहल में घुस गया। उस राजमहल में सारी दीवालें दर्पण की बनायी गयी हैं। वह कुत्ता बहुत मुश्किल में पड़ गया। क्योंकि उसके चारों तरफ कुत्ते ही कुत्ते दिखायी पड़ने लगे। वह बहुत घबड़ाया। इतने कुत्ते चारों तरफ! अकेला घिर गया इतने कुत्तों में! निकलने का भी रास्ता नहीं रहा। द्वार दरवाजे पर भी आइने थे। सब तरफ आइने ही आइने हैं। फिर वह भौंका। लेकिन उसके भौंकने के साथ सारे कुत्ते भौंके और उसकी आवाज सारी दीवालों से टकरा के वापस लौटी तब तो बिलकुल पक्का हो गया कि खतरे में जान है। और बहुत दूसरे कुत्ते मौजूद हैं। और वह चिल्लाता रहा और जितना चिल्लाया, उतने ही जोर से बाकी कुत्ते भी चिल्लाये। और जितना वह लड़ा और भौंका और दौड़ा उतने ही सारे कुत्ते भी दौड़े और भौंके। और उस कमरे में वह अकेला कुत्ता था। रात भर वह भौंकता रहा, भौंकता रहा। सुबह जब पहरेदार आया तो वह कुत्ता मरा हुआ पाया गया। क्योंकि वह दीवालों से लड़ कर और भौंक कर थक गया और मर गया। हालांकि वहाँ कोई भी नहीं था। जब वह मर गया तो दीवालें भी शान्त हो गयी और दर्पण चुप हो गया।

बहुत दर्पण हैं और हम सब एक दूसरे को जो देख रहे हैं वह बहुत तरह के दर्पणों में अपनी ही तस्वीरें हैं। इसलिए दूसरा कोई है, यह भ्रान्ति है। इसलिए दूसरे की हम सहायता कर रहे हैं, यह भी भ्रान्ति है। और दूसरे से हमें सहायता मिल रही है, यह भी भ्रान्ति है। असल में दूसरा ही भ्रान्ति है। और तब जीवन में एक सरलता आती है। जहाँ तुम दूसरे को दूसरा मान कर कुछ भी नहीं करते हो, न दूसरे को दूसरा मानकर अपने लिए कुछ करवाते हो तब तुम ही रह जाते हो। और अगर रास्ते पर किसी गिरते आदमी को तुमने सहारा दिया है तो वह तुमने

अपने को ही दिया है। और अगर रास्ते पर किसी और ने तुम्हें सहारा दिया है तो वह भी उसने अपने को ही दिया है। मगर यह परम अनुभव के बाद ख्याल में आना शुरू होगा। उसके पहले तो निश्चित ही दूसरा है।

२२. अभिव्यक्ति में कठिनाई होने पर माध्यम का उपयोग

प्रश्नकर्ता : विवेकानन्द को शक्तिपात से नुकसान हुआ था, ऐसा आपने एक बार कहा था ?

आचार्यश्री : विवेकानन्द को शक्तिपात से तो नुकसान नहीं हुआ, लेकिन शक्तिपात के पीछे जो हुआ उससे नुकसान हुआ। उसमें जो और चीजें चलीं। पर नुकसान और हानि की बात भी सपने के भीतर की बात है, बाहर की नहीं। तो रामकृष्ण की सहायता से उनको एक झलक मिली। जो झलक उनको शायद अपने ही पैरों पर कभी मिलती, वक्त लग जाता। लेकिन वह झलक दूसरे से मिली थी, दूसरे के द्वारा मिली थी। जैसे मैंने हथौड़ा मारा, दरवाजे पर और दरवाजा टूट गया। लेकिन मैं दरवाजे को फिर खड़ा कर गया, उसी हथौड़े से कीले ठोंक गया और वापिस ठीक कर गया। वह जो हथौड़ा दरवाजा गिरा सकता है, वह कीले भी ठोंक सकता है। हालाँकि दोनों हालत में एक ही बात हो रही है।

रामकृष्ण की कुछ कठिनाइयाँ थीं जिनके लिए उन्हें विवेकानन्द का उपयोग करना पड़ा। रामकृष्ण निपट देहाती, अपढ़, अशिक्षित आदमी थे। अनुभव उनको गहरा हुआ था। लेकिन अभिव्यक्ति उनके पास नहीं थी। और जरूरी था कि वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी दूसरे आदमी को साधन बनायें, वाहन बनायें। नहीं तो रामकृष्ण का आपको पता ही नहीं चलता। रामकृष्ण को जो मिला था, यह उनकी करुणा का हिस्सा ही है कि वह किसी आदमी के द्वारा उसे आप तक पहुँचाते। मेरे घर में खजाना मिल जाय मुझे और मेरे पैर टूटे हैं और मैं किसी आदमी के कन्धे पर खजाना रखकर आपके घर पर पहुँचा दूँ तो उस आदमी के कन्धे का मैंने थोड़ा उपयोग तो किया, उसे थोड़ी तकलीफ भी दी। कुछ दूर वजन तो उसको ढोना ही पड़ेगा। लेकिन उस आदमी को तकलीफ देने का इरादा नहीं है। इरादा वह जो खजाना मुझे मिला है उसे आप तक पहुँचाने का है। क्योंकि मैं हूँ लँगड़ा और यह खजाना यहीं पड़ा रह जायगा। और मैं घर के बाहर खबर भी नहीं ले जा सकता हूँ।

रामकृष्ण को कठिनाई थी। बुद्ध को ऐसी कठिनाई नहीं थी। बुद्ध के व्यक्तित्व में रामकृष्ण और विवेकानन्द एक साथ मौजूद हैं। बुद्ध जो जानते थे, वह कह भी सकते थे, रामकृष्ण जो जानते थे, वह कह नहीं सकते थे। कहने के लिए उन्हें एक आदमी चाहिए था जो उनका मुँह बन जाय। तो विवेकानन्द

को तो उन्होंने झलक दिखला दी लेकिन तत्काल विवेकानन्द से कहा कि अब चाबी मैं रख लेता हूँ अपने हाथ में। अब मरने के तीन दिन पहले लौटा दूँगा। अब विवेकानन्द बहुत चिल्लाने लगे, यह आप क्या कर रहे हैं? जो मुझे मिला है, उसे छीने मत! रामकृष्ण ने कहा, लेकिन अभी तुझे और दूसरा काम करना है। अगर तू इसमें डूबा तो गया, तो अभी काम रुक जायगा इसलिए मैं तेरी चाबी रख लेता हूँ। इतनी तू कृपा कर। मरने के तीन दिन पहले तुझे लौटा दूँगा। और अब मरने के तीन दिन पहले तक तुझे समाधि उपलब्ध न हो तो ठीक है, क्योंकि तुझे कुछ और काम करना है जो समाधि के पहले ही तू कर पायेगा। और इसका भी कारण यह था कि रामकृष्ण को पता नहीं था कि समाधि के बाद भी लोगों ने यह काम किया। लेकिन रामकृष्ण को पता हो भी नहीं सकता था, क्योंकि वह समाधि के बाद कुछ भी नहीं कर पाये थे।

स्वभावतः हम अपनी अनुभूति से चलते हैं। रामकृष्ण की अनुभूति के बाद रामकृष्ण कुछ भी नहीं कह पाते थे, कोई चला आया। उसने कहा कि 'जय राम जी' और वह बेहोश होके गिर गये। उनके लिए तो राम शब्द भी सुनायी पड़ जाय तो मुश्किल मामला था। उनको याद आ गयी उस जगत की। किसी ने कह दिया अल्लाह तो वे गये। मस्जिद दिखायी पड़ गयी तो वे वहीं खड़े हो कर बेहोश हो गये। कहीं भजन-कीर्तन हो रहा है, वे चले जा रहे हैं अपने रास्ते में और वहीं सड़क पर गिर गये। उनकी कठिनाई यह हो गयी थी कि कहीं से भी जरा भी स्मृति आ जाय उनको उस रस की, कि वे गये। तब उनको तो बहुत कठिनाई थी। और उनका अनुभव उनके लिहाज से ठीक ही था कि विवेकानन्द को अगर यह अनुभूति हो गयी तो फिर क्या होगा। तो उन्होंने विवेकानन्द से कहा कि तुझे एक बड़ा काम है वह तू कर ले, उसके बाद समाधि मे जाना। इसलिए विवेकानन्द की पूरी जिन्दगी समाधि रहित बीती। और इसलिए बहुत तकलीफ में बीती। तकलीफ लेकिन सपने की थी। इस बात को ख्याल में रख लेना कि तकलीफ सपने की है। जैसे आदमी सोया हो और बड़ी तकलीफ का सपना देख रहा हो। मरने के तीन दिन पहले चाबी वापस मिल गयी। लेकिन मरने तक बहुत पीड़ा थी। मरने के पाँच सात दिन पहले तक जो पत्र उन्होंने लिखे वे बहुत दुख के थे कि मेरा क्या होगा, मैं तड़प रहा हूँ। और तड़प और भी बढ़ रही है। क्योंकि जो देख लिया है एक दफा, उसकी दोबारा झलक नहीं मिली।

अभी उतनी तड़प नहीं है आपको। क्योंकि कुछ पता ही नहीं है कि क्या हो सकता है। उसकी एक झलक मिल जाय। तो तड़प शुरू हो सकती है। इसे इस तरह समझें: आप खड़े थे अँधेरे में, कोई तकलीफ न थी। हाथ में कंकड़-पत्थर थे तो भी बड़ा आनन्द था क्योंकि सम्पत्ति थी।

फिर चमक गयी बिजली और दिखायी पड़ा कि हाथ में कंकड़-पत्थर है। और सामने दिखायी पड़ा कि रास्ता भी है और हीरों की खदान भी है। लेकिन बिजली खो गयी। और बिजली कह गयी है कि अभी दूसरा काम तुम्हें करना है, वह जो और पत्थर बीन रहे हैं उनसे कहना है कि यहाँ आगे खदान है। इसलिए अभी तुम्हारे लिए वापिस बिजली नहीं चमकेगी। अब तुम यह जो बाकी पत्थर इकट्ठे कर रहे हो इनको समझाओ। तो विवेकानन्द से एक काम लिया गया है जो कि रामकृष्ण के लिए पूरक (सप्लीमेन्टरी) था, जरूरी था। जो उनके व्यक्तित्व में नहीं था वह दूसरे व्यक्तित्व से लेना पड़ा।

ऐसा बहुत बार हो गया है, बहुत बार हो जाता है। कुछ बात जो नहीं सम्भव हो पाये एक व्यक्ति से उसके लिए दो चार व्यक्ति खोजने पड़ते हैं। कई बार तो एक ही काम के लिए दस-पाँच व्यक्ति भी खोजने पड़ते हैं। उन सबके सहारे से वह बात पहुँचायी जा सकती है।

इसलिए मेरा कहना यह है कि जहाँ तक बने शक्तिपात से बचना। जहाँ तक बने वहाँ तक प्रसाद की फिक्र करना और शक्तिपात भी वहीं उपयोगी है जो प्रसाद जैसा हो। जिसके साथ कोई शर्त (कण्डीशनिंग) न हो। जो यह न कहे कि अब हम चाभी रखे लेते हैं। जो यह न कहे कि अब कोई शर्त है इसके साथ वह बेशर्त (अनकण्डीशनल) हो। आपको शक्तिपात हो जाय और वह आदमी कभी आपसे पूछने भी न आये कि क्या हुआ। आपको अगर धन्यवाद भी देना हो तो उसका खोजना भी मुश्किल हो जाय कि उसे कहाँ जाकर धन्यवाद दें। उतना ही आपके लिए आसान पड़ेगा लेकिन कभी रामकृष्ण जैसे व्यक्ति को जरूरत पड़ती है तो उसके सिवाय कोई रास्ता नहीं था अन्यथा रामकृष्ण का जानना खो जाता। वह कह नहीं पाते। उनके लिए जबान चाहिए थी जो उनके पास नहीं थी। वह जबान उन्हें विवेकानन्द से मिल गयी।

इसलिए विवेकानन्द निरन्तर कहते थे कि जो भी मैं कह रहा हूँ वह मेरा नहीं है। और अमरीका में जब उन्हें बहुत सम्मान मिला तो उन्होंने कहा कि मुझे बड़ा दुख होता है, मुझे बड़ी मुश्किल पड़ती है। क्योंकि जो सम्मान मुझे दिया जा रहा है वह एक और दूसरे आदमी को मिलना चाहिए था जिसका आपको पता ही नहीं है। और जब उन्हें कोई महापुरुष कहता तो वे कहते कि जिस महा-पुरुष के पास मैं बैठकर आया हूँ उसके चरणों की मैं धूल भी नहीं हूँ। लेकिन रामकृष्ण अगर अमरीका में जाते तो वह किसी पागलखाने में भर्ती किये जा सकते थे। और उनकी चिकित्सा की जाती। उनकी कोई नहीं सुनता। वे बिलकुल पागल सिद्ध होते। वे पागल थे। अभी तक हम यह नहीं साफ कर पाये कि एक सिकुलर (लौकिक, सांसारिक) पागलपन होता है और एक नानसिकुलर

(अलौकिक) पागलपन भी होता है। तो अमरीका में कभी दोनों पागल एक साथ पागलखाने में बन्द कर दिये जाते, दोनों की एक चिकित्सा हो जाती है। रामकृष्ण की चिकित्सा हो जाती और विवेकानन्द को सम्मान मिला। क्योंकि विवेकानन्द जो कह रहे हैं वह कहने की बात है। वह खुद कोई दीवाने नहीं हैं। वे एक सन्देशवाहक हैं, एक डाकिया। चिट्ठी ले गये हैं। वह जा कर पढ़ कर सुना दिये। लेकिन अच्छी तरह पढ़कर सुना सकते हैं।

नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अद्भुत घटना है। नसरुद्दीन अपने गाँव में अकेला पढ़ा-लिखा आदमी है। और जिस गाँव में एक ही पढ़ा-लिखा हो तो वह बहुत पढ़ा-लिखा तो होता नही ? तो चिट्ठी किसी को लिखवानी हो तो उसी से लिखवानी पड़ती है। एक आदमी उससे चिट्ठी लिखवाने आया है। नसरुद्दीन कहता है कि मैं नही लिखूँगा। मेरे पैर में बड़ी तकलीफ है। उस आदमी ने कहा, पैर से चिट्ठी लिखने को कहता कौन है ! आप हाथ से चिट्ठी लिखिये। नसरुद्दीन ने कहा, तुम समझे नही। असल में जब चिट्ठी लिखते हैं तो हम ही पढ़ते हैं। हमें दूसरे गाँव में जाकर पढ़नी भी पड़ती। पैर मे बहुत तकलीफ है। अभी हमें चिट्ठी लिखने की झंझट में नहीं पड़ना है। लिख तो देंगे, पढ़ेगा कौन? वह दूसरे गाँव में हमी को जाना पड़ता न ! तो अभी जब तक पैर में तकलीफ है हम चिट्ठी लिखना बन्द ही रखेंगे ।

तो रामकृष्ण जैसे जो लोग हैं वे चिट्ठी भी लिखेंगे तो खुद ही पढ़ सकते हैं। वे आप की भाषा भूल ही गये। आप की भाषा का इनको कोई पता ही नही। वे एक और तरह की भाषा बोल रहे हैं जो आपके लिए बिलकुल मीनिंगलेस, अर्थ-हीन हो गयी है। हम इनको कहेंगे कि यह आदमी पागल है। तो हमारे बीच में से इन्हें कोई डाकिया पकड़ना पड़ेगा। जो हमारी भाषा में लिख सके। निश्चित ही वह डाकिया ही होगा। इसलिए विवेकानन्द से जरा सावधान रहना। उनका कोई अपना अनुभव बहुत गहरा नहीं है। जो वह कह रहे हैं वह किसी और का है, हाँ कहने में वे कुशल हैं, होशियार हैं। जिसका था वह इतनी कुशलता से नहीं कह सकता था। लेकिन फिर भी वह विवेकानन्द का अपना नहीं है।

२३. ज्ञानियों की विनम्रता और अज्ञानियों की दृढ़ता

इसलिए विवेकानन्द की बातचीत में ओवरकांफिडेंस (अति आत्म-विश्वास) मालूम पड़ेगा। जरूरत से ज्यादा वह बल दे रहे हैं। वह बल कमी की पूर्ति के लिए है। उन्हें खुद भी पता है कि वह जो कह रहे हैं वह उनका अपना अनुभव नहीं है। इसलिए ज्ञानी तो थोड़ा बहुत हैजिटेट (झिझक) करता है। वह थोड़ा बहुत डरता है। उसके मन में पचास बातें होती हैं। यह कहूँ, ऐसा कहूँ या ऐसा कहूँ, गलत न हो जाय। जिसको कुछ पता नहीं है वह बेधड़क जो उसको

कहना है कह देता है। क्योंकि उसको कोई कठिनाई नहीं होती, हेजिटेशन (झिझक) कभी नहीं होता। वह कह देता है कि ठीक है।

बुद्ध जैसे ज्ञानी को तो बड़ी कठिनाई थी। वे बहुत सी बातों का जवाब ही नहीं देते थे। वह कहते थे, इनका जवाब मैं नहीं दूंगा क्योंकि कहने में बड़ी कठिनाई है। कुछ लोग तो कहते थे इससे तो हमारे गाँव में अच्छे आदमी हैं। वह जवाब तो देते हैं। वह ज्यादा ज्ञानी हैं आप से। कोई भी चीज पूछें, वे जवाब दे देते हैं। भगवान् है या नहीं ? वे कहते तो हैं कि है या नहीं। उनको पता है, आपको पता नहीं है ! आप क्यों नहीं कहते, 'है' या 'नहीं' है ? तो बुद्ध की बड़ी मुश्किल थी। 'है' कहें तो मुश्किल है, 'नहीं' कहें तो मुश्किल है। तो वह हेजिटेट (संकोच) करेंगे। वह कहेंगे कि नहीं इस सम्बन्ध में बात ही मत करो कुछ और बात करो। स्वभावतः हम कहेंगे कि फिर पता नहीं है, आप यही कह दो। यह भी बुद्ध नहीं कह सकते। क्योंकि पता तो है। और हमारी कोई भाषा काम नहीं करती।

इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ है कि रामकृष्ण जैसे बहुत लोग पृथ्वी पर अपनी बात बिना कहे खो गये हैं। नहीं कह पाते। क्योंकि यह बहुत दुर्लभ संयोग है (Rare Combination) है कि एक आदमी जाने भी और कह भी सके। और जब यह घटना घटती है तो ऐसे व्यक्ति को हम तीर्थंकर, अवतार, पैगम्बर, इस तरह के शब्दों का उपयोग करने लगते हैं। उसका कारण यह नहीं है कि इस तरह के और लोग नहीं होते। इस तरह के और भी लोग हुए हैं। लेकिन कह नहीं सके।

बुद्ध से किसी ने पूछा कि आपके पास दस हजार भिक्षु हैं। चालीस साल से आप लोगों को समझा रहे हैं। इनमें से कितने लोग आप की स्थिति को उपलब्ध हुए ? बुद्ध ने कहा बहुत लोग हुए इनमें। उस आदमी ने कहा, आप जैसा कोई पता तो नहीं चलता हमें। बुद्ध ने कहा, फर्क इतना ही है कि मैं कह सकता हूँ, वे कह नहीं सकते और कोई फर्क नहीं है। मैं भी न कहूँ तो तुम मुझको भी नहीं पहचान सकोगे। क्योंकि तुम बोलियां पहचानते हो, तुम जानना थोड़े ही पहचानते हो। यह संयोग की बात है कि मैं बोल भी सकता हूँ, जानता भी हूँ, वह बिलकुल संयोग की बात है।

इसलिए थोड़ी सी कठिनाई विवेकानन्द के लिए हुई जो उनको अगले जन्मों में पूरी करनी पड़े। लेकिन वह कठिनाई जरूरी थी। इसलिए रामकृष्ण को लेनी मजबूरी थी। लेनी पड़ी। और नुकसान लेकिन सपने का है। फिर भी मैं कहता हूँ कि सपने में भी क्यों नुकसान उठाना। सपना ही देखना है तो अच्छा क्यों नहीं देखना, क्यों बुरा देखना है।

मैंने सुना है कि ईसप की एक बोध कथा है। एक बिल्ली एक वृक्ष के नीचे

बैठी है और सपना देख रही है। एक कुत्ता भी आकर वहाँ विश्राम कर रहा है। बिल्ली बहुत ही आनन्द ले रही है सपने में। उसकी प्रसन्नता देखकर कुत्ता भी बहुत हैरान है कि क्या देख रही है, क्या कर रही है! जब उसकी आँख खुली तो उसने पूछा कि जाने से पहले जरा बता दे कि क्या मामला था कि इतना प्रसन्न हो रही थी! उसने कहा कि बड़ा आनन्द आ रहा था। एकदम चूहे बरस रहे थे आकाश से। उस कुत्ते ने कहा, नासमझ! चूहे कभी बरसते ही नहीं। हम भी सपने देखते हैं। हमें तो हड्डियाँ बरसती हैं। और हमारे शास्त्रों में भी लिखा हुआ है कि चूहे कभी नहीं बरसते। जब बरसते हैं, हड्डियाँ बरसती हैं। मूर्ख बिल्ली अगर सपना ही देखना था तो हड्डी बरसने का देखना था। कुत्ते के लिए हड्डी अर्थपूर्ण है। कुत्ते काहे के लिए चूहे बरसायें। लेकिन बिल्ली के लिए हड्डी बिलकुल बेकार है। तो वह कुत्ता उससे कहता कि सपने ही देखना था तो कम-से-कम हड्डी का देखती। एक सपना देख रही है जो बेकार की बात है। फिर वह भी चूहे का देख रही है, और भी बेकार बात है।

तो मैं आप से कहता हूँ कि सपना ही देखना हो तो दुख का क्यों देखना? और जागना ही है तो जहाँ तक बने अपनी सामर्थ्य, अपनी शक्ति, अपने संकल्प का पूरा से पूरा जितना प्रयोग आप कर सकें, वह करें। और रत्ती भर दूसरे की प्रतीक्षा न करें कि वह सहायता पहुँचायेगा। सहायता मिलेगी, वह दूसरी बात है। आप प्रतीक्षा न करें कि सहायता मिलेगी, क्योंकि जितनी आप प्रतीक्षा करेंगे उतना ही आपका संकल्प क्षीण हो जायगा। आप तो फिक्र ही छोड़ दें कि कोई सहायता करने वाला है। आप तो अपनी पूरी ताकत अकेला समझ कर ही लगायें। सहायता बहुत तरह से मिल जायगी, लेकिन वह बिलकुल दूसरी बात है।

२४. साधना में स्वावलम्बी बनना सदा उपादेय

इसलिए मेरा जोर जो है निरन्तर आपकी पूरी संकल्प शक्ति पर है ताकि कोई और जरा भी बाधा आपके लिए न हो। और जब दूसरे से मिले तो वह आप की माँगी हुई न हो और न आपकी अपेक्षा हो। वह ऐसे ही आ गया है जैसे हवा आती है। और चली जाती है।

इस वजह से मैंने कहा कि विवेकानन्द को नुकसान पहुँचा और जितने दिन वे जिन्दा रहे उतने दिन बहुत तकलीफ में रहे। क्योंकि जो वह कह रहे हैं, उस कही हुई बात में दूसरे को तो झलक मालूम पड़ती थी। क्योंकि वह चौंक गया है, खुश हुआ है लेकिन खुद विवेकानन्द को पता था कि वह मुझे नहीं हो रहा है। यह बड़ी कठिनाई की बात है मैं आपके लिए मिठाई की खबर लेकर आऊँ और मुझे स्वाद भी न हो। बस एक दफे सपने में थोड़ा सा दिखाई पड़ा हो, फिर सपना टूट गया हो। फिर कहा गया हो कि अब सपना ही नहीं आयेगा दुबारा

तुम्हें। बस, अब तुम लोगों तक खबर ले जाओ। तो विवेकानन्द का अपना कष्ट है। लेकिन वे सबल व्यक्ति थे। इस कष्ट को उन्होंने झेला। यह भी करुणा का हिस्सा है। लेकिन इसलिए आपको भी झेलना चाहिए, ऐसा कोई प्रयोजन नहीं है।

२५. विवेकानन्द को समाधि की मानसिक झलक

प्रश्नकर्ता : विवेकानन्द को जो समाधि का अनुभव हुआ था, रामकृष्ण के सम्पर्क से, वह प्रामाणिक था या अप्रामाणिक था ?

आचार्यश्री : उसे प्राथमिक कहो, प्रामाणिक कहना उतना उपयुक्त नहीं है। वह प्राथमिक था, अत्यन्त प्राथमिक, जिसमें एक झलक उपलब्ध हो जाती है। वह झलक निश्चित ही बहुत गहरी नहीं हो सकती और आत्मिक भी नहीं हो सकती है। जहाँ हमारा मन समाप्त होता है और आत्मा शुरू होती है उस परिधि पर घटेगी वह घटना। साइकिक (मनोगत) ही होगी गहरे में और इसलिए खो गयी। और उसको उससे गहरा होने नहीं दिया गया। उससे गहरा न हो जाय इसके लिए रामकृष्ण डरे हुए हैं। उससे गहरा हो जाय तो यह आदमी काम का न रह जाय। और उनको इतनी चिन्ता थी काम की कि उन्हें यह ख्याल ही नहीं था कि यह कोई जरूरी नहीं है कि यह आदमी काम का न रह जाय! बुद्ध चालीस साल तक बोलते रहे हैं, जीसस बोलते रहे हैं, महावीर बोलते रहे हैं। कोई उससे कठिनाई नहीं आ जाती। मगर रामकृष्ण का भय स्वाभाविक था। उनको कठिनाई थी। और वही उनके ख्याल में थी। इसलिए बहुत ही छोटी सी झलक उनको मिली। प्रामाणिक तो है, जितनी दूर तक जाती है उतनी दूर प्रामाणिक तो है। लेकिन, प्राथमिक है। बहुत गहरी नहीं है नहीं तो लौटना मुश्किल हो जाय।

प्रश्नकर्ता : आचार्य जी ! क्या समाधि का आंशिक अनुभव भी हो सकता है ?

आचार्यश्री : आंशिक नहीं, प्राथमिक। इन दोनों में फर्क है। आंशिक अनुभव नहीं है यह। और समाधि का अनुभव आंशिक हो ही नहीं सकता है। लेकिन समाधि की मानसिक झलक हो सकती है। अनुभव तो आध्यात्मिक होगा। झलक मानसिक हो सकती है। जैसे मैं एक पहाड़ पर चढ़कर सागर को देखूं। निश्चित ही मैंने सागर देखा। लेकिन सागर बहुत फासले पर है। मैं सागर के तट पर नहीं पहुँचा। मैंने सागर को छुआ भी नहीं। मैंने सागर का जल चखा भी नहीं। मैं सागर में उतरा भी नहीं। मैं नहाया भी नहीं, डूबा भी नहीं। मैंने एक पहाड़ की चोटी पर से सागर देखा और वापिस चोटी से खींच लिया गया। तो मेरे अनुभव को सागर का आंशिक अनुभव कहोगे ? नहीं, आंशिक भी नहीं

कह सकते। क्योंकि मैंने छुआ भी नहीं। जरा भी नही छुआ। एक इंच भी नहीं छुआ। एक बूंद भी नहीं छूई, एक बूंद चखी भी नहीं। लेकिन फिर भी क्या मेरे अनुभव को अप्रामाणिक कहोगे? देखा तो है! मेरे देखने में तो कोई कमी नहीं है। सागर मैंने देखा। सागर होकर नहीं देखा, डूब कर नहीं देखा। दूर किसी शिखर (पीक) से दिखायी पड़ गया? तो तुम अपनी आत्मा को कभी अपने शरीर की ऊँचाई पर खड़े होकर भी देख लेते हो।

शरीर की भी ऊंचाइयां हैं। शरीर के भी पीक एक्सपीरिएंसेस (चरम अनुभव) हैं। शरीर की भी कोई अनुभूति अगर बहुत गहरी हो तो तुम्हें आत्मा की झलक मिलती है। जैसे अगर बहुत वेल-बीइंग (Well-being) का अनुभव हो शरीर मे, तुम परिपूर्ण स्वस्थ हो और तुम्हारा शरीर स्वास्थ्य से लबालब भरा है तो तुम शरीर की एक ऐसी ऊँचाई पर पहुँचते हो जहाँ से तुम्हे आत्मा की झलक दिखायी पड़ेगी। और तब तुम अनुभव कर पाओगे कि मैं शरीर नहीं हूँ। मैं कुछ और हूँ। लेकिन तुम आत्मा को जान नही लिये। लेकिन शरीर की एक ऊँचाई पर चढ़ गये।

मन की भी ऊंचाइयां हैं। जैसे कि कोई बहुत गहरे प्रेम में, सेक्स मे नही, सेक्स शरीर की ही सम्भावना है। और सेक्स भी अगर बहुत गहरा और पीक (शिखर) पर हो तो वहाँ से भी तुम्हें आत्मा की एक झलक मिल सकेगी। लेकिन बहुत दूर की झलक है। बिलकुल दूसरे छोर से। लेकिन प्रेम की अगर बहुत गहराई का अनुभव हो तुम्हें और किसी को जिसे तुम प्रेम करते हो उसके पास तुम क्षण भर को चुप बैठे हो, सब सन्नाटा है, सिर्फ प्रेम रह गया है तुम्हारे दोनों के बीच डोलता हुआ। और कुछ शब्द नही है, कोई भाषा नहीं है। कुछ लेन-देन नहीं है, कुछ आकांक्षा नही है, सिर्फ प्रेम की तरंगे यहाँ से वहाँ पार होने लगी हैं। तो उस प्रेम के क्षण में भी तुम एक ऐसे शिखर पर चढ़ जाओगे जहाँ से तुम्हें आत्मा की झलक मिल जाय। प्रेमियों को भी आत्मा की झलक मिलती है।

एक चित्रकार एक चित्र बना रहा है। वह इतना डूब जाय उस चित्र को बनाने में कि एक क्षण में परमात्मा हो जाय, स्रष्टा हो जाय। जब एक चित्रकार चित्र को बनाता है तो वह उसी अनुभूति को पहुँच जाता है जैसा भगवान ने कभी दुनिया बनायी होगी तो पहुँचा होगा उस क्षण में उस पीक, शिखर पर, लेकिन वह मन की है ऊँचाई। उस जगह से वह एक क्षण को स्रष्टा (क्रियेटर) है। एक झलक मिलती है उसे आत्मा की। इसलिए कई बार वह समझ लेता है कि पर्याप्त हो गयी। तो भूल हो जाती है। संगीत में मिल सकती है कभी, काव्य में मिल सकती है कभी, प्रकृति के सौन्दर्य में मिल सकती है कभी, और

बहुत जगह से मिल सकती है। लेकिन हैं सब दूर की चोटियाँ। समाधि में तो पूर्णतः डूब कर मिलती है। लेकिन बाहर से तो बहुत शिखर हैं, उन पर चढ़कर चाहो तो तुम झाँक ले सकते हो। तो यह जो अनुभूति है विवेकानन्द की यह भी मन के ही तल की है। क्योंकि मैंने तुमसे कहा कि दूसरा तुम्हारे मन तक आन्दोलन कर सकता है। एक पीक शिखर पर चढ़ाया जा सकता है।

२६. समाधि की मानसिक झलक भी बहुत महत्त्वपूर्ण

यानी ऐसा समझो, एक छोटा बच्चा है, मैंने उसे कन्धे पर बिठा लिया है। और उसने देखा और मैंने उसे कन्धे से नीचे उतार दिया। क्योंकि मेरा शरीर उसका शरीर नहीं हो सकता है। उसके पैर तो जितने बड़े हैं उतने ही बड़े हैं। अपने पैर से तो जब वह खुद बड़ा होगा, तब देखेगा। लेकिन मैंने कन्धे पर बिठा कर उसको कुछ दिखा दिया है। वह कह सकता है जाकर कि मैंने देखा। फिर भी शायद लोग उसका भरोसा भी न करें। वे कहें कि तुमने देखा कैसे होगा। क्योंकि तेरी तो ऊँचाई नहीं है इतनी कि तू देख सके। फिर भी किसी के कन्धे पर क्षण भर बैठकर देखा जा सकता है। पर वह है सम्भावना सब मन की, इसलिए वह आध्यात्मिक नहीं है। इसलिए अप्रामाणिक नहीं कहता हूँ, लेकिन प्राथमिक कहता हूँ। और प्राथमिक अनुभूति शरीर पर भी हो सकती है, मन पर भी हो सकती है। आंशिक नहीं है वह, है तो पूरी। पर मन की पूरी अनुभूति है वह। आत्मा की पूरी अनुभूति नहीं है। आत्मा की पूरी अनुभूति तो वहाँ से लौटना नहीं है, वहाँ फिर कोई चाभी नहीं रख सकता है तुम्हारी और वहाँ फिर कोई यह नहीं कह सकता है कि हम जब चाभी लौटायेंगे तब होगा। वहाँ पर तो फिर किसी का कोई वश नहीं है। इसलिए वहाँ अगर किसी को कोई काम लेना है तो उसके पहले ही उसे रोक लेना पड़ता है उसे उस तक नहीं जाने देना पड़ता है नहीं तो फिर कठिनाई हो जायेगी।

है तो प्रामाणिक लेकिन प्रामाणिकता जो है वह साइकिक (मनोगत) है, स्पिरीचुअल (आध्यात्मिक) नहीं है। लेकिन वह भी कोई छोटी घटना नहीं है क्योंकि वह भी सब को नहीं हो सकती है। उसके लिए भी मन का बड़ा प्रबल होना जरूरी है। वह भी सबको नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : विवेकानन्द का उन्होंने शोषण किया क्या ऐसा कहा जा सकता है?

आचार्यश्री : कहने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन यह शब्द सिर्फ सूचक नहीं है, उसमें निन्दा भी है। इसलिए नहीं कहना चाहिए। शोषण शब्द में निन्दा है। गहरे में उसमें कन्डमनेशन (निन्दा) है। शोषण नहीं किया; क्योंकि रामकृष्ण को कुछ भी नहीं लेना-देना है विवेकानन्द से। लेकिन विवेकानन्द के द्वारा किसी को कुछ मिल सकेगा, यह ख्याल है। इस अर्थ में शोषण किया

कि उपयोग तो किया ही। लेकिन उपयोग और शोषण में बहुत फर्क है। और शोषण शब्द में जहाँ मैं अपने अहंकार के लिए कुछ खींच रहा हूँ और उपयोग कर रहा हूँ, वहाँ तो शोषण हो जाता है। लेकिन जहाँ मैं जगत, विश्व, सबके लिए कुछ कर रहा हूँ, वहाँ शोषण का कोई कारण नहीं है। और फिर यह भी तो ख्याल में नहीं है तुम्हें कि रामकृष्ण अगर वह झलक नहीं दिखाते तो विवेकानन्द को वह भी हो जाती यह कोई थोड़े ही पक्का है। और इस बात को जो जानते हैं वह तय कर सकते हैं।

मेरी समझ है कि यही सत्य है। लेकिन इसके लिए कोई प्रमाण नहीं जुटाये जा सकते हैं। रामकृष्ण का यह कहना है कि मृत्यु के तीन दिन पहले तुझे चाभी वापिस लौटा दूंगा, इसका कुल कारण इतना ही हो सकता है कि रामकृष्ण की समझ में विवेकानन्द अपने ही आप प्रयास करते तो मरने के तीन दिन पहले समाधि को उपलब्ध हो सकते थे। रामकृष्ण का ऐसा ख्याल है कि अगर वह आदमी अपने आप ही चलता है तो मरने के तीन दिन पहले उस जगह पहुँच जाता। तो कहा कि उस दिन चाभी लौटा देंगे। वह भी चाभी कैसे लौटायेंगे, क्योंकि रामकृष्ण तो मर गये। चाभी लौटाने वाला भी मर गया। लेकिन चाभी लौट गयी तीन दिन पहले। तो इसकी बहुत सम्भावना है क्योंकि तुम्हारे व्यक्तित्व को जितना तुम नहीं जानते उतना जो जितनी गहराइयों में गया है उतनी गहराइयों में तुम्हें जान सकता है। और यह भी जान सकता है कि तुम अगर अपने ही मार्ग से चलते रहो तो कब पहुँचोगे।

स्वभावतः अगर तुम एक यात्रा पर गये और रास्ते में एक पहाड़ पड़ गया। उस पहाड़ का रास्ता मुझे मालूम है, सीढ़ियाँ मुझे मालूम हैं। समय कितना लगता है वह मुझे मालूम है। कठिनाइयाँ कितनी हैं वह मुझे मालूम हैं। मैं तुम्हें पहाड़ चढ़ते देख रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि तीन महीने लग जावेंगे। मैं जानता हूँ कि तुम जिस रफ्तार से चल रहे हो, जिस ढंग से चल रहे हो, जिस ढंग से भटक रहे हो उसमें इतना समय लग जायगा। तो बहुत गहरे में तो इतना भी शोषण नहीं है। यदि मैंने तुम्हें वहीं बीच में आकर ऊपर उठाकर पहाड़ के ऊपर की झलक दिखा दी है और तुम्हें पुनः उसी जगह छोड़ दिया है और कहा है कि तीन महीने बाद रास्ता मिल जायगा। अभी तीन महीने तक रास्ता नहीं मिलेगा। तो भीतर इतना सूक्ष्म है बहुत सा और इतना कॉम्पलेक्स (जटिल) स्थिति है कि तुम्हें एकदम से ऊपर से नहीं दिखायी पड़ता है, ख्याल में नहीं आता है।

अब जैसे अभी कल निर्मल गयी घर वापिस तो उसको किसी ने कहा कि ५३ वर्ष की उम्र में वह मर जायेगी। तो मैंने उसकी गारन्टी (जिम्मेदारी) ले ली कि ५३ वर्ष में नहीं मरेगी। अब यह गारन्टी पूरी मैं न ही करूँगा पर यह गारन्टी पूरी

हो जायेगी। लेकिन अगर बच गयी ५३ वर्ष के बाद तो वह कहेगी कि मैंने गारन्टी पूरी की। विवेकानन्द कहेंगे कि चाभी तीन दिन पहले लौटा दी। किसको चाभी लौटानी है ?

प्रश्नकर्ता : ऐसा भी हो सकता है कि रामकृष्ण जानते रहे हों कि विवेकानन्द को साधना की लम्बी यात्रा बिना सफलता के करनी है जिसमें उन्हें बहुत दुख भी होगा। इसलिए उन्होंने दुख दूर करने के लिए पहले ही विवेकानन्द को समाधि की एक झलक बता दी ?

आचार्यश्री : 'ऐसा भी हो सकता है', ऐसा करके कभी सोचना ही मत। क्योंकि इसका कोई अन्त नहीं है। ऐसा सोचने का कोई मतलब नहीं होता है। इसलिए मतलब नहीं होता कि तुम फिर कुछ भी सोचते रहोगे। और उसका कोई अर्थ नहीं। इसलिए यह कभी मत सोचना कि ऐसा भी हो सकता है, ऐसा भी हो सकता है। जितना हो सकता है पता हो, उतना ही सोचना। इससे कोई मतलब नहीं है क्योंकि वह बिलकुल ही अर्थहीन रास्ते हैं जिन पर हम कुछ भी सोचते रहें उससे कुछ होगा नहीं। और उससे एक नुकसान होगा। वह नुकसान यह होगा कि "जैसा है" उसका पता चलने में बहुत देर लग जायेगी। इसलिए हमेशा इसकी फिक्र करना कि 'कैसा है'। और 'जैसा है' उसको जानना हो तो 'ऐसा हो सकता है', ऐसा हो सकता है यह अपने मन से काट डालना बिलकुल। इनको जगह ही मत देना। न मालूम हो तो समझना कि मुझे मालूम नहीं कि 'कैसा है।' लेकिन यह अज्ञान की जो स्थिति है कि मुझे मालूम नहीं है इसे ज्ञान से मत ढाक लेना कि 'ऐसा भी हो सकता है'। क्योंकि हम ऐसा ढंके हुए हैं बहुत सी बातें। हम सब लोग इस तरह सोचते रहे हैं। इससे बचो तो हितकर है।

●

११. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक ५ जुलाई, १९७०

•

सतत् साधना—न कहीं रुकना, न कहीं बँधना

१. परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं, शक्ति है

प्रश्नकर्ता : आचार्यश्री, आपने पिछली एक चर्चा में कहा कि सीधे अचानक प्रभु-प्रसाद (Grace) के उपलब्ध होने पर कभी-कभी दुर्घटना भी घटित हो सकती है और व्यक्ति क्षतिग्रस्त तथा पागल भी हो सकता है या उसकी मृत्यु भी हो सकती है। तो सहज ही प्रश्न उठता है कि क्या प्रभु प्रसाद हमेशा ही कल्याणकारी नहीं होता है ? और क्या वह स्व-सन्तुलन नहीं रखता है ?

दुर्घटना का यह भी अर्थ होता है कि व्यक्ति अपात्र था तो अपात्र पर कृपा (ग्रेस) कैसे हो सकती है ?

आचार्यश्री : प्रभु कोई व्यक्ति नहीं है, शक्ति है। और शक्ति का अर्थ हुआ कि एक-एक व्यक्ति का विचार करके कोई घटना वहाँ से नहीं घटती है। जैसे नदी बह रही है, किनारे जो दरख्त होंगे उनकी जड़ें मजबूत हो जायेंगी। उनमें फूल लगेंगे, फल आयेंगे। नदी की धार में जो पड़ जायेंगे उनकी जड़ उखड़ जायेगी, बह जायेगी, टूट जायेगी। नदी को न तो प्रयोजन है कि किसी वृक्ष की जड़ मजबूत हो और न प्रयोजन है कि कोई वृक्ष उखाड़ दे। नदी बह रही है। नदी एक शक्ति है, नदी एक व्यक्ति नहीं है। लेकिन निरन्तर यह भूल हुई है कि हमने परमात्मा को एक व्यक्ति समझ रखा है। इसलिए भगवान् के सम्बन्ध में हम ऐसे सोचते हैं, जैसे हम व्यक्ति के सम्बन्ध में सोचते हैं। हम कहते हैं, वह बहुत दयालु है, हम

कहते हैं वह बड़ा कृपालु है, हम कहते हैं वह सदा कल्याण ही करता है। यह हमारी आकांक्षाएँ हैं जो हम उस पर थोप रहे हैं। व्यक्ति पर तो ये आकांक्षाएँ थोपी जा सकती हैं और अगर वह इनको पूरा न करे तो उसको उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। शक्ति पर यह आकांक्षाएँ नहीं थोपी जा सकतीं और शक्ति के साथ जब भी हम व्यक्ति मानकर व्यवहार करते हैं तब हम बड़े नुकसान में पड़ते हैं, क्योंकि हम बड़े सपनों में खो जाते हैं। शक्ति के साथ शक्ति मान कर व्यवहार करेंगे तो बहुत दूसरे परिणाम होंगे।

जैसे कि जमीन में ग्रेविटेशन (कशिश, गुरुत्वाकर्षण) है। आप जमीन पर चलते हैं तो उसी की वजह से चलते हैं, लेकिन वह इसलिए नहीं है कि आप चल सकें। आप न चलेंगे तो गुरुत्वाकर्षण नहीं रहेगा, इस भूल में मत पड़ जाना। आप नहीं थे जमीन पर तो भी था, एक दिन हम नहीं भी होंगे तो भी होगा। और अगर आप गलत ढंग से चलेंगे तो गिर पड़ेंगे, टाँग भी टूट जायेगी, वह भी गुरुत्वाकर्षण के कारण ही होगा। लेकिन, आप किसी अदालत में मुकदमा न चला सकेंगे। क्योंकि वहाँ कोई व्यक्ति नहीं है। गुरुत्वाकर्षण शक्ति की एक धारा है। अगर उसके साथ व्यवहार करना है तो आपको सोच समझकर करना होगा। वह आपके साथ सोच समझकर व्यवहार नहीं कर रही है।

परमात्मा की शक्ति आपके साथ सोच समझकर व्यवहार नहीं करती। परमात्मा की शक्ति कहना ठीक नहीं है, परमात्मा शक्ति ही है। वह आपके पास सोच समझकर व्यवहार नहीं है उसका। उसका अपना शाश्वत नियम है। उस शाश्वत नियम का नाम ही धर्म है। धर्म का अर्थ है, उस परमात्मा नाम की शक्ति के व्यवहार का नियम। अगर आप उसके अनुकूल करते हैं, समझपूर्वक करते हैं, विवेकपूर्वक करते हैं तो वह शक्ति आपके लिए कृपा बन जायेगी। उसकी तरफ से नहीं, आपके ही कारण। अगर आप उल्टा करते हैं, नियम के प्रतिकूल करते हैं तो वह शक्ति आपके लिए अकृपा बन जायेगी। परमात्मा अकृपा नहीं है, यह आपके ही कारण हो गया है।

तो परमात्मा को व्यक्ति मानेंगे तो भूल होगी। परमात्मा व्यक्ति नहीं है, शक्ति है। और इसलिए परमात्मा के साथ न प्रार्थना का कोई अर्थ है, न पूजा का कोई अर्थ है। परमात्मा के साथ अपेक्षाओं का कोई भी अर्थ नहीं है। यदि चाहते हैं कि परमात्मा, वह शक्ति आपके लिए कृपा बन जाय तो आपको जो भी करना है वह अपने साथ करना है। इसलिए साधना का अर्थ है, प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं है। ध्यान का अर्थ है, पूजा का कोई अर्थ नहीं है। इस फर्क को ठीक से समझ लें।

प्रार्थना में आप परमात्मा के साथ कुछ कर रहे हैं—अपेक्षा, आग्रह, निवेदन,

माँग। ध्यान में आप अपने साथ कुछ कर रहे हैं। पूजा में आप परमात्मा से कुछ कह रहे हैं। साधना में आप अपने से कुछ कह रहे हैं। साधना का अर्थ है कि अपने को ऐसा बना लेना कि धर्म के प्रतिकूल आप न रह जायें और जब नदी की धारा बहे तो आप बीच में न पड़ जायें, तट पर हों कि नदी की धारा का पानी आपकी जड़ों को मजबूत कर जाय, उखाड़ न जाय। जैसे ही हम परमात्मा को शक्ति के रूप में समझेंगे, हमारे धर्म की पूरी व्यवस्था बदल जाती है। तो जो मैंने कहा कि यदि आकस्मिक घटना घट जाय तो दुर्घटना बन सकती है।

२. अचानक पात्र बन जाने वाले अपात्र पर (ग्रेस) प्रभु-प्रसाद से दुर्घटना सम्भव

दूसरी बात पूछी है कि क्या अपात्र को भी वह घटना घट सकती है ?

नहीं, अपात्र को कभी नहीं घटती है। घटती तो है पात्र को ही। लेकिन अपात्र कभी आकस्मिक रूप से पात्र बन जाता है जिसका उसे खुद भी पता नहीं चलता। घटना तो सदा ही पात्र को घटती है। जैसे प्रकाश आँख वाले को ही दिखायी पड़ता है, अन्धे को नहीं दिखायी पड़ता, न दिखायी पड़ सकता है। लेकिन अगर अन्धे की आँख का इलाज किया गया हो और वह आज ही अस्पताल से बाहर निकल कर सूरज को देख ले तो दुर्घटना घट जायेगी। उसे महीने दो महीने हरा चश्मा लगाकर प्रतीक्षा करनी चाहिए। अपात्र एक दम से पात्र बन जाये तो दुर्घटना ही घटेगी। इसमें सूरज कसूरवार नहीं होगा। उसको दो महीने आँखों को सूर्य के प्रकाश के झेलने की क्षमता भी विकसित करने देनी चाहिए नहीं तो वह पहले भी जितना अन्धा था उससे भी ज्यादा खतरनाक अन्धा हो जायेगा। क्योंकि पहले वाले अन्धेपन का इलाज भी हो सकता था। अब इलाज भी मुश्किल होगा। क्योंकि यह दुबारा अन्धा हुआ है वह।

इसको ठीक से समझ लेना पात्र को ही अनुभूति आती है। लेकिन अपात्र कभी शीघ्रता से पात्र बन सकता है, कभी ऐसे कारणों से पात्र बन सकता है जिसका उसे पता भी न चले, तब दुर्घटना से सदा डर है। क्योंकि शक्ति अनायास उतर आये तो आप झेलने की स्थिति में नहीं होते।

ऐसा समझ लें कि एक आदमी को अयानास कुछ भी मिल जाय, धन मिल जाय, तो धन के मिलने से दुर्घटना नहीं होनी चाहिए लेकिन अनायास मिलने से दुर्घटना हो जायेगी। अनायास बहुत बड़ा सुख मिल भी जाय तो भी दुर्घटना हो जायेगी। क्योंकि उस सुख को भी झेलने के लिए क्षमता चाहिए। सुख भी धीरे-धीरे ही मिले तो हम तैयार हो पाते हैं। आनन्द भी धीरे-धीरे ही मिले तो हम तैयार हो पाते हैं। क्योंकि तैयारी बहुत सी बातों पर निर्भर है। और हमारे भीतर झेलने की क्षमता भी बहुत सी बातों पर निर्भर है। हमारे मस्तिष्क के स्नायु, हमारे

शरीर की क्षमता, हमारे मन की क्षमता सब की सीमा है और जिस शक्ति की हम बात कर रहे हैं वह असीम है। वह ऐसा ही है जैसे बूँद के ऊपर सागर गिर जाय तो बूँद के पास कुछ पात्रता चाहिए सागर को पी जाने की, नहीं तो अनायास सिर्फ बूँद मरेगी ही, मिटेगी ही, पा नहीं सकेगी कुछ।

इसलिए अगर इसे ठीक से समझें तो साधना में दोहरा काम है। उस शक्ति के मार्ग पर अपने को लाना है, उसके अनुकूल लाना है और अनुकूल लाने के पहले अपने को सहने की क्षमता भी बढ़ानी है। वह दोहरे काम साधना के हैं। एक तरफ से द्वार खोलना है, आँख ठीक करनी है और दूसरी तरफ से आँख ठीक हो जाय तो भी प्रतीक्षा करनी है। और आँख को ही इस योग्य बनाना है कि वह प्रकाश को देख सके अन्यथा बहुत प्रकाश अन्धेरे से भी ज्यादा अन्धेरा सिद्ध होता है। इसमें प्रकाश का कोई भी कसूर नहीं है। इसमें प्रकाश का कोई लेना देना नहीं है। वह बिलकुल एकतरफा मामला है। वह हमारे ऊपर ही निर्भर है। इसमें हम जिम्मेवारी कभी दूसरे पर न दे पायेंगे ?

(अब जैसे आदमी की तो जन्मों-जन्मों की यात्रा है। उस जन्म-जन्म की यात्रा में उसने बहुत कुछ किया है। और कई बार ऐसा होता है कि वह बिलकुल पास होने के इंच भर पहले छूट गया। पिछले जन्मों की सारी स्मृतियाँ उसकी खो गयी हैं। उसे कुछ पता नहीं है। यदि आप पिछले जन्म से किसी साधना में लगे थे और ९९ डिग्री तक पहुँच गये थे, सौंवी डिग्री तक नहीं पहुँचे थे। अब वह साधना भूल गयी, वह जीवन भूल गया, वह सारी बात भूल गयी। लेकिन ९९ डिग्री तक की जो आपकी स्थिति थी वह आपके साथ है। एक दूसरा आदमी आपके पास में बैठा हुआ है। वह एक ही डिग्री पर रुक गया है। उसको भी कोई पता नहीं है। आप दोनों एक ही दिन ध्यान करने बैठे हैं तो भी आप दोनों अलग-अलग तरह के आदमी हैं। उसकी एक डिग्री बढ़ेगी तो अभी कोई घटना घटने वाली नहीं है। वह दो ही डिग्री पर पहुँचेगा। आपकी एक डिग्री बढ़ेगी तो घटना घट जाने वाली है। वह आकस्मिक ही होगी आपके लिए घटना। क्योंकि आपको कोई अन्दाज भी नहीं है कि ९९ डिग्री पर आप थे। आप कहाँ हैं इसका अन्दाज नहीं है। और इसलिए एकदम से पहाड़ टूट पड़ सकता है। उसकी तैयारी चाहिए।)

और जब मैं कहता हूँ कि दुर्घटना तो मेरा मतलब इतना ही है कि जिसकी हमारी तैयारी नहीं थी। अनिवार्य रूप से दुर्घटना का मतलब बुरा या दुख नहीं होता। दुर्घटना का इतना ही मतलब होता है कि जिसके घटने के लिए हम अभी तैयार न थे। अब एक आदमी को एक लाख रुपये की लाटरी मिल गयी हो तो कुछ बुरा नहीं हो गया है। लेकिन मृत्यु घटित हो जायेगी, वह मर सकता है।

एक लाख रुपये ! यह उसके हृदय की गति को बन्द कर जा सकती है। दुर्घटना का मतलब है कि जिस घटना के लिए हम अभी तैयार न थे।

और इससे उल्टा भी हो सकता है कि अगर कोई आदमी तैयार हो और उसकी मृत्यु आ जाये तो जरूरी नहीं है कि मृत्यु दुर्घटना ही हो। अगर कोई आदमी तैयार हो, सुकरात जैसी हालत में हो तो वह मृत्यु को भी आलिंगन करके स्वागत कर लेगा और उसके लिए मृत्यु तत्काल समाधि बन जायेगी, दुर्घटना नहीं। क्योंकि उस मरते क्षण को वह इतने प्रेम और आनन्द से स्वीकार करेगा कि वह उस तत्व को भी देख लेगा जो नहीं मरता है। हम तो मरने को इतनी घबड़ाहट से स्वीकार करते हैं कि मरने के पहले बेहोश हो जाते हैं। मरने की प्रक्रिया हम होशपूर्वक नहीं अनुभव कर पाते। मरने के पहले बेहोश हो जाते हैं। इसलिए हम बहुत बार मरे हैं लेकिन मरने की प्रक्रिया का हमें कोई पता नहीं है। एक बार भी हमें पता चल जाय कि मरना क्या है तो फिर हमें कभी भी यह ख्याल न उठेगा कि मैं और मर सकता हूँ। क्योंकि मौत की घटना घट जायेगी और आप पार खड़े रह जायेंगे। लेकिन यह होश में होना चाहिए।

तो मृत्यु भी किसी के लिए सौभाग्य हो सकती है और प्रसाद (ग्रेस) भी किसी के लिए दुर्भाग्य हो सकता है। इसलिए साधना दोहरी है। पुकारना है, बुलाना है, खोजना है, जाना है और साथ-साथ तैयार भी होते चलना है कि जब आ जाय द्वार पर प्रकाश तो ऐसा न हो कि प्रकाश भी हमें अन्धेरा ही सिद्ध हो। और अन्धा कर जाय। इसमें एक बात अगर ख्याल रखेंगे जो मैंने पहले कही तो अड़चन न होगी। अगर परमात्मा को व्यक्ति मान लेंगे तो फिर बहुत अड़चन हो जाती है। अगर शक्ति मानेंगे तो कोई अड़चन नहीं।

व्यक्ति मानकर बहुत कठिनाई हो गयी है और हमारे मन की इच्छाएँ ऐसी होती हैं कि व्यक्ति हो, क्योंकि व्यक्ति बनाकर हम उसको जिम्मेदार (रिस्पांसिबल) बना देते हैं। फिर जिम्मेदारी अपनी पूरी नहीं रह जाती। उसकी भी कुछ हो जाती है और हम तो छोटी छोटी चीजों के लिए उसको उत्तरदायी बनाते हैं। बड़ी चीजों की तो बात अलग है। एक आदमी को नौकरी मिल जाय तो परमात्मा को धन्यवाद देता है। नौकरी छूट जाय तो परमात्मा पर नाराज होता है। किसी को फोड़ा-फुन्सी हो जाय तो परमात्मा को कहता है कि उसने कर दिया। किसी का फोड़ा-फुन्सी ठीक हो जाय तो वह कहता है भगवान की कृपा से ठीक हो गया। लेकिन हम कभी ख्याल नहीं करते कि हम कैसे काम भगवान से ले रहे हैं और कभी यह ख्याल नहीं करते कि बड़ी इगोसैंट्रिक (अहं केन्द्रित) धारणा है यह कि मेरे फोड़े फुन्सी की फिक्र भी भगवान ही कर रहा है। हमारा एक रुपया गिर गया और सड़क पर लौटकर मिल गया तो हम कहते

हैं भगवान की कृपा है। मेरे एक रुपये का भी हिसाब किताब जो है वह भगवान रख रहा है। यह सोचकर भी मन को बड़ी तृप्ति मिलती है, क्योंकि मैं तब इस सारे जगत के केन्द्र पर खड़ा हो गया और परमात्मा से भी जो मैं व्यवहार कर रहा हूँ वह एक नौकर का व्यवहार है। उससे भी हम एक पुलिस वाले का उपयोग ले रहे हैं कि वह तैयार खड़ा है। हमारे रुपये को बचा रहा है।

व्यक्ति बनाने से यह सुविधा है कि जिम्मेवारी उस पर टाल सकते हैं। लेकिन साधक जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता है। असल में साधक होने का एक ही अर्थ है कि अब इस जगत में वह किसी बात के लिए किसी और को जिम्मेवार ठहराने नहीं जायगा। अब दुख है तो अपना है, सुख है तो अपना है, शान्ति है तो अपनी है, अशान्ति है तो अपनी है। कोई उत्तरदायी नहीं, मैं ही उत्तरदायी हूँ। अगर टाँग टूट जाती है गिर कर तो ग्रेविटेशन (गुरुत्वाकर्षण) जिम्मेदार नहीं, मैं ही जिम्मेदार हूँ। ऐसी मनोदशा हो तो फिर बात समझ में आ जायेगी और तब दुर्घटना का अर्थ और होगा। और इसलिए मैंने कहा कि प्रसाद भी तैयार व्यक्तित्व को उपलब्ध होता है तो कल्याणकारी, मंगलदायी हो जाता है। असल में हर चीज की एक घड़ी है। हर चीज का एक क्षण है और ठीक क्षण और ठीक घड़ी को चूक जाना बड़ी दुर्घटना है।

प्रश्नकर्ता : आपने पिछली एक चर्चा में कहा कि शक्तिपात का प्रभाव धीरे-धीरे कम हो सकता है। अतः बार-बार माध्यम (कण्डक्टर व्यक्ति) से सम्बन्ध होना चाहिए। तो क्या यह गुरु रूपी किसी व्यक्ति पर परावलम्बित होना नहीं है ?

३. गुरु और शिष्य का परावलम्बनयुक्त गलत सम्बन्ध

आचार्यश्री : यह हो सकता है परावलम्बन, अगर कोई गुरु बनने को उत्सुक हो, कोई बनाने को उत्सुक हो तो यह परालम्बन हो जायगा। इसलिए भूल के भी शिष्य मत बनना। और भूलकर भी गुरु मत बनना। यह परावलम्बन हो जायगा। लेकिन यदि शिष्य और गुरु बनने का कोई सवाल नहीं है तब कोई परावलम्बन नहीं है। तब जिससे आप सहायता ले रहे हैं वह अपना ही आगे गया रूप है। कौन बने गुरु, कौन बने शिष्य !

मैं निरन्तर कहता रहा हूँ कि बुद्ध ने अपने पिछले जन्मो के स्मरण में एक बात कही है। कहा है कि मैं तब पिछले जन्म में अज्ञानी था। और एक बुद्ध पुरुष परमात्मा को उपलब्ध हो गये थे। तो मैं उनके दर्शन करने गया था। झुककर उन्होंने प्रणाम किया था। और वह प्रणाम करके खड़े भी न हो पाये थे कि बहुत मुश्किल में पड़ गये, क्योंकि वह बुद्ध पुरुष उनके चरणो में झुके और उन्हें प्रणाम किया। तो उन्होंने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं। मैं आपके पैर छूऊँ,

यह तो ठीक। लेकिन आप मेरे पैर छूते हैं! तब उन्होंने कहा था कि तू मेरे पैर छुए और मैं तेरे पैर न छुऊँ तो बड़ी गलती हो जायेगी। गलती इसलिए हो जायेगी कि मैं तेरा ही दो कदम आगे गया एक रूप हूँ। और जब मैं तेरे पैर में झुक रहा हूँ तो तुझे याद दिला रहा हूँ कि तू मेरे पैरों पर झुका वह ठीक किया। लेकिन इस भूल में मत पड़ जाना कि तू अलग और मैं अलग हूँ। और इस भूल में मत पड़ जाना कि तू अज्ञानी है और मैं ज्ञानी। घड़ी भर की बात है कि तू भी ज्ञानी हो जायगा। ऐसे ही कि जब मेरा दायाँ पैर आगे जाता है तो बायाँ पीछे छूट जाता है। असल में दायाँ आगे जाय, इसके लिए भी बायें को थोड़ी देर छूटना पड़ता है।

गुरु और शिष्य का सम्बन्ध घातक है। गुरु और शिष्य का असम्बन्धित रूप बड़ा सार्थक है। असम्बन्धित रूप का मतलब यह होता है कि जहाँ अब दो नहीं है, जहाँ दो है वहीं सम्बन्ध हो सकता है। तो यह तो समझ में भी आ सकता है कि शिष्य को यह ख्याल हो कि गुरु है। क्योंकि शिष्य अज्ञानी है। लेकिन जब गुरु को भी यह ख्याल होता है कि गुरु है तब फिर हद हो जाती है। तब उसका मतलब हुआ कि अन्धा, अन्धे को मार्ग-दर्शन कर रहा है और इसमें आगे जाने वाला अन्धा ही ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि वह दूसरे अन्धे को यह भरोसा दिलवा रहा है कि तुम बेफिक्र रहो।

गुरु और शिष्य के सम्बन्ध का कोई आध्यात्मिक अर्थ नहीं है। असल में इस जगत में हमारे सारे सम्बन्ध शक्ति के सम्बन्ध हैं। पावर पोलिटिक्स (शक्ति-सन्तुलन) के सम्बन्ध हैं। कोई बाप है, कोई बेटा है। बाप और बेटा अगर प्रेम का सम्बन्ध हो तो बात और होगी। तब बाप को बाप होने का पता नहीं होगा, बेटे को बेटा होने का पता नहीं होगा। तब बेटा बाप का ही बाद में आया हुआ रूप होगा और बाप बेटे का पहले आ गया रूप होगा। स्वभावतः बात भी यही है।

एक बीज हमने बोया है और वृक्ष आया है। और फिर उस वृक्ष में हजार बीज लग गये हैं। उस पहले बीज और इन बीजों के बीच क्या सम्बन्ध है? वह पहले आ गया था, ये पीछे आये। उसी की यात्रा है, उसी बीज की यात्रा है जो वृक्ष के नीचे टूट कर बिखर गया है। बाप पहली कड़ी थी, यह बेटा दूसरी कड़ी है उसी शृंखला में। लेकिन तब शृंखला है और दो व्यक्ति नहीं है। तब अगर बेटा अपने बाप के पैर दबा रहा है तो सिर्फ बीती हुई कड़ी की सेवा कर रहा है! स्वभावतः बीती हुई कड़ी को वह सम्मान दे रहा है। जो जा रहा है उसको वह आदर दे रहा है। क्योंकि उसके बिना वह आ भी नहीं सकता था। वह उससे आया है। और अगर बाप अपने बेटे को बड़ा कर रहा है, पाल-पोष रहा है,

भोजन-कपड़े की चिन्ता कर रहा है तो वह किसी दूसरे की चिन्ता नहीं है। वह अपने ही एक रूप को सम्भाल रहा है। और अगर इसे हम ऐसा कहें कि बाप अपने बेटे में फिर से जवान हो रहा है तो कठिनाई नहीं है। तब सम्बन्ध की बात नहीं है। तब और बात है। (तब एक प्रेम है जहाँ सम्बन्ध नहीं है। लेकिन आमतौर से जो बाप और बेटे के बीच सम्बन्ध है वह राजनीति का सम्बन्ध है। बाप ताकतवर है, बेटा कमजोर है। बाप बेटे को दबा रहा है। बाप बेटे को कह रहा है कि तू अभी कुछ भी नहीं है। मैं ही सब कुछ हूँ तो उसे पता नहीं कि आज नहीं कल बेटा ताकतवर हो जायगा, बाप कमजोर हो जायगा। और तब बेटा उसे दबाना शुरू करेगा कि मैं सबकुछ हूँ और तू कुछ भी नहीं है।)

यह जो गुरु और शिष्य के बीच सम्बन्ध है, पति और पत्नी के बीच सम्बन्ध है यह सब विकृतियाँ (पर्व्हरसन्स) हैं। नहीं तो पति और पत्नी के बीच सम्बन्ध की क्या बात है! दो व्यक्तियों ने ऐसा अनुभव किया है कि वह एक हैं। इसलिए वह साथ हैं। लेकिन नहीं, ऐसा मामला नहीं है। पति पत्नी को दबा रहा है अपने ढंगों से। पत्नी पति को दबा रही है अपने ढंगों से। और वह एक दूसरे के ऊपर पूरी की पूरी ताकत और पावर-पोलिटिक्स (शक्ति का राजनैतिक) का पूरा प्रयोग कर रहे हैं। गुरु शिष्य घूमकर फिर ऐसी की ऐसी बात है। गुरु को शिष्य दबा रहा है और शिष्य गुरु के मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह कब गुरु बन जायें। या अगर गुरु ज्यादा देर टिक जाय तो बगावत शुरू हो जायेगी। इसलिए ऐसा गुरु खोजना बहुत मुश्किल है जिसके शिष्य उससे बगावत न करते हों। ऐसा गुरु खोजना मुश्किल है जिसके शिष्य उसके दुश्मन न हो जाते हों। जो भी चीफ डिसाइपल (प्रमुख शिष्य) है वह दुश्मन होने वाला है। तो चीफ डिसाइपल (प्रमुख शिष्य) जरा सोचकर बनाना चाहिए। क्यों कि वह जो शक्ति का दबाव है उसकी बगावत (रिबेलियन) भी होती है। अध्यात्म का इससे कोई लेना देना नहीं है।

तो मेरी समझ में आता है कि बाप बेटे को दबाये, क्योंकि दो अज्ञानियों की बात है, माफ की जा सकती है। अच्छी तो नहीं है। लेकिन सही जा सकती है। पति पत्नी को दबाये, पत्नी पति को दबाये, चल सकता है। शुभ तो नहीं है, चलना तो नहीं चाहिए लेकिन फिर भी छोड़ा जा सकता है। लेकिन गुरु शिष्य को भी दबा रहा है तब फिर बड़ा मुश्किल हो जाता है। कम-से-कम यह तो जगह ऐसी है जहाँ कोई दावेदार नहीं होना चाहिए कि मैं जानता हूँ और तुम नहीं जानते हो।

गुरु और शिष्य के बीच क्या सम्बन्ध है? दावेदार है एक, वह कहता है मैं जानता हूँ और तुम नहीं जानते हो। तुम अज्ञानी हो और मैं ज्ञानी हूँ इसलिए

अज्ञानी को ज्ञानी के चरणों में झुकना चाहिए। मगर हमें यह पता ही नहीं है कि यह कैसा ज्ञानी है जो किसी से कह रहा है कि चरणों में झुकना चाहिए। यह महा अज्ञानी हो गया है। हाँ, इसको थोड़ी बातें पता चल गयी हैं। शायद उसने कुछ किताबें पढ़ ली हैं। शायद परम्परा से कुछ सूत्र उसको उपलब्ध हो गये हैं, वह उनको दोहराना जान गया है। इससे ज्यादा कुछ और मामला नहीं है।

४. दावेदार—अज्ञानी गुरु

शायद तुमने एक कहानी न सुनी हो। मैंने सुना है, एक बिल्ली थी जो सर्वज्ञ हो गयी थी। बिल्लियों में उसकी बड़ी ख्याति हो गयी थी क्योंकि वह तीर्थंकर की हैसियत पा गयी थी और उसके सर्वज्ञ (आल-नोइंग) होने का कारण यह था कि वह एक पुस्तकालय में प्रवेश कर जाती थी। वह उस पुस्तकालय के बाबत सभी कुछ जानती थी। सभी कुछ का मतलब—कहाँ से प्रवेश करना, कहाँ से निकलना, किस किताब की आड़ में बैठने से ज्यादा आराम होता है और कौन-सी किताब ठण्ड में भी गर्मी देती है। तो बिल्लियों में यह खबर हो गयी थी कि अगर पुस्तकालय के सम्बन्ध में कुछ भी जानना हो तो वह बिल्ली आल-नोइंग (सर्वज्ञ) है और निश्चित ही जो बिल्ली पुस्तकालय के बाबत सब जानती हो, जो भी पुस्तकालय में है वह सब जानती हो तो उसके ज्ञानी होने में क्या कमी थी ! उस बिल्ली को शिष्य भी मिल गये थे। लेकिन, उसको कुछ भी पता नहीं था। किताब का पता उसे इतना ही था कि उसके आड़ में बैठकर छिपने की सुविधा है। उस किताब के बाबत उसे इतना ही पता था कि उसकी जिल्द जो है वह ऊनी कपड़े की है, उसमें ठण्ड में भी गर्मी मिलती है। यही जानकारी थी उसकी किताब के बाबत, और उसे कुछ भी पता नहीं था कि भीतर क्या है, और भीतर का बिल्ली को पता हो भी कैसे सकता है।

आदमियों में भी ऐसी सर्वज्ञ (आलनोइंग) बिल्लियाँ हैं जिनको किताबों की आड़ में छिपने का पता है, जिन पर आप हमला करो तो वे फौरन रामायण बीच में कर लेंगे और कहेंगे, रामायण में ऐसा लिखा है, और आपकी गर्दन को रामायण से दबा देंगे। गीता में ऐसा लिखा है, अब गीता से कौन झगड़ा करेगा ? अगर मैं सीधा ऐसा कहूँ कि मैं ऐसा कहता हूँ तो मुझसे झगड़ा हो सकता है लेकिन मैं कहता हूँ कि गीता ऐसा कहती है, तो मैं गीता को बीच में ले लेता हूँ। गीता की आड़ में मुझे सुरक्षा है। गीता गर्मी भी देती है ठण्ड में, व्यवसाय भी देती है। दुश्मन से बचाव के लिए शस्त्र भी बन जाती है। आभूषण भी बन जाती है। और गीता के साथ खेल खेला जा सकता है। लेकिन गीता को जिसने पकड़ा है ऐसे आदमी को उतना ही पता है जितना कि उस बिल्ली को जो पुस्तकालय में

आराम करती थी। उससे भिन्न कुछ भी पता नहीं है। और यह तो हो सकता है कि उस पुस्तकालय में रहते-रहते बिल्ली किसी दिन जान जाय कि किताब में क्या है। लेकिन ये किताब जानने वाले गुरु बिलकुल भी नहीं जान पायेंगे। क्योंकि जितनी इनको किताब कण्ठस्थ हो जायगी उतना ही उनको जानने की कोई जरूरत न रह जायगी। इनको भ्रम पैदा होगा कि हमने जान लिया है।

जब भी कोई आदमी दावा करे कि जान लिया है तब समझना कि अज्ञान मुखर हो गया है। दावेदारी अज्ञान है लेकिन जब कोई आदमी जानने के दावे से भी झिझक जाय, तब समझना कि कहीं कोई झलक और किरण मिलनी शुरू हुई है। लेकिन ऐसा आदमी गुरु न बन सकेगा। ऐसा आदमी गुरु बनने की कल्पना भी नहीं कर सकता, क्योंकि गुरु के साथ अथोरिटी (दावेदारी) है, गुरु के साथ दावा जरूरी है। गुरु का मतलब ही है कि मैं जानता हूँ, पक्का जानता हूँ। तुम्हें अब जानने की कोई जरूरत नहीं। मुझसे जान लो। तो जहाँ अथोरिटी है, जहाँ आप्तता है और जहाँ दावा है कि मैं जानता हूँ वहाँ दूसरे की अन्वेषण और खोज की वृत्ति की हत्या भी है। क्योंकि अथोरिटी बिना हत्या किये नहीं रह सकती। दावेदार दूसरे की गर्दन काटे बिना नहीं रह सकता, क्योंकि यह भी डर है कि कहीं तुम पता न लगा लो, अन्यथा मेरे अधिकार का क्या होगा, मेरी अथोरिटी का क्या होगा। तो मैं तुम्हें रोकूँगा। अनुयायी बनाऊँगा, शिष्य बनाऊँगा, शिष्य में भी हायरेरकी (श्रेणियाँ) बनायी जायेगी कि कौन प्रधान है, कौन कम प्रधान है। और सब वही जाल खड़ा हो जायगा जो राजनीति का जाल है जिससे अध्यात्म का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

५. शक्तिपात प्रोत्साहन बने, गुलामी नहीं

तो जब मैं कहता हूँ कि शक्तिपात जैसी घटना परमात्मा के प्रकाश और उसकी विद्युत को, ऊर्जा को उपलब्ध करने की घटना किन्हीं व्यक्तियों के करीब सुगमता से घट सकती है तो मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम उन व्यक्तियों को पकड़ कर रुक जाना, न यह कह रहा हूँ कि तुम परतंत्र हो जाना, न यह कह रहा हूँ कि तुम उन्हें गुरु बना लेना। न यह कह रहा हूँ कि तुम अपनी खोज बन्द कर देना। बल्कि सच तो यह है कि जब भी तुम्हें किसी व्यक्ति के करीब वह घटना घटेगी तो तुम्हें तत्काल ऐसा लगेगा कि जब दूसरे व्यक्ति के माध्यम से आकर भी इस घटना ने इतना आनन्द दिया है तो जब सीधी अपने माध्यम से आती होगी तो बात ही और हो जायेगी। आखिर दूसरे से आकर तो थोड़ी जूठी हो ही जाती है, थोड़ी तो बासी हो ही जाती है। मैं बगीचे में गया और वहाँ के फूलों की सुगन्ध से भर

गया और फिर तुम मेरे पास आये और मेरे पास से तुम्हें फूलों की सुगन्ध आयी, लेकिन मेरे पसीने की बदबू भी उसमें थोड़ी मिल ही जायेगी। और तब तक फीकी भी बहुत हो जायेगी।

तो जब मैं यह कह रहा हूँ कि यह प्राथमिक रूप से बड़ी उपयोगी है कि तुम्हें खबर भी तो लग जाय कि बगीचा भी है, फूल भी है तब तुम अपनी यात्रा पर जा सकोगे। अगर गुरु बनाओगे तो रुकोगे। मील के पत्थरों के पास हम रुकते नहीं हैं। हालांकि मील के पत्थर, जिनको हम गुरु कहते हैं, उनसे बहुत ज्यादा बताते हैं। पक्की खबर देते हैं कि कितने मील चल चुके और कितने मील मंजिल की यात्रा बाकी है। कोई गुरु इतनी पक्की खबर नहीं देता है। लेकिन फिर भी मील के पत्थर की न हम पूजा करते हैं, न उसके पास बैठ जाते हैं। और अगर मील के पत्थर के पास हम बैठ जायेंगे तो हम पत्थर से बदतर सिद्ध होंगे। क्योंकि वह पत्थर सिर्फ बताने को था कि आगे है। वह रोकने वाले नहीं हैं, न रोकने का कोई अर्थ है।

लेकिन अगर पत्थर बोल सकता होता तो वह कहता, कहाँ जा रहे हो? मैंने तुम्हें इतना बताया और तुम मुझे छोड़कर जा रहे हो। बैठो, तुम मेरे शिष्य हो गये। क्योंकि मैंने तुम्हें बताया कि दस मील चल चुके और बीस मील अभी बाकी है। अब तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। मेरे पीछे रहो। पत्थर बोल नहीं सकता इसलिए गुरु नहीं बनता है। आदमी बोल सकता है इसलिए गुरु बन जाता है। क्योंकि वह कहता है कि मेरे प्रति कृतज्ञ रहो, अनुगृहीत रहो, ग्रेटीट्यूट प्रकट करो। मैंने तुम्हें इतना बताया। और ध्यान रहे, जो ऐसा आग्रह करता हो, अनुग्रह माँगता हो, समझना कि उसके पास बताने को कुछ भी न था। कोई सूचना थी। जैसे मील के पत्थर के पास सूचना है। उसे कुछ पता थोड़े ही है कि कितनी मंजिल है और कितनी नहीं है। सिर्फ एक सूचना उसके ऊपर खुदी है। वह उस सूचना को दोहराये चले जा रहा है। कोई भी निकलता है तो उसी को दोहराये चला जा रहा है।

ऐसे ही अनुग्रह जब तुमसे माँगा जाय तो सावधान हो जाना। और व्यक्तियों के पास नहीं रुकना है। जाना तो है अव्यक्ति के पास। जाना तो है उसके पास जहाँ कोई आकार और सीमा नहीं है। लेकिन व्यक्तियों से भी उसकी झलक मिल सकती है। क्योंकि अन्ततः हैं तो व्यक्ति उसी के। जैसा मैंने कल कहा कि कुएँ से भी सागर का पता चलता है ऐसे ही किसी व्यक्ति से भी उस अनन्त का पता चलता है। अगर तुम झाँक सको। तो तुम्हें पता चल सकता है। लेकिन कहीं निर्भर नहीं होना है और किसी चीज को परतन्त्रता नहीं बना लेनी है। लेकिन सभी तरह के सम्बन्ध परतन्त्रता बनते हैं चाहे वह पति-पत्नी का हो

चाहे बाप-बेटे का हो, चाहे गुरु-शिष्य का हो। जहाँ सम्बन्ध है वहाँ परतन्त्रता शुरू हो जायगी।

तो आध्यात्मिक खोजी को सम्बन्ध ही नहीं बनाने हैं। और पति पत्नी के बनाये रक्खें तो कोई बहुत हर्जा नहीं है। क्योंकि उनसे कोई बाधा नहीं है। वे असम्बद्ध (Irrelevant) हैं। लेकिन मजा यह है कि वह पति पत्नी के, बाप बेटे के सम्बन्ध तोड़कर एक नया सम्बन्ध बनाता है जो बहुत खतरनाक है। वह गुरु शिष्य का सम्बन्ध बनाता है। आध्यात्मिक सम्बन्ध का कोई मतलब ही नहीं होता। सब सम्बन्ध सांसारिक हैं। सम्बन्ध मात्र सांसारिक हैं। अगर हम ऐसा कहें कि सम्बन्ध ही संसार है तो कोई कठिनाई नहीं होगी।

असंग, अकेले हो तुम। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि अहंकार है। क्योंकि तुम्हीं अकेले हो, ऐसा नहीं है, और भी अकेले हैं। तुमसे कोई दो कदम आगे है। उसकी अगर तुम्हें पैर की ध्वनि भी मिल जाती है कि कोई दो कदम आगे है तो दो कदम आगे के रास्ते की भी खबर मिल जाती है। कोई तुमसे दो कदम पीछे है, कोई तुम्हारे साथ है, कोई दूर है। ये सब चारों तरफ हजार हजार-हजार अनन्त-अनन्त आत्माएँ यात्रा कर रही है। इस यात्रा में सब संगी साथी हैं। फासला आगे पीछे का है। इससे जितना फायदा ले सको, लेना। लेकिन इसको गुलामी मत बनाना। यह गुलामी सम्बन्ध बनाने से शुरू हो जाती है।

इसलिए परतन्त्रता से बचना, सम्बन्ध से बचना। आध्यात्मिक सम्बन्ध से सदा बचना। सांसारिक सम्बन्ध उतना खतरनाक नहीं है। क्योंकि संसार का मतलब ही सम्बन्ध है। वहाँ कोई इतने अड़चन की बात नहीं है। और जहाँ से तुम्हें खबर मिले वहाँ से खबर ले लेना। और यह नहीं कह रहा हूँ मैं कि तुम धन्यवाद मत देना। यह नहीं कह रहा हूँ। इसलिए कठिनाई होती है। इसलिए जटिलता हो जाती है। कोई अनुग्रह माँगे, यह गलत है। लेकिन तुम धन्यवाद न दो तो उतना ही गलत है। मील के पत्थर को भी धन्यवाद दे ही देना जाते वक्त कि तेरी बड़ी कृपा है। वह सुने या न सुने।

तो इससे बड़ी भ्रान्ति होती है कि जब हम कहते हैं कि गुरु अनुग्रह न माँगे तो आमतौर से आदमी के अहंकार को एक रस मिलता है। वह सोचता है कि बिलकुल ठीक है। किसी को धन्यवाद भी देने की जरूरत नहीं है। तब भूल हो रही है। यह बिलकुल दूसरे पहलू से बात को पकड़ा जा रहा है। यह मैं नहीं कह रहा हूँ कि तुम धन्यवाद मत दे देना। मैं यह कह रहा हूँ कि कोई अनुग्रह माँगे, यह गलत है। इसलिए तुम अनुग्रहीत न हो तो उतना ही गलत हो जायगा। तुम, तो अनुग्रहीत होना ही। लेकिन वह अनुग्रह बाँधेगा नहीं। क्योंकि जो

माँगा नहीं जाता वह कभी नहीं बँधता है। जो दान है वह कभी नहीं बाँधता है। अगर मैंने तुम्हें धन्यवाद दिया है तो वह कभी नहीं बाँधता है। और अगर तुमने माँगा है तो फिर मैं दूँ या न दूँ, उपद्रव शुरू हो जाता है।

और जहाँ से तुम्हें झलक मिले उसकी वहाँ से झलक को ले लेना। और वह झलक चूँकि दूसरे से आयी है इसलिए बहुत स्थायी नहीं होगी। वह खोयगी बार-बार। स्थायी तो वही होगी जो तुम्हारी है। इसलिए उसे तुम्हें बार बार लाना पड़ेगा। और अगर डरते हो परतन्त्रता से तो अपनी खोजना। परतन्त्रता से डरने से कुछ भी न होगा। दूसरे पर निर्भर होने का भय लेने की जरूरत नहीं है। क्योंकि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं तुमसे परतन्त्र हो जाऊँ तो भी सम्बन्धित हो गया और तुमसे डर के भाग जाऊँ तो भी सम्बन्धित हो गया और परतन्त्र हो गया। इसलिए चुपचाप लेना, धन्यवाद देना, बढ़ जाना।

और अगर लगे कि कुछ है जो आता है और जो जाता है तो फिर अपना स्रोत खोजना जहाँ से वह कभी न खोये। जहाँ से खोने का उपाय न रह जाय। अपनी सम्पदा ही अनन्त हो सकती है। दूसरे से मिला हुआ दान चूक ही जाता है। भिखारी मत बन जाना कि दूसरे से ही माँगते चले जाओ। वह दूसरे से मिला हुआ भी तुम्हें अपनी ही खोज पर ले जाय और यह तभी होगा जब तुम दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं बनते हो। धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाते हो।

६. शक्ति है निष्पक्ष—नियमानुसार चलने वाली

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि परमात्मा एक शक्ति है और उसको मनुष्य के जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं है, कोई सरोकार नहीं है। कठोपनिषद् में एक श्लोक है जिसका मतलब है कि वह परमात्मा जिसको पसन्द करता है उसको ही मिलता है तो उसकी पसन्दगी का कारण व आधार क्या है?

आचार्यश्री : असल में मैंने यह नहीं कहा कि परमात्मा की आपमें कोई रुचि नहीं है। उसकी रुचि न हो तो आप हो ही नहीं सकते। यह मैंने नहीं कहा। और यह भी नहीं कहा कि वह आपके प्रति तटस्थ है, और हो भी नहीं सकता तटस्थ। क्योंकि आप उससे कुछ अलग नहीं हो। आप उसके ही फैले हुए विस्तार हो। जो कहा, वह मैंने यह कहा कि आपमें उसकी कोई विशेष रुचि नहीं है। इन दोनों बातों में फर्क है। आपमें उसकी कोई विशेष रुचि नहीं है। आपके लिए नियम से बाहर नहीं जायगी वह शक्ति। और अगर आप अपने सिर पर पत्थर मारेंगे तो लहू बहेगा और प्रकृति आपमें विशेष रुचि न लेगी। रुचि तो पूरी ले रही है। क्योंकि खून जब बह रहा है, वह भी रुचि है। वह भी उसके ही द्वारा बह रहा है। आपने जो किया है उसमें पूरी रुचि ली गयी है। आप अगर नदी में बहकर डूब रहे हैं तब भी प्रकृति पूरी रुचि ले रही है—डुबाने में ले रही है। लेकिन विशेष

रुचि नहीं है। कोई स्पेशल, कोई अतिरिक्त आपमें रुचि नहीं है कि नियम तो था डुबाने का और बचाया जाय। नियम तो था कि आप जब छत पर से गिरें तो सिर टूट जाय। लेकिन छत पर से गिरें और सिर न टूटे, ऐसी विशेष रुचि नहीं है।

जिन्होंने ईश्वर को व्यक्ति माना है उन्होंने इस तरह की विशेष रुचियों का (गल्प-कथा) फिक्शन खड़ा किया है कि प्रह्लाद को वह जलायेगा नहीं आग में। पहाड़ से गिराओ तो चोट नहीं लगेगी। ये जो कहानियाँ हैं ये हमारी आकांक्षाएँ हैं। हम चाहते हैं कि ऐसा हो। इतनी विशेष रुचि हममे हो। हम उसके केन्द्र बन जायें। यह मैं नहीं कह रहा हूँ कि रुचि नहीं है। मैं यह कह रहा हूँ कि उसकी रुचि नियम में है। **शक्ति की रुचि सदा नियम में होती है।** व्यक्ति की रुचि विशेष बन सकती है। **व्यक्ति पक्षपाती हो सकता है, शक्ति सदा निष्पक्ष है।** निष्पक्षता ही उसकी रुचि है। इसलिए जो नियम में होगा, वह होगा। जो नियम मे नही होगा, वह नही होगा। परमात्मा की तरफ से (चमत्कार) मिरैकल नहीं हो सकते।

७. निरहंकारी व्यक्ति का परमात्मा के प्रति अनुग्रह

और वह जो दूसरा सूत्र आप कह रहे हैं, कठोपनिषद् का उसके मतलब बहुत और हैं। उसमें कहा गया है कि उसकी जिसके प्रति पसन्द होती है, वह जिस पर प्रसन्न होता है, वह जिस पर आनन्दित होता उसे ही मिलता है। स्वभावतः आप कहेंगे कि यह तो वही बात हो गयी कि उसकी विशेष रुचि जिसमें होती है। नहीं, यह बात नही है। असल में आदमी की बड़ी तकलीफ है। और जब हमे किसी सत्य को कहना होता है तो उसके बहुत पहलू हैं। असल मे जिनको वह मिला है उनका यह कहना है कि हमारे प्रयास से क्या हो सकता था। हम क्या थे! **हम तो ना-कुछ थे, हम तो धूल के कण भी न थे। फिर भी हमें वह मिल गया है।** और अगर हमने दो घड़ी ध्यान दिया था तो उसका भी क्या मूल्य था कि हम दो घड़ी चुप बैठ गये थे। **जो मिला है वह अमूल्य है।** तो जो हमने किया था और जो मिला है इसमें कोई तालमेल ही नही है। तो जिनको मिला है वे कहते हैं नहीं, यह अपने प्रयास का फल नहीं है। यह उसकी कृपा है। उसने पसन्द किया तो मिल गया अन्यथा हम क्या खोज पाते! **यह निरहंकार व्यक्तिका कहना है, जिसको पाकर पता चला है कि अपने से क्या हो सकता था।**

लेकिन यह जिनको नही मिला है, अगर उनकी धारणा बन जाय तो बहुत खतरनाक है। जिनको मिला है उनकी तरफ से तो यह कहना बड़ा सुरुचिपूर्ण है। और इसमें बड़ा ही सुसंस्कृत भाव है। यानी वह कह रहे हैं कि हम कौन थे कि वह हमें मिलता। हमारी क्या ताकत थी, हमारी क्या सामर्थ्य थी, हमारा क्या अधिकार था; हम कहाँ दावेदार थे, हम तो कुछ भी न थे। फिर भी वह हमें मिल

गया। उसकी ही कृपा है। हमारा कोई प्रयास नहीं है। यह उनका कहना तो उचित है।

उनके कहने का मतलब यह है कि यह किसी प्रयास भर से नहीं मिल गया। **यह कोई हमारी अहंकार की उपलब्धि (अचीवमेंट) नहीं है।** यह प्रयास है। यह उनका कहना तो बिलकुल ठीक है लेकिन कठोपनिषद् पढ़कर आप दिक्कत में पड़ जाओगे। सभी शास्त्रों को पढ़कर आदमी दिक्कत में पड़ा है। क्योंकि वह कहना है जानने वालों का और पढ़ रहे हैं न जानने वाले। और वह उसको अपना कहना बना रहे हैं। तो न जानने वाला कहता है ठीक है। फिर हमें क्या करना है? जब वह उसकी पसन्द से ही मिलता है तो हम परेशान क्यों हो। जिस पर उसकी इच्छा होती है उसी को मिलता है। तो जब उसकी इच्छा होगी तब मिल जायेगा। हम क्यों परेशान हों? हम क्यों कुछ करें? तो **जो निरहंकार का भाव था वह हमारे लिए आलस्य की रक्षा बन जाता है।** यह इतना बड़ा परिवर्तन है इन दोनों में, जमीन आसमान का फर्क है। **जो शून्यता का भाव था वह हमारे लिए प्रमाद बन जाता है।** हम कहते है, जिसको मिलना है उसको मिलेगा, जिसको नहीं मिलना है नहीं मिलेगा।

८. जानने वालों की विनम्रता

अगस्तीन का एक वचन है, इससे मिलता-जुलता जिसमें वह कहता है कि 'जिसको उसने चाहा, अच्छा बनाया, जिसको उसने चाहा बुरा बनाया।' बड़ा खतरनाक मालूम होता है। क्योंकि अगर यह उसकी चाह से हो गया कि जिसको उसने अच्छा बनाया था, अच्छा बनाया और जिसको बुरा बनाया, उसको बुरा बनाया तो बात खत्म हो गयी। हद् पागल परमात्मा है कि किसी को बुरा बनाना चाहता है और किसी को अच्छा बनाना चाहता है। **न जानने वाला जब इसको पढ़ेगा तो उसका अर्थ बड़ा खतरनाक है।** लेकिन अगस्तीन जो कह रहा है वह कुछ और ही बात कह रहा है। वह अच्छे आदमी से कह रहा है कि तू अहंकार मत कर कि तू अच्छा है। क्योंकि जिसको उसने चाहा, अच्छा बनाया, और बुरे आदमी से कह रहा है, परेशान मत हो, चिन्ता से मत घिर। उसने जिसको बुरा बनाया, बुरा बनाया।

वह बुरे आदमी का भी दंश खीच रहा है और अच्छे आदमी का भी दंश खींच रहा है। लेकिन वह जानने वाले की तरफ से है लेकिन बुरा आदमी सुन रहा है। *वह कह रहा है, तो फिर ठीक है, तो फिर मैं बुरा ही करूँ क्योंकि अपना तो कोई सवाल ही नहीं है। जिससे उसने बुरा करवाया है, वह बुरा कर रहा है।* अच्छे आदमी की भी यात्रा शिथिल पड़ गयी है क्योंकि वह कह रहा है कि अब क्या

होना है। वह जिसको अच्छा बनाता है, बना देता है, जिसको नहीं बनाता है, नहीं बनाता है। तब जिन्दगी बड़ी बेमानी हो जाती है।

सारी दुनिया में शास्त्रों से ऐसा हुआ है, क्योंकि शास्त्र हैं उनके कहे हुए वचन जो जानते हैं और निश्चित ही जो जानता है वह शास्त्र-वास्त्र पढ़ने काहे को आयेगा। जो नहीं जानता है वह शास्त्र पढ़ने चला जाता है। फिर दोनों के बीच उतना ही फर्क है जितना जमीन और आसमान के बीच फर्क है और जो व्याख्या हम करते हैं वह हमारी है। वह असली व्याख्या नहीं है इसलिए मेरे इधर ख्याल में आता है कि दो तरह के शास्त्र रखे जाने चाहिए, ज्ञानियों के कहे हुए, अज्ञानियों के पढ़ने के लिए अलग और ज्ञानियों के पढ़ने के लिए अलग। ज्ञानियों के कहे हुए बिलकुल छिपा देने चाहिए, अज्ञानियों के हाथ में नहीं पड़ने चाहिए। क्योंकि अज्ञानी उनसे अर्थ तो अपना ही निकालेगा और तब सब विकृत हो जाता है। सब विकृत हो गया है। मेरी बात ख्याल में आती है?

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि शक्तिपात अहं शून्य, इच्छा शून्य व्यक्ति के माध्यम से होता है। और जो कहता है कि मैं तुम पर शक्तिपात करूँगा, तो जानना कि वह शक्तिपात नहीं कर सकता। लेकिन इस प्रकार शक्तिपात देनेवाले बहुत से व्यक्तियों से मैं परिचित हूँ। उनके शक्तिपात से लोगों को ठीक शास्त्रोक्त ढंग से कुण्डलिनी की क्रियाएँ घटित होती हैं। क्या वे प्रामाणिक नहीं हैं? क्या वे झूठी (Pseudo) प्रक्रियाएँ हैं? क्यों और कैसे?

आचार्यश्री : यह भी समझने की बात है। असल में दुनिया में ऐसी कोई भी चीज नहीं है जिसका नकली सिक्का (फाल्स क्वायन) न बनाया जा सके। सभी चीजों के नकली हिस्से भी हैं और नकली पहलू भी हैं। और अक्सर ऐसा होता है कि नकली सिक्का ज्यादा चमकदार होता है। उसे होना पड़ता है, क्योंकि चमक से वह चलेगा। असलीपन से तो वह चलता नहीं। असली सिक्का बेचमक का हो तो भी चलता है। नकली सिक्का दावेदार भी होता है क्योंकि असलीपन की जो कमी है वह दावे से पूरी करनी पड़ती है और नकली सिक्का एकदम आसान होता है क्योंकि वह उसका कोई मूल्य तो होता नहीं है।

९. प्रत्येक आध्यात्मिक अनुभवों के नकली प्रतिरूप संभव

तो जितनी आध्यात्मिक उपलब्धियाँ हैं सब का काउण्टर पार्ट (प्रतिरूप) भी है। ऐसी कोई आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं है जिसका फाल्स, झूठ काउण्टर पार्ट (प्रतिरूप) नहीं है। अगर असली कुण्डलिनी है तो नकली कुण्डलिनी भी है। नकली कुण्डलिनी का क्या मतलब है? और अगर असली चक्र है तो नकली चक्र भी हैं और अगर असली योग की प्रक्रियाएँ हैं तो नकली प्रक्रियाएँ भी हैं।

फर्क एक ही है और वह यह है कि सब असली आध्यात्मिक तल में घटित होता है और सब नकली साइकिक, मनस के तल में घटित होता है।

अब जैसे उदाहरण के लिए एक व्यक्ति को चित्त की गहराइयों में प्रवेश मिले तो उसे बहुत से अनुभव होने शुरू होंगे। जैसे उसे सुगन्ध आ सकती है बहुत अनूठी, जो उसने कभी नहीं जानी। संगीत सुनायी पड़ सकता है बहुत अलौकिक, जो उसने कभी नहीं सुना। रंग दिखायी पड़ सकते हैं ऐसे जैसे कि पृथ्वी पर होते ही नहीं। लेकिन, यह सब की सब बातें हिप्नोसिस से तत्काल पैदा की जा सकेंगी बिना कठिनाई के। रंग पैदा किये जा सकते हैं, ध्वनियाँ पैदा की जा सकती हैं, स्वाद पैदा किये जा सकते हैं, सुगन्ध पैदा की जा सकती है और इसके लिए किसी साधना से गुजरने की जरूरत नहीं है। इसके लिए सिर्फ बेहोश होने की जरूरत है। और तब जो भी सजेस्ट (सुझाव) किया जाय बाहर से, वह भीतर घटित हो जायेगा। अब यह फाल्स क्वाइन (नकली सिक्का) है।

ध्यान में जो जो घटित होता है वह सब का सब हिप्नोसिस से भी घटित हो सकता है। लेकिन वह आध्यात्मिक नहीं है। वह सिर्फ टाला गया है और ड्रीम (स्वप्न) जैसा है। अब जैसे तुम एक स्त्री को प्रेम कर सकते हो जागते हुए तो स्वप्न में भी कर सकते हो और आवश्यक नहीं है कि स्वप्न की जो स्त्री है वह जागने वाली स्त्री से कम सुन्दर हो, अक्सर ज्यादा होगी। और समझ लो कि एक आदमी अगर सोये और फिर उठे नहीं, सपना ही देखता रहे तो उसे कभी भी पता न चलेगा कि जो वह देख रहा है वह असली स्त्री है कि जो वह देख रहा है वह सपना है। कैसे पता चलेगा? वह तो नींद टूटे तभी वह जाँच कर सकता है कि अरे, जो मैं देख रहा था वह सपना था।

तो इस तरह की प्रक्रियाएँ हैं जिनसे तुम्हारे भीतर सभी तरह के सपने पैदा किये जा सकते हैं। कुण्डलिनी का सपना पैदा किया जा सकता है। चक्रों के सपने पैदा किये जा सकते हैं। अनुभूतियों के सपने पैदा किये जा सकते हैं। और तुम उन सपनों में लीन रहना चाहोगे, क्योंकि वे इतने सुखद हैं कि तोड़ने का मन न होगा। और ऐसे सपने हैं जिनको कि सपना कहना मुश्किल है। क्योंकि वे घटित होते हैं जागते में, चलते हैं, दिवा स्वप्न (डे ड्रीम्स) हैं। और उनको साधा जा सकता है। तो तुम उनको जिन्दगी भर साध कर गुजार सकते हो। तुम आखिर में पाओगे कि तुम कहीं भी नहीं पहुँचे हो। तुमने सिर्फ एक लम्बा सपना देखा है। इन सपनों को पैदा करने की भी तरकीबें हैं, व्यवस्थाएँ हैं। और दूसरा व्यक्ति तुममें इनको पैदा कर सकता है और तुम्हें तय करना मुश्किल हो जायेगा कि इन दोनों में फर्क क्या है? क्योंकि दूसरे असली का तुम्हें पता नहीं है।

अगर एक आदमी को कभी असली सिक्का न मिला हो, केवल नकली सिक्का

ही हाथ में मिला हो तो वह कैसे तय करेगा कि यह नकली है। नकली को पहचानने के लिए असली भी मिल जाना जरूरी है। तो जिस दिन व्यक्ति को कुण्डलिनी का आविर्भाव होगा उस दिन वह फर्क कर पायेगा कि इन दोनों में तो जमीन आसमान का फर्क है। यह तो बात ही और है।

१०. प्रामाणिक अनुभवों की जाँच का रहस्य-सूत्र

और ध्यान रहे, शास्त्रोक्त कुण्डलिनी जो है वह फाल्स (झूठी) होगी, उसके कारण हैं। अभी तुम्हें मैं एक सीक्रेट की (गुह्य) बात कहता हूँ। उसके कारण हैं और बड़ा राज है। असल में जो भी बुद्धिमान लोग इस पृथ्वी पर हुए हैं उन सबने प्रत्येक शास्त्र में कुछ बुनियादी भूल छोड़ दी है, जो कि पहचान के लिए है। जैसे मैंने तुम्हें खबर दी, इस मकान के बाहर से कि इस मकान में पाँच कमरे हैं, लेकिन मैं—यह जानता हूँ कि कमरे छह हैं। मैंने तुमसे कहा कि पाँच कमरे हैं। एक दिन तुम आये और तुमने कहा कि वह मकान मैं देख आया। बिलकुल पाँच ही कमरे हैं। तो मैं जानता हूँ कि तुम किसी झूठे मकान में हो आये। तुमने कोई सपना देखा। क्योंकि कमरे तो वहाँ छह हैं। वह एक कमरा बचाया गया है हमेशा के लिए। वह खबर देता है कि तुम्हें हुआ कि नहीं हुआ। अगर बिलकुल शास्त्रोक्त हो तो समझना कि नहीं हुआ, फाल्स कोइन (नकली सिक्का) मिल गया है। क्योंकि शास्त्र में एक कमरा सदा बचाया गया है। उसे बचाना बहुत जरूरी है।

तो अगर तुमको बिलकुल किताब में लिखे ढंग से हो रहा हो तो समझना कि किताब प्रोजेक्ट (प्रक्षेपित) हो रही है। लेकिन जिस दिन तुमको किताब में लिखे हुए ढंग से नहीं, किसी और ढंग से कुछ हो, जिसमें कि कहीं किताब से मेल भी खाता हो और कहीं नहीं भी मेल खाता हो, उस दिन तुम जानना कि तुम किसी असली ट्रैक (मार्ग) पर चल रहे हो, जहाँ चीजें तुम्हें साफ हो रही हैं। जहाँ तक शास्त्र को सिर्फ कल्पना में पिरोये-पिरोये नहीं चले जा रहे हो।

तो जब कुण्डलिनी तुम्हें ठीक से जगेगी तब तुम जाँच पाओगे कि अरे, शास्त्र में कहाँ-कहाँ, कौन-कौन तरकीब है। लेकिन इसके पहले तुम्हें पता नहीं चल सकता और प्रत्येक शास्त्र को अनिवार्य रूप से कुछ चीजें छोड़ देनी पड़ी हैं। नहीं तो कभी भी तय करना मुश्किल हो जाय।

मेरे एक शिक्षक थे। वे युनिवर्सिटी में प्रोफेसर थे। कभी मैं किसी किताब का नाम लूँ तो वे कहें कि हाँ मैंने पढ़ी है। एक दिन मैंने झूठी ही किताब का नाम लिया जो है ही नहीं। न वह लेखक है, न वह किताब है। मैंने उनसे कहा कि आपने फलाँ लेखक की किताब पढ़ी है। बहुत अद्भुत किताब है। उन्होंने कहा हाँ, मैंने पढ़ी है। तो मैंने उनसे कहा, अब तो पहले पढ़े हुए दावे थे वह भी गड़बड़

हो गये। क्योंकि न वह कोई लेखक है और न वह कोई किताब है। मैंने कहा अब इस किताब को मुझे आप मौजूद करवा कर बता दें तो ही बाकी दावों के सम्बन्ध में बात होगी। बाकी अब खत्म हो गयी बात। वह कहने लगे, क्या मतलब है? यह किताब नहीं है? तो मैंने कहा, आपकी जाँच के लिए अब इसके सिवाय कोई और रास्ता नहीं था।

जो जानते हैं वे तुम्हें फौरन पकड़ लेंगे। अगर तुम्हें बिलकुल शास्त्रोक्त हो रहा है तो तुम फँस जाओगे। क्योंकि वहाँ कुछ गैप (अन्तराल) छोड़ा गया है, कुछ गलत जोड़ा गया है, कुछ सही छोड़ दिया गया है जो कि अनिवार्य था। नहीं तो पहचान बहुत मुश्किल है कि किस को क्या हो रहा है।

पर यह जो शास्त्रोक्त प्रतिक्रियाएँ हैं, वे पैदा की जा सकती हैं। सभी चीजें पैदा की जा सकती हैं। आदमी के मन की क्षमता कम नहीं है। और इसके पहले कि वह आत्मा में प्रवेश करे, मन बहुत तरह के धोखे दे सकता है। और धोखा अगर वह खुद देना चाहे तब तो बहुत ही आसान है। तो मैं यह कहता हूँ कि व्यवस्था से, दावे से, शास्त्र से, नियम से उतना नहीं है सवाल। और सवाल बहुत दूसरा है। फिर इसके पहचान के और भी बहुत रास्ते हैं कि तुम्हें जो हुआ है, वह असली है या झूठ।

११. प्रामाणिक अनुभवों से व्यक्तित्व में आमूल रूपान्तरण

एक आदमी दिन में पानी पीता है तो उसकी प्यास बुझती है। सपने में भी पानी पीता है, लेकिन प्यास नहीं बुझती। और सुबह जाग कर वह पाता है कि ओठ सूख रहे हैं और गला तड़प रहा है। क्योंकि सपने का पानी प्यास नहीं बुझा सकता है। असली पानी ही प्यास बुझा सकता है। तो तुमने पानी जो पिया था वह असली था या नकली यह तुम्हारी प्यास बतायेगी कि प्यास बुझी कि नहीं बुझी है। तो जिन कुण्डलिनी-जागरण करने वालों की या जिनकी जागृति हो गयी, तुम बात कर रहे हो वह अभी भी तलाश कर रहे हैं, अभी भी खोज रहे हैं। वह यह भी कह रहे हैं कि हमें यह हो गया, और खोज भी उनकी जारी है। वह कहते हैं हमें पानी भी मिल गया और अभी भी कह रहे हैं कि सरोवर का पता क्या है!

परसों ही एक मित्र आये थे। वे कहते हैं मुझे निर्विचार स्थिति उपलब्ध हो गयी है और मुझसे पूछने आये हैं कि ध्यान कैसे करें। तब क्या किया जाय! अब मैं कैसे कहूँ उनसे कि तुम्हारे साथ किया क्या जाय! तुम कह रहे हो कि निर्विचार स्थिति उपलब्ध हो गयी है। विचार शान्त हो गया है और ध्यान का रास्ता बताइये। क्या मतलब होता है इसका? एक आदमी कह रहा है कि कुण्डलिनी जग गयी है और कहता है मन शान्त नहीं होता! एक आदमी कहता

है कुण्डलिनी तो जग गयी, लेकिन इस सेक्स से कैसे छुटकारा मिले। तो अवान्तर उपाय भी हैं जिससे पता चल सकता है कि जो हुआ है वह सच में हुआ है!

अगर सच में हुआ है तो खोज खत्म हो गयी। अगर भगवान् भी उससे आकर कहे कि थोड़ी शान्ति हम देने आये हैं तो वह कहेगा कि अपने पास रखो। हमें कोई जरूरत नहीं है। अगर भगवान् भी आये और कहे कि हम कुछ आनन्द तुम्हें देना चाहते हैं, बड़े प्रसन्न हैं, तो वह कहेगा आप उसको बचा लो, और थोड़ा ज्यादा प्रसन्न हो जाओ। हमसे कुछ लेना हो तो ले जाओ। तो उसको जाँचने के लिए तुम उस व्यक्तित्व में भी देखना कि और क्या हुआ है।

१२. झूठी समाधि का धोखा

अब एक आदमी कहता है कि उसे समाधि लग जाती है। वह छह दिन मिट्टी के नीचे गड्ढे में बिलकुल ठीक पड़ा रह जाता है और जिन्दा निकल आता है। लेकिन घर में अगर रुपये छोड़ दो तो वह चोरी कर सकता है। मौका मिल जाय तो शराब पी सकता है और उस आदमी को अगर तुम्हें पता न हो कि उसको समाधि लग गयी है तो तुम उसमें कुछ भी न पाओगे। उसमें कुछ भी नहीं है। कोई सुगन्ध नहीं है, कोई व्यक्तित्व नहीं है, कोई चमक नहीं है, कुछ भी नहीं है। लगेगा कि कोई साधारण आदमी है। उसको समाधि नहीं लगी है। वह समाधि की ट्रिक (चालाकी) सीख गया है। वह छह दिन जमीन के अन्दर जो रह रहा है वह समाधि नहीं है। वह छह दिन जमीन के नीचे रहने की अपनी ट्रिक है, अपनी व्यवस्था है। वह उतना सीख गया है। वह प्राणायाम सीख गया है। वह श्वास को शिथिल करना सीख गया है। वह छह दिन जितनी छोटी जमीन का घेरा है, जितना आयतन है, वह जानता है कि उतनी ऑक्सीजन से वह छह दिन काम चला लेता है। वह इतनी धीमी श्वास लेता है कि जो मिनिमम, (कम से कम) है जिससे अल्पतम ऑक्सीजन खर्च होगी उतनी श्वास लेकर वह छह दिन गुजार देता है।

वह करीब करीब उस हालत में होता है जिस हालत में साइबेरिया का भालू छह महीने के लिए बर्फ में दबा पड़ा रह जाता है। उसको कोई समाधि नहीं लग गयी। बरसात के बाद मेंढक जमीन में पड़ा रह जाता है। आठ महीने पड़ा रहता है। उसे कोई समाधि नहीं लग गयी है। वही इसने सीख लिया है और कुछ भी नहीं हो गया है। लेकिन जिसको समाधि उपलब्ध हो गयी है उसको अगर छह दिन के लिए तुम बन्द करो तो हो सकता है कि वह मर जाय और यह निकल आये। क्योंकि समाधि से छह दिन जमीन के नीचे रहने का कोई सम्बन्ध नहीं है। महावीर या बुद्ध कहीं अगर मिल जायें और उनको जमीन के भीतर छह

दिन रख दो तो बच कर लौटने की आशा नहीं है। यह बच कर लौट आयेगा। क्योंकि इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उससे कोई वास्ता ही नहीं है। बह बात ही और है। लेकिन यह बचेगा और महावीर न निकल पायें तो यह असली तीर्थंकर मालूम पड़ेगा और महावीर नकली सिद्ध हो जायेंगे।

तो इस सारे के सारे जो मनोगत (साइकिक) नकली सिक्के पैदा किये गये हैं, उनके अपने झूठे दावे भी हैं। उन दावों को सिद्ध करने की पूरी व्यवस्था भी पैदा की है और उन्होंने एक अलग ही दुनिया खड़ी कर रखी है। जिसका असली से कोई लेना-देना नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है। और असली चीजें उन्होंने छोड़ दी हैं जिनसे असली रूपान्तरण आता था। इस छह दिन जमीन के नीचे रहने से अध्यात्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। देखें कि इस व्यक्ति का चरित्र क्या है? इस व्यक्ति के मनस की शान्ति कितनी है? इसके आनन्द का क्या हुआ? इसका एक पैसा खो जाता है तो यह रात भर सो नहीं पाता है और छह दिन जमीन के भीतर रह जाता है। यह सोचना पड़ेगा कि इसके असली अर्थ क्या हैं।

१३. झूठे शक्तिपात के लिए सम्मोहन का उपयोग

तो, जो भी दावेदार कहते हैं कि हम शक्तिपात करते हैं वे कर सकते हैं, लेकिन वह शक्तिपात नहीं है, वह बहुत गहरे में किसी तरह का सम्मोहन (हिप्नोसिस) है। बहुत गहरे में कुछ मैगनेटिक फोर्सेस (चुम्बकीय शक्तियों) का उपयोग है, जिनको वे सीख गये हैं। और यह भी जरूरी नहीं है कि उसके पूरे विज्ञान को जानते हों। और यह जरूरी नहीं है कि वह दावा जो है उसे वे जान कर कर रहे हैं कि वह झूठा है। इतने सूक्ष्म जाल हैं।

अब एक मदारी को तुम सड़क पर देखते हो कि वह एक लड़के को लिटाये हुए है। चादर बिछा दी है। उसकी छाती पर एक तावीज रख दी है। अब उस लड़के से पूछ रहे हैं कि फलाँ आदमी के नोट का नम्बर क्या है? वह नोट का नम्बर बता रहा है। फलाँ आदमी की घड़ी में कितना बजा है? वह बता रहा है। पूछ रहा है इस आदमी का नाम क्या है? वह लड़का नाम बता रहा है। और सब देखने वालों को सिद्ध हुआ जा रहा है कि तावीज में कुछ खूबी है। वह तावीज उठा लेता है और पूछता है कि इस आदमी की घड़ी में क्या बजा है। वह लड़का पड़ा रह जाता है। वह जवाब नहीं दे पाता है। तावीज वह बेच लेता है छह आने, आठ आने में। तुम तावीज घर पर ले जाकर छाती पर रख कर जिन्दगी भर बैठे रहो उससे कुछ न होगा। ऐसा नहीं है कि वह लड़के को सिखाया हुआ है उसने। ऐसा नहीं है कि वह कहता है कि तावीज उठा लूँ तो मत बोलना। नहीं, ऐसा नहीं है। और ऐसा भी नहीं है कि तावीज में कुछ गुण है। लेकिन तरकीब और गहरी है। और वह ख्याल में आये तो बहुत हैरानी होती है।

इसको कहते हैं पोस्ट हिप्नोटिक सजेशन (पूर्व-निश्चित सम्मोहक सुझाव) अगर एक व्यक्ति को हम बेहोश करें और बेहोश करके उसको कहें कि आँख खोल कर ताबीज को ठीक से देख लो और जब भी यह ताबीज ऊपर तुम्हारी छाती पर रखूँगा और कहूँगा एक, दो, तीन, तुम तत्काल फिर से बेहोश हो जाओगे। तो उस बेहोशी में इसकी बहुत सम्भावना है कि नोट का नम्बर पढ़ा जा सकता है, घड़ी देखी जा सकती है, इसमें कोई झूठ नहीं है। जैसे ही वह चादर रखता है और लड़के के ऊपर ताबीज रखता है, लड़का हिप्नोटिक ट्रांस (सम्मोहक तन्द्रा) में चला गया, और वह तुम्हारे नोट का नम्बर बता पाता है। यह कोई सिखाया हुआ नहीं है वह। उस लड़के को भी पता नहीं है कि क्या हो रहा है। इस आदमी को भी पता नहीं है कि भीतर क्या हो रहा है।

इस आदमी को एक ट्रिक (चालाक उपाय) मालूम है कि एक आदमी को बेहोश करके कोई भी चीज बता कर कह दिया जाय कि पुनः जब भी यह चीज तुम्हारे ऊपर रखी जायेगी तुम बेहोश हो जाओगे, तो वह बेहोश हो जाता है, इतना इसको भी पता है। इसके भीतर का क्या मेकेनिज्म (रचना-क्रम) है इसका डाइनामिक्स (गति-विज्ञान) क्या है इन दोनों में से किसी को कोई पता नहीं है। क्योंकि, जिसको उतना डाइनामिक्स (गति विज्ञान) पता हो वह सड़क पर मदारी का काम नहीं करता है। उतनी डाइनामिक्स (जानकारी) बहुत बड़ी बात है। मन का ही है, लेकिन वह भी बहुत बड़ी बात है। उतना डाइनामिक्स किसी फ्रायड को भी पूरा पता नहीं है, उतना डाइनामिक्स किसी जुंग को पूरा पता नहीं, उतना डाइनामिक्स बड़े से बड़े मनोवैज्ञानिक को भी अभी पूरा पता नहीं कि अभी यह हो क्या रहा है। लेकिन इसको एक ट्रिक पता है। उतनी ट्रिक से यह काम कर लेता है।

तुम्हें बटन दबाने के लिए यह जानना थोड़े जरूरी है कि बिजली क्या है और बटन दबाने के लिए यह भी जानना जरूरी नहीं है कि बिजली कैसे पैदा होती है और यह भी जानना जरूरी नहीं है कि बिजली की पूरी इंजीनियरिंग क्या है। तुम बटन दबाते हो, बिजली जल जाती है, तो यह एक ट्रिक है। हर आदमी बटन दबा कर बिजली जला लेता है। ऐसी ट्रिक उसको पता है कि ताबीज रखने से और यह यह करने से यह हो जाता है। वह उतना कर ले रहा है। आप ताबीज खरीदकर ले जाओगे, वह ताबीज बिलकुल बेमानी है, क्योंकि वह सिर्फ उसी के लिए सार्थक है जिसके ऊपर पहले उसका प्रयोग किया गया हो और सम्मोहित अवस्था में आया हो। तुम छाती पर रख कर बैठे रहोगे, कुछ भी नहीं होगा। तब लगेगा कि हम ही कुछ गलत हैं, ताबीज तो ठीक है, क्योंकि ताबीज को तो काम करते देखा है।

तो बहुत तरह की मिथ्या, झूठी स्थितियाँ पैदा की जा सकती हैं। मिथ्या और झूठी इस अर्थों में नहीं कि वह कुछ भी नहीं है, मिथ्या और झूठी इन अर्थों में कि वे स्पीरीच्युअल(आध्यात्मिक)नहीं, सिर्फ मानसिक घटनाएँ हैं। और सब चीजों की मानसिक पैरेलल (समानान्तर) घटनाएँ सम्भव हैं। तो वे पैदा की जा सकती हैं। दूसरा आदमी पैदा कर सकता है और दावेदार उतना ही कर सकता है। हाँ, गैर-दावेदार ज्यादा कर सकता है।

१४. मात्र उपस्थिति से घटित होने वाला शक्तिपात

गैर-दावेदार का मतलब है, वह यह नहीं कहता है कि मैं शक्तिपात कर रहा हूँ, मैं तुममें ऐसा कर दूँगा, मैं तुममें ऐसा कर दूँगा, यह हो जायगा तुममें। मैं करने वाला हूँ और अब हो जायगा, तुम मुझसे बँधे रह जाओगे। वह इन सबका कोई सवाल नहीं है, एक शून्य की भाँति हो गया है वैसा आदमी। तुम उसके पास भी आते हो तो कुछ होना शुरू हो जाता है। यह उसको ख्याल ही नहीं है कि यह हो रहा है।

(एक बहुत पुरानी रोमन कहानी है कि एक बड़ा सन्त हुआ और उसके चरित्र की सुगन्ध और उसके ज्ञान की किरणें देवताओं तक पहुँच गयीं और देवताओं ने आकर उससे कहा कि तुम कुछ वरदान माँग लो। तुम जो कहो, हम करने को तैयार हैं। लेकिन उस फकीर ने कहा कि जो होना था वह हो चुका है और तुम मुझे मुश्किल में मत डालो, माँगो कहकर। अगर मैं न माँगूँ तो अशिष्टता होती है और माँगने को मुझे कुछ बचा नहीं है। बल्कि जो मैंने कभी नहीं माँगा था वह सब हो गया है। तो तुम मुझे क्षमा करो, झंझट में मुझे मत डालो, यह माँगने की कठिनाई मुझ मे पैदा मत करो। लेकिन उससे तो देवता और भी प्रभावित हुए। क्योंकि अब तो यह सुगन्ध और भी जोर से उठी इस आदमी की कि जो माँगने के ही बाहर हो गया है। उन्होंने कहा, तब तो तुम कुछ माँग ही लो और हम बिना दिये अब न जायेंगे।

उस आदमी ने कहा, बड़ी मुश्किल हो गयी। मैं क्या माँगूँ, मुझे कुछ सूझता नहीं, क्योंकि मेरी कोई माँग न रही। तुम्हीं कुछ दे दो, मैं ले लूँगा। उन देवताओं ने कहा, हम तुम्हें ऐसी शक्ति दिये देते हैं कि तुम जिसे छुओगे वह मुर्दा भी होगा तो जिन्दा हो जायगा, बीमार होगा तो बीमारी ठीक हो जायेगी। उसने कहा, यह तो बड़ा काम हो जायगा और इससे जो ठीक होगा वह तो ठीक है, मेरा क्या होगा ? मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊँगा क्योंकि मुझको यह लगने लगेगा कि मैं ठीक कर रहा हूँ। तो वह जो बीमार ठीक हो जायगा वह तो ठीक है, लेकिन मैं बीमार हो जाऊँगा। उसने कहा कि मेरे बाबत क्या ख्याल है ? क्योंकि एक मुर्दे को मैं छुऊँगा वह जिन्दा हो जायगा, तो मुझे लगेगा कि मैं जिन्दा कर रहा हूँ।

तो वह तो जिन्दा हो जायगा, मैं मर जाऊँगा। मुझे मत मारो। मुझ पर कृपा करो, ऐसा कुछ करो कि मुझे पता न चले।

तो, उन देवताओं ने कहा कि अच्छा, हम ऐसा कुछ करते हैं। तुम्हारी छाया जहाँ पड़ेगी वहाँ कोई बीमार होगा तो ठीक हो जायगा, कोई मुर्दा होगा तो जिन्दा हो जायगा। उसने कहा, यह ठीक है और इतनी और कृपा करें कि मेरी गर्दन पीछे की तरफ न मुड़ सके, नहीं तो छाया से भी दिक्कत हो जायेगी। अपनी छाया। तो मेरी गर्दन जब पीछे न मुड़े। वह वरदान पूरा हो गया। उस फ़कीर की गर्दन मुड़नी बन्द हो गयी। वह गाँव गाँव चलता रहता। अगर कुम्हलाये हुए फूल पर उसकी छाया पड़ जाती है तो वह खिल जाता है, लेकिन तब तक वह जा चुका होता; क्योंकि उसकी गर्दन पीछे मुड़ नहीं सकती थी। उसे कभी पता नहीं चला और जब वह मरा तो उसने देवताओं से पूछा कि तुमने जो दिया था वह हुआ भी कि नहीं, क्योंकि हमको पता नहीं चल पाया। तो मुझे लगता है कि यह कहानी प्रीतिकर है।

घटना तो घटती है, ऐसे ही घटती है। पर वह छाया से घटती है और गर्दन भी नहीं मुड़ती। माध्यम व्यक्ति पर शून्य होना चाहिए नहीं तो गर्दन मुड़ जायगी। अगर जरा-सा भी अहंकार शेष रहा तो पीछे लौटकर देखने का मन होगा कि हुआ कि नहीं हुआ और अगर हो गया तो फिर मैंने किया है। उसे बचाना बहुत मुश्किल हो जायेगा।

तो शून्य जहाँ घटता है वहाँ आस-पास शक्तिपात सहज घटना बन जाती है। वह ऐसे ही घटने लगती है, जैसे सूरज निकलने लगता है, फूल खिलने लगते हैं, बस ऐसे ही। नदी बहती है, जड़ों को पानी मिल जाता है। बस ऐसे ही। न नदी दावा करती है, न बड़े बोर्ड लगाती है रास्ते पर कि मैंने इतने झाड़ों को पानी दे दिया, इतने में फूल खिल रहे हैं। इसका कोई कुछ सवाल नहीं है। नदी को इसका पता ही नहीं चलता। जब तक फूल खिलते हैं, नदी सागर तक पहुँच गयी होती है। कहाँ फ़ुर्सत है, रुक कर देखने की भी सुविधा कहाँ है? पीछे लौट कर मुड़ने का उपाय कहाँ? तो ऐसी स्थिति में जो घटता है उसका तो आध्यात्मिक मूल्य है; लेकिन जहाँ अहंकार है, कर्ता है, जहाँ कोई कह रहा है कि मैं कर रहा हूँ वहाँ फिर (Psychic Phenomeno) मनस की घटनाएँ हैं और वह सम्मोहन से ज्यादा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपकी जो ध्यान की नयी विधि है उसमें भी क्या सम्मोहन व भ्रम की सम्भावना नहीं है? बहुत-से लोगों को कुछ भी नहीं हो रहा है तो क्या ऐसा है कि वे सच्चे रास्ते पर नहीं हैं? और जिनको बहुत-सी प्रतिक्रियाएँ चल

रही हैं क्या वे सच्चे रास्ते पर ही हैं ? या उनमें भी कोई जान-बूझ कर ही कर रहे हैं ऐसी बात नहीं है क्या ?

१५. ध्यान-प्रयोग और सम्मोहन में समानता तथा भिन्नता

आचार्यश्री : इसमें दो तीन बातें समझनी चाहिए। असल में सम्मोहन एक विज्ञान है और अगर सम्मोहन का तुम्हें धोखा देने का उपयोग किया जाय तो किया जा सकता है। लेकिन सम्मोहन का उपयोग तुम्हारी सहायता के लिए भी किया जा सकता है और सभी विज्ञान दोधारी तलवार हैं। अणु की शक्ति है, वह खेत में गेहूँ भी पैदा कर सकती है। और गेहूँ खाने वालों को भी दुनिया से मिटा सकती है। दोनों काम हो सकते हैं, दोनों ही अणु की शक्तियाँ हैं। यह बिजली घर में हवा भी दे रही है और इसका तुम्हें शाक (झटका) लगे तो तुम्हारे प्राण भी ले सकती है। लेकिन इससे तुम बिजली को कभी जिम्मेदार न ठहरा पाओगे। अगर कोई अहंकार सम्मोहन का उपयोग करेगा तो दूसरे को दबाने और दूसरे को मिटाने और दूसरों में कुछ इलुजंस (भ्रम) और सपने पैदा करने के लिए करेगा। लेकिन इससे उल्टा भी किया जा सकता है।

सम्मोहन तो सिर्फ एक तटस्थ शक्ति है। वह तो एक साइन्स है। उससे तुम्हारे भीतर जो सपने चलेंगे उनको तोड़ने का भी काम किया जा सकता है। और तुम्हारे जो भ्रम (इलुजंस) डीप रूटेड (गहरी जड़ों वाले) हैं, उनको भी उखाड़ा जा सकता है।

तो, मेरी जो प्रक्रिया है उसके प्राथमिक चरण सम्मोहन के ही हैं। लेकिन उसके साथ एक बुनियादी तत्व और जुड़ा हुआ है जो तुम्हारी रक्षा करेगा। और जो तुम्हें सम्मोहित न होने देगा और वह है साक्षी-भाव। बस सम्मोहन में और ध्यान में उतना ही फर्क है। लेकिन वह बहुत बड़ा फर्क है। जब तुम्हें कोई सम्मोहित करता है तो वह तुम्हें मूर्छित करना चाहता है। क्योंकि तुम मूर्छित हो जाओ तो ही फिर तुम्हारे साथ कुछ किया जा सकता है। जब मैं कह रहा हूँ कि ध्यान में सम्मोहन का उपयोग है, लेकिन तभी जब कि तुम साक्षी रहो पीछे। तुम पूरे समय जागे रहो, जो हो रहा है उसे जानते रहो। तब तुम्हारे साथ कुछ भी, तुम्हारे विपरीत नहीं किया जा सकता है। तुम सदा मौजूद हो। सम्मोहन के वही सुझाव तुम्हें बेहोश करने के काम में लाये जा सकते हैं। वही सुझाव तुम्हारी बेहोशी तोड़ने के भी काम में लाये जा सकते हैं।

तो जिसे मैं ध्यान कहता हूँ उसके प्राथमिक चरण सबके सब सम्मोहन के हैं और होंगे ही। क्योंकि आत्मा की तरफ तुम्हारी कोई भी यात्रा तुम्हारे मन से ही शुरू होगी। क्योंकि तुम मन में हो। वह तुम्हारी जगह है, जहाँ तुम हो। वहीं से तो यात्रा शुरू होगी। लेकिन वह यात्रा दो तरह की हो सकती है। या तो

तुम्हें मन के भीतर एक चक्करीले पथ पर डाल दें कि तुम मन के भीतर चक्कर लगाने लगो। कोल्हू के बैल की तरह चलने लगो तब यात्रा तो बहुत होगी, लेकिन मन के बाहर तुम न निकल पाओगे। वह यात्रा ऐसी भी हो सकती है जो तुम्हें मन के किनारे पर ले जाय और मन के बाहर छलांग लगाने की जगह पर पहुँचा दे। दोनों हालत में तुम्हारे प्राथमिक चरण मन के भीतर ही पड़ेंगे।

तो, सम्मोहन का भी प्राथमिक रूप वही है जो ध्यान का है। लेकिन अन्तिम रूप भिन्न है और दोनों का लक्ष्य भिन्न है। और दोनों प्रतिक्रिया में एक बुनियादी तत्त्व भिन्न है। सम्मोहन चाहता है तत्काल मूर्छा, नींद, सो जाना। इसलिए सम्मोहन का सारा सुझाव नींद से शुरू होगा, तन्द्रा से शुरू होगा—सोओ (स्लीप), फिर बाकी कुछ होगा। ध्यान का सारा सुझाव जागो (अवेक) वहाँ से शुरू होगा और पीछे साक्षी पर जोर रहेगा। क्योंकि तुम्हारा साक्षी जगा हुआ है तो तुम पर कोई भी बाहरी प्रभाव नहीं डाले जा सकते। और अगर तुम्हारे भीतर जो भी हो रहा है वह भी तुम्हारे जानते हुए हो रहा है, यह ख्याल में लेना जरूरी है।

१६. ध्यान-प्रयोग से बचने की तरकीबें

और दूसरी बात यह ख्याल में लेना जरूरी है कि जिनको हो रहा है और जिनको नहीं हो रहा है, उनमें जो फर्क है वह इतना ही है कि जिनको नहीं हो रहा है उनका संकल्प थोड़ा क्षीण है। वे भयभीत, डरे हुए हैं। कहीं हो न जाय, इससे भी डरे हुए हैं। आदमी कितना अजीब है कि करने आये हैं, आये इसीलिए हैं कि ध्यान हो जाय, लेकिन अब डर भी रहे हैं कि कहीं हो न जाय। और जिनको हो रहा है उनको देख कर जिनको नहीं हो रहा है उनके मन में ऐसा लगेगा कि कहीं बनावटी तो नहीं कर रहे हैं। यह डिफेन्स मेजर (सुरक्षा-कवच) है। ये उनकी सुरक्षा के उपाय हैं। इस भाँति वे कह रहे हैं कि अरे! हम कोई इतने कमजोर नहीं कि हमको हो जाय। ये कमजोर लोग हैं, जिनको हो रहा है। इससे वे अपने अहंकार को तृप्ति भी दे रहे हैं और यह नहीं जान पा रहे हैं कि यह कमजोरों को नहीं होता है। यह शक्तिशाली को होता है। और यह भी नहीं जान पा रहे हैं कि यह बुद्धिहीनों को नहीं होता, बुद्धिमानों को होता है। एक मूर्ख (इडियट) को न तो सम्मोहित किया जा सकता है, न ध्यान में ले जाया जा सकता है। दोनों ही नहीं किया जा सकता है। एक पागल आदमी को कोई सम्मोहित कर दे तो हमें पता चलेगा कि नहीं कर सकता। जितनी प्रतिभा का आदमी हो उतनी जल्दी सम्मोहित हो जायेगा। और जितना प्रतिभाहीन हो उतनी देर लग जायेगी। लेकिन वह प्रतिभाहीन, संकल्पहीन अपनी सुरक्षा करेगा, वह कहेगा कि अरे, ऐसा मालूम होता है कि इसमें कुछ लोग तो बन कर कर रहे हैं और कुछ जिनको हो रहा है ये

कमजोर शक्ति के लोग हैं तो इनकी कोई अपनी शक्ति नहीं है। इन पर प्रभाव दूसरे का पड़ गया है।

अभी एक आदमी अमृतसर में मुझसे मिलने आया। डाक्टर हैं। पढ़े-लिखे आदमी हैं, बूढ़े आदमी हैं, रिटायर्ड हैं। वे मुझसे तीसरे दिन माफी माँगने आये। उन्होंने मुझसे कहा, मैं सिर्फ आपसे माफी माँगने आया हूँ, क्योंकि मेरे मन में एक पाप उठा था। उसकी मुझे क्षमा चाहिए। क्या हुआ?—मैंने उनसे पूछा। उन्होंने कहा, पहले दिन जब मैं ध्यान करने आया तो मुझे लगा कि आपने दस-पाँच आदमी अपने खड़े कर दिये हैं जो बन-ठनकर कुछ भी कर रहे हैं। और कुछ कमजोर लोग हैं उनकी देखा-देखी वह भी करने लगे हैं। ऐसा मुझे पहले दिन लगा। तो मैंने कहा दूसरे दिन भी देखूँ तो जाकर कि अब क्या हुआ है। लेकिन दूसरे दिन मैंने अपने दो-चार मित्र देखे जिनको हो रहा था वे सब डाक्टर हैं। तो मैं उनके घर गया। मैंने कहा, भाई अब मैं यह नहीं मान सकता कि तुमको उन्होंने तैयार किया होगा। लेकिन तुम बन कर कर रहे थे कि तुमको हो रहा था? तो उन्होंने कहा कि बन कर करने का क्या कारण है? कल तो हमको भी शक था कि कुछ लोग बन कर तो नहीं कर रहे हैं, लेकिन आज तो हमें हुआ।

तो तीसरे दिन जब उस वृद्ध डाक्टर को हुआ तो वे मुझसे क्षमा माँगने आये। उन्होंने कहा, जब आज मुझे हुआ तभी मेरी पूरी भ्रान्ति गयी। नहीं तो मैं मान ही नहीं सकता था। मुझे यह भी शक हुआ कि पता नहीं यह डाक्टर भी मिल गये हों, आजकल कुछ पक्का तो है नहीं कि कौन क्या करने लगे! पता नहीं, ये भी मिल गये हों! अपने पहचान के तो हैं लेकिन क्या कहा जा सकता है? किसी प्रभाव में आ गये हों, हिप्नोटाइज्ड हो गये हों या कुछ हो गया हो! लेकिन आज मुझे हुआ है और आज जब मैं घर गया तो मेरा छोटा भाई भी जो डाक्टर है उसने कहा, देख आये वह खेल। वहाँ आपको कुछ हुआ कि नहीं? तो मैंने उससे कहा कि माफ कर भाई। अब मैं न कह सकूँगा खेल। दो दिन मैंने भी मजाक उड़ायी। लेकिन आज मुझे भी हुआ है। लेकिन मैं तुझ पर नाराज भी न होऊँगा। क्योंकि यही तो मैं भी सोच रहा था जो तू सोच रहा है। उस आदमी ने कहा कि मैं माफी माँगने आया हूँ। क्योंकि मेरे मन में ऐसा ख्याल उठा।

ये हमारी सुरक्षा के उपाय हैं। जिनको नहीं होगा वह सुरक्षा का इन्तजाम करेंगे। लेकिन जिसको नहीं हो रहा है उनमें और होने वालों में इंच भर का ही फासला है। सिर्फ संकल्प की थोड़ी-सी कमी है। अगर वह थोड़ा-सा हिम्मत जुटायें और संकल्प करें और संकोच थोड़ा छोड़ सकें तो हो जायेगा। अब आज ही एक महिला ने मुझे आकर कहा कि किसी महिला ने उनको फोन किया है कि रजनीश जी के इस प्रयोग में तो कोई नंगा हो जाता है, कोई कुछ हो जाता है।

तो भले घर की महिलाएँ तो फिर आ नहीं सकेंगी । तो भले घर की महिलाओं का क्या होगा ? अब किसी को यह भी वहम होता है कि हम भले घर की महिला हैं, कोई बुरे घर की महिला हैं ! तो बुरे घर की महिला तो आ सकेगी, भले घर की महिला का क्या होगा ? अब ये सब डिफेंस मेजर (सुरक्षा के बहाने) हैं । और भले घर की महिला अपने को भला मान कर अपने को घर रोक लेगी । और भले घर की महिला कैसी है ? अगर एक आदमी नग्न हो रहा है तो जिस महिला को भी अड़चन हो रही है वह बुरे घर की महिला है । उसे प्रयोजन क्या है ?

१७. बिना किये दूसरों के सम्बन्ध में निर्णय न लेना

तो हमारा मन बहुत अजीब-अजीब इन्तजाम करता है । वह कहता है कि यह सब गड़बड़ बातें हो रही हैं । यह अपने को नहीं होने वाला है । हम कोई कमजोर थोड़े ही हैं । हम ताकतवर हैं । लेकिन ताकतवर होते तो हो गया होता । बुद्धिमान होते तो हो गया होता । (क्योंकि बुद्धिमान आदमी का पहला लक्षण तो यह है कि जब तक वह खुद न कर ले तब तक वह कोई निर्णय न लेगा । वह यह भी नहीं कहेगा कि दूसरा झूठा कर रहा है । क्योंकि मैं कौन हूँ, यह निर्णय लेने वाला ? और दूसरे के सम्बन्ध में झूठे होने का निर्णय बहुत ग्लानिपूर्ण है । दूसरे के सम्बन्ध में सोचना कि वह झूठा कर रहा है, गलत बात है । और मैं कैसे निर्णय करूँ कि दूसरा झूठा कर रहा है ? इसी तरह के गलत निर्णय ने तो बड़ी दिक्कत डाली है ।)

जीसस को लोगों ने थोड़े ही माना कि इसको कुछ हुआ है, नहीं तो सूली पर न लटकायें । यह आदमी गड़बड़ है । कुछ भी कह रहा है । महावीर को पत्थर न मारें लोग, उनको लग रहा है कि गड़बड़ आदमी है, नंगा खड़ा हो गया है । इसको कुछ हुआ थोड़े ही है । दूसरे आदमी को भीतर क्या हो रहा है, हम निर्णायक कहाँ हैं, कैसे हैं ? (तो जब तक मैं न करके देख लूँ तब तक निर्णय न लेना बुद्धिमत्ता का लक्षण है । और अगर मुझे नहीं हो रहा है तो जो प्रयोग कहा जा रहा है उसको मैं पूरा कर रहा हूँ कि नहीं इसको थोड़ा जाँच लो । अगर मैं पूरा नहीं कर रहा हूँ तो होगा कैसे ?)

इधर पोरबन्दर मैं गया था तो आखिरी दिन मैंने कहा कि किसी ने १०० डिग्री ताकत नहीं लगायी और ९९ डिग्री ताकत लगायी तो भी चूक जायगा । तब एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि मैं तो धीरे-धीरे कर रहा था कि थोड़ी देर में होगा, लेकिन मुझे ख्याल में आया कि वह तो कभी नहीं होगा । १०० डिग्री होनी ही चाहिए । आज पूरी ताकत लगायी तो हो गया । मैं तो सोचता था कि मैं धीरे-धीरे करता रहूँगा तो होगा । धीरे-धीरे क्यों कर रहे थे ? नहीं करो तो ठीक है । धीरे-धीरे करने में हम दोनों नाव पर सवार रहना चाहते हैं और

दो नावों पर सवार यात्री बहुत कठिनाई में पड़ जाते हैं। एक ही नाव बहुत अच्छी है। नर्क जायें तो भी एक तो हो। स्वर्ग की नाव पर भी एक पैर रखे हैं, नर्क की नाव पर भी एक पैर रखे हैं। असल में संदिग्ध है मन कि कहाँ जाना है और डर है कि पता नहीं नर्क में सुख मिलेगा कि स्वर्ग में सुख मिलेगा। दोनों नावों पर पैर रख कर खड़े हैं। इसमें दोनों जगहें चूक सकती हैं और नदी में प्राणान्त हो सकता है। ऐसा हमारा मन है पूरे वक्त। जायेंगे भी फिर वहाँ रोक भी लेंगे और इससे नुकसान होता है।

पूरा प्रयोग करो और दूसरे के बाबत निर्णय मत लो। और पूरा प्रयोग जो भी करेगा उसे होना सुनिश्चित है। क्योंकि यह विज्ञान की बात कर रहा हूँ मैं। अब मैं कोई धर्म की बात नहीं कह रहा हूँ। और यह बिलकुल ही साइंस का मामला है कि अगर इसमें पूरा हुआ तो होना सुनिश्चित है। इसमें कोई और उपाय नहीं है। क्योंकि परमात्मा को मैं शक्ति कह रहा हूँ। इसमें कोई पक्षपात नहीं है। और कोई प्रार्थना, आराधना करने से या अच्छे कुल में पैदा हुए हैं, या भारत भूमि में पैदा हो गये हैं तो ऐसे ही पार हो जायेंगे। ऐसे नहीं चलेगा।

बिलकुल विज्ञान की बात है। उसको जो पूरा करेगा उसको परमात्मा भी अगर खिलाफ हो जाय तो रोक नहीं सकता। और न भी हो परमात्मा तो कोई सवाल नहीं। पूरा कर रहे हो, इसकी फिक्र करो। और सदा निर्णय भीतर के अनुभव से लो, बाहर से मत लो। अन्यथा भूल हो सकती है।

१२. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक ६ जुलाई, १९७०

●

कुण्डलिनी-साधना—बंधन से मुक्ति की ओर

प्रश्नकर्ता : कल की चर्चा में आपने कहा कि कुण्डलिनी-साधना के झूठे अनुभव भी प्रोजेक्ट (प्रक्षेपित) किये जा सकते हैं—जिन्हें आप आध्यात्मिक नहीं मानते हैं, मानसिक (Psychic) मानते हैं। लेकिन प्रारम्भिक चर्चा में आपने कहा था कि कुण्डलिनी मात्र साइकिक (मानसिक) है। इसका ऐसा अर्थ हुआ कि आप कुण्डलिनी की दो प्रकार की स्थितियाँ मानते हैं—मानसिक और आध्यात्मिक। कृपया इस स्थिति को स्पष्ट करें।

१. मनुष्य के सात शरीर

आचार्यश्री : इस बात को ठीक से समझने के लिए हमें मनुष्य के विभिन्न सूक्ष्म शरीरों की रचना को सविस्तार समझ लेना उचित होगा। व्यक्तित्व को सात शरीरों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम शरीर है—स्थूल शरीर, फिजिकल बॉडी, जिसे हम सब जानते हैं। उससे सूक्ष्म दूसरा शरीर है इथरिक बॉडी या आकाश शरीर और तीसरा शरीर है उससे भी पीछे, जिसे एस्ट्रल बॉडी कहें—सूक्ष्म शरीर। और चौथा शरीर जो उससे भी पीछे है, जिसे मेण्टल बॉडी कहें—मनस शरीर। और पाँचवाँ शरीर जो उसके भी पीछे है, जिसे स्पिरिच्युअल बॉडी कहें—आत्मिक शरीर। छठवाँ शरीर जो उसके भी पीछे है, जिसे हम कॉस्मिक बॉडी कहें—ब्रह्म शरीर और सातवाँ शरीर जो उसके भी पीछे है, जिसे

हम निर्वाण शरीर, बॉडीलेस बॉडी कहें—अन्तिम। इन सात शरीरों के सम्बन्ध में थोड़ा समझ जायें तो फिर कुण्डलिनी की बात पूरी तरह समझ में आ सकेगी।

२. प्रथम तीन शरीर : भौतिक-शरीर, भाव-शरीर और सूक्ष्म शरीर

जीवन के पहले सात वर्ष में **'भौतिक-शरीर'** ही निर्मित होता है। बाकी सारे शरीर बीजरूप होते हैं, उनके विकास की सम्भावना होती है, लेकिन वे विकसित उपलब्ध नहीं होते। पहले सात वर्ष इसलिए इमीटेशन, अनुकरण के ही वर्ष हैं। पहले सात वर्षों में कोई बुद्धि, कोई भावना, कोई कामना विकसित नहीं होती। विकसित होता है सिर्फ भौतिक शरीर। कुछ लोग सात वर्ष से ज्यादा कभी आगे नहीं बढ़ पाते। कुछ लोग सिर्फ भौतिक शरीर ही रह जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों में और पशुओं में कोई अन्तर नहीं होता। पशु के पास भी सिर्फ भौतिक शरीर ही होता है। दूसरे शरीर अविकसित होते हैं। दूसरे सात वर्ष में **'भाव-शरीर'** (आकाश शरीर या इथरिक बॉडी) का विकास होता है। इसलिए दूसरे सात वर्ष व्यक्ति के भाव-जगत् के विकास के वर्ष हैं। १४ वर्ष की उम्र में इसीलिए यौन-परिपक्वता (सेक्स मेच्योरिटी) उपलब्ध होती है। वह भाव का बहुत प्रगाढ़ रूप है। कुछ लोग १४ वर्षों के होकर ही रह जाते हैं। शरीर तो वे बढ़ाते जाते हैं, लेकिन उनके पास केवल दो ही शरीर होते हैं। तीसरे सात वर्षों में **'सूक्ष्म-शरीर'** (एस्ट्रल बॉडी) विकसित होता है—इक्कीस वर्ष की उम्र तक। **दूसरे शरीर में भाव का विकास होता है। तीसरे शरीर में तर्क, विचार और बुद्धि का विकास होता है।** इसलिए सात वर्ष के पहले दुनिया की कोई अदालत किसी बच्चे को सजा नहीं देगी। क्योंकि उसके पास सिर्फ भौतिक शरीर है और बच्चे के साथ वही व्यवहार किया जायगा जो एक पशु के साथ व्यवहार किया जाता है। उसको जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। और अगर बच्चे ने कोई पाप भी किया है, अपराध भी किया है तो यही माना जायगा कि किसी के अनुकरण में किया है। मूल अपराधी कोई और होगा।

३. तीसरे शरीर में विचार, तर्क और बुद्धि का विकास

दूसरे शरीर के विकास के बाद १४ वर्ष एक तरह की प्रौढ़ता मिलती है। लेकिन वह प्रौढ़ता यौन-प्रौढ़ता है। प्रकृति का काम इतने से पूरा हो जाता है; इसलिए पहले शरीर और दूसरे शरीर के विकास में प्रकृति पूरी सहायता देती है। लेकिन दूसरे शरीर के विकास से मनुष्य मनुष्य नहीं बन पाता। **तीसरा शरीर जहाँ विचार, तर्क, बुद्धि विकसित होती है वह उस शिक्षा संस्कृति, सभ्यता का फल है।** इसलिए दुनिया के सभी मुल्क इक्कीस वर्ष के व्यक्ति को मताधिकार

देते हैं। अभी कुछ मुल्कों में संघर्ष है १८ वर्ष के बच्चों को मताधिकार देने का। वह संघर्ष स्वाभाविक है। क्योंकि जैसे जैसे मनुष्य विकसित हो रहा है, सात वर्ष की सीमा कम होती जा रही है। अब तक १३ और १४ वर्ष में दुनिया में लड़कियाँ मासिक-धर्म को उपलब्ध होती थीं। अमरीका मे पिछले तीन वर्षों में यह उम्र कम होती चली गयी। ११ वर्ष की लड़की भी मासिक-धर्म को उपलब्ध हो जाती है। १८ वर्ष का मताधिकार इसी बात की सूचना है कि जो काम इक्कीस वर्ष में पूरा हो रहा था उसको मनुष्य और जल्दी पूरा करने लगा है। वह १८ वर्ष में ही पूरा कर ले रहा है। लेकिन साधारणतः इक्कीस वर्ष लगते है तीसरे शरीर के विकास के लिए। और अधिकतम लोग तीसरे शरीर पर रुक जाते हैं। मरते दम तक उसी पर रुके रहते हैं।

चौथा शरीर, मनस शरीर भी विकसित नही हो पाता। जिसको मैं साइकिक कह रहा हूँ वह चौथे शरीर के दुनिया की बात है—मनस शरीर की उसके बड़े अद्‌भुत और अनूठे अनुभव हैं। जैसे जिस व्यक्ति की बुद्धि विकसित न हुई हो वह गणित मे कोई आनन्द नही ले सकता। वैसे गणित का अपना आनन्द है। कोई आइन्स्टीन उसमे उतना ही रसमुग्ध होता है जितना कोई संगीतज्ञ वीणा मे होता हो, कोई चित्रकार रंग मे होता हो। आइन्स्टीन के लिए गणित कोई काम नही है, खेल है। पर उसके लिए बुद्धि का उतना विकास चाहिए कि वह गणित को खेल बना सके।

४. प्रत्येक शरीर के अनन्त आयाम

जो शरीर हमारा विकसित होता है, उस शरीर के अनन्त-अनन्त आयाम हमारे लिए खुल जाते हैं। जिसका 'भाव-शरीर' विकसित नहीं हुआ, जो सात वर्ष पर ही रुक गया है, उसके जीवन का रस खाने-पीने पर समाप्त हो जायगा। तो जिस कौम में पहले शरीर के लोग ज्यादा मात्रा में हैं उसकी जीभ के अतिरिक्त कोई संस्कृति नहीं होगी। *जिस कौम में अधिक लोग दूसरे शरीर के हैं वह कौम* यौन-केन्द्रित (सेक्स-सेण्टर्ड) हो जायेगी। उसका सारा व्यक्तित्व, उसकी कविता, उसका संगीत, उसकी फिल्म, उसका नाटक, उसके चित्र, उसके मकान, उसकी गाड़ियाँ सब किसी अर्थों में यौन-अभिमुखी (सेक्स सेन्ट्रिक) हो जायेगी, सब वासना से भर जायगी।

जिस सभ्यता में तीसरे शरीर का विकास हो पायेगा ठीक-ठीक, वह सभ्यता अत्यन्त बौद्धिक-चिन्तन और विचार से भर जायेगी। जब भी किसी कौम या समाज की जिन्दगी में तीसरे शरीर का विकास महत्त्वपूर्ण हो जाता है तो बड़ी वैचारिक क्रान्तियाँ घटित होती हैं। बुद्ध और महावीर के वक्त में बिहार ऐसी ही हालत में था कि उसके पास तीसरी क्षमता को उपलब्ध बहुत बड़ा समूह था।

इसलिए बुद्ध और महावीर की हैसियत के आठ आदमी बिहार के छोटे से देश में पैदा हुए, छोटे से इलाके में। और हजारों प्रतिभाशाली लोग पैदा हुए। सुकरात और प्लेटो के वक्त यूनान की ऐसी ही हालत थी। कन्फ्यूशस और लाओत्से के समय चीन की ऐसी ही हालत थी। और बड़े मजे की बात है कि ये सारे महान् व्यक्ति पाँच सौ साल के भीतर सारी दुनिया में हुए। उस पाँच सौ साल में मनुष्य के तीसरे शरीर ने बड़ी ऊँचाइयाँ छूईं। लेकिन आमतौर से तीसरे शरीर पर मनुष्य रुक जाता है। अधिक लोग २१ वर्ष के बाद कोई विकास नहीं करते।

५. चौथे मनस-शरीर (Mental Body) की अतीन्द्रिय क्रियाएँ

चौथे शरीर के बड़े अनूठे अनुभव हैं। सम्मोहन, टेलीपैथी, क्लैरवायेन्स ये सब चौथे शरीर की सम्भावनाएँ हैं। आदमी बिना समय और स्थान की बाधा से दूसरे से सम्बन्धित हो सकता है, बिना बोले, दूसरे के विचार पढ़ सकता है या अपने विचार दूसरे तक पहुँचा सकता है। बिना कहे, बिना समझाये, कोई बात दूसरे में प्रवेश करा सकता है और उसका बीज बना सकता है। शरीर के बाहर यात्रा कर सकता है। शरीर के बाहर घूम (एस्ट्रल प्रोजेक्शन कर) सकता है, अपने इस शरीर से अपने को अलग जान सकता है।

इस चौथे शरीर की, मनस शरीर (साइकिक बॉडी) की बड़ी सम्भावनाएँ हैं, जो हम बिलकुल ही विकसित नहीं कर पाते हैं, क्योंकि इस दिशा में खतरे बहुत हैं एक, और इस दिशा में मिथ्या की बहुत सम्भावना है, दो। क्योंकि जितनी चीजें सूक्ष्म होती चली जाती हैं, उतनी ही उनकी मिथ्या (False) सम्भावनाएँ बढ़ती चली जाती हैं। अब एक आदमी अपने शरीर के बाहर गया या नहीं, यह जानना कठिन है। वह सपना भी देख सकता है अपने शरीर के बाहर जाने का और जा भी सकता है और इसमें उसके स्वयं के अतिरिक्त और कोई गवाह नहीं होगा। इसलिए धोखे में पड़ जाने की बहुत गुंजाइश है, क्योंकि दुनिया जो शुरू होती है इस शरीर से वह सब्जेक्टिव (आत्म परक) है, इसके पहले की दुनिया ऑब्जेक्टिव (वस्तु परक) है। अगर मेरे हाथ में रुपया है तो आप भी देख सकते हैं, मैं भी देख सकता हूँ, पचास लोग देख सकते हैं। यह सामान्य-सत्य (कॉमन रियॉलिटी) है जिसमें कि हम सब सहभागी हो सकते हैं और जाँच हो सकती है कि रुपया है या नहीं। लेकिन मेरे विचारों की दुनिया में आप सहभागी नहीं हो सकते, मैं आप के विचारों की दुनिया में सहभागी नहीं हो सकता। वहाँ से निजी दुनिया शुरू हो गयी। जहाँ से निजी दुनिया शुरू होती है वहाँ से खतरा शुरू होता है, क्योंकि किसी चीज की सच्चाई (वेलिडिटी) के सारे बाह्य नियम खतम हो जाते हैं। इसलिए असली धोखे (डिसेप्शन) का जो जगत् है वह चौथे शरीर

से शुरू होता है। उसके पहले के सब धोखे (डिसेप्शन) पकड़े जा सकते हैं। और ऐसा नहीं है कि चौथे शरीर में जो धोखा दे रहा है वह जरूरी रूप से जान कर दे रहा हो। बड़ा खतरा यह है। वह अनजाने दे सकता है, खुद को दे सकता है, दूसरों को दे सकता है, उसे कुछ पता ही न हो, क्योंकि चीजें इतनी बारीक और निजी हो गयी हैं कि उसके खुद के पास भी कोई कसौटी नहीं है कि वह जाकर जाँच करे कि सचमुच जो हो रहा है वह हो रहा है या वह कल्पना कर रहा है?

६. चौथे शरीर के लाभ और खतरे

तो यह जो चौथा शरीर है, इससे हमने मनुष्यता को बचाने की कोशिश की और अक्सर ऐसा हुआ है कि इस शरीर का जो लोग उपयोग करने वाले थे उनकी बहुत तरह की बदनामी और निन्दा (कंडमनेशन) हुई। योरोप में हजारों स्त्रियों को जला डाला गया 'विचेज' (डाकिनी) कह-कहकर। क्योंकि उनके पास चौथे शरीर का काम था। हिन्दुस्तान में सैकड़ों तांत्रिक मार डाले गये इस चौथे शरीर की वजह से, क्योंकि वे कुछ सीक्रेट्स जानते थे जो कि हमें खतरनाक मालूम पड़े। आपके मन में क्या चल रहा है वे जान सकते हैं, आपके घर में कहाँ क्या रखा है यह उन्हें घर के बाहर से पता हो सकता है। तो सारी दुनिया में इस चौथे शरीर को एक तरह का 'ब्लैक आर्ट' समझ लिया गया है कि एक काले जादू की दुनिया है जहाँ पर कोई भरोसा नहीं कि क्या हो जायगा! और एक बार भी हमने मनुष्य को तीसरे शरीर पर रोकने की भरसक चेष्टा की कि चौथे शरीर पर खतरे हैं। खतरे थे, लेकिन खतरों के साथ उतने ही अद्भुत लाभ भी थे। तो बजाय इसके कि रोकते, जाँच-पड़ताल जरूरी थी कि वहाँ भी हम रास्ते खोजते जाँचने के। और अब वैज्ञानिक उपकरण भी हैं और समझ भी बढ़ी है। रास्ते खोजे जा सकते हैं। जैसे कुछ चीजों के रास्ते अभी खोजे गये।

अभी तक यह पक्का नहीं हो पाता था कि जानवर सपने देखते हैं कि नहीं देखते हैं, क्योंकि जब तक जानवर कहें न तब तक कैसे पता चले? हमारा भी पता इसीलिए चलता है कि हम सुबह कह सकते हैं कि हमने सपना देखा। चूँकि जानवर नहीं कह सकता तो कैसे पता चले कि जानवर सपना देखता है कि नहीं देखता है। लेकिन बहुत तकलीफ से रास्ता खोज लिया गया। एक आदमी ने बन्दरों पर वर्षों मेहनत की है यह बात जाँचने के लिए कि वह सपने देखते हैं कि नहीं। अब सपना बहुत निजी, चौथे शरीर की बात है। पर उसकी जाँच की उसने जो व्यवस्था की, वह समझने जैसी है। उसने बन्दरों को फिल्म दिखानी शुरू की, पर्दे पर फिल्म दिखानी शुरू की और जैसे ही फिल्म चलनी शुरू हो नीचे से बन्दर को शाक (झटके) देने शुरू किये बिजली के और उसकी कुर्सी पर एक बटन लगा

रखी जो उसको सिखा दी कि जब भी उसको शाक लगे तो वह बटन बन्द कर दे तो शाक लगनी बन्द हो जाय। फिल्म शुरू हो और शाक लगे और वह बटन बन्द करे, ऐसा उसका अभ्यास कराया। फिर उस कुर्सी पर उसको सो जाने दिया। जब उसका सपना चला तो उसको घबराहट हुई कि शाक न लग जाय। नींद में उसको घबराहट हुई, क्योंकि वह सपना और पर्दे पर फिल्म एक ही चीज है उसके लिए। उसने तत्काल बटन दबायी। इस बटन के दबाने का बार-बार प्रयोग करने पर ख्याल में आया कि उसको जब भी सपना चलता तब वह बटन दबा देता है फौरन। अब सपने जैसी गहरी भीतर की दुनिया के, वह भी बन्दर की, जो कह न सके, बाहर से जाँच का कोई उपाय खोजा जा सका।

साधकों ने चौथे शरीर को भी बाहर से जाँचने के उपाय खोज लिये और अब तय किया जा सकता है कि जो हुआ वह सच है या गलत, वह मिथ्या है या सही। जिस कुण्डलिनी का तुमने चौथे शरीर पर अनुभव किया वह वास्तविक है या झूठ, सिर्फ साइकिक होने से झूठ नहीं होती। मनोगत मिथ्या (फाल्स-साइकिक) स्थितियाँ भी हैं और मनोगत सत्य (ट्रू साइकिक) स्थितियाँ भी हैं। यानी जब मैं कहता हूँ कि वह मनस की है बात, तो इसका मतलब यह नहीं होता कि झूठी हो गयी। मनस में झूठ भी हो सकती है और मनस में सही भी हो सकती है।

तुमने एक सपना देखा रात। यह सपना एक सत्य है, क्योंकि यह घटा। लेकिन सुबह उठ कर तुम ऐसे सपने को भी याद कर सकते हो जो तुमने देखा नहीं, लेकिन तुम कह रहे हो कि मैंने देखा, तब यह झूठ है। एक आदमी सुबह उठ कर कहता है कि मैं सपना देखता ही नहीं। हजारों लोग हैं जिनको ख्याल है कि देखते हैं। वे सपने देखते हैं क्योंकि सपने जाँचने के अब बहुत उपाय हैं जिनसे पता चलता है कि वे रात भर सपने देखते है; लेकिन सुबह वे कहते हैं कि मैंने सपने देखे ही नहीं। तो वह जो कह रहे हैं बिलकुल झूठ कह रहे हैं। हालाँकि उन्हें पता नहीं। असल मे उनको स्मृति नहीं बचती सपने की। इससे उल्टा भी हो रहा है। जो सपना तुमने कभी नहीं देखा उसकी भी तुम सुबह कल्पना कर सकते हो कि तुमने देखा। वह झूठ होगा।

सपना कहने से कुछ झूठ नहीं हो जाता। सपने के अपने यथार्थ हैं। झूठा सपना भी हो सकता है, सच्चा सपना भी। सच्चे का मतलब यह है कि जो हुआ है, सच में हुआ है। और ठीक-ठीक तो सपने को तुम बता ही नहीं पाते सुबह। मुश्किल से कोई आदमी है जो सपने की ठीक रिपोर्ट कर सके। इसलिए पुरानी दुनिया में जो आदमी अपने सपने की ठीक-ठीक रिपोर्ट कर सकता था, उसकी बड़ी कीमत हो जाती थी। बड़ी कठिनाइयाँ हैं सपने की रिपोर्ट ठीक से देने की।

बड़ी कठिनाई तो यह है कि जब तुम सपना देखते हो तब क्रम (सिक्वेंस) अलग होता है और जब याद करते हो तो उल्टा होता है, फिल्म की तरह। जब हम फ़िल्म देखते हैं तो शुरू से देखते हैं, पीछे की तरफ। सपना जब आप देखते हैं नींद में तो जो घटना पहले घटी वह स्मृति में सबसे बाद में बटेगी। क्योंकि वह सबसे पीछे दबी रह गयी। जब तुम सुबह उठते हो तो सपने का आख़िरी हिस्सा तुम्हारे हाथ में होता है और उससे तुम पीछे की तरफ याद करना शुरू करते हो। यह ऐसे ही उपद्रव का काम है जैसे कोई किताब को उल्टी तरफ से पढ़ना शुरू करे और सब शब्द उल्टे हो जायें और वह डगमगा जाय। इसलिए थोड़ी दूर तक ही जा पाते हैं सपने में, बाकी सब गड़बड़ हो जाता है। उसे याद रखना और उसकी ठीक से रिपोर्ट कर देना बड़ी कला की बात है। इसलिए हम आमतौर से गलत रिपोर्ट करते हैं, जो हममें नहीं हुआ है वह रिपोर्ट करते हैं। उसमें बहुत कुछ खो जाता है, बहुत कुछ बदल जाता है, बहुत कुछ जुड़ जाता है। यह जो चौथा शरीर है, सपना इसकी ही घटना है।

७. चौथे शरीर की बातें—योग-सिद्धियाँ, कुण्डलिनी, चक्र आदि

इस चौथे शरीर की बड़ी सम्भावनाएँ हैं। जितनी भी योग में सिद्धियों का वर्णन है, वह इस सारे चौथे शरीर की ही व्यवस्था है और निरन्तर योग ने सचेत किया है कि उनमें मत जाना। तो सबसे बड़ा डर यही है कि उसमें मिथ्या में जाने का बहुत उपाय है और भटक जाने की बड़ी सम्भावना है और अगर वास्तविक में भी चले जाओ तो भी उसका आध्यात्मिक मूल्य नहीं है।

तो जब मैंने कहा कि कुण्डलिनी साइकिक (मनोगत) है, तो मेरा मतलब यह था कि वह इस चौथे शरीर की घटना है वस्तुतः। इसलिए शरीरशास्त्री (फिजियोलॉजिस्ट) जब तुम्हारे इस शरीर को खोजने जायगा तो उसमें कोई कुण्डलिनी नहीं पायेगा। तो सारी दुनिया के सर्जन, डाक्टर कहेंगे कि कहाँ की फिजूल की बातें कर रहे हो। कुण्डलिनी जैसी कोई चीज इस शरीर में नहीं है। तुम्हारे चक्र इस शरीर में कहीं भी नहीं हैं। वह चौथे शरीर की व्यवस्था है। चौथा शरीर है, लेकिन सूक्ष्म है। उसे पकड़ा नहीं जा सकता। पकड़ में तो यही शरीर आता है। लेकिन चौथे शरीर और इस प्रथम शरीर के तालमेल पड़ते हुए स्थान हैं।

जैसे कि हम सात कागज रख लें और एक आल्पीन सातों कागज में डाल दें और एक छेद सातों कागज में एक जगह पर हो जाय। अब समझ लो कि पहले कागज पर छेद विदा हो गया है, नहीं है। फिर भी दूसरे कागज पर, तीसरे कागज पर जहाँ छेद है उससे मिलान (कॉरिस्पॉन्ड) करने वाला स्थान पहले कागज पर भी है। छेद तो नहीं है, इसलिए पहले कागज की जाँच पर वह छेद नहीं मिलेगा,

लेकिन पहले कागज पर भी कारस्पांडिंग (मिलता-जुलता) कोई बिन्दु है जिसको अगर साथ रखा जाय तो वह तीसरे चौथे कागज पर जो बिन्दु है उसी जगह पर होगा। तो चक्र, कुण्डलिनी, आदि की जो बात है वह प्रथम शरीर की नहीं है। वह इस शरीर में सिर्फ मेल खाने वाले (कारस्पांडिंग) बिन्दुओं की बातें हैं और इसलिए कोई शरीर-शास्त्री इन्कार करे तो गलत नही कह रहा है वह। क्योंकि कोई कुण्डलिनी नहीं मिलती है, कोई चक्र नहीं मिलता है। वह किसी और शरीर पर है, लेकिन इस शरीर से सम्बन्धित बिन्दुओं का पता लगाया जा सकता है।

८. कुण्डलिनी—मनस-शरीर की घटना

तो कुण्डलिनी चौथे शरीर की घटना है, इसलिए मैंने कहा, साइकिक है और जब मैं कह रहा हूँ कि यह साइकिक (मानसिक) होना दो तरह का हो सकता है, गलत और सही, तो मेरी बात तुम्हारे ख्याल में आ जायेगी। गलत तब होगा जब तुमने कल्पना की। क्योकि कल्पना भी चौथे शरीर की ही स्थिति है। जानवर कल्पना नही कर पाते हैं तो जानवर का अतीत थोडा-बहुत होता है, भविष्य बिलकुल नही होता है, इसलिए जानवर निश्चित हैं; क्योकि चिन्ता सदा भविष्य के बोध से पैदा होती है। जानवर रोज अपने आस-पास किसी को मरते देखते है लेकिन यह कल्पना नहीं कर पाते कि मैं मरूँगा। इसलिए मृत्यु का कोई भय जानवर को नही है। आदमी मे भी बहुत आदमी हैं जिनको यह ख्याल में नही आता कि मैं मरूँगा। हमेशा ख्याल आता है कि कोई और मरता है। मैं मरूँगा इसका ख्याल नहीं आता, उसका कारण सिर्फ यह है कि चौथे शरीर में कल्पना इतनी विस्तीर्ण नही हुई है कि दूर तक देख पाये।

अब इसका मतलब यह हुआ कि कल्पना भी सही होती है और मिथ्या होती है। सही का मतलब सिर्फ यह है कि हमारी सम्भावना दूर तक देखने की है। जो अभी नहीं है उसको देखने की सम्भावना है। यह कल्पना की बात है। लेकिन जो होगा ही नहीं, जो है ही नहीं उसको भी मान लेना कि हो गया है, और है, वह मिथ्या कल्पना होगी। तो कल्पना का अगर ठीक उपयोग हो तो विज्ञान पैदा हो जाता है। क्योंकि विज्ञान सिर्फ एक कल्पना है, प्राथमिक रूप से। हजारों साल से आदमी सोचता है कि आकाश में उड़ेंगे। जिस आदमी ने सोचा कि आकाश में उड़ेंगे वह बड़ा कल्पनाशील रहा होगा। लेकिन अगर किसी आदमी ने यह न सोचा होता तो राइट ब्रदर्स हवाई जहाज नही बना सकते थे। हजारों लोगों ने कल्पना की है और सोचा है कि हवाई जहाज में उड़ेंगे। इसकी सम्भावना को जाहिर किया है। फिर धीरे-धीरे सम्भावना प्रकट होती चली गयी। खोज हो गयी और बात हो गयी। फिर हम सोच रहे हैं हजारों वर्षों से, हम चाँद पर पहुँचेंगे। वह कल्पना

थी। उस कल्पना को जगह मिल गयी, लेकिन वह कल्पना प्रामाणिक (ऑथेण्टिक) थी। यानी वह कल्पना मिथ्या के मार्ग पर नहीं थी। वह कल्पना भी उस सत्य के मार्ग पर थी जो कल आविष्कृत हो सकता है। तो वैज्ञानिक भी कल्पना कर रहा है और एक पागल भी कल्पना कर रहा है। तो अगर मैं कहूँ कि पागलपन भी कल्पना है और विज्ञान भी कल्पना है तो यह मत समझ लेना कि दोनों एक ही चीज है। पागल भी कल्पना कर रहा है, लेकिन वह ऐसी कल्पनाएँ कर रहा है जिनका वस्तु-जगत् से कभी न कोई तालमेल है, न हो सकता है। वैज्ञानिक भी कल्पना कर रहा है, लेकिन ऐसी कल्पना कर रहा है जो वस्तु-जगत् से तालमेल रखती है। और अगर कहीं तालमेल नहीं रखती है तो तालमेल होने की सम्भावना है, पूरी की पूरी।

इस चौथे शरीर की जो भी सम्भावनाएँ हैं उनमे सदा डर है कि हम कहीं भी चूक जायें और मिथ्या का जगत् शुरू हो जाता है। इसलिए **इस चौथे शरीर में आने के पहले सदा अच्छा है कि हम कोई अपेक्षाएँ (एक्सपेक्टेशन्स) लेकर न जायें।** क्योंकि यह चौथा शरीर मनस-शरीर है। जैसा कि अगर मुझे जमीन पर इस मकान से नीचे उतरना है वस्तुतः तो मुझे सीढ़ियाँ खोजनी पड़ेंगी, लिफ्ट खोजनी पड़ेगी। लेकिन अगर मुझे विचार मे उतरना है तो लिफ्ट और सीढ़ी की कोई जरूरत नही है। मैं यही बैठकर उतर जाऊँगा। विचार और कल्पना में खतरा यह है कि चूँकि कुछ नहीं करना पड़ता है, सिर्फ विचार करना पड़ता है तो कोई भी उतर सकता है। और अगर अपेक्षाएँ लेकर कोई गया तो जो अपेक्षाएँ लेकर जाता है उन्हींमें उतर जायगा। क्योंकि मन कहेगा कि ठीक है। कुण्डलिनी जगानी है, यह जाग गयी। और तुम कल्पना करने लगोगे कि जाग रही, जाग रही, जाग गयी। और तुम्हारा मन कहेगा कि बिलकुल जाग गयी और बात खत्म हो गयी। कुण्डलिनी तृप्त हो गयी है, चक्र खुल गये हैं, ऐसा हो गया। लेकिन इसको जाँचने की कोई कसौटी है और वह कसौटी यह है कि **प्रत्येक चक्र के साथ तुम्हारे व्यक्तित्व में आमूल परिवर्तन होगा।** उस परिवर्तन की तुम कल्पना नहीं कर सकते। क्योंकि वह परिवर्तन वस्तु-जगत् का हिस्सा है।

९. कुण्डलिनी-जागरण से व्यक्तित्व में आमूल रूपान्तरण

जैसे कुण्डलिनी जगे तो शराब नहीं पी जा सकती। असम्भव है। क्योंकि वह जो मनस-शरीर है वह सबसे पहले शराब से प्रभावित होता है। वह बहुत नाजुक (डेलिकेट) है। इसलिए बहुत हैरानी की बात जानकर होगी कि अगर स्त्री शराब पी ले और पुरुष शराब पी ले तो पुरुष पीकर उतना खतरनाक कभी नहीं होता जितनी स्त्री शराब पीकर खतरनाक हो जाती है। उसका मनस-शरीर भी नाजुक (डेलिकेट) है। स्त्री तो शराब पीकर इतनी खतरनाक सिद्ध होती है जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। उसके पास और भी नाजुक

मनस-शरीर (डेलिकेट मेण्टल-बाडी) है, जो इतनी शीघ्रता से प्रभावित होती है कि फिर उसके वश के बाहर हो जाती है। इसलिए स्त्रियों ने आमतौर से नशे से बचने की व्यवस्था कर रखी है, पुरुषों की बजाय ज्यादा। इस मामले में उन्होंने समानता का दावा अब तक नहीं किया था। लेकिन अब वे कर रही हैं। वह खतरनाक होगा। जिस दिन भी वह इस मामले में समानता का दावा करेंगी उस दिन पुरुष के नशे करने से जो नुकसान नहीं हुआ, वह स्त्री के नशे करने से होगा।

यह जो चौथा शरीर है इसमें सच में ही कुण्डलिनी जगी है, यह तुम्हारे कहने और अनुभव करने से सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि वह तो झूठ में भी तुम्हें अनुभव होगा और तुम उसे कहोगे। नहीं, वह तो तुम्हारा, जो वस्तु-जगत् का व्यक्तित्व है उससे तय हो जायेगा कि वह घटना घटी है या नहीं घटी है। क्योंकि उसमें तत्काल फर्क पड़ने शुरू हो जायेंगे। इसलिए मैं निरन्तर कहता हूँ कि आचरण जो है वह कसौटी है, साधन नहीं है। भीतर कुछ घटा है, उसकी कसौटी है। और प्रत्येक प्रयोग के साथ कुछ बातें अनिवार्य रूप से घटनी शुरू होंगी। चौथे शरीर की शक्ति के जगने के बाद किसी भी तरह का मादक द्रव्य नहीं लिया जा सकता। अगर लिया जाता है और उसमें रस है तो जानना चाहिए कि किसी मिथ्या कुण्डलिनी के ख्याल में पड़ गये हो। वह नहीं सम्भव है। जैसे कुण्डलिनी जागने के बाद हिंसा करने की वृत्ति सब तरफ से विदा हो जायेगी, हिंसा करना ही नहीं, हिंसा करने की वृत्ति भी। क्योंकि हिंसा करने की जो वृत्ति है, हिंसा करने का जो भाव है, दूसरे को नुकसान पहुँचाने की जो भावना और कामना है, वह तभी तक हो सकती है जब तक कि तुम्हारी कुण्डलिनी-शक्ति नहीं जगी है। जिस दिन वह जगती है उसी दिन से तुम्हें दूसरा-दूसरा नहीं दिखायी पड़ता कि उसको तुम नुकसान पहुँचा सको। और तब तुम्हें हिंसा रोकनी नहीं पड़ेगी, तुम हिंसा नहीं कर पाओगे। और अगर तब भी रोकनी पड़ रही हो तो जानना चाहिए कि वह जगी नहीं है। अगर तुम्हें अब भी संयम रखना पड़ता हो हिंसा पर, तो समझना चाहिए कि अभी कुण्डलिनी नहीं जगी है। अगर आँख खुल जाने पर भी तुम लकड़ी से टटोल-टटोल कर चलते हो तो समझ लेना चाहिए कि आँख नहीं खुली है। भला तुम कितना ही कहते हो कि आँख खुल गयी। क्योंकि तुम अभी लकड़ी नहीं छोड़ते हो। तुम टटोलना अभी जारी रखे हुए हो। टटोलना भी बन्द नहीं करते तो साफ समझा जा सकता है। हमें पता नहीं है कि तुम्हारी आँख खुली है कि नहीं खुली है। लेकिन तुम्हारी लकड़ी और तुम्हारा टटोलना और डर-डर कर तुम्हारा चलना बताता है कि तुम्हारी आँख नहीं खुली है।

तो चरित्र में आमूल परिवर्तन होगा और सारे नियम जो कहे गये हैं महाव्रत, वह सहज हो जायेंगे। तो समझना कि सच में ही प्रामाणिक (आथेण्टिक) है।

साइकिक (मनोगत) ही है, लेकिन आबेक्टिक (प्रामाणिक) है। और अब आगे जा सकते हो। क्योंकि आबेक्टिक से आगे जा सकते हो। अगर झूठी है तो आगे नहीं जा सकते। और चौथा शरीर मुकाम नहीं है। अभी और शरीर हैं।

१०. चौथे शरीर में चमत्कारों का प्रारम्भ

तो मैंने कहा कि चौथा शरीर कम लोगों का विकसित होता है। इसलिए दुनिया में चमत्कार (मिरेकल्स) हो रहे हैं। **अगर चौथा शरीर हम सबका विकसित हो तो दुनिया में चमत्कार तत्काल बन्द हो जायेंगे।** यह ऐसे ही है जैसे कि १४ साल तक हमारा शरीर विकसित हो और हमारी बुद्धि विकसित न हो पाये तो एक आदमी जो हिसाब-किताब लगा सकता हो, बुद्धि से गणित का हिसाब करता हो, वह चमत्कार मालूम हो, ऐसा था। आज से हजार साल पहले जब कोई कह देता था कि फलाँ दिन सूर्य-ग्रहण पड़ेगा तो वह बड़ी चमत्कार की बात थी। परम ज्ञानी ही बता सकता था। अब आज हम जानते हैं कि यह मशीन बता सकती है। यह सिर्फ गणित का हिसाब है। इसमें कोई ज्योतिष और कोई भविष्यवाणी (प्रोफेसी) और कोई बड़े भारी ज्ञानी की जरूरत नहीं है। एक कम्प्यूटर बता सकता है। और एक साल का नहीं, आनेवाले करोड़ों साल का बता सकता है कि कब-कब सूर्य-ग्रहण पड़ेगा। और अब तो कम्प्यूटर यह भी बता सकता है कि सूरज कब ठण्डा हो जायेगा। क्योंकि सारा हिसाब है। वह जितनी गर्मी फेंक रहा है उससे उसकी कितनी गर्मी रोज कम होती जा रही है, उसमें कितनी गर्मी का भण्डार है, वह कितने हजार वर्ष में ठण्डा हो जायेगा, यह सब एक मशीन बता देगी। लेकिन यह अब हमको चमत्कार नहीं मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम सब तीसरे शरीर को विकसित कर लिये हैं। आज से हजार साल पहले यह बात चमत्कार की थी कि कोई आदमी बता दे कि अगली साल फलाँ रात को ऐसा होगा कि चाँद पर ग्रहण हो जायेगा। तो जब साल भर बाद ग्रहण हो जाता तो हमें मानना पड़ता कि यह आदमी अलौकिक है। अभी जो चमत्कार घट रहे हैं कि कोई आदमी ताबीज निकाल देता है, किसी आदमी के तस्वीर से राख गिर जाती है। **यह सब चौथे शरीर के लिए बड़ी साधारण सी बातें हैं।** लेकिन वह हमारे पास नहीं है। तो हमारे लिए बड़ा भारी चमत्कार है।

यह सारी बात ऐसी है जैसे कि एक झाड़ के नीचे तुम खड़े हो, मैं झाड़ के ऊपर बैठा हूँ। हम दोनों में बातें हो रही हैं। दूर एक बैलगाड़ी मुझे आती हुई दिखायी पड़ती है। मैं कहता हूँ एक घण्टे बाद एक बैलगाड़ी इस झाड़ के नीचे आयेगी। तुम कहते हो बड़े चमत्कार की बातें कर रहे हो। बैलगाड़ी कहीं दिखायी नहीं पड़ती। क्या आप कोई भविष्य-वक्ता हैं? मैं नहीं मान सकता! लेकिन घण्टे भर बाद बैलगाड़ी आ जाती है और तब आपको मेरे चरण छूने पड़ते हैं कि गुरुदेव,

मैं नमस्कार करता हूँ, आप बड़े भविष्यवक्ता हैं। लेकिन फर्क कुल इतना है कि मैं थोड़ी ऊँचाई पर एक झाड़ पर बैठा हूँ, जहाँ से बैलगाड़ी घण्टे भर पहले वर्तमान हो गयी थी। भविष्य की बात मैं नहीं कह रहा हूँ, वर्तमान की बात ही कह रहा हूँ, लेकिन आपके वर्तमान में और मेरे वर्तमान में घण्टे भर का फासला है; क्योंकि मैं एक ऊँचाई पर बैठा हूँ। आपके लिए घण्टे भर बाद वह वर्तमान बनेगा, मेरे लिए अभी वर्तमान हो गया है।

तो जितने गहरे शरीर पर व्यक्ति खड़ा हो जायगा उतना ही पीछे के शरीर के लोगो के लिए चमत्कार हो जायगा। तो उसकी सब चीजें चमत्कारिक (मिरेकुल्स) मालूम पड़ने लगेंगी कि यह हो रहा है, यह हो रहा है। और हमारे पास कोई उपाय न होगा कि कैसे हो रहा है, क्योकि उस चौथे शरीर के नियम का हमें कोई पता नही है। इसलिए दुनिया मे जादू चलता है, चमत्कार घटित होते हैं, वे सब चौथे शरीर के थोड़े-से विकास हैं। इसलिए इस दुनिया से अगर चमत्कार खत्म करने हो तो लोगों को समझाने से खतम नही होगे। चमत्कार खतम करने हों तो जैसे हम तीसरे शरीर की शिक्षा देकर प्रत्येक व्यक्ति को गणित और भाषा समझने के योग्य बना देते हैं उसी तरह हमें चौथे शरीर की शिक्षा भी देनी पड़ेगी। और प्रत्येक व्यक्ति को इस तरह की चीजो के योग्य बना देना होगा, तब दुनिया से चमत्कार मिटेंगे, उसके पहले नही मिट सकते। कोई न कोई आदमी इसका फायदा लेता रहेगा। चौथा शरीर अट्ठाईस वर्ष तक विकसित होता है, यानी सात वर्ष फिर और। लेकिन मैंने कहा, कम ही लोग इसका विकास करते हैं।

११. पाँचवाँ आत्म-शरीर (Spiritual Body)

पाँचवाँ शरीर बहुत कीमती है जिसको अध्यात्म शरीर (स्प्रीच्युअल-बॉडी) कहें। वह ३५ वर्ष की उम्र तक अगर ठीक से जीवन का विकास हो तो उसको विकसित हो जाना चाहिए। लेकिन वह तो बहुत दूर की बात है, चौथा शरीर ही नही विकसित हो पाता है। इसलिए आत्मा वगैरह हमारे लिए बात-चीत है, सिर्फ चर्चा है। उस शब्द के पीछे कोई सार वस्तु (कंटेण्ट) नहीं है। जब हम कहते हैं 'आत्मा', तो उसके पीछे कुछ नही होता है, सिर्फ शब्द होता है। जब हम कहते हैं दीवाल तो सिर्फ शब्द नहीं होता, पीछे विषय वस्तु (कंटेण्ट) होता है। हम जानते हैं दीवाल यानी क्या। 'आत्मा' शब्द के पीछे कोई अर्थ नहीं है क्योंकि आत्मा हमारा अनुभव नहीं है। वह पाँचवाँ शरीर है और चौथे शरीर में कुण्डलिनी जगे तो ही पाँचवें शरीर में प्रवेश हो सकता है। अन्यथा पाँचवें शरीर में प्रवेश नहीं हो सकता। चौथे का पता नहीं है इसलिए पाँचवें का पता नहीं हो पाता है और पाँचवाँ भी बहुत थोड़े से लोगों को पता हो पाता है। जिसको हम

आत्मवादी कहते हैं, कुछ लोग उस पर रुक जाते हैं और वह कहते हैं, बस यात्रा पूरी हो गयी, आत्मा पा लिया और सब पा लिया। यात्रा अभी भी पूरी नहीं हो गयी। इसलिए जो लोग इस पाँचवें शरीर पर रुकेंगे वे परमात्मा को इनकार कर देंगे। वे कहेंगे, कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा वगैरह नहीं है। जैसे जो पहले शरीर पर रुकेगा वह कह देगा कि कोई आत्मा वगैरह नहीं है। एक शरीरवादी है, एक भौतिकवादी (मेटीरियलिस्ट) है, वह कहता है शरीर सब-कुछ है। शरीर मर जाता है तो सब मर जाता है। ऐसा ही आत्मवादी है। वह कहता है आत्मा ही सब-कुछ है, इससे आगे कुछ भी नहीं है। बस परमस्थिति आत्मा है, लेकिन वह पाँचवाँ शरीर ही है।

१२. छठवाँ शरीर है—ब्रह्म-शरीर (Cosmic Body) और सातवाँ शरीर है—निर्वाण काया

छठवाँ शरीर ब्रह्म-शरीर (काज्मिक बॉडी) है। जब कोई आत्मा को विकसित कर ले और उसको खोने को राजी हो तब वह छठवें शरीर मे प्रवेश करता है। अगर दुनिया मे मनुष्य-जाति वैज्ञानिक ढंग से विकास करे तो छठवें शरीर का सहज विकास ४२ वर्ष तक हो जाना चाहिए और सातवाँ शरीर ४९ वर्ष तक हो जाना चाहिए। वह सातवाँ शरीर निर्वाण-काया है, वह कोई शरीर नहीं है, वह बॉडीलेसनेस (देह-शून्यता) की हालत है। वह परम है, वहाँ शून्य ही शेष रह जायगा। वहाँ ब्रह्म भी शेष नहीं है, वहाँ कुछ भी शेष नहीं है। वहाँ सब समाप्त हो गया है। इसलिए बुद्ध से जब भी कोई पूछता है, वहाँ क्या होगा तो वह कहते हैं जैसे दिया बुझ जाता है। फिर क्या होता है ? खो जाती है ज्योति, फिर तुम नही पूछते कि कहाँ गयी ? फिर तुम नहीं पूछते कि अब कहाँ रहती होगी ? बस खो गयी। निर्वाण शब्द का मतलब होता है दिये का बुझ जाना, इसलिए बुद्ध कहते हैं निर्वाण हो जाता है।

१३. पाँचवें शरीर में मोक्ष और छठवें शरीर में ब्रह्म-अवस्था की उपलब्धि

पाँचवे शरीर तक मोक्ष की प्रतीति होगी, क्योंकि परम मुक्ति हो जायेगी। ये चार शरीरों के बन्धन गिर जायेंगे और आत्मा परम मुक्त होगी। तो मोक्ष जो है वह पाँचवें शरीर की अवस्था का अनुभव है। अगर चौथे शरीर पर कोई रुक जाय तो स्वर्ग का या नर्क का अनुभव होगा, वह चौथे शरीर की सम्भावनाएँ हैं। अगर पहले, दूसरे और तीसरे शरीर पर कोई रुक जाय तो जीवन सब-कुछ है, जन्म और मृत्यु के बीच। इसके बाद कोई जीवन नहीं है। अगर चौथे शरीर पर चला जाय इस जीवन के बाद स्वर्ग और नर्क का जीवन है, दुख और सुख की

अनन्त सम्भावनाएँ हैं वहाँ। अगर पाँचवें शरीर पर पहुँच जाय तो मोक्ष का द्वार है और अगर छठवें पर पहुँच जाय तो मोक्ष के भी पार ब्रह्म की सम्भावना है। वहाँ न मुक्त है, न अमुक्त है। वहाँ जो भी है वह उसके साथ वह एक हो गया है। 'अहम् ब्रह्मास्मि' की घोषणा इस छठवे शरीर की सम्भावना है, लेकिन अभी एक कदम और, जो लास्ट जम्प है, जहाँ न 'अहम्' है न 'ब्रह्म' है, जहाँ 'मैं' और 'तू' दोनों नहीं है। जहाँ कुछ है ही नही, जहाँ परम शून्य है, टोटल, एब्सलूट वाइड, वह निर्वाण है।

१४. प्रति सात वर्ष में एक एक शरीर के विकास की सम्भावना

ये सात शरीर है। इसलिए ४९ वर्ष में पूरा होता है, इसलिए औसतन पचास वर्ष को क्रान्ति का बिन्दु समझा जाता था। पच्चीस वर्ष तक एक जीवन-व्यवस्था थी। इस पच्चीस वर्ष में कोशिश की जाती थी कि हमारे जो भी जरूरी शरीर है वे विकसित हो जायँ, यानी चौथे मनस-शरीर तक आदमी पहुँच जाये तो उसकी शिक्षा पूरी-पूरी हुई। फिर वह पाँचवें शरीर को जीवन में खोजे। और पचास वर्ष तक, शेष पच्चीस वर्षों मे वह सातवे शरीर को उपलब्ध हो जाय। इसलिए पचास,वर्ष में दूसरी क्रान्ति का बिन्दु आयेगा कि अब वह वानप्रस्थ हो जाय। वानप्रस्थ का मतलब केवल इतना ही है कि उसका मुख अब जंगल की तरफ हो जाय। अब आदमी की तरफ से समाज की तरफ से, भीड़ की तरफ से वह मुँह को फेर ले। और पचहत्तर वर्ष फिर एक क्रान्ति का बिन्दु है जहाँ से वह सन्यस्त हो जाय, वन की तरफ मुँह फेर ले। यह भीड़ और आदमी से बचे और सन्यस्त का मतलब है कि अपने से भी बचे। अब अपने से भी मुँह फेर ले। यानी जंगल में अब 'मैं' तो बच ही जाऊँगा। फिर इसको भी छोड़ने का वक्त है कि पचहत्तर वर्ष में इसको भी छोड़ दें।

लेकिन गृहस्थ-जीवन में उसके सातों शरीर का अनुभव और विकास हो जाना चाहिए तो यह सब आगे बड़ा सहज और आनन्दपूर्ण हो जायगा और अगर यह न हो पाये तो यह बड़ा कठिन हो जायगा। क्योंकि प्रत्येक उम्र के साथ विकास की एक स्थिति जुड़ी है। अगर एक बच्चे का शरीर सात वर्ष में स्वस्थ न हो पाये तो फिर जिन्दगी भर वह किसी-न-किसी अर्थों में बीमार रहेगा। ज्यादा से ज्यादा हम इतना ही इन्तजाम कर सकते हैं कि वह बीमार न रहे लेकिन स्वस्थ कभी न हो सकेगा, क्योंकि उसकी मौलिक नींव (बेसिक फाउण्डेशन) जो सात साल में पड़नी थी वह डगमगा गयी। वह उसी वक्त पड़नी थी। जैसे कि हमने मकान की नींव भरी। अगर नींव कमजोर रह गयी तो शिखर पर पहुँच कर उसे ठीक करना बहुत मुश्किल मामला है। जब नींव भरी थी तभी मजबूत हो जानी चाहिए थी। तो वह जो पहले सात वर्ष हैं वह अगर शारीरिक शरीर के लिए

पूरी व्यवस्था मिल जाय तो बात बनेगी। दूसरे सात वर्ष में अगर भाव-शरीर का ठीक विकास न हो पाये तो पच्चीस यौन विकृतियाँ (सेक्सुअल परवर्शन्स) पैदा हो जायेंगे। फिर उनको सुधारना बहुत मुश्किल हो जायगा। वह वही वक्त है जब कि तैयारी उसकी हो जानी चाहिए।

१५. प्रत्येक शरीर के समय पर विकसित हो जाने में आसानी

जीवन की प्रत्येक सीढ़ी पर प्रत्येक शरीर की साधना का सुनिश्चित समय है। इसमें इंच दो इंच का फेर फासला हो, यह और बात है, लेकिन एक सुनिश्चित समय है। अगर किसी बच्चे में **चौदह साल तक सेक्स** का विकास न हो पाये तो उसकी पूरी जिन्दगी किसी तरह की मुसीबत में बीतेगी। अगर **इक्कीस वर्ष तक** उसकी **बुद्धि** विकसित न हो पाये तो फिर अब बहुत कम उपाय है कि इक्कीस वर्ष के बाद हम उसकी बुद्धि को विकसित करवा पाये। लेकिन इस सम्बन्ध में हम सब राजी हो जाते हैं कि ठीक बात है। इसलिए हम पहले शरीर की भी फिक्र कर लेते हैं। स्कूल में भी पढ़ा देते है, सब कर देते है। लेकिन बाद के शरीरो का विकास भी उस सुनिश्चित उम्र से बँधा हुआ है और वह चूक जाने की वजह से बहुत कठिनाई होती है। एक आदमी पचास साल की उम्र मे उस शरीर को विकसित करने मे लगता है जो उसे इक्कीस वर्ष में लगना चाहिए था। तो इक्कीस वर्ष में जितनी ताकत उसके पास थी उतनी पचास वर्ष मे उसके पास नहीं है। इसलिए अकारण कठिनाई पड़ती है और उसे बहुत ज्यादा श्रम उठाना पड़ता है जो कि इक्कीस वर्ष में आसान हुआ होता। वह अब एक लम्बा पथ और कठिन पथ हो जाता है। और एक कठिनाई हो जाती है कि इक्कीस वर्ष में उस द्वार पर खड़ा था और इक्कीस वर्ष और पचास वर्ष के बीच तीस वर्ष वह इतने बाजारा में भटका है कि वह दरवाजे पर भी नहीं है। अब जहाँ इक्कीस वर्ष में अपने आप खड़ा हो गया है, जहाँ से जरा-सी चोट और दरवाजा खुल जाता। अब उसको वह दरवाजा फिर से खोजना है और वह इस बीच इतना भटक चुका है, इतने दरवाजे देख चुका है कि उसे पता लगाना भी मुश्किल है कि वह दरवाजा कौन-सा है जिसमें मैं इक्कीस वर्ष में खड़ा हो गया।

इसलिए पच्चीस वर्ष तक एक बड़ी सुनियोजित व्यवस्था की जरूरत है बच्चों के लिए। वह इतनी सुनियोजित होनी चाहिए कि उनको चौथे शरीर पर पहुँचा दे। चौथे के बाद बहुत आसान है मामला। नींव (फाउण्डेशन) सब भर दी गयी हैं, अब तो सिर्फ फल आने को बाकी है। **चौथे तक वृक्ष निर्मित होता है, पाँचवें से फल आने शुरू होते हैं, सातवें पर पूरे हो जाते हैं।** इसमें थोड़ी देर-अबेर हो सकती है, लेकिन वह बुनियादी पूरी की पूरी मजबूत हो जाय, इस सम्बन्ध में एक दो बातें और ख्याल में ले लेनी चाहिए।

१६. स्त्री और पुरुष के चार विभिन्न विद्युतीय शरीर

चार शरीर तक स्त्री और पुरुष का फासला है। जैसे कोई व्यक्ति पुरुष है तो उसका भौतिक शरीर (फिजिकल बॉडी) पुरुष शरीर (मेल बॉडी) होता है। लेकिन उसके पीछे, नम्बर दो का भाव शरीर (एथरिक बॉडी) स्त्रैण शरीर (फीमेल बॉडी) होता है। क्योंकि कोई ऋणात्मक (निगेटिव) ध्रुव या कोई धनात्मक (पॉजीटिव) ध्रुव अकेला नही रह सकता है। स्त्री का शरीर और पुरुष का शरीर, इसे अगर हम विद्युत् की भाषा में कहें तो निगेटिव और पॉजीटिव बाडीज (शरीर) हैं। स्त्री का प्रथम स्थूल शरीर ऋणात्मक है। इसलिए स्त्री कभी भी सेक्स के सम्बन्ध मे आक्रामक नहीं हो सकती, वह पुरुष पर बलात्कार नहीं कर सकती है। वह बलात्कार झेल सकती है, कर नहीं सकती। पुरुष की बिना इच्छा के स्त्री उसके साथ कुछ भी नही कर सकती। लेकिन पुरुष के पास प्रथम शरीर (धनात्मक) है। वह स्त्री की बिना इच्छा के भी कुछ कर सकता है। आक्रामक शरीर है उसके पास। निगेटिव का मतलब ऐसा नहीं है कि शून्य, या ऋणात्मक। निगेटिव का विद्युत् की भाषा मे मतलब होता है—रिजर्वायर (संग्राहक)। स्त्री के पास एक ऐसा शरीर है जिसमें शक्ति संरक्षित है, बड़ी शक्ति संरक्षित है लेकिन सक्रिय नही है, वह है निष्क्रिय शक्ति। इसलिए स्त्रियाँ कुछ सृजन नहीं कर पाती—न कोई बड़ी कविता का जन्म कर पाती हैं, न कोई बडी पेंटिंग बना पाती हैं, न विज्ञान की खोज कर पाती हैं। उनके ऊपर कोई बड़ी खोज नहीं है, उनके ऊपर कोई सृजन नहीं है। क्योकि खोज और सृजन के लिए आक्रामक होना जरूरी है। वे सिर्फ प्रतीक्षा करती रहती हैं, इसलिए सिर्फ बच्चे पैदा कर पाती हैं।

पुरुष के पास एक पॉजीटिव (धनात्मक) भौतिक शरीर है, लेकिन जहाँ भी पॉजीटिव है, उसके पीछे निगेटिव (ऋणात्मक) को होना चाहिए, नही तो वह टिक नहीं सकता। वह दोनो ही इकट्ठे मौजूद होते हैं। तब उनका पूरा सर्किल (वृत्त) बनता है। तो पुरुष का जो नम्बर दो का शरीर है वह स्त्रैण है। स्त्री के पास जो नम्बर दो का शरीर है वह पुरुष का है। इसलिए एक और मजे की बात है कि पुरुष दिखता बहुत ताकतवर है और जहाँ तक उसके भौतिक शरीर का सम्बन्ध है, वह बहुत ताकतवर है। लेकिन उसके पीछे एक कमजोर शरीर खड़ा हुआ है स्त्रैण। इसलिए उसकी ताकत क्षणों में प्रकट होगी। लम्बे अरसे में वह स्त्री से हार जायगा। क्योंकि स्त्री के पीछे जो शरीर है वह पॉजीटिव (पौरुषेय) है। इसलिए रेसिस्टेंस की, सहने की क्षमता पुरुष से स्त्री में सदा ज्यादा होगी। अगर एक ही बीमारी पुरुष और स्त्री पर हो तो स्त्री उसे लम्बे समय तक झेल सकती है। पुरुष उतने लम्बे समय तक नहीं झेल सकता है। बच्चे स्त्रियाँ पैदा

करती हैं, अगर पुरुष को पैदा करना पड़े तब उसे पता चलेगा। शायद दुनिया में फिर सन्तति नियमन की कोई जरूरत न रह जायेगी। वह बन्द ही कर देगा। वह इतना कष्ट नहीं झेल सकता और इतना लम्बा ! क्षण दो क्षण को वह क्रोध में पत्थर फेंक सकता है लेकिन नौ महीने एक बच्चे को पेट में नहीं झेल सकता। और वर्षों तक उसे बड़ा नहीं कर सकता। और रात भर वह रोये तो वह उसकी गर्दन दबा देगा, उसको झेल नहीं सकता। ताकत तो उसके पास ज्यादा है लेकिन पीछे उसके पास एक डिलीकेट (नाजुक) और कमजोर शरीर है जिसकी वजह से वह उसको झेल नहीं पाता है। इसलिए स्त्रियाँ कम बीमार पड़ती हैं। स्त्रियों की उम्र पुरुषों से ज्यादा है इसलिए हम पाँच साल का फासला रखते हैं शादी करते वक्त। नहीं तो दुनिया विधवाओं से भर जाय। इसलिए हम लड़का बीस साल का चुनते हैं तो लड़की १५ साल की चुनते हैं, १६ साल की चुनते हैं। क्योंकि चार और पाँच साल का फासला है। क्योंकि पुरुष की उम्र चार पाँच साल कम है। वह जब ७० साल में मरेगा तो कठिनाई खड़ी हो जायेगी। तो ४–५ साल का अन्तर रखा जाता है ताकि दोनों के बीच तालमेल बैठ जाय और वह बराबर जगह आ जायें।

११६ लड़के पैदा होते हैं और १०० लड़कियाँ पैदा होती हैं। पैदा होते वक्त १६ का फर्क होता है। १६ लड़के ज्यादा पैदा होते हैं। लेकिन दुनिया में स्त्री पुरुष की संख्या बराबर हो जाती है पीछे। १६ लड़के १४ साल के होने के पहले मर जाते हैं और करीब बराबर अनुपात हो जाता है। लड़के ज्यादा मरते हैं, लड़कियाँ कम मरती हैं। उनके पास प्रतिरोध (रेसिस्टेंस) की क्षमता प्रबल है। वह उनके पीछे के शरीर से आती है।

दूसरी बात, तीसरा शरीर जो है पुरुष का वह फिर पुरुष का होगा, यानी सूक्ष्म शरीर। और चौथा शरीर मनस शरीर फिर स्त्री का होगा और ठीक इससे उल्टा स्त्री में होगा। चार शरीरों तक स्त्री पुरुष का विभाजन है। पाँचवाँ शरीर यौन भेद से परे (Boyond Sex) है। इसलिए आत्म उपलब्धि होते ही इस जगत में फिर कोई स्त्री और पुरुष नहीं है। लेकिन तब तक स्त्री-पुरुष हैं। और इस सम्बन्ध में एक बात और ख्याल में आती है वह मैं आपसे कहूँ। चूँकि प्रत्येक पुरुष के पास स्त्री का शरीर है भीतर और प्रत्येक स्त्री के पास पुरुष का शरीर है। अगर संयोग से स्त्री को ऐसा पति मिल जाय जो उसके भीतर के पुरुष शरीर से मेल खाता हो तभी विवाह सफल होता है। नहीं तो नहीं होता है। या पुरुष को ऐसी स्त्री मिल जाय जो उसके भीतर की स्त्री से मेल खाती है तो ही वैवाहिक जीवन सफल होता है, नहीं तो नहीं होता है।

१७. प्रथम चार शरीरों के विकास के बिना विवाह सदैव असफल

इसलिए सारी दुनिया में सौ में निन्यानबे विवाह असफल होते हैं। क्योंकि

उनकी गहरी सफलता का सूत्र अभी तक साफ नहीं हो सका है। और जब तक हम यह न जान सकेंगे कि उनके भीतरी विद्युतीय शरीरों में मेल है या नहीं तब तक दुनिया में विवाह असफल ही होते रहेंगे। उसके लिए हम कुछ भी अन्य इन्तजाम कर लें, वह सफल नहीं हो सकता है। और उसको हम तभी खोज पायेंगे जब यह सारी की सारी शरीरों की पूरी वैज्ञानिक व्यवस्था अत्यन्त स्पष्ट हो जाय। और इसलिए अगर एक युवक विवाह के पहले, एक युवती विवाह के पहले अपनी कुण्डलिनी जागरण तक पहुँच गये हों तो उन्हें ठीक साथी चुनना सदा आसान है। उसके पहले ठीक साथी चुनना कभी भी आसान नहीं है। क्योंकि वे अपने भीतर के शरीरों की पहचान से, बाहर के ठीक शरीर को चुन पा सकते हैं। इसलिए जो लोग जानते थे उनकी यह कोशिश थी कि २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्यवास में इन चार शरीरों के विकास तक ले जाने के बाद ही विवाह किया जावे, उसके पहले नहीं। क्योंकि किससे विवाह करना है, किसके साथ तुम्हें रहना है? खोज किसकी है? हम किसको खोज रहे हैं? एक पुरुष एक स्त्री को, कौन सी स्त्री को खोज रहा है जिससे वह तृप्त हो सकेगा। वह अपने ही भीतर की स्त्री को खोज रहा है। एक स्त्री अपने ही भीतर के पुरुष को खोज रही है। अगर कहीं तालमेल बैठ जाता है संयोग से तब तो वह तृप्त हो जाता है। अन्यथा अतृप्ति बनी ही रहती है। फिर हजार तरह की विकृति पैदा होती है कि वह वेश्या को खोज रहा है, वह पड़ोस की स्त्री को खोज रहा है, वह यहाँ जा रहा है, वहाँ जा रहा है। परेशानी बढ़ती चली जाती है। और जितनी मनुष्य की बुद्धि विकसित होगी उतनी यह परेशानी बढ़ेगी।

अगर चौदह वर्ष की चित्त-दशा पर ही आदमी रुक जाय तो यह परेशानी नहीं होगी। क्योंकि सारी परेशानी तीसरे शरीर के विकास से शुरू होगी, बुद्धि से। अगर सिर्फ दूसरा भाव शरीर ही विकसित हुआ हो तो वह सेक्स से तृप्त हो जायगा। इसलिए दो रास्ते थे। या तो हम पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य के काल में उसको चार शरीरों तक पहुँचा दें या फिर बाल विवाह कर दें क्योंकि बाल विवाह का मतलब यह है कि बुद्धि का शरीर विकसित होने के पहले विवाह ताकि वह सेक्स पर ही रुक जाय और कभी झंझट मे न पड़े, तब जो सम्बन्ध है स्त्री पुरुष का वह बिलकुल पाशविक सम्बन्ध है। बाल विवाह का जो सम्बन्ध है वह सिर्फ सेक्स का सम्बन्ध है। प्रेम जैसी सम्भावना वहाँ नहीं है इसलिए अमेरिका जैसे मुल्कों में जहाँ शिक्षा बहुत बढ़ गयी है और जहाँ तीसरा शरीर पूरी तरह विकसित हो गया है, वहाँ विवाह टूटेगा, वह नहीं बच सकता। क्योंकि तीसरा शरीर कहता है मेल नहीं खाता, इसलिए तलाक फौरन तैयार हो जायगा क्योंकि मेल नहीं खाता तो इसको खींचना कैसे सम्भव है।

१८. चार शरीरों तक जो विकसित कर सके—वही शिक्षा सम्यक्

ये चार शरीर अगर विकसित हों तो ही मैं कहता हूँ शिक्षा ठीक है, सम्यक है। राइट एजूकेशन का मतलब है चार शरीर तक तुम्हें ले जायें क्योंकि पाँचवें शरीर तक कोई शिक्षा नहीं ले आ सकती। वहाँ तो तुम्हें जाना पड़ेगा लेकिन चार शरीर तक शिक्षा ले आ सकती है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। पाँचवां कीमती शरीर है। उसके बाद यात्रा निजी शुरू हो जाती है। फिर छठवाँ और सातवाँ तुम्हारी निजी यात्रा है। कुण्डलिनी जो है वह चौथे शरीर की सम्भावना है। इसलिए ही कुण्डलिनी साइकिक (मनोगत) प्रक्रिया है। मेरी यह बात ख्याल में आ गयी होगी।

प्रश्नकर्ता : शक्तिपात में माध्यम (कंडक्टर) का काम करने वाले व्यक्ति के साथ क्या साधक की साइकिक बाइंडिंग (मनोगत-बन्धन) हो जाती है ? उससे क्या-क्या हानियाँ साधक को हो सकती हैं ? क्या उसके अच्छे उपयोग भी हैं ?

आचार्यश्री : बन्धन का तो कोई अच्छा उपयोग नही है क्योंकि बन्धन ही बुरी बात है और जितना गहरा बन्धन हो उतनी ही बुरी बात है। तो साइकिक बाइंडिंग तो बहुत बुरी बात है। (अगर मेरे हाथ में कोई जंजीर डाल दें तो चलेगा क्योंकि वह मेरे भौतिक शरीर को ही पकड़ पाती है लेकिन कोई मेरे ऊपर प्रेम की जंजीर डाल दे तो ज्यादा झंझट शुरू हुई क्योंकि वह जंजीर गहरे चली गयी और उसको तोड़ना उतना आसान नहीं रह गया। कोई श्रद्धा की जंजीर डाल दे तो और गहरे चली गयी। उसको तोड़ना और अपवित्र (अनहोली) काम हो गया न ! वह और मुश्किल बात हो गयी। तो बंधन तो सभी बुरे हैं और मनस-बन्धन तो और भी बुरे हैं।)

१९. मोह-बन्धन से मुक्त व्यक्ति ही शक्तिपात का सही माध्यम होगा

जो व्यक्ति शक्तिपात में वाहन का काम करेगा वह व्यक्ति तो तुम्हें बाँधना ही न चाहेगा। क्योकि अगर वह बाँधना चाहता हो तो वह पात्र ही नहीं है कि वह वाहन बन सके। हाँ, लेकिन तुम बँध सकते हो, तुम उसके पैर पकड़ ले सकते हो कि मैं अब आपको न छोड़ूँगा, आपने मेरे ऊपर इतना उपकार किया। उस समय सजग होने की जरूरत है, बहुत सजग होने की जरूरत है कि साधक जिस पर शक्तिपात हो वह अपने को बंधन से बचा सके (लेकिन अगर यह ख्याल हो और अगर यह बात साफ हो कि बन्धन मात्र आध्यात्मिक यात्रा में भारी पड़ जाते हैं तो अनुग्रह बाँधेगा नहीं, बल्कि अनुग्रह भी खोलेगा। अर्थात् मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हो जाऊँ तो यह बन्धन क्यों बने, इसमें बन्धन होने की क्या बात है ? बल्कि

अगर मैं कृतज्ञता ज्ञापन न कर पाऊँ तो शायद भीतर एक बन्धन रह जाय कि मैं धन्यवाद भी नहीं दे पाया। लेकिन धन्यवाद के देने का मतलब यह है कि बात समाप्त हो गयी।)

२०. सुरक्षा—भयभीत आदमी की खोज

अनुग्रह बंधन नहीं है, बल्कि अनुग्रह का भाव परम स्वतन्त्रता का भाव है। लेकिन हम कोशिश करते हैं बाँधने की, क्योंकि हमारे भीतर भय है और हम सोचते हैं अकेले खड़े रह पायेंगे कि नहीं रह पायेंगे, किसी से बँध जायें। दूसरे की तो बात छोड़ दें, अँधेरी गली में से आदमी निकलता है तो वह भी जोर से गाना गाने लगता है। अपनी ही आवाज जोर से सुनकर भी भय कम होता है। दूसरे की आवाज होती तब भी ठीक था कि कोई दूसरा भी मौजूद है लेकिन अपनी ही आवाज जोर से सुनकर हिम्मत (कांफिडेंस) बढ़ता मालूम पड़ता है कि कोई डर नहीं। **आदमी भयभीत है इसलिए कुछ भी पकड़ने लगता है** और अगर डूबते को तिनका भी मिल जाय तो वह आँख बन्द करके उसको भी पकड़ लेता है। हालाँकि इससे, तिनका से, डूबते नही बचता, सिर्फ डूबने वाले के साथ तिनका भी डूब जाता है। लेकिन भय मे हमारा चित्त पकड़ लेना चाहता है। तो गुरु हो, यह हो, वह हो, कोई हो उसे हम पकड़ लेंगे। **पकड़ कर हम सुरक्षित होना चाहते हैं।** उसमें एक तरह की सुरक्षा (सिक्योरिटी) है **और साधक को सुरक्षा से बचना चाहिए।**

२१. असुरक्षा में ही साधक की आत्मा का विकास

साधक के लिए सुरक्षा सबसे बड़ा मोह जाल है। अगर उसने एक दिन भी सुरक्षा चाही और उसने कहा कि अब मैं किसी की शरण में सुरक्षित हो जाऊँगा और किसी की आड़ मे अब कोई भय नहीं है। अब मैं भटक नही सकता। अब मैंने ठीक मुकाम पा लिया है, अब मैं कही जाऊँगा नहीं। अब मैं यही बैठा रहूँगा। तो वह भटक गया। (क्योंकि साधक के लिए सुरक्षा नही है। **साधक के लिए असुरक्षा वरदान है। क्योंकि जितनी असुरक्षा है उतनी साधक की आत्मा को फैलने, बलवान होने, अभय होने का मौका है।** जितनी सुरक्षा है उतना ही साधक के निर्बल होने की व्यवस्था है। वह उतना निर्बल हो जायगा। सहारा लेना एक बात है। सहारा लिये ही चले जाना बिलकुल दूसरी बात है।

२२. स्व-निर्भर होने के लिए ही सहारे का उपयोग

सहारा दिया ही इसलिए गया है कि तुम बेसहारे हो सको। सहारा दिया ही इसलिए गया है कि अब तुम्हें सहारे की जरूरत न रहे।) एक बाप अपने बेटे को चलना सिखा रहा है। कभी ख्याल किया है कि जब बाप अपने बेटे को चलना

सिखाता है तो बाप बेटे का हाथ पकड़ता है। बेटा नहीं पकड़ता। लेकिन थोड़े दिन बाद जब बेटा थोड़ा चलना सीख जाता है तो बाप का हाथ बाप तो छुड़ा देता है लेकिन बेटा पकड़ लेता है। कभी बाप को चलाते देखें। अगर बेटा हाथ पकड़े हो तो समझो कि वह चलना सीख गया है। लेकिन, फिर भी हाथ नहीं छोड़ रहा है। और अगर बाप हाथ पकड़े हो तो समझना कि अभी चलना सिखाया जा रहा है। अभी छोड़ने में खतरा है। अभी छोड़ा नहीं जा सकता है। और बाप तो चाहेगा ही यह कि जल्दी हाथ छूट जाय। क्योंकि इसीलिए तो वह सिखा रहा है। और अगर कोई बाप इस मोह से भर जाय कि उसे मजा आने लगे कि बेटा उसका हाथ पकड़े ही रहे तो वह बाप दुश्मन हो गया। बहुत बाप हो जाते हैं। बहुत गुरु हो जाते हैं। लेकिन चूक गये वह। जिस बात के लिए उन्होंने सहारा दिया था वही खत्म हो गयी। वह तो उन्होंने अपंग (क्रुपिल्ड) पैदा कर दिया जो अब उनकी बैसाखी लेकर चलेंगे। हालांकि उनको मजा आता है कि उसकी बैसाखी के बिना तुम नहीं चल सकते। अहंकार की तृप्ति मिलती है। लेकिन, जिस गुरु को अहंकार की तृप्ति मिल रही हो वह तो गुरु ही नहीं है। लेकिन बेटा पकड़े रह सकता है पीछे भी। क्योंकि बेटा डर जाय कि बिना बाप के कैसे चल सकूंगा, कहीं गिर न जाऊँ।

तो गुरु का काम है कि उसके हाथ को झिड़के और कहे कि अब तुम चलो। और कोई फिक्र नहीं है, दो चार बार गिरो तो ठीक है, उठ जाना। आखिर उठने के लिए गिरना जरूरी है। और गिरने का डर मिटाने के लिए ही कुछ बार गिरना जरूरी है कि अब नहीं गिरेंगे।

हमारे मन को यह हो सकता है किसी का सहारा पकड़ लें तो फिर बाइंडिंग (बन्धन) पैदा हो जाती है। वह पैदा नहीं करना है। किसी साधक को ध्यान लेकर चलना है कि वह कोई सुरक्षा की तलाश में नहीं है। वह सत्य की खोज में है, सुरक्षा की खोज में नहीं है। और अगर सत्य की खोज करनी है तो सुरक्षा का ख्याल छोड़ना पड़ेगा। नहीं तो असत्य बहुत बार बड़ी सुरक्षा देता है। और जल्दी से दे देता है। तो फिर सुरक्षा का खोजी असत्य को पकड़ लेता है। सुविधा (कनवीनियन्स) का खोजी सत्य तक नहीं पहुँचता। क्योंकि लम्बी यात्रा है। फिर वह यहीं असत्य को गढ़ लेता है। और यहीं बैठे हुए पा लेता है। और समाप्त हो जाती है।

२३. अंध-श्रद्धा—चौथे शरीर के अविकसित होने के कारण

इसलिए किसी भी तरह का बन्धन खतरनाक है। और गुरु का बन्धन तो बहुत ही खतरनाक है। क्योंकि वह आध्यात्मिक बन्धन है। और 'आध्यात्मिक बन्धन' शब्द ही परस्पर-विरोधी (कन्ट्रेडिक्टरी) है। क्योंकि आध्यात्मिक

स्वतन्त्रता तो अर्थ रखती है। आध्यात्मिक गुलामी का कोई अर्थ नहीं होता। लेकिन इस दुनिया में आध्यात्मिक रूप से जितने लोग गुलाम हैं उतने लोग और किसी रूप से गुलाम नहीं हैं। उसका कारण है। क्योंकि जिस **चौथे शरीर के विकास से आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की सम्भावना पैदा होगी** वह चौथा शरीर नहीं है। उसके कारण हैं। अधिकतर लोग तीसरे शरीर तक ही विकसित हैं। अक्सर देखा जायगा कि एक आदमी हाईकोर्ट का मुख्य न्यायाधीश (चीफ जस्टिस) है, युनिवर्सिटी का उपकुलपति (वाइस चांसलर) है और किसी निपट गँवार आदमी के पैर पकड़े बैठा हुआ है। और उसको देखकर हजार गँवार उसके पीछे बैठे हुए हैं कि जब हाईकोर्ट का जस्टिस बैठा है, वाइसचान्सलर बैठा है युनिवर्सिटी का तो हम क्या हैं। लेकिन उन्हें पता नहीं कि यह जो आदमी है इसका तीसरा शरीर तो बहुत विकसित हुआ है। उसने बुद्धि का तो बहुत विकास किया है लेकिन चौथे शरीर के मामले में यह बिलकुल गँवार है। उसके पास वह शरीर नहीं है। और इसके पास चूँकि तीसरा शरीर है, केवल बुद्धि और तर्क का विचार करते-करते यह थक गया है और अब विश्राम कर रहा है। और **जब बुद्धि थककर विश्राम करती है तो बड़ी अबुद्धिपूर्ण काम करती है।** कोई भी चीज जब थककर विश्राम करती है तो उल्टी हो जाती है। इसलिए यह बड़ा खतरा है। इसलिए आश्रमों में आपको हाईकोर्ट के जज निश्चित ही मिलेंगे। वे थक गये हैं। वे बुद्धि से परेशान हो गये हैं। वे इससे छुटकारा चाहते हैं। वे कोई भी अबुद्धिपूर्ण (Irrational) काम कर लेंगे। वे किसी भी चीज में विश्वास करके आँख बन्द करके बैठ जाते हैं। वे कहते हैं सोच लिया बहुत, विवाद कर लिया बहुत, तर्क कर लिया बहुत, कुछ नहीं मिला। अब इसको हम छोड़ते हैं तो वह किसी को भी पकड़ लेते हैं। और उनको देखकर पीछे जो बुद्धिहीन वर्ग है वह कहता है जब इतने बुद्धिमान लोग हैं तो फिर हमको भी पकड़ लेना चाहिए। लेकिन जहाँ तक चौथे शरीर का सम्बन्ध है वह निपट नाकुछ हैं। इसलिए **चौथे शरीर का किसी व्यक्तित्व में थोड़ा-सा भी विकास हुआ हो तो बड़े-से-बड़ा बुद्धिमान उसके चरण को पकड़ कर बैठ जायगा।** क्योंकि उसके पास कुछ है। जिसके मामले में यह बिलकुल निर्धन है।

चूँकि चौथा शरीर विकसित नहीं है इसलिए बाइंडिंग (बन्धन) पैदा होती है। ऐसा मन होता है कि किसी को पकड़ लें—जिसका विकसित शरीर है उसको पकड़ लो। लेकिन उसको पकड़ने से आप विकसित नहीं हो जायेंगे। उसको समझने से विकसित हो सकता है। और **पकड़ना, समझने से बचने का उपाय है** वे कहेंगे समझने की क्या जरूरत है? हम आपके ही चरण पकड़े रहते हैं। जब आप वैतरणी पार होंगे तो हम भी हो जायेंगे। हम आपको ही नाव

बनायें लेते हैं। हम उसी में सवार रहेंगे। जब आप पहुँचोगे तब हम भी पहुँच जायेंगे।

२४. अंधानुकरण—साधना के श्रम से बचने के लिए

समझने में कष्ट है। समझने में अपने को बदलना पड़ेगा। समझना एक प्रयास है, एक साधना है। समझना एक श्रम है, समझना एक क्रान्ति है। समझने में एक रूपान्तरण होगा, सब बदलेगा। पुराना नया करना पड़ेगा। इतनी झंझट क्यों करनी पड़े। जो आदमी जानता है उसको हम पकड़ लेते हैं। हम उसके पीछे चले जायेंगे। लेकिन इस जगत में सत्य तक कोई किसी के पीछे चल कर नहीं पहुँच सकता। वहाँ अकेले ही पहुँचना पड़ता है। वह रास्ता ही निर्जन है। वह रास्ता ही अकेले का है। इसलिए किसी तरह का बन्धन वहाँ बाधा है।

सीखना, समझना जहाँ से जो झलक मिले उसे लेना लेकिन रुकना कहीं भी मत। किसी भी जगह को तुम मुकाम मत बना लेना। वह हाथ पकड़ मत लेना कि बस अब ठीक आ गये। हालांकि बहुत लोग मिलेंगे जो कहेंगे कहाँ जाते हो, रुक जाओ मेरे पास। यह दूसरा हिस्सा है। जैसा कि मैंने कहा भयभीत आदमी बँधना चाहता है किसी से। तो कुछ भयभीत आदमी बाँधना भी चाहते हैं किसी को। उनको उससे भी अभय हो जाता है। जिस आदमी को लगता है कि मेरे साथ हजार अनुयायी हैं उसको लगता है कि मैं ज्ञानी हो गया नहीं तो हजार अनुयायी कैसे होते। जब हजार आदमी मुझे मानने वाले हैं तो जरूर मैं कुछ जानता हूँ नहीं तो मानेंगे कैसे।

२५. भयभीत गुरुओं द्वारा, शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करना

यह बड़े मजे की बात है कि गुरु बनना कई बार तो सिर्फ इसी मानसिक हीनता के कारण होता है, कि दस हजार मेरे शिष्य हैं। बीस हजार मेरे शिष्य हैं। तो गुरु लगा है शिष्य बढ़ाने में कि मेरे सात सौ सन्यासी हैं, मेरे हजार सन्यासी हैं, मेरे इतने शिष्य हैं। वह फैलाने में लगे हैं। क्योंकि जितना यह विस्तार फैलता है वह आश्वस्त होते हैं कि जरूर मैं जानता हूँ नहीं तो हजार आदमी मुझे क्यों मानते। यह तर्क लौटकर उनको विश्वास दिलाता है कि मैं जानता हूँ। अगर ये हजार शिष्य खो जायें तो उनको लगेगा कि सब गया, इसका मतलब हुआ कि मैं नहीं जान रहा हूँ।

२६. जहाँ बन्धन है वहाँ सम्बन्ध होना असम्भव है

बड़े मानसिक खेल चलते हैं, और उन मानसिक खेलों से सावधान होने की जरूरत है, दोनों तरफ से। क्योंकि दोनों तरफ से खेल हो सकता है। शिष्य भी बाँध सकता है और जो शिष्य आज किसी से बँधेगा वह कल किसी को बाँधेगा।

क्योंकि यह सब शृंखलाबद्ध काम है। वह आज शिष्य बनेगा तो कल गुरु भी बनेगा। क्योंकि शिष्य कब तक बना रहेगा। अभी एक को पकड़ेगा तो कल फिर किसी से खुद को भी पकड़ायेगा। शृंखलाबद्ध गुलामियाँ हैं। मगर उसका बहुत गहरे में कारण चौथे शरीर का विकसित न होना है। उसको विकसित करने की चिन्ता चले तो तुम स्वतन्त्र हो सकोगे। फिर बन्धन नहीं होगा।

इसका यह मतलब नहीं है कि तुम अमानवीय हो जाओगे कि तुम्हारा मनुष्यों से कोई सम्बन्ध न रह जायगा, बल्कि इसका मतलब ही उल्टा है। असल में जहाँ बन्धन है वहाँ सम्बन्ध होता ही नहीं। एक पति और पत्नी के बीच बन्धन है। कहते हैं न कि विवाह बन्धन में बँध रहे हैं। निमन्त्रण पत्रिकाएँ भेजते हैं कि मेरा बेटा और मेरी बेटी प्रणयसूत्र के बन्धन में बँध रहे हैं। जहाँ बन्धन है वहाँ सम्बन्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि गुलामी में कैसा सम्बन्ध? कभी भविष्य में जरूर कोई बाप आमन्त्रण-पत्र भेजेगा कि मेरी बेटी किसी के प्रेम में स्वतन्त्र हो रही है। वह तो समझ में आती है बात कि अब किसी का प्रेम उसको स्वतन्त्र कर रहा है। जीवन में अब उसके ऊपर कोई बन्धन नहीं रहेगा। वह मुक्त हो रही है प्रेम में। और प्रेम में तो मुक्त होना चाहिए। अगर प्रेम भी बाँध लेता है तो फिर इस जगत् में मुक्त क्या करेगा, कौन करेगा।

२७. सम्बन्ध वही है—जो मुक्त करे

और जहाँ बन्धन है वहाँ सब कष्ट हो जाता है, सब नर्क हो जाता है। ऊपर से नकली चेहरे रह जाते हैं, भीतर सब गन्दगी हो जाती है। वह बन्धन चाहे गुरु शिष्य का हो, चाहे बाप-बेटे का हो, चाहे पति-पत्नी का हो, चाहे दो मित्रों का हो, जहाँ बन्धन है वहाँ सम्बन्ध नही हो सकता। और अगर सम्बन्ध है तो बन्धन बेमानी है। लगता तो ऐसा ही है कि जिससे हम बँधे हैं उसी से सम्बन्ध है। लेकिन सिर्फ उसी से हमारा सम्बन्ध होता है जिससे हमारा कोई भी बन्धन नही है। इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि आप अपने बेटे से वह बात नहीं कह सकते जो कि एक अजनबी से कह सकते हैं। मैं इधर हैरान हुआ हूँ जानकर कि पत्नी जो अपने पति से नहीं कह सकती है, वह सब ट्रेन में एक अजनबी आदमी से कह सकती है जिसको वह बिलकुल नहीं जानती, घंटे भर पहले मिला है। असल में जब कोई बन्धन नहीं है तो सम्बन्ध के लिए सरलता मिल जाती है। इसलिए तुम एक अजनबी से जितने भले ढंग से पेश आते हो उतना परिचित से नहीं आते हो। वहाँ कोई भी तो बन्धन नहीं है तब सिर्फ सम्बन्ध ही हो सकता है। लेकिन परिचित के साथ तुम उतने भले ढंग से कभी पेश नहीं आते हो, क्योंकि वहाँ तो बन्धन है। वहाँ नमस्कार भी करते हो तो ऐसा मालूम पड़ता है कि 'काम' है। इसलिए गुरु शिष्य का सम्बन्ध तो हो सकता है। और सम्बन्ध सब मधुर

हैं। लेकिन बन्धन नहीं हो सकता है मधुर और सम्बन्ध का मतलब ही यह है कि वह मुक्त करता है।

२८. न बाँधने वाले अद्‌भुत जेन फकीर

जेन फकीरों की एक बात बड़ी कीमती है कि अगर किसी भी जेन फकीर के पास कोई सीखने आयेगा तो जब वह सीख चुका होगा तब वह उससे कहेगा कि अब मेरे विरोधी के पास चले जाओ। अब कुछ दिन वहाँ सीखो। क्योंकि एक पहलू तुमने जाना। अब तुम दूसरे पहलू को भी समझो। और फिर साधक अलग-अलग आश्रमों में वर्षों घूमता रहेगा। वह उनके पास जाकर बैठेगा जो उनके गुरु के विरोधी हैं, उनके चरणों में बैठेगा और उनसे भी सीखेगा। क्योंकि उसका गुरु कहेगा है कि हो सकता है वह ठीक हो। तुम उधर भी जाकर सारी बात समझ लो और कौन ठीक है, इसका क्या पता? हो सकता है, हम दोनों से मिलकर जो बनता हो वही ठीक हो। या यह भी ठीक हो सकता है कि हम दोनों को काटकर जो बचता हो वही ठीक हो। इसलिए जाओ, उसे खोजो। जब कोई देश मे आध्यात्मिक प्रतिभा विकसित होती है तो ऐसा होता है। तब बन्धन नही बनती हैं चीजें।

अब यह मैं चाहता हूँ कि ऐसा इस मुल्क मे जिस दिन हो सकेगा उस दिन बहुत परिणाम होंगे कि कोई किसी को बाँधता न हो, भेजता हो शिष्य को लम्बी यात्रा पर। और कौन जानता है कि क्या होगा अन्तिम। लेकिन जो इस भाँति भेज देगा अगर कल तुम्हें उसकी सब बातें भी गलत मालूम पड़ें तब भी वह आदमी गलत मालूम न पड़ेगा। जो इस भाँति तुम्हें भेज देगा कि जाओ कही और खोजो, हो सकता है मैं गलत होऊँ। तो यह हो भी सकता है कि किसी दिन उसकी सारी बातें भी तुम्हें मालुम पड़ें तब भी तुम अनुग्रहीत रहोगे। वह आदमी कभी गलत नहीं हो पायेगा। क्योंकि उस आदमी ने ही तो भेजा है तुम्हें। अभी हालत ऐसी है कि सब रोक रहे हैं। एक गुरु रोकता है कि किसी दूसरे की बात मत सुन लेना। शास्त्रों में लिखता है कि दूसरे के मन्दिर में मत चले जाना। चाहे एक पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना, मगर दूसरे के मन्दिर में शरण भी मत लेना। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि वहाँ कोई चीज कान में पड़ जाय। तो भला ऐसे आदमी की सब बातें भी सही हों तब भी यह आदमी तो गलत ही है और इसके प्रति अनुग्रह कभी नहीं हो सकता। क्योंकि इसने तुम्हें गुलाम बनाया और कुचल डाला और मार डाला है। यह अगर ख्याल में आ जाय तो बन्धन का कोई सवाल नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि अगर शक्तिपात प्रामाणिक व शुद्धतम हो तो बन्धन नहीं होगा। क्या यह ठीक है?

आचार्यश्री : हाँ, नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : शक्तिपात के नाम पर साइकिक एक्सप्लायटेशन (मनोगत शोषण) सम्भव है क्या? कैसे सम्भव है और उससे साधक बचे कैसे?

२९. शक्तिपात के नाम पर शोषण

आचार्यश्री : सम्भव है। शक्तिपात के नाम पर बहुत आध्यात्मिक शोषण सम्भव है। असल में जहाँ भी दावा है वहाँ शोषण होगा। और जहाँ कोई कहता है कि मैं कुछ दूंगा, वह लेगा भी कुछ। क्योंकि देना जो है वह बिना लेने के नहीं हो सकता। जहाँ कोई कहेगा कि मैं कुछ देता हूँ, वह तुमसे वापस भी कुछ लेगा। क्वाइन (सिक्का) कोई भी हो, वह धन के रूप में ले, आदर के रूप में ले, श्रद्धा के रूप में ले, किसी भी रूप में ले, वह लेगा जरूर। जहाँ देना है, आग्रह पूर्वक दावे पूर्वक, वहाँ लेना है। और जो देने का दावा कर रहा है वह जो देगा वह उससे ज्यादा लेगा। नहीं तो बाजार में चिल्लाने की उसे कोई जरूरत न थी। असल मे वह दे इसी तरह रहा है जैसे कोई मछली मारनेवाला काँटे पर आटा लगाता है। क्योंकि मछली काँटे नहीं खाती। हो सकता है किसी दिन मछलियों को समझाया जा सके और वे सीधा काँटा खा लें। अभी तक कोई मछली सीधा काँटा नहीं खाती है। उसके ऊपर आटा लगाना पड़ता है। हाँ, मछली आँटा खा लेती है और आँटे के दावे की वजह से काँटे के पास आ जाती है। आँटा मिलेगा इस आशय में काँटे को भी गटक जाती है। गटकने पर पता चलता है कि आटा तो व्यर्थ था, काँटा असली था। लेकिन तब तक काँटा छिप गया होता है।

३०. साधक दावेदार गुरुओं से बचें

तो जहाँ कोई कहे कि मैं शक्तिपात करूँगा, मैं ज्ञान दिलवा दूंगा, मैं समाधि में पहुँचा दूंगा, मैं ऐसा करूँगा, मैं वैसा करूँगा—जहाँ ये दावे हैं। वहाँ सावधान हो जाना। क्योंकि उस जगत का आदमी दावेदार नहीं होता। उस जगत के आदमी से अगर तुम कहोगे भी जाकर कि आप की वजह से मुझमें शक्तिपात हो गया तो वह कहेगा कि तुम किसी भूल में पड़ गये। मुझे तो पता ही नहीं, मेरी वजह से कैसे हो सकता है। उस परमात्मा की वजह से ही हुआ होगा। वहाँ तो तुम धन्यवाद देने जाओगे तो भी स्वीकृति नहीं होगी कि मेरी वजह से हुआ है। वह तो कहेगा तुम्हारी अपनी वजह से हुआ होगा। तुम किसी भूल में पड़ गये हो, वह परमात्मा की कृपा से हो गया होगा। मैं कहाँ हूँ, मैं किस कीमत में हूँ, मैं कहाँ आता हूँ।

जीसस निकल रहे हैं एक गाँव से। और एक बीमार आदमी को लोग उनके पास लाये हैं। उन्होंने गले से लगा लिया और वह ठीक हो गया। वह आदमी

कहता है कि मैं आपको कैसे धन्यवाद दूँ क्योंकि आपने मुझे ठीक कर दिया है। जीसस ने कहा कि ऐसी बातें मत कर। जिसे धन्यवाद देना है उसे धन्यवाद दे। मैं कौन हूँ, मैं कहाँ आता हूँ? उस आदमी ने कहा आपके सिवाय तो यहाँ कोई भी नहीं है। जीसस ने कहा हम तुम दोनों नहीं हैं। जो है वह तुझे दिखाई ही नहीं पड़ रहा है। उससे ही सब हो रहा है। 'ही हैज हील्ड यू।' उसी ने तुझे स्वस्थ कर दिया है।

अब यह जो आदमी है, कैसे शोषण करेगा! शोषण करने के लिए आटा लगाना पड़ता है काँटे पर। यह तो काँटा तो दूर आटा भी मेरा है, यह भी मानने को राजी नहीं है। इसका कोई उपाय नहीं है। तो जहाँ तुझे दावा दिखे, वहाँ सम्भल जाना है। जहाँ कोई कहे कि ऐसा मैं कर दूँगा, ऐसा हो जायगा, वहाँ वह तुम्हारे लिए आटा और काँटा तैयार कर रहा है। वह तुम्हारी माँग को जगा रहा है। वह तुम्हारी अपेक्षा को उकसा रहा है। वह तुम्हारी वासना को त्वरित कर रहा है। और जब तुम वासनाग्रस्त हो जाओगे और कहोगे वो महाराज, तब वह तुमसे माँगना शुरू कर देगा। बहुत शीघ्र तुम्हें पता चल जायगा आटा ऊपर था, काँटा भीतर है।

इसलिए जहाँ दावा हो वहाँ सम्भलकर कदम रखना। वह खतरनाक जमीन है। जहाँ कोई गुरु बनने को बैठा हो उस रास्ते से मत निकलना। क्योंकि वहाँ उलझ जाने का डर है। इसलिए साधक कैसे बचे? बस वह दावे से बचे तो सबसे बच जायगा। वह दावे को न खोजे, वह उस आदमी की तलाश न करे जो दावा करे कि दे सकता है, नहीं तो झंझट में पड़ेगा। क्योंकि आदमी भी तुम्हारी तलाश कर रहा है कि कौन है जो फँस सकता है। वह सब घूम रहे हैं। वह भी घूम रहा है कि किस आदमी को चाहिए। तुम माँगना ही मत। तुम दावे को स्वीकार ही मत करना।

३१. पात्र बनो—गुरु मत खोजो

और तुम्हें जो करना है वह और बात है। तुम्हें जो तैयारी करनी है वह तुम्हारे भीतर तुम्हें करनी है। और जिस दिन तुम तैयार होगे उस दिन वह घटना घट जायगी। उस दिन किसी भी माध्यम से घट जायगी। माध्यम गौण है। खूँटी की तरह है। जिस दिन तुम्हारे पास कोट होगा क्या तकलीफ पड़ेगी खूँटी खोजने में? कहीं भी टाँग लोगे। नहीं भी खूँटी होगी तो दरवाजे पर टाँग दोगे। दरवाजा नहीं होगा तो झाड़ की शाखा पर टाँग दोगे। कोई भी खूँटी का काम कर देगा। असली सवाल कोट का है। लेकिन कोट नहीं है हमारे पास। खूँटी दावा कर रही है कि इधर आओ, मैं खूँटी यहाँ हूँ। तुम फँसोगे। कोट तो तुम्हारे पास नहीं है। खूँटी के पास भी जाकर क्या करोगे। खतरा यही है कि खूँटी में

तुम्हीं न टंग जाओ। अपनी पात्रता खोजना है, अपनी योग्यता खोजनी है। अपने को उस योग्य बनाना है कि हम किसी दिन प्रसाद को ग्रहण करने के योग्य बन सकें।

तुम्हें गुरु खोजने की चिन्ता नहीं करनी है। वह तुम्हारी चिन्ता नहीं है। इसलिए कृष्ण जो कहते हैं अर्जुन से वह ठीक ही कहते हैं। उसका मतलब ही इतना है कि वह कहते है कि तू कर्म कर और फल परमात्मा पर छोड़ दे। उसकी तुझे फिक्र नहीं करनी है। उसकी फिक्र की तो कर्म में बाधा पड़ जायेगी। क्योंकि उसकी फिक्र की वजह से ऐसा लगता है कि कर्म क्या करना है, फल की पहले चिन्ता करो। उसकी वजह से ऐसा लगता है कि क्या करना है मुझे। फल क्या होगा, इसको देखूं ! और तब गलती सुनिश्चित हो जाने वाली है। इसलिए कर्म की फिक्र ही अकेली फिक्र है हमारी। हम अपने को पात्र बनाते रहें, योग्य करते रहें। **जिस दिन क्षमता हमारी पूरी होगी**—ऐसे ही जैसे जिस दिन बीज की क्षमता फूटने की पूरी होती है, **उस दिन सब मिल जाता है।** जिस दिन फूल खिलने को पूरा तैयार होता है, कली टूटने को तैयार होती है, सूरज तो निकल ही आता है उस दिन कोई अड़चन नहीं है। **सूरज सदा तैयार है। लेकिन, हमारे पास कली नहीं है खिलने को।** सूरज निकल गया है, होगा क्या ! इसलिए सूरज की तलाश मत करो। अपने कली को गहरा करने की फिक्र करो। सूरज सदा निकला हुआ है। वह तत्काल उपलब्ध हो जाता है।

३२. खाली पात्र भर दिया जाता है

इस जगत में पात्र एक क्षण को भी खाली नहीं रह जाता है। जिस तरह की भी पात्रता हो वह तत्काल भर दी जाती है। **असल में पात्रता का हो जाना और भर जाना दो घटनाएँ नहीं हैं। एक ही घटना के दो पहलू हैं।** जैसे हम इस कमरे की हवा बाहर निकाल दें दूसरी हवा इस कमरे की खाली जगह को तत्काल भर देगी। ये दो हिस्से नहीं हैं। इधर हम निकाल नहीं पाये कि उधर नयी हवा ने दौड़ना शुरू कर दिया है। ऐसे ही अंतर-जगत् के नियम हैं। हम इधर तैयार नहीं हुए कि वहाँ से जो हमारी तैयारी की माँग है वह उतरनी शुरू हो जाती है। लेकिन **कठिनाई हमारी है कि हम तैयार नहीं होते और माँग हमारी शुरू हो जाती है।** तब झूठी माँग के लिए झूठी सप्लाई (प्रदाय) भी हो जाती है।

अब इधर मैं बहुत हैरान होता हूँ। ऐसे लोग हैरानी में डाल देते हैं। एक आदमी आता है, वह कहता है मेरा मन बहुत अशान्त है। मुझे शान्ति चाहिए। उससे आधा घण्टा मैं बात करता हूँ और कहता हूँ कि सच में ही मुझे शान्ति चाहिए तो वह कहता है शान्ति तो अभी क्या, वास्तव में मेरे लड़के को पहले नौकरी चाहिए, उसी की वजह से अशान्ति है। नौकरी मिल जाय तो सब ठीक हो

जाय। यह आदमी कहता हुआ आया था कि मुझे शान्ति चाहिए। वह इसकी जरूरत नहीं है। इसकी असली जरूरत दूसरी है। उसका शान्ति से कुछ लेना-देना नहीं है। इसकी जरूरत है कि इसके लड़के को नौकरी चाहिए। तब यह मेरे पास, गलत आदमी के पास आ गया।

३३. धर्म के दूकानदारों का रहस्य

अब वह जो धर्म के बाजार में दुकान लेकर बैठा है वह कहता है नौकरी चाहिए? इधर आओ! हम नौकरी भी दिलवा देंगे और शान्ति भी मिल जायगी। इधर जो भी आता है उनको नौकरी मिल जाती है। इधर जो भी आते हैं उनका धन बढ़ जाता है। इधर जो आते है उनकी दूकान चलने लगती है और उस दुकान के आसपास दस-पाँच आदमी आपको मिल जायेंगे जो कहेंगे कि मेरे लड़के को नौकरी मिल गयी। मेरी पत्नी मरने से बच गयी, मेरा मुकदमा हारने से जीत गया। धन के अम्बार लग गये। वह दस आदमी उस दूकान के आसपास मिल जायेंगे। ऐसा नहीं कि वे झूठ बोल रहे हैं। ऐसा भी नहीं कि वे किराये के आदमी हैं। ऐसा भी नहीं है कि वे दुकान के दलाल हैं, नहीं ऐसा कुछ भी नहीं है। जब हजार आदमी किसी दुकान पर नौकरी खोजने आते हैं, दस को मिल जाती है। तो जिनको मिल जाती है वे रुक जाते हैं। ९९९ चले जाते हैं। वह जो रुक जाते हैं वह खबर करते रहते हैं। धीरे-धीरे उनकी भीड़ बड़ी होती जाती है। इसलिए हर दूकान के पास दावेदार और प्रचारक हैं। वे जो कह रहे हैं कि मेरे लड़के को नौकरी मिली, इसमें झूठ नहीं है कोई। यह कोई खरीदा हुआ आदमी नहीं है। यह भी आया था इसके लड़के को मिली है। जिनके लड़के को नहीं मिली वह जा चुके हैं। वे दूसरे गुरु को खोज रहे हैं कि कहीं मिले! जहाँ मिले, वहाँ चले जायें। यहाँ वे ही रह गये हैं जिनको मिल गयी है। वह हर साल लौट आते हैं, हर त्योहार पर लौट आते हैं। उनकी भीड़ बढ़ती चली जाती है और इस आदमी के आसपास एक वर्ग खड़ा हो जाता है, जो सुनिश्चित प्रमाण बन जाता है कि भाई मिली है इतने लोगों को तो आपको क्यों न मिलेगी। यह आटा बन जाता है। और काँटा बीच में है। और ये सारे लोग आटे बन जाते हैं। और आदमी फँस जाता है। माँगना ही मत, नहीं तो फँसना निश्चित है। माँगना ही मत। अपने को तैयार करना और भगवान पर छोड़ देना कि जिस दिन होना होगा, होगा। नहीं होगा तो हम समझेंगे हम पात्र नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : एक साधक का कई व्यक्तियों के माध्यम से शक्तिपात लेना उचित है? या हानिप्रद? कण्डक्टर बदलने में क्या-क्या हानियाँ सम्भव हैं और क्यों सम्भव हैं?

३४. प्रामाणिक शक्तिपात के बाद साधक का भटकना समाप्त

आचार्यश्री : असल तो यह है कि बहुत बार लेने की जरूरत तभी पड़ेगी जबकि शक्तिपात न हुआ हो। बहुत लोगों से लेने की भी जरूरत तभी पड़ेगी जबकि पहले जिनसे लिया हो वह बेकार गया हो, न हुआ हो। अगर हो गया है तो बात खतम है। बहुत बार लेने की जरूरत इसलिए पड़ती है कि दवा काम नही कर पायी, बीमारी अपनी जगह खड़ी है। स्वभावतः फिर डाक्टर बदलने पड़ते हैं। लेकिन जो बीमार ठीक हो गया, वह नहीं पूछता है कि डाक्टर बदलूँ या न बदलूँ। वह जो ठीक नहीं हुआ है वह कहता है कि मैं दूसरे डाक्टर से दवा लूँ कि क्या करूँ। दस बीस डाक्टर बदल लेता है। तो एक तो अगर शक्तिपात की किरण उपलब्ध हुई जरा भी तो बदलने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। वह प्रश्न ही नही है फिर उसका। नहीं उपलब्ध हुई तो बदलना ही पड़ता है। और बदलते ही रहते हैं आदमी। और अगर उपलब्ध हुई है कभी, एक से तो फिर किसी से भी उपलब्ध होती रहे, कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह सब एक ही स्रोत से आनेवाले हैं केवल माध्यम ही अलग है। कोई अन्तर नहीं पड़ता। रोशनी सूरज से आती कि दिये से आती, कि बिजली के बल्ब से आती इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। प्रकाश एक का ही है।

अगर घटना घटी है तो कोई अन्तर नही पड़ता और कोई हानि नही है। लेकिन इसको खोजते मत फिरना। यह मिल जाय रास्ते पर चलते तो धन्यवाद दे देना और आगे बढ़ जाना। इसे खोजना मत। खोजोगे तो खतरा है क्योंकि फिर जो दावेदार हैं वे ही तुम्हें मिलेंगे न। वह नही मिलेगा जो दे सकता था। वह मिलेगा जो कहता है, देते हैं। जो दे सकता है वह तो तुम्हें उसी दिन मिलेगा जिस दिन तुम खोज ही नही रहे हो। लेकिन तैयार हो रहे हो, वह उसी दिन मिलेगा इसलिए खोजना गलत है, माँगना गलत है। होती रहे घटना—होती रहे। और हजार रास्तों से प्रकाश मिले तो हर्ज नहीं है। सब रास्ते एक ही प्रकाश के मूल स्रोत को प्रमाणित करते चले जायेंगे। सब तरफ से वही प्रकट होगा।

३५. सब किरणों का मूल स्रोत परमात्मा है

कल मुझसे कोई कह रहा था किसी साधु के पास जाकर कहा होगा कि ज्ञान अपना होना चाहिए तो उन साधु ने कहा, ऐसा कैसे हो सकता है! ज्ञान तो सदा पराये का होता है। फलाँ मुनि ने फलाँ मुनि को दिया। उन मुनि ने उन मुनि को दिया। खुद कृष्ण गीता में कहते हैं कि उससे उसको मिला, उससे उसको मिला, उससे उसको मिला। तो कृष्ण के पास भी अपना नहीं है। तब मैंने उसको कहा कि कृष्ण के पास अपना है। लेकिन जब वह कह रहे हैं कि उससे उसको मिला,

उससे उसको मिला, तो वह यह कह रहे हैं कि जो यह ज्ञान मेरा है, यह जो मुझे घटित हुआ है यह मुझे ही घटित नहीं हुआ है। यह पहले फलाँ आदमी को भी घटित हुआ था और प्रमाण है कि उसको घटित हुआ था। उसने फलाँ आदमी को बताया भी था और फलाँ आदमी को भी घटित हुआ था। उसने उसको भी बताया था। लेकिन बताने से घटित नहीं हुआ था। घटने से बताया था। तो मुझको भी घटित हुआ है। अब मैं तुम्हें बता रहा हूँ, वह अर्जुन से कह रहे हैं। लेकिन मेरे बताने से तुम्हें घटित हो जायेगा, ऐसा नहीं है। तुम्हें घटित होगा तो तुम भी किसी को बता सकोगे कि ऐसा है।

उसे दूसरे से माँगते ही मत फिरना। वह दूसरे से मिलने वाली बात नहीं है। उसकी तू तैयारी करना। फिर वह बहुत जगह से मिलेगी। सब जगह से मिलेगी और एक दिन जिस दिन घटना घटती है उस दिन ऐसा लगता है कि मैं कैसा अन्धा हूँ कि जो चीज सब तरफ से मिल रही थी वह मुझे दिखाई क्यों नहीं पड़ती थी।

एक अन्धा आदमी है। वह दिये के पास से भी निकलता है, वह सूरज के पास से निकलता है, बिजली के पास से भी निकलता है लेकिन प्रकाश नहीं मिलता है और एक दिन जब उसे आँख खुलती है तब वह कहता है कि मैं कैसा अन्धा था, कितनी जगह से निकला, सब जगह प्रकाश था और मुझे दिखायी नहीं पड़ा। और अब मुझे सब जगह दिखायी पड़ रहा है।

तो जिस दिन घटना घटेगी उस दिन तो तुम्हें सब तरफ वही दिखायी पड़ेगा और जब तक नहीं घटी है तब तक जहाँ भी दिखाई पड़े वहाँ उसको प्रणाम कर लेना। जहाँ भी दिखाई पड़े वहाँ उसे ले लेना। लेकिन, माँगने मत जाना, भिखारी की तरह। क्योंकि सत्य भिखारी को नहीं मिल सकता है। उसे माँगना मत, नहीं तो कोई दुकानदार बीच में मिल जायगा जो कहेगा हम देते हैं। और तब एक आध्यात्मिक शोषण शुरू हो जायेगा। तुम चलना अपनी राह पर—अपने को तैयार करते, अपने को तैयार करते। जहाँ मिल जाय, ले लेना। धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना। फिर जिस दिन तुम्हें पूरा उपलब्ध होगा उस दिन तुम ऐसा न कह पाओगे कि मुझे फलाने से मिला। उस दिन तुम यही कहोगे कि आश्चर्य है मुझे सबसे मिला। जिनके करीब मैं गया सभी से मिला। और तब अन्तिम धन्यवाद जो है वह समस्त के प्रति हो जाता है। वह किसी एक के प्रति नहीं रह जाता।

प्रश्नकर्ता : *यह प्रश्न इसलिए आया था कि शक्तिपात का प्रभाव धीरे-धीरे कम भी हो जाता है।*

३६. शक्तिपात की झलक पाकर स्वयं के भीतर का शक्तिस्रोत खोजना

आचार्यश्री : हाँ, वह कम होगा ही। असल में दूसरे से कुछ भी मिलेगा तो

वह कम होता चला जायेगा। वह सिर्फ झलक है। उस पर तुम्हें निर्भर ही नहीं होना है। उसे तो तुम्हें अपने भीतर ही जगाना है तभी वह कम नहीं होगा। असल में सब प्रभाव क्षीण हो जायेंगे। क्योंकि प्रभाव जो हैं वह फॉरेन (Foreign) हैं। वह विजातीय हैं। वह बाहरी हैं। मैंने एक पत्थर फेंका तो पत्थर की कोई अपनी ताकत नहीं है। मैंने फेंका। मेरे हाथ की ताकत है तो मेरे हाथ की ताकत जितनी लगी है पत्थर उतनी दूर जाकर गिर जायेगा। लेकिन बीच में जब पत्थर हवा चीरेगा तो पत्थर को ख्याल हो सकता है कि अब तो मैं हवा चीरने लगा। अब तो मुझे गिराने वाला कोई भी नही है। लेकिन उसे पता नही कि वह प्रभाव से गया है। किसी के धक्के से गया है। दूसरे का हाथ पीछे है। पचास फीट दूर जाकर गिर जायेगा, गिरेगा ही। असल में दूसरे से आये प्रभाव की सदा सीमा होगी। वह गिर जायेगा।

दूसरे से आये प्रभाव का एक ही फायदा हो सकता है और वह यह है कि उस प्रभाव की क्षीण झलक में तुम अपने मूल स्रोत को खोज सको तब तो ठीक है। जैसे मैंने एक माचिस जलायी। प्रकाश हुआ तो मेरी माचिस कितनी देर जलेगी ? अब तुम दो काम कर सकते हो। अब तुम यहीं अँधेरे में रहो और मेरी माचिस पर निर्भर हो जाओ कि हम इस रोशनी में जियेंगे अब। क्षण भर भी नहीं बीतेगा माचिस बुझ जायेगी और फिर घुप्प अन्धेरा हो जायेगा। यह एक बात हुई। मैंने माचिस जलायी। घुप्प अन्धेरे मे थोड़ी-सी रोशनी हुई तो तुम्हें दरवाजा दिखायी पड़ा और तुम बाहर भाग गये। तुम मेरी माचिस पर निर्भर न रहे। तुम बाहर निकल गये। मेरी माचिस बुझे या जले, अब तुम्हें कोई मतलब न रहा। क्योंकि तुम वहाँ पहुँच गये जहाँ सूरज है। अब कोई चीज थिर हो जायेगी।

तो ये जितनी घटनाएँ हैं इनका एक ही उपयोग है कि इससे तुम समझ कर कुछ कर लेना अपने भीतर। इसके लिए मत रुक जाना। इसकी प्रतीक्षा करते रहोगे तो यह तो बार-बार माचिस जलेगी, बुझेगी। फिर धीरे-धीरे कण्डीशनिग (आदत) हो जायेगी। फिर तुम इसी माचिस के मुँहताज हो जाओगे। फिर तुम अन्धेरे में प्रतीक्षा करते रहोगे कि वह कब जले। फिर जलेगी तो तुम प्रतीक्षा करोगे, अब बुझने वाली है, अब बुझने वाली है। अब गये, अब गये। अब फिर अन्धेरा हो जायेगा। तो यह चक्कर पैदा हो जायेगा। नहीं, जब माचिस जले तब माचिस पर मत रुकना क्योंकि माचिस इसलिए जली है कि तुम रास्ता देखो और भागो। निकल जाओ, जितना दूर अन्धेरे के बाहर जा सकते हो।

३७. दूसरे से झलक पाकर अपनी राह चल देना

दूसरे से हम इतना ही लाभ ले सकते हैं। लेकिन दूसरे से हम स्थायी लाभ नहीं ले सकते। पर यह कोई कम लाभ नहीं है। यह कोई थोड़ा लाभ नहीं है।

बहुत बड़ा लाभ है। दूसरे से उतना भी मिल जाता है, यह भी आश्चर्य है। इसलिए जो दूसरा अगर समझदार होगा तो तुमसे नहीं कहेगा कि रुको, तुमसे कहेगा कि माचिस जल गयी, अब तुम भागो। अब तुम यहाँ ठहरना मत, नहीं तो माचिस अभी बुझ जायेगी। लेकिन अगर दूसरा तुमसे कहे कि रुको, देखो मैंने अब माचिस चलायी अँधेरे में, और किसी ने तो नहीं जलायी न, मैंने जलायी। अब तुम मुझसे दीक्षा लो। अब तुम यहीं ठहरो, अब तुम कहीं छोड़कर मत जाना। खाओ कसम। अब यह सम्बन्ध रहेगा, यह टूट नहीं सकता। मैंने ही माचिस जलायी, मैंने ही तुम्हें अँधेरे में प्रकाश दिखाया। अब तुम किसी और के माचिस के पास तो न जाओगे, अब तुम कोई और प्रकाश तो न खोजोगे? अब तुम किसी और गुरु के पास मत रुकना, सुनना भी मत, अब तुम मेरे हो। तो फिर खतरा हो गया।

३८. झलक दिखाकर बाँधने वाले तथाकथित गुरु

इससे अच्छा था कि यह आदमी माचिस न जलाता। इसने बड़ा नुकसान किया। अँधेरे में तुम खोज भी लेते। किसी तरह, टकराते, धक्के खाते, किसी दिन प्रकाश में पहुँच जाते। अब इसके माचिस को पकड़ने की वजह से बड़ी मुश्किल हो गयी। अब कहाँ जाओगे! और तब इतना भी पक्का है कि यह माचिस इस आदमी की अपनी नहीं है, यह इसने किसी से चुरा लिया है, यह कहीं से चुरायी गयी माचिस है, नहीं तो इसको अब तक पता होता कि यह बाहर भेजने के लिए ही है, किसी को रोकने के लिए नहीं है, यहाँ बिठा रखने के लिए नहीं है। यह चोरी की गयी माचिस है। इसलिए अब यह माचिस की दूकान कर रहा है। अब यह कह रहा है कि जिन-जिन को हम झलक दिखा देंगे उन-उन को यहीं रुके रहना पड़ेगा। वे कहीं जा नहीं सकते। तब तो हद हो गयी। अँधेरा रोकता था, अब यह गुरु रोकने लगा। इससे अन्धेरा अच्छा था कि कम-से-कम अन्धेरा हाथ फैलाकर तो रोक नहीं सकता था। अन्धेरा का जो रोकना था वह बिलकुल ही पैसिव (Passive), शान्त था। लेकिन यह गुरु तो ऐक्टिव (सक्रिय) रूप से रोकेगा। यह तो हाथ पकड़कर रोकेगा। छाती अड़ा देगा बीच में और कहेगा कि धोखा दे रहे हो, दगा कर रहे हो।

अभी एक लड़की ने आकर मुझे कहा कि उसके गुरु ने उससे कहा कि तुम उनके पास क्यों गयी। यह तो ऐसे ही हैं जैसे कोई पति अपने पत्नी को छोड़कर चला जाय। गुरु कह रहा है उससे जैसे पत्नीव्रत और पतिव्रत एक के साथ होते हैं, ऐसा गुरु को छोड़ कर चला जाय कोई दूसरे के पास तो यह महान् पाप है। ठीक है। यह चुरायी हुई माचिस वाला है। अब माचिस से काम चलायेगा। और

चुरायी जा सकती है माचिस, कोई कठिनाई नहीं है। शास्त्रों में बहुत माचिसें उपलब्ध हैं। उनको कोई चुरा सकता है।

प्रश्नकर्ता : क्या चुरायी हुई माचिस जल सकती है?

आचार्यश्री : असल में अन्धेरे में मजा ऐसा है कि जिसने प्रकाश देखा ही न हो उसको कौन-सी चीज जलती हुई बतायी जा रही है, यह भी तय करना मुश्किल है। यह तो प्रकाश के बाद उसको पता चलेगा कि तुम क्या जला रहे थे, क्या नहीं जला रहे थे। वह जल भी रही थी कि नहीं जल रही थी! कि आँख बन्द करके समझा रहे थे कि जल गयी है। वह सब तो जब तुम्हें प्रकाश दिखायी पड़ेगा तब तुम्हें पता चलेगा। जिस दिन प्रकाश दिखायी पड़ेगा उस दिन १०० में से ९९ गुरु अँधेरे के साथी और प्रकाश के दुश्मन सिद्ध होंगे। तब पता चलता है कि ये तो बहुत दुश्मन हैं। ये सब शैतान के माध्यम (एजेन्सीज) हैं।

●

१३. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक ७ जुलाई, १९७०

●

कुण्डलिनी-साधना में सात शरीर और सात चक्र

प्रश्नकर्ता : कल की चर्चा में आपने कहा कि साधक को पात्र बनने की पहले फिक्र करनी चाहिए, जगह-जगह माँगने नहीं जाना चाहिए। लेकिन साधक अर्थात् खोजी का अर्थ ही है कि उसे साधना में बाधाएँ हैं। उसे पता नहीं है कि कैसे पात्र बने, कैसे तैयारी करे। तो वह माँगने न जाय तो क्या करे? (सही मार्ग-दर्शक से मिलना कितना मुश्किल से हो पाता है!)

१. सात शरीर व सात चक्रों में साधक की बाधाएँ

आचार्यश्री : लेकिन खोजना और माँगना दो अलग बातें हैं। असल में जो खोजना नहीं चाहता है वही माँगता है। खोजना और माँगना एक तो है ही नहीं, वरन् विपरीत बातें हैं। खोजने से जो बचना चाहता है वह माँगता है। खोजी कभी नहीं माँगता। खोज और माँगने की प्रक्रिया बिलकुल अलग है। माँगने में दूसरे का ध्यान रखना पड़ता है, जिससे मिलेगा। और खोजने में अपने पर ध्यान रखना पड़ेगा जिसको मिलेगा। यह तो ठीक है कि साधक के मार्ग में बाधाएँ हैं लेकिन साधक के मार्ग पर बाधाएँ हैं, अगर हम ठीक से समझें तो इसका मतलब होता है कि साधक के भीतर बाधाएँ हैं। मार्ग भी भीतर है। और अपनी बाधाओं को समझ लेना बहुत कठिन नहीं है। इस सम्बन्ध में थोड़ी-सी विस्तीर्ण बात करनी पड़ेगी कि बाधाएँ क्या हैं और साधक उन्हें कैसे दूर कर सके।

जैसे मैंने कल सात शरीरों की बातें कहीं उस सम्बन्ध में कुछ और बात समझेंगे तो यह भी समझ में आ सकेगा।

२. प्रथम भौतिक शरीर अर्थात् मूलाधार चक्र की सम्भावनाएँ—काम-वासना या ब्रह्मचर्य

जैसे सात शरीर हैं ऐसे ही सात चक्र भी हैं। और प्रत्येक एक चक्र मनुष्य के एक शरीर से विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। भौतिक शरीर (फिजिकल बॉडी) का जो चक्र है वह मूलाधार है। वह पहला चक्र है। इस मूलाधार चक्र का भौतिक शरीर से केन्द्रीय सम्बन्ध है। यह भौतिक शरीर का केन्द्र है। इस मूलाधार चक्र की दो सम्भावनाएँ हैं। एक इसकी प्राकृतिक सम्भावना है जो हमें जन्म से मिलती है। और एक सम्भावना है जो साधना से उपलब्ध होती है। मूलाधार चक्र की प्राथमिक प्राकृतिक सम्भावना काम-वासना है, जो हमें प्रकृति से मिलती है। वह भौतिक शरीर की केन्द्रीय वासना है। अब साधक के सामने पहला ही सवाल यह उठेगा कि यह जो केन्द्रीय तत्व है उसके भौतिक शरीर का, इसके लिए क्या करे। और इस चक्र पर एक दूसरी सम्भावना है जो साधना से उपलब्ध होगी, वह ब्रह्मचर्य है। सेक्स इसकी प्राकृतिक सम्भावना है और ब्रह्मचर्य इसका रूपान्तरण (ट्रांसफार्मेशन) है। जितनी मात्रा में चित्त काम-वासना से केन्द्रित और ग्रसित होगा उतना ही मूलाधार संबंधी अन्तिम सम्भावनाओं को उपलब्ध नहीं कर सकेगा। उसकी अन्तिम सम्भावना ब्रह्मचर्य है। उस चक्र की दो सम्भावनाएँ हैं। एक जो हमें प्रकृति से मिली, और एक जो हमें साधना से मिलेगी।

३. न भोग, न दमन—वरन् जागरण

अब इसका मतलब यह हुआ कि जो स्थिति हमें प्रकृति से मिली है उसके साथ हम दो काम कर सकते हैं। या तो जो हमें प्रकृति से मिला है हम उसमें जीते रहें, तब जीवन में साधना शुरू नहीं हो पायेगी। दूसरा काम जो सम्भव है वह यह कि हम इसे रूपान्तरित करें। रूपान्तरण के पथ पर जो बड़ा खतरा है, वह खतरा यही है कि कहीं हम प्राकृतिक केन्द्र से लड़ने न लगें। साधक के मार्ग में खतरा क्या है? पहली बाधा यह है कि यदि साधक जो प्राकृतिक व्यवस्था है उसको भोगे तब वह उठ नहीं पाता, उस तक जो चरम सम्भावना है—जहाँ तक उठा जा सकता था। भौतिक शरीर जहाँ तक उसे पहुँचा सकता था वहाँ तक वह नहीं पहुँच पाता, वहाँ से शुरू होता है, वहीं अटक जाता है। एक तो भोग है दूसरा दमन है कि उससे लड़ो। दमन बाधा है साधक के मार्ग पर। पहले केन्द्र की जो बाधा है, क्योंकि दमन के द्वारा कभी रूपान्तरण (ट्रांसफार्मेशन), नहीं होता।

बनन बाधा है तो फिर साधक क्या बनेगा ? साधन क्या होगा ? समझ (अण्डरस्टैंडिंग) साधन बनेगी। काम-वासना को जो जितना समझ पायगा उतना ही उसके भीतर रूपान्तरण होने लगेगा। उसका कारण है। प्रकृति के सभी तत्व हमारे भीतर अन्धे और मूर्छित हैं। अगर हम उन तत्वों के प्रति होशपूर्ण हो जायँ तो रूपान्तरण होना शुरू हो जाता है। जैसी ही हमारे भीतर कोई चीज जागनी शुरू होती है वैसे ही प्रकृति के तत्व बदलने शुरू हो जाते हैं। जागरण कीमिया है, अवेयरनेस केमिस्ट्री है उनके बदलने की, रूपान्तरण की। अगर कोई अपनी काम-वासना के प्रति पूरे भाव और पूरे चित्त, पूरी समझ से जागे तो उसके भीतर काम-वासना की जगह ब्रह्मचर्य का जन्म शुरू हो जायगा। और जब तक कोई पहले शरीर पर ब्रह्मचर्य पर न पहुँच जाय तब तक दूसरे शरीर की सम्भावनाओं के साथ काम करना बहुत कठिन है। दूसरा शरीर मैंने कहा था भाव-शरीर या आकाश शरीर (इथरिक बॉडी) है।

४. भाव शरीर अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र की सम्भावनाएँ—भय, घृणा, क्रोध, हिंसा—अथवा अभय, प्रेम, क्षमा और अहिंसा

दूसरा शरीर हमारे दूसरे चक्र से सम्बन्धित है, स्वाधिष्ठान चक्र से। स्वाधिष्ठान चक्र की भी दो सम्भावनाएँ हैं। मूलतः प्रकृति से जो संभावना मिलती है वह है भय, घृणा, क्रोध, हिंसा। ये सब स्वाधिष्ठान चक्र की प्रकृति से मिली हुई स्थिति है। अगर इन पर ही कोई अटक जाता है तो इसकी जो दूसरी इसके बिलकुल प्रतिकूल ट्रान्सफार्मेशन (रूपान्तरण) की स्थिति है—प्रेम, करुणा, अभय, मैत्री, वह सम्भव नही हो पाता। साधक के मार्ग पर दूसरे चक्र पर जो बाधा है वह घृणा, क्रोध, हिंसा इनके रूपान्तरण का सवाल है। यहाँ भी वही भूल होगी जो सब तत्वो पर होगी। कोई चाहे तो क्रोध कर सकता है, कोई चाहे तो क्रोध को दबा सकता है। हम दोनों ही काम करते हैं। कोई भयभीत हो सकता है और कोई भय को दबा कर व्यर्थ ही बहादुरी दिखा सकता है। दोनों ही बातों से रूपान्तरण नहीं होगा। भय है, इसे स्वीकार करना पड़ेगा, इसे दबाने, छिपाने से कोई प्रयोजन नहीं है। हिंसा है, इसे अहिंसा के बाने पहना लेने से कोई फर्क पडने वाला नहीं है। अहिंसा परम धर्म है, ऐसा चिल्लाने से इसमें कोई फर्क पड़ने वाला नही है। हिंसा है। वह हमारे दूसरे शरीर की प्रकृति से मिली हुई सम्भावना है। उसका भी उपयोग है। जैसे कि सेक्स का उपयोग है। वह प्रकृति से मिली हुई सम्भावना है क्योंकि सेक्स के द्वारा ही दूसरे भौतिक शरीरों को जन्म दिया जा सकेगा। यह भौतिक शरीर मिटे, इसके पहले दूसरे भौतिक शरीरों को जन्म मिल सके, इसलिए वह प्रकृति से दी हुई सम्भावना है।

भय, हिंसा, क्रोध ये सब भी दूसरे तल पर अनिवार्य हैं अन्यथा मनुष्य बच नहीं

सकता, सुरक्षित नहीं रह सकता। भय उसे बचाता है, क्रोध उसे संघर्ष में उतारता है; हिंसा उसे साधन देती है दूसरे की हिंसा से बचने का। वह उसके दूसरे शरीर की सम्भावनाएँ हैं लेकिन साधारणतः हम वहीं रुक जाते हैं, अगर कोई भय को समझे तो अभय को उपलब्ध हो जाता है और अगर कोई हिंसा को समझे तो अहिंसा को उपलब्ध हो जाता है और अगर कोई क्रोध को समझे तो क्षमा को उपलब्ध हो जाता है।

असल में क्रोध एक पहलू है और दूसरा पहलू क्षमा है। वह उसी के पीछे छिपा हुआ पहलू है। वह सिक्के का दूसरा हिस्सा है लेकिन सिक्का उलटे, तब। लेकिन सिक्का उलट जाता है, अगर हम सिक्के के एक पहलू को पूरा समझ लें तो अपने आप हमारी जिज्ञासा उलटा कर देखने की हो जाती है दूसरी तरफ। लेकिन हम उसे छिपा लें और कहें, हमारे पास है ही नहीं, भय तो हममें है ही नहीं तो हम अभय को कभी भी न देख पायेंगे। जिसने भय को स्वीकार कर लिया और कहा, भय है, और जिसने भय को पूरा जाँचा-पड़ताला—खोजा, वह जल्दी ही उस जगह पहुँच जायेगा जहाँ वह जानना चाहेगा कि भय के पीछे क्या है। जिज्ञासा उसे उलटाने को भी कहेगी कि सिक्के को उल्टा करके भी देख लो और जिस दिन वह उल्टायेगा उस दिन वह अभय ही को उपलब्ध हो जायेगा। ऐसे ही हिंसा, करुणा में बदल जायेगी। वह दूसरे शरीर की साधक के लिए सम्भावनाएँ हैं। इसलिए साधक को जो मिला है प्रकृति से, उसका रूपान्तरण करना है और इसके लिए किसी से बहुत पूछने जाने की जरूरत नहीं है, अपने ही भीतर निरन्तर खोजने और पूछने की जरूरत है। हम सब जानते हैं कि क्रोध बाधा है, भय बाधा है। क्योंकि जो भयभीत है वह सत्य को खोजने कैसे जायेगा। भयभीत माँगने चला जायेगा। वह चाहेगा कि बिना किसी अज्ञात अनजान रास्ते पर जाये, कोई दे दे तो अच्छा है।

५. एस्ट्रल बॉडी (सूक्ष्म शरीर) अर्थात् मणिपुर चक्र की सम्भावनाएँ —सन्देह और विचार अथवा श्रद्धा और विवेक

तीसरा शरीर मैंने कहा एस्ट्रल बाडी है, सूक्ष्म शरीर। उस सूक्ष्म शरीर के भी दो हिस्से हैं। प्राथमिक रूप से सूक्ष्म शरीर सन्देह, विचार, इनके आस-पास रुका रहता है और अगर ये रूपान्तरित हो जायें, सन्देह अगर रूपान्तरित हो तो श्रद्धा बन जाता है और विचार अगर रूपान्तरित हो तो विवेक बन जाता है। सन्देह को अगर दबाया तो वह कभी श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होगा। हालाँकि सब तरफ ऐसा समझाया जाता है कि सन्देह को दबा डालो, विश्वास कर लो। जिसने सन्देह को दबाया और विश्वास किया वह कभी श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होगा। उसके भीतर सन्देह मौजूद ही रहेगा, दबा हुआ, भीतर कीड़े की तरह

सरकता रहेगा और काम करता रहेगा। उसका विश्वास सन्देह के भय से ही थोपा हुआ होगा। न, सन्देह को समझना पड़ेगा, सन्देह को जीना पड़ेगा, सन्देह के साथ चलना पड़ेगा, और सन्देह एक दिन उस जगह पहुँचा देता है जहाँ सन्देह पर भी सन्देह हो जाता है और जिस दिन सन्देह पर सन्देह होता है उसी दिन श्रद्धा की शुरुआत हो जाती है।

विचार को छोड़कर कोई भी विवेक को उपलब्ध नहीं हो सकता। विचार को छोड़ने वाले लोग हैं, छुड़ाने वाले लोग हैं। वे कहते हैं, विचार मत करो, विचार छोड़ ही दो। अगर कोई विचार छोड़ेगा तो अविचार और अंधे विश्वास को उपलब्ध होगा। वह विवेक नहीं है, विचार की सूक्ष्मतम प्रक्रिया से गुजर ही कोई विवेक को उपलब्ध होता है। विवेक का क्या मतलब है ? विचार में सदा ही संदेह मौजूद है। विचार सदा ही इनडिसीसिव (अनिश्चयात्मक) है इसलिए बहुत विचार करने वाले लोग कभी कुछ तय नहीं कर पाते और जब भी कोई कुछ तय करता है वह तभी तय कर पाता है जब विचार के चक्कर के बाहर होता है। डिसीजन (निश्चय) हमेशा विचार के बाहर से आता है। अगर कोई विचार में पड़ा रहे तो वह कभी निश्चय नहीं कर पाता। विचार के साथ निश्चय का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि विचारहीन बड़े निश्चयात्मक होते हैं और विचारवान बड़े निश्चयहीन होते हैं। दोनों से खतरा होता है। क्योंकि विचारहीन बहुत डिसीसिव (निश्चयवान) होते हैं। वह जो करते हैं पूरे ताकत से करते हैं क्योंकि उनमें विचार होते नहीं जो जरा भी सन्देह पैदा कर दे।

दुनिया में डॉगमेटिक (हठधर्मी) और फेनेटिक (दुराग्रही) जितने लोग हैं ये बड़े कर्मठ होते हैं क्योंकि इनमें शक का तो सवाल ही नहीं। ये कभी विचार तो करते नहीं। अगर इनको ऐसा लगता है कि एक हजार आदमी मारने से स्वर्ग मिलेगा तो फिर एक हजार एक मार कर ही रुकते हैं। उसके पहले वे नहीं रुकते। एक दफा उनको ख्याल नहीं आता है कि यह हो रहा है। उनमें कोई इनडिसीजन (अनिश्चय) नहीं है। विचारवान तो सोचता ही चला जाता है, सोचता ही चला जाता है। तो विचार के भय से अगर कोई विचार का द्वार ही बन्द कर दे तो सिर्फ अंध-विश्वास को उपलब्ध होगा। अंधा विश्वास खतरनाक है और साधक के मार्ग में बहुत बाधा है। चाहिए आँख वाला विवेक, चाहिए ऐसा विचार जिसमें डिसीजन (निश्चय व स्पष्टता) हो। विवेक का मतलब इतना ही होता है। विवेक का मतलब है कि विचार पूरा है। विचार से हम इतने गुजरे हैं कि सब विचारों में जो भी सन्देह की, शक की बातें थीं वे सब विदा हो गयी हैं। अब धीरे-धीरे निष्कर्ष में शुद्ध निश्चय साथ रह गया है।

तीसरे शरीर का चक्र है मणिपुर। मणिपुर चक्र के ये दो रूप हैं—सन्देह

और श्रद्धा। सन्देह रूपान्तरित होगा तो श्रद्धा बनेगी लेकिन ध्यान रखें, श्रद्धा सन्देह के विपरीत नहीं है, शत्रु नहीं है। श्रद्धा सन्देह का ही शुद्धतम विकास है, चरम विकास है। वह आखिरी छोर है, जहाँ सब सन्देह खो जाता है क्योंकि सन्देह स्वयं पर सन्देह बन जाता है और आत्मघात (स्यूसाइड) कर लेता है और श्रद्धा उपलब्ध होती है।

६. मनस शरीर अर्थात् अनाहत चक्र की सम्भावनाएँ—कल्पना और स्वप्न अथवा संकल्प और अतीन्द्रिय-दर्शन

हमारा चौथा शरीर है मेंटल बाडी, अर्थात् मनस शरीर या साइक। इस चौथे शरीर के साथ हमारे चौथे चक्र का सम्बन्ध है, अनाहत का। इस शरीर का जो प्राकृतिक रूप है वह है कल्पना (इमैजिनेशन) स्वप्न (ड्रीमिंग)। हमारा मन स्वभावतः यह काम करता रहता है—कल्पना करता है और सपने देखता है। रात में भी सपने देखता है, दिन में भी सपने देखता है और कल्पना करता रहता है। इसका जो चरम विकसित रूप है अर्थात् अगर कल्पना पूरी तरह से, चरम रूप से विकसित हो तो संकल्प बन जाती है, 'विल' बन जाती है और अगर ड्रीमिंग (स्वप्न की क्षमता) पूरी तरह से विकसित हो तो 'विजन' (अतीन्द्रिय-दर्शन) बन जाती है, तब वह 'साइकिक विजन' हो जाती है। अगर किसी व्यक्ति का स्वप्न देखने की क्षमता पूरी तरह से विकसित होकर रूपान्तरित हो तो वह आँख बन्द करके भी चीजों को देखना शुरू कर देता है। वह दीवाल के पार भी देख लेता है। अभी तो दीवाल के पार का सपना ही देख सकता है लेकिन तब दीवाल के पार भी देख सकता है। अभी तो आप क्या सोच रहे होंगे यह सोच सकता है लेकिन तब आप क्या सोच रहे हैं, यह देख सकता है। 'विजन' का मतलब यह है कि इन्द्रियों के बिना अब उसे चीज दिखायी पड़नी और सुनायी पड़नी शुरू हो जाती हैं। टाइम और स्पेस के, काल और स्थान के जो फासले हैं उसके लिए मिट जाते हैं। सपने में भी आप दूर जाते हैं। सपने में आप बम्बई में हैं तो कलकत्ता जा सकते हैं और 'विजन' (अतीन्द्रिय-दर्शन) में भी जा सकते हैं। लेकिन, दोनों में फर्क होगा। सपने में सिर्फ ख्याल है कि आप कलकत्ता गये हैं, 'विजन' में आप चले ही जायेंगे। वह जो चौथी साइकिक बाडी है, (मनस-शरीर) है, वह मौजूद हो सकती है। इसलिए पुराने जगत में जो सपने के सम्बन्ध में ख्याल था वह धीरे-धीरे छूट गया और नये समझदार लोगों ने उसे इन्कार कर दिया क्योंकि हमें इस चौथे शरीर की चरम सम्भावना का कोई पता नहीं रहा। सपने के सम्बन्ध में पुराना अनुभव यही था कि सपने में आदमी का कोई शरीर निकल कर बाहर चला जाता है यात्रा पर।

स्वीडेन बर्ग का एक आदमी था। उसे लोग अपना सपना देखने वाला आदमी ही

समझते थे। क्योंकि वह स्वर्ग-नर्क की बातें भी कहता था और स्वर्ग-नर्क की बातें सपना हो सकती हैं! लेकिन एक दिन दोपहर वह सोया था और उसने दोपहर एकदम उठकर कहा कि बचाओ, आग लग गयी है, बचाओ आग लग गयी है। घर के लोग आ गये, वहाँ कोई आग नहीं लगी थी और उसको उन्होंने जगाया और कहा कि तुम नींद में हो कि सपना देख रहे हो। आग कहीं भी नहीं लगी है। उसने कहा, नहीं, मेरे घर में आग लग गयी है। तीन सौ मील दूर था उसका घर, लेकिन उसके घर में उस वक्त आग लग गयी थी। दूसरे तीसरे दिन तक खबर आयी कि उसका घर जलकर बिलकुल राख हो गया और जब वह सपने में चिल्लाया था तभी आग लगी थी। अब यह सपना न रहा, यह 'विज़न' हो गया। अब तीन सौ मील का जो फासला था वह गिर गया और इस आदमी ने तीन सौ मील दूर जो हो रहा था वह देखा।

७. अतीन्द्रिय घटनाएँ—विज्ञान के समक्ष

अब तो वैज्ञानिक भी इस बात के लिए राजी हो गये हैं कि चौथे शरीर की बड़ी साइकिक-सम्भावनाएँ हैं। और चूँकि स्पेस ट्रेवेल (अन्तरिक्ष यात्रा) की वजह से उन्हें समझकर काम करना पड़ रहा है। क्योंकि, आज नहीं कल यह कठिनाई खड़ी हो जाने ही वाली है कि जिन यात्रियों को हम अन्तरिक्ष की यात्रा पर भेजेंगे उनकी मशीनें कितनी ही भरोसे की हों फिर भी भरोसे की नहीं हैं। अगर उनके रेडियो यन्त्र जरा भी बिगड़ गये तो हमसे उनका सम्बन्ध सदा के लिए टूट जायेगा। फिर वे हमें खबर भी न दे पायेंगे कि वे कहाँ गये और उनका क्या हुआ। इसलिए वैज्ञानिक इस समय बहुत उत्सुक है कि साइकिक बाडी, चौथे शरीर का अगर विज़न (अतीन्द्रिय-दर्शन) या टेलिपैथी का मामला सम्भव हो सके तभी सुरक्षा है। वह भी चौथे शरीर की आखिरी सम्भावनाओं का हिस्सा है कि अगर वे यात्री बिना रेडियो यन्त्रों के हमें सीधी टेलिपैथिक खबर दे सकें तो कुछ बचाव हो सकता है। इस पर काफी काम हुआ है।

आज से कोई तीस साल पहले एक यात्री उत्तर ध्रुव की खोज पर गया। रेडियो यन्त्रों की व्यवस्था थी जिनसे वह खबर देता। लेकिन एक और व्यवस्था थी जो अभी-अभी प्रकट हुई है। और वह व्यवस्था यह थी कि एक साइकिक आदमी को, एक ऐसे आदमी को जिसके चौथे शरीर की दूसरी सम्भावनाएँ काम करती थीं उसको भी नियत किया गया था कि वह उसको भी खबरें दे। और बड़े मजे की बात यह है कि जिस दिन पानी, हवा, मौसम खराब होता है रेडियो में खबरें न मिलतीं उस दिन भी उसे तो खबरें मिलती हीं। और जब पीछे सब डायरी मिलायी गयी तो कम-से-कम अस्सी से पच्चानबे प्रतिशत के बीच सूचनाएँ उस साइकिक आदमी ने जो माध्यम की तरह ग्रहण की थीं, वह सही थीं। और मजा

यह है कि रेडियो ने जो खबर दी थी वह भी ७२ प्रतिशत से ज्यादा ऊपर न गयी थी। क्योंकि इस बीच में भी कुछ गड़बड़ हुई तो बहुत सी चीजें छूट गयी थीं। अभी तो रूस और अमरीका दोनों अति उत्सुक हैं उस सम्बन्ध में। इसलिए टेलिपैथी (विचार संप्रेषण) और क्लेरोवायन्स (दूर-दर्शन) और थॉट-रीडिंग (विचार-पठन) इन पर बहुत काम चलता है। वह हमारे चौथे शरीर की सम्भावनाएँ हैं। स्वप्न देखना उसकी प्राकृतिक सम्भावना है। सत्य देखना, यथार्थ देखना उसकी चरम सम्भावना है। इस चौथे शरीर का चक्र अनाहत है।

८. पाँचवें आत्म-शरीर अर्थात् विशुद्ध चक्र की सम्भावनाएँ—द्वैत और मूर्छा का अभाव

पाँचवाँ चक्र है विशुद्ध। वह कण्ठ के पास है और पाँचवाँ शरीर है स्प्रीचुअल बॉडी, आत्म शरीर। विशुद्ध उसका चक्र है। वह उस शरीर से सम्बन्धित है। अब तक जो चार शरीर की मैंने बात की और चार चक्रों की वह द्वैत में बटे हुए थे। पाँचवें शरीर से द्वैत समाप्त हो जाता है। जैसा मैंने कल कहा था कि चार शरीर तक मेल (पुरुष) और फीमेल (स्त्री) का फर्क होता है। पाँचवें शरीर से मेल और फीमेल का, स्त्री और पुरुष का फर्क समाप्त हो जाता है। अगर बहुत गौर से देखें तो सब द्वैत स्त्री और पुरुष का है। द्वैत (डुआलिटी) मात्र स्त्री पुरुष के हैं। और जिस जगह से स्त्री पुरुष का फासला खत्म होता है उसी जगह से सब द्वैत खत्म हो जाता है। पाँचवां शरीर अद्वैत है। उसकी दो सम्भावनाएँ नहीं हैं। उसकी एक ही सम्भावना है।

इसलिए चौथे के बाद साधक के लिए बड़ा काम नहीं है। सारा काम चौथे के बाद बड़ा काम नहीं है। बड़ा इस अर्थों में कि विपरीत कुछ भी नहीं है वहाँ। वहाँ प्रवेश ही करना है और चौथे तक पहुँचते-पहुँचते इतनी सामर्थ्य इकट्ठी हो जाती है कि पांचवें में सहज प्रवेश हो जाता है। लेकिन प्रवेश न हो, और हो तो क्या फर्क होगा ? पाँचवें शरीर मे कोई द्वैत नहीं है। लेकिन कोई साधक जिसका प्रवेश पाँचवें शरीर में हो गया है और जिस व्यक्ति ने अभी प्रवेश नहीं किया है उनमें क्या फर्क होगा ? वह फर्क उतना होगा कि जो पाँचवें शरीर में प्रवेश करेगा उसकी समस्त तरह की मूर्छा टूट जायगी। वह रात भी नहीं सो सकेगा। सोयेगा, शरीर ही सोया रहेगा। भीतर उसके कोई सतत् जागता रहेगा। अगर उसने करवट भी बदली है तो वह जानता है। नहीं बदली है तो जानता है। अगर उसने कम्बल ओढ़ा है तो जानता है। नहीं ओढ़ा है तो जानता है। उसका जानना निद्रा में भी शिथिल नहीं होगा। वह चौबीस घण्टे जागरूक होगा। जिनका नहीं पाँचवें शरीर में प्रवेश हुआ उनकी स्थिति बिलकुल उल्टी होगी।

वे नींद में तो सोये हुए होंगे ही, जिसको हम जागना कहते हैं उसमें भी एक पर्त उनकी सोयी ही रहेगी।

९. आदमी की मूर्छा और यान्त्रिकता

काम करते हुए दिखायी पड़ते हैं लोग। आप अपने घर आते हैं, कार का घूमना बायें और आपके घर के सामने आकर ब्रेक का लग जाना, तो आप यह मत समझ लेना कि आप सब होश में कर रहे हैं? यह सब बिलकुल आदतन, बेहोशी में होता रहता है। **कभी-कभी किन्हीं** क्षणों में हम होश में आते हैं, **बहुत खतरे के क्षणों में हम होश में आते हैं।** जब खतरा इतना होता है कि नींद से नहीं चल सकता तब होश में आते हैं। जैसे कि एक आदमी आपकी छाती पर छुरा रख दे तब एक सेकेण्ड को होश में आते हैं। **एक सेकेंड को वह छुरे की धार आपको पांचवें शरीर तक पहुँचा देती है।** लेकिन **बस, ऐसे दो चार क्षण जिन्दगी में होते हैं अन्यथा साधारणतः हम सोये-सोये ही जीते हैं।**

न तो पति ने अपनी पत्नी का चेहरा देखा है ठीक से न पत्नी ने पति का। अगर अभी आँख बन्द करके पति अपनी पत्नी का चेहरा सोचे ख्याल नहीं कर पायेगा। रेखाएँ थोड़ी देर में ही इधर-उधर हट जायेंगी और पक्का नही हो पायेगा कि यह मेरी पत्नी का चेहरा है जिसको तीस साल से मैंने देखा है। **देखा ही नहीं है कभी, क्योंकि देखने के लिए भीतर कोई जागा हुआ आदमी चाहिए।**

सोया हुआ आदमी, दिखायी पड़ रहा है कि देख रहा है लेकिन वह देख नहीं रहा है। उसके भीतर तो नींद चल रही है और सपने भी चल रहे हैं। उस नींद में सब चल रहा है। आप क्रोध करते हैं और पीछे कहते हैं कि पता नहीं कैसे हो गया। मैं तो नहीं करना चाहता था, जैसे कि कोई और कर गया हो। आप कहते हैं, यह मुंह से मेरे गाली निकल गयी, माफ करना, मैं तो नहीं देना चाहता था। कोई जबान खिसक गयी होगी। आपने ही गाली दी, आप ही कहते हैं कि मैं नही देना चाहता था। ऐसे बहुत से हत्यारे हैं जो कहते हैं कि पता नहीं (इन्सपाइट ऑफ अस), हमारे बावजूद हत्या हो गयी, हम तो करना ही नहीं चाहते थे, बस ऐसा हो गया। तो हम कोई आटोमेटा की तरह, (यन्त्रवत) चल रहे हैं। जो नहीं बोलना है वह बोलते हैं, जो नहीं करना है वह करते हैं।

सांझ को तय करते हैं, सुबह चार बजे उठेंगे। कसम खा लेते हैं। सुबह चार बजे हम खुद ही कहते हैं, अब क्या रखा है, अभी सोयें, कल देखेंगे। सुबह छः बजे उठकर फिर पछताते हैं और हमीं कहते हैं, बड़ी गल्ती हो गयी, अब ऐसा कभी नहीं करेंगे। कल तो उठना ही है। जो कसम खायी थी उसको निभाना है। आश्चर्य की बात है, शाम को जिस आदमी ने तय किया था, सुबह चार बजे वही आदमी बदल कैसे गया। फिर सुबह चार बजे तय किया था तो फिर छः

बजे कैसे बदल गया। फिर सुबह ६ बजे जो तय किया है वह साँझ तक फिर बदल जाता है। साँझ बहुत दूर है। उस बीच पच्चीस दफे बदल जाता है। नहीं, ये निर्णय, ये ख्याल हमारी नींद में आये हुए ख्याल हैं, सपनों की तरह। बहुत बबूलों की तरह बनते और टूट जाते हैं। कोई जागा हुआ आदमी पीछे नहीं है, कोई होश से भरा हुआ आदमी पीछे नहीं है।

तो नींद आत्मिक शरीर में प्रवेश के पहले सहज अवस्था है, नींद—सोया हुआ होता और आत्मा शरीर में प्रवेश के बाद की सहज अवस्था है जागृति। इसलिए चौथे शरीर के बाद हम व्यक्ति को बुद्ध कह सकते हैं। चौथे शरीर के बाद जगना आ गया। अब आदमी जागा हुआ है। बुद्ध, गौतम, सिद्धार्थ का नाम नहीं है, पाँचवें शरीर की उपलब्धि के बाद दिया गया विशेषण है। (Gautam, the Buddha), गौतम जो जाग गया—यह मतलब है उसका। नाम तो गौतम ही है। लेकिन गौतम सोये हुए आदमी का नाम था इसलिए फिर धीरे-धीरे उसको गिरा दिया और बुद्ध ही रह गया।

१०. सोये हुए आदमियों की दुनिया—उलझन, द्वन्द्व और उपद्रवों से भरी

यह हमारे पाँचवें शरीर का फर्क है, उसके प्रवेश के पहले आदमी सोया-सोया (स्लीपी) है। वह जो भी कर रहा है वे नींद में किये गये कृत्य हैं। उसकी बातों का कोई भरोसा नहीं है। वह जो कह रहा है वह विश्वास के योग्य नहीं। उसकी प्रामिस (निश्चय) का कोई मूल्य नहीं, उसके दिये गये वचन को, मानने का कोई अर्थ नही है। वह कहता है कि मैं जीवन भर प्रेम करूँगा और अभी दो क्षण बाद हो सकता है वह गला घोंट दे। वह कहता है, यह सम्बन्ध जन्मों-जन्मों तक रहेगा, यह दो क्षण न टिके। उसका कोई कसूर नही है। नींद में दिये गये वचन का क्या मूल्य है। रात सपने में मैं किसी को वचन दे दूँ कि जीवन भर यह सम्बन्ध रहेगा, इसका क्या मूल्य है। सुबह मैं कहता हूँ, सपना था।

सोये हुए आदमी का कोई भरोसा नही है और हमारी पूरी दुनिया सोये हुए आदमी की दुनिया है। इसलिए इतनी उलझन (कनफ्यूजन) है, इसलिए इतना द्वन्द्व (कॉनफ्लिक्ट) इतना झगड़ा, इतना उपद्रव ही ये सोये हुए आदमी पैदा कर रहे हैं।

सोये हुए आदमी और जागे हुए आदमी में एक और फर्क पड़ेगा वह भी हमें ख्याल में ले लेना चाहिए। चूँकि सोये हुए आदमी को यह कभी पता नहीं चलता है कि मैं कौन हूँ इसलिए वह पूरे वक्त इस कोशिश में लगा रहता है कि मैं किसी को बता दूँ कि मैं 'यह' हूँ। इसमें वह पूरे वक्त लगा रहता है। उसे खुद ही पता नहीं कि वह कौन है, इसलिए पूरे वक्त वह हजार-हजार रास्ते से अपने को सिद्ध

करता रहता है। कभी राजनीति के किसी पद पर सवार होकर लोगों को दिखाता है कि 'मैं यह हूँ'। कभी एक बड़ा मकान बनाकर दिखाता है कि कि 'मैं यह हूँ', कभी पहाड़ की चोटी पर चढ़कर दिखाता है कि 'मैं यह हूँ'। वह सब तरफ से कोशिश कर रहा है कि लोगों को बता दे कि 'मैं यह हूँ'। और इस सब कोशिश से जाने-अनजाने वह घूमकर अपने को जानने की कोशिश कर रहा है कि 'मैं हूँ कौन'। 'हूँ कौन', यह उसे पता नहीं है।

११. पाँचवें शरीर में 'मैं कौन हूँ ?' का उत्तर

चौथे शरीर के पहले इसका कोई पता नहीं चलेगा। पाँचवें शरीर को आत्म-शरीर इसीलिए कह रहे हैं कि वहाँ तुम्हें पता चलेगा कि तुम कौन हो। इसलिए पाँचवें शरीर के बाद 'मैं' की आवाजें एकदा बन्द हो जायेंगी। पाँचवें शरीर के बाद वह कोई-खास (Some Body) होने का दावा एकदम समाप्त हो जायगा। उसके बाद अगर तुम उससे कहोगे कि तुम 'यह हो' तो वह हँसेगा। और अपनी तरफ से उसके दावे खत्म हो जायेंगे क्योंकि अब वह जानता है, अब दावे करने की कोई जरूरत नहीं है। अब किसी के सामने सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है। अब अपने ही सामने सिद्ध हो गया है कि मैं कौन हूँ।

१२. पाँचवाँ शरीर बहुत ही तृप्तिदायी और आनन्दपूर्ण

पाँचवें शरीर में गये आदमी की समस्याएँ व द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं लेकिन पाँचवें शरीर का अपना खतरा है कि चाहो तो तुम वहाँ रुक सकते हो, क्योंकि तुमने अपने को जान लिया है और यह इतनी तृप्तिदायी और आनन्दपूर्ण स्थिति है कि शायद तुम आगे की गति न करो। **अब तक जो खतरे थे वे दुख के थे! अब जो खतरा शुरू होता है वह आनन्द का है।** पाँचवें शरीर में होना इतना आनन्द-पूर्ण है कि अब शायद तुम आगे खोजो ही मत। इसलिए **पाँचवें शरीर में गये व्यक्ति के लिए अत्यन्त सजगता जो रखनी है वह यह है कि आनन्द कहीं पकड़ न ले,** रोकने वाला न बन जाय। और यहाँ आनन्द परम है। यहाँ आनन्द अपनी पूरी ऊँचाई पर प्रकट होगा। अपनी पूरी गहराई में प्रकट होगा। एक बड़ी क्रान्ति घटित हो गयी है। तुम अपने को जान लिये हो लेकिन अपने को ही जाने हो और तुम ही नहीं हो और भी सब हैं लेकिन **बहुत बार ऐसा होता है कि दुख रोकने वाले सिद्ध नहीं होते, सुख रोकने वाले सिद्ध हो जाते हैं और आनन्द बहुत रोकने वाला सिद्ध हो जाता है।** बाजार की भीड़-भाड़ तक को छोड़ने में कठिनाई थी अब इस मन्दिर में बजती वीणा को छोड़ने में तो बहुत कठिनाई हो जायेगी। इसलिए बहुत से साधक आत्मज्ञान पर रुक जाते हैं और ब्रह्म ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो पाते।

१३. पाँचवें आत्म-शरीर के आनन्द में लीन मत हो जाना

इस आनन्द के प्रति भी सजग होना पड़ेगा। यहाँ भी काम वही है कि आनन्द में लीन मत हो जाना। आनन्द लीन करता है, तल्लीन करता है, डुबा लेता है। **आनन्द में लीन मत हो जाना।** आनन्द के अनुभव को भी **जानना कि वह भी एक अनुभव है। जैसे सुख के अनुभव थे, दुख के अनुभव थे वैसे ही आनन्द के भी अनुभव हैं।** लेकिन तुम अभी भी बाहर खड़े रहना, तुम इसके भी साक्षी बन जाना। क्योंकि जब तक अनुभव है तब तक उपाधि है और जब तक अनुभव है तब तक अन्तिम छोर नहीं आया है। **अन्तिम छोर पर सब अनुभव समाप्त हो जायेंगे। सुख और दुख तो समाप्त होते ही हैं आनन्द भी समाप्त हो जाता है।** लेकिन, हमारी भाषा इसके आगे फिर नहीं जा पाती। इसलिए हमने परमात्मा का रूप सच्चिदानन्द कहा है। यह परमात्मा का रूप नहीं है, यह जहाँ तक भाषा जाती है वहाँ तक है। आनन्द हमारी आखिरी भाषा है। असल में **पाँचवें शरीर के आगे फिर भाषा नहीं जाती।** तो पाँचवें शरीर के सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकता है। आनन्द है वहाँ, पूर्ण जागृति है वहाँ, 'स्व' बोध है वहाँ, यह सब कहा जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

१४. आत्म-शरीर से आगे रहस्य का आरम्भ

इसलिए जो आत्मवाद पर रुक जाते हैं उनकी बातों में मिस्ट्रीसिज्म (रहस्यवाद) नहीं होगा। इसलिए **आत्मवाद पर रुक गये लोगों में कोई रहस्य नहीं होगा,** उनकी बातें बिलकुल विज्ञान (साइन्स) जैसी मालूम पड़ेंगी, क्योंकि रहस्य (मिस्ट्री) की दुनिया तो इसके आगे है, रहस्य तो इसके आगे है। यहाँ तक तो चीजें साफ हैं। और मेरी समझ है कि जो लोग आत्मवाद पर रुक जाते हैं, आज नहीं कल उनके धर्म को विज्ञान आत्मसात कर लेगा, क्योंकि आत्मा तक विज्ञान भी पहुँच सकेगा।

१५. सत्य का खोजी आत्मा पर नहीं रुकेगा

और आमतौर से साधक जब खोज पर निकलता है तो उसकी खोज सत्य की नहीं होती है। आमतौर से आनन्द की होती है। वह कहता है, सत्य की खोज पर निकला हूँ, लेकिन खोज उसकी आनन्द की होती है। दुख से परेशान है, अशान्ति से परेशान है वह, आनन्द खोज रहा है। इसलिए **जो आनन्द खोजने निकला है वह तो निश्चित ही इस पाँचवें शरीर पर रुक जायगा।** इसलिए एक बात और कहता हूँ, **खोज आनन्द की नहीं, सत्य की करना। तब फिर रुकना नहीं होगा।**

तो अब एक सवाल नया उठेगा कि आनन्द है, यह ठीक है। मैं अपने को

जान रहा हूँ, यह भी ठीक है। लेकिन ये वृक्ष के फूल हैं, वृक्ष के पत्ते हैं। जड़ें कहाँ हैं? मैं अपने को जान रहा हूँ, यह भी ठीक है, मैं आनन्दित हूँ यह भी ठीक है लेकिन मैं कहाँ से हूँ? (फ्राम ह्वेयर?) मेरी जड़ें कहाँ हैं, मैं आया कहाँ से? मेरे अस्तित्व की गहराई कहाँ है, कहाँ से मैं आ रहा हूँ? यह जो मेरी लहर है यह किस सागर से उठी है? सत्य की अगर जिज्ञासा है तो पाँचवें शरीर से आगे जा सकोगे। इसलिए बहुत प्राथमिक रूप से ही, प्रारम्भ से ही जिज्ञासा सत्य की ही चाहिए, आनन्द की नहीं। नहीं तो पाँचवें तक तो बड़ी अच्छी यात्रा होगी लेकिन पाँचवे पर एकदम रुक जायेगी। सत्य की अगर खोज है तो यहाँ रुकने का सवाल नहीं है।

तो पाँचवें शरीर में जो सबसे बड़ी बाधा है वह उसका अपूर्व आनन्द है और हम एक ऐसी दुनिया से आते हैं जहाँ दुख, पीड़ा, चिन्ता और तनाव के सिवाय कुछ भी नहीं जाना है। और जब इस आनन्द के मन्दिर में प्रविष्ट होते हैं तो मन होता है कि अब तो बिलकुल डूब जाओ, अब खो ही जाओ, इस आनन्द में नाचो और खो जाओ। खो जाने की यह जगह नहीं है। खो जाने की जगह भी आयेगी लेकिन तब खोना न पड़ेगा, खो ही जाओगे। बहुत फर्क है खोना और खो ही जाना में। यानी वह जगह आयेगी, जहाँ बचाना भी चाहोगे तो नहीं बच सकोगे। देखोगे खोते हुए अपने को। कोई उपाय न रह जायगा लेकिन यहाँ खोना हो सकता है, यहाँ भी खो सकते है हम। लेकिन उसमें भी हमारा प्रयास, हमारी चेष्टा रहेगी। और बहुत गहरे मे अहंकार तो मिट जायगा, पाँचवें शरीर मे लेकिन, अस्मिता नहीं मिटेगी। इसलिए अहंकार और अस्मिता का थोड़ा-सा फर्क समझ लेना जरूरी है।

१६. आत्म-शरीर में अहंकार का मिटना लेकिन अस्मिता का रह जाना

अहंकार तो मिट जायगा, 'मैं' का भाव तो मिट जायगा, लेकिन 'हूँ' का भाव नहीं मिटेगा। मैं हूँ, इसमे दो चीजे है—'मैं' तो अहंकार है और 'हूँ' अस्मिता है—होने का बोध। 'मैं' तो मिट जायगा पाँचवे शरीर में, सिर्फ 'होना' रह जायगा, 'हूँ' रह जायगा, अस्मिता रह जायेगी। इसलिए इस जगह पर खड़े होकर अगर कोई दुनिया के बाबत कुछ कहेगा तो वह कहेगा अनन्त आत्माएँ है, सबकी आत्माएँ अलग है। आत्मा एक नहीं है, प्रत्येक की आत्मा अलग है। इस जगह से आत्मवादी अनेक आत्माओं को अनुभव करेगा क्योंकि अपने को वह अस्मिता मे देख रहा है, अभी भी अलग है। अगर सत्य की खोज मन में हो तो आनन्द में डूबने की बाधा से बचा जा सकता है क्योंकि जब सतत आनन्द रहता है तो उबाने वाला हो जाता है। आनन्द भी उबाने वाला हो जाता है। एक हीं स्वर बजता रहे आनन्द का तो वह भी उबाने वाला हो जाता है।

बर्टेंड रसल ने मजाक में कहीं यह कहा है कि मैं मोक्ष जाना पसन्द नहीं करूँगा, क्योंकि मैं सुनता हूँ कि वहाँ सिर्फ आनन्द है और कुछ भी नहीं है। तो बहुत मोनोटोनस (उबाने वाला) होगा कि आनन्द ही आनन्द है। उसमें एक दुख की रेखा भी बीच में न होगी, उसमें कोई चिन्ता और तनाव न होगा, तो कितनी देर तक ऐसे आनन्द को झेल पायेंगे।

१७. आत्मा का भी अतिक्रमण करने पर छठवें ब्रह्म-शरीर में प्रवेश

आनन्द की लीनता बाधा है पाँचवें शरीर में। और उससे बचना बहुत कठिन है और कई बार तो जन्म-जन्म लग जाते हैं। पहली चार सीढ़ियाँ पार करना इतना कठिन नहीं है, पाँचवीं सीढ़ी पार करना बहुत कठिन हो जाता है, **बहुत जन्म लग सकते हैं आनन्द से ऊबने के लिए और स्वयं से ऊबने के लिए, आत्म से ऊबने के लिए।** वह जो 'सेल्फ' (आत्मा) है उससे ऊबने के लिए।

तो अभी पाँचवें शरीर तक जो खोज है वह दुख से छूटने की, घृणा से छूटने की, हिंसा से छूटने की, वासना से छूटने की है। **पाँचवें के बाद जो खोज है वह स्वयं से छूटने की है।** तो दो बातें हैं—(फ्रीडम फ्रॉम समथिंग) किसी चीज से मुक्ति, यह एक बात है। यह पाँचवें तक पूरी होगी। फिर दूसरी बात है—किसी से मुक्ति नहीं, **अपने से ही मुक्ति।** और इसलिए पाँचवे शरीर से एक नया ही जगत शुरू होता है।

१८. छठवें ब्रह्म-शरीर (Cosmic Body) अर्थात् आज्ञा चक्र की सम्भावना—स्व का खोना, सर्व का होना

छठवाँ शरीर ब्रह्म शरीर (कॉज्मिक बाडी) है और छठवाँ चक्र आज्ञा है। अब यहाँ से कोई द्वैत नहीं है। **आनन्द का अनुभव पाँचवें शरीर पर प्रगाढ़ होगा अस्तित्व का अनुभव छठवें शरीर पर प्रगाढ़ होगा**—एक्जिस्टैंस (अस्तित्व) का, बीइंग ('होने') का। अस्मिता खो जायेगी छठवें शरीर पर, 'हूँ', यह भी चला जायगा। है। **'मैं' हूँ, तो मैं चला जायगा पाँचवें पर, 'हूँ' चला जायगा पाँचवें को पार करके। 'है', 'इजनेस' का बोध होगा, 'तथाता'** (Such-ness) **का बोध होगा, कि 'ऐसा है'।** इसमें 'मैं' कहीं भी नहीं आयगा, उसमें अस्मिता कहीं नहीं आयेगी, 'जो है' ('दैट व्हिच इज) बस वही हो जायगा। तो यहाँ सत् का, बीइंग (Being) का बोध होगा। (चित् काँसंसनेस) का बोध होगा। लेकिन यहाँ चित् मुझसे मुक्त हो गया। ऐसा नहीं कि मेरी चेतना लेकिन, मात्र चेतना। मेरा अस्तित्व, ऐसा नहीं, लेकिन, मात्र अस्तित्व।

१९. ब्रह्म का भी अतिक्रमण करने पर निर्वाण-काया में प्रवेश

और कुछ लोग छठवें पर रुक जायेंगे क्योंकि ब्रह्म-शरीर (कॉज्मिक बाडी)

आ गया, ब्रह्म हो गया मैं, अहम् ब्रह्मास्मि की हालत आ गयी। अब मैं नहीं रहा, ब्रह्म ही रह गया है। अब और कहाँ है खोज ? अब कैसी खोज, अब किसको खोजना है ? अब तो खोजने को भी कुछ भी नहीं बचा है। अब तो सब पा लिया है क्योंकि ब्रह्म का मतलब है, (The Total) सब (समग्र)। इस जगह से खड़ा हो कर जिन्होंने कहा है, वह कहेंगे कि ब्रह्म अन्तिम सत्य है, ब्रह्म परम (एब्सल्यूट) है, उसके आगे फिर कुछ भी नहीं है और इसलिए इस पर तो अनन्त जन्म रुक सकता है कोई, आमतौर से रुक जाता है। क्योंकि इसके आगे तो सूझ में नहीं आता कि इसके आगे भी कुछ हो सकता है। तो ब्रह्मज्ञानी इस पर अटक जायगा, इसके आगे वह नहीं जायगा। और यह इतना कठिन है इस जगह को पार करना, क्योंकि अब बचती नहीं है कोई जगह जहाँ कि इसको पार करो। सब तो घेर लिया, जगह भी चाहिए न ! अगर मैं इस कमरे के बाहर जाऊँ तो बाहर जगह भी तो चाहिए ? अब यह कमरा इतना विराट हो गया, अन्तहीन, अनन्त हो गया, असीम, अनादि हो गया, अब जाने को भी कोई जगह नहीं, नो ह्वेयर टु गो, तब खोजने भी कहाँ जाओगे ? अब खोजने को भी कुछ नहीं बचा, सब आ गया। तो यहाँ अनन्त जन्म तक रुकना हो सकता है।

२०. साधक की परम खोज में आखिरी बाधा—ब्रह्म

तो ब्रह्म आखिरी बाधा है, (द लास्ट बैरियर) साधक के परम खोज में ब्रह्म आखिरी बाधा है। बीइंग (अस्तित्व) रह गया है अब। लेकिन अभी भी नॉनबीइंग (Non-Being, अनस्तित्व) है शेष। 'अस्ति' तो जान ली, 'है' तो जान लिया, लेकिन 'नहीं है' अभी वह जानने को शेष रह गया है। इसलिए सातवाँ शरीर है निर्वाण काया। उसका चक्र सहस्रार है और उसके सम्बन्ध में कोई बात नहीं हो सकती है। ब्रह्म तक बात जा सकती है, खींच तान के, गलत हो जायेगी बहुत।

२१. छठवें ब्रह्म-शरीर में तीसरी आँख (दिव्य-दृष्टि) या शिव नेत्र का खुलना

पाँचवें शरीर तक बात बड़ी वैज्ञानिक ढंग से चलती है। सारी बात साफ हो सकती है। छठवें शरीर पर बात की सीमाएँ खोने लगती हैं, सब अर्थहीन होने लगता है, फिर भी इशारे किये जा सकते हैं। लेकिन अब उँगली भी टूट जाती है, अब इशारे भी गिर जाते हैं क्योंकि अब खुद का होना ही गिर जाता है। तो परम अस्तित्व (एब्सल्यूट बीइंग) को छठवें शरीर पर और छठवें केन्द्र से जाना जा सकता है।

इसलिए जो लोग ब्रह्म की तलाश में हैं, आज्ञाचक्र पर, भृकुटि-मध्य में ध्यान

करेंगे। वह ब्रह्म-शरीर से सम्बन्धित चक्र है और जो उस चक्र पर पूरा काम करेंगे तो वहाँ से उन्हे जो दिखायी पड़ना शुरू होगा विस्तार अनन्त का, उसको वह तृतीय नेत्र और 'थर्ड आई' कहना शुरू कर देंगे। फिर वहाँ से वह तीसरी आँख उनके पास है जहाँ से वह अनन्त को, काज्मिक को देखना शुरू कर देते हैं।

२२. सातवें निर्वाण शरीर अर्थात् सहस्रार चक्र की सम्भावना—ब्रह्म से, अस्तित्व से—अनस्तित्व में छलांग

लेकिन अभी एक और यात्रा शेष रह गयी है—न होने की, 'नान-बीइंग', 'न अस्ति' की। **अस्तित्व जो है वह आधी बात है। अनस्तित्व भी है।** प्रकाश जो है वह आधी बात है, अंधकार भी है। जीवन जो है आधी बात है, मृत्यु भी है। इसलिए आखिरी अनस्तित्व को, शून्य को भी जानने की जरूरत है। क्योंकि **परम सत्य तभी पता चलेगा जब दोनों जान लिये—अस्ति भी और नास्ति भी।** आस्तिकता भी जानी उसकी सम्पूर्णता में और नास्तिकता भी जानी है उसकी सम्पूर्णता में। 'होना' भी जाना उसकी सम्पूर्णता में और 'न होना' भी जाना उसकी सम्पूर्णता में, तभी हम पूरे को जान पाये अन्यथा यह भी अधूरा है। **ब्रह्मज्ञान में एक अधूरापन है कि वह 'न-होने' को नहीं जान पाया है।** इसलिए ब्रह्मज्ञानी 'न-होने' को इन्कार ही कर देता है। वह कहता है वह माया है, वह है ही नहीं। वह कहता है, 'होना' सत्य है, न होना झूठ है, मिथ्या है, वह है ही नहीं, उसको जानने का सवाल कहाँ है।

निर्वाण-काया का मतलब है, शून्य-काया, जहाँ हम 'होने' से 'न-होने' में छलांग लगा जाते हैं, क्योंकि ब्रह्म शरीर में और जानने को शेष रह गया है। उसे भी जान लेना जरूरी है कि 'न-होना' क्या है, मिट जाना क्या है। इसलिए सातवाँ शरीर जो है, वह एक अर्थ में महामृत्यु है। और निर्वाण का, जैसा मैंने कल अर्थ कहा, वह दिये का बुझ जाना है। वह जो हमारा होना था, वह जो हमारा 'मैं' था, मिट गया, वह जो हमारी अस्मिता थी, मिट गयी। लेकिन अब हम 'सर्व' के साथ एक होकर फिर हो गये हैं। अब हम ब्रह्म हो गये हैं। अब इसे भी छोड़ देना पड़ेगा और इतनी आखिरी **छलांग की तैयारी** है, वह 'जो है' उसे तो जान ही लेना है, 'जो नहीं है', उसे भी जान लेना है।

२३. सब कुछ है सात शरीर व सात चक्रों में—बाधाएँ भी, साधनाएँ भी

और ये सात शरीर और सात चक्र हैं हमारे और इन सात चक्रों के भीतर ही हमारी सारी बाधाएँ और साधन हैं। कहीं किसी बाहरी रास्ते पर कोई बाधा नहीं है। इसलिए किसी से पूछने जाने का उतना सवाल नहीं है। और अगर किसी से पूछने भी गये हो और किसी के पास समझने भी गये हो तो माँगने मत जाना।

माँगना और बात है, समझना और बात है। पूछना और बात है। खोज अपनी जारी रखना और जो समझ के आये हो उसको भी अपनी खोज ही बनाना, उसको अपना विश्वास मत बना लेना नहीं तो वह माँगना हो जायेगा।

२४. समझने निकलो, खोजने निकलो—माँगने नहीं

मुझसे एक बात तुमने की, मैंने तुम्हें कुछ कहा। अगर तुम माँगने आये थे तो तुमको जो मैंने कहा तुम इसे अपनी थैली में बन्द कर के सम्हाल कर रख लोगे, इसको सम्पत्ति बना लोगे, तब तुम साधक नहीं, भिखारी ही रह जाते हो। नहीं, मैंने तुमसे कुछ कहा, यह तुम्हारी खोज बने, इसने तुम्हारी खोज को गतिमान किया, इसने तुम्हारी जिज्ञासा को दौड़ाया और जगाया। इससे तुम्हें और मुश्किल और बेचैनी हुई, इसने तुम्हें और नये सवाल खड़े किये और नयी दिशाएँ खोलीं और तुम नयी खोज पर निकले। तब तुमने मुझसे माँगा नहीं, तब तुमने मुझसे समझा और मुझसे तुमने जो समझा वह अगर तुम्हें स्वयं को समझने में सहयोगी हो गया तब माँगना नहीं है।

तो समझने निकलो, खोजने निकलो। तुम अकेले नहीं खोज रहे हो और बहुत लोग खोज रहे हैं। बहुत लोगों ने खोजा है, बहुत लोगों ने पाया है। **उन सबको क्या हुआ है, क्या नहीं हुआ है, उन सबको समझो। लेकिन उन सबको समझकर तुम अपने को समझना बन्द मत कर देना,** उसको समझकर तुम यह मत समझ लेना कि यह मेरा ज्ञान बन गया। उसका तुम विश्वास मत बनाना, उस पर तुम भरोसा मत करना, **उस सबको तुम प्रश्न बनाना,** उस सबको तुम समस्या बनाना, उसको समाधान मत बनाना, तो फिर तुम्हारी यात्रा जारी रहेगी। और तब फिर माँगना नहीं है, तब वह तुम्हारी खोज है।

और तुम्हारी खोज ही तुम्हें अन्त तक ले जा सकती है और जैसे-जैसे तुम भीतर खोजोगे तो जो मैंने तुमसे बातें कही हैं, प्रत्येक केन्द्र पर दो तत्व तुमको दिखायी पड़ेंगे—एक जो तुम्हें मिला है और एक जो तुम्हें खोजना है। क्रोध तुम्हें मिला है, क्षमा तुम्हें खोजनी है। सेक्स तुम्हें मिला है, ब्रह्मचर्य तुम्हें खोजना है। स्वप्न तुम्हें मिला है, 'विज़न' (अतीन्द्रिय-दर्शन) तुम्हें खोजना है।

चार शरीरों तक तुम्हारी द्वैत की खोज चलेगी, पाँचवें शरीर से तुम्हारी अद्वैत की खोज शुरू होगी। पाँचवें शरीर में तुम्हें जो मिल जाय उससे भिन्न को खोजना जारी रखना। आनन्द मिल जाय तो तुम खोजना कि आनन्द के अतिरिक्त और क्या है? छठवें शरीर पर तुम्हें ब्रह्म मिल जाय तो तुम खोज जारी रखना कि ब्रह्म के अतिरिक्त क्या है। तब एक दिन तुम उस सातवें शरीर पर पहुँचोगे जहाँ 'होना' और 'न-होना', प्रकाश और अन्धकार, जीवन और मृत्यु दोनों एक साथ

ही घटित हो जाते हैं। और तब परम—द अल्टीमेट की उपलब्धि है। और उसके बाबत फिर कोई उपाय नहीं है कहने का।

२५. पांचवें शरीर के बाद रहस्य ही रहस्य है

इसलिए हमारे सब शास्त्र या तो पाँचवें पर पूरे हो जाते हैं या अधिक से अधिक छठवें शरीर पर। जो बहुत वैज्ञानिक बुद्धि के लोग हैं वह पाँचवें के आगे बात नहीं करते, क्योंकि उसके बाद काज्मिक (ब्रह्म) शुरू हो जाता है जिसके विस्तार का कोई अन्त नहीं है। पर जो मिस्टिक (रहस्यमय) किस्म के लोग हैं, जो रहस्यवादी हैं, सूफी हैं, इस तरह के लोग उसकी भी बात करते हैं। हालाँकि उसकी बात करने में उन्हें बड़ी कठिनाई होती है और उन्हें अपने को ही हर बार कण्ट्राडिक्ट (अन्तर्विरोध) करना पड़ता है। और अगर एक सूफी फकीर की या एक मिस्टिक (रहस्यवादी) की पूरी बातें सुनो तो तुम कहोगे कि यह आदमी पागल है, क्योंकि कभी वह कुछ कहता है, और कभी वह कुछ अन्य ही कहता है। वह कहता है ईश्वर है और यह भी कहता है कि ईश्वर नहीं भी है। और कभी यह कहता है कि मैंने उसे देखा और दूसरे ही वाक्य में कहता है कि उसे तुम देख कैसे सकते हो, क्योंकि वह कोई आँखों का विषय नहीं है। वह ऐसे सवाल उठाता है कि तुम्हें हैरानी होगी कि किसी दूसरे से सवाल उठा रहा है कि अपने से उठा रहा है।

छठवें शरीर से मिस्टीसिज्म (रहस्यवाद) शुरू होता है। इसलिए जिस धर्म में मिस्टीसिज्म नहीं है, समझना वह पाँचवें पर रुक गया, लेकिन मिस्टीसिज्म भी आखिरी बात नहीं है। रहस्य आखिरी बात नहीं है, आखिरी बात शून्य है। निहिलिज्म (नकारवाद) है आखिरी बात। तो जो धर्म रहस्य पर रुक गया, समझना वह छठवें पर रुक गया। क्योंकि शून्य के अतिरिक्त आखिरी कोई बात हो नहीं सकती है।

२६. राह के पत्थर को भी सीढ़ी बना लेना

तो पाँचवें शरीर से अद्वैत की खोज शुरू होती है, चौथे शरीर तक द्वैत की खोज खत्म हो जाती है और सब बाधाएँ हमारे भीतर हैं और बाधाएँ बड़ी अच्छी बात है कि तुम्हें उपलब्ध हैं और प्रत्येक बाधा रूपान्तरित होकर तुम्हारा साधन बन जाती है। रास्ते पर एक पत्थर पड़ा है, वह जब तक तुमने समझा नहीं है वह तब तक तुम्हें रोक रहा है, जिस दिन तुमने समझा, उसी दिन तुम्हारी सीढ़ी बन जाता है। पत्थर वही पड़ा रहता है। जब तक तुम नहीं समझे थे, तुम चिल्ला रहे थे पत्थर मुझे रोक रहा है, मैं आगे कैसे जाऊँ। जब तुम इस पत्थर को समझ लिये तुम इस पर चढ़ गये और आगे चले गये और अब तुम इस पत्थर को

धन्यवाद दे रहे हो कि तेरी बड़ी कृपा है, क्योंकि जिस तल पर मैं चल रहा था, चढ़कर तुझ पर मेरा तल बदल गया । अब मैं दूसरे तल पर चल रहा हूँ । तू साधन था, लेकिन मैं समझ रहा था बाधा है । रास्ता रुक गया है, यह पत्थर बीच में आ गया है, अब क्या होगा ! क्रोध बीच में आ गया । अगर क्रोध पर चढ़ गये तो क्षमा को उपलब्ध हो जायेंगे, जो कि बहुत दूसरा तल है । सेक्स बीच में आ गया है, अगर सेक्स पर चढ़ गये तो ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो जायगा, जो कि बिलकुल ही दूसरा तल है और तब सेक्स को धन्यवाद दे सकोगे और तब क्रोध को भी धन्यवाद दे सकोगे ।

२७. जिस वृत्ति से लड़ेंगे उससे ही बंध जाएँगे

प्रत्येक राह का पत्थर बाधा बन सकता है और साधन बन सकता है । वह तुम पर निर्भर है कि उस पत्थर के साथ क्या करते हो । हाँ, भूलकर भी पत्थर से लड़ना मत, नहीं तो सिर फूट सकता है और वह साधन नहीं बनेगा । और अगर कोई पत्थर से लड़ने लगा तो पत्थर रोक लेगा, क्योंकि जहाँ हम लड़ते हैं वहीं हम रुक जाते हैं । क्योंकि जिससे लड़ना है, उसके पास रुकना पड़ता है । जिससे हम लड़ते हैं उससे दूर नहीं जा सकते हैं हम कभी भी । इसलिए अगर कोई सेक्स (यौन, कामवासना) से लड़ने लगा तो वह सेक्स (काम-वासना) के आस-पास ही घूमता रहेगा, उतना ही आस-पास घूमेगा जितना सेक्स में डूबने वाला घूमता है, बल्कि कई बार उससे भी ज्यादा घूमेगा, क्योंकि डूबने वाला ऊब भी जाता है, बाहर भी होता है । लेकिन, सेक्स से लड़ने वाला ऊब भी नहीं पाता, यह आस-पास ही घूमता रहता है ।

अगर तुम क्रोध से लड़े तो तुम क्रोध ही हो जाओगे, तुम्हारा सारा व्यक्तित्व क्रोध से भर जायगा और तुम्हारे रग-रग रेशे-रेशे से क्रोध की ध्वनियाँ निकलने लगेंगी और तुम्हारे चारों तरफ क्रोध की तरंगे प्रवाहित होने लगेंगी । इसलिए ऋषि-मुनियों की जो हम कहानियाँ पढ़ते हैं कि वे महाक्रोधी थे, उसका कारण है कि क्रोध से लड़ने वाले लोग हैं । कोई दुर्वासा है, कोई-कोई है । उनको सिवाय अभिशाप के कुछ सूझता ही नहीं । उनका सारा व्यक्तित्व आग हो गया है । वे पत्थर से लड़ गये हैं, वे मुश्किल में पड़ गये हैं । वे जिससे लड़े हैं वही हो गये हैं ।

तुम ऐसे ऋषि मुनियों की कहानियाँ पढ़ोगे जिन्हें कि स्वर्ग से कोई अप्सरा आकर तत्काल भ्रष्ट कर देती है । आश्चर्य की बात है । यह तभी सम्भव है जब वे सेक्स (काम-वासना) से लड़े हों नहीं तो सम्भव नहीं है, वह इतना लड़े हैं, इतना लड़े है, कि लड़-लड़ कर खुद ही कमजोर हो गये हैं और सेक्स अपनी जगह खड़ा है, वह प्रतीक्षा कर रहा है । वह किसी भी द्वार से फूट पड़ेगा और कम

सम्भावना है कि अप्सरा आयी हो, सम्भावना तो यही होगी कि साधारण स्त्री निकली हो, लेकिन उसको अप्सरा दिखायी पड़ी हो क्योंकि अप्सराओं ने कोई ठेका ले रखा है कि ऋषि-मुनियों को सताने के लिए आती हैं। लेकिन अगर सेक्स को बहुत सप्रेस किया (दबाया) गया तो साधारण स्त्री भी अप्सरा हो जाती है क्योंकि हमारा चित्त प्रोजेक्ट करने लगता है, रात वही सपना देखता है, दिन मे वही विचार करता है, फिर हमारा चित्त पूरा का पूरा उसी से भर जाता है। फिर कोई भी चीज अति मोहक हो जाती है, जो कि नहीं है।

२८. लड़ना नहीं समझना

तो साधक के लिए लड़ने भर से सावधान रहना है और समझने की कोशिश करनी है और समझने की कोशिश से मतलब ही यह है कि तुम्हे जो मिला है प्रकृति से उसको समझना है। उसी मिले हुए के मार्ग से तुम्हे वह भी मिल जायगा जो नहीं मिला है। वह पहला छोर है। अगर तुम उसी से भाग गये तो तुम दूसरे छोर पर कभी न पहुँच पाओगे। अगर सेक्स से ही घबरा कर भाग गये तो ब्रह्म-चर्य तक कैसे पहुँचोगे! सेक्स तो द्वार था जो प्रकृति से मिला था। ब्रह्मचर्य उसी द्वार से खोज है, जो अन्त में तुम खोज पाओगे। ऐसा अगर निकले तो माँगने जाने की कोई जरूरत नही है। समझने जाने की तो बहुत जरूरत है। पूरी जिन्दगी समझने के लिए है, किसी से भी समझो, सब तरफ से समझो और अन्ततः अपने भीतर समझो।

२९. व्यक्तियों को तौलने से बचना

प्रश्नकर्ता : अभी आपने सातवे शरीरो की चर्चा की तो उनमे सातवे या छठवें या पाँचवें—निर्वाण-बाडी, कॉजमिक-बाडी और स्प्रीचुअल बॉडी को क्रमश. उपलब्ध हुए कुछ प्राचीन और अर्वाचीन अर्थात् एंशियेन्ट और माडर्न व्यक्तियो के नाम लेने की कृपा करेंगे?

आचार्यश्री : इस झंझट मे न पड़े तो अच्छा है। इसमे कोई सार नही है। इसका कोई अर्थ नही है। और अगर मैं कहूँ भी तो तुम्हारे पास उसकी जाँच के लिए कोई प्रमाण भी नहीं होगा। और जहाँ तक बने व्यक्तियो को तौलने से बचना अच्छा है। उनसे कोई प्रयोजन ही नही है। उसका कोई अर्थ ही नहीं है। उनको जाने दो।

३०. पाँचवें या छठवें शरीर में मृत्यु के बाद सूक्ष्म देव शरीरों का जीवन

प्रश्नकर्ता : पाँचवे शरीर को या उसके बाद के शरीर को उपलब्ध हुए व्यक्ति को अगले जन्म में भी क्या स्थूल शरीर ग्रहण करना पड़ता है?

आचार्यश्री : पाँचवें या छठवें शरीर वाला व्यक्ति मृत्यु के बाद उच्चतर देव

योनियों में जीवन व्यतीत करता है। वह उसमें जितना चाहे रह सकता है लेकिन निर्वाण की उपलब्धि के लिए उसे मनुष्य योनि में जन्म लेना ही पड़ता है। पांचवें शरीर को उपलब्ध होने के बाद इस शरीर में जन्म नहीं होगा। लेकिन और शरीर हैं। असल में जिनको हम देवता कहते रहे हैं उस तरह के शरीर हैं। वह पांचवें के बाद उस तरह की शरीर उपलब्ध हो सकते हैं। छठवें के बाद तो उस तरह के शरीर भी उपलब्ध न होंगे। जिनको हम गाड्स (देवता) कहते है, ईश्वर कहते रहे है उस तरह के शरीर उपलब्ध होते है। लेकिन शरीर उपलब्ध होते रहेंगे। वह किस तरह है यह बहुत गौड़ बात है। मानवे के बाद ही शरीर उपलब्ध नही होंगे। सातवें के बाद ही अशरीरी स्थिति होगी। उसके पहले सूक्ष्म से सूक्ष्म शरीर उपलब्ध होते रहेंगे।

३१. शक्तिपात जितना हो प्रसाद (ग्रेस) के निकट उतना ही शुद्ध

प्रश्नकर्ता : पिछली चर्चा में आपने कहा था कि आप पसन्द करते हैं कि शक्तिपात जितना ग्रेस के निकट हो सके उतना ही अच्छा है। इसका क्या यह अर्थ न हुआ कि शक्तिपात की पद्धति में क्रमिक सुधार और विकास की सम्भावना है? अर्थात् क्या शक्तिपात की प्रक्रिया में क्वालिटेटिव प्रोग्रेस (गुणात्मक विकास) भी सम्भव है?

आचार्यश्री : बहुत सम्भव है। बहुत सी बाते सम्भव है। असल में शक्तिपात की और प्रसाद (ग्रेस) की जो भिन्नता है वह भिन्नता बड़ी है। मूल रूप से तो प्रसाद ही काम का है। बिना माध्यम के मिले तो शुद्धतम होगा। क्योंकि उसको अशुद्ध करनेवाला बीच मे कोई भी नही होता। जैसे कि मैं तुम्हें अपनी खुली आँखो से देखूं तो जो मै देखूंगा, वह शुद्धतम होगा। फिर मैं एक चश्मा लगा लूं तो जो देखना होगा वह उतना शुद्धतम नही होगा। एक माध्यम बीच मे आ गया। लेकिन फिर इस माध्यम मे भी शुद्ध और अशुद्ध के बहुत रूप हो सकते है। एक रंगीन चश्मा हो सकता है, एक साफ सफेद चश्मा हो सकता है और इस काँच की भी क्वालिटी में बहुत फर्क हो सकता है।

तो जब हम माध्यम से लेंगे तब कुछ न कुछ अशुद्धि तो आने ही वाली है। वह माध्यम की होगी। इसलिए **शुद्धतम प्रसाद (ग्रेस) तो सीधा ही मिलता है, जब कोई माध्यम नहीं होता है।** अब समझ लो कि अगर हम बिना आख के भी देख सकें तो और भी शुद्धतम होगा। क्योंकि आँख भी माध्यम है। अगर आंख के बिना भी देख सकें तो और भी शुद्धतम होगा। क्योंकि फिर आँख भी उसमें बाधा नही डाल पायेगी। अब किसी की आँख में पीलिया है और किसी की आँख कमजोर है और किसी की कुछ है, तो कठिनाइयां है। लेकिन अब जिसकी आंख में कमजोरी है उसको एक चश्मे का माध्यम सहयोगी हो सकता है। अर्थात्

हो सकता है कि खाली आँख से वह जितना शुद्ध न देख पाये उतना एक चश्मा लगाने से शुद्ध देख ले। ऐसे तो चश्मा एक और माध्यम हो गया है। दो माध्यम हो गये। लेकिन पिछले माध्यम की कमी यह माध्यम पूरा कर सकता है।

ठीक ऐसी ही बात है। जिस व्यक्ति के माध्यम से प्रसाद किसी दूसरे तक पहुँचेगा उस व्यक्ति का माध्यम कुछ तो अशुद्धि करेगा ही। लेकिन अगर यह अशुद्धि ऐसी हो कि उस दूसरे व्यक्ति की आँख की अशुद्धि के प्रतिकूल पड़ती हो और दोनों कट जाते हों तो प्रसाद के निकटतम पहुँच जायेगी बात। लेकिन यह एक-एक स्थिति में अलग-अलग तय करना होगा।

मेरी जो समझ है वह यह है कि इसलिए सीधा प्रसाद खोजा जाय। व्यक्ति के माध्यम की फिक्र ही छोड़ दी जाय। हाँ, कभी-कभी अगर जीवन धारा के लिए जरूरत पड़ेगी तो व्यक्ति के माध्यम से भी झलक दिखला देती है। साधक को उसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। लेने नहीं जाना, क्योंकि लेने जाओगे तो कल जैसा मैंने तुमको कहा, देने वाला कोई मिल जायगा। और देने वाला जितना सघन है उतनी ही अशुद्ध हो जायेगी बात। तो देने वाला ऐसा चाहिए जिसे देने का पता ही न चलता हो। तब शक्तिपात शुद्ध हो सकता है। फिर भी वह प्रसाद नहीं बन जायगा। फिर भी एक दिन वह चाहिए जो बिलकुल हमें इमीजिएट सीधे मिलता हो, मीडियम (माध्यम) के बिना मिलता हो। परमात्मा और हमारे बीच कोई भी न हो, शक्ति और हमारे बीच कोई भी न हो। ध्यान में वही रहे, नजर में वही रहे, खोज उसकी ही रहे। बीच के मार्ग पर बहुत सी घटनाएँ घट सकती हैं लेकिन उन पर किसी पर रुकना नहीं है, इतना ही काफी है। और फर्क तो पड़ेंगे। क्वालिटी, गुण के भी फर्क पड़ेंगे। क्वांटिटी (परिमाण, मात्रा) के भी फर्क पड़ेंगे। वह कई कारणों से पड़ेंगे। वह बहुत विस्तार की बात होगी।

३२. सातवें शरीर को उपलब्ध व्यक्ति शक्तिपात का शुद्धतम माध्यम

असल में पाँचवाँ शरीर जिसको मिल गया है उसके माध्यम से किसी को भी शक्तिपात घटित हो सकता है। लेकिन पाँचवें शरीर वाले का जो शक्तिपात है वह उतना शुद्ध नहीं होगा जितना छठवें वाले का होगा। क्योंकि उसकी अस्मिता कायम है। अहंकार तो मिट गया अस्मिता कायम है, 'मैं' तो मिट गया, 'हूँ' कायम है। वह 'हूँ' थोड़ा सा रस लेगा। छठवें शरीर वाले से भी शक्तिपात हो जायगा। वहाँ 'हूँ' भी नहीं है, वहाँ ब्रह्म ही है। वह और शुद्ध हो जायगा। लेकिन अभी भी भ्रम है। अभी 'नहीं है' कि स्थिति नहीं आ गयी है, 'है' कि स्थिति है। यह 'है' भी बहुत बारीक पर्दा है—बहुत नाजुक और पारदर्शी (ट्रांसपेरेंट), लेकिन है। यह पर्दा है। तो छठवें शरीर वाले से भी शक्तिपात

हो जायगा। पाँचवें से तो श्रेष्ठ होगा। प्रसाद के बिलकुल करीब पहुँच जायगा।

कितने ही करीब हो लेकिन, जरा सी भी दूरी, दूरी है। और जितनी कीमती चीजें हों उतनी छोटी सी दूरी बड़ी हो जाती है। इतनी बहुमूल्य है दुनिया-प्रसाद की कि वहाँ इतना-सा पर्दा कि उसको पता है कि 'है' वह बाधा बनेगी। *सातवें शरीर को उपलब्ध व्यक्ति से शक्तिपात शुद्धतम हो जायगा। ग्रेस फिर भी* नही होगा। **शक्तिपात की शुद्धतम स्थिति सातवें शरीर पर पहुँच जायेगी—** शुद्धतम। शक्तिपात जहाँ तक पहुँच सकता है वहाँ तक पहुँच जायगा। सातवें शरीर को उपलब्ध व्यक्ति की तरफ से कोई परदा नहीं है। उसकी तरफ से, तो अब वह शून्य के साथ एक हो गया है। लेकिन तुम्हारी तरफ से पर्दा है। तुम तो उसको एक व्यक्ति ही मानकर जिओगे। अब तुम्हारा पर्दा आखिरी बाधा डालेगा। अब उसकी तरफ से कोई पर्दा नहीं है। लेकिन तुम्हारे लिए तो वह व्यक्ति है।

३३. साधक का परम-शून्य माध्यम के प्रति व्यक्ति-भाव भी अशुद्धि का कारण

समझो कि मैं अगर सातवी स्थिति को उपलब्ध हो जाऊँ तो यह मेरी बात है कि मैं जानूँ कि मैं शून्य हूँ लेकिन तुम ? तुम तो मुझे जानोगे कि एक व्यक्ति हूँ **और तुम्हारा यह ख्याल कि मैं एक व्यक्ति हूँ, आखिरी पर्दा हो जायगा।** यह पर्दा तो तुम्हारा तभी गिरेगा जब निर्व्यक्ति से तुम पर घटना घटे। यानी तुम कहीं खोज कर पकड़ ही न पाओ कि किससे घटी, कैसे घटी। कोई सोर्स (स्रोत) न मिले तुम्हें, तभी तुम्हारा यह ख्याल गिर पायगा। घटना सोर्सलेस (स्रोत-रहित) हो। अगर सूरज की किरण आ रही है तो तुम सूरज को पकड़ लोगे कि वह व्यक्ति है। लेकिन ऐसी किरण आये जो कही से न आ रही है और आ गयी, और ऐसी वर्षा हो जो किसी बादल से न हुई हो और हो गयी, तभी तुम्हारे मन से वह आखिरी पर्दा जो दूसरे के व्यक्ति होने से पैदा होता है, गिरेगा।

तो बारीक से बारीक फासले होते चले जायेंगे। अन्तिम घटना तो प्रसाद की तभी घटेगी जब कोई भी बीच मे नही है। **तुम्हारा यह ख्याल भी कि कोई बीच में है, काफी बाधा है।** दो हैं, तब तक तो बहुत ज्यादा बाधा है। तुम भी हो और दूसरा भी है। **दूसरा मिट गया, लेकिन तुम हो। और तुम्हारे होने की वजह से दूसरा भी तुम्हें मालूम पड़ रहा है।** सोर्सलेस (स्रोत रहित) प्रसाद जब घटित होगा, ऐसी ग्रेस (प्रसाद) जब उतरेगी जिसका कहीं और कोई उद्गम नहीं है, उस दिन वह शुद्धतम होगी। **उस उद्गम-शून्य (प्रसाद) की वजह से तुम्हारा व्यक्ति उसमें बह जायगा, बच नहीं सकेगा।** अगर दूसरा व्यक्ति

मौजूद है तो वह तुम्हारे व्यक्ति को बचाने का काम करता है। तुम्हारे लिए ही सिर्फ मौजूद है तो भी काम कर रहा है।

३४. 'मैं' और 'तू' की उपस्थिति मात्र से तनाव का जन्म

अगर तुम समुद्र के किनारे चले जाते हो तो तुम्हें ज्यादा शान्ति मिलती है। जंगल में चले जाते हो तो ज्यादा शान्ति मिलती है। क्योंकि सामने दूसरा व्यक्ति (The Other) मौजूद नहीं है। इसलिए तुम्हारा खुद का भी 'मैं' जो है वह क्षीण हो जाता है। जब तक दूसरा मौजूद है तब तक तुम्हारा 'मैं' भी मजबूत होता है। एक कमरे में यदि दो आदमी बैठे हैं तो उस कमरे मे तनाव की धाराएँ बहती रहती हैं। कुछ नहीं कर रहे हैं, लड़ नही रहे, झगड नहीं रहे, चुपचाप बैठे हैं मगर उस कमरे में तनाव की धाराएँ बहती रहेंगी। क्योंकि दो 'मैं' मौजूद हैं और पूरे वक्त कार्य चल रहा है। सुरक्षा भी चल रही है, आक्रमण भी चल रहा है। चुप भी चलता है। कोई ऐसा नहीं है कि झगडने की सीधी जरूरत है। कुछ कहने की जरूरत है। दो की मौजूदगी से कमरा तनावयुक्त (टेन्स) है।

३५. दो व्यक्तियों अर्थात् दो अहंकारों की टकराहट

कभी मैं बात करूँगा कि अगर तुम्हें सारा जो तरंगे हमारे व्यक्तित्व से निकलती हैं अगर उनका बोध हो जाय तो उस कमरे में तुम बराबर देख सकते हो कि वह कमरा दो हिस्से में विभाजित हो गया है और प्रत्येक व्यक्ति एक सेन्टर (केन्द्र) बन गया है और दोनो की विद्युत् धाराएँ और तरंगें आपस में दुश्मन की तरह खड़ी हुई हैं। दूसरे की मौजूदगी तुम्हारे 'मैं' को मजबूत करती है। दूसरा चला जाय तो कमरा बदल जाता है। तुम रिलैक्स (विश्रामपूर्ण) हो जाते हो। तुम्हारा 'मैं' जो तैयार था कि कब क्या हो जायगा, वह ढीला हो जाता है। वह तकिये से टिककर आराम करने लगता है। वह श्वास लेता है कि अभी दूसरा मौजूद नहीं है। इसलिए एकान्त का उपयोग है कि तुम्हारा मैं 'शिथिल' हो सके। एक वृक्ष के पास तुम ज्यादा आसानी से खडे हो पाते हो, बजाय एक आदमी के।

इसलिए जिन मुल्कों में बीच आदमी-आदमी के तनाव बहुत गहरे हो जाते हैं वहाँ आदमी कुत्ते और बिल्लियों को भी पालकर उनके साथ जीने लगता है। उनके साथ ज्यादा आसानी है। उनके पास कोई 'मैं' नहीं है। एक कुत्ते के गले में पट्टा बाँधे हैं, मजे से चले जा रहे हैं। ऐसा हम किसी आदमी के गले में पट्टा बाँधकर नही चलते। हालाँकि कोशिश करते हैं—पति-पत्नी के बाँधे हुए है, पत्नी पति के पट्टे बाँधे हुए है, मजे से, और चले जा रहे हैं। लेकिन पट्टे जरा सूक्ष्म हैं दिखाई नहीं पड़ते हैं। लेकिन दूसरा उसमें गड़बड़ करता रहता है. पूरे वक्त

गर्दन हिलाता रहता है कि अलग करो, यह पट्टा नहीं चलेगा। लेकिन एक कुत्ते को बाँधे हुए हैं, वह बिलकुल चला जा रहा है। वह पूँछ हिलाकर हमारे पीछे आ रहा है। तो कुत्ता जितना सुख दे पाता है, उतना आदमी नहीं दे पाता। क्योंकि वह जो आदमी है वह हमारे 'मैं' को फौरन खड़ा कर देता है। और मुश्किल में डाल देता है।

धीरे-धीरे व्यक्तियों से सम्बन्ध तोड़कर आदमी वस्तुओं से सम्बन्ध बनाने लगता है। क्योंकि वस्तुओं के साथ सरलता है। तो वस्तुओं के ढेर बढ़ते जाते हैं। घरों में वस्तुएँ बढ़ती जाती है। आदमी कम होते चले जाते हैं। आदमी घबड़ाहट लाते हैं। वस्तुएँ झंझट नहीं देती हैं। कुर्सी जहाँ रखी है, वहाँ रखी है। मैं बैठा हूँ तो कोई गड़बड़ नहीं करती है। वृक्ष है, नदी है, पहाड़ है इनसे कोई झंझट नहीं आती है। इसलिए हमको बड़ी शान्ति मिलती है इनके पास। जाकर। कारण कुल इतना है कि दूसरे तरफ 'मैं' मजबूती से खड़ा नहीं है। इसलिए हम भी रिलैक्स (शिथिल) हो पाते हैं। हम कहते हैं ठीक है यहाँ कोई 'तू' नहीं है तो 'मेरे' होने की क्या जरूरत है। 'मैं' भी नहीं हूँ। लेकिन जरा-सा भी इशारा दूसरे आदमी का मिल जाय कि वह है तो हमारा 'मैं' तत्काल तत्पर हो जाता है। वह सिक्योरिटी (सुरक्षा) की फिक्र करने लगता है कि पता नहीं क्या हो जाय। इसलिए तैयार होना जरूरी है।

३६. शून्य व्यक्ति के सामने अहंकार की बेचैनी

यह तैयारी आखिरी क्षण तक बनी रहती है। सातवें शरीर वाला व्यक्ति भी तुम्हें मिल जाय तो भी तुम्हारी तैयारी रहेगी। बल्कि कई बार ऐसे व्यक्ति से तुम्हारी तैयारी ज्यादा हो जायेगी। साधारण आदमी से तुम इतने भयभीत नहीं होते क्योंकि वह तुम्हें चोट भी अगर पहुँचा सकता है तो बहुत गहरी नहीं पहुँचा सकता। लेकिन ऐसा व्यक्ति जो पाँचवें शरीर के पार चला गया है वह तुम्हें चोट भी गहरी पहुँचा सकता है। उसी शरीर तक पहुँचा सकता है जहाँ तक वह पहुँच गया है। उससे भय भी तुम्हारा बढ़ जाता है। उससे डर भी तुम्हारा बढ़ जाता है कि पता नहीं क्या हो जाय! उसके भीतर से तुम्हें बहुत ही अज्ञात और अन्जान शक्ति झाँकती मालूम पड़ने लगती है। इसलिए तुम बहुत सँभलकर खड़े हो जाते हो। उसके आसपास तुम्हें Abyss (अन्तराल) दिखायी पड़ने लगती है, अनुभव होने लगता है कि कोई गड्ढा है। उसके भीतर अगर गये तो किसी गड्ढे में न गिर जायें।

इसलिए दुनिया में जीसस, कृष्ण या सुकरात जैसे आदमी जब भी पैदा होते हैं तो हम उनकी हत्या कर देते हैं। उनकी उपस्थिति की वजह से हम में बहुत गड़बड़ पैदा हो जाती है। उनके पास जाना, खतरे के पास जाना है। फिर मर

जाते हैं तब हम उनकी पूजा करते हैं। अब हमारे लिए कोई डर नहीं रहा। अब हम उनकी मूर्ति बनाकर, सोने की, और हाथ पैर जोड़कर खड़े हो जाते हैं और हम कहते हैं कि तुम भगवान हो। लेकिन जब वे लोग होते हैं तब हम ऐसा व्यवहार नहीं करते हैं। तब हम उनसे बहुत डरे रहते हैं और डर अनजान रहता है। क्योंकि तुम्हें पक्का पता नही रहता है कि बात क्या है। लेकिन एक आदमी जितना गहरा होता जाता है उतना ही हमारे लिए एबिस (Abyss) बन जाता है, खाई बन जाता है। और जैसे खाई के नीचे झाँकने से डर लगता है और सिर घूमता है ऐसा ही ऐसे व्यक्ति की आँखों में झाँकने से डर लगने लगेगा और सिर घूमने लगेगा।

मूसा के सम्बन्ध में बड़ी अद्भुत कथा है। हजरत मूसा को जब परमात्मा का दर्शन हुआ तो इसके बाद फिर उन्होंने कभी वह अपना मुँह नहीं उघाड़ा। वह एक घूँघट डाले रखते थे। वह फिर घूँघट डालकर ही जिये। क्योंकि उनके चेहरे में झाँकना खतरनाक हो गया था। जो आदमी झाँके वह भाग खड़ा होगा, फिर वहाँ रुकेगा नहीं। उसमें से एबिस (खड्ड) दिखायी पड़ने लगेंगे। उनकी आँखों में अनन्त खड्ड हो गया था। तो मूसा लोगों के बीच जाते तो चेहरे पर एक घूँघट डाले रहते। वह घूँघट डाल कर ही बात करते फिरे। क्योंकि लोग उनसे घबराने लगे और डरने लगे। ऐसा लगे कि कोई चीज चुम्बक की तरह खींचती है किसी खड्ड में और पता नहीं कहाँ ले जायेगी और क्या होगा कुछ पता नहीं।

तो यह जो आखिरी सातवें स्थिति में पहुँचा हुआ आदमी है वह भी है, तुम्हारे लिए। इसलिए तुम उससे अपनी सुरक्षा करोगे और एक पर्दा बना रहेगा। इसलिए शक्तिपात शुद्ध नहीं हो सकती। ऐसे आदमी के पास हो सकती है शुद्ध अगर तुम्हें यह ख्याल मिट जाय कि 'वह' है। लेकिन यह ख्याल तुम्हें तभी मिट सकता है जबकि तुम्हें यह ख्याल मिट जाय कि 'मैं' हूँ। अगर तुम इस हालत में पहुँच जाओ कि तुम्हें ख्याल न रहे कि 'मैं' हूँ तो फिर तुम्हें शुद्धतम शक्तिपात कहीं से भी मिल सकेगा। क्योंकि फिर तो मतलब न रहा उससे किसी व्यक्ति से मिलने का। वह सोर्सलेस (उद्गम-शून्य) हो गयी। वह प्रसाद ही हो गया।

जितनी बड़ी भीड़ में हम है उतना ज्यादा 'मैं' हमारा सख्त और सघन (कन्डेन्सड) हो जाता है। इसलिए भीड़ के बाहर, दूसरे से हटकर अपने 'मैं' को गिराने की सदा कोशिश की गयी है। लेकिन कहीं भी जाओ, अगर बहुत देर तुम एक वृक्ष के पास रहोगे, तुम उस वृक्ष से बातें करने लगोगे और वृक्ष को 'तू' बना लोगे। अगर तुम बहुत देर सागर के पास रह जाओगे, दस पाँच वर्ष तो तुम सागर से बोलने लगोगे और सागर को 'तू' बना लोगे। वह हमारा 'मैं' जो

है आखिरी उपाय करेगा। वह 'तू' पैदा कर लेगा, अगर तुम बाहर भी भाग गये कहीं पर। और वह उनसे भी राग का सम्बन्ध बना लेगा और उनको भी ऐसे देखने लगेगा जैसे कि वे व्यक्ति ही हैं।

३७. भक्त और भगवान् के द्वैत में अहंकार की सुरक्षा

अगर कोई बिलकुल ही आखिरी स्थिति में पहुँच जाता है तो फिर वह ईश्वर को 'तू' बनाकर खड़ा कर लेता है। ताकि अपने 'मैं' को बचा सके और भक्त निरन्तर कहता रहता है कि हम परमात्मा के साथ एक कैसे हो सकते हैं! वह वह है, हम, हम हैं। कहाँ हम उसके चरणों में और कहाँ वह भगवान है। वह कुछ और नहीं कह रहा है। वह यह कह रहा है कि उससे एक होना है तो इधर 'मैं' खोना पड़ेगा। तो उसे वह दूर बनाकर रखता है कि वह 'तू' है। और बातें वह (Rationalize) तर्कयुक्त करने लगता है। वह कहता है हम उसके साथ एक कैसे हो सकते हैं क्योंकि वह महान् है, वह परम है। हम क्षुद्र हैं, हम पतित हैं। हम कहाँ एक हो सकते हैं! लेकिन वह 'तू' को बचाता है ताकि इधर 'मैं' उसका बच जाय। इसलिए भक्त जो है वह चौथे शरीर के ऊपर नहीं जा पाता। वह पाँचवें शरीर तक भी नहीं जाता। वह चौथे शरीर पर अटक जाता है। हाँ, चौथे शरीर की कल्पना की जगह 'विज़न' (अतीन्द्रिय-दर्शन) आ जाता है उसका। चौथे शरीर में जो श्रेष्ठतम सम्भावना है वह खोज लेता है। तो भक्त के जीवन में ऐसी बहुत-सी घटनाएँ होने लगती हैं जो चमत्कारपूर्ण (मिरेकल) हैं। लेकिन भक्त रह जाता है चौथे पर। व्यक्तियों के नाम नहीं ले रहा है इसलिए मैं इस तरह कह रहा हूँ।

३८. भक्त चौथे शरीर में, हठयोगी पाँचवें शरीर में और राजयोगी का छठवें शरीर तक पहुँच पाना

आत्म-साधक, हठ-योगी और बहुत तरह के योग की ही प्रक्रियाओं में लगने वाला आदमी ज्यादा-से-ज्यादा पाँचवें शरीर पर पहुँच पाता है। क्योंकि बहुत गहरे में वह यह कह रहा है कि मुझे आनन्द चाहिए, बहुत गहरे में वह यह कह रहा है कि मुझे मुक्ति चाहिए, बहुत गहरे में वह यह कह रहा है कि मुझे दुख निरोध चाहिए। लेकिन सब चाहिए के पीछे 'मैं' मौजूद है। 'मुझे' मुक्ति चाहिए। 'मैं' से मुक्ति नहीं, 'मैं' की मुक्ति। मुझे मुक्त होना है, मुझे मोक्ष चाहिए। वह 'मैं' उसका सघन खड़ा रह जाता है। वह पाँचवें शरीर तक पहुँच पाता है।

राज योगी छठवें तक पहुँच पाता है। वह कहता है 'मैं' का क्या रक्खा है 'मैं' कुछ भी नहीं है। 'वही' है। 'मैं' नहीं, 'वही' है। ब्रह्म ही सब कुछ है। वह 'मैं' को खोने की तैयारी दिखलाता है। लेकिन अस्मिता को खोने की तैयारी

नही दिखलाता है। वह कहता है रहूँगा 'मैं' ब्रह्म के साथ उसका अंश होकर। उसी के साथ मैं एक हूँ। मैं ब्रह्म ही हूं। मैं तो छोड दूंगा लेकिन जो असली है मेरे भीतर वह उसके साथ एक होकर रहेगा। वह छठवें तक पहुँच पाता है।

सातवें तक बुद्ध जैसा साधक पहुँच पाता है। क्योंकि वह खोने को तैयार है, ब्रह्म को भी खोने को तैयार है। अपने को भी खोने को तैयार है, वह सब खोने को तैयार है। वह यह कहता है कि 'जो है', वही रह जाय। मेरी कोई अपेक्षा नही कि यह बचे, वह बचे। मेरी कोई अपेक्षा ही नही। सब खोने को तैयार हूँ। और **जो सब खोने को तैयार है वह सब पाने का हकदार हो जाता है।** तो निर्वाण-शरीर तो ऐसी हालत में ही मिल सकता है जब शून्य और 'न हो जाने की' भी हमारी तैयारी है। मृत्यु को भी जानने की तैयारी है। जीवन को जानने की तैयारियां तो बहुत है। इसलिए जीवन को जानने वाला छठवें शरीर पर रुक जायगा। मृत्यु को भी जानने की जिसकी तैयारी है वह सातवें को जान पायगा। तुम चाहोगे तो नाम तुम खोज सकोगे। उसमें बहुत कठिनाई नही होगी।

३९. चौथे शरीर की वैज्ञानिक सम्भावनाएं

प्रश्नकर्ता : जब चौथे शरीर में अतीन्द्रिय-दर्शन और सूक्ष्म-दर्शन की क्षमता उपलब्ध हो जाती है और हजारों लोग इस शरीर को उपलब्ध हुए है तो विज्ञान जिन बातों का पता लगा पाया—जैसे चाँद के सम्बन्ध में कुछ, या पृथ्वी के सम्बन्ध में कुछ, या पृथ्वी और सूर्य की गति और परिभ्रमण के सम्बन्ध में कुछ तो यह सारी की सारी बातें ये चौथे शरीर की सूक्ष्म दृष्टि को उपलब्ध लोग क्यों नही बता पाये ?

आचार्यश्री : इसमें तीन चार बातें समझने जैसी है। पहली बात तो समझने जैसी यह है कि **बहुत सी बातें इस चौथे शरीर को उपलब्ध लोगों ने बतायी हैं।** अब जैसे पृथ्वी की जो उम्र चौथे शरीर के लोगों ने बतायी है उसमें और विज्ञान द्वारा बतायी गयी उम्र में थोड़ा-सा ही फासला है। और अभी भी यह नही कहा जा सकता कि विज्ञान जो कह रहा है वह सही है। अभी भी यह नही कहा जा सकता। अभी विज्ञान भी यह दावा नही कर सकता है। फासला बहुत थोड़ा है।

दूसरी बात, पृथ्वी की गोलाई और पृथ्वी की गोलाई के माप के सम्बन्ध में जो चौथे शरीर के लोगों ने खबर दी है उसमें और विज्ञान की खबर में और भी कम फासला है। और यह जो फासला है जरूरी नही कि वह जो चौथे शरीर को उपलब्ध लोगों ने बतायी है वह गलत ही हो। क्योंकि पृथ्वी की गोलाई में निरन्तर अन्तर पड़ता रहा है। आज पृथ्वी सूरज से जितनी दूर है उतनी दूर सदा नही था। और आज पृथ्वी से चांद जितना दूर है उतना सदा नही था। आज जहाँ अफ्रीका है वहाँ पहले नही था। एक दिन अफ्रीका हिन्दुस्तान से जुड़ा

हुआ था। हजार घटनाएँ बदल गयी हैं, रोज बदलती गयी हैं। उन बदलती हुई सारी बातों को अगर ख्याल में रखा जाय तो बड़ी आश्चर्यजनक बात मालूम पड़ेगी कि विज्ञान की बहुत सी खोजें चौथे शरीर के लोगों ने बहुत पहले खबर कर दी हैं।

४०. अतीन्द्रिय अनुभवों की अभिव्यक्ति में भाषागत अड़चनें

यह भी समझने जैसा मामला है कि विज्ञान के और चौथे शरीर तक पहुँचे हुए लोगों की भाषा में बुनियादी फर्क है। इस वजह से बड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि चौथे शरीर को जो उपलब्ध है उसके पास कोई लैंग्वेज (भाषा) नही होती। उसके पास तो व्हिजन (अतीन्द्रिय दर्शन) और पिक्चर (चित्र) और सिम्बल्स (चिह्नों) की लैंग्वेज (भाषा) होती है। उसके पास तो प्रतीक की (भाषा) लैंग्वेज होती है। सपने में कोई भाषा होती भी नहीं। व्हिजन में भी कोई भाषा नहीं होती। अगर हम गौर से समझें तो दिन में हम जो कुछ सोचते हैं अगर रात हमें उसका ही सपना देखना पड़े तो हमें प्रतीक की भाषा चुननी पड़े, प्रतीकें चुननी पड़े। क्योंकि भाषा तो होती नहीं। अगर मैं महत्वाकांक्षी आदमी हूँ और दिनभर आशा करता हूँ कि सबके ऊपर निकल जाऊँ तो जो सपने देखूँगा उसमें पक्षी हो जाऊँगा और आकाश में उड़ जाऊँगा और सबके ऊपर हो जाऊँगा। लेकिन सपने में मैं यह नहीं कह सकता हूँ कि मैं महत्त्वाकांक्षी हूँ। इसलिए सपने की सारी भाषा बदल जायेगी। मैं एक पक्षी बनकर आकाश में उड़ूँगा, सबके ऊपर उड़ूँगा। तो व्हिजन की भी जो भाषा है वह शब्दों की नहीं है पिक्चर्स (चित्रों) की है। और ड्रीम इन्टरप्रिटेशन (स्वप्नों की व्याख्या) फ्रायड, जुंग और एडलर के बाद विकसित हुआ जिससे हम पता लगा पाते हैं कि स्वप्नों का मतलब क्या है। इसी तरह चौथे शरीर के लोगों ने जो कुछ कहा है उनके इण्टरप्रिटेशन, (व्याख्याएँ) अभी भी होने को हैं। वह अभी हो नहीं पायी हैं। अभी तो ड्रीम (स्वप्न) की व्याख्या भी पूरी नहीं हो पा रही है। फिर 'व्हिजन' (अतीन्द्रिय-दर्शन) की व्याख्या तो बहुत दूसरी बात है, यह जानना कि 'व्हिजन' में लोगों ने जो देखा है उसका मतलब क्या है वह क्या कह रहे हैं!

४१. हिन्दुओं के अवतार जैविक-विकास क्रम के प्रतीकात्मक रूप

जैसे उदाहरण के लिए डार्विन ने जब कहा कि आदमी विकसित हुआ है जानवरों से तो उसने एक वैज्ञानिक भाषा में यह बात लिखी। लेकिन हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के अवतारों की अगर हम कहानी पढ़ें तो हमें पता चलेगा कि वह अवतारों की कहानी डार्विन के बहुत पहले की ठीक प्रतीक कहानी है। पहला अवतार आदमी नहीं है। पहला अवतार मछली है। और डार्विन का भी पहला जो

रुप है मनुष्य का, वह मछली है। अब यह सिम्बालिक लैंगवेज (प्रतीकात्मक भाषा) हुई कि हम कहते हैं जो पहला अवतार पैदा हुआ वह मछली था, मत्स्यावतार। लेकिन यह जो भाषा है, यह वैज्ञानिक नहीं है। और कहाँ अवतार और कहाँ मत्स्य। हम इन्कार करते रहे उसको। लेकिन जब डार्विन ने कहा कि मछली जो है जीवन का पहला तत्व है, पृथ्वी पर मछली ही आयी है, इसके बाद ही जीवन की दूसरी बातें आयीं तो हमें वह तर्कयुक्त लगा। लेकिन उसका जो ढंग है, उसकी जो खोज है वह वैज्ञानिक है।

अब जिन्होंने व्हिजन में देखा होगा उन्होंने यह देखा है कि पहला जो भगवान है वह मछली में ही पैदा हुआ है। अब यह व्हिजन जब भाषा बोलेगा तो वह इस तरह की भाषा बोलेगा जो पैरेबल (दृष्टान्त-कथा) की होगी। फिर कछुआ है। अब कछुआ जो है वह जमीन और पानी दोनों का प्राणी है। निश्चित ही मछली के बाद एकदम से कोई प्राणी पृथ्वी पर नहीं आ सकता। जो भी प्राणी आया होगा वह अर्ध जल और अर्ध थल का रहा होगा। तो दूसरा जो विकास हुआ होगा वह कछुए जैसे प्राणी का ही हो सकता है जो जमीन पर भी रहता हो और पानी में भी रहता हो। और फिर धीरे-धीरे कछुओं के कुछ वंशज जमीन पर रहने लगे होंगे और कुछ पानी में रहने लगे होंगे। और तब विभाजन हुआ होगा।

अगर हम हिन्दुओं के चौबीस अवतारों की कहानी पढ़ें तो इतनी हैरानी होगी इस बात को जानकर कि जिसको डार्विन हजार साल बाद पकड़ पाया, ठीक वही विकासक्रम हमने पकड़ लिया था। फिर जब मनुष्य अवतार पैदा हुआ उसके पहले आधा मनुष्य और आधा सिंह का नरसिंह अवतार है। आखिर जानवर भी एकदम से आदमी नहीं बन सकते। जानवरों को भी आदमी बनने में एक बीच की कड़ी पार करनी पड़ी होगी। जबकि कोई आदमी आधा आदमी और आधा जानवर रहा होगा। यह असम्भव है कि छलांग सीधी लग गयी हो कि एक जानवर को एक बच्चा पैदा हो गया हो जो आदमी का हो। जानवर से आदमी के बीच की एक कड़ी खो गयी है। जो नरसिंह की होगी, जिसमें आधा आदमी होगा और आधा जानवर होगा।

४२. पुराणों में छिपी हुई अनेक वैज्ञानिक सम्भावनाएँ

अगर हम ये सारी बातें समझें तो पता चलेगा कि जिसको डार्विन बहुत बाद में विज्ञान की भाषा में कह सका उसे चौथे शरीर को उपलब्ध लोगों ने पुराण की भाषा में बहुत पहले कहा है। लेकिन आज भी, अभी भी पुराण की ठीक-ठीक व्याख्या नहीं हो पाती है। उसकी वजह यह है कि पुराण बिलकुल नासमझ लोगों के हाथ में पड़ गया है। वह वैज्ञानिक के हाथ में नहीं है।

४३. पृथ्वी की आयु की पुराणों में घोषणा

दूसरी कठिनाई यह हो गयी है कि पुराण को खोलने के जो 'कोड' (प्रतीक अर्थ, कुंजी) है वह सब खो गये हैं। वे नहीं हैं हमारे पास। इसलिए बड़ी अड़चन है। अब विज्ञान यह कहने लगा है कि आदमी ज्यादा से ज्यादा चार हजार वर्ष तक पृथ्वी पर और जी सकता है। लेकिन इसकी भविष्यवाणी बहुत से पुराणो में है। कि यह पृथ्वी पाँच हजार वर्ष से ज्यादा नहीं टिक सकती। विज्ञान भिन्न भाषा बोलता है। वह बोलता है कि सूर्य ठण्डा होता जा रहा है। उसकी किरणें क्षीण होती जा रही हैं। उसकी गर्मी की ऊर्जा बिखरती जा रही है। वह चार हजार वर्ष में ठण्डा हो जायगा। उसके ठण्डा होते ही पृथ्वी पर जीवन समाप्त हो जायगा। पुराण और तरह की भाषा बोलता है। और अगर पुराण कहे पाँच हजार वर्ष तो अभी भी यह पक्का नहीं है कि विज्ञान जो कहता है वह बिलकुल ठीक ही कह रहा है। पाँच हजार भी हो सकते हैं और मेरा मानना है कि पाँच हजार ही होंगे। क्योंकि विज्ञान की गणित में भूलचूक हो सकती है। विजन (अतीन्द्रिय दर्शन) मे भूलचूक नहीं होती। और इसलिए विज्ञान रोज सुधरता है। कल कुछ कहता है, परसों कुछ कहता है। रोज हमें बदलना पड़ता है। न्यूटन कुछ कहता है, आइन्स्टीन कुछ कहता है।

हर पाँच वर्ष में विज्ञान को अपनी धारणा बदलनी पड़ती है। क्योंकि उसको पता लगता है कि और भी ज्यादा ठीक यह होगा। और बहुत मुश्किल है यह बात तय करनी कि अन्तिम जो हम तय करेंगे वह चौथे शरीर में देखे गये लोगो से बहुत भिन्न होगा। और अभी भी जो हम जानते हैं उस जानने से अगर मेल नहीं खाये तो बहुत जल्दी निर्णय लेने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जिन्दगी इतनी गहरी है कि जल्दी निर्णय सिर्फ अवैज्ञानिक चित्त ही ले सकता है। अगर हम वैज्ञानिकों के ही सारे सत्यों को देखें तो हम पायेंगे कि उनमें से सौ साल में सब विज्ञान के सत्य पुराण कथाएँ हो जाते हैं। उनको फिर कोई मानने को तैयार नहीं रह जाता। क्योंकि सौ साल में और बातें खोज में आ जाती हैं।

अब जैसे पुराण के जो सत्य थे उनके कोड (Code) खो गये है। उनको खोलने की जो कुंजी है वह खो गयी है। उदाहरण के लिए समझ लें कि कल तीसरा महायुद्ध हो जाय और तीसरा महायुद्ध अगर होगा तो उसका पहला परिणाम यह होगा कि जितना शिक्षित, सुसंस्कृत जगत है वह मर जायगा। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अशिक्षित और असंस्कृत जगत बच जायगा। कोई आदिवासी, कोई कोल, कोई भील जंगल-पहाड़ पर बच जायगा। बम्बई में नहीं बचेंगे आप, न्यूयार्क में नहीं बच सकेंगे। जब भी कोई महायुद्ध होता है तो जो उस समाज का श्रेष्ठतम वर्ग है वह सबसे पहले मर जाता है। क्योंकि चोट उस पर होती

है। बस्तर के रियासत का एक कोल और भील बच जायगा। वह अपने बच्चों से कह सकेगा कि आकाश मे हवाई जहाज उड़ते थे लेकिन बता नहीं सकेगा कि कैसे उड़ते थे। उसने उड़ते देखे थे। वह झूठ नहीं बोल रहा है। लेकिन उसके पास कोई 'कोड' नहीं है, क्योंकि जिनके पास 'कोड' था वह बम्बई में थे वह मर गये हैं। और बच्चे एकाध दो पीढ़ी तक तो भरोसा करेंगे फिर उसके बाद बच्चे कहेंगे आपने देखा है ? तो उनके बाप कहेंगे नही, हमने सुना है। ऐसा हमारे पिता कहते थे और उनके पिता से उन्होंने सुना था कि आकाश में हवाई जहाज उड़ते थे। फिर युद्ध हुआ और सब खत्म हो गया। बच्चे धीरे-धीरे कहगे कि कहाँ है वह हवाई जहाज, कहाँ हैं उनके निशान, कहाँ हैं वे चीजें ? दो हजार साल बाद वे बच्चे कहेंगे सब कपोल-कल्पना है। कभी कोई नहीं उड़ा।

४४. महाभारत युद्ध तक विकसित श्रेष्ठ विज्ञान नष्ट हो गया

ठीक ऐसी घटनाएँ घट गयी हैं। **महाभारत ने इस देश के पास साइकिक माइण्ड (वैज्ञानिक बुद्धि) से जो जो उपलब्ध ज्ञान था वह सब नष्ट कर दिया। सिर्फ कहानी रह गयी।** अब हमें शक आता है कि राम हवाई जहाज पर बैठकर लंका से आये हों। यह शक की बात है। क्योंकि एक साइकिल भी तो नही छूट गयी उस जमाने की, हवाई जहाज तो बहुत दूर की बात है। और किसी ग्रन्थ में कोई सूत्र भी तो नही छूट गया। असल मे **महाभारत के बाद उसके पहले का समस्त ज्ञान नष्ट हो गया।** स्मृति के द्वारा जो याद रखा जा सका वह रखा गया। इसलिए पुराने ग्रन्थ का नाम स्मृति है, श्रुति है। वह सुनी हुई और स्मरण रखी गयी बात है। वह देखी हुई बात नही है। किसी ने किसी को कही थी, किसी ने किसी को कही थी, किसी ने किसी को कही थी। वह सब हमने बचाकर स्मृति में रख लिया है कि ऐसा हुआ था। लेकिन अब हम कुछ भी दावे से नही कह सकते कि ऐसा हुआ था।

और ध्यान रहे दुनिया की जो बुद्धिमत्ता है वह दस पच्चीस लोगों के पास होती है। अगर एक आइन्स्टीन मर जाय तो रिलेटिविटी की थियरी (सापेक्षता का सिद्धान्त) बताने वाला दूसरा आदमी खोजना मुश्किल हो जाता है। आइन्स्टीन खुद कहता था अपनी जिन्दगी मे कि दस बारह आदमी ही हैं केवल पूरी पृथ्वी पर जो उसकी बात समझ सकते हैं। अगर ये बारह आदमी मर जायें तो हमारे पास किताब तो होगी जिसमें लिखा है कि रिलेटिविटी की एक थियरी होती है लेकिन एक आदमी समझने वाला नहीं होगा। तो महाभारत ने श्रेष्ठतम व्यक्तियों को नष्ट कर दिया। उसके बाद जो बातें रह गयीं वह कहानी ही रह गयी। लेकिन अब प्रमाण खोजे जा रहे हैं और अब खोजा जा सकता है। लेकिन हम तो अभागे हैं, क्योंकि हम तो कुछ भी नहीं खोज सकते हैं।

४५. विराट पिरामिडों के निर्माण में मनस-शक्ति साइकिक फोर्स का उपयोग

ऐसी जगह खोजी गयी है जो इस बात का सबूत देती है कि कम-से-कम तीन, या चार या पाँच हजार वर्ष पुरानी है। और किसी वक्त उन्होंने वायुयान को उतारने के लिए एयरपोर्ट (विमान स्थल) का काम किया है। उतने बड़े स्थान को बनाने की और कोई जरूरत न थी। ऐसी चीजें खोज ली गयी हैं जो कि बहुत बड़ी यान्त्रिक व्यवस्था के बिना नहीं बन सकती थीं। जैसे पिरामिड पर चढ़ाये गये पत्थर हैं। पिरामिड पर चढ़ाये गये पत्थर आज भी हमारे बड़े-से-बड़े क्रेन की सामर्थ्य के बाहर पड़ते हैं। लेकिन ये पत्थर चढ़ाये गये हैं यह तो साफ है। और ये पत्थर आदमियों द्वारा चढ़ाये गये हैं। इन आदमियों के पास या तो बड़ी मशीनें रही हों और या फिर मैं कहता हूँ कि चौथे शरीर की कोई शक्ति रही हो। उदाहरण के लिए एक बात आपसे कहता हूँ। उसको आप कभी प्रयोग कर देखें। एक आदमी को आप लिटा लें और चार आदमी चारों तरफ खड़े हो जायें। दो आदमी उसके पैर के घुटने के नीचे उँगलियाँ लगायें दोनों तरफ। और दो आदमी उसके दोनों कन्धे के नीचे उँगलियाँ लगायें। एक-एक उँगली ही लगायें और चारों संकल्प करें कि हम इसे एक-एक उँगली से उठा लेंगे और चारों जोर से श्वास लें पाँच मिनट तक। इसके बाद श्वास रोक लें और उठा लें। उस एक-एक उँगली से आदमी उठ जायगा। तो पिरामिड पर जो पत्थर चढ़ाये गये हैं वे या तो क्रेन से चढ़ाये गये हैं या फिर साइकिक फोर्स (मनस-शक्ति) से चढ़ाये गये हैं कि चार आदमियों ने बड़े पत्थर को एक-एक उँगली से उठा दिया। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। लेकिन वह पत्थर चढ़े हैं और सामने हैं और उनको इन्कार नहीं किया जा सकता कि वे पत्थर नहीं चढ़े हुए हैं।

४६. चौथे शरीर के लोगों द्वारा जीवन के अज्ञात, अदृश्य रहस्यों की खोज

दूसरी बात जो जानने की है वह यह है कि साइकिक फोर्स (मनस-शक्ति) की इन्फिनिट डाइमेन्शन्स (अनन्त आयाम) हैं। एक आदमी जिसको चौथा शरीर उपलब्ध हुआ है वह चाँद के सम्बन्ध में ही जाने, यह जरूरी नहीं है। वह चाँद के सम्बन्ध में जानना ही न चाहे, जानने की उसे कोई जरूरत भी नहीं है। वह जो चौथे शरीर को विकसित करने वाले लोग थे वह कुछ और चीजें जानना चाहते थे। उनकी उत्सुकता किन्हीं और चीजों में थी। और ज्यादा कीमती चीजों में थी। उन्होंने वह जानी। वे जानना चाहते थे कि प्रेतात्मा है या नहीं। वह उन्होंने जाना। और अब विज्ञान खबर दे रहा है कि प्रेतात्मा है। वे जानना

चाहते थे कि लोग मरने के बाद कहाँ जाते हैं, कैसे जाते हैं। क्योंकि चौथे शरीर में जो पहुँच गया है उसकी पदार्थ के प्रति उत्सुकता कम हो जाती है। उसकी चिन्ता बहुत कम रह जाती है कि जमीन की गोलाई कितनी है। जैसे एक बड़ा आदमी है। छोटे बच्चे उससे कहेंगे कि हम तुम्हें ज्ञानी नहीं मानते, क्योंकि तुम कभी नहीं बताते कि गुड्डा कैसे बनता है। हम तुम्हें ज्ञानी कैसे मानें। एक लड़का हमारे पड़ोस में है। वह बताता है कि गुड्डा कैसे बनता है। वह ज्यादा ज्ञानी है। उनका कहना ठीक है। उनकी उत्सुकता का भेद है। एक बड़े आदमी को कोई उत्सुकता नहीं है कि गुड्डे के भीतर क्या है। लेकिन छोटे बच्चे को है।

चौथे शरीर में पहुँचे हुए आदमी की इन्क्वायरी (खोज) बदल जाती है। वह कुछ और जानना चाहता है। वह जानना चाहता है कि मरने के बाद आदमी का यात्रापथ क्या है? वह कहाँ जाता है? वह किस यात्रापथ से यात्रा करता है? उसकी यात्रा के नियम क्या हैं? वह कैसे जन्मता है, वह कहाँ जन्मता है, उसके जन्म को क्या सुनियोजित किया जा सकता है? उसकी उत्सुकता इसमें नहीं थी कि चाँद पर आदमी पहुँचे। क्योंकि यह बेमानी है। इसका कोई मतलब नहीं है। उसकी उत्सुकता इसमें थी कि आदमी मुक्ति में कैसे पहुँचे और वह बहुत मीनिंगफुल (अर्थपूर्ण) है। उनकी फिक्र थी कि जब एक बच्चा गर्भ में आता है तो आत्मा कैसे प्रवेश करती है? क्या हम गर्भ चुनने में उसके लिए सहयोगी हो सकते हैं? पुन. गर्भ में उतरने में कितनी देर लगती है?

४७. तिब्बत में मृत आत्माओं पर प्रयोग

तिब्बत में एक किताब है। "तिब्बतन बुक आफ डेड।" तिब्बत का जो भी चौथे शरीर को उपलब्ध आदमी था उसने सारी मेहनत इस बात पर की है कि मरने के बाद हम किसी आदमी को क्या सहायता पहुँचा सकते हैं। आप मर गये हैं। मैं आपको प्रेम करता हूँ। लेकिन मरने के बाद मैं आपको कोई सहायता नहीं पहुँचा सकता। लेकिन तिब्बत में पूरी व्यवस्था है कि मरने के बाद सात सप्ताह तक उस आदमी को कैसे सहायता पहुँचायी जाय और उसको कैसे गाइड (मार्ग-दर्शन) किया जाय और उसको कैसे विशेष जन्म लेने के लिए उत्प्रेरित किया जाय और उसे कैसे विशेष गर्भ में प्रवेश करवा दिया जाय। अभी विज्ञान को वक्त लगेगा कि वह इन सब बातों का पता लगाये। लेकिन यह पता लग जायगा। इसमें अड़चन नहीं है। और फिर उन्होंने इस सबकी वेलीडिटी (Validity), प्रामाणिकता की जाँच के भी उपाय भी खोजे थे।

४८. तिब्बत में प्रधान लामा के चुनाव की विधि

तिब्बत में जब प्रधान लामा मरता है वह बता कर जाता है कि मैं किस घर

में अगला जन्म लूँगा। और तुम मुझे कैसे पहचान सकोगे। उसके सिम्बल्स (प्रतीक) दे जाता है। फिर उसकी खोज होती है पूरे मुल्क में कि वह बच्चा अब कहाँ है। और जो बच्चा उस सिम्बल्स (प्रतीक) का राज बता देता है उसे समझ लिया जाता है कि वह पुराना लामा है। वह राज सिवाय उस आदमी के कोई बता नहीं सकता जो बता गया था। तो अभी वर्तमान के जो दलाई लामा है ऐसे ही खोजे गये हैं। पिछला लामा प्रतीक कह कर गया था। इस बच्चे की खोज बहुत दिन करनी पड़ी। लेकिन आखिर वह बच्चा मिल गया। क्योंकि एक खास सूत्र था जो कि हर गाँव में जाकर चिल्लाया जायगा और जो बच्चा उसका अर्थ बता दे वह समझ लिया जायगा कि पुराने लामे की आत्मा उसमें प्रवेश कर गयी है। क्योंकि उसका अर्थ तो और किसी को पता ही नहीं था। वह तो बहुत सीक्रेट मामला था।

तो वह चौथे शरीर के आदमी की जिज्ञासा (क्यूरियोसिटी) ही अलग थी। **और अनन्त है यह जगत। अनन्त हैं इसके राज और अनन्त हैं इसके रहस्य।** अभी जितनी साइंस (विज्ञान) को हमने जन्म दिया है, भविष्य में यही साइंस रहेंगी, यह मत सोचिये। और नयी हजार साइंस पैदा हो जायेंगी। क्योंकि और हजार आयाम हैं जानने के। और जब वह नयी साइंस पैदा होगी तब लोग कहेंगे कि पुराने लोग वैज्ञानिक न रहे। वह यह क्यों नहीं बता पाये ? नहीं, हम कहेंगे पुराने लोग भी वैज्ञानिक थे। उनकी जिज्ञासा और थी। जिज्ञासा का इतना फर्क है कि जिसका कोई हिसाब नहीं।

४९. वनस्पतियों से बात करने वाला वैद्य लुकमान

अब जैसे कि हम कहेंगे कि आज बीमारियों का इलाज हो गया है। पुराने लोगों ने इन बीमारियों का इलाज क्यों नहीं बता दिया ! लेकिन आप हैरान होंगे जानकर कि आयुर्वेद में या यूनानी में इतनी जड़ी-बूटियों का हिसाब है और इतनी हैरानी का है कि जिनके पास कोई प्रयोगशालाएँ न थी वे कैसे जान सके कि यह जड़ी बूटी फलाँ बीमारी पर इस मात्रा में काम करेगी। प्राचीन समय में कोई प्रयोगशाला तो नहीं थी इसलिए पूरी सम्भावना है कि केवल चौथे शरीर से ही काम हो सकता था।

लुकमान के बाबत कहानी है कि वह एक-एक पौधे के पास जाकर पूछेगा कि तू किस काम में आ सकता है यह बता दे। अब यह कहानी बिलकुल फिजूल हो गयी आज। आज किसी पौधे से क्या मतलब है इस बात का। लेकिन अभी पचास साल पहले तक हम नहीं मानते थे कि पौधे में प्राण है। इधर पचास साल में विज्ञान ने स्वीकार किया कि पौधे में भी प्राण है। इधर तीस साल पहले तक हम नहीं मानते थे कि पौधा श्वास लेता है। इधर तीस साल में हमने स्वीकार

किया है कि पौधा श्वास लेता है। पन्द्रह साल पहले तक हम नही मानते थे कि पौधा अनुभव करता है। लेकिन पिछले पन्द्रह साल में हमने स्वीकार किया है कि पौधा अनुभूति भी करता है। जब क्रोध से आप पौधे के पास जाते हैं तब पौधे की मनोदशा बदल जाती है और जब आप प्रेम से जाते हैं तो मनोदशा बदल जाती है। **कोई आश्चर्य नहीं कि आनेवाले पचास साल में हम कहें कि पौधे से बोला जा सकता है।** यह तो क्रमिक विकास है। और लुकमान सही सिद्ध हो कि उसने पूछा हो पौधों से कि किस काम में आओगे यह बता दो। लेकिन यह ऐसी बात नहीं कि हम सामने बोल सकें। **यह चौथे शरीर पर सम्भव है कि पौधे को आत्मसात् किया जा सके।** उसी से पूछ लिया जाय। और मैं भी मानता हूँ, क्योंकि कोई लेबोरेटरी (प्रयोगशाला) इतनी बड़ी नहीं मालूम पड़ती कि लुकमान लाख-लाख जड़ी-बूटियों का पता बता सके। इसका कोई उपाय नहीं था। क्योंकि एक-एक जड़ी-बूटी की खोज करने में एक-एक लुकमान की जिन्दगी लग जाती है। वह लाखों जड़ी बूटियों के बाबत कह रहा है कि इस काम में आयेंगी और वह अब विज्ञान उसकी पुष्टि करता है। वे अब भी आ रही हैं उन कामों में। **अतीत की सारी की सारी खोजबीन चौथे शरीर में उपलब्ध लोगों की ही है।**

अब जैसे कि हम हजारों बीमारियों का इलाज कर रहे हैं जो बिलकुल अवैज्ञानिक है। चौथे शरीर वाला आदमी कहेगा कि यह तो बीमारी ही नही है। इनका इलाज क्यों कर रहे हो। लेकिन अब विज्ञान समझ रहा है। अभी एलोपैथी नये प्रयोग कर रही है। अभी अमेरिका के कुछ हास्पिटल्स (चिकित्सालयों) में दस मरीज हैं एक ही बीमारी के। तो पाँच मरीज को वे पानी का इंजेक्शन दे रहे हैं और पाँच को दवा दे रहे हैं। बड़ी हैरानी की बात यह है कि दवा वाले भी उसी अनुपात में ठीक होते हैं और पानी वाले भी उसी अनुपात मे ठीक होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पानी से ठीक होने वाले रोगियों को वास्तव में कोई रोग नहीं था बल्कि उन्हें बीमार होने का भ्रम भर था। अगर ऐसे लोगों को जिन्हें कि बीमार होने का भ्रम है, दवाइयाँ दी गयीं तो उसका विषाक्त और विपरीत परिणाम होगा। उनका इलाज करने की कोई जरूरत नहीं है। इलाज करने से नुकसान हो रहा है और बहुत बीमारियाँ इलाज करने से पैदा हो रही हैं जिनको फिर ठीक करना मुश्किल है। क्योंकि अगर आपको बीमारी नहीं है और फेंटम (भ्रम की) बीमारी है और आपको असली दवाई दे दी गयी है तो आप मुश्किल में पड़े। अब वह असली दवाई कुछ तो करेगी आपके भीतर जाकर। वह पाइजन (विषाक्त) करेगी और आपको दिक्कत में डालेगी। अब उसका इलाज कराना पड़ेगा। आखिर में फेंटम (भ्रम की) बीमारी मिट जायेगी और असली बीमारी पैदा हो जायेगी। और पुराना विज्ञान तो कहता है कि ९०

प्रतिशत बीमारियाँ फेंटम (भ्रम की) हैं। अभी पचास साल पहले तक एलोपैथी नहीं मानती थी कि 'फेंटम' बीमारी होती है। लेकिन अब एलोपैथी कहती है पचास प्रतिशत (परसेंट) तक तो हम राजी हैं। मैं कहता हूँ ४० प्रतिशत, ५० प्रतिशत के ऊपर राजी होना पड़ेगा, ६० प्रतिशत राजी होना पड़ेगा, क्योंकि असलियत वही है।

५०. विज्ञान की भाषा अलग है और पुराण की भाषा अलग

इस चौथे शरीर में आदमी ने जाना है उसकी व्याख्या करने वाला आदमी नहीं है। उसकी व्याख्या खोजने वाला आदमी नहीं है। उसको ठीक जगह पर, आज के परिप्रेक्ष्य (पर्सपेक्टिव) में, आज की विज्ञान की भाषा में रख देने वाला आदमी नहीं है। वह तकलीफ हो गयी और तकलीफ नहीं है। और जरा भी तकलीफ नहीं है। अब होता क्या है। जैसा मैंने कहा कि पैरेबल (बोध कथा) की जो भाषा है वह अलग है।

५१. सूरज के सात घोड़े

आज विज्ञान कहता है कि सूरज की हर किरण प्रीजम में से निकलकर सात हिस्से में टूट जाती है, सात रंगों में बँट जाती है। वेद का ऋषि कहता है, सूरज के सात घोड़े हैं, सात रंग के घोड़े हैं। अब यह पैरेबल (बोध कथा) की भाषा है। सूरज की किरण सात रंगों में टूटती है, सूरज के सात घोड़े हैं, सात रंग के घोड़े हैं। उन पर सूरज सवार है। अब यह कहानी की भाषा है। इसको किसी दिन हमें समझना पड़ेगा कि क्या पुराण की भाषा है और क्या विज्ञान की भाषा है। इसमे कोई अड़चन नहीं है।

विज्ञान बहुत पीछे समझ पाता है बहुत-सी बातों को। असल में साइकिक फोर्स (मनस-शक्ति) के आदमी बहुत पहले प्रीडिक्ट (भविष्यवाणी) कर जाते हैं। लेकिन जब वे (प्रीडिक्ट) भविष्यवाणी करते हैं तब भाषा प्रतीकात्मक होती है। सीधी भाषा तो बाद में जब विज्ञान खोजता है, तब बनती है। तब भाषा नहीं होती। अब जैसा कि आप हैरान होंगे, कोई भी है, लैंग्वेज है, कोई भी दिशा में अगर आप खोजबीन करें तो आप पायेंगे कि विज्ञान तो आज आया है भाषा तो बहुत पहले आयी है, गणित बहुत पहले आया है। जिन लोगों ने यह सारी खोज बीन की, जिन्होंने यह सारा हिसाब लगाया, उन्होंने किस विज्ञान से हिसाब से लगाया होगा। उनके पास क्या माध्यम रहे होंगे, उन्होंने कैसे नापा होगा? उन्होंने कैसे पता लगाया होगा कि एक वर्ष में पृथ्वी सूरज का एक चक्कर लगा लेती है? एक वर्ष में चक्कर लगाती है, उसी हिसाब से वर्ष है। वर्ष तो बहुत पुराना है, विज्ञान के बहुत पहले कहा गया है। वर्ष में ३६५ दिन होते हैं, यह तो विज्ञान के बहुत पहले हमें पता है, लेकिन देखने का कोई वैज्ञानिक साधन नहीं था।

तो सिवाय साइकिक व्हिजन (मनस-शक्ति के द्वारा अतीन्द्रिय-दर्शन) के और कोई उपाय नहीं था।

५२. मनस-शक्ति के द्वारा पृथ्वी को दूर अन्तरिक्ष से देखना

एक बहुत अद्भुत चीज मिली है। अरब में एक आदमी के पास सात सौ वर्ष पुराना दुनिया का नक्शा मिला है। और वह नक्शा ऐसा है कि बिना हवाई जहाज के ऊपर से बनाया नहीं जा सकता। क्योंकि वह नक्शा जमीन को देखकर बनाया हुआ नहीं है। वह बन नहीं सकता। आज भी पृथ्वी हवाई जहाज पर से जैसी दिखायी पड़ती है वह नकशा वैसा है और वह सात सौ वर्ष पुराना है। अब दो ही उपाय हैं, या तो सात सौ वर्ष पहले हवाई जहाज हों, जो कि नहीं थे। दूसरा उपाय यही है कि कोई आदमी अपने चौथे शरीर से इतना ऊँचा उठकर जमीन को देख सके और नक्शा खीचे। यह तय है सात सौ वर्ष पहले हवाई जहाज नही था लेकिन यह सात सौ वर्ष पुराना नक्शा इस तरह है जैसे कि ऊपर से देखकर बनाया गया है। अब इसका क्या अर्थ है !

५३. मनस-शक्ति से शरीर की सूक्ष्मतम अन्तस् रचना का ज्ञान

अगर हम चरक और सुश्रुत को समझें तो हमें हैरानी हो जायेगी। आज हम आदमी के शरीर को काट-पीट कर जो जान पाते हैं उसका वर्णन तो है। तो दो ही उपाय है। या तो सर्जरी अत्यन्त बारीक हो गयी हो जो कि नही दिखायी पड़ती क्योंकि सर्जरी का एक भी यन्त्र (इंस्ट्रूमेंट) नही मिलता है। सर्जरी के विज्ञान की कोई किताब नही मिलती है। लेकिन आदमी के भीतर के बारीक से बारीक हिस्से का वर्णन है और ऐसे हिस्सों का भी वर्णन है जो विज्ञान बहुत बाद में पकड़ पाया है, जो अभी पचास साल पहले इन्कार करता था, उनका भी वर्णन है कि वह वहाँ भीतर है। तो एक ही उपाय है कि किसी व्यक्ति ने व्हिजन (अतीन्द्रिय-दर्शन) की हालत में व्यक्ति के भीतर प्रवेश करके देखा हो।

आज हम जानते हैं कि एक्स-रे की किरण आदमी के शरीर में पहुँच जाती है। सौ साल पहले अगर कोई आदमी कहता है कि हम आपके भीतर की हड्डियों का चित्र उतार सकते हैं तो हम मानने को राजी न होते। आज हमे मानना पड़ रहा है क्योंकि वह उतार रहा है। लेकिन क्या आपको पता है कि चौथे शरीर की स्थिति में आदमी की आँख एक्स-रे से ज्यादा गहरा देख पा सकती है और आपके शरीर का पूरा पूरा चित्र बनाया जा सकता है जो कि कभी काट-पीट कर नही किया गया। हिन्दुस्तान जैसे मुल्क में जहाँ कि हम मुर्दे को जला देते थे काटने-पीटने का उपाय नहीं था। सर्जरी पश्चिम में इसलिए विकसित हुई कि मुर्दे गाड़े जाते थे अन्यथा विकसित हो नही सकती थी। और आप यह जानकर हैरान

होंगे कि अच्छे आदमी की वजह से विकसित नहीं हुई, यह कुछ चोरों की वजह से विकसित हुई जो मुर्दों को चुरा लाते थे। हिन्दुस्तान में तो विकसित हो नहीं सकती थी क्योंकि हम मुर्दे जला देते थे और जलाने का हमारा कोई ख्याल था, वजह थी इसलिए हम जलाते थे। यह साइकिक (मनस-शक्ति वाले) लोगों का ही ख्याल था कि अगर शरीर बना रहे तो आत्मा को नया जन्म लेने में बाधा पड़ती है, वह मृत शरीर के आस-पास घूमती रहती है। उसको जला दो, ताकि इस झंझट से उसका छुटकारा हो जाय वह इसके आसपास न घूमे, वह बात ही खत्म हो जाय और यह अपने सामने ही उस शरीर को जलता हुआ देख ले जिस शरीर को इसने समझा था कि मैं हूँ, ताकि दूसरे शरीर में इसको शायद स्मृति रह जाय कि शरीर तो जल जाने वाला है। तो हम उसको जलाते थे। इसलिए सर्जरी विकसित न हो सकी क्योंकि आदमी को काटना पड़े, पीटना पड़े, टेबल पर रखना पड़े। यूरोप मे भी चोरों ने लोगों की लाशें चुरा-चुरा कर वैज्ञानिकों के घर में पहुँचायी हैं। मुकदमे चले अदालत में, दिक्कतें हुई क्योंकि लाश को लाना गैरकानूनी था और मरे हुए आदमी को काटना जुर्म है। लेकिन वह काट-काट कर जिन बातों पर पहुँचे हैं उन्हें बिना काटे ही आज से तीन हजार वर्ष पुरानी किताबें पहुँच गयीं उन बातों पर। तो इसका मतलब सिर्फ इतना ही होता है कि बिना प्रयोग के भी किन्हीं और दिशाओं से भी चीजों को जाना जा सका है। कभी इस पर पूरी ही आपसे बात करना चाहूँगा। दस पन्द्रह दिन बात करनी पड़ेगी तब थोड़ा ख्याल में आ सकता है।

●

१४ प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक ८ जुलाई, १९७०

•

आधुनिक विज्ञान की डुबकी---धर्म के असीम रहस्य-सागर में

प्रश्नकर्ता : कल की चर्चा में आपने कहा है कि विज्ञान का प्रवेश पाँचवें शरीर, स्प्रीचुअल बाडी तक सम्भव है। बाद में चौथे शरीर में विज्ञान की सम्भावनाओं की चर्चा की। आज कृपया पाँचवें शरीर में हो सकने वाली कुछ वैज्ञानिक सम्भावनाओं पर संक्षिप्त में प्रकाश डालें।

१. स्थूल शरीर और आत्मा सूक्ष्म शरीरों के सेतु से जुड़े हुए

आचार्यश्री : एक तो जिसे हम शरीर कहते हैं और जिसे हम आत्मा कहते हैं ये ऐसी दो चीजें नहीं हैं कि जिनके बीच सेतु (ब्रिज) न बनता हो। इनके बीच कोई खाईं नहीं है। इनके बीच जोड़ है। सदा से यह ख्याल था कि शरीर अलग है, आत्मा अलग है। और ये दोनों इस भाँति अलग हैं कि इन दोनों के बीच कोई सेतु, कोई ब्रिज नहीं बन सकता। 'न केवल अलग हैं, बल्कि विपरीत हैं एक दूसरे से', इस ख्याल ने धर्म और विज्ञान को अलग कर दिया था। धर्म वह था जो शरीर के अतिरिक्त है, उसकी खोज करे और विज्ञान वह था जो शरीर की खोज करे, आत्मा के अतिरिक्त जो है उसकी खोज करे। स्वभावत: दोनों तरह की खोज एक को मानती और दूसरे को इन्कार करती रही है। क्योंकि विज्ञान जिसे खोजता था उसे वह कहता था शरीर है, आत्मा कहाँ है। और धर्म जिसे खोजता था उसे वह मानता था आत्मा है, शरीर कहाँ है। तो धर्म जब अपनी पूरी ऊँचाइयों पर पहुँचा तो उसने शरीर को इल्यूजन (भ्रम) और माया कह दिया।

कहा कि वह है ही नहीं। आत्मा ही सत्य है, शरीर भ्रम है। और विज्ञान जब अपनी ऊँचाइयों पर पहुँचा तो उसने कह दिया कि आत्मा तो एक झूठ, एक असत्य है। शरीर ही सब कुछ है। यह भ्रान्ति आत्मा और शरीर को अनिवार्य रूप से विरोधी तत्वों की तरह से मानने से हुई है।

मैंने सात शरीरों की बात कही। अगर पहला शरीर हम भौतिक शरीर मान लें और अन्तिम शरीर आत्मिक मान लें और बीच के पाँच शरीरों को छोड़ दें तो उनके बीच सेतु नहीं बन सकेगा। ऐसे ही जैसे जिन सीढ़ियों से चढ़कर आप आये हैं, ऊपर की सीढ़ी बचा लें और पहली सीढ़ी बचा लें नीचे की और बीच की सीढ़ियों को छोड़ दें तो आपको लगेगा कि पहली सीढ़ी है और दूसरी सीढ़ी है बीच में कोई सम्बन्ध नही है।

२. परमाणु ऊर्जा से भी सूक्ष्म ऊर्जा—इथरिक बाडी (भाव-शरीर)

अगर आप सारी सीढ़ियों को देखेंगे तो पायेंगे कि पहली सीढी भी आखिरी सीढ़ी से जुड़ी है। और अगर ठीक से देखें तो आखिरी सीढ़ी पहली सीढ़ी का ही आखिरी हिस्सा है। और पहली सीढ़ी आखिरी सीढ़ी का पहला हिस्सा है। तो जब पूरे सात शरीरों को हम समझेंगे तब पहले और दूसरे शरीर में जोड बनता है। क्योंकि पहला शरीर है भौतिक शरीर, फिजिकल बॉडी। दूसरा शरीर है इथरिक बॉडी, भाव शरीर। वह भौतिक का ही सूक्ष्मतम रूप है। वह अभौतिक नही है वह भौतिक का ही सूक्ष्मतम रूप है। इतना सूक्ष्मतम है कि भौतिक उपाय भी उसे पकड़ने में अभी ठीक से समर्थ नहीं हो पाते। लेकिन अब भौतिक वादी इस बात को इन्कार नहीं करता है कि भौतिक का सूक्ष्मतम रूप करीब-करीब अभौतिक हो जाता है।

अब जैसे आज विज्ञान कहता है कि अगर हम पदार्थ को तोड़ते चले जायें तो जो अन्तिम पदार्थ के विश्लेषण पर हमें मिलेंगे—इलेक्ट्रान, वह अभौतिक हो गये हैं। वह इम्मैटेरियल हो गये हैं। क्योंकि वह सिर्फ विद्युत के कण हैं। उनमें पदार्थ (सब्सटेंस) जैसा कुछ भी नहीं बचा, सिर्फ एनर्जी (ऊर्जा) बच रही है। इसलिए बड़ी अद्भुत घटना घटी है, पिछले तीस वर्षों में। जो विज्ञान यह बात स्वीकार करके चला था कि पदार्थ ही सत्य है वह विज्ञान इस नतीजे पर पहुँचा है कि पदार्थ तो बिलकुल है ही नहीं, इनर्जी (ऊर्जा) ही सत्य है। और पदार्थ जो है वह एनर्जी (ऊर्जा) का तीव्र घूमता हुआ रूप है। इसलिए भ्रम पैदा हो रहा है।

एक पंखा हमारे ऊपर चल रहा है। यह पंखा इतने जोर से चलाया जा सकता है कि इसकी तीन पंखुड़ियाँ हमें दिखायी पड़नी बन्द हो जायें और जब इनकी तीन पंखुड़ियाँ हमें दिखायी पड़नी बन्द हो जायेंगी तो पंखा पंखुड़ियाँ न मालूम होकर टीन का एक गोल चक्र घूम रहा है, ऐसा मालूम होगा। और तीनों पंखुड़ियों के

बीच में जो खाली जगह है वह भर जायेगी। वह खाली नहीं रह जायेगी। क्योंकि तीन पंखुड़ियाँ दिखायी न पड़ेंगी। असल में पंखुड़ियाँ इतनी तेजी से घूम सकती हैं कि उसके पहले कि एक पंखुड़ी हटे एक जगह से और हमारी आँख से उसका प्रतिबिम्ब मिटे, उसके पहले दूसरी पंखुड़ी उसकी जगह आ जाती है। प्रतिबिम्ब पहला बना रहता है और दूसरा उसके ऊपर आ जाता है। इसलिए बीच की जो खाली जगह है वह हमें दिखायी नहीं पड़ती है। यह पंखा इतनी तेजी से भी घुमाया जा सकता है कि आप इसके ऊपर मजे से बैठ सकें और आपको पता न चले कि नीचे कोई चीज बदल रही है। अगर दो पंखुड़ियों के बीच की खाली जगह इतनी तेजी से भर जाय कि एक पंखुड़ी आपके नीचे से हटे, आप इसके पहले खाली जगह में से गिरें, दूसरी पंखुडी आपको सम्भाल ले तो आपको दो पंखुड़ियों का अन्तर पता नही चलेगा यह गति की बात है।

अगर ऊर्जा तीव्र गति से घूमती है तो हमको पदार्थ मालूम होती है। इसलिए वैज्ञानिक आज जिस एटामिक-एनर्जी (परमाणु-ऊर्जा) पर सारा का सारा विस्तार कर रहा है, उस एनर्जी को किसी ने देखा नहीं है। सिर्फ उसके इफेक्ट्स (परिणाम) भर देखे है। वह मूल अणु की शक्ति किसी ने देखी नहीं है और कभी कोई देखेगा, यह भी अब सवाल नही है। लेकिन उसके परिणाम दिखायी पड़ते हैं।

इथरिक बॉडी को अगर हम यह भी कहें कि वह मूल एटामिक बॉडी (शरीर) है तो, कोई हर्ज नही है। उसके परिणाम दिखायी पड़ते हैं। इथरिक बॉडी (भावशरीर आकाश-शरीर), को किसी ने देखा नही है। सिर्फ उसके परिणाम दिखायी पड़ते हैं। लेकिन उन परिणामों की वजह से वह है, यह स्वीकार कर लेने की जरूरत पड़ जाती है। यह जो दूसरा है यह पहले भौतिक शरीर का ही सूक्ष्मतम रूप है। इसलिए इन दोनों के बीच कोई सीढ़ी बनाने में कठिनाई नहीं है। ये दोनों एक तरह से जुड़े ही हुए हैं। एक स्थूल है जो दिखायी पड़ जाता है, दूसरा सूक्ष्म है इसलिए दिखायी नहीं पड़ता।

३. इथरिक-ऊर्जा से भी सूक्ष्म एस्ट्रल-ऊर्जा

इथरिक बॉडी (भाव-शरीर) के बाद तीसरा शरीर है जिसे हमने एस्ट्रल बॉडी (सूक्ष्म शरीर) कहा। वह ईथर का भी सूक्ष्मतम रूप है। अभी विज्ञान उस पर नहीं पहुँचा है। अभी विज्ञान इस ख्याल पर पहुँच गया है कि अगर पदार्थ की हम एनेलिसिस (विश्लेषण) करें, तोड़ते चले जायें तो अन्त में ऊर्जा बचती है। उस ऊर्जा को हम ईथर कह रहे हैं। अगर ईथर को भी तोड़ा जा सके और उसकी भी सूक्ष्मतम अंश बनाये जा सकें तो जो बचेगा वह एस्ट्रल है, सूक्ष्म शरीर है वह। वह सूक्ष्म का भी सूक्ष्म रूप है।

अभी विज्ञान वहाँ नहीं पहुँचा है, लेकिन पहुँच जायगा। क्योंकि कल वह भौतिक को स्वीकार करता था, आणविक को स्वीकार नहीं करता था। कल वह कहता था, पदार्थ ठोस चीज है। आज वह कहता है ठोस जैसी कोई चीज ही नहीं है। जो भी है सब गैर-ठोस (नानसॉलिड) हो गया है सब। यह दीवाल भी जो हमें इतनी ठोस दिखायी पड़ रही है, वह ठोस नहीं है। यह भी पोरस (छिद्रमय) है। इसमें भी छेद है और चीजें इसमें आर-पार जा रही हैं। फिर भी हम कहेंगे कि छेदों के आसपास जिनके बीच छेद हैं वह तो कम-से-कम ठोस अणु होंगे। वह भी ठोस अणु नहीं है। एक-एक अणु भी पोरस है। अगर हम एक अणु को बड़ा कर सकें तो जमीन और चाँद और सूरज और तारे के बीच जितना फासला है उतना अणुओं के कणों के बीच फासला है। अगर उसको इतना बड़ा कर सकें तो फासला इतना ही हो जायगा।

फिर वह जो फासले को भी जोड़ने वाले अणु हैं, हम कहेंगे कम-से-कम वह तो ठोस हैं। लेकिन विज्ञान कहता है कि वह भी ठोस नहीं है। वह सिर्फ विद्युत् कण हैं। कण भी अब विज्ञान मानने को राजी नहीं है। क्योंकि कण के साथ पदार्थ का पुराना ख्याल जुड़ा हुआ है। कण का मतलब होता है पदार्थ का टुकड़ा। वह कण भी नहीं है। क्योंकि कण तो एक जैसा रहता है। वह पूरे वक्त बदलते रहते हैं। वे लहर की तरह हैं, कण की तरह नहीं हैं। जैसे पानी में एक लहर उठी। जब तक आपने कहा लहर उठी तब तक वह कुछ और हो गयी। जब आपने कहा वह रही लहर तब तक वह कुछ और हो गयी। क्योंकि लहर का मतलब यह है कि वह आ रही है, जा रही है। लेकिन अगर हम लहर भी कहें तो भी पानी की लहर एक भौतिक घटना है। इसलिए विज्ञान ने एक नया शब्द खोजा है जो कि अभी था ही नहीं, आज से तीस साल पहले। वह है क्वान्टा। अभी हिन्दुस्तान में उसके लिए दूसरा शब्द खोजना मुश्किल है। इसलिए मुश्किल है जैसे हिन्दी के पास शब्द है ब्रह्म और इसे अंग्रेजी में कहना मुश्किल है। क्योंकि कभी जरूरत पड़ गयी थी कुछ अनुभव करनेवाले लोगों को तब यह शब्द खोज लिया गया। पश्चिम उस जगह नहीं पहुँचा है कभी, इसलिए इस शब्द की उन्हें कभी जरूरत नहीं पड़ी।

इसलिए धर्म की भाषा के बहुत से शब्द पश्चिम की भाषा में नहीं मिलेंगे। जैसे ओम्। उसका कोई अनुवाद दुनिया की किसी भाषा में नहीं हो सकता है। वह कभी किन्हीं आध्यात्मिक गहराइयों में अनुभव की गयी बात है। उसके लिए हमने एक शब्द खोज लिया था। लेकिन पश्चिम के पास उसके लिए कोई समानान्तर शब्द नहीं है कि उसका अनुवाद किया जा सके। ऐसे ही क्वान्टा पश्चिम के विज्ञान की बहुत ऊँचाई पर पाया गया शब्द है जिसके लिए दूसरी भाषा में कोई

शब्द नहीं है। क्वांटा का अगर हम मतलब समझना चाहें तो क्वांटा का मतलब होता है कण और तरंग एक साथ। इसको कन्सीव करना (समझना) मुश्किल हो जायगा। कोई चीज कण और तरंग एक साथ, कभी वह तरंग की तरह व्यवहार करता है और कभी कण की तरह व्यवहार करता है। और कोई भरोसा नहीं है उसका कि वह कैसा व्यवहार करे।

४. पदार्थ के सूक्ष्मतम ऊर्जा कणों में चेतना के लक्षण

पदार्थ हमेशा भरोसे योग्य था। पदार्थ में एक निश्चितता (सर्टेन्टी) थी लेकिन वह जो अणु ऊर्जा के आखिरी कण मिले हैं वे अनिश्चित (अनसर्टेन) हैं। उनकी कोई निश्चयात्मकता नहीं है। उनके व्यवहार को पक्का तय नहीं किया जा सकता। इसलिए पहले विज्ञान बहुत सर्टेन्टी (निश्चयात्मकता) पर खड़ा था। वह कहता था हर चीज निश्चित है। अब वैज्ञानिक उतने दावे से नहीं कह सकता कि हर चीज निश्चित है। क्योंकि वह जहाँ पहुँचा है वहाँ उसको पता चला है कि निश्चित होना बहुत ऊपर-ऊपर की बात है। भीतर बहुत गहरा अनिश्चय है। और एक बड़े मजे की बात है कि **अनिश्चय का मतलब क्या होता है ?**

जहाँ अनिश्चय है वहाँ चेतना होनी चाहिए नहीं तो अनिश्चय नहीं हो सकता। अनसर्टेन्टी (अनिश्चयात्मकता) जो है वह कान्शसनेस (चेतना) का हिस्सा है। सर्टेन्टी (निश्चयात्मकता) जो है वह मैटर (पदार्थ) का हिस्सा है। अगर हम इस कमरे में एक कुर्सी को छोड़ जायें तो लौटने पर हमे वहीं मिलेगी जहाँ थी। लेकिन एक बच्चे को हम इस कमरे में छोड़ जायें तो वह वहाँ नहीं मिलेगा जहाँ था। उसके बाबत अनसर्टेन्टी (अनिश्चयात्मकता) रहेगी कि अब वह कहाँ है और क्या कर रहा है। कुर्सी के बाबत हम सर्टेन (निश्चित) हो सकते हैं कि वह वहीं है जहाँ थी। पदार्थ के बाबत निश्चित हुआ जा सकता है। चेतना के बाबत निश्चित नहीं हुआ जा सकता है। तो विज्ञान ने जिस दिन यह स्वीकार कर लिया कि अणु का जो आखिरी हिस्सा है उसके बाबत हम निश्चित नहीं हो सकते हैं कि वह कैसा व्यवहार करेगा, उसी दिन से विज्ञान के द्वारा पदार्थ के आखिरी हिस्से में चेतना की सम्भावना स्वीकृत हो गयी है।

अनसर्टेन्टी (अनिश्चितता) चेतना का लक्षण है। जड़ पदार्थ अनिश्चित नहीं हो सकता। ऐसा नहीं है कि आग का मन हो तो जलायें और मन हो तो न जलायें। ऐसा नहीं है कि पानी की तबीयत हो तो नीचे बहे और तबीयत हो तो ऊपर बहे। ऐसा नहीं है कि पानी १०० डिग्री पर गर्म होना चाहिए तो १०० पर हो, ८० पर होना चाहे तो ८० पर हो। पदार्थ का व्यवहार सुनिश्चित है। लेकिन

जब हम इन सबके भीतर प्रवेश करते हैं तो वह जो आखिरी हिस्से मिलते हैं पदार्थ के वह अनिश्चित हैं।

इसे हम ऐसा भी समझ सकते हैं कि समझ लें कि बम्बई के बाबत अगर हम तय करना चाहें कि रोज कितने आदमी मरते हैं तो तय हो जायगा। करीब-करीब तय हो जायगा। अगर एक करोड़ आदमी हैं तो साल भर का हिसाब लगाने से हमको पता चल सकता है कि रोज कितने आदमी मरते हैं और वह भविष्य-वाणी करीब-करीब सही होगी। थोड़ी बहुत भूल हो सकती है। अगर हम पूरे पचास करोड़ के मुल्क के बाबत विचार करें तो भूल और कम हो जायगी। सर्टेन्टी (निश्चितता) और बढ़ जायेगी। अगर हम सारी दुनिया के बाबत तय करें तो सर्टेन्टी और बढ़ जायेगी और हम तय कर सकते हैं कि इतने आदमी रोज मरते हैं। लेकिन अगर हम एक आदमी के बाबत तय करने जायें कि यह कब मरेगा तो सर्टेन्टी बहुत कम हो जायेगी।

जितनी भीड़ बढ़ती है उतना मैटेरियल (भौतिक) हो जाती है चीज। जितना इन्डीवीजुअल (निजी) होती है बात उतनी ही कान्शस (संचेतन) हो जाती है। असल में एक पदार्थ का टुकड़ा भीड़ है करोड़ों अणुओं की। इसीलिए उसके बाबत हम तय कर सकते हैं। अगर हम नीचे प्रवेश करते हैं और एक इलेक्ट्रान को पकड़ते हैं तो वह इण्डीविजुअल (निजी) है। उसके बाबत तय होना मुश्किल हो जाता है। उसका व्यवहार वह खुद ही तय करता है। तो पूरे पत्थर के बाबत हम कह सकते हैं कि यह यहीं मिलेगा। लेकिन इस पत्थर के भीतर जो अणुओं का व्यक्तित्व था वह वही नहीं मिलेगा। जब हम लौटकर आयेंगे तब सब बदल चुका होगा। उसने सब जगह बदल ली होगी। वह यात्रा कर चुका होगा।

पदार्थ की गहराई में उतरकर अनिश्चय शुरू हो गया। इसलिए अब विज्ञान सर्टेन्टी (निश्चितता) की बात न करके प्रोबेबिलिटी (सम्भावनात्मकता) की बात करने लगा। वह कहता है 'इसकी' सम्भावना ज्यादा है बजाय 'उसके'। अब वह ऐसा नहीं कहता है कि 'ऐसा ही' होगा। बड़े मजे की बात है कि विज्ञान की तो सारी दावेदारी जो थी वह उसकी निश्चयात्मकता पर थी। वह जो भी कहता था तो निश्चित था कि ऐसा होगा और विज्ञान की जो गहरी खोज है उसने विज्ञान को डगमगा दिया है। और उसका कारण है। उसका कारण यह है कि विज्ञान फिजिकल (भौतिक) से इथरिक (आकाशीय) पर चला गया है जिसका वैज्ञानिकों को अन्दाज नहीं है। असल में वह इस भाषा को स्वीकार नहीं करते इसलिए तब तक उनको अन्दाज भी नहीं हो सकता कि फिजिकल (भौतिक) से हट कर इथरिक (आकाशीय, भाव) पर पहुँच गये हैं। वह पदार्थ में भी

दूसरे भाव-शरीर पर पहुँच गये हैं और दूसरे शरीर की अपनी सम्भावनाएँ हैं। लेकिन पहला शरीर और दूसरे शरीर के बीच कोई खाली जगह नहीं है।

५. ईथर के कणों को तोड़ने पर एस्ट्रल कणों का पता चलेगा

तीसरा जो एस्ट्रल (सूक्ष्म) शरीर है वह और भी सूक्ष्म है। वह सूक्ष्म का भी सूक्ष्म है। वह ईथर के भी अगर हम अणु बना सकें, जो अभी बहुत मुश्किल है क्योंकि अभी अभी तो हम मुश्किल से फिजिक्स में परमाणु पर पहुँच पाये हैं, अभी हम पदार्थ के परमाणु जान पाये हैं। अभी ईथर के लिए बहुत वक्त लग सकता है। लेकिन जिस दिन हम ईथर के परमाणु जान सकेंगे उस दिन हमें पता चलेगा कि उनके भीतर के सूक्ष्म कण आगे वाले शरीर के कण सिद्ध होंगे, एस्ट्रल के। असल में फिजिकल एटम (भौतिक कण) को जब हमने तोड़ा तो उसके सूक्ष्मतम कण इथरिक सिद्ध हुए हैं, ईथर को हम तोड़ेंगे तो उसके सूक्ष्मतम-कण एस्ट्रल सिद्ध होंगे, सूक्ष्म सिद्ध होंगे। तब उनके बीच एक जोड़ मिल जायगा। ये तीन शरीर तो बहुत स्पष्ट जुड़े हुए हैं इसलिए प्रेतात्माओं के चित्र लिये जा सके हैं।

६. प्रेतात्मा का शरीर इथरिक व एस्ट्रल ऊर्जा का बना हुआ

प्रेतात्मा के पास भौतिक शरीर नहीं होता है। इथरिक बॉडी (भावशरीर) से शुरू होता है उसका परदा। प्रेतात्माओं के चित्र लिये जा सके हैं सिर्फ इसी वजह से कि ईथर भी अगर बहुत कण्डेन्स्ड हो जाय तो बहुत सेन्सीटिव फोटो प्लेट उसे पकड़ सकती है और ईथर के साथ एक सुविधा है कि वह इतनी सूक्ष्म है कि मनस से प्रभावित होगी। अगर एक प्रेत यह चाहे कि मैं यहाँ प्रकट हो जाऊँ तो वह अपनी इथरिक बॉडी को कण्डेन्स्ड (सघन) कर लेगा। वह अणु जो दूर-दूर हैं पास सरक आयेंगे और उसकी एक रूपरेखा बन जायेगी। उस रूपरेखा का चित्र लिया जा सका है, उस रूपरेखा का चित्र पकड़ा जा सका है।

यह जो दूसरा हमारा ईथर (आकाश) का बना हुआ शरीर है यह हमारे भौतिक शरीर से कहीं ज्यादा मन से प्रभावित हो सकता है। भौतिक शरीर भी हमारे मन से प्रभावित होता है लेकिन उतना नहीं। जितना सूक्ष्म होगा उतना मन से प्रभावित होने लगेगा, उतने मन के करीब हो जायगा। एस्ट्रल (सूक्ष्म) शरीर तो और भी ज्यादा मन से प्रभावित होगा। इसलिए एस्ट्रल ट्रेवेलिंग (सूक्ष्म शरीर की यात्रा) सम्भव हो जाती है। एक आदमी इस कमरे में सोकर भी अपनी एस्ट्रल बॉडी (सूक्ष्म शरीर) से दुनिया के किसी भी हिस्से में हो सकता है। इसलिए यह कहानियाँ बहुत बार सुनी होंगी कि एक आदमी दो जगह दिखायी पड़ गया, तीन जगह दिखायी पड़ गया, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। उसका भौतिक शरीर एक जगह होगा, उसका एस्ट्रल शरीर दूसरी जगह हो सकता है।

इसमें अड़चन नहीं है। यह थोड़े से ही अभ्यास की बात है और आपका शरीर दूसरी जगह प्रकट हो सकता है।

जितना हम भीतर जाते हैं उतनी ही मन की शक्ति बढ़ती चली जाती है, जितना ही हम बाहर आते हैं उतनी ही मन की शक्ति कम होती चली जाती है। ऐसा ही जैसे हम एक दीया जलायें और उस दीये के ऊपर काँच का एक ढक्कन रख दें। अब दीया उतना तेजस्वी नहीं मालूम होगा। फिर एक दूसरा ढक्कन और रख दें। अब दीया और भी कम तेजस्वी मालूम होगा, अब उस पर हम एक ढक्कन और रख दें और हम सात ढक्कन रख दें, तो सातवें ढक्कन के बाद दीये की बहुत ही कम रोशनी बाहर पहुँच पायेगी। पहले ढक्कन के बाद ज्यादा पहुँचती थी, दूसरे के बाद उससे कम, तीसरे पर और कम, सातवें पर बहुत धीमी और धूमिल हो जायेगी। क्योंकि सात पर्दों को पार करके आयेगी।

७. भौतिक-ऊर्जा का ही सूक्ष्मतम रूप मनोमय-ऊर्जा

तो हमारी जो जीवन ऊर्जा की शक्ति है वह शरीर तक आते-आते बहुत धूमिल हो जाती है। इसलिए शरीर पर हमारा उतना काबू नहीं मालूम होता है। लेकिन अगर कोई भीतर प्रवेश करना शुरू करे तो शरीर पर उसका काबू बढ़ता चला जायगा। **जिस मात्रा में भीतर प्रवेश होगा उस मात्रा में शरीर पर भी काबू बढ़ता चला जायगा।** भौतिक का सूक्ष्मतम शरीर है इथरिक, इथरिक का सूक्ष्मतम हिस्सा है एस्ट्रल। अब चौथा शरीर है मेण्टल।

अब तक हम सबको यही ख्याल था कि माइण्ड (मन) कुछ और बात है तथा पदार्थ कुछ और बात है। माइण्ड और मैटर (पदार्थ) अलग बातें हैं। असल में परिभाषा करने का उपाय ही न था। अगर किसी से हम पूछें कि मैटर (पदार्थ) क्या है तो कहा जा सकता है कि जो माइण्ड (मन) नहीं है। और माइण्ड (मन) क्या है, तो कहा जा सकता है कि जो मैटर (पदार्थ) नहीं है। बाकी और कोई परिभाषा है भी नहीं। इसी तरह हम सोचते रहे हैं इन दोनों को अलग करके। लेकिन अब हम जानते हैं कि माइण्ड (मन) भी मैटर का ही सूक्ष्मतम हिस्सा है। या इससे उल्टा भी हम कह सकते हैं कि जिसे हम मैटर (पदार्थ) कहते हैं वह माइण्ड (मन) का ही कण्डेन्स्ड, (सघन) हो गया हिस्सा है।

८. अलग-अलग विचारों की अलग-अलग तरंग रचना

एस्ट्रल (सूक्ष्म-ऊर्जा) के भी अगर अणु (कण) टूटेंगे तो वे माइण्ड के थाट-वेव्ज (विचार तरंगें) बन जायेंगे। अब क्वान्टा और थाट वेव्ज (विचार तरंगों) में बड़ी निकटता है। अब तक नहीं समझा जाता था कि विचार भी

कोई भौतिक अस्तित्व रखता है। लेकिन जब आप एक विचार करते हैं तब आपके आसपास की तरंगें बदल जाती हैं। यह बहुत मजे की बात है। न केवल विचार को, बल्कि एक-एक शब्द की भी अपनी तरंग-लम्बान (वेव लेंथ) है। अगर आप एक कांच के ऊपर रेत के कण बिछा दें और कांच के नीचे से जोर से कहें ओम् तो उस कांच के ऊपर रेत पर अलग तरह की वेव्ज (तरंगें) बन जायेंगी और आप कहें राम तो अलग तरह की वेव्ज (तरंगें) बनेंगी। और अगर आप एक भद्दी गाली दें तो एक अलग तरह की तरंगें (वेव्ज) बनेंगी। और आप एक बड़ी हैरानी की बात में पड़ जायेंगे कि जितना भद्दा शब्द होगा उतना ही कुरूप उपर तरंगें (वेव्ज) बनेंगी। और जितना सुन्दर शब्द होगा उतनी सुन्दर तरंगें (वेव्ज) होंगी, उतना पैटर्न (रूप) होगा उनमें। जितना भद्दा शब्द होगा उतना पैटर्न (ढांचा) नहीं होगा, अनार्किक (अस्त-व्यस्त) होगा।

इसलिए बहुत हजारों वर्ष तक शब्द के लिए बड़ी खोजबीन हुई कि कौन-सा शब्द सुन्दर तरंग पैदा करता है, कौन-सा शब्द कितना वजन रखता है दूसरे के हृदय तक चोट पहुंचाने मे। लेकिन शब्द तो प्रकट हो गया विचार है। अप्रकट शब्द भी अपनी ध्वनियां रखता है जिसको हम विचार कहते हैं। जब आप सोच रहे हैं कुछ, तब भी आपके चारों तरफ विशेष प्रकार की ध्वनियां फैलनी शुरू हो जाती हैं। विशेष प्रकार की तरंगें आपको घेर लेती हैं इसलिए बहुत बार आपको ऐसा लगता है कि किसी आदमी के पास जाकर आप अचानक उदास हो जाते हैं। अभी उसने कुछ कहा भी नहीं। हो सकता है वह ऐसे हँस ही रहा हो आपको मिलकर। लेकिन फिर भी कोई उदासी भीतर से आपको पकड़ लेती है। किसी आदमी के पास जाकर आप बहुत प्रफुल्लित हो जाते हैं। किसी कमरे में प्रवेश करते ही आपको लगता है कि आप भीतर कुछ बदल गये। कुछ पवित्रता पकड़ लेती है, अपवित्रता पकड़ लेती है। किसी क्षण में कहीं कोई शान्ति पकड़ लेती है और कहीं कोई अशान्ति छू लेती है जिसको आपको समझना मुश्किल हो जाता है कि मैं तो अभी अशान्त नही था, अचानक यह अशान्ति मन में क्यों उठ आयी।

आपके चारों तरफ विचारों की तरंगें हैं और वे तरंगें २४ घण्टे आपमें प्रवेश कर रही हैं। अभी तो एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने एक छोटा-सा यन्त्र बनाया है जो विचार की तरंगों को पकड़ने में सफल हुआ है। उस यन्त्र के पास जाते से ही वह बताना शुरू कर देता है कि यह आदमी किस तरह के विचार कर रहा है। उस पर तरंगें पकड़नी शुरू हो जाती हैं। अगर एक इडियट (मूर्ख) को. जड़ बुद्धि आदमी को ले जाया जाय तो उसमें बहुत कम तरह की तरंगें पकड़ती हैं। क्योंकि वह विचार ही नहीं कर रहा है। अगर एक बहुत प्रतिभाशाली आदमी को ले

जाया जाय तो वह पूरा-का-पूरा यन्त्र कम्पन लेने लगता है, उसमें इतनी तरंगें पकड़ने लगती हैं ।

तो जिसको हम मन कहते हैं वह एस्ट्रल (सूक्ष्म) का भी सूक्ष्म है । निरन्तर भीतर हम सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होते चले जाते हैं । अभी विज्ञान इथरिक (आकाशीय) तक पहुँच पाया है । अभी भी उसने उसको इथरिक नहीं कहा है, उसको एटामिक कह रहा है, परमाणविक कह रहा है, ऊर्जा एनर्जी कह रहा है । लेकिन तत्व के दूसरे शरीर पर वह उतर गया है । तीसरे शरीर पर उतरने में बहुत देर नहीं लगेगी । वह तीसरे शरीर पर उतर जायगा । उतरने की जरूरतें पैदा हो गयी हैं ।

चौथे शरीर पर भी बहुत दूसरी दिशाओं से काम चल रहा है । क्योंकि मन को अलग ही समझा जाता था इसलिए कुछ वैज्ञानिक मन पर अलग से ही काम कर रहे हैं । वह शरीर से काम नहीं कर रहे हैं । उन्होंने चौथे शरीर के सम्बन्ध में बहुत-सी बातों का अनुभव कर लिया है । अब जैसे हम सब एक अर्थ में ट्रान्स-मीटर्स (विचार-प्रेषण-यन्त्र) हैं और हमारे विचार हमारे चारों तरफ विकीर्ण हो रहे हैं । मैं आपसे जब नहीं भी बोल रहा हूँ तब भी मेरा विचार आप तक जा रहा है ।

९. चौथे मनस शरीर की वैज्ञानिक सम्भावना—विचार सम्प्रेषण (टेलिपैथी) पर खोजें

इधर रूस में इस सम्बन्ध में काफी दूर तक काम हुआ है और एक वैज्ञानिक फयादेव ने एक हजार मील दूर तक विचार का सम्प्रेषण किया । वह मास्को में बैठा है और एक हजार मील दूर दूसरे आदमी को विचार का सम्प्रेषण कर रहा है । ठीक वैसे ही जैसे रेडियो से ट्रान्समीशन (सम्प्रेषण) होता है । ऐसे ही अगर हम संकल्प पूर्वक एक दिशा में अपने चित्त को केन्द्रित करके किसी विचार को तीव्रता से सम्प्रेषित करें तो वह उस दिशा में पहुँच जाता है । अगर दूसरी तरफ भी माइण्ड रिसीव करने को, ग्राहक होने को तैयार हो उसी क्षण में, उसी दिशा में मन केन्द्रित हो, खुला हो और स्वीकार करने को राजी हो तो विचार सम्प्रेषित हो जाते हैं ।

१०. विचार-सम्प्रेषण का एक घरेलू प्रयोग

इस पर कभी छोटा-मोटा प्रयोग आप घर में करके देखें तो अच्छा होगा । छोटे बच्चे जल्दी से पकड़ लेते हैं । क्योंकि अभी उनकी ग्राहकता तीव्र होती है । कमरा बन्द कर लें । एक छोटे बच्चे को कमरे को अन्धेरा करके दूसरे कोने पर बिठा दें । आप दूसरे कोने पर बैठ जायें और उस बच्चे से कहें कि पाँच मिनट के लिए तू ध्यान मेरी तरफ रखना । मैं तुझसे चुपचाप कुछ कहूँगा उसे तू सुनने की

कोशिश करना। अगर तुझे सुनायी पड़ जाय तो बोल देना। फिर आप एक शब्द पकड़ लें कोई भी, जैसे राम या गुलाब। और इस शब्द को उस बच्चे की तरफ ध्यान रखकर जोर से अपने भीतर गुँजाने लगें। बोलें नहीं। राम-राम ही गुँजाने लगें। दो तीन दिन में आप पायेंगे कि उस बच्चे ने आपके शब्द को पकड़ना शुरू कर दिया। तब इसका क्या मतलब हुआ। फिर इससे उल्टा भी हो सकता है। एक दफे ऐसा हो जाय तो आपको आसानी हो जायेगी। फिर आप बच्चे को बिठा सकते हैं और उससे कह सकते हैं कि वह एक शब्द सोचकर आपकी तरफ फेंके। लेकिन तब आप ग्राहक हो सकेंगे। क्योंकि आपका सन्देह (डाउट) गिर गया होगा। घटना घट सकती है तो फिर ग्राहकता बढ़ जाती है।

११. निर्जरा—कर्म-मल (कर्माणुओं) का झड़ जाना

आपके और आपके बच्चे के बीच तो भौतिक जगत फैला हुआ है। यह विचार किसी गहरे अर्थों में भौतिक ही होना चाहिए अन्यथा इस भौतिक माध्यम को पार न कर पायेंगे। यह जानकर आपको हैरानी होगी कि महावीर ने कर्म तक को भौतिक (फिजिकल, मैटेरियल) कहा है। जब आप क्रोध करते हैं और किसी की हत्या कर देते हैं तो आपने एक कर्म किया क्रोध का और हत्या करने का। तो महावीर कहते हैं यह भी सूक्ष्म अणुओं में आपमें चिपक जाता है, कर्म-मल बन जाता है। यह भी भौतिक (मैटेरियल) है। यह भी कोई अभौतिक (इम-मैटिरियल) चीज नहीं है। यह भी मैटर (पदार्थ) की तरह पकड़ लेता है आपको। और इसलिए महावीर निर्जरा कहते हैं इस कर्म मल से छुटकारा हो जाने को। यह सारा का सारा जो कर्म-अणु आपके चारों तरफ जुड़ गयें हैं ये गिर जायें। जिस दिन ये गिर जायेंगे उस दिन आप शुद्धतम शेष रह जायेंगे। वह निर्जरा होगी। निर्जरा का मतलब है कर्म के अणुओं का झड़ जाना। जब आप क्रोध करते है तब आप एक कर्म कर रहे हैं। वह क्रोध भी आणविक होकर आपके साथ चलता है। इसलिए जब आपका यह शरीर गिर जाता है तब भी उसको गिरने की जरूरत नहीं होती है। वह दूसरे जन्म में भी आपके साथ खड़ा हो जाता है। क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म है।

तो मेण्टल बॉडी (मनस शरीर) जो है वह एस्ट्रल बॉडी (सूक्ष्म शरीर) सूक्ष्मतम हिस्सा है। और इसलिए इन चारों में कहीं भी कोई खाली जगह नहीं है। ये सब एक दूसरे के सूक्ष्म होते गये हिस्से हैं। मेण्टल बॉडी पर काफी काम हुआ है। क्योंकि अलग से मनस-शास्त्र उस पर काम कर रहा है। और विशेष कर पेरा-साइकोलॉजी (परा-मनोविज्ञान) उस पर अलग से काम कर रही है। और मनस-ऊर्जा के अद्भुत नियम विज्ञान की पकड़ में आ गये हैं। धर्म के पकड़ में तो बहुत समय से थे, अब विज्ञान की पकड़ में भी बहुत-सी बातें साफ हो गयी हैं।

१२. संकल्प का, विचार तरंगों का प्रभाव पदार्थ पर भी

अब जैसे मांटकालो में ऐसे ढेर आदमी हैं जिनको जुए में हराना मुश्किल है। क्योंकि वह जो पाँसा फेंकते हैं वह जो नम्बर फेंकना चाहते हैं, वही फेंक लेते हैं। उनके पाँसे बदल देने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। पहले तो समझा जाता था कि वे पाँसे कुछ चालबाजी से बनाये गये हैं कि वे वहीं गिर जाते हैं जहाँ वे गिराना चाहते हैं। लेकिन हर तरह के पाँसे देकर वे जो नम्बर लाना चाहते हैं वही आँकड़ा ले आते हैं। आँख बन्द करके भी ले आते हैं। तब बड़ी मुश्किल हो गयी। तब इसकी जाँच-पड़ताल करनी जरूरी हो गयी कि बात क्या है। असल में उनका विचार का तीव्र संकल्प पाँसे को प्रभावित करता है। वह जो लाना चाहते हैं उसके तीव्र संकल्प की धारा से पाँसे को फेंकते हैं। विचार की वे तरंगें उन पाँसों को उसी आँकड़े पर ले आती। अब इसका मतलब क्या हुआ। अगर विचार की ये तरंगे एक पाँसे को बदलती हैं तो विचार की तरंगें भी भौतिक हैं नही तो पाँसे को नहीं बदल सकती।

१३. विचार-शक्ति की एक प्रयोगात्मक जाँच

आप छोटा सा प्रयोग करें तो आपके ख्याल में आ जाय। चूँकि विज्ञान की बात आप करते हैं इसलिए मैं प्रयोग की बात करता हूँ। एक गिलास में पानी भरकर रख लें और ग्लेसरीन या कोई भी चिकना पदार्थ उस ग्लास के पानी के ऊपर थोड़ा सा डाल दें जिससे कि उसकी एक पतली हल्की फिल्म पानी के ग्लास के ऊपर फैल जाय। एक छोटी आलपीन बिलकुल पतली जो फिल्म पर तैर सके, उसको उसके ऊपर छोड़ दें। फिर कमरे को सब तरफ से बन्द करके दोनों हाथों से जमीन पर टेक कर आँखें उस छोटी सी आलपीन पर गड़ा लें। पाँच मिनट चुपचाप बैठे रहें आँखें गड़ाये हुए। फिर उस आलपीन से कहें कि बायें घूम जाओ तो आलपीन बायें घूमेगी। फिर कहें दायें घूम जाओ तो दायें घूमेगी। कहें कि रुक जाओ, तो रुकेगी। कहें चलो, तो चलेगी। अगर आपका विचार एक आलपीन को बायें घुमा सकता है, दायें घुमा सकता है तो फिर एक पहाड़ को भी हिला सकता है। जरा लम्बी बात है बाकी फर्क नहीं रह गया, बुनियादी फर्क नही रह गया। आपकी सामर्थ्य अगर एक आलपीन को हिलाती है तो बुनियादी बात पूरी हो गयी है। अब यह दूसरी बात है कि पहाड़ बहुत बड़ा पड़ जाय और आप न हिला पायें लेकिन हिल सकता है पहाड़।

१४. वस्तुओं द्वारा विचार तरंगों का अवशोषण

हमारे विचार की तरंगें पदार्थ को छूती और रूपान्तरित करती हैं। ऐसे लोग हैं जिनको अगर आपके हाथ का रूमाल दिया जा सके तो आपके व्यक्तित्व

के सम्बन्ध में वे करीब करीब उतनी ही बातें बता देंगे जितना आपको देखकर बताया जा सकता था। क्योंकि **आपके हाथ का रूमाल आपके विचार के तरंगों को अवशोषित कर जाता है।** आपका गहना आपके तरंगों को अवशोषित कर जाता है। और मजा यह है कि वह इतनी सूक्ष्म तरंगें हैं कि एक रूमाल जो सिकन्दर के हाथ में रहा हो वह अभी भी सिकन्दर के व्यक्तित्व की खबर देता है। वह इतनी सूक्ष्म तरंगें हैं कि उनको फिर बाहर निकलने में करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। इसीलिए कब्रें हमने बनानी शुरू की हैं। समाधि बनानी शुरू की थीं।

१५. दिव्य व्यक्तियों की तरंगें हजारों वर्षों तक प्रभावशील

कल मैंने आपसे कहा था कि इस मुल्क में हम मरे हुए आदमी को तत्काल जला देते हैं लेकिन सन्यासी को नहीं जलाते। मरे हुए आदमी को इसलिए जला देते हैं कि उसकी आत्मा उसके आसपास न भटके। संन्यासी को इसलिए नहीं जलाते हैं कि उसकी आत्मा ने जिन्दा मे ही शरीर के आसपास भटकना बन्द कर दिया था। अब उसके शरीर से उसकी आत्मा को कोई खतरा नहीं है कि वह भटके। पर उसके शरीर को हम बचा लेना चाहते हैं। क्योंकि **जो आदमी तीस वर्ष तक पवित्रता के विचारों में जिया हो उसका शरीर हजारों लाखों वर्ष तक उस तरह की तरंगों को विकीर्ण करता रहेगा** और उसकी समाधि अर्थपूर्ण हो जायेगी। **उसकी समाधि के आसपास परिणाम होंगे।** वह शरीर तो मर गया है लेकिन वह शरीर इतने निकट रहा है उस आत्मा के कि जो भी विकीर्ण हो रहा था बहुत कुछ उसे वह अवशोषित कर गया।

विचार की अनन्त सम्भावनाएँ हैं, लेकिन हैं वे सब भौतिक ही हैं। इसलिए जब आप कुछ सोचते हैं तो बहुत ध्यान रखकर सोचना चाहिए क्योंकि उसकी तरंगें आप नहीं रहेंगे तब भी शेष रहेंगी। आपकी उम्र बहुत कम है लेकिन विचार इतना सूक्ष्म है कि उसकी उम्र बहुत ज्यादा है। इसलिए वैज्ञानिक तो अब इस ख्याल पर पहुंचे हैं कि अगर जीसस या कृष्ण जैसे लोग कभी हुए हैं तो आज नहीं कल हम उनकी विचार तरंग को पकड़ने मे समर्थ हो जायेंगे और यह तय हो सकेगा कि कृष्ण ने कभी गीता कही है कि नहीं कही है। **क्योंकि वे विचार तरंगें जो कृष्ण से निकली हैं वे आज भी लोक-लोकान्तर में किसी ग्रह, किसी उपग्रह के पास टकरा रही होंगी।** ऐसे ही जैसे हम एक कंकड़ समुद्र में फेकें तो जब कंकड़ गिरता है तो एक छोटा सा घेरा, एक छोटा सा वर्तुल समुद्र के पानी पर बनेगा। फिर कंकड़ तो डूब जायगा। कंकड़ की जिन्दगी पानी की सतह पर बहुत ज्यादा नहीं है। कंकड़ की जिन्दगी तो पानी को छुई नहीं कि गयी। लेकिन कंकड़ की चोट से जो तरंगें पैदा हुईं वह फैलनी शुरू हो जायेगीं, वह बढ़ती जायेंगी, अन्तहीन हैं उनका

बढ़ाव। आप की आंख से ओझल हो जायेंगी लेकिन न मालूम किन दूर तटों पर वह अभी भी बढ़ रही होंगी।

तो जो विचार कभी भी पैदा हुए हैं—बोले ही नही गये वरन् जो मन में भी पैदा हुए हैं, वे विचार भी दूर इस जगत के आकाश मे, किन्हीं किनारो पर अभी भी बढ़ते चले जा रहे हैं। उनको पकड़ा जा सकता है। किसी दिन अगर विज्ञान की गति तीव्र हो सकी और मनुष्य उनसे आगे निकल सकें तो उन्हें सुना जा सकता है। अब जैसे समझ लें कि दिल्ली से अगर एक रेडियो पर रेडियो वेव्ज (तरंगो) बम्बई के लिए खबर भेजती है तो उसी वक्त थोड़े ही खबर यहाँ आ जाती है। बीच में थोड़ा टाइम गैप (समय का अंतराल) है। क्योंकि ध्वनि की यात्रा में समय लगता है। दिल्ली मे तो वह ध्वनि मर चुकी होती है जब बम्बई आती है। वहाँ से तरंगें आगे निकल गयी होती हैं। दिल्ली में वह नही हैं। अब थोड़े ही क्षणो का फासला पड़ता है। लेकिन क्षण बीच मे गिरते हैं। अगर समझ लें कि न्यूयार्क से एक आदमी को टेलीविजन पर हम देख रहे है तो जब उसका चित्र न्यूयार्क में बनता है तभी हमे दिखायी नही पड़ता। उसके चित्र बनने मे और हम तक पहुँचने मे समय का फासला है। यह भी हो सकता है कि इस समय वह आदमी मर गया हो लेकिन हमे वह आदमी जिन्दा दिखायी पड़ेगा।

हमारी पृथ्वी से भी विचार की, घटनाओ की तरंगें अनन्त लोकों तक जा रही है। अगर हम उन तरंगो के आगे जाकर कभी भी उनको पकड़ सकें तो वे अभी भी जिन्दा है एक अर्थों मे। आदमी मर जाता है, विचार इतने जल्दी नही मरते। **आदमी की उम्र बहुत कम है, विचार की उम्र बहुत ज्यादा है।** और यह भी ख्याल रहे कि जो विचार हम प्रकट नही करते उसकी उम्र और ज्यादा है, उस विचार से जो हम प्रकट कर देते हैं। क्योंकि वह और ज्यादा सूक्ष्म है। जितना सूक्ष्म उतनी ज्यादा उम्र, जितना स्थूल उतनी कम उम्र।

१६. विशिष्ट संगीत-ध्वनियों के विशिष्ट प्रभाव

ये जो विचार हैं ये बहुत तरह से जिसको हम भौतिक जगत कह रहे हैं उसको प्रभावित कर रहे हैं। हमें ख्याल में नही है। अभी तो वनस्पति शास्त्री इस अनुभव पर पहुँच गया है कि **अगर एक पौधे के पास प्रीतिपूर्ण संगीत बजाया जाय तो पौधा जल्दी फूल देना शुरू कर देता है, जल्दी उसमें फूल आ जाते हैं, बे-मौसम।** अगर उसके पास कुरूप, भद्दा और कोलाहलपूर्ण (न्वाइजी) संगीत बजाया जाय तो मौसम भी निकल जाता और उसके फूल नहीं आते, फल नहीं आते। वह तरंगें उसको छू रही हैं, उसको स्पर्श कर रही हैं। **गायें ज्यादा दूध दे देती हैं खास संगीत के प्रभाव में।** खास संगीत के प्रभाव में दूध देना बन्द ही कर देती हैं। विचार इससे भी ज्यादा सूक्ष्म हवा पैदा कर रहा है। उसके चारों

तरफ तरंगों की एक छाया है और हर आदमी अपने विचार का एक जगत अपने साथ लेकर चल रहा है जिससे पूरे वक्त तरंगें विकीर्ण हो रही हैं।

१७. निद्राकाल में मनोमय जगत की वैज्ञानिक जाँच

ये जो विकीर्ण होती हुई किरणें हैं ये भी भौतिक हैं। हम जिसे मन कहते हैं वह भौतिक का ही विचार सीढ़ियाँ छलाँग लगाया हुआ सूक्ष्म रूप है। इसलिए कठिनाई नहीं है कि विज्ञान वहाँ पहुँच जाय। क्योंकि उसकी तरंगों को पकड़ा, जाँचा जा सकता है। जैसे कल तक हमे पता नहीं चलता था कि आदमी रात में कितना गहरा सो रहा है, उसका मनस कितनी गहराई में है। अब पता चल जाता है, अब हमारे पास यन्त्र है। जैसा कि हृदय की धड़कन नापने के यन्त्र हैं उसी तरह नींद की धड़कन नापने के यन्त्र तैयार हो गये हैं। रात भर आपकी खोपड़ी पर एक यन्त्र लगा रहता है। वह पूरे वक्त ग्राफ बनता रहता है कि कितनी गहराई में हो। वह ग्राफ बनता रहता है पूरे वक्त कि आदमी इस वक्त ज्यादा गहराई में है, इस वक्त कम गहराई में है। वह पूरे वक्त रात भर का ग्राफ देता है कि यह आदमी कितनी देर सोया, कितने देर सपने देखे, कितनी देर अच्छे सपने देखे, कितनी देर बुरे सपने देखे, कितनी देर इसके सपने सेक्सुअल (कामुक) थे, कितनी देर सेक्सुअल (कामुक) नहीं थे। वह सब ग्राफ पर दे देता है। अमरीका में इस समय कोई दस लेबोरेटरी (प्रयोगशालाएँ) हैं जिनमें हजारों लोग रात में पैसा देकर सुलाये जा रहे हैं जिनकी नींद पर बड़ा परीक्षण चल रहा है। यह बड़ी हैरानी की बात है कि नींद से हम अपरिचित रह जायें। क्योंकि आदमी की तिहाई जिन्दगी नींद में खत्म होती है। छोटी-मोटी घटना नहीं है नींद। साठ साल आदमी जीता है तो बीस साल तो सोता है। तो बीस साल के इस बड़े हिस्से को अनजाना छोड़ दें तो आदमी का एक तिहाई अपरिचित रह जायगा। और मजा यह है कि यह जो एक तिहाई, बीस वर्ष है अगर यह न सोये तो बाकी चालीस वर्ष बच नहीं सकते। इसलिए नींद बहुत मूलभूत (बेसिक) आवश्यकता है। बिना जगे सो सकता है आदमी साठ वर्ष। लेकिन, बिना सोये जग नहीं सकता। तो ज्यादा गहरे में और बुनियादी बात तो नींद है।

तो नींद में हम कहीं और होते हैं, हमारा मनस कहीं और होता है। लेकिन, उस मनस को नापा जा सकता है। अब उसके पता लगने शुरू हो गये हैं कि वह कितने गहरी नींद में है। ढेर लोग हैं जो कहते हैं कि हमें सपना नहीं आता। वह सरासर झूठ कहते हैं। उनको पता नहीं है इसलिए झूठ कहते हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसको सपना न आता हो। बहुत मुश्किल मामला है। रात भर सपना आता है। और आपको भी ख्याल होगा कि कभी एक-आध आता है वह गलत ख्याल है आपका। मशीन कहती है रात भर आता है, लेकिन

स्मृति नहीं रह जाती। आप नींद में होते हैं इसलिए याद नहीं बनती उसकी। आपको सपना जो याद रहता है वह आखिरी रहता है जब नींद टूटने के करीब होती है तब आपकी स्मृति बन जाती है। लौटते हैं नींद से जब आप, तो आखिरी दरवाजे पर नींद के जो सपना रहता है वह आपके ख्याल में रह जाता है। क्योंकि उसकी धीमी-सी भनक आपके जागने तक चली आती है। लेकिन गहरे नींद में जो सपना रहता है उसका आपको पता नहीं लगता।

अब गहरी नींद में आदमी क्या सपना देखता है यह जाँच करना जरूरी हो गया है। क्योंकि वह जो सपने बहुत गहराई मे देखता है वह उसका असली व्यक्तित्व होगा। असल में जागकर तो हम नकली होते हैं। आमतौर से हम सोचते हैं कि सपने में क्या रखा है लेकिन सपना हमारी ज्यादा सच्चाई को बताता है बजाय हमारे जागरण के। क्योंकि जागरण में हम झूठे आवरण ओढ़ लेते हैं। अगर किसी दिन हम आदमी की खोपड़ी में एक खिड़की (विन्डो) बना सकें और उसके सब सपने देख सकें तो आदमी की आखिरी स्वतन्त्रता चली जायेगी। सपना भी नहीं देख सकेगा। हिम्मत के साथ कि जो देखना हो वह देख ले। उसमें भी डरा रहेगा। वहाँ भी नैतिकता, नियम, कानून और पुलिस वाला प्रविष्ट हो जायगा। वह कहेगा यह सपना जरा ठीक नही देख रहे हो, यह सपना अनैतिक है। अभी वह स्वतन्त्रता है। आदमी नींद में अभी स्वतन्त्र है लेकिन बहुत दिन नहीं रह जायगा। क्योंकि अब नींद पर एन्क्रोचमेंट (अनधिकार-हस्तक्षेप) शुरू हो गया है। जैसे नीद में शिक्षा देनी, रूस मे उन्होंने शुरू की है।

१८. निद्रा में बच्चों को शिक्षित करना

स्लीप टीचिंग (निद्रा में शिक्षा) पर बड़ा काम चल रहा है। क्योंकि जागने में बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, बच्चा रेसिस्ट (विरोध) करता है। एक लड़के को कुछ सिखाना बड़ा उपद्रव का काम है क्योंकि वह बुनियादी रूप से इन्कार करता है सीखने से। असल मे हर आदमी सीखने से इन्कार करता है क्योंकि हर आदमी बुनियादी रूप से यह मानकर चलता है कि मैं जानता ही हूँ। बच्चा भी इन्कार करता है कि क्या सिखा रहे हैं! वह हजार तरह से इन्कार करता है। हमको प्रलोभन देने पड़ते हैं। परीक्षाओं के पुरस्कार देने पड़ते है। गोल्ड-मेडल (स्वर्ण-पदक) बाँटने पड़ते है। प्रतियोगिता पैदा करनी पड़ती है। बुखार जगाना पड़ता है, किसी तरह दौड़-दौड़कर हम उसे सिखा पाते हैं। लेकिन इस कान्फ्लिक्ट (द्वन्द्व) में बहुत समय व्यय होता है। जो बात दो घण्टे में बच्चा सीख सकता है उसमें दो महीने लग जाते हैं। तो वह स्लीप टीचिंग (निद्रा में शिक्षा) की फिक्र पर चले गये और बात साफ हो गयी है कि नींद में पढ़ाया जा सकता है और बड़ी अच्छी तरह से। क्योंकि नींद में रेसिस्टेंस

(विरोध) नहीं है । एक टेप लगा रहता है वह रात भर भीतर नींद में भीतर डालता रहता है जो भी कहना है। दो और दो-चार होते हैं, दो और दो चार होते हैं । वह दोहरता रहेगा । सुबह उस बच्चे से कहिए दो-दो कितने होते हैं तो वह कहेगा चार होते हैं ।

अब यह जो नींद में विचार डाला जा सका है यह विचार तरंगों से भी डाला जा सकता है, क्योंकि विचार की तरंगें हमारे ख्याल में आ गयी हैं । जैसे कि हमें कल तक ख्याल नहीं था जैसा हम अब जानते हैं कि ग्रामोफोन का रेकार्ड है, उस रेकार्ड पर भाषा रेकार्ड नहीं है । उस रेकार्ड पर सिर्फ तरंगों के आघात रेकार्ड हैं और जब सूई उन तरंगों पर वापस दोहरती है तो वह उन्हीं तरंगों को फिर पैदा कर देती है, जिन तरंगों से वह आघात पड़े हैं । वहाँ कोई भाषा नहीं है उस रेकार्ड पर ।

जैसा मैंने कहा कि अगर आप ओम् बोलेंगे तो रेत में एक पैटर्न (ढाँचा) बनता है । वह पैटर्न (ढाँचा) ओम् नहीं है लेकिन अगर आपको पता है कि ओम् बोलने से यह पैटर्न (ढाँचा) बनता है तो किसी दिन इस पैटर्न (ढाँचे) को ओम् मे कनवर्ट (रूपान्तरित) किया जा सकता है । यह पैटर्न अब बना हो ऊपर तो इसके नीचे ओम् को पैदा किया जा सकेगा । क्योंकि यह पैटर्न उसी से बना है । ये दोनों एक चीजें हैं । हमने ग्रामोफोन रेकार्ड बना लिया है । उसमें वाणी नहीं है । उसमें सिर्फ वाणी से पड़े हुए आघात हैं । वह आघात फिर से सूई टक्कर खाकर फिर वाणी बन जाती है । **हम आज नहीं कल विचार के रेकार्ड बना सकेंगे ।** विचार के आघात पकड़े जाने लगे हैं तो रेकार्ड बनने में बहुत देर नहीं लगेंगे । और तब बड़ी अजीब बात हो जायेगी । तब यह सम्भव है कि आइन्स्टीन मर जाय लेकिन उसके विचार करने की पूरी प्रक्रिया मशीन में हो तो आइन्स्टीन अगर जिन्दा रहता तो आगे जो सोचता वह मशीन सोचकर बता सकेगी । क्योंकि उसके विचार के सारे के सारे आघात उस मशीन के पास रहेंगे । नींद पकड़ी जा सकी है, स्वप्न पकड़े जा सके हैं, बेहोशी पकड़ी जा सकी है और इस मन के साथ वैज्ञानिक रूप से क्या किया जाय वह भी पकड़ा जा सका है । इसलिए वह भी समझ लेना चाहिए ।

१९. मनोमय जगत में वैज्ञानिक हस्तक्षेप और व्यक्ति के शोषण की सम्भावनाएँ

जैसे कि एक आदमी क्रोध में होता है । पुराना हमारा हिसाब यही था कि हम उसको समझायें कि क्रोध मत करो, क्रोध करोगे तो नर्क जाओगे । इसके सिवाय कोई उपाय नहीं था । लेकिन वह आदमी अगर कहे कि हम नर्क जाने को राजी हैं तो हम असमर्थ हो जाते थे । तब उस आदमी के साथ हम कुछ भी

नहीं कर सकते थे। और वह आदमी कहे, हमे नर्क जाने में बहुत मजा आता है तो हमारी सारी नैतिकता एकदम व्यर्थ हो जाती थी। तो उस आदमी पर कोई वश ही नही था। वह तो नर्क से डरे तभी तक वश था। इसलिए दुनिया में जैसे ही नर्क का डर गया वैसे ही हमारी नैतिकता चली गयी। क्योंकि उससे कोई डर ही नही रहा। वे कहते हैं ठीक है। कहाँ है नर्क हम देखना चाहते हैं।

तो नैतिकता पूरी-की-पूरी खत्म हो गयी। क्योंकि वह जिस डर पर खड़ी थी वह चला गया। लेकिन विज्ञान कहता है, इसकी कोई जरूरत ही नही। विज्ञान ने अब दूसरे सूत्र खोजे हैं। वह सूत्र यह है कि क्रोध के लिए शरीर मे एक विशेष रासायनिक प्रक्रिया होनी जरूरी है। क्योंकि क्रोध एक भौतिक घटना है। और जब क्रोध होता है तब शरीर में खास तरह के रस पैदा होने जरूरी हैं। वह रस रोके जा सकते हैं। क्रोध को रोकने की क्या जरूरत है। अगर वह रस रोके जा सकते है तो आदमी क्रोध करने मे असमर्थ हो जायगा। हम १४ साल के लड़के को समझा रहे हैं, लड़की को समझा रहे है कि ब्रह्मचर्य धारण करो। वह धारण नहीं करते। उन्होने कभी नही किया। शिक्षा, समझाना-बुझाना कोई परिणाम नहीं लाता। विज्ञान कहता है अब इसकी फिक्र न करो क्योंकि कुछ ग्लैंड्स (ग्रन्थियाँ) है जिनसे सेक्स पैदा होता है। हम उन ग्लैण्ड्स को ही २५ साल तक रोके देते हैं बढ़ने से। तो सेक्स मेच्योरिटी (प्रौढ़ता) २५ साल मे आयेगी। आप ब्रह्मचर्य की चिन्ता मत करो।

खतरनाक है यह बात। क्योंकि मन जिस दिन पूरा-का-पूरा वैज्ञानिक पकड़ में आ जाय उस दिन हम उसका दुरुपयोग भी कर सकते है। क्योंकि विज्ञान कहता है कि जो आदमी रिबीलियस (विद्रोही) चित्त का है उस आदमी की रासायनिक (संरचना) कम्पोजीशन उस आदमी से अलग होता है जो आर्थोडाक्स (रूढ़िवादी) है। इस खोज की बड़ी खतरनाक सम्भावनाएँ हैं। क्योंकि अगर यह संरचना (कम्पोजीशन) हमें पता चल गया तो हम विद्रोही को विद्रोही होने से रोक सकते हैं, रूढ़िवादी को रूढ़िवादी होने से रोक सकते है। जेल मे किसी आदमी को मारने की जरूरत नहीं रह जायेगी। किसी को फाँसी की सजा देने की जरूरत नहीं रह जायेगी। क्योंकि जब हमें पक्का हो गया कि एक आदमी चोरी करता है उस चोरी के लिए यह रासायनिक तत्व अनिवार्य हैं, अन्यथा वह चोरी नही कर सकता। तो कोई जरूरत नहीं उसको जेल ले जाने की। उसको अस्पताल ले जाकर सर्जरी की जा सकती है। उसका विशेष रस बाहर किया जा सकता है या दूसरे रस डालकर उसके पहले रस को दबाया जा सकता है या एण्टीडोट (पूर्व प्रभाव को मिटाने वाला रसायन) दिया जा सकता है। यह सारा काम चल रहा है।

ये काम बताते है कि चौथे शरीर तक प्रवेश में कोई कठिनाई नहीं रह गयी है। कठिनाई सिर्फ एक रह गयी है कि बहुत बड़े विज्ञान का हिस्सा युद्ध के मामले में उलझा हुआ है। इसलिए उस पर पूरे काम नहीं हो पाते हैं। वह गौण रह जाता है। लेकिन फिर भी बहुत काम चल रहा है। बहुत अनूठे काम चल रहे हैं।

२०. आध्यात्मिक अनुभवों के रासायनिक प्रतिरूप

अब जैसे कि अडुअल्स हक्सले का दावा यह है कि कबीर को जो हुआ या मीरां को जो हुआ, वह इंजेक्शन से हो सकता है। यह एक बड़ा संघातक दावा है, लेकिन थोड़ी इसमें सचाई है। महावीर एक महीना उपवास करते हैं और एक महीना उपवास करने से उनका मन शान्त हो जाता है। उपवास एक भौतिक घटना है। और भौतिक घटना से अगर मन शान्त होता है तो मन भी भौतिक है। उपवास से होता क्या है? एक महीने के उपवास से शरीर की पूरी रासायनिक व्यवस्था बदल जाती है। और तो कुछ होता नहीं। जो भोजन मिलना चाहिए वह नहीं मिल पाता। जो तत्व शरीर मे इकट्ठे हो गये थे रिजर्वायर (संग्राहक प्रणाली) में, वह सब खत्म हो जाते हैं। चर्बी कम हो जाती है। कुछ जरूरी तत्त्व बचा लिये जाते हैं। गैरजरूरी नष्ट हो जाते हैं। तो शरीर का पूरा-का-पूरा जो रासायनिक इन्तजाम था महीने भर के पहले, वह बदल जाता है। विज्ञान कहता है कि एक महीना परेशान होने की क्या जरूरत है। यह रासायनिक इन्तजाम उसी अनुपात में अभी बदला जा सकता है, इसी वक्त। अगर यह रासायनिक इन्तजाम अभी बदल जायगा तो महीने भर बाद महावीर को जो शान्ति अनुभव हुई वह आपको अभी हो जायेगी। उसकी बुनियादी तो वह नहीं है।

अब जैसे मैं ध्यान में कहता हूँ, आप जोर से श्वास लें। मगर आधा घण्टा तीव्र श्वास लेने से होने वाला क्या है? सिर्फ आपके ऑक्सीजन और कार्बन का अनुपात बदल जायगा। लेकिन यह ऑक्सीजन का अनुपात तो बाहर से बदला जा सकता है। इसमें आधा घण्टा आपसे मेहनत करवानी जरूरी नहीं है। यह तो इस कमरे के ऑक्सीजन का अनुपात बदलकर भी किया जा सकता है कि यहाँ बैठे हुए सारे लोग शान्त हो जायें, प्रफुल्लित हो जायें।

तो विज्ञान चौथे शरीर पर तो कई तरफ से प्रवेश कर गया है और रोज प्रवेश करता जा रहा है। अब जैसे कि तुम्हें ध्यान में अनुभूतियाँ होंगी, सुगन्ध आयेगी, रंग दिखायी पड़ेंगे, यह सब ध्यान में बिना जाये भी हो सकता है अब। क्योंकि विज्ञान ने यह सब पता लगा लिया है ठीक से कि जब तुम्हें भीतर रंग दिखायी पड़ते हैं तो तुम्हारे मस्तिष्क का कौन-सा हिस्सा सक्रिय होता है। उसके सक्रिय होने की तरंगें कितनी होती हैं। समझ लें कि मेरे मस्तिष्क का पीछे का हिस्सा

जब सक्रिय होता है तब मुझे भीतर रंग दिखायी पड़ते हैं, सुन्दर रंग दिखायी पड़ते हैं। यह जाँच बता देती है कि इस वक्त जब तुम्हें रंग दिखायी पड़ रहे हों तो तुम्हारे मस्तिष्क का कौन-सा हिस्सा तरंगित है और उसमें कितने तरंग लम्बान (वेव-लेंग्थ) की तरंगें उठ रही हैं। अब कोई जरूरत नहीं है आपको ध्यान में जाने की। उस हिस्से पर उतनी तरंगें बिजली से पैदा कर दी जायें तो आपको रंग दिखायी पड़ने शुरू हो जाते हैं। यह सब पैरेलल (समानान्तर) घटनाएँ हैं। क्योंकि इस तरफ का छोर पकड़ लिया जाय तो दूसरी तरफ का छोर तत्काल होना शुरू हो जाता है। इसके खतरे हैं।

२१. बूढ़ों को मरने न देने की भी एक समस्या

कोई भी नयी खोज मनुष्य के जितने भीतर जाती है उतने खतरे बढते चले जाते हैं। जैसे कि अब हम आदमी की जितनी उम्र बढ़ानी है, बढ़ा सकते हैं। अब उम्र कोई प्रकृति की बात नहीं है, विज्ञान के हाथ में आ गयी है। तो यूरोप और अमरीका में हजारों ऐसे बूढ़े हैं जो यह माँग कर रहे हैं अथनासिया (स्वेच्छा-मृत्यु) की कि हमें स्व-मरण का अधिकार चाहिए। क्योंकि उनको लटका दिया गया है मृत्यु-शैय्या पर। उनको ऑक्सीजन दी जा रही है और अति लम्बे काल तक उनको जिन्दा रखा जा सकता है। अब एक ९० साल का बूढ़ा है, वह कह रहा है,हमें मरना है। लेकिन डाक्टर कहता है हम मरने में सहयोगी नहीं हो सकते, क्योंकि कानून उसको हत्या कहता है। यदि उसका बेटा भी मन में सोचता हो कि पिता तकलीफ भोग रहा है तब भी खुले नहीं कह सकता है कि पिता को मार डाला जाय। और पिता को अब जिलाया जा सकता है। और मशीनें भी पैदा हो गयी है जो उसको जिलाये रखेंगी। अब वह बिलकुल मरा हुआ जिन्दा रहेगा। अब यह एक लिहाज से खतरनाक है।

हमारा पुराना जो कानून है,वह तब का है जब हम आदमी को जिन्दा नहीं रख सकते थे, सिर्फ मार सकते थे। अब कानून बदलने की जरूरत है। क्योंकि अब हम जिन्दा भी रख सकते हैं। और इतनी सीमा तक जिन्दा रख सकते हैं कि वह आदमी चिल्लाकर कहने लगे कि मेरे साथ अत्याचार हो रहा है, हिंसा हो रही है। अब मैं जिन्दा नहीं रहना चाहता हूँ। यह मेरे साथ क्या हो रहा है ? यानी कभी हम एक आदमी को सजा देते थे कि इस आदमी ने गुनाह किया है, इसकी हत्या कर दो। कोई आश्चर्य नहीं, पचास साल बाद हम एक आदमी को सजा दें कि इस आदमी ने गुनाह किया है, इसको मरने मत दो। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। और यह पहली सजा से ज्यादा बड़ी सजा सिद्ध होगी। क्योंकि मर जाना एक क्षण का मामला है और जिन्दा रहना सदियों का हो सकता है। तो जब भी कोई नयी खोज मनुष्य के भीतरी जगत् में होती है तो उसके दोहरे परिणाम होंगे।

इधर नुकसान का भी खतरा है, फायदा भी हो सकता है। ताकत जब भी आती है तो दोतरफा होती है।

२२. बीसवीं सदी के अन्त तक विज्ञान का चौथे मनस-शरीर पर अधिकार

अब मनुष्य के चौथे शरीर पर विज्ञान चला गया है, जा रहा है। और आने वाले पचास वर्ष में—पचास वर्ष नहीं कहने चाहिए, आने वाले तीस वर्षों में वह गहरे प्रवेश कर जायगा। क्योंकि यह बात शायद ख्याल में न हो कि हर सदी के अन्त पर उस सदी ने जो कुछ किया है वह क्लाइमेक्स (चरम-स्थिति) पर पहुँच जाता है। तो हर सदी अपने काम को अपने अन्त तक पूरा करती है। इस सदी ने बहुत-से काम उठा रखे हैं जो कि तीस साल में पूरे होंगे। उनमें मनुष्य के मनस-शरीर पर प्रवेश बहुत बड़ा काम है जो पूरा हो जायगा।

२३. पाँचवें आत्म-शरीर में भावागत बाधाओं का अतिक्रमण

पाँचवाँ आत्म-शरीर चौथे का भी सूक्ष्मतम रूप है। विचार की ही तरंगें नहीं हैं, मेरे होने की भी तरंगें हैं। अगर मैं बिलकुल ही चुप बैठा हूँ और मेरे भीतर कोई भी विचार नहीं चल रहा है, तब भी मेरा होना भी तरंगित हो रहा है। तुम अगर मेरे पास आओ, मेरे पास कोई विचार नहीं है तब भी तुम मेरी तरंगों के क्षेत्र में आओगे और मजा यह है कि मेरे विचार की तरंगें उतनी मजबूत नहीं हैं, उतनी (पेनिट्रेटिव) भेदक नहीं हैं, जितनी सिर्फ मेरे होने की तरंगें हैं। इसलिए जिस आदमी की निर्विचार स्थिति बन जाती है वह बहुत प्रभावी हो जाता है। उसके प्रभाव का हिसाब लगाना ही मुश्किल है। क्योंकि उसके भीतर से अस्तित्व की तरंगें उठनी शुरू हो जाती हैं। वह आदमी की जानकारी में सबसे सूक्ष्म तरंगें हैं, आत्म-शरीर की।

इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ है, जैसे महावीर के सम्बन्ध में जो बात है वह सही है कि वह बोले नहीं, बहुत कम बोले, शायद नहीं ही बोले। वह सिर्फ बैठे रहेंगे। लोग उनके पास आकर बैठ जायेंगे, समझ लेंगे और चले जायेंगे। यह उस दिन सम्भव था। यह आज बहुत कठिन हो गया है। आज इसलिए कठिन हो गया है कि अस्तित्व की, आत्म-शरीर की जो गहरी तरंगें हैं वह आप भी तभी अनुभव कर पायेंगे जब आप भी निर्विचार को झेलने को तैयार हैं, नहीं तो आप अनुभव नहीं कर पायेंगे। आप अगर बहुत कोलाहल (न्वाएज) से भरे हैं अपने विचारों को, तो फिर बहुत सूक्ष्म तरंगें चूक जायेंगी। आपके आरपार निकल जायेंगी, आप उनको पकड़ नहीं पायेंगे। अस्तित्व की तरंगें अगर पकड़ में आने लगें और दोनों तरफ अगर निर्विचार हो तो बोलने की कोई जरूरत ही

नहीं है। तब हम ज्यादा गहरे में कोई बात कह पाते हैं। और वह बात सीधी हृदय में पहुँच जाती है। उसमें तुम व्याख्या भी नहीं करते। व्याख्या का उपाय भी नहीं होता। उसमें डावांडोल भी नहीं होते कि ऐसा होगा कि नहीं होगा। वह तो सीधा तुम्हारा अस्तित्व जानता है कि हो गया है।

इस पाँचवें शरीर की तरंगें जरूरी नहीं हैं कि आदमी को ही मिलें। इसलिए महावीर के जीवन की एक और अद्‌भुत घटना है। उनकी सभा में जानवर भी रहते हैं। इसको जैन साधु नहीं समझा पाते अब तक कि क्या मामला है। वे समझा भी नहीं पायेंगे। जानवर आदमी की भाषा को नहीं समझ सकता है। लेकिन बीइंग की, होने की भाषा को पूरी तरह समझता है। उसमें कोई फर्क नहीं है। अगर मैं निर्विचार होकर एक बिल्ली के पास बैठा हूँ तो बिल्ली तो निर्विचार है। तुमसे तो मुझे बात ही करनी पड़ेगी। क्योंकि तुम्हें बिल्ली के निर्विचार तक ले आना भी एक लम्बी यात्रा है। अगर आत्म-शरीर से तरंगें निकल रही हों तो उसको पशु भी समझ सकते हैं, पौधे भी समझ सकते हैं, पत्थर भी समझ सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। इस शरीर तक भी प्रवेश हो जायगा, पर चौथे शरीर के बाद ही हो सकेगा। और चौथे में प्रवेश हो गया है, उसके द्वार कई जगह से खोल दिये गये हैं। तो आत्म-स्थिति को तो विज्ञान बहुत जल्दी से स्वीकार कर लेगा। बाद में जरा कठिनाई है।

२४. पाँचवें आत्म-शरीर तक विज्ञान की पहुँच

इसलिए मैंने कहा कि पाँचवें शरीर तक चीजें बड़ी वैज्ञानिक ढंग से साफ हो सकती हैं। बाद में कठिनाई होनी शुरू हो जाती है। उसके कारण हैं। क्योंकि विज्ञान को अगर ठीक से हम समझें तो वह किसी एक दिशा में विशेषज्ञता (स्पेशलाइजेशन) है, चुनाव है। इसलिए विज्ञान उतना ही गहरा होता चला जाता है जितना वह कम-से-कम चीज के सम्बन्ध में ज्यादा-से-ज्यादा जानने लगता है। (टु नो एबाउट दि लिटल एण्ड टु नो मोर) दोहरा काम है उसका। ज्यादा जानता है लेकिन और छोटी चीज के सम्बन्ध में, और छोटी चीज के सम्बन्ध में। चीज छोटी करता जाता है और ज्ञान को बढ़ाता जाता है।

पहले का डाक्टर जो था, वह पूरे शरीर के सम्बन्ध में जानता था। अब कोई भी डाक्टर पूरे शरीर के सम्बन्ध में नहीं जानता है। और अगर वैसा कोई पुराना डाक्टर बच गया है तो वह सिर्फ रेलिक्स (ऐतिहासिक-नमूना) है। वह चला जायगा, बच नहीं सकता। वह पुराना खण्डहर है उसको विदा हो जाना पड़ेगा। क्योंकि वह डाक्टर अब भरोसे के योग्य नहीं रह गया है। वह इतनी ज्यादा चीजों के सम्बन्ध में जानता है कि अब ज्यादा नहीं जान सकता, कम ही जान सकता है। अब आँख का डाक्टर अलग है, कान का डाक्टर अलग है।

वह ज्यादा भरोसे के योग्य है। क्योंकि वह इतनी छोटी चीज के सम्बन्ध में जानता है कि ज्यादा जान सकता है। आज तो आँख पर ही इतना साहित्य है कि एक आदमी अपनी पूरी जिन्दगी ही जानने में लगाये तो पूरा साहित्य नहीं जान सकता। इसलिए आज नहीं कल बायीं आँख और दायीं आँख का डाक्टर अलग हो सकता है। बाँटना पड़ सकता है। कल हम आँख में भी विभाग कर सकते हैं कि कोई सफेद हिस्से के सम्बन्ध में जानता है, कोई काले हिस्से के सम्बन्ध में। क्योंकि वे भी बहुत बड़ी घटनाएँ हैं। और उनमें भी बड़ा विस्तार है। और विज्ञान का मतलब ही यह है कि वह रोज छोटा करता चला जाता है अपना (ज्ञान-क्षेत्र केन्द्र बिन्दु) फोकस। इसलिए विज्ञान बहुत जान पाता है। उसका एक केन्द्र-बिन्दु (फोकस) होता है कम, इसलिए सघन (कन्सेन्ट्रेटेड) होता जाता है।

२५. छठवें ब्रह्म-शरीर और सातवें निर्वाण-शरीर के असीम रहस्य में विज्ञान का खो जाना।

तो पाँचवे शरीर तक मैं कहता हूँ विज्ञान का प्रवेश हो सकेगा। क्योंकि पाँचवें शरीर तक इण्डीवीजुअल (व्यक्ति) है। इसलिए फोकस में पकड़ में आ जाता है। छठवें से कास्मिक (ब्रह्म) है। वह फोकस में पकड़ में नहीं आता। छठवाँ जो है वह **कॉस्मिक बाडी (ब्रह्म-शरीर) है।** ब्रह्म-शरीर का मतलब है समग्रता (दि टोटल)। **वहाँ विज्ञान प्रवेश नहीं कर पायेगा।** क्योंकि विज्ञान छोटे, और छोटे, और छोटे पर जा सकता है। तो वह व्यक्ति तक पकड़ लेगा। व्यक्ति के बाद उसकी दिक्कत है। कास्मिक (ब्रह्म) को पकड़ने में उसकी दिक्कत है। **कॉस्मिक (ब्रह्म) को तो धर्म ही पकड़ेगा।**

इसलिए आत्मा तक विज्ञान को कठिनाई नहीं आयेगी, कठिनाई आयेगी परमात्मा पर। मैं नहीं समझ पाता कि किसी दिन सम्भव हो पायेगा कि विज्ञान ब्रह्म को पकड़ सके। क्योंकि उसे तभी पकड़ सकता है जब वह स्पेशलाइजेशन (विशेषज्ञता) छोड़े। और स्पेशलाइजेशन छोड़ा कि वह विज्ञान नहीं रह गया। तब वह वैसे ही ह्वेग और जनरलाइज्ड (अनिश्चित और अनुमानगत) हो जायगा जैसा धर्म है। इसलिए मैंने कहा कि पाँचवें तक विज्ञान के साथ सहयोग और यात्रा हो सकेगी। **छठवें पर वह खो जायेगा और सातवें पर तो बिलकुल ही नहीं जा सकता। क्योंकि विज्ञान की सारी खोज जीवन की खोज है।** असल में हमारे अस्तित्व का केन्द्र जीवनैषणा है, हम जीना ही चाहते हैं—कम बीमार, ज्यादा स्वस्थ, ज्यादा देर, ज्यादा सुख से, ज्यादा सुविधा से। विज्ञान की मूल प्रेरणा जीवन को गहरा, सुखद, सन्तुष्ट, सुखदान्त, स्वस्थ बनाने की है। और **सातवाँ शरीर जो है वह मृत्यु का अंगीकार है। वह महामृत्यु है।** वहाँ साधक जीवन की खोज के पार गया है। अब वह कहता है हम मृत्यु को भी जानना चाहते हैं।

हमने होना जान लिया, अब हम न होना भी जानना चाहते हैं। हमने बीइंग जान लिया, अब नान-बीइंग भी जानना चाहते हैं।

वहाँ विज्ञान का कोई अर्थ नहीं है। वैज्ञानिक तो वहाँ कहेगा, जैसे फ्रायड कहता है कि वह मृत्यु-कामना (डेथ विश) है। यह अच्छी बात नहीं है। यह स्युसाइडल (आत्मघाती) है। फ्रायड कहता है—निर्वाण, मोक्ष ये ठीक बातें नहीं हैं। यह आपके मरने की इच्छा के सबूत हैं। आप मरना चाहते हैं। आप बीमार हैं। वह इसीलिए कह रहा है, क्योंकि वैज्ञानिक मरने की इच्छा को इनकार ही करेगा। क्योंकि विज्ञान खड़ा ही जीवन की इच्छा के विस्तार पर है। लेकिन जो आदमी जीना चाहता है वह स्वस्थ है। लेकिन एक घड़ी ऐसी आती है जब मरना चाहना भी उतना ही स्वस्थ हो जाता है। हाँ, बीच में कोई मरना चाहे तो अस्वस्थ है। लेकिन एक घड़ी जीवन की ऐसी आ जाती है जब कोई मरना भी चाहता है।

कोई कह सकता है कि जागना तो स्वस्थ है और सोना स्वस्थ नहीं है। ऐसा हुआ जा रहा है कि हम रात का समय दिन को देते जा रहे हैं। पहले छह बजे रात हो जाती थी, अब दो बजे होने लगी है। रात का समय दिन को दिये जा रहे हैं और कुछ विचारक हैं जो कहते हैं कि किसी तरह आदमी को नींद से बचाया जा सके, तो उसकी जिन्दगी में बहुत समय बच जायगा। नींद की इच्छा ही क्यों ? इसको छोड़ ही दिया जाय किसी तरह से। लेकिन जैसे जागने का एक आनन्द है वैसे सोने का एक आनन्द है। और जैसे जागने की इच्छा भी स्वाभाविक और स्वस्थ है, ऐसे ही एक घड़ी सो जाने की इच्छा भी स्वस्थ और स्वाभाविक है। अगर कोई आदमी मरते दम तक भी जीने की आकांक्षा किये जाता है तो वह अस्वस्थ है। और अगर कोई आदमी जन्म से ही मरने की आकांक्षा करने लगता है तो वह भी अस्वस्थ है। एक बच्चा अगर मरने की आकांक्षा करता है तो वह बीमार है। उसका इलाज होना चाहिए। और अगर एक बूढ़ा भी जीना चाहता है तो वह बीमार है, उसका इलाज होना चाहिए।

२६. महाशून्य में परम विसर्जन—परम स्वास्थ्य है

जीवन और मृत्यु दो पैर हैं अस्तित्व के। आप एक को स्वीकार करते हैं तो लँगड़े ही होंगे। दूसरे को स्वीकार नहीं करेंगे तो लँगड़ापन कभी नहीं मिटेगा। दोनों पैर हैं—होना भी और न होना भी। और वही आदमी परम स्वस्थ है और दोनों को एक-सा आलिंगन कर लेता है, होने को भी और न होने को भी। जो कहता है होना भी जाना और अब न होना भी जान लें। उसे न होने में कोई भय नहीं है। सातवां शरीर तो सिर्फ उन्हीं साहसी लोगों के लिए है जिन्होंने जीवन जान लिया और अब जो मृत्यु भी जानना चाहते हैं। जो कहते हैं इसे भी खोजेंगे।

जो कहते हैं हम इसे भी जानेंगे। जो कहते हैं हम मिट जाने को भी जानना चाहते हैं। हम जानना चाहते हैं कि मिट जाना क्या है, यह खो जाना क्या है। यह 'न हो जाना' क्या है। जीने का रस देखा, अब मृत्यु का रस भी देखना है।

अब तुम्हें इस सम्बन्ध में यह भी जान लेना उचित होगा कि जो हमारी मृत्यु है, वह सातवें शरीर से ही आती है। साधारण मृत्यु भी हमारे सातवें शरीर से आती है। और जो हमारा जीवन है वह हमारे पहले शरीर से आता है। जन्म जो है वह भौतिक शरीर से शुरू होता है। जन्म का मतलब ही है भौतिक शरीर की शुरुआत। इसलिए माँ के पेट में पहले भौतिक शरीर निर्मित होता है। फिर और शरीर प्रवेश करते हैं। पहला शरीर हमारा जन्म की शुरुआत है। और अन्तिम शरीर जिसको निर्वाण-शरीर मैंने कहा, वहाँ से हमारी मृत्यु आती है। और जो इस भौतिक शरीर को जोर से पकड़ लेता है वह इसलिए मौत से बहुत डरता है। और जो मौत से डरता है वह सातवें शरीर को नहीं जान पायेगा कभी। इसलिए धीरे-धीरे भौतिक शरीर से पीछे हटते-हटते वह घड़ी आ जाती है जब हम मौत को भी अंगीकार कर लेते हैं। तभी हम जान पाते हैं। और जो मौत को जान लेता है वह परिपूर्ण अर्थों में मुक्त हो जाता है। क्योंकि तब जीवन और मृत्यु एक ही चीज के दो पहलू हो जाते हैं और वह दोनों के बाहर हो जाता है। सातवें शरीर तक विज्ञान कभी जायगा इसकी कोई आशा नहीं है। छठवें शरीर तक जा सकेगा, इसकी सम्भावना नहीं है।

२७. वैज्ञानिक-बुद्धि और धर्म-उपलब्धि का दुर्लभ संयोग तथा ज्ञान के नये शिखर

पाँचवें शरीर तक विज्ञान आ सकता है। क्योंकि चौथे के द्वार खुल गये हैं और पाँचवें पर जाने में कोई कठिनाई नहीं रह गयी है वस्तुतः। सिर्फ ऐसे लोगों की जरूरत है जिनके पास वैज्ञानिक बुद्धि हो और जिनके पास धार्मिक हृदय हो। वह अभी प्रवेश कर जाय। यह थोड़ा मुश्किल काम्बिनेशन (संयोग) है। क्योंकि वैज्ञानिक की जो ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) है वह उसे धार्मिक होने से कई दिशाओं से रोक देती है। और धार्मिक की जो जो ट्रेनिंग है उसे वैज्ञानिक होने से कई दिशाओं से रोक देती है। तो इन दोनों ट्रेनिंग का कहीं ओवर लैपिंग (मिलन) नहीं हो पाता है। यह बड़ी कठिनाई है। कभी ऐसा होता है। जब भी ऐसा होता है, तब दुनिया में ज्ञान का एक नया शिखर पैदा हो जाता है। जैसे पतंजलि है वह आदमी वैज्ञानिक बुद्धि का है और धर्म में प्रवेश कर गया है। तो उसने धर्म को (योग को) एक चोटी पर पहुँचा दिया जिसके बाद फिर उस चोटी को पार करना अब तक सम्भव नहीं हुआ। एक ऊँचाई पर बात चली गयी। पतंजलि को मरे बहुत वक्त हो गया है। बहुत काम हो सकता था। लेकिन पतंजलि

जैसा आदमी नहीं मिल सका, जिसके पास एक वैज्ञानिक की बुद्धि थी और जिसके पास एक धार्मिक साधना का जगत् था। एक ऐसे शिखर पर बात पहुँच गयी कि उसके बाद फिर योग का कोई शिखर दूसरा उससे ऊँचा नहीं उठा सका। अरविन्द ने बहुत कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हो सके।

अरविन्द के पास भी एक वैज्ञानिक की बुद्धि थी और शायद पतंजलि से ज्यादा थी। क्योंकि सारा शिक्षण उनका पश्चिम में हुआ। अरविन्द का शिक्षण बड़ा महत्त्वपूर्ण है। पिता ने अरविन्द को पाँच-छः वर्ष की बहुत छोटी उम्र में हिन्दुस्तान से बाहर भेज दिया और सख्त मनाही की कि अब इसे हिन्दुस्तान तब तक वापस नहीं लौट आना है जब तक कि यह पूरा मेच्योर (प्रौढ़) न हो जाय। यह हालत आ गयी कि पिता के मरने का वक्त आ गया और लोगों ने चाहा कि अरविन्द को वापस भेज दें लेकिन उन्होंने कहा कि मैं मर जाऊँ, यह बेहतर है। लेकिन लड़का पूरी तरह पश्चिम को पीकर लौटे। पूरब की छाया भी न पड़ जाय उस पर। उसे खबर भी न दी जाय कि मैं मर गया। हिम्मतवर बाप था। तो अरविन्द पूरे पश्चिम को पीकर लौटे। अगर हिन्दुस्तान में कोई आदमी ठीक अर्थों में वेस्टर्न (पाश्चात्य का) था तो वह अरविन्द थे। अपनी मातृ-भाषा उनको लौट कर सीखनी पड़ी। वह तो सब भूल गये थे।

तो विज्ञान तो पूरा हो गया इस आदमी में, लेकिन धर्म पीछे से आरोपित था। वह बहुत गहरा नहीं जा सका। धर्म जो था वह बाद में ऊपर से प्लान्टेड (रोपित) था। वह बहुत गहरा नहीं जा सका, नहीं तो पतंजलि से ऊँचे शिखर अरविन्द छू सकते थे। वह नहीं हो सका। वह ट्रेनिंग जो थी पश्चिम की वह बहुत गहरे अर्थों में बाधा बन गयी। और बाधा इस तरह से बन गयी कि जैसा वैज्ञानिक सोचता है वह उसी तरह से सोचने में लग गये। तो डार्विन के सारे एवोल्यूशन (विकासवाद) को धर्म में ले आये। पश्चिम से जो जो ख्याल वे लाये थे उन सबको धर्म में प्रवेश कर दिया, लेकिन धर्म का उनके पास कोई ख्याल नहीं था— वह जिसे विज्ञान में प्रवेश करा सकें। इसलिए विज्ञान की बड़ी काया, बड़ा वॉल्यूमनस (विराट्काय) साहित्य उन्होंने रच डाला। लेकिन उसमें धर्म नहीं है। धर्म उसमें बहुत ऊपरी है।

जब भी कभी ऐसा हुआ है कि वैज्ञानिक बुद्धि और धार्मिक बुद्धि में कहीं कोई तालमेल हो गया है तो बड़ा शिखर छुआ जा सका है। ऐसा पूरब में हो सकेगा इसकी सम्भावना कम होती जा रही है। क्योंकि पूरब के पास धर्म भी खो गया है और विज्ञान तो है ही नहीं। पश्चिम में ही यह हो सके, इसकी सम्भावना ज्यादा है। क्योंकि विज्ञान अतिशय हो गया है और जब भी कोई अतिशय हो जाती है चीज तो पैंडुलम दूसरी तरफ झूलना शुरू हो जाता है। तो पश्चिम का जो बहुत

बुद्धिमान् वर्ग है वह जिस रस से अब गीता को पढ़ता है, उस रस से हिन्दुस्तान में अब कोई नहीं पढ़ता।

जब पहली दफा शॉपनहार ने गीता पढ़ी तो सिर पर रख कर वह नाचने लगा। नाचता हुआ घर के बाहर आ गया। लोगों ने कहा, क्या हो गया। पागल हो गये हो? उसने कहा, ग्रन्थ पढ़ने योग्य नहीं, सिर पर रख कर नाचने योग्य है। मुझे पता ही नहीं था कि ऐसी बात कहने वाले लोग भी हो गये हैं। यह क्या कह दिया। यह भाषा में आ सकता है! यह शब्द में बँध सकता है!! मैं तो सोचता था बँध ही नहीं सकता। यह तो बँध गया। यह तो कुछ बात कह दी गयी। अब हिन्दुस्तान में गीता सिर पर रख कर नाचने वाला आदमी नहीं मिलेगा। हाँ, बहुत लोग मिलेंगे जो गीता की बैल गाड़ी बनाकर और उस पर सवार होकर चल रहे हैं। इसका कोई अर्थ नहीं होता है।

पर इस सदी के पूरे होते-होते एक बड़ा शिखर छू लिया जा सकेगा। क्योंकि जब जरूरत होती है तो हजार-हजार कारण सारे जगत् में सक्रिय हो जाते हैं। आइन्स्टीन मरते-मरते धर्मिक आदमी होकर मरा है, जीते-जी वैज्ञानिक था, मरते-मरते धार्मिक आदमी होकर मरा। इसलिए जो दूसरे बहुत अतिशय वैज्ञानिक हैं वे कहते हैं आइन्स्टीन की आखिरी बातो को गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए। उसका दिमाग खराब हो गया था, क्योंकि आखिर-आखिर मे उसने जो कहा है वह बहुत अद्‌भुत है। आइंस्टीन आखिरी वक्त कहते मरा है कि मैं सोचता था जगत् को जान लूँगा, लेकिन जितना जाना उतना पाया कि जानना असम्भव है। जानने को अनन्त शेष है। और मैं सोचता था कि एक दिन विज्ञान-जगत् के रहस्य को तोड़ कर गणित का सवाल बना दूंगा, मिस्ट्री (रहस्य) खतम हो जायेगी, लेकिन गणित का सवाल बड़ा होता चला गया। जगत् की मिस्ट्री तो कम नही हुई, गणित का सवाल ही और बड़ी मिस्ट्री हो गया। अब उसको भी हल करना मुश्किल है।

२८. आधुनिक विज्ञान की छलांग—धर्म में

पश्चिम में और भी चोटी के दो चार वैज्ञानिक धर्म की परिधि के करीब घूम रहे है। विज्ञान में वैसी सम्भावनाएँ पैदा हो गयी है। क्योंकि वह तीसरे शरीर के करीब पहुँच रहा है, दूसरे को वह पार कर गया है, वैसे ही तीसरे के करीब पहुँच रहा है धर्म की प्रतिध्वनियाँ अनिवार्य हैं। क्योंकि अब वह अनसर्टेन्टी के, प्रोबेब-लिटी के, अनिश्चय के, अननोन (अज्ञात) के जगत् में खुद ही प्रवेश कर रहा है। अब उसको कही-न-कही स्वीकार करना पड़ेगा कि अज्ञात है। अब उसको स्वीकार करना पड़ेगा, जो दिखायी पड़ता है उससे अतिरिक्त भी है। जो नहीं दिखायी पड़ता है वह भी है। जो नही सुनायी पड़ता है वह भी है। क्योंकि आज

से सौ ही साल पहले हम कह रहे थे कि जो नहीं सुनायी पड़ता है वह नहीं है, जो नहीं दिखायी पड़ता है वह नहीं है, जो नहीं स्पर्श में आता है वह नहीं है। अब विज्ञान कहता है नहीं, इतना है कि स्पर्श में तो बहुत कम आता है। स्पर्श की तो छोटी सीमा है, अस्पर्श का बड़ा विस्तार है। सुनायी तो बहुत कम पड़ता है। न सुनायी पड़ने वाला अनन्त है। दिखायी तो छोटा-सा पड़ता है, न दिखायी पड़ने वाला अदृश्य, अछोर है। असल में अब हमारी आँख जितना पकड़ती है, बहुत छोटा-सा पकड़ती है।

एक खास वेवलेंग्थ को हमारी आँख पकड़ती है और एक खास वेवलेंग्थ (तरंग-लम्बान) पर हमारा कान सुनता है और उसके नीचे करोड़ों वेवलेंग्थ्स हैं और उसके ऊपर करोड़ों वेवलेंग्थ्स हैं। कभी ऐसी भूल हो जाती है। एक आदमी पहली दफा आल्प्स पर या कहीं किसी पहाड़ पर चढ़ता था और गिर पड़ा। गिरने से उसके कान को चोट लगी और वह जिस गाँव का रहने वाला था उसके रेडियो-स्टेशन को उसने पकड़ना शुरू कर दिया कान से। अब वह अस्पताल में भर्ती था तो वह बहुत मुश्किल में पड़ गया। वहाँ कोई ऑन ऑफ (चालू-बन्द) करने का उपाय नहीं रहा कान में अब। पहले तो वह समझा नहीं कि क्या हो रहा है। मेरा दिमाग खराब हो रहा है या पता नहीं कि क्या हो रहा है। लेकिन धीरे-धीरे चीजें साफ होने लगीं और उसने डाक्टर से शिकायत की। उसने कहा, रेडियो अस्पताल में कहाँ बजता है? डाक्टर ने कहा कि तुमको वहम हो गया होगा। तब उसने कहा कि मुझे यह-यह समाचार सुनायी पड़ रहे हैं। डाक्टर भागा। बाहर गया। आफिस में आकर रेडियो बजाया उस वक्त इसके गाँव के स्टेशन पर समाचार सुनायी पड़ रहे थे और जो उसने सुनाया था, वह बताया जा रहा था। फिर तो तालमेल बैठ गया। पाया गया कि उसका कान सक्रिय हो गया है। उसका कान जो है उसकी वेवलेंग्थ (तरंग लम्बान) बदल गयी चोट लगने से। आज नहीं कल रेडियो ऐसा अलग हो यह गलत है। आज नहीं कल यह इन्तजाम हो जायगा कि हम कान की तरंग लम्बान में सीधे भीतर से बदलाहट कर सकें। कान में एक मशीन ऊपर से लगा कर तो रेडियो तरंगों को उस स्तर पर सुन सकते हैं।

करोड़ों आवाजें हमारे आसपास से गुजर रही हैं। छोटी-मोटी आवाजें नहीं, क्योंकि हमें अपने कान के नीचे की आवाजें भी सुनायी नहीं पड़तीं। उससे बड़ी आवाज भी सुनायी नहीं पड़ती। अगर एक तारा टूटता है तो उसकी भयंकर गर्जना की आवाज हमारे चारों तरफ से निकलती है। लेकिन हम सुन नहीं पाते, नहीं तो हम बहरे हो जायें। बड़ी-बड़ी आवाजें निकल रही हैं। बड़ी-छोटी आवाजें निकल रही हैं। वह हमारे पकड़ में नहीं है। बस एक छोटा-सा दायरा

है हमारा। जैसे कि हमारे शरीर की गर्मी का एक दायरा है ९८ डिग्री से ११० डिग्री के बीच हम जीते हैं। इधर ९८ से नीचे गिरना शुरू हुए कि मरने के करीब पहुँचे। उधर ११० के पार गये कि मरे। यह बस बारह डिग्री की हमारी कुल दुनिया है। गर्मी बहुत है। आगे ज्यादा भी बहुत है। पीछे कम भी बहुत है। उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी तरह हर चीज की हमारी एक सीमा है, पर उस सीमा के बाहर जो है उसके बाबत भी जाना जा सकता है। क्योंकि वह भी है। विज्ञान ने उसकी स्वीकृति शुरू कर दी है। जब स्वीकृति होती है तब धीरे से खोज शुरू हो जाती है कि वह कहाँ है, कैसी है, क्या है। उस सबको जाना जा सकेगा। उस सबको पहचाना जा सकेगा। और इसलिए मैंने कहा था कि पाँचवें शरीर तक विज्ञान का प्रवेश सम्भव हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : नानबीइंग (अनस्तित्व) को कौन जानता है ? किस आधार पर जाना जाता है ?

आचार्यश्री : यह सवाल ही गलत है। यह सवाल न उठेगा, न बन सकता है। क्योंकि जब हम कहते हैं, 'न होने को कौन जानता है' तो हमने मान लिया कि अभी कोई बचा है। फिर 'न-होना' नहीं हुआ।

२९. निर्वाण शरीर के अनुभव की अभिव्यक्ति कैसे होती है, कौन करता है ?

प्रश्नकर्ता : उसकी रिपोर्टिंग (घोषणा, अभिव्यक्ति) कैसे होगी ?

आचार्यश्री : कोई रिपोर्टिंग नहीं होती। ऐसा होता है जैसे रात में तुम सोते हो। जब तक तुम जागे होते हो तभी तक का तुम्हें पता होता है। जिस वक्त तुम सो जाते हो उस वक्त तुम्हें पता नहीं होता है। जागते तक का पता होता है तो रिपोर्टिंग जागने की करते हो तुम। लेकिन आमतौर से कहते हम उल्टा हैं। वह रिपोर्टिंग गलत है। तुम कहते हो मैं आठ बजे सो गया। तुम्हें कहना चाहिए मैं आठ बजे तक जगता था। क्योंकि सोने की तुम रिपोर्ट नहीं कर सकते। क्योंकि सो गये तो रिपोर्ट कौन करेगा ? दूसरी तरफ से रिपोर्ट होती है कि मैं आठ बजे तक जागता था यानी आठ बजे तक मुझे पता था कि अभी मैं जाग रहा हूँ। लेकिन आठ बजे के बाद मुझे पता नहीं है। फिर मैं सुबह छह बजे उठ आया तब मुझे पता है। बीच में एक गैप छूट गया। आठ बजे और छह बजे के बीच का। उस वक्त मैं सोया था। यह उदाहरण के लिए तुमसे कह रहा हूँ। तुम्हें छठवें शरीर तक का पता होगा। सातवें शरीर में तुम डुबकी लगाकर, छठवें में तुम वापस आओगे तब तुम कहोगे कि अरे मैं कहीं और चला गया था। नानबीइंग (अनस्तित्व) हो गया था। यह जो रिपोर्टिंग है यह रिपोर्टिंग छठवें शरीर तक है। इसलिए सातवें शरीर के बाबत कुछ लोगों ने

बात ही नहीं की। नहीं करने का भी कारण था। क्योंकि जिसको नहीं कहा जा सकता उसको, कहना ही क्यों।

अभी एक आदमी था विटगेंस्टीन। उसने कुछ बड़ी कीमती बातें लिखीं। उसमें एक बात उसकी यह भी है कि 'दैट व्हिच कैन नॉट बी सेड, मस्ट नॉट बी सेड।' (जो नहीं कहा जा सकता उसको कहना ही नहीं चाहिए।) क्योंकि बहुत लोगों ने उसको कह दिया, हमको और दिक्कत में डाल दिया। क्योंकि साथ उनकी शर्त यह है कि नहीं कही जा सकती है और फिर कहा भी है तो वह कहना जो है वह निगेटिव रिपोर्टिंग है। वह आखिरी पड़ाव से की गयी खबर है कि यहाँ तक मैं था, इसके बाद मैं नहीं था। क्योंकि इसके बाद मैं न जानने वाला था। न जानने को बचा था। न कोई रिपोर्ट लाने वाला था, न कोई रिपोर्ट की जगह थी। मगर एक सीमा के बाद यह हुआ था, उस सीमा के पहले मैं था। बस तो वह सीमा रेखा छठवें शरीर की सीमा-रेखा है।

३०. अगम, अगोचर, अवर्णनीय निर्वाण

छठवें शरीर तक वेद, उपनिषद्, गीता, बाइबिल जाते हैं। असल में जो अगोचर और अवर्णनीय है वह सातवाँ है। छठवें तक कोई अड़चन नहीं है। पाँचवें तक तो बड़ी सरलता है। सातवें पर बचता नहीं है कोई जानने वाला। जानने को भी कुछ नहीं बचता। असल में जिसको हम बचना कहें वही नहीं बचता। यह जो खाली अन्तराल है, यह जो शून्य है इसको हम कहेंगे तो हमारे सब शब्द निषेधात्मक होंगे। इसलिए वेद-उपनिषद् कहेंगे—नेति, नेति। वह कहेंगे यह मत पूछो वहाँ क्या था। यह हम बता सकते हैं कि क्या-क्या नहीं था। यह भी नहीं था वह भी नहीं था। (दिस वाज नॉट, दैट वाज नॉट)। और यह मत पूछो कि क्या था, वह हम नहीं कहेंगे। हम इतना ही बता सकते हैं कि यह भी नहीं था। पत्नी भी नहीं थी, पिता भी नहीं था, पदार्थ भी नहीं था, अनुभव भी नहीं था, ज्ञान भी नहीं था, मैं भी नहीं था, अहंकार भी नहीं था, जगत् भी नहीं था, परमात्मा भी नहीं था, कुछ भी नहीं था। क्योंकि यह हमारे छठवें की सीमा-रेखा बनती है। क्या था? तो एकदम चुप हो जायेंगे। उसको नहीं कहा जा सकेगा।

३१. सातवें निर्वाण-शरीर की अभिव्यक्ति के लिए बुद्ध का सर्वाधिक प्रयास

इसलिए ब्रह्म तक खबर दे दी गयी है। इसलिए जिन लोगों ने ब्रह्म के बाद की खबर दी हैं, खबर तो निषेधात्मक होगी, इसलिए वह हमको निगेटिव लगेगी। जैसे बुद्ध। बुद्ध ने बड़ी मेहनत की उसके बाबत खबर देने की। इसलिए सब

नकार है, इसलिए सब निषेध है, इसलिए हिन्दुस्तान के मन को बात नहीं पकड़ी। ब्रह्म-ज्ञान हिन्दुस्तान को पकड़ता था। वहाँ तक पोजिटिव (विधेय) चलता था। ब्रह्म ऐसा है, आनन्द है, चित् है, सत् है यहाँ तक चलता है। यहाँ तक पोजिटिव एसर्शन (विधेयात्मक घोषणा) हो पाता है। हम कह सकते हैं यह है, यह है, यह है। बुद्ध ने जो नहीं है उसकी बात कही है। शायद इस अकेले आदमी ने सातवें के बाबत बात करने की बड़ी मेहनत की। इसलिए बुद्ध की जड़ें उखड़ गयीं इस मुल्क से। क्योंकि वह जिस जगह की बात कर रहे थे वहाँ जड़ें नहीं हैं। जिस जगह की बात कर रहे थे वहाँ के लिए कोई आकार नहीं है, रूप नहीं है। हम सब सुनते थे। हमे लगा कि बेकार है। वहाँ जाकर भी क्या करेंगे जहाँ कुछ भी नहीं है। हमें तो कुछ ऐसी जगह बताइये जहाँ हम तो होंगे कम-से-कम। बुद्ध ने कहा, तुम तो होगे ही नही। तो हमें लगा कि इस खतरे में क्यों पड़ना। हम तो अपने को बचाना चाहते हैं आखिर तक।

बुद्ध और महावीर दोनों एक समय के थे, समकालीन थे। लेकिन महावीर की बात लोगों को ज्यादा समझ में आयी। क्योंकि महावीर ने पाँचवें के आगे बात ही नहीं की। छठवे की भी बात नही की। क्योंकि महावीर के पास एक वैज्ञानिक चित्त था और उनको छठवाँ भी लगा कि वह भी शब्द वहाँ डाँवाडोल, संदिग्ध हो जाते हैं। पाँचवे तक शब्द बिलकुल थिर चलता है और एकदम वैज्ञानिक रिपोर्टिंग सम्भव है कि हम कह सकते हैं कि ऐसा है, ऐसा है। क्योंकि पाँचवें तक हमारा जो अनुभव है उससे तालमेल खाती हुई चीजें मिल जाती हैं।

समझ लें कि एक महासागर में एक छोटा-सा द्वीप है। उस द्वीप पर एक ही तरह के फूल खिलते हैं। छोटा द्वीप है। पाँच-पचास लोग इस द्वीप पर रहते हैं। वे कभी द्वीप के बाहर नहीं गये हैं। वहाँ से एक यात्री जहाज से निकल रहा है और किसी व्यक्ति ने एक द्वीप निवासी को अपने जहाज पर ले लिया। उसे अपने देश ले आता है। वह यहाँ हजारों तरह के फूल देखता है। फूल का मतलब उसके लिए एक ही फूल था। फूल का मतलब वही फूल था जो उसके द्वीप पर होता था। पहली दफा फूल के मतलब का विस्तार होना शुरू हो गया। फूल का मतलब वही नहीं था जो था। अब उसे पता चलता है कि फूल तो हजारों हैं। वह कमल देखता है, गुलाब देखता है, चम्पा देखता है, चमेली देखता है। अब वह बड़ी मुश्किल मे पड़ जाता है कि मैं जाकर लोगों को कैसे समझाऊँ कि फूल का मतलब यही फूल नहीं होता है। फूल के नाम होते हैं, उसके द्वीप पर नाम नहीं होंगे। क्योंकि जहाँ एक होता है वहाँ नाम नहीं होता, वहाँ फूल ही नाम होगा। वह काफी है। गुलाब का फूल, चम्पा का फूल कहने की कोई जरूरत नहीं है। अब वह कहेगा कि मैं उनको कैसे समझाऊँ कि चम्पा क्या है। वह

कहेंगे फूल ही है न ! तो फूल तो साफ है उनके सामने । अब वह आदमी लौटता है । अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया है । फिर भी कुछ उपाय हैं । क्योंकि एक फूल तो कम-से-कम उस द्वीप पर है । फूल तो है कम-से-कम । वह बता सकता है कि यह लाल रंग का है। सफेद रंग का भी फूल होता है। उसको यह नाम कहते हैं । यह छोटा फूल है, बहुत बड़ा फूल होता है उसको कमल कहते हैं । फिर भी उस द्वीप के निवासियों को वह थोड़ा-बहुत कम्युनिकेट (सम्प्रेषित, अभिव्यक्त) कर पायेगा । क्योंकि एक फूल उनकी भाषा में है और दूसरे फूलों का भी थोड़ा इशारा किया जा सकता है ।

लेकिन समझ लें कि वह आदमी चाँद पर चला जाय, वह आदमी जहाज पर बैठकर किसी द्वीप पर न आये, बल्कि एक अन्तरिक्ष यात्री उसको चाँद पर ले जाये जहाँ फूल है ही नहीं, जहाँ पौधे नहीं हैं, जहाँ हवा का आयतन अलग है, दबाव अलग है और वह अपने द्वीप पर वापस लौटे और उस द्वीप के लोग पूछें कि तुम क्या देखकर आये, चाँद पर क्या पाया तो खबर देनी और मुश्किल हो जायेगी । क्योंकि कोई तालमेल नहीं बैठता कि वह कैसे खबर दे, क्या कहे कि वहाँ क्या देखा । उसकी भाषा में उसे कोई शब्द न मिलें ।

ठीक ऐसी हालत है । पाँचवें तक हमारी जो भाषा है उससे हमें शब्द मिल जाते हैं । पर वे शब्द ऐसे ही होते हैं कि हजार फूल और एक फूल का फर्क होता है । छठवें से भाषा गड़बड़ होनी शुरू हो जाती है । छठवें से हम ऐसी जगह पहुँच जाते हैं जहाँ एक और अनेक का भी फर्क नही है और मुश्किल शुरू हो जाती है । फिर भी निषेध से थोड़ा-बहुत काम चलाया जा सकता है या टोटैलिटी (समग्रता) की धारणा से थोड़ा-बहुत काम चलाया जा सकता है । हम कह सकते हैं वहाँ कोई सीमा नहीं है, असीम है । सीमाएँ हम जानते हैं, असीम हम नहीं जानते । तो सीमा के आधार पर हम कह सकते हैं कि वहाँ सीमाएँ नहीं हैं, असीम है वहाँ । तो भी थोड़ी धारणा मिलेगी, हालांकि पक्की नहीं मिलेगी । हमें शक तो होगा कि हम समझ गये लेकिन हम समझेंगे नहीं ।

इसलिए बड़ी गड़बड़ होती है । हमें लगता है कि हम समझ गये । ठीक तो कह रहे हैं कि सीमाएँ वहाँ नहीं हैं, लेकिन सीमाएँ न होने का क्या मतलब होता है ? हमारा सारा अनुभव सीमा का है । यह वैसा ही समझना है जैसे उस द्वीप के आदमी कहें कि अच्छा हम समझ गये, फूल ही न । तो वह आदमी कहेगा—नहीं नहीं, उस फूल को मत समझ लेना । क्योंकि उससे कोई मतलब नहीं है । हम बहुत दूसरी बात कर रहे हैं । ऐसा फूल तो वहाँ होता ही नहीं, वह कहेगा । तो वह लोग कहेंगे कि फिर उनको फूल किसलिए कहते हो जब ऐसा फूल नहीं होता । फूल तो यही है । हमको भी शक होता है कि हम समझ गये । कहते हैं असीम

है परमात्मा। हम कहते हैं, समझ गये; लेकिन हमारा सारा अनुभव सीमा का है। समझे हम कुछ भी नहीं। सिर्फ सीमा शब्द को समझने की वजह से उसमें 'अ' लगाने से हमको लगता है कि सीमा वहाँ नहीं होगी। हम समझ गये। लेकिन 'सीमा नहीं होगी' इसको जब कन्सीव (धारणा) करने बैठेंगे कि कहाँ होगा ऐसा जहाँ सीमा नहीं होगी, तब आप घबड़ा जायेंगे। क्योंकि आप कितना ही सोचें, सीमा रहेगी। आप और बढ़ जायें, और बढ़ जायें, अरब-खरब, संख्या टूट जाय, नील और प्रकाश वर्ष समाप्त हो जायें जहाँ भी आप रुकेंगे, फौरन सीमा खड़ी हो जायेगी।

असीम का मतलब ज्यादा-से-ज्यादा हमारे मन मे इतना ही हो सकता है कि जिसकी सीमा बहुत दूर है। इतनी दूर है कि हमारी पकड़ में नहीं आती। लेकिन होगी तो। चूक गये तब। नहीं बात पकड़ मे आयी। इसलिए छठवें तक बात कही जायेगी। लोग समझेंगे, समझ गये। लेकिन समझेंगे नहीं। सातवें की बात तो इतनी भी नहीं समझेंगे कि समझ गये। सातवें की बात का तो कोई सवाल ही नहीं है। वह तो साफ ही कह देंगे क्या एबसर्ड (अनर्गल, अर्थहीन) बातें कर रहे हो, यह क्या कह रहे हो। इसलिए सातवें के लिए फिर हमने 'एबसर्ड' शब्द खोजा जिनका कोई अर्थ नहीं होता।

३२. शब्दातीत, अर्थातीत सत्य का प्रतीक—ओम् (ॐ)

जैसे ओम्। इसका कोई अर्थ नहीं होता। यह अर्थहीन शब्द है। इसका हमने सातवें शरीर के लिए प्रयोग किया है। छठवें तक हमने बात कही। और जब कोई जिद्दी सातवें के बाबत पूछने लगा तो हमने कहा ओम्। इसलिए सारे शास्त्र को लिखने के बाद आखिर में लिखते हैं 'ओम् शान्ति'। 'ओम् शान्ति' का मतलब आप समझते हैं? सातवाँ समाप्त। अब इसके आगे नहीं है बात। सातवाँ आया कि शास्त्र समाप्त। (द लेवन्थ, द एण्ड)। वह दोनों एक ही मतलब रखते हैं। इसलिए हर शास्त्र के पीछे हम इति नहीं लिखते, 'ओम् शान्तिः' लिख देते हैं। वह ओम् सूचक है सातवें का, कि बस अब कृपा करो। इसके आगे बातचीत नहीं चलेगी। अब शान्त हो जाओ। हमने एक एबसर्ड (असंगत) शब्द खोजा। उसका कोई अर्थ नहीं है। उसका कोई मतलब नहीं होता है। मतलब होता हो तो वह बेकार हो गया। क्योंकि हमने उस दुनिया के लिए खोजा जहाँ सब मतलब खत्म हो जाते हैं। वह गैर-मतलब का शब्द है। इसलिए दुनिया की किसी भाषा में वैसा शब्द नहीं है। प्रयोग किये गये हैं। जैसे 'अमीन'। पर वह शान्ति का मतलब है उसका। प्रयोग किये गये हैं, लेकिन ओम् जैसा शब्द नहीं है। ईसाई प्रार्थना करेगा, आखिर में कहेगा 'अमीन'। वह यही कह रहा है बस खत्म, शान्ति इसके बाद। अब शब्द नहीं। लेकिन ओम जैसा शब्द नहीं है। उसका

कोई अनुवाद नहीं हो सकता है। वह हमने सातवें के लिए प्रतीक चुन लिया था।

इसलिए मन्दिरों में उसे खोजा था, सातवें की खबर देने के लिए कि छठवें तक मत रुक जाना। वह ओम् बनाते है। राम और कृष्ण को उसके बीच में खड़ा कर देते हैं। ओम् उनसे बहुत बड़ा है। कृष्ण उसमें से झाँकते हैं, लेकिन कृष्ण कुछ भी नहीं हैं। ओम् बहुत बड़ा है। उसमें से सब झाँकता है। और सब उसी में खो जाता है। इसलिए ओम् से कीमत हमने किसी और चीज को कभी ज्यादा नहीं दी है। वह पवित्रतम है। पवित्रतम (होलिनेस) इन अर्थों मे है कि वह अन्तिम है, उस पार (बियाण्ड) जहाँ सब खो जाता है, वहाँ वह है।

तो सातवें की रिपोर्टिंग की बात नहीं होती है। हाँ, इसी तरह नकार की खबरें दी जा सकती हैं। यह नही होगा, यह नहीं होगा। लेकिन यह भी छठवें तक ही सार्थक है। सातवें के सम्बन्ध में इसलिए बहुत लोग चुप ही रह गये। या जिन्होंने कहा वे कह कर बड़ी झंझट मे पड़े। और बार-बार कहते हुए उनको कहना पड़ा कि यह कहा नहीं जा सकता। उनको बार-बार दोहराना पड़ा कि हम कह तो जरूर रहे हैं, लेकिन यह कहा नहीं जा सकता। तब हम पूछते हैं उनसे कि बड़ी मुश्किल है। जब नहीं कहा जा सकता है तो आप कहें ही मत। फिर वे कहते है वह है तो जरूर और उस जैसी कोई चीज नहीं है जो कहने योग्य हो। लेकिन उस जैसी कोई चीज भी नहीं है जो कहने में न आती हो। कहने योग्य तो बहुत है, खबर देने योग्य है बहुत, रिपोर्टेबल (सन्देश-योग्य) वही है कि उसकी कोई खबर दे। लेकिन कठिनाई भी यही है कि उसकी कोई खबर नही हो सकती है। उसे जाना जा सकता है, कहा नहीं जा सकता।

और इसलिए उस तरफ से आकर जो लोग गूंगे की तरह खड़े हो जाते है हमारे बीच मे, जो बड़े मुखर थे, जिनके पास बड़ी वाणी थी, जिनके पास बड़े शब्द की सामर्थ्य थी जो सब कह पाते थे। जब वे भी अचानक गूंगे की तरह खड़े हो जाते हैं तब उनका गूंगापन कुछ कहता है। उनकी गूंगी आँखें कुछ कहती हैं। जैसे तुम पूछते हो, वैसे बुद्ध ने नियम बना रखा था कि वह कहते हैं, यह पूछो ही मत। यह पूछने योग्य ही नहीं है। वह न जानने योग्य है। वह कहते हैं यह अव्याख्येय है, इसकी व्याख्या मत करो आप। मुझसे गलत काम मत करवाओ।

लाओत्से कहता है मुझसे कहो ही मत कि मैं लिखूं। क्योंकि जो भी मैं लिखूंगा वह गलत हो जायगा। जो मुझे लिखना है वह मैं लिख ही न पाऊँगा। और जो मुझे नहीं लिखना है उसको मैं लिख सकता हूँ। लेकिन उससे मतलब क्या है। तो जिन्दगी भर चलता रहा—नहीं लिखा, नहीं लिखा। आखिर में मुल्क ने परेशान किया तो छोटी-सी किताब लिखी। पर उसने पहले ही लिख दिया कि

सत्य को कहा कि वह झूठ हो जाता है। पर यह सातवें सत्य की बात है। सभी सत्यों की बात नहीं है। छठवें तक कहने से झूठ नहीं हो जाता। छठवें तक कहने से संदिग्ध होगा। पाँचवें तक कहने से बिलकुल सुनिश्चित होगा। सातवें पर कहने से झूठ हो जायगा। जहाँ हम ही समाप्त हो जाते हैं, वहाँ हमारी वाणी और हमारी भाषा कैसे बचेगी ? वह भी समाप्त हो जाती है।

३३. अद्भुत और दुर्लभ खोज—ओम् (ॐ)

प्रश्नकर्ता : ओम् को प्रतीक क्यों चुना गया ? उसकी क्या-क्या विशेषताएँ हैं ?

आचार्यश्री : ओम् के चुनने के दो कारण हैं। एक तो यह कि एक ऐसे शब्द की तलाश थी जिसका अर्थ न हो। जिसका अर्थ न लगा पाओ। क्योंकि अगर तुम अर्थ लगा लो तो वह पाँचवें के शरीर के तल का हो जायगा। एक ऐसा शब्द चाहिए था जो एक अर्थ में मीनिंगलेस (निरर्थक) हो। हमारे सब शब्द मीनिंग-फुल (अर्थयुक्त) हैं। शब्द बनाते ही हम इसलिए हैं कि उसमें अर्थ होना चाहिए। अगर अर्थ न हो तो शब्द की जरूरत ही क्या है ? उसे हम बोलने के लिए बनाते हैं और बोलने का प्रयोजन ही यह है कि मैं तुम्हें कुछ समझा पाऊँ। मैं जब शब्द बोलूँ तो तुम्हारे पास कोई अर्थ का इशारा हो पाये। जब लोग सातवें से लौटें या सातवें को जाना तो उनको लगा कि इसके लिए कोई भी शब्द बनायेंगे, और उसमें अगर अर्थ होगा तो वह पाँचवें शरीर के पहले का हो जायगा। तत्काल। तो उसका भाषा-कोश में अर्थ लिख दिया जायगा। लोग पढ़ लेंगे और समझ लेंगे। लेकिन सातवें का तो कोई अर्थ नहीं हो सकता। या तो कहो मीनिंग-लेस (अर्थहीन) या कहो बियॉन्ड मीनिंग (अर्थातीत)। दोनों एक ही बात है।

तो उस अर्थातीत के लिए, जहाँ सब अर्थ खो गये हैं, कोई अर्थ ही नहीं बचा है, कैसा शब्द खोजें और कैसे खोजें और शब्द को कैसे बनायें। तो शब्द को बनाने में बड़े विज्ञान का प्रयोग किया गया। वह शब्द बनाया बहुत ही कल्पनाशील और बड़े व्हिजन (अतीन्द्रिय-दर्शन) और बड़ी दूर-दृष्टि से वह शब्द बनाया गया। क्योंकि बनाया जाना था एक रूट, एक मौलिक शब्द जिसे मूल आधार पर खड़ा करना था। तो कैसे इस शब्द को खोजें जिसमें कि कोई अर्थ न हो और किस प्रकार से खोजें कि वह गहरे अर्थ में मूल आधार का प्रतीक भी हो जाय।

हमारी भाषा की मूल ध्वनि है वह तीन हैं—ए, यू, एम—अ, ऊ, म। हमारा सारा-का-सारा शब्दों का विस्तार इन तीन ध्वनियों का विस्तार है। रूट ध्वनियाँ तीन हैं। अ, ऊ, म। अ, ऊ और म में कोई अर्थ नहीं है। अर्थ तो इनके सम्बन्धों से तय होगा। अ जब शब्द बन जायगा तो अर्थपूर्ण हो जायगा। म जब कोई शब्द बन जायगा तो अर्थपूर्ण हो जायगा। अभी अर्थहीन है। अ, ऊ, म इनका

कोई अर्थ नहीं है। और ये तीन मूल हैं। फिर हमारी सारी वाणी का विस्तार इन तीन का ही फैलाव है, इन तीन का ही जोड़ है।

तो इन तीन मूल ध्वनियों को पकड़ लिया गया है। अ, ऊ, म तीनों के जोड़ से ओम् बना दिया। तो ओम् लिखा जा सकता था, लेकिन लिखने से फिर शक पैदा होता कि इसमें कोई अर्थ होगा। क्योंकि फिर वह शब्द बन जाता 'अब', 'आज'। ऐसा ही ओम् में भी एक शब्द बन जाता। लोग उसका अर्थ निकाल लेते कि ओम् यानी वह जो सातवें पर है। तो फिर शब्द न बना, इसलिए हमने चित्र बनाया ओम् का। ताकि शब्द, अक्षर का उपयोग मत करो उसमें। अ, ऊ, म तो है वह, पर वह ध्वनि है। शब्द नहीं है। अक्षर नहीं है। इसलिए फिर ओम् का हमने चित्र (ॐ) बनाया। उसको पिक्चोरिअल (चित्रयुक्त) कर दिया ताकि उसको सीधा कोई भाषा-कोश में खोजने न चला जाय कि ओम् का क्या मतलब होता है। तो वह ओम् जो है आपकी आँखों में गड़ जाय और प्रश्नवाचक बन जाय कि क्या मतलब है उसका ?

जब भी कोई आदमी संस्कृत पढ़ता है या पुराने ग्रन्थ पढ़ने दुनिया के किसी कोने से आता है तो इस शब्द को बताना मुश्किल हो जाता है। और शब्द तो सब समझ में आ जाते हैं, क्योंकि सबका अनुवाद हो जाता है। वह बार-बार दिक्कत आती है कि ओम् यानी क्या। इसका मतलब क्या है ? और फिर इसको अक्षरों में क्यों नहीं लिखते हो। इसको ओम् लिख दो न। यह चित्र (ॐ) क्यों बनाया हुआ है ? उस चित्र (ॐ) को भी अगर तुम गौर से देखोगे तो उसके भी तीन हिस्से हैं और वह अ, ऊ और म के प्रतीक हैं।

वह पिक्चर (आकृति, चित्र) एक बड़ी खोज है। वह चित्र भी साधारण नहीं है। और उस चित्र की खोज भी चौथे शरीर में की गयी है। उस चित्र की खोज भी भौतिक शरीर से नहीं की गयी है। असल में जब चौथे शरीर में कोई आता है और निर्विचार हो जाता है, तब उसके भीतर अ, ऊ, म की ध्वनियाँ गूंजने लगती हैं और उन तीनों का जोड़ ओम् बनने लगता है। जब पूर्ण सन्नाटा हो जाता है विचार का, जब सब विचार खो जाते हैं, तब ओम् की ध्वनि गूंजने लगती है। वह जो ओम् की ध्वनि गूंजने लगती है, वह चौथे शरीर से उसको पकड़ा गया है। जहाँ विचार खोते हैं, भाषा खोती है, वहाँ जो शेष रह जाता है, वह ओम् की ध्वनि है।

३४. निर्विचार चेतना में ओम् का प्रकटीकरण

इधर से तो उस ध्वनि को पकड़ा गया और जैसा मैंने तुमसे कहा कि जिस तरह हर शब्द का एक पैटर्न (ढाँचा) है, जब हम एक शब्द का प्रयोग करते हैं तब हमारे भीतर एक पैटर्न (ढाँचा) बनना शुरू होता है। तो उस चौथे शरीर

में ओम् की ध्वनि गूंजती रहे, गूंजती रहे और अगर कोई एकाग्र (सजग) होकर इसको सुनता रहे तो इसका चित्र भी उभरना शुरू हो जाता है । इसी तरह सारे बीज मन्त्र खोजे गये । एक-एक चक्र पर जो ध्वनि होती है उस ध्वनि पर जब एकाग्र चित्त से साधक बैठता है, तो उस चक्र का बीज शब्द उसकी पकड़ में आ जाता है और वह बीज शब्द इस तरह निर्मित किये गये । ओम् जो है वह परम् बीज है । किसी एक चक्र का बीज नहीं है । वह सातवें का प्रतीक है या अनादि का प्रतीक है या अनन्त का प्रतीक है ।

३५. सार्वभौमिक (Universal) सत्य—ओम्

इस भाँति उस शब्द को खोजा गया और करोड़ों लोगों ने जब उसको टैली (मिलान) किया और स्वीकृति दी तब वह स्वीकृत हुआ । एकदम से स्वीकृत नहीं हो गया । सहज स्वीकृत नहीं कर लिया कि एक आदमी ने कह दिया । करोड़ों साधकों को जब वही प्रतिबार हो गया और जब वह सुनिश्चित हो गया तभी उसे चुना गया । इसलिए ओम् शब्द जो है, वह किसी धर्म की, किसी सम्प्रदाय की बपौती नहीं है । इसलिए बौद्ध भी उसका उपयोग करेंगे बिना फिक्र किये । जैन भी उसका उपयोग करेंगे बिना फिक्र किये । हिन्दुओं की बपौती नही है वह । उसका कारण है । उसका कारण यह है कि वह तो अनेक साधकों को, अनेक मार्गों से गये हुए साधकों को मिल गया है । दूसरे मुल्कों में भी जो चीजें हैं वे भी किसी अर्थ में उसके हिस्से हैं ।

अब जैसे कि अगर हम अरेबिक या लैटिन या रोमन—इनमें जो खोज साधक की रही है उसको भी पकड़ने जायें तो एक बड़े मजे की बात है कि 'म' तो जरूर मिलेगा उसमें । किसी में अ और म मिलेगा । 'म' तो अनिवार्य मिलेगा । उसका कारण है कि वह इतना सूक्ष्म हिस्सा है कि अक्सर आगे का हिस्सा छूट जाता है, पकड़ में नहीं आता और पीछे का हिस्सा सुनायी पड़ता है । तो ओम् (ॐ) की जब आवाज होनी शुरू होती है भीतर, तो 'म' सबसे ज्यादा सरलता से पकड़ में आता है । आगे का जो हिस्सा है वह दब जाता है पिछले 'म' से । ऐसे ही तुम अगर किसी बन्द भवन में बैठ कर ओम् की आवाज करो तो 'म' सबको दबा देगा । 'अ' और 'ऊ' को दबा देगा और 'म' एकदम व्यापक हो जायगा । इसलिए सब साधकों को ऐसा लगा कि 'म' तो है पक्का । आगे की कुछ भूल-चूक हो गयी है । सुनने के कुछ भेद हैं और इसलिए दुनिया के सभी मुल्क जहाँ भी यह खोजा गया, उसमें 'म' अनिवार्य है । जहाँ-जहाँ साधकों ने उस शरीर पर काम किया है वहाँ कुछ तो उनकी पकड़ में आया है । लेकिन जितना ज्यादा प्रयोग हो, जैसे कि एक प्रयोग को हजार वैज्ञानिक करें तो उसकी वेलिडिटी (Validity), प्रामाणिकता बढ़ जाती है ।

३६. लाखों साधकों की सम्मिलित खोज—ओम् (ॐ)

यह मुल्क एक लिहाज से सौभाग्यशाली है कि यहाँ हमने हजारों साल आत्मिक यात्रा पर व्यतीत किये हैं। इतना किसी मुल्क ने, इतने बड़े पैमाने पर, इतने अधिक लोगों ने कभी नहीं किया। अब बुद्ध के साथ दस-दस हजार साधक बैठे हैं, महावीर के साथ चालीस हजार भिक्षु और भिक्षुणियाँ थीं। छोटा-सा बिहार, वहाँ चालीस हजार आदमी एक साथ प्रयोग कर रहे हैं। दुनिया में कहीं ऐसा नहीं हुआ है। जीसस बेचारे बड़े अकेले हैं, मुहम्मद का फिजूल ही समय जाया हो रहा है नासमझों से लड़ने में। यहाँ एक स्थिति बन गयी थी कि यहाँ यह बात अब लड़ने की नहीं रह गयी थी, यहाँ चीजें साफ हो गयी थीं। अब महावीर बैठे हैं और चालीस हजार लोग एक साथ साधना कर रहे हैं। टेली (मिलान) करने की बड़ी सुविधा थी, चालीस हजार लोगों में क्या हो रहा है, चौथे शरीर पर क्या हो रहा है, तीसरे पर क्या हो रहा है, दूसरे पर क्या हो रहा है। एक भूल करेगा, दो भूल करेंगे, चालीस हजार तो भूल नहीं कर सकते। चालीस हजार अलग-अलग प्रयोग कर रहे हैं, फिर सब सोचा जा रहा है, जाँचा जा रहा है, पकड़ा जा रहा है। इसलिए इस मुल्क ने कुछ बहुत चीजें खोज लीं जो कि दूसरे मुल्क नहीं खोज पाये, क्योंकि वहाँ साधक सदा अकेला था। साधक इतने बड़े पैमाने पर कहीं भी नहीं था। जैसे आज पश्चिम बड़े पैमाने पर विज्ञान की खोज में लगा है, हजारों वैज्ञानिक लगे हैं, इस भाँति इस मुल्क में कभी अपने हजारों प्रतिभा-शाली लोग एक ही विज्ञान पर लगा दिये गये थे। तो वहाँ से जो वे लाये हैं वह बहुत सार्थक तो है और फिर कभी उसकी खबरें जाते-जाते यात्रा में, दूसरे मुल्क तक पहुँचते-पहुँचते बहुत बदल गयीं, बहुत टूट-फूट गयीं।

३७. क्रास का स्वस्तिक और ओम् से सम्बन्ध

अब जैसे कि जीसस का क्रास है। वह स्वस्तिक का बचा हुआ हिस्सा है। लेकिन लम्बी यात्रा करते-करते वह इतना टूट गया है। स्वस्तिक बहुत वक्त से ओम् जैसा एक प्रतीक था। ओम् सातवें का प्रतीक था, स्वस्तिक प्रथम का प्रतीक है। इसलिए स्वस्तिक का जो चित्र है वह डाइनेमिक (सक्रिय) है, मूव (गति) कर रहा है। इसलिए उसकी शाखा आगे फैल जाती है और मूवमेन्ट (गति) का ख्याल देती है। घूम रही है वह। संसार का मतलब होता है जो पूरे वक्त घूम रहा है। तो स्वस्तिक को हमने प्रथम का प्रतीक बना लिया था और ओम् अन्तिम का प्रतीक था। इसलिए ओम् में मूवमेन्ट (गति) बिलकुल नहीं है, वह बिलकुल थिर है, डेड साइलेंस (परिपूर्ण अक्रिया)। सब रुक गया है वहाँ। उस चित्र में कोई मूवमेन्ट (गति) नहीं है। स्वस्तिक में मूवमेन्ट (गति) है। वह पहला और वह अन्तिम है। स्वस्तिक यात्रा करते-करते

कट कर क्रास रह गया, क्रिश्चियनिटी तक पहुँचते-पहुँचते। बहुत सम्भावना है कि ओसल इजिप्ट भी आये और भारत भी आये। वे नालंदा में भी थे और इजिप्ट में भी थे और वे बहुत-सी खबरें ले गये। उन खबरों में स्वस्तिक भी एक खबर थी। लेकिन वह खबर वैसी हुई सिद्ध जैसा कि वह आदमी जो बहुत फूलों को देख कर गया और उस जगह जाकर उसने खबर दी जहाँ एक ही फूल होता था। वह कट गयी खबर, वह क्रास रह गया।

३८. ओम् (ॐ) से उद्भूत इस्लाम धर्म का अर्ध-चन्द्र

ओम् का जो ऊपर का हिस्सा है वह इस्लाम तक पहुँच गया। वे चाँद के जो आधे टुकड़े का बहुत आदर कर रहे हैं, वह ओम् का टूटा हुआ हिस्सा है, ऊपर का हिस्सा है। वह यात्रा करने में कट गया। शब्द और प्रतीक यात्रा करते में बुरी तरह कटते हैं और हजारों साल बाद वह इस तरह घिस-पिस जाते हैं कि अलग मालूम होने लगते हैं, फिर पहचानना मुश्किल हो जाता है कि यह वही शब्द है। पकड़ना ही मुश्किल हो जाता है कि यह वही शब्द कैसे हो सकता है। यात्रा में नयी ध्वनियाँ जुड़ती हैं, नये शब्द जुड़ते हैं, नये लोग नयी जबान से उसका उपयोग करते हैं। सब तरह का अन्तर होता जाता है और फिर मूल स्रोत से अगर विच्छिन्न हो जाय तो फिर कोई तय करने की जगह नहीं रह जाती कि वह ठीक क्या था, कहाँ से आया, क्या हुआ?

सारी दुनिया के आध्यात्मिक प्रवाह गहरे में इस मुल्क से सम्बन्धित हैं, क्योंकि उनका मौलिक मूल स्रोत इसी मुल्क से पैदा हुआ और सारी खबरें इस मुल्क से फैलनी शुरू हुई। लेकिन खबर ले जाने वाले आदमियों के पास तथा जिनको उन्होंने खबर दी जाकर, उनके पास भाषा दूसरी थी। उनको कुछ स्पष्ट पता नहीं था कि वह क्या खबर दे रहे हैं। अब किसी ईसाई को, पादरी को यह ख्याल नहीं हो सकता कि वह गले में जो लटकाये हुए है, वह स्वस्तिक का टूटा हुआ हिस्सा है, जो क्रास बन गया। किसी मुसलमान को ख्याल नहीं हो सकता कि चाँद को, अर्धचन्द्र को वह जो इतना आदर दे रहा है वह ओम् का आधा हिस्सा है, ओम् का टूटा हुआ हिस्सा है।

३९. ईसाई-परम्परा और धर्म-ग्रन्थ में ओम् का व्यापक प्रभाव

कुछ कैथोलिक शास्त्रज्ञों के अनुसार 'आमेन' 'ओम्' का ही अपभ्रंश है। लगभग सभी प्रार्थनाओं के अन्त में ईश-अभिवादन हेतु 'आमेन' शब्द का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है। खोज करने वालों का मत है कि 'ओम्' वही शब्द है जिसको बाइबल में कहा गया है कि 'वह सृष्टि के आरम्भ में था, ईश्वर के साथ था, ईश्वर था।' (योहन १ : १)। 'आमेन' को प्रकाशन-ग्रन्थ के अध्याय

१. स्रोत ८ में 'अल्फा तथा ओमेगा' (आदि और अन्त) नाम से निरूपित किया गया है। ऐसा भी बताया जाता है कि ईसा मसीह ने सन्त योहन से कहा था, 'मैं ही आमेन हूँ।' अन्यत्र आमेन का प्रयोग 'तथास्तु' तथा 'पूर्ण सत्य' के अर्थ में हुआ है।

कैथोलिक पूजन-विधि में लेटिन भाषा के अनेक शब्द उपयोग में आते रहे हैं, उन सबमें ओम् का अपभ्रंशित रूप उपस्थित है। जैसे—ओम्नीप्रेजेन्ट, ओम्नीशिएन्ट, ओम्नीपोटेन्ट, पेर ओम्नीया सेकुला सेकुलोरुम आदि।

आजकल तो भारत के अनेक गिरजाघरों में, प्रार्थनाओं में तथा सलीब के बीचोबीच 'ओम्' (ॐ) का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका है। उदाहरण के लिए सन्त मेरी कॉलेज, करसियांग, दार्जिलिंग के आराधना-मन्दिर की प्रमुख वाचन-पीठिका पर ॐ (ओम्) अंकित किया गया है।

●

१५. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक ६ जुलाई, १९७०

•

शक्तिपात और प्रभु-प्रसाद (ग्रेस) के अन्तरंग रहस्यों में

प्रश्नकर्ता : कल सातवें शरीर के सन्दर्भ में ओम् (ॐ) पर कुछ चर्चा चली। इसी सम्बन्ध में एक छोटा-सा प्रश्न यह है कि अ, उ और म के कम्पन किन चक्रों को प्रभावित करते हैं और उनका साधक के लिए क्या उपयोग है ?

इन चक्रों के प्रभाव से सातवें चक्र का क्या सम्बन्ध है ?

आचार्यश्री : ओम् के सम्बन्ध में थोड़ी-सी बातें कल मैंने कही। उस सम्बन्ध में थोड़ी-सी और बातें जानने जैसी हैं। एक तो यह कि ओम् सातवी अवस्था का प्रतीक है, सूचक है। वह उसकी खबर देने वाला है। ॐ प्रतीक है सातवीं अवस्था का। सातवीं अवस्था किसी भी शब्द से नहीं कही जा सकती। कोई सार्थक शब्द उस सम्बन्ध में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। इसलिए एक *निरर्थक शब्द खोजा गया, जिसमें कोई अर्थ नहीं है। यह मैंने कल आपसे कहा।* इस शब्द की खोज भी चौथे शरीर के अनुभव पर हुई है। यह शब्द भी साधारण खोज नहीं है। असल में जब चित्त सब भाँति शून्य हो जाता है, कोई विचार नहीं होते, कोई शब्द नहीं होते, तब भी शून्य की ध्वनि शेष होती है। शून्य भी बोलता है। शून्य का भी अपना सन्नाटा है। अगर कभी बिलकुल शून्य जगह में आप खड़े हो गये हों जहाँ कोई आवाज नहीं, कोई ध्वनि नहीं तो वहाँ शून्य की भी एक ध्वनि है। वहाँ शून्य का भी एक सन्नाटा है। उस सन्नाटे में जो मूल ध्वनियाँ हैं, वे ही केवल शेष रह जाती हैं। अ, उ, म, या ए, यू, एम मूल ध्वनियाँ हैं।

हमारी सारी ध्वनियों का विस्तार इन तीन ध्वनियों के नये-नये सम्बन्धों और जोड़ों से हुआ है। जब सारे शब्द खो जाते हैं तब यह ध्वनि शेष रह जाती है।

१. ओम् के जप से स्वप्न और कल्पना के लोक में भटकाव की सम्भावना

तो ओम् शब्द प्रतीक है सातवीं अवस्था का, सातवें शरीर का। लेकिन ओम् शब्द को पकड़ा गया है चौथे शरीर में। चौथे शरीर की, मनस-शरीर की शून्यता में जो ध्वनि होती है, शून्य की जो ध्वनि है वहाँ ओम् पकड़ा गया है। इस ओम् का यदि साधक प्रयोग करे तो दो परिणाम हो सकते हैं। जैसा कि आपको याद होगा, मैंने कहा कि चौथे शरीर की दो सम्भावनाएँ हैं, सभी शरीरों की दो सम्भावनाएँ हैं। यदि साधक ओम् का ऐसा प्रयोग कर सकता है जिससे कि उस ओम् के द्वारा तन्द्रा पैदा हो जाय, निद्रा पैदा हो जाय, किसी भी शब्द की पुनरुक्ति से पैदा हो जाती है। किसी भी शब्द को अगर बार-बार दोहराया जाय तो उसका एक-सा संघात, एक-सी चोट, लयबद्ध, जैसे कि सिर पर कोई ताली थपक रहा हो ऐसा ही परिणाम करती है और तन्द्रा पैदा कर देती है। अगर ओम् का इस भाँति प्रयोग किया जाय कि उससे तन्द्रा आ जाय तो आप एक कल्पना और एक स्वप्न में खो जायेंगे। जो कि चौथे मनस-शरीर की प्राकृतिक सम्भावना है। वह स्वप्न सम्मोहन, तन्द्रा (हिप्नोटिक स्लीप) जैसा होगा। उस स्वप्न में जो भी आप देखना चाहें, देख सकेंगे। भगवान् के दर्शन कर सकते हैं। स्वर्ग नर्क की यात्राएँ कर सकते हैं। लेकिन होगा वह सब स्वप्न। सत्य उसमें कुछ भी नहीं होगा। आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। शान्ति का अनुभव कर सकते हैं, लेकिन होगी सब कल्पना। यथार्थ कुछ भी नहीं होगा।

२. ओम्-जप का जागृति के लिए उपयोग सम्भव है लेकिन कठिन है

एक तो ओम् का इस तरह का प्रयोग है जो अधिकतर चलता है। यह सरल बात है। इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। ओम् की ध्वनि को ज़ोर से पैदा करके उसमें लीन हो जाना बहुत ही सरल है। उसकी लीनता बड़ी रसपूर्ण है। जैसे सुखद स्वप्न होते हैं ऐसी रसपूर्ण है। मनचाहा स्वप्न देख पायें, ऐसी रसपूर्ण हैं। और मनस-शरीर का प्रकृति दत्त रूप है—कल्पना का, स्वप्न का। और दूसरा रूप है संकल्प का और विज़न (अतीन्द्रिय दर्शन) का। अगर ओम् का सिर्फ पुनरुक्ति से व्यवहार किया जाय मन के ऊपर, तो उसके संघात से तंद्रा पैदा होती है। जिसे योग तन्द्रा कहते हैं, वह ओम् के संघात से पैदा हो जाती है। लेकिन यदि ओम् का उच्चारण किया जाय और पीछे साक्षी को भी कायम रखा जाय, पीछे जाग कर इस ध्वनि को सुना भी जाय, इसमें लीन न हुआ जाय, इसमें डूबा न जाय, यह ध्वनि एक तल पर चलती रही और हम दूसरे तल पर खड़े होकर

इसको सुनने वाले, साक्षी, द्रष्टा, श्रोता हो जायें, लीन न हों, बिलकुल जाग जायें इस ध्वनि में तो चौथे शरीर की दूसरी सम्भावना पर काम शुरू हो जाता है। तब स्वप्न में नहीं जायेंगे आप, योगतंद्रा में नहीं जायेंगे। योग-जागृति में चले जायेंगे।

मैं निरन्तर कोशिश करता हूँ कि आपको शब्द के प्रयोग न करने को कहूँ। निरन्तर कहता हूँ कि किसी मन्त्र, किसी शब्द का उपयोग आप न करें। क्योंकि १०० में ९९ मौके आपके तन्द्रा मे चले जाने के हैं। उसके कारण हैं। हमारा चौथा शरीर निद्रा का आदी है। वह सोना ही जानता है। हमारे चौथे शरीर का ड्रीम ट्रैक (स्वप्न-पथ) बना ही हुआ है। वह रोज सपने देखता ही है। तो ऐसे ही जैसे इस कमरे में हम पानी को बहा दें, फिर पानी सूख जाय, पानी चला जाय, लेकिन उसकी सूखी रेखा रह जाय। फिर हम दूसरा पानी डालें तो वह पुरानी रेखा को ही पकड़ कर बह जायगा।

शब्द, मन्त्र के उपयोग से बहुत सम्भावना यही है कि आपका जो स्वप्न देखने का आदी मन है वह अपनी यान्त्रिक प्रक्रिया से तत्काल स्वप्न में चला जायगा। लेकिन यदि साक्षी को जगाया जा सके और पीछे तुम खड़े होकर देखते भी रहो कि यह ओम् की ध्वनि हो रही है, इसमें लीन मत होओ, इसमे डूबो मत, तो ओम् से भी वही काम हो जायगा जो मैं, 'मैं कौन हूँ' के प्रयोग से तुम्हें करने को कह रहा हूँ। और अगर 'मैं कौन हूँ' को भी तुम निद्रा की भांति पूछने लगो और पीछे साक्षी न रह जाओ तो जो भूल ओम् से स्वप्न पैदा होने की होती है वह 'मैं कौन हूँ' से भी पैदा हो जायेगी। लेकिन 'मैं कौन हूँ' से पैदा होने की सम्भावना थोड़ी कम है, ओम् के बजाय। उसका कारण है।

३. ओम् और 'मैं कौन हूँ' की पुनरुक्ति में मौलिक भिन्नता

ओम् में कोई प्रश्न नहीं है। सिर्फ थपकी है। 'मैं कौन हूँ' में प्रश्न है। सिर्फ थपकी नहीं है। और 'मैं कौन हूँ' के पीछे क्वेश्चन मार्क (प्रश्नचिह्न) खड़ा है जो आपको जगाये रखेगा। यह बड़े मजे की बात है कि अगर चित्त में प्रश्न हो तो सोना मुश्किल हो जाता है। अगर दिन मे भी आपके चित्त मे बहुत गहरा प्रश्न घूम रहा हो तो रात आपकी नींद खराब ही हो जायगी। प्रश्न आपको सोने न देगा। क्वेश्चन मार्क (प्रश्न चिह्न) अनिद्रा का बड़ा सहयोगी है। अगर चित्त में कोई प्रश्न खड़ा है, चिन्ता खड़ी है, कोई सवाल खड़ा है, कोई जिज्ञासा खड़ी है तो नींद मुश्किल हो जायेगी।

४. 'मैं कौन हूँ ?' पूछने में एक खोज है, एक चोट है

तो मैं ओम् की जगह 'मैं कौन हूँ ?' के प्रयोग के लिए इसलिए कह रहा हूँ

कि उसमें मौलिक रूप से एक प्रश्न है। और चूंकि प्रश्न है इसलिए उत्तर की बहुत गहरी खोज है। और उत्तर के लिए तुम्हें जागे ही रहना होगा। पर ओम् में कोई प्रश्न नहीं है। उसकी चोट नुकीली नहीं है। वह बिलकुल गोल है। उसमें कहीं चोट नहीं है, उसमें कहीं कोई प्रश्न नहीं है। और उसका निरन्तर संघात, उसकी चोट निद्रा ले आयेगी।

फिर 'मैं कौन हूँ' में संगीत नहीं है और ओम् में बहुत संगीत है। वह बहुत संगीतपूर्ण है। और जितना ज्यादा संगीत है उतना स्वप्न में ले जाने में समर्थ है। 'मैं कौन हूँ' आड़ा-टेढ़ा है, पुरुष-शरीर जैसा है। ओम् जो है, बहुत सुडौल, स्त्री-शरीर जैसा है। उसकी थपकी जल्दी सुला देगी। शब्दों के भी आकार हैं, शब्दों के भी चोट के भेद हैं, उनका भी संगीत है। 'मैं कौन हूँ' में कोई संगीत नहीं है। उससे सुलाना जरा मुश्किल है। अगर सोया आदमी भी पड़ा हो और उसके पास हम बैठ कर कहने लगें, 'मैं कौन हूँ?, मैं कौन हूँ?' तो वह सोया हुआ आदमी भी जग सकता है। लेकिन सोये हुए आदमी के पास अगर हम बैठ कर ओम्, ओम्, ओम् दोहराने लगें तो उसकी नींद और गहरी हो जायेगी। संघात के फर्क हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि ओम् से नहीं किया जा सकता। सम्भावना तो है ही। अगर कोई ओम् के पीछे जाग कर खड़ा हो सके तो उससे भी यही काम हो जायगा। लेकिन मैं ओम् को साधना के बतौर प्रयोग नही करवाना चाहता। उसके और भी बहुत कारण हैं।

५. ओम् के प्रयोग से चौथे शरीर पर ही रुक जाने की पूरी सम्भावना

ओम् की अगर साधना करेंगे तो चौथे शरीर से ओम् का अनिवार्य एसोसिएशन (अन्तरसंम्बन्ध) हो जायगा। ओम् प्रतीक तो है सातवें शरीर का, लेकिन उसकी ध्वनि का अनुभव होता है चौथे शरीर में। अगर एक बार ओम् से साधना शुरू की तो ओम् और चौथे शरीर में एक एसोसिएशन, अनिवार्य सम्बन्ध हो जायगा। और वह रोकने वाला सिद्ध होगा। वह आगे ले जाने में बाधा डाल सकता है। तो इस शब्द के साथ कठिनाई है। इसकी प्रतीति तो होती है चौथे शरीर में, लेकिन उसको प्रयोग किया गया है सातवें शरीर के लिए। और सातवें शरीर के लिए कोई शब्द नहीं है हमारे पास। हम जहाँ तक शब्दों का अनुभव करते हैं चौथे शरीर के बाद फिर शब्दों का अनुभव बन्द हो जाता है। तो चौथे शरीर का जो आखिरी शब्द है उसको हम अन्तिम अवस्था संकेत (प्रतीक) के लिए प्रयोग कर रहे हैं। और कोई उपाय भी नहीं है। क्योंकि पाँचवें शरीर से निःशब्द है। छठवाँ बिलकुल निःशब्द है। सातवाँ तो बिलकुल ही शून्य है। चौथे शरीर की जो आखिरी शब्द की सीमा है, जहाँ से हम शब्दों को छोड़ेंगे, वहाँ आखिरी क्षण में सीमान्त पर ओम् सुनायी पड़ता है। तो भाषा की दुनिया का

वह आखिरी शब्द है और अभाषा की दुनिया का वह पहला शब्द है। वह दोनों की सीमा (बाउण्ड्री) है। है तो वह चौथे शरीर का। लेकिन हमारे पास उससे ज्यादा सातवें शरीर के कोई निकट शब्द नहीं है और शब्द और दूर पड़ जाते हैं। इसलिए उसका सातवें के लिए प्रयोग किया है। तो मैं पसन्द करता हूँ उसको चौथे के साथ न बाँधें। वह अनुभव तो चौथे में होगा, लेकिन उसको सिम्बल (प्रतीक) सातवें का ही रहने देना उचित है। इसलिए उसका साधना के लिए उपयोग करने की जरूरत नहीं है। उसके लिए कोई ऐसी-ऐसी चीज का उपयोग करना चाहिए जो चौथे पर ही छूट जाय। जैसे, 'मैं कौन हूँ ?' इसका चौथे में प्रयोग भी होगा और छूट भी जायगा।

६. ओम् साध्य है, साधन नहीं

और ओम् का सिम्बॉलिक (प्रतीकात्मक) अर्थ ही रहना चाहिए। साधन की तरह उसका उपयोग और भी एक कारण से उचित नहीं है। क्योंकि जिसे हम अन्तिम का प्रतीक बना रहे हैं उसे हमें अपना साधन नहीं बनाना चाहिए। जिसको हम परम (एब्सलूट) का प्रतीक बना रहे हैं, उसको साधन नहीं बनाना चाहिए, वह साध्य ही रहना चाहिए। ओम् वह है जिसे हमें पाना है, इसलिए ओम् को किसी भी तरह के साधन (Means) की तरह प्रयोग करने के मैं पक्ष में नहीं हूँ। और उसका प्रयोग हुआ है और उससे बहुत नुकसान हुए हैं।

ओम् प्रयोग करने वाला साधक बहुत बार चौथे शरीर को सातवाँ समझ बैठा है। क्योंकि ओम् सातवें का प्रतीक था और चौथे में अनुभव होता है। और जब चौथे में अनुभव होता है तब साधक को लगता है कि ठीक है, अब हम ओम् को उपलब्ध हो गये। अब और यात्रा नहीं रही, अब यात्रा खत्म हो गयी, इसलिए मनस-शरीर पर बड़ा नुकसान होता है, वह वहीं रुक जाता है। बहुत-से साधक हैं, जो विज़न्स को, दृश्यों को, रंगों को, ध्वनियों को, नाद को उपलब्धि मान लेते हैं। स्वभावतः यह होगा, क्योंकि जिसको अन्तिम का प्रतीक कहा है वह इस सीमा-रेखा पर पता चलने लगता है। फिर हमें लगता है कि आ गयी सीमा। इसलिए भी मैं चौथे शरीर में इसके प्रयोग के पक्ष में नहीं हूँ और इसका अगर प्रयोग करेंगे तो पहले, दूसरे, तीसरे शरीर पर इसका कोई परिणाम न होगा। इसका परिणाम चौथे शरीर पर होगा। इसलिए पहले, दूसरे, तीसरे शरीर के लिए दूसरे शब्द खोजे गये हैं जो हम पर चोट करते हैं।

७. जगत् और ब्रह्म के बीच ओम् का अनाहत नाद

यह जो मूल ध्वनियाँ हैं, अ, उ और म की, इस सम्बन्ध में एक बात और ख्याल में ले लेना उचित है। जैसे बाइबिल है। बाइबिल यह नहीं कहती कि परमात्मा

ने जगत् बनाया, बनाने का कोई काम किया, ऐसा नहीं कहती। कहती ऐसा है कि परमात्मा ने कहा, प्रकाश हो, और प्रकाश हो गया। बनाने का कोई काम नहीं किया, बोलने का कोई काम किया। जैसे **बाइबिल कहती है, सबसे पहले शब्द (द वर्ड) था** फिर सब हुआ। पुराने और बहुत-से शास्त्र इस बात की खबर देते हैं कि **सबसे पहले शब्द था, फिर सब हुआ।** जैसे कि भारत में कहते हैं कि शब्द ब्रह्म है। हालाँकि इससे बड़ी भ्रान्ति होती है। इससे कई लोग समझ लेते है कि शब्द से ही ब्रह्म मिल जायगा। **ब्रह्म तो मिलेगा निःशब्द से। लेकिन शब्द ब्रह्म है, इसका मतलब केवल इतना ही है कि हम अपने अनुभव में जितनी ध्वनियों को जानते हैं उसमें सबसे सूक्ष्मतम ध्वनि शब्द की है।** अगर हम जगत् में पीछे लौट जायें, पीछे लौट जायें, तो अन्ततः जब हम शून्य की कल्पना करें, जहाँ से जगत् शुरू हुआ होगा तो वहाँ भी ओम् की ध्वनि हो रही होगी। क्योंकि जब हम चौथे शरीर पर शून्य के करीब पहुँचते हैं तो ओम् की ध्वनि सुनायी पड़ती है और वहाँ से हम डूबने लगते है उस दुनिया में जहाँ कि प्रारम्भ मे दुनिया रही होगी। चौथे के बाद हम जाते हैं आत्म-शरीर में। आत्म-शरीर के बाद जाते हैं ब्रह्म-शरीर में, ब्रह्म-शरीर के बाद जाते हैं निर्वाण-शरीर मे और आखिरी ध्वनि जो उन दोनों के बीच में है, वह ओम् की है।

इस तरफ हमारा व्यक्तित्व है चार शरीरों वाला, जिसको हम कह सकते हैं—जगत् और उस तरफ हमारा अव्यक्तित्व है, जिसको हम कह सकते हैं ब्रह्म। **ब्रह्म और जगत् के बीच में जो ध्वनि सीमा-रेखा पर गूँजती है वह ओम् की है।** इस अनुभव से यह ख्याल मे आना शुरू हुआ कि जब जगत् बना होगा उस ब्रह्म के शून्य से इस पदार्थ के साकार तक आने के बीच में ओम् की ध्वनि गूँजती रही होगी और इसलिए शब्द था, 'वर्ड' था। उस शब्द से ही सब हुआ, यह ख्याल है। और इस शब्द को अगर हम उसके मूल तत्वों में तोड़ दें तो वह ए, यू, एम (अ, उ और म) पर रह जाता है। बस तीन ध्वनियाँ मौलिक रह जाती हैं। उन तीनों का जोड़ ओम् है।

इसलिए ऐसा कहा जाता है कि ओम् ही पहले था, ओम् ही अन्त में होगा। क्योंकि अन्त जो है वह पहले मे ही वापस लौट जाता है। वह जो अन्त है वह सदा पहले में वापस लौट जाता है। सर्किल पूरा होता है। लेकिन फिर भी मेरा यह निरन्तर ख्याल रहा है कि ओम् को प्रतीक की तरह ही प्रयोग करना है, साधन की तरह नही। साधन के लिए और चीजें खोजी जा सकती हैं। **ओम् जैसे पवित्रतम शब्द को साधन की तरह उपयोग करके अपवित्र नहीं करना है।**

इसलिए मुझे समझने में कई लोगों को भूल हो जाती है। मेरे पास कितने कितने लोग आते हैं। वे कहते हैं अगर हम ओम् जपते हैं तो आप मना क्यों करते

हैं। शायद उन्हें लगे कि मैं ओम् का दुश्मन हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि वे ही दुश्मन हैं। क्योंकि इतने **पवित्रतम शब्द** का साधन की तरह उपयोग नहीं होना चाहिए। असल में यह हमारी जीभ से बोलने योग्य नहीं है। असल मे यह हमारे शरीर से उच्चारण-योग्य नही है। यह तो उस जगह शुरू होता है जहाँ जीभ अर्थ खो देती है, शरीर व्यर्थ हो जाता है। वहाँ इसकी गूँज है और वह गूँज हम नहीं करते, वह गूँज होती है। **वह 'जानी' जाती है वह 'की' नहीं जाती**। इसलिए **ओम् को जानना ही है, करना नहीं है**।

८. ओम् की मानसिक साधना से उसके वास्तविक स्वरूप की अनुभूति में बाधा

और भी एक खतरा है कि अगर आपने प्रयोग किया तो उसका जो मूल उच्चार अस्तित्व से होता है, उसका आपको कभी पता नही चल पायेगा कि वह कैसा है। आपका अपना उच्चारण उस पर आरोपित हो जायगा। तो उसकी जो शुद्धतम अनुभूति है, वह आपको नहीं हो सकेगी। **जो लोग भी ओम् शब्द का साधना में प्रयोग करते हैं, उनको वस्तुतः ओम् का कभी अनुभव नहीं हो पाता**। क्योंकि वह जो प्रयोग कर रहे हैं उसका ही अभ्यास होने से जब वह मूल ध्वनि आनी शुरू होती है, तो उनको अपनी ही ध्वनि सुनायी पड़ती है। वह ओम् को नहीं सुन पाते। शून्य का सीधा गुँजन उनके ऊपर नही हो पाता। अपना ही शब्द वह तत्काल पकड़ लेते हैं। स्वभावतः यही होगा, क्योंकि जिससे हम परिचित हैं वह आरोपित हो जाता है। इसलिए मैं कहता हूँ, **ओम् से परिचित न होना ही अच्छा है**, उसका उपयोग न करना ही अच्छा है। वह किसी दिन चौथे शरीर पर प्रकट होगा। और तब वह कोई अर्थ रखेगा।

एक तो यह अर्थ रखेगा कि चौथे शरीर की सीमा आ गयी और अब आप मनस के बाहर जाते हैं, शब्द के बाहर जाते हैं। आखिरी शब्द आ गया—जहाँ से शब्द शुरू हुए वहीं आप खड़े हो गये। जहाँ पूरा जगत् सृष्टि के पहले क्षण मे खड़ा होगा वहाँ आप खड़े हो गये हैं। उस सीमान्त पर खड़े हैं। और फिर जब उसकी अपनी मूल ध्वनि पैदा होती है तो उसका रस ही और है। उसको कुछ कहने का उपाय नहीं। **हमारा श्रेष्ठतम संगीत भी उसकी दूरतम ध्वनि नहीं है**। हम कितना ही उपाय करें, उस **शून्य के संगीत (म्यूजिक आफ साइलेंस)** को हम कभी भी न सुन पायेंगे। इसलिए अच्छा हो कि हम उसको कुछ मान कर न चलें, कोई रूप-रंग देकर न चलें; नहीं तो वही रूप-रंग उसमें अन्ततः पकड़ जायगा। और वह हमें बाधा दे सकता है।

प्रश्नकर्ता : चौथे शरीर तक स्त्री और पुरुष का विद्युतीय भेद रहता है। अतः चौथे शरीर वाले स्त्री कण्डक्टर (माध्यम) या पुरुष कण्डक्टर (माध्यम)

द्वारा महिला साधिका को और पुरुष साधक को होने वाले शक्तिपात का प्रभाव क्या भिन्न-भिन्न होता है ? और क्यों होता है ?

आचार्यश्री : इसमें भी बहुत-सी बातें समझनी पड़ेंगी। जैसा मैंने कहा, **चौथे शरीर तक स्त्री और पुरुष का भेद है।** चौथे शरीर के बाद कोई भेद नहीं है। **पाँचवाँ शरीर लिंग-भेद के बाहर है।** लेकिन चौथे शरीर तक बहुत बुनियादी भेद है। और वह बुनियादी भेद बहुत तरह के परिणाम लायगा। तो पहले पुरुष-शरीर को हम समझें। फिर स्त्री-शरीर को हम समझेंगे।

९. पुरुष के भीतर स्त्री और स्त्री के भीतर पुरुष

पुरुष-शरीर का पहला शरीर पुरुष है, दूसरा शरीर स्त्रैण है, तीसरा शरीर फिर पुरुष है, चौथा शरीर फिर स्त्रैण है। इससे उल्टा स्त्री का है। उसका पहला शरीर स्त्री का, दूसरा पुरुष का, तीसरा स्त्री का, चौथा पुरुष का। इसकी वजह से बड़े मौलिक भेद पड़ते हैं। और इन भेदों ने मनुष्य जाति के पूरे इतिहास और धर्मों को बड़ी गहराई से प्रभावित किया। और मनुष्य की पूरी संस्कृति को एक तरह की व्यवस्था दी है।

१०. ब्रह्मचर्य—अपने ही भीतर के विपरीत लिंगी भाव (आकाश) शरीर से सम्भोग द्वारा

पुरुष-शरीर की कुछ खूबियाँ हैं, स्त्री-शरीर की कुछ खूबियाँ हैं और विशेषताएँ हैं। वे दोनों खूबियाँ और विशेषताएँ एक दूसरे की कम्प्लीमेन्टरी (परिपूरक) हैं। असल में स्त्री-शरीर भी अधूरा शरीर है और पुरुष-शरीर भी अधूरा शरीर है। इसलिए सृजन के क्रम में उन दोनों को संयुक्त होना पड़ता है। यह संयुक्त होना दो प्रकार का है। 'अ' नाम के पुरुष का शरीर अगर 'ब' नाम की स्त्री से बाहर से संयुक्त हो तो प्रकृति का सृजन होता है। 'अ' नाम के पुरुष का शरीर अपने ही पीछे छिपे 'ब' नाम की स्त्री-शरीर से संयुक्त हो तो ब्रह्म की तरफ का जन्म शुरू होता है। वह परमात्मा की तरफ यात्रा शुरू होती है, यह प्रकृति की तरफ यात्रा शुरू होती है। दोनों ही स्थितियों में सम्भोग घटित होता है। पुरुष का शरीर बाहर की स्त्री से सम्बन्धित है तो भी सम्भोग घटित होता है और पुरुष का अपना ही शरीर अपने ही पीछे छिपी स्त्री से संयुक्त हो तो भी सम्भोग घटित होता है। पहले सम्भोग में ऊर्जा बाहर विकीर्ण होती है। दूसरे सम्भोग में ऊर्जा भीतर की तरफ प्रवेश करनी शुरू कर देती है। जिसको वीर्य का ऊर्ध्व-गमन कहा है उसका यात्रा-पथ यही है। भीतर की स्त्री से सम्बन्धित होना, 'और भीतर की' स्त्री से सम्बन्धित होना।

जो ऊर्जा है, वह सदा पुरुष से स्त्री की तरफ बहती है, चाहे वह बाहर की तरफ

बहे चाहे वह भीतर की तरफ बहे। अगर पुरुष के भौतिक शरीर की ऊर्जा भीतर की इथरिक, स्त्री-शरीर के प्रति बहे तो फिर ऊर्जा बाहर विकीर्ण नहीं होती। ब्रह्मचर्य की साधना का यही अर्थ है। तब वह निरन्तर ऊपर चढ़ती जाती है। चौथे शरीर तक उस ऊर्जा की यात्रा हो सकती है। चौथे शरीर पर ब्रह्मचर्य पूरा हो जाता है। चौथे शरीर के बाद ब्रह्मचर्य का कोई अर्थ नहीं है। वहाँ ब्रह्मचर्य जैसी कोई चीज नहीं है, क्योंकि चौथे शरीर के बाद स्त्री और पुरुष जैसी कोई चीज नहीं है।

इसलिए चौथे शरीर को पार करने के बाद साधक न पुरुष है, न स्त्री। अब यह जो एक नम्बर का शरीर और दो नम्बर का शरीर है, इसीको ध्यान में रख कर अर्द्ध-नारीश्वर की कल्पना कभी हमने चितित की थी। लेकिन वह प्रतीक बन कर रह गया। और हम उसे कभी समझ नहीं पाये। शंकर अधूरे हैं, पार्वती अधूरी हैं। वे दोनों मिल कर एक हैं। और तब हमने उन दोनों का आधा-आधा चित्र भी बनाया अर्द्ध-नारीश्वर का। आधा अंग पुरुष का, आधा स्त्री का। यह जो आधा दूसरा अंग है, यह बाहर प्रकट नहीं है। यह प्रत्येक के भीतर छिपा है। तुम्हारा एक पहलू पुरुष का है, और दूसरा पहलू स्त्री का है। इसलिए एक बहुत मजेदार घटना घटती है।

कितना ही दबंग पुरुष हो, कितना ही बलशाली पुरुष हो जो बाहर की दुनिया में बड़ा प्रभावी हो, सिकन्दर हो, चाहे नेपोलियन हो और चाहे हिटलर हो, वह दिनभर दफ्तर में, दूकान में, बाजार में, पद पर पुरुष की अकड़ से जीता है। लेकिन एक साधारण-सी स्त्री घर में बैठी है, उसके सामने जाकर उसकी अकड़ खत्म हो जाती है। यह अजीब-सी बात है। वह नेपोलियन की भी हो जाती है। क्या कारण है? असल में जब वह दस-बारह घण्टे पुरुष का उपयोग कर लेता है तो उसका पहला शरीर थक जाता है। घर लौटते-लौटते वह पहला शरीर विश्राम चाहता है। भीतर का स्त्री-शरीर प्रमुख हो जाता है। पुरुष-शरीर गौण हो जाता है। स्त्री का दिनभर स्त्री रहते-रहते पहला शरीर थक जाता है, उसका दूसरा शरीर प्रमुख हो जाता है। इसलिए स्त्री पुरुष का व्यवहार करने लगती है, पुरुष स्त्री का व्यवहार करने लगता है।

एक तो यह ख्याल में ले लेना कि ऊर्जा का आन्तरिक प्रवाह का, ऊर्ध्वगमन का यह पथ है कि भीतर की स्त्री से सम्भोग। अब उसके सारे-के-सारे अलग मार्ग हैं। उसकी तो अभी कोई बात नहीं करनी है। दूसरी बात, सदा ही शक्ति पुरुष-शरीर की तरफ से स्त्री-शरीर की तरफ बहती है। पुरुष-शरीर के जो विशेष गुण हैं वह पहला गुण यह है कि वह ग्राहक (रिसेप्टिव) नहीं है, आक्रामक है। दे सकता है, ले नहीं सकता। स्त्री की तरफ से कोई प्रवाह पुरुष की तरफ नहीं

पहुँच सकता। सब प्रवाह पुरुष से स्त्री की तरफ बहते हैं। स्त्री ग्राहक (रिसे-प्टिव) है, दाता नहीं है, दे नहीं सकती, ले सकती है।

११. प्रथम शरीर के ग्राहक (रिसेप्टिव) होने के कारण स्त्री को शक्तिपात देने में कठिनाई—लेने में सरलता

इसके दो परिणाम होते हैं और दोनों परिणाम समझने जैसे हैं। पहला परिणाम तो यह होता है कि चूँकि **स्त्री ग्राहक है, इसलिए कभी भी शक्तिपात देने वाली नहीं हो सकती।** उसके द्वारा शक्तिपात नहीं हो सकता। यही कारण है कि स्त्री-शिक्षक जगत् में बड़ी तादाद में पैदा नहीं हो सके। बुद्ध या महावीर या कृष्ण के मुकाबले स्त्री-गुरु पैदा न हो सके। उसका कारण यह है कि उसके माध्यम से किसी को कोई शक्ति नहीं मिल सकती। हाँ, स्त्रियाँ बहुत बड़े पैमाने पर महावीर, बुद्ध और कृष्ण के आसपास इकट्ठी हुई। लेकिन ऐसी, कृष्ण की हैसियत की, एक स्त्री पैदा न हो सकी जिसके आसपास लाखों पुरुष इकट्ठे हो जायें। उसके कारण हैं। उसके कारण इसी बात मे निहित है कि स्त्री केवल ग्राहक हो पाती है।

१२. स्त्रियाँ धर्म-प्रचारक नहीं, वरन् धर्म-संग्राहक क्यों ?

और यह भी बड़े मजे की बात है, कृष्ण जैसा आदमी पैदा हो तो उसके पास पुरुष कम इकट्ठे होंगे, स्त्रियाँ ज्यादा इकट्ठी होंगी। महावीर के पास भी वही होगा। महावीर के भिक्षुओं मे दस हजार तो पुरुष हैं और चालीस हजार स्त्रियाँ हैं। यह अनुपात चार गुना है सदा। अगर एक पुरुष इकट्ठा होगा तो चार स्त्रियाँ इकट्ठी हो जाती हैं। और स्त्रियाँ जितनी प्रभावित होंगी महावीर से, उतने पुरुष प्रभावित नहीं होंगे। क्योंकि दोनों पुरुष हैं। **महावीर से जो निकल रहा है स्त्रियाँ उसे अपशोषित कर जाती हैं।** लेकिन पुरुष अपशोषक नहीं है। वह ग्रहण नहीं कर पाता। उसकी ग्रहण करने की क्षमता बहुत कम है। इसलिए पुरुषों ने धर्म को जन्म तो दिया, लेकिन पुरुष धर्म के संग्राहक नहीं हैं। **धर्मों को पृथ्वी पर बचाती हैं स्त्रियाँ। चलाते हैं पुरुष।** यह बड़े मजे की बात है। चलाते हैं पुरुष, जन्म देते हैं पुरुष, बचाती हैं स्त्रियाँ, रक्षा करती हैं स्त्रियाँ।

स्त्री संग्राहक है। उसके शरीर का गुण संग्रह है, बायोलॉजिकल (जीव-वैज्ञानिक) वजह से भी उसके शरीर में संग्राहक का गुण है। बच्चे को उसे नौ महीने पेट में रखना है, बच्चे को बड़ा करना है। उसे ग्रहणशील होना चाहिए। प्रकृति की तरफ से पुरुष को ऐसा कुछ भी काम नहीं है। वह एक क्षण में पिता बन कर पिता के बाहर हो जाता है। इसके बाद उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह देता है और बाहर हो जाता है। स्त्री लेती है और फिर भीतर रह जाती है।

वह बाहर नहीं हो पाती। यह तत्त्व शक्तिपात में भी काम करता है। इसलिए शक्तिपात में स्त्री की तरफ से पुरुष को शक्तिपात नहीं मिल सकता। साधारणतया कह रहा हूँ। कभी रेयर केसेस (विरल घटनाएँ) हो सकते हैं। उनकी मैं बात करूँगा। कभी ऐसी घटनाएँ घट सकती हैं, पर उसके और कारण होंगे।

१३. पुरुष के लिए शक्तिपात देना सरल—लेना कठिन

साधारणतया स्त्री-शरीर से शक्तिपात नहीं हो सकता। इसे उसकीक मजोरी कह सकते है। लेकिन इसको पूरा करने वाली कम्पलीमेण्टरी (पूरक) उसकी एक ताकत है कि **वह शक्तिपात को बहुत तीव्रता से ले लेती है।** पुरुष शक्तिपात कर सकता है। लेकिन ग्रहण नहीं कर पाता। इसलिए एक पुरुष से दूसरे पुरुष पर भी शक्तिपात बहुत कठिन हो जाता है। क्योंकि ग्राहक है ही नहीं, उसका व्यक्तित्व। जहाँ से शुरू होना है उसका नम्बर एक पुरुष खड़ा हुआ है दरवाजे पर, जो ग्राहक नहीं है। इसको ग्राहक बनाने के भी उपाय किये गये हैं। ऐसे पन्थ रहे हैं जिनमें पुरुष भी अपने को स्त्री मान कर ही साधना करेंगे। वह पुरुष को ग्राहक बनाने का उपाय किया जा रहा है। मगर फिर भी पुरुष ग्राहक बन नही पाता। **स्त्री बिना कठिनाई के ग्राहक बन जाती है। है ही वह ग्राहक।** तो शक्तिपात मे स्त्री को सदा ही माध्यम की जरूरत होगी। प्रसाद उसको सीधा मिलना बहुत कठिन है। सीधा प्रसाद उसे क्यों नहीं मिल सकता, इसको समझ ले ठीक से।

शक्तिपात होता है पहले शरीर से। अगर मैं शक्तिपात करूँ तो तुम्हारे नम्बर एक के शरीर पर करूँगा और मेरे **नम्बर एक से आयेगी शक्ति और तुम्हारे नम्बर दो के शरीर पर चोट करेगी।** इसलिए अगर तुम स्त्री हो तो यह शीघ्रता से हो जायगा। और अगर तुम पुरुष हो तो इसमें जद्दोजहद और संघर्ष होगा। इसमें कठिनाई होगी। इसमें किसी तरह तुम्हें बहुत गहरे में समर्पण की स्थिति में आना पड़ेगा, तो यह हो सकता है; नहीं तो यह नहीं हो सकेगा। **पुरुष समर्पक नहीं है। वह समर्पण नहीं कर पाता।** वह कितनी ही कोशिश करे। अगर वह कहेगा कि मैं समर्पण करता हूँ तो भी उसका यह समर्पण करना आक्रमण जैसा होता है। यानी समर्पण की भी घोषणा उसका अहंकार ही करता है कि अच्छा मैंने किया समर्पण। लेकिन वह 'मैं' जो है पीछे खड़ा, वह छूटता नहीं है।

स्त्री को समर्पण करना नहीं पड़ता। वह समर्पित है। समर्पण उसका स्वभाव है, उसके पहले शरीर का गुण है। वह रिसेप्टिव (ग्राहक) है, इसलिए शक्तिपात पुरुष से बहुत आसानी से स्त्री पर हो जाता है। पुरुष से पुरुष पर बहुत मुश्किल है और स्त्री से पुरुष पर तो बहुत ही मुश्किल है। पुरुष से पुरुष पर मुश्किल है, लेकिन हो सकता है। अगर कोई बहुत बलशाली पुरुष हो तो वह

दूसरे को करीब-करीब स्त्री की हालत में खड़ा कर सकता है। लेकिन स्त्री के द्वारा शक्तिपात तो बहुत ही मुश्किल है, क्योंकि वह शक्तिपात करने के क्षण में भी उसकी शक्ति पी जायेगी, अवशोषित कर लेगी। उसका जो पहला शरीर है, वह स्पंज की भाँति है, वह चीजों को खींच रहा है।

१४. पुरुष के चौथे स्त्रैण शरीर से प्रसाद (ग्रेस) ग्रहण करना सरल

यह तो शक्तिपात के सम्बन्ध की बात हुई। प्रसाद के मामले में भी ऐसी ही हालत है। प्रसाद जो है वह चौथे शरीर से मिलता है। और पुरुष का चौथा शरीर स्त्री का है, इसलिए उसे प्रसाद तो बड़ी सरलता से मिल जाता है। स्त्री का चौथा शरीर पुरुष का है। वह प्रसाद में भी मुश्किल में पड़ जाती है। उसको ग्रेस सीधी नहीं मिल पाती। पुरुष का चौथा शरीर स्त्रैण है, इसलिए मुहम्मद हों, कि मूसा हों, कि जीसस हों, वे तत्काल परमात्मा से सीधा सम्बन्धित हो जाते हैं। उनके पास चौथा शरीर स्त्री का है जहाँ से वह रिसीवर (ग्राहक) हैं और प्रसाद उनके ऊपर उतरे तो वह पी जायेंगे।

स्त्री के पास चौथा शरीर पुरुष का है। वह उस छोर पर पुरुष-शरीर खड़ा है उसका, इसलिए वहाँ से वह कभी रिसीव नही कर पाती। इसलिए स्त्री के पास सीधी कोई भी मेसेज (सन्देश) नहीं है। यानी एक स्त्री इस तरह का दावा नहीं कर सकी है कि मैंने ब्रह्म को जाना। ऐसा दावा नहीं है उसका। उसके पास चौथे शरीर पर पुरुष खड़ा है जो कि अड़चन डाल देता है। उसको वहाँ से प्रसाद नहीं मिल सकता।

प्रसाद पुरुष को मिल सकता है। शक्तिपात में उसे बहुत कठिनाई है किसी से लेने में। उसमें वह बाधक है, लेकिन स्त्री के लिए शक्तिपात बहुत सरल है। किसी भी माध्यम से उसे शक्तिपात मिल सकता है। बहुत कमजोर माध्यम से भी स्त्री को शक्तिपात मिल सकता है, इसलिए बड़ी साधारण हैसियत के लोगों से भी उसे शक्तिपात मिल सकता है। शक्तिपात देने वाले पर कम, उसकी अवशोषक शक्ति पर बहुत निर्भर होता है। लेकिन सदा स्त्री को एक माध्यम चाहिए। माध्यम के बिना उसकी बड़ी कठिनाई है। बिना माध्यम के उसको कोई घटना नहीं घट सकती।

यह साधारण स्थिति की बात मैंने कही। इसमें विशेष स्थिति की जा सकती है। इसी साधारण स्थिति की वजह से स्त्री साधिकाएँ कम हुई हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि स्त्रियों ने परमात्मा का अनुभव नहीं किया। उन्होंने अनुभव किया, लेकिन वह कभी इमिजिएट (सीधे) नही था, उसमें कोई बीच में माध्यम था। थोड़ा ही सही, लेकिन कोई माध्यम था। माध्यम से हुआ उनका अनुभव। दूसरी बात, असाधारण स्थितियों में भेद पड़ सकता है। अब जैसे एक जवान

स्त्री पर ज्यादा कठिनाई है प्रसाद की। एक वृद्ध स्त्री पर सरलता थोड़ी बढ़ जाती है।

१५. बुढ़ापे में विपरीत लिंगी व्यक्तित्व का प्रकटीकरण

एक बड़े मजे की बात है कि हमारी पूरी जिन्दगी में हमारा सेक्स (यौन) भी फ्लेग्जीबिलिटी (परिवर्तनशीलता) मे रहता है। हम पूरी जिंदगी एक ही अनुपात में एक ही सेक्स के हिस्से नहीं होते। इसमें अन्तर होता रहता है पूरे वक्त। अनुपात बदलता रहता है। इसलिए अक्सर ऐसा होगा कि बूढ़ी होती स्त्री को मूँछ के बाल निकलने लगे या दाढ़ी पर बाल आ जाय। बूढ़ी होते-होते पैंतालीस और पचास साल के बाद उसकी आवाज पुरुषों जैसी होने लगेगी। स्त्रैण आवाज खो जायेगी। उसका अनुपात बदल रहा है। उसमें पुरुष तत्त्व ऊपर आ रहे हैं, स्त्री तत्त्व पीछे जा रहे हैं। असल में स्त्री का काम पूरा हो चुका। वह पैंतालीस वर्ष तक एक बायोलॉजिकल (जीव-वैज्ञानिक) बाइंडिंग (दायित्व) थी, वह खत्म हो गयी है। वह बाइंडिंग (दायित्व) के बाहर हो रही है। तो **बूढ़ी स्त्री पर प्रसाद की सम्भावना बढ़ सकती है**। क्योंकि जैसे ही उसके नम्बर एक के शरीर में पुरुष तत्त्व बढ़ते हैं, उसके नम्बर दो के शरीर में स्त्रैण तत्त्व बढ़ जाते हैं और नम्बर चार के पुरुष-शरीर के तत्त्व कम हो जाते है। नम्बर तीन मे बढ़ जाते हैं। तो बूढी स्त्री पर प्रसाद की सम्भावना हो सकती है।

अति वृद्ध स्त्री किसी स्थिति में किसी जवान स्त्री का माध्यम भी बन सकती है। और भी अति वृद्ध स्त्री जो सौ को पार कर गयी हो, और उसके मन में अब सेक्स का ख्याल ही न रह गया हो कि वह स्त्री है, वह पुरुष के ऊपर भी शक्तिपात के लिए माध्यम बन सकती है, लेकिन यह फर्क पड़ेगा। पुरुष को भी ऐसे ही फर्क पड़ता है। **जैसे-जैसे पुरुष बूढ़ा होता जाता है, उसमें स्त्रैण तत्त्व बढ़ते चले जाते हैं**। बूढ़े पुरुष अक्सर स्त्रियों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। उनके व्यक्तित्व की बहुत-सी पुरुष जैसी वृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं और स्त्री जैसी वृत्तियाँ प्रकट होने लगती हैं।

१६. चौथे शरीर से प्रसाद ग्रहण करने के कारण बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट का व्यक्तित्व स्त्रैण

इस सम्बन्ध मे यह भी समझ लेना जरूरी है कि **जो लोग भी चौथे शरीर से प्रसाद को ग्रहण करते हैं, उनके व्यक्तित्व में भी स्त्रैणता आ जाती है**। जैसे अगर हम बुद्ध और महावीर के शरीर और व्यक्तित्व को देखें तो वह पुरुष का कम और स्त्री का ज्यादा मालूम होगा। स्त्री की कोमलता, स्त्री की कमनीयता, स्त्री की ग्राहकता उनमें बढ़ जायेगी। आक्रमण उनसे चला जायगा, इसलिए अहिंसा-करुणा-

प्रेम बढ़ जायगा, हिंसा और क्रोध विलीन हो जायेंगे। नीत्से ने तो बुद्ध पर यह आरोप ही लगाया था कि बुद्ध और जीसस ये फेमिनिन (स्त्रैण) हैं। ये दोनों स्त्रैण थे। इनको पुरुषों की गिनती में नहीं गिनना चाहिए, क्योंकि इनमें पुरुष का कोई भी गुण नहीं है और उन्होंने सारी दुनिया को स्त्रैण बना दिया है। उसकी इस शिकायत में अर्थ है। यह तुम जान कर हैरान होओगे कि हमने बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम, इनकी किसी की दाढ़ी-मूंछ नहीं बनायी है, ये सब दाढ़ी-मूंछ से हीन हैं। ऐसा नहीं कि इनको दाढ़ी मूंछ न रही हो। लेकिन जब हमने उनके चित्र बनाये तब तक यह करीब-करीब उनका सारा व्यक्तित्व स्त्रैण-भाव से भर गया था। उसमें से दाढ़ी-मूंछ बेहूदी थी, वह हमने अलग कर दिया, उसको हमने चित्रित नही किया, उसको चित्रित करना उचित नहीं मालूम पड़ा, क्योंकि उनके व्यक्तित्व का सारा ढंग स्त्रैण हो गया था।

१७. रामकृष्ण परमहंस के शरीर का स्त्रैण रूपान्तरण

रामकृष्ण के साथ एक ऐसी घटना घटी। रामकृष्ण की हालत तो इतनी अजीब हो गयी थी कि जो मेडिकल साइन्स के लिए बड़ी खोज की बात है। बड़ी अद्‌भुत घटना घटी। पीछे उसको छिपा कर बदलने की कोशिश की गयी, क्योंकि उसकी कैसे बात करें ? उनके स्तन बढ़ गये और उनको मासिक धर्म शुरू हो गया। यह तो इतनी अजीब घटना थी कि एक मिरेकल (चमत्कार) था। इतना व्यक्तित्व स्त्रैण हो गया था, वह चलते भी तो स्त्रियों जैसे चलने लगे थे। वह बोलते भी थे तो स्त्रियों जैसे बोलने लगे। तो ऐसी विशेष स्थिति मे तो बहुत फर्क पड़ सकता है। जैसे रामकृष्ण की इस हालत में वह शक्तिपात दे नही सकते थे किसी को। उनको लेना पड़ेगा। इस हालत में वे दे नहीं सकते किसी को शक्ति-पात। उनका व्यक्तित्व बाहर से स्त्रैण हो गया है।

१८. बुद्ध और महावीर के समय लाखों लोग चौथे शरीर को उपलब्ध हुए, फलतः पूरा मुल्क स्त्रैण हो गया

बुद्ध और महावीर ने जिस साधना और जिस प्रक्रिया का उपयोग किया उससे इस मुल्क में, उस जमाने में लाखों लोग चौथे शरीर में पहुँच गये। चौथे शरीर में पहुँचते ही उनका व्यक्तित्व स्त्रैण हो गया। स्त्रैण व्यक्तित्व का मतलब यह है कि उनमें जो स्त्रैण गुण हैं कोमल, वह बढ़ गये। हिंसा-क्रोध खत्म हो गया, आक्रमण बिदा हो गया, ममता और प्रेम और करुणा, अहिंसा बढ़ गये। पूरे हिन्दुस्तान के व्यक्तित्व के गहरे में स्त्रैणता आ गयी। मेरी अपनी जानकारी यही है कि हिन्दुस्तान पर बाद के सारे आक्रमणों का कारण यही था। क्योंकि हिन्दुस्तान के आस-पास के सारे पुरुष हिन्दुस्तान के स्त्रैण व्यक्तित्व को दबाने में सफल हो गये।

एक अर्थ में बड़ी कीमती घटना घटी है कि चौथे शरीर पर हमने बहुत अद्भुत अनुभव किये। लेकिन पहले शरीर की दुनिया में हमको मुश्किल हो गयी। मैंने कहा कि सब चीजें कम्पेनसेट (अन्तर्संन्तुलित) होती हैं। जो लोग चौथे शरीर का धन छोड़ने को राजी थे उनको पहले शरीर का धन और राज्य और साम्राज्य मिल सका और जो लोग चौथे शरीर का रस छोड़ने को राजी नहीं थे उनको यहाँ से बहुत-कुछ छोड़ देना पड़ा। बुद्ध और महावीर के बाद हिन्दुस्तान की आक्रामक वृत्ति खो गयी और वह रिसेप्टिव (ग्राहक) हो गया। तो जो भी आया उसको हम आत्मसात् करने की फिक्र में लग गये, उसे अलग करने का भी सवाल नहीं उठा हमारे मन में, कि उसको अलग कर दें और दूसरे पर जाकर हमला कर दें और दूसरे को हम जीत लें। वह तो सवाल ही खो गया। स्त्रैण व्यक्तित्व हो गया। एक वूम्ब (गर्भ) बन गया पूरा का पूरा भारत और जो भी आया उसको हम आत्मसात् करते चले गये। हमने उसको कभी इनकार नहीं किया, हटाने की हमने कोई फिक्र नहीं की और लड़ भी नहीं सके, क्योंकि लड़ने के लिए जो बात चाहिए थी, वह खो गयी थी। श्रेष्ठतम बुद्धि जो थी मुल्क की उससे वह बात खो गयी थी और जो साधारण जन है वह श्रेष्ठ के पीछे चलता है। वह भी बेचारा दब कर खड़ा था। वह करुणा-अहिंसा की बातें सुन रहा था और उसे लग रहा था कि ये बातें ठीक हैं, उसको और श्रेष्ठतम आदमी उनमें जी रहा था। वह छोटा साधारण आदमी उनके पीछे खड़ा था। वह लड़ सकता था, लेकिन उसके पास नेता नहीं था जो उसको लड़ा सकता।

१९. आध्यात्मिक मुल्क में स्त्रैण व्यक्तित्व की अधिकता

यह कभी जब दुनिया का इतिहास आध्यात्मिक ढंग से लिखा जायगा और जब हम सिर्फ भौतिक घटनाओं को इतिहास में नहीं समझेंगे, बल्कि चेतना में घटी घटनाओं को इतिहास समझेंगे—असली इतिहास वही है, तब हम इस बात को समझ पायेंगे कि जब भी कोई मुल्क आध्यात्मिक होगा तो स्त्रैण हो जायगा और जब भी स्त्रैण होगा तब अपने से बहुत साधारण सभ्यताएँ उसको हरा देंगी। अब यह बड़े मजे की बात है कि हिन्दुस्तान को जिन लोगों ने हराया वह हिन्दुस्तान से बहुत पिछड़ी हुई सभ्यताएँ थीं, एक अर्थ में बिलकुल ही जंगली और बर्बर सभ्यताएँ थी। चाहे तुर्क हों, मंगोल हों और चाहे मुगल हों, कोई भी हों उनके पास कोई सभ्यता ही न थी, लेकिन एक अर्थ में वे पुरुष थे, जंगली पुरुष थे बिलकुल, और हम रिसेप्टिव (ग्राहक) हो गये थे। हम उनको आत्मसात् ही कर सके। लड़ने का कोई उपाय न था।

तो स्त्री-शरीर आत्मसात् कर सकता है इसलिए, उसे माध्यम चाहिए। पुरुष-शरीर शक्तिपात दे सकता है और सीधे प्रसाद भी ग्रहण कर सकता है।

इसी वजह से महावीर जैसे व्यक्ति को तो यह भी कहना पड़ा है कि स्त्री को परम उपलब्धि के लिए पहले एक दफे पुरुष-शरीर लेना पड़ेगा, पुरुष-पर्याय में आना पड़ेगा। और बहुत कारणों में एक कारण यह भी था। वह सीधा प्रसाद ग्रहण नहीं कर सकती। जरूरी नहीं है कि वह मर कर पुरुष हो। ऐसी प्रक्रियाएँ हैं कि इसी हालत में व्यक्तित्व का रूपान्तरण किया जा सकता है। जो तुम्हारा नम्बर दो का शरीर है वह तुम्हारा नम्बर एक का शरीर हो सकता है और जो तुम्हारा नम्बर एक का शरीर है वह तुम्हारा नम्बर दो का शरीर हो सकता है। इसके लिए प्रगाढ़ संकल्प की साधनाएँ हैं, जिनसे तुम्हारा इसी जीवन में ही शरीर रूपान्तरित हो सकता है।

२०. संकल्प और साधना से स्त्री मल्लीबाई का पुरुष-तीर्थंकर मल्लीनाथ में रूपान्तरण

जैनों के एक तीर्थंकर के बाबत ऐसी ही मजेदार घटना घट गयी है। जैनों के एक तीर्थंकर स्त्री हैं, मल्लीबाई। श्वेताम्बर उनको मल्लीबाई ही कहते हैं लेकिन दिगम्बर लोग उनको मल्लीनाथ कहते हैं। वह उनको पुरुष ही मानते हैं। क्योंकि दिगम्बर जैनों को ख्याल है कि स्त्री को तो मोक्ष हो नहीं सकता तो स्त्री तीर्थंकर तो हो नहीं सकती। इसलिए वे मल्लिनाथ हैं। दिगम्बर उनको पुरुष ही मानते हैं और श्वेताम्बर उनको स्त्री ही मानते हैं। अब एक आदमी के बाबत इस तरह का विवाद मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में दूसरी जगह नहीं है : और सब चीजों के बाबत विवाद हो सकता है कि उसकी ऊँचाई पाँच फुट छह इंच थी कि पाँच इंच थी, वह आदमी कब पैदा हुआ। लेकिन यह बड़ा अद्भुत विवाद है कि वह स्त्री था कि पुरुष! एक वर्ग मानता है कि वह पुरुष था और एक वर्ग मानता है कि वह स्त्री था!

मेरी अपनी समझ यह है कि मल्लीबाई ने जब साधना शुरू की होगी तो वह स्त्री ही होंगी। लेकिन ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनसे नम्बर एक का शरीर पुरुष का बन सकता है। वह बन जाने के बाद ही वह तीर्थंकर हुए। और दूसरा वर्ग जो उनको पुरुष मानता है वह उनकी अन्तिम स्थिति को ही मान रहा है। और जो पहला वर्ग उनको स्त्री मानता था वह उनको पहली स्थिति को ही मान रहा है। दोनों बातें मानी जा सकती हैं। कोई कठिनाई नहीं है। वह स्त्री थे। लेकिन वह पुरुष हो गये होंगे। और महावीर की साधना ऐसी है कि उसमें कोई भी स्त्री गुजरेगी तो पुरुष हो जायगी। क्योंकि पूरी-की-पूरी जो साधना है वह भक्ति की नहीं है। पूरी-की पूरी साधना जो है वह ज्ञान की है। पूरी-की-पूरी साधना जो है वह आक्रामक (एग्रेसिव) है। वह रिसेप्टिव नहीं है साधना।

अगर कोई पुरुष भी मीरा की तरह भजन करे और नाचे और नाचता रहे

वर्षों और रात सोये तो बिस्तर पर कृष्ण की मूर्ति अपनी छाती से लगाकर सोये और कृष्ण की अपने को सखी माने। अगर यह वर्षों तक चले तो नाम मात्र को ही वह पुरुष रह जायगा। आमूल रूपान्तरण हो जायगा उसकी चेतना में। जो नम्बर एक शरीर है वह नम्बर दो हो जायगा। नम्बर दो जो था वह नम्बर एक हो जायगा। अगर यह बहुत गहरा परिवर्तन हो तो उसके शरीर पर लैंगिक अन्तर भी पड़ जायगा। अगर यह बहुत गहरा न हो तो शरीर पुराना रह जायगा, लेकिन मनस पुराना नहीं रह जायगा। चित्त स्त्रैण हो जायगा। तो इन विशेष स्थितियों में तो बात हो सकती है। विशेष स्थिति में यह (शक्तिपात की) घटना घट सकती है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन यह सामान्य नियम नहीं हो सकता है।

२१. स्त्री और पुरुष के प्रथम चक्कर शरीरों की विद्युतीय विभिन्नता के कारण पूरी सभ्यता और संस्कृति पर प्रभाव

पुरुष से शक्तिपात हो सकता है और पुरुष को प्रसाद मिल सकता है। लेकिन स्त्री को प्रसाद सीधा मिलना मुश्किल है। उसे शक्तिपात से ही प्रसाद का द्वार खुल सकता है। और यह तथ्य की बात है, इसमें कोई मूल्यांकन नहीं है। इसमें कोई आगे-पीछे, नीचा-ऊँचा नहीं है। ऐसा तथ्य है। ये वैसे ही तथ्य हैं जैसे पुरुष वीर्य की ऊर्जा देगा और स्त्री उसको संग्रहीत करेगी। और अगर कोई पूछे कि क्या स्त्री भी वीर्य की ऊर्जा पुरुष को दे सकती है तो हमें कहना है कि नहीं दे सकती। वह तथ्य नहीं है। इसमें वह नीचे है या ऊपर है, यह सवाल नहीं। लेकिन इस वजह से ही वैल्यूएशन (मूल्यांकन) पैदा हुआ और स्त्री नीचे मालूम होने लगी लोगों को। क्योंकि वह ग्राहक है और दाता बड़ा हो गया।

सारी दुनिया में स्त्री पुरुष की जो नीचाई-ऊँचाई की धारणा पैदा हुई वह इस वजह से पैदा हुई है कि पुरुष को लगता है कि मैं देने वाला हूँ और स्त्री को लगता है कि मैं लेने वाली हूँ। लेकिन लेने वाला अनिवार्य रूप से नीचा है, यह किसने कहा! और अगर लेने वाला न मिले तो देने वाला क्या अर्थ रखता है? या देने वाला न मिले तो लेने वाले का क्या अर्थ है? यह नीचे ऊँचे नहीं है। असल में यह एक दूसरे के परिपूरक (कम्प्लीमेण्टरी) हैं और दोनों परस्पर बँधे हैं। इण्डिपेण्डेण्ट (स्वतन्त्र) नहीं हैं। ये दो इकाइयाँ नहीं हैं, एक ही इकाई के दो पहलू हैं। उसमें एक ग्राहक है और एक दाता है। लेकिन स्वभावतः हमारे मन में अगर हम दाता शब्द का प्रयोग करें तो भी ख्याल आता है कि जो देने वाला है वह बड़ा होना चाहिए। लेने वाला छोटा होना चाहिए इसकी कोई वजह नहीं है। लेकिन इससे बहुत-सी चीजें जुड़ीं और स्त्री का व्यक्तित्व नम्बर दो का व्यक्तित्व स्वीकृत हो गया। स्त्री ने भी मान लिया कि उसका नम्बर दो का

व्यक्तित्व है, पुरुष ने भी मान लिया कि स्त्री का नम्बर दो का व्यक्तित्व है। उन दोनों का ही नम्बर एक का व्यक्तित्व है, उसका नम्बर एक का स्त्री की तरह है, इसका नम्बर एक का पुरुष की तरह है। नम्बर दो इसमें कोई भी नहीं है। और दोनों परिपूरक हैं।

अब इसका छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी चीजों में व्यापक परिणाम हुआ। पूरी संस्कृति और पूरी सभ्यता में यह बात प्रवेश कर गयी। इसलिए पुरुष शिकार करने गये। क्योंकि वह आक्रामक था। स्त्री घर में बैठी प्रतीक्षा करती रही। स्वभावतः उसने स्वीकार किया वह खेत पर काम करने गया, उसने गेहूँ बोया, उसने फसल काटी, वह दूकान करने गया, वह दुनिया में उड़ा, वह चाँद तक पहुँचा। वह सब काम करने गया। वह आक्रामक है इसलिए जा सका। स्त्री घर बैठ कर प्रतीक्षा करती है। घर में उसने भी बहुत कुछ किया, लेकिन वह आक्रामक नहीं थी, ग्रहण करने वाली थी। उसने घर बसाया, संग्रह किया, चीजों को जगह पर रक्खा, सारी सभ्यता का जो स्थिर तत्त्व है वह स्त्री ने बनाया है।

अगर स्त्री न हो तो पुरुष आवारा ही होगा, घुमक्कड़ ही होगा। घर नहीं बसा सकता। यहाँ से वहाँ जाता रहेगा। अभी वह स्त्री एक खूँटी की तरह उस पर काम करती है। घूम-घूमकर उस खूँटी पर वापस लौटना ही पड़ता है उसे, अन्यथा वह चला जाय एकदम। और तब नगर पैदा न होते। नगर की सभ्यता स्त्री की वजह से पैदा हुई, क्योंकि स्त्री एक जगह रुकना चाहती है, ठहरना चाहती है। वह आग्रह करती है, बस यहीं रुक जाओ, यहीं ठहर जाओ, थोड़ी मुसीबत में गुजार लेंगे, लेकिन कहीं और नहीं जाना है। वह जमीन को पकड़ती है, वह जमीन में जड़ें गड़ा लेती है, वह जमीन पर रुक कर खड़ी हो जाती है। पुरुष को उसके आस-पास फिर दुनिया बसानी पड़ती है। इसलिए नगर बसे, गाँव बसे, इसलिए सभ्यता बसी, घर बना और घर को उसने सजाया, बनाया। पुरुष ने जो बाहर की दुनिया में कमाया, इकट्ठा किया, उसको बचाया। नहीं तो पुरुष को बचाने में उत्सुकता नहीं है। वह कमाकर एक बार ले आया और बेकार हो गया। उसकी उत्सुकता तभी तक थी जब तक वह कमा रहा था, लड़ रहा था, जीत रहा था। अब उसकी इच्छा और दूसरी जगह जीतने को चली गयी। अब वह वहाँ जीतने चला गया है, लेकिन वह जो जीत लाया है उसको कोई बचा रहा है, सँभाल रहा है। उसका अपना मूल्य है, अपनी जगह है। वह परिपूरक है सारी स्थिति की। लेकिन स्वभावतः इसकी वजह से चूँकि वह लाती नहीं, जाती नहीं, कमाती नहीं, इकट्ठा नहीं करती, निर्माण नहीं करती—उसको लगा कि वह पिछड़ गयी। छोटी-से-छोटी चीज तक में यह बात प्रवेश कर गयी और सब जगह उसको एक हीनता का बोध पकड़ गया। हीनता का कोई सवाल नहीं है।

उस हीनता से एक दूसरा दुष्परिणाम होना शुरू हुआ कि जब तक स्त्री सुशिक्षित नहीं थी तब तक उसने हीनता को बरदाश्त किया। अब हीनता तो उसको बरदाश्त नहीं होती। तो हीनता को तोड़ने की दृष्टि से पुरुष जो कर रहा है, वही करने में लगी है। उससे और घातक परिणाम होने वाले हैं, क्योंकि वह अपने मूल व्यक्तित्व को तोड़ ले सकती है और उसको बहुत संघातक, उसके चित्त की गहराइयों तक नुकसान पहुँच सकते हैं। अब वह बराबर होने की कोशिश में लगी है और पुरुष की तरह होकर बराबर हो ही नहीं सकती। तब तो वह नम्बर दो की ही पुरुष होगी, नम्बर एक की नहीं हो सकती। हाँ, नम्बर एक की वह स्त्री की तरह ही हो सकती है। तो इनमें मेरा कोई वैल्युएशन (मूल्यांकन) नहीं है। लेकिन तथ्य ऐसा है इन चार शरीरों का, वह मैं आपसे कहता हूँ।

२२. स्त्री और पुरुष की साधना में नहीं, दृष्टिकोण के ढंग में फर्क

प्रश्नकर्ता : तब तो स्त्री और पुरुष की साधना में भी फर्क होगा ?

आचार्यश्री : फर्क होगा। फर्क साधना में कम, चित्त की दशा में ज्यादा होगा। जैसे पुरुष और स्त्री की एक ही साधना-पद्धति हो तो भी पुरुष उस पर आक्रामक की तरह जायगा और स्त्री उस पर ग्राहक की तरह जायेगी। पुरुष उस पर हमला करेगा, स्त्री उस पर समर्पण करेगी। एक ही साधना होगी तो भी उनका ढंग, उनका एटीट्यूड (ढंग) अलग-अलग होगा। पुरुष जब जायगा तो वह साधना की गर्दन पकड़ लेगा और स्त्री जब जायगी, उसके चरणों पर सिर रख देगी। वह उन दोनों के ढंग (एटीटयूड) में फर्क होगा। और उतना फर्क स्वाभाविक है। इससे ज्यादा फर्क का कोई सवाल नहीं है। बस समर्पण उसका भाव होगा और जब अन्तिम उपलब्धि उसे होगी तो उसे ऐसा नहीं लगेगा कि ईश्वर मुझे मिल गया, उसे ऐसा ही लगेगा कि मैं ईश्वर को मिल गयी। और अन्तिम उपलब्धि जब पुरुष को होगी तो उसे नहीं लगेगा कि मैं ईश्वर को मिल गया, उसे ऐसा लगेगा कि ईश्वर मुझे मिल गया। वह उनकी पकड़ के भेद होंगे। उतना तो फर्क रहेगा। लेकिन चौथे तक ही। इसके बाद तो कोई स्त्री पुरुष का प्रश्न नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि ओम् की साधना से भी नाद उपस्थित होते हैं। क्या आटोमेटिक (स्वयंभू) भी नाद उपस्थित होते हैं ? दोनो मे कौन-सा उचित है ?

आचार्यश्री : आटोमेटिक (अपने-आप) उपस्थित हो, वह ज्यादा कीमती है। ओम् के प्रयोग से उपस्थित हों तो वह कल्पित भी हो सकते हैं, अपने आप ही होने चाहिए। वही कीमती है, वही सच्चा है। यदि नाद उपस्थित हों तो उनके साक्षी बनना चाहिए। लीन नहीं होना चाहिए, क्योंकि लीन होने की अवस्था तो

सातवाँ शरीर ही है । उसके पहले लीन नही होना चाहिए । उसके पहले जहाँ लीन हो जायेंगे वहीं रुक जायेंगे, वह ब्रेक (अवरोध) हो जायगा ।

वह सूक्ष्म हो रहे हैं, इसका मतलब यह है कि वह खो रहे हैं । तो हमको भी उतनी ही सूक्ष्मता में साक्षी होना पड़ेगा । जितने वे सूक्ष्म होते जायेंगे, उतने हमको भी सूक्ष्म साक्षी बनना पड़ेगा । हमे उन्हें आखिरी तक देखना है जब तक कि वह खो ही न जायें ।

प्रश्नकर्ता : साधक के किस शरीर मे शक्तिपात की घटना और किस शरीर में प्रसाद (ग्रेस) की घटना घटित होती है ? यदि साधक का पहला दूसरा और तीसरा शरीर पूरा विकसित न हुआ हो तो उस पर कुण्डलिनी-जागरण और शक्तिपात का क्या प्रभाव पड़ेगा ?

२३. प्रथम तीन शरीर की तैयारी शक्तिपात के लिए सहयोगी

आचार्यश्री : पहली बात तो मैंने कह दी है कि **शक्तिपात पहले शरीर पर होता है और प्रसाद चौथे पर होता है ।** अगर पहले शरीर पर शक्तिपात हो और कुण्डलिनी जागृत न हुई हो तो कुण्डलिनी जागृत होगी और बड़ी तीव्रता से होगी । और बड़ी सम्भालने की जरूरत पड़ जायेगी । क्योंकि शक्तिपात मे वह जो काम महीनों में होता है वह क्षण में हो जायगा । इसलिए **शक्तिपात करने के पहले उस साधक की कम-से-कम तीन शरीरों की थोड़ी सी तैयारी की जरूरत है ।** एकदम गैर-तैयार साधक पर, सड़क चलते आदमी पर अगर पकड़ कर शक्तिपात हो तो लाभ की जगह नुकमान ही ज्यादा होगे । इसलिए शक्तिपात के पहले थोड़ी-सी तैयारी जरूरी है । बहुत ज्यादा तैयारी की जरूरत नही है । थोड़ी-सी तैयारी जरूरी है कि उसके **तीनों शरीर एक फोकस (सन्तुलन) में आ जायें पहली बात ।** तीनों शरीरों के बीच एक सूत्रबद्धता आ जाय ताकि **जब शक्तिपात हो तो** वह एक पर न अटक जाय । शक्तिपात एक पर अटक गया तो नुकमान होगा । **वह तीनों पर फैल जाय तो कोई नुकसान नहीं होगा ।** अगर एक पर रुक गया तो बहुत नुकसान होगा ।

वह नुकसान उसी तरह का है जैसे कि आप खड़े है और बिजली का शाक लग जाय । अगर बिजली का शाक लग जाय आपको और नीचे जमीन हो और जमीन शाक को पी जाय पूरा, तो नुकसान पहुँचेगा । लेकिन अगर आप लकड़ी के चौखटे पर खड़े हैं और बिजली का शाक लगे तो नुकसान नहीं होगा । क्योंकि शाक आपके पूरे शरीर में घूमकर वर्तुल (सर्किट) बन जायगा । फिर कोई नुकसान नही होता । सर्किट टूट जाय कहीं से तो नुकसान होता है । समस्त ऊर्जा का नियम यही है कि वह सर्किल में चलती है । और अगर कहीं भी बीच से

सर्किट टूट जाय तो ही धक्का और शाक लग सकता है। इसलिए अगर लकड़ी की टेबल पर खड़े हों तो शाक नहीं लगेगा।

२४. ध्यान में उत्पन्न देह-विद्युत् के संरक्षण के लिए विद्युत कुचालक वस्तुओं का आसन

यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी कि **लकड़ी के तख्त पर बैठ कर** ध्यान करने का और कोई प्रयोजन नहीं था। यह भी जान कर तुम्हें हैरानी होगी कि **मृग-चर्म पर और शेर की चमड़ी पर बैठ कर ध्यान करने** का भी यही प्रयोजन है कि वे सब नान-कण्डक्टर हैं। मृग-चर्म बहुत नान कण्डक्टर (विद्युत् कुचालक) है। अगर उस वक्त शरीर मे ऊर्जा पैदा हो तो वह नीचे जमीन मे न जुड़ जाय नहीं तो शाक लग जायगा। आदमी मर भी सकता है। **इसलिए साधक खड़ाऊँ पहनता रहा। लकड़ी के तख्त पर सोता रहा।** भले उसे पता न हो कि वह किसलिए सो रहा है, क्या कर रहा है। लिखा है शास्त्र में, तो वह सो रहा है लकडी के तख्त पर। शायद सोच रहा है कि शरीर को कष्ट देने के लिए सो रहे हैं। शरीर को आराम न दें इसलिए सो रहे हैं। वह कारण नहीं है। खतरे दूसरे हैं। साधक पर किसी भी क्षण घटना घट सकती है, किसी भी अनजान स्रोत से। उसको तैयार होना चाहिए।

अगर उसके तीन शरीर की तैयारी पूरी है, पहले दूसरे तीसरे की, तो वह जो शक्ति उसको मिलेगी वह चौथे तक जाकर सर्किट (वर्तुल) बना लेगी। अगर यह तैयारी न हो और पहले ही शरीर पर उसकी शक्ति अवरुद्ध हो गयी तो बहुत तरह के नुकसान पहुँच सकते हैं। इसलिए इतनी भर की तैयारी जरूरी है कि साधक शक्ति को वर्तुल बनाने में समर्थ हो गया हो। यह बहुत बड़ी तैयारी नहीं है। बहुत आसानी से, सरलता से हो जाती है। इसमें बहुत कठिनाई नहीं है।

२५. शक्तिपात से कुण्डलिनी का विकास चौथे शरीर तक ही सम्भव

कुण्डलिनी बहुत तीव्रता से जागेगी शक्तिपात से। लेकिन बस चौथे केन्द्र तक ही जा सकेगी। इसके बाद की यात्रा फिर निजी है। मगर इतने तक भी पहुँच जाने की झलक भी बहुत अद्भुत है। और अन्धकार मे अमावस मे बिजली चमक जाय और मुझे दो मील का रास्ता दिख जाय तो भी कुछ कम नहीं है। एक दफा रास्ता भी दिख जाय थोड़ा-सा तो भी सब कुछ बदल गया। मैं वही आदमी नहीं रह जाऊँगा जो कल तक था। इसलिए शक्तिपात का थोड़ी दूर तक दर्शन के लिए उपयोग किया जा सकता है। पर उसकी प्राथमिक तैयारी हो जानी चाहिए। सीधी सामान्यजन पर नुकसानदायक है ही। और मजा यह है कि सामान्यजन ही ज्यादा शक्तिपात इत्यादि पाने के लिए उत्सुक रहता

है। वह चाहता है, मुफ्त में कुछ मिल जाय। लेकिन मुफ्त में कुछ भी नहीं मिलता। और कई दफे बाद मे पता चलता है कि मुफ्त की चीज बहुत महँगी पड़ती है। **मुफ्त की चीज से बचने की कोशिश करनी चाहिए।** असल में हमें सदा कीमत चुकाने को तैयार होना चाहिए। **जितनी हम कीमत चुकाने की तैयारी दिखलाते हैं, उतना ही हम पात्र होते चले जाते हैं।** और बड़ी कीमत हम अपनी साधना से चुकाते हैं।

अभी एक महिला आयी दो दिन पहले। उसने कहा अब तो मैं मरने के करीब हूँ। उम्र हो गयी। मुझे ज्ञान कब होगा। जल्दी करवा दे, नहीं तो मैं मर जाऊँगी, मिट जाऊँगी, समाप्त हो जाऊँगी। तो मैंने उससे कहा कि तुम ध्यान के लिए आ जाओ। दो-चार दिन ध्यान करो, फिर देखेंगे ध्यान में तुम्हारी क्या गति होती है। तब आगे की बात सोचेंगे। उसने कहा, नहीं ध्यान से मुझे मत उलझाइये मुझे तो जल्दी ज्ञान हो जाय। अब यह बिना कीमत चुकाये कुछ चीज खो जाती है। ऐसी खोज खतरनाक सिद्ध होती है। इससे कुछ मिलता तो नहीं है, कुछ छूट सकता है। ऐसी आकांक्षा भी साधक मे नहीं होनी चाहिए। **जितनी हमारी तैयारी है उतना हमें सदा मिल जायगा** इसका भरोसा होना चाहिए। यह मिल ही जाता है। असल में जो आदमी जितनी चीज का पात्र है उससे कम उसे कभी नही मिलता। **यह जगत् का न्याय है,** यह जगत् का **धर्म है।** हम जितनी दूर तक तैयार होते हैं उतनी दूर तक हमें मिल जाता है और अगर न मिलता हो तो हमें सदा जानना चाहिए कि कोई अन्याय नही हो रहा है, हमारी तैयारी कम होगी। लेकिन हमारा मन सदा यह कहता है कि कोई अन्याय हो रहा है। मैं योग्य तो इतना हूँ, लेकिन मुझे यह नहीं मिल रहा है।

२६. देह-चुम्बक की थोड़ी जानकारी से शक्तिपात-जैसे झटके पहुँचाना सम्भव

हम जितने योग्य होते हैं उतना हमें सदा ही मिलता है। **योग्यता और मिलना एक ही चीज के दो नाम हैं।** लेकिन मन हमारा आकांक्षा बहुत की करता है और श्रम बहुत कम के लिए करता है। हमारी आकांक्षा और हमारे श्रम मे बड़ा फासला होता है। वह फासला बहुत आत्मघाती है। वह कभी नुकसान पहुँचा सकता है। उसकी वजह से हम दीवाने की तरह घूमते हैं कि कहीं कुछ मिल जाय, कहीं कुछ मिल जाय। और फिर जब बहुत लोग इस तरह मुफ्त में खोजने घूमते हैं तब निश्चित ही कुछ लोग उनका शोषण कर सकते हैं। जो इनको मुफ्त में देने की तैयारी दिखलायें। इनके पास बहुत कुछ नहीं हो सकता, लेकिन अगर इन्हें कुछ सूत्र भी कहीं से पता चल गये हों जिससे ये थोड़ा बहुत कुछ कर सकते हैं, जो बहुत गहरा नहीं होगा, लेकिन उतना नुकसान तो ये पहुँचा ही देंगे।

जैसे कि एक आदमी जिस को शक्तिपात का कोई भी पता नहीं है, वह भी अगर चाहे तो सिर्फ बॉडी मैग्नटिज्म (देह-चुम्बकत्व) से थोड़ा-बहुत शक्तिपात कर सकता है। लेकिन उसे भीतरी छह शरीरों का कोई भी पता नहीं। शरीर के पास अपनी मैग्नीटिक फोर्स (चुम्बकीय-शक्ति) है। अगर उसकी थोड़ी व्यवस्था से इन्तजाम किया जाय तो तुम्हें शॉक पहुँचाये जा सकते हैं उसी से। इसलिए पुराना साधक दिशा देखकर सोयेगा। इस दिशा में सिर नहीं करेगा, उस दिशा में पैर नहीं करेगा। क्योंकि जमीन का एक मैग्नेट (चुम्बकीय-क्षेत्र) है। और वह सदा उस मैग्नेट की सीध में रहना चाहता है। उस मैग्नेट (चुम्बक) से वह मैग्नटाइज (आवेषित) होता रहता है। अगर तुम उससे आड़े सोते हो तो तुम्हारे शरीर का मैग्निटिज्म (चुम्बकत्व) कम होता चला जाता है। अगर तुम उस चुम्बक की धारा में सोते हो जो जमीन का चुम्बक बनाता है, जिसको कि जमीन पूरी-की-पूरी धुरी बनाये हुए है तो वह तुम्हारे मैग्नेट को मैग्नेटाइज करता है। वह तुम्हारे शरीर को (चुम्बकीय शक्ति से) भर देता है। जैसा एक मैग्नेट के पास तुम लोहा रख दो तो वह लोहा भी थोड़ा-सा मैग्नेटाइज हो जायगा और छोटी-मोटी सूई को वह भी खींच सकेगा।

२७. पृथ्वी व तारों से उपलब्ध विशिष्ट चुम्बकीय शक्ति का उपयोग

तो बॉडी (शरीर) की अपनी चुम्बकीय शक्ति है। उसको अगर पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति के साथ रक्खा जा सके तो उसके बड़े लाभ हैं। फिर तारों की चुम्बकीय शक्तियाँ हैं। विशेष तारे विशेष मुहूर्त में विशेष रूप से चुम्बकीय होते हैं। उसके पता होने में कोई कठिनाई नहीं है, उसकी सारी-की-सारी व्यवस्था है। तो उन विशेष तारों से विशेष घड़ी में, विशेष स्थिति में, विशेष आसन में खड़े होने से तुम्हारा शरीर बहुत चुम्बकीय हो जाता है और तब तुम किसी भी आदमी को चुम्बकीय शॉक दे सकते हो जो उसे शक्तिपात मालूम पड़ेगा, जो कि शक्तिपात नहीं है। शरीर की अपनी विद्युत् है। उस विद्युत् (इलेक्ट्रिसिटी) को अगर ठीक से पैदा किया जाय तो छोटा-मोटा पाँच दस कैण्डिल का बल्ब तो हाथ में रखकर जलाया जा सकता है। उसके प्रयोग हुए हैं और सफल हुए हैं। कुछ लोगों ने सीधा हाथ में बल्ब लेकर जला दिया है। पाँच दस कैण्डिल का बल्ब तो हाथ से जल सकता है। शक्ति तो उससे भी बहुत ज्यादा है।

एक स्त्री बेल्जियम में कोई बीस वर्ष पहले अचानक रूप से इलेक्ट्रिफाइड (विद्युत् आविष्ट) हो गयी। उसे कोई छू नहीं सकता था। क्योंकि जो भी छुए उसे शॉक लग जाय। उसके पति ने उसको तलाक दिया। तलाक का कारण यह था कि उसको शॉक लगता उसे छू कर। तलाक की वजह से सारी दुनिया में पता चला और जब उसके शरीर की जाँच-पड़ताल हुई, तब पता चला कि

उसका शरीर विद्युत् पैदा कर रहा है बहुत जोर से । शरीर के पास बड़ी बैटरीज हैं । अगर वह व्यवस्थित काम कर रही हों तो हमें पता नहीं चलता, अगर वे अव्यवस्थित हो जायें तो उनसे बहुत शक्ति पैदा होती है ।

२८. झूठे शक्तिपात के कुछ उपायों का संकेत

तुम भोजन से ऊर्जा (कैलरीज) ले जाकर भीतर उन सब बैटरीज को आविष्ट (चार्ज्ड) कर रहे हो । इसलिए कई बार तुमको ही लगता है कि जैसे चार्ज खो गया है, रीचार्ज होने (शक्ति-संचय) की जरूरत है । साँझ का थका, टूटा, माँदा आदमी ऐसा लगता है जैसे उसकी बैटरी धीमी पड़ गयी, उसने चार्ज खो दिया और रीचार्ज (पुनः आविष्ट) होना चाहता है । रात सोकर वह रीचार्ज होता है । उसे पता नहीं कि सोने में कौन-सी बात है जिससे सुबह वह रीचार्ज्ड होकर उठता है । उसकी बैटरी वापस चार्ज्ड हो गयी है । नींद में कुछ प्रभाव उस पर काम कर रहे हैं । उनका सब पता चल चुका है कि वे कौन से प्रभाव काम करते हैं । कोई आदमी चाहे तो उन प्रभावों का जागते हुए अपने शरीर में फायदा ले सकता है । और तब वह तुम्हारे शरीर में शॉक दे सकता है जो मैगनेटिक (चुम्बकीय) भी नहीं है, बॉडी इलेक्ट्रिक (देह-विद्युत्) के हैं । लेकिन, उससे तुम्हें शक्तिपात का भ्रम हो सकता है ।

इसके अलावा भी शक्तिपात के और रास्ते हैं जो झूठे (फाल्स) हैं । उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है असली शक्तिपात का । अगर उस आदमी को अपने शरीर के मैगनेट का कोई पता नहीं है, अपने शरीर की विद्युत् का भी कोई पता नहीं है, लेकिन अगर तुम्हारे शरीर के विद्युत् की सर्किट को तोड़ने का उसे कोई रास्ता पता है तो भी तुम्हें शॉक लग जायगा । अब इसको कई तरह से किया जा सकता है और कई तरह के इन्तजाम किये जा सकते हैं कि तुम्हारा ही जो वर्तुल (सर्किट) है, विद्युत का, वह अगर तोड़ दिया जाय तो तुमको शॉक लगेगा । उससे दूसरे आदमी से कुछ भी नहीं आ रहा है तुम्हारी तरफ । लेकिन तुमको शॉक लग रहा है । सर्किट तोड़ा जा सकता है । उसको तोड़ने की भी व्यवस्थाएँ हैं, उपाय है ।

२९. मात्र कुतूहल से साधना में खतरे ।

यह सारी-की-सारी बातें तुम्हें मैं पूरी नहीं बता सकूँगा । क्योंकि पूरी बतानी कभी भी उचित नहीं है । और जितनी बातें मैं कह रहा हूँ उनमें से कुछ भी पूरी बात नहीं । यह जो मैं फाल्स मेथड्स (मिथ्या-उपायों) की बात कर रहा हूँ इसमें कोई भी बात पूरी नहीं है । क्योंकि इसमें पूरा कहना सदा खतरनाक है । क्योंकि उसको कोई भी करने का मन होता है । हमारी क्यूरियॉसिटी (कुतूहल) बहुत उथली है । एक फकीर ने तो कुतूहल (क्यूरियॉसिटी) को सिन (पाप) कहा है । पाप एक ही है आदमी में, वह है उसका कुतूहल । और बाकी कोई

पाप नहीं है। क्योंकि आदमी कुतूहलवश कितने पाप कर लेता है, हमें पता नहीं चलता। कुतूहल ही उसको न मालूम कितने पाप करा देता है।

वाइबिल की एक कथा है कि आदम से ईश्वर ने कहा है कि तू इस वृक्ष का फल मत चखना। बस इसी कुतूहल ने दिक्कत में डाल दिया उसे। ओरिजिनल सिन (मूल पाप) जो है वह क्यूरियॉसिटी (कुतूहल) का था। उसको यह दिक्कत पड़ गयी। उसने कहा कि मामला बड़ा गड़बड़ है। इतने बड़े जंगल में, इतने सुन्दर फलों में यह एक साधारण-सा वृक्ष है, इसका फल खाने की मनाही है। बात क्या है! सारे वृक्ष बेकार हो गये। वह एक ही वृक्ष सार्थक हो गया। चित्त वहीं डोलने लगा, उसका। वह बिना फल चखे न रह सका। फल उसे चखना पड़ा। कुतूहल उसे उस वृक्ष के पास ले गया। ईसाइयत कहती है कि इससे ही ओरिजिनल सिन (मूल पाप) घटित हो गया। अब मूल पाप फल के चखने में क्या हो सकता है? नहीं, लेकिन मूल पाप उसके कुतूहल का हो गया।

और हमारे मन में बड़ा कुतूहल होता है। शायद ही हमारे मन में कभी जिज्ञासा हो। जिज्ञासा सिर्फ उसी में होती है जिसमें कुतूहल नहीं होता। और ध्यान रखना, क्यूरियॉसिटी (कुतूहल) और इन्क्वायरी (जिज्ञासा) में बड़ा बुनियादी फर्क है। क्यूरियस (कुतूहल) आदमी इन्क्वायरिंग (जिज्ञासु) नहीं होता है। आदमी कुतूहल से भरा रहता है कि यह भी देख लें, वह भी देख लें। वह किसी भी चीज को कभी पूरा नहीं देखता। वह एक चीज को देख नहीं पाता कि पच्चीस और चीजें उसे बुलाने लगती हैं कि यह भी जान लें, वह भी देख लें। और तब वह कभी भी अन्वेषण नहीं कर पाता है।

यह फाल्स मेथड्स की जो मैं बात कह रहा हूँ, यह पूरी नहीं है। इसमें कुछ खास बातें छोड़ दी गयी हैं। उनका छोड़ देना जरूरी है। क्योंकि हमारा मन होता है कि हम उनको करके देखें। लेकिन यह सब हो जाता है इसकी जरा भी कठिनाई नहीं है। और इस सबकी वजह से जो झूठे आकांक्षी खोजते फिरते हैं कि हमें शक्ति मिल जाय, परमात्मा मिल जाय, कोई दे दे, इनको कोई देने वाला भी मिल जाता है और तब अन्धे अन्धों का मार्ग-दर्शन करते हैं। और फिर अन्धे तो गिरते ही हैं, उनके पीछे अन्धों की बड़ी कतार गिरती है। और यह नुकसान साधारण नहीं होता है। अनेक जन्मो के लिए हो जाता है। क्योंकि किसी चीज को तोड़ लेना बहुत आसान है, फिर से बनाना बहुत मुश्किल है। इसलिए कुतूहलवश कभी इस सम्बन्ध में कुछ खोजबीन करना ही नहीं है। इस सम्बन्ध में अपनी तैयारी पहले करना, फिर जो जरूरी है वह अपने आप तुम्हारे पास आ जायगा, आ जाता है।

●

हैं तो हमें पता नहीं होता है कि हम उठ रहे हैं, खाना खाते हैं तो हमें पता नहीं होता है कि हम खाना खा रहे हैं। शरीर से हम जो काम लेते हैं वह अत्यन्त मूर्च्छा और निद्रा में लेते हैं। **अगर इस शरीर के प्रति मूर्च्छा है तो दूसरे शरीरों के प्रति तो और भी मूर्च्छा होगी, क्योंकि वह तो बहुत सूक्ष्म हैं।** अगर इस स्थूल, दिखायी पड़ने वाले शरीर, के प्रति भी हमारा कोई होश (अवेयरनेस) नहीं है तो जो शरीर नही दिखायी पड़ते, अदृश्य हैं, उनका तो कोई सवाल नहीं उठता। उनके प्रति तो हमे कभी होश नहीं हो सकता। और **बिना होश के सामंजस्य नहीं है। सब सामंजस्य होश में होता है।** नींद में सब सामंजस्य टूट जाता है। तो पहली बात तो इस शरीर के प्रति अवेयरनेस (होश) जगाना जरूरी है। यह शरीर छोटा-सा भी काम करे तो उसमे एक रिमेंबरिंग (स्मरण) होना आवश्यक है। जैसे बुद्ध कहते थे कि तुम राह पर चलो तो तुम जानो कि चल रहे हो और जब तुम्हारा बायाँ पैर उठे तो तुम्हारे चित्त को पता हो कि बायाँ पैर उठा है और जब तुम रात करवट लो तो तुम जानो कि तुमने करवट ली है।

बुद्ध एक गाँव से निकल रहे हैं। यह उनकी साधक अवस्था की घटना है। एक साधक उनके साथ है। वे दोनों बात कर रहे है और एक मक्खी उनके गले पर आकर बैठ गयी है। वे बात करते रहे और हाथ से उन्होंने मक्खी को उडा दिया। मक्खी उड़ गयी, तब अचानक वे रुक कर खड़े हो गये। और उन्होंने उस साधक से कहा कि बड़ी भूल हो गयी और उन्होंने फिर से मक्खी उड़ायी जो कि अब वहाँ थी ही नहीं। उस जगह हाथ ले गये जहाँ पहले मक्खी थी। उस साधक ने कहा, यह आप क्या कर रहे हैं, अब तो मक्खी नही है। बुद्ध ने कहा, अब मैं मक्खी वैसे उड़ा रहा हूँ जैसे मुझे उड़ानी चाहिए थी। अब मैं होशपूर्वक उड़ा रहा हूँ, अब मेरा यह हाथ उठ रहा है तो मेरी चेतना में मैं जान रहा हूँ कि हाथ जा रहा है मक्खी को उड़ाने। उस वक्त मैं तुमसे बात करता रहा और यन्त्रवत् मैंने मक्खी उड़ा दी। मेरे शरीर के प्रति एक पाप हो गया।

३. प्रथम स्थूल शरीर के प्रति जागने पर दूसरे भाव-शरीर का बोध प्रारम्भ

यदि हम अपने शरीर के प्रत्येक काम को होश से करने लगें तो हमारा यह शरीर पारदर्शी (ट्रांसपेरेण्ट) हो जायगा। कभी इस हाथ को नीचे से ऊपर तक होश-पूर्वक उठायें और तब आप एहसास करेंगे कि आप हाथ से अलग हैं, क्योंकि उठाने वाला बहुत भिन्न है। **वह जो भिन्नता का बोध होगा वह आपकी इथरिक बॉडी (भाव-शरीर) का बोध शुरू हो गया।** फिर जैसे मैंने कहा कि इस दूसरे शरीर के प्रति भी बोध चाहिए। जैसे समझ लें कि यहाँ एक आरकेस्ट्रा बजता हो, बहुत तरह के वाद्य बजते हों। जिस आदमी ने संगीत कभी नहीं सुना है उसे भी हम वहाँ

१६. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक १० जुलाई, १९७०

•

शरीर से आत्मा और आत्मा से—ब्रह्म निर्वाण और महापरिनिर्वाण तक

ले जायें तो वे स्वर जो सबसे ज्यादा बजते होंगे, ढोल जो सबसे ज्यादा पीटा जा रहा होगा उसे वही सुनायी पड़ेगा। बहुत धीमे स्वरों वाले, मन्दे स्वर वाले, पीछे से, पृष्ठभूमि से बजने वाले वाद्य स्वर उसे सुनायी नही पड़ेंगे। लेकिन, उसका होश बढ़ता जाय तो फिर उसे पीछे वाले स्वर भी सुनायी पड़ने शुरू होंगे। उसका होश और बढ़ता चला जाय तो उसे और पीछे वाले स्वर सुनायी पड़ने शुरू होंगे और जिस दिन उसका होश पूरा होगा उस दिन बहुत ही बारीक और नाजुक जो स्वर हैं उन्हें भी वह पकड़ने लगेगा और जिस दिन उसका होश और भी बढ़ जायगा उस दिन वह केवल स्वर ही नही पकड़ेगा वरन् दो स्वरों के बीच में जो अन्तराल (गैप, साइलेंस) है, उसे भी पकड़ेगा और तभी वह संगीत को पूरा पकड़ पायेगा। अन्तिम तो उसको अन्तराल (गैप) पकड़ना है, तब समझेंगे कि उसकी संगीत की पकड़ पूरी हो पायी। जब दो स्वर के बीच में जगह खाली छूट जाती है और कोई स्वर नही होता, सन्नाटा होता है तो उस सन्नाटे का भी अपना अर्थ है। असल में संगीत के सब स्वर उसी सन्नाटे को उभारने के लिए हैं। वह कितना उभरता है और प्रकट होता है यही असली बात है।

अगर आपने कभी कोई जापानी या चाइनीज पेंटिंग (चित्रकारी) देखी है तो बहुत हैरान होंगे यह बात देख कर कि पेंटिंग एक कोने पर होगी, छोटी-सी और कैनवस बहुत बड़ा, खाली ही होगा। ऐसा दुनिया मे कही नही होता, क्योकि दुनिया मे कही भी चित्रकार ने ध्यान के साथ चित्र नही बनाये। असल में ध्यानी ने दुनिया में कहीं भी पेंटिंग नहीं की, सिवाय चीन और जापान के। अगर आप इस चित्रकार से पूछेंगे कि क्या मामला है, इतना बड़ा कैनवस लिया है उसमें इतना छोटा-सा, कोने मे, जो चित्र बनाया है, यह तो आठवें हिस्से के कैनवस मे भी बन सकता था। बाकी कैनवस की क्या जरूरत थी? तो वह कहेगा कि वह जो बाकी पृष्ठ पर खाली आकाश है उसको उभारने के लिए ही यह नीचे कोने पर थोड़ी-सी मेहनत की। वास्तव मे अनुपात यही है। अब एक वृक्ष खड़ा है, खाली आकाश मे। जब हम चित्र बनाते है तो पूरे कैनवस पर वृक्ष हो जाता है। वस्तुतः आकाश होना चाहिए पूरे कैनवस पर, वृक्ष तो कही कोने में होना चाहिए। आकाश की तुलना मे वृक्ष इतना छोटा है कि उसका पता ही नही चलता। अनुपात वास्तविक यही है और वृक्ष अपने पूरे अनुपात में जब आकाश की पृष्ठभूमि में खड़ा होगा तभी जीवन्त होगा। इसलिए हमारी सारी पेंटिंग अनुपात-हीन है। अगर ध्यानी कभी संगीत पैदा करेगा तो उसमें स्वर कम होंगे, शून्यता ज्यादा होगी। क्योकि स्वर तो बहुत छोटी बात है, शून्य बहुत बड़ी बात है। और स्वर की एक ही सार्थकता है कि वह शून्य को इंगित कर जाय और विदा हो जाय। लेकिन जितना बोध बढ़ेगा, स्वर का, उतनी ही शून्य की भी झलक मिलेगी।

१. कुण्डलिनी-जागरण के लिए प्रथम तीन शरीरों में सामञ्जस्य आवश्यक

प्रश्नकर्ता : कल की चर्चा मे आपने अविकसित प्रथम तीन शरीरों के ऊपर होने वाले शक्तिपात या कुण्डलिनी-जागरण के प्रभाव की बात की। दूसरे और तीसरे शरीर के अविकसित होने पर कैसा प्रभाव होगा, इस पर कुछ और प्रकाश डालने की कृपा करें। साथ ही यह भी बतायें कि प्रथम तीन शरीर—फिजिकल, इथरिक और एस्ट्रल को विकसित करने के लिए साधक क्या तैयारी करे ?

आचार्यश्री : इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह समझने की है कि **पहले, दूसरे और तीसरे शरीरों में सामंजस्य (हार्मनी) होनी जरूरी है।** ये तीनों शरीर अगर आपस में एक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध मे नही है तो कुण्डलिनी-जागरण हानिकर हो सकता है और इन तीनों के सामंजस्य में, संगति में होने के लिए, दो-तीन बातें आवश्यक हैं।

२. प्रथम शरीर के प्रति बोधपूर्ण होना

पहली बात तो यह कि हमारा पहला शरीर, जब तक हम इस शरीर के प्रति मूर्च्छित हैं, तब तक हमारा यह शरीर हमारे दूसरे शरीरों के साथ-साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता। मूर्च्छित से मेरा मतलब यह है कि **हम अपने शरीर के प्रति बोधपूर्ण नहीं हैं।** चलते हैं तो हमें पता नहीं होता है कि हम चल रहे हैं, उठते

तो हमारा जो यह स्थूल शरीर है इसकी सार्थकता ही यही है कि यह हमें और सूक्ष्म शरीरों का बोध करा जाय। लेकिन हम इसी को छोड़ कर बैठ जाते हैं और पकड़ कर बैठने की जो तरकीब है वह यह है कि हम इस शरीर के प्रति मूर्च्छित तादात्म्य कर लेते हैं, एक स्लीपिंग आइडेंटिटी (निद्रित तादात्म्य) है। हम सो गये हैं और शरीर को हम बिलकुल मूर्च्छा की तरह जी रहे हैं। इस शरीर की एक-एक क्रिया के प्रति जागोगे तो तुम्हें फौरन दूसरे शरीर का बोध शुरू हो जायगा। फिर दूसरे शरीर की भी अपनी क्रियाएँ हैं। लेकिन भाव-शरीर को तुम तब तक नहीं जान सकोगे जब तक इस शरीर की क्रियाओं के प्रति नहीं जागोगे, क्योंकि वह सूक्ष्म है। अगर तुम इस शरीर की क्रियाओं के प्रति जाग गये तो तुम्हें दूसरे शरीर की क्रियाओं की भी हलन-चलन का पता चलने लगेगा। अब दूसरे शरीर की हलन-चलन पर जिस दिन तुम जागोगे तुम बहुत हैरान हो जाओगे कि यह तो हमें पता ही नहीं था कि हमारे भीतर इथरिक वेव्ज भी हैं। और वे पूरे वक्त काम कर रही हैं।

४. भाव-शरीर में उठने वाली प्रेम, घृणा, क्रोध आदि की तरंगों के प्रति होश

एक आदमी ने क्रोध किया। क्रोध का जन्म दूसरे भाव-शरीर में होता है, अभिव्यक्ति पहले शरीर में होती है। क्रोध मूलतः दूसरे शरीर की क्रिया है। पहले शरीर का तो साधन की तरह उपयोग होता है। इसलिए तुम चाहो तो पहले शरीर तक क्रोध को आने से रोक सकते हो। दमन में यही करते हो। क्रोध से भर गया हूँ, मन होता है कि तुम्हें लकड़ी उठाकर मार दूँ। लकड़ी मारने से मैं अपने को रोक सकता हूँ। क्योंकि यह पहले शरीर की क्रिया है। यह मूलतः क्रोध नहीं है। यह क्रोध की अभिव्यक्ति है। मै अपने को लकड़ी मारने से रोक सकता हूँ। चाहूँ तो तुम्हें देखकर मुस्कराता भी रह सकता हूँ। लेकिन भीतर मेरे दूसरे शरीर पर क्रोध फैल जायगा। तो दमन में इतना ही होता है कि हम अभिव्यक्ति के तल पर उसको प्रकट नहीं होने देते। लेकिन मूल स्रोत के तल पर तो वह प्रकट हो जाता है। अब तुम्हें पहले शरीर की क्रियाओं का पता चलना शुरू होगा, तब तुम अपने भीतर उठने वाले प्रेम, घृणा, भय के मूवमेण्ट्स (हलन-चलन) को भी समझने लगोगे। उनकी उपस्थिति का तुम्हें पता चलने लगेगा। और जब तक तुम दूसरे शरीर पर उठने वाले इन सब भावों की गतियों को नहीं पकड़ पाते हो तब तक ज्यादा-से-ज्यादा दमन ही कर सकते हो। मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि तुमको पता ही तब चलता है जब वह इस शरीर तक आ जाता है। तुमको खुद भी तभी पता चलता है। कई बार तो तब भी पता नहीं चलता। पता चलता है, जब तक दूसरे के शरीर तक न पहुँच जाय। हम इतने मूर्च्छित होते हैं कि जब तक

मेरा चाँटा तुम्हारे ऊपर न पड़ जाय तब तक यह पता नहीं चलता कि मैं चाँटा मारने वाला था। जब चाँटा लग ही जाता है तब मुझे पता चलता है कि कोई घटना घट गयी। लेकिन यह उठता है इथरिक बॉडी (भाव-शरीर) में। वहाँ से पैदा होते हैं समस्त भाव।

इसलिए मैंने दूसरे इथरिक शरीर को भाव-शरीर कहा। उसकी अपनी गति है। क्रोध में, प्रेम में, घृणा में, अशान्ति में, भय में उसके अपने मूवमेण्ट (गतियाँ कम्पन) हो रहे हैं। उसकी गतियों को तुम पहचानने लगोगे।

५. भय के इथरिक कम्पन का बाह्य व्यक्तित्व पर प्रभाव

जब तुम भयभीत होते हो तब तुम्हारी इथरिक बॉडी एकदम सिकुड़ जाती है। तो भय में जो संकोच मालूम पड़ता है वह पहले शरीर का नहीं है। क्योंकि पहला शरीर तो उतना ही रहता है। उसमें कोई फर्क नही पड़ता। पहले शरीर के आयतन में कोई फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन इथरिक बॉडी सिकुड़ जाती है, भय में। इसलिए जो आदमी भयभीत रहता है उसके पहले शरीर पर भी संकोच के प्रभाव दिखायी पड़ने लगते है। उसके चलने में, उसके बैठने में, वह पूरे वक्त दबा-दबा मालूम पड़ता है। जैसे चारों तरफ से कोई उसे दबाये हुए है। वह खड़ा होगा तो सीधा खड़ा नहीं होगा। झुक कर खड़ा होगा। वह बोलेगा तो लड़खड़ायेगा, चलेगा तो उसके पैर में कम्पन होंगे। दस्तखत करेगा तो उसके अक्षर कँपे हुए और हिले हुए होंगे।

अब स्त्री और पुरुष के हस्ताक्षर, बिना किसी कठिनाई के, कोई भी पहचान सकता है कि पुरुष के हस्ताक्षर हैं या स्त्री के। स्त्री सीधे अक्षर बना ही नहीं पाती। कितनी ही सुडौल बनाये तब भी उसके अक्षरों में एक कम्पन होता है जो स्त्रैण होता है। वह उसके भाव-शरीर से आता है। वह पूरे वक्त भयभीत है। उसका व्यक्तित्व ही भयग्रस्त हो गया है। इसलिए बिलकुल बिना जाँच किये ही देख कर कहा जा सकता है कि यह स्त्री का लिखा हुआ अक्षर है कि पुरुष का लिखा हुआ अक्षर है। फिर पुरुषों में भी कौन आदमी कितना भयभीत है वह अक्षर को देख कर जाना जा सकता है। हमारी उँगलियों में और स्त्री की उँगलियों में कोई फर्क नहीं है। हमारे कलम के पकड़ने में, उसके कलम के पकड़ने में कोई फर्क नहीं है। जहाँ तक पहले शरीर का वास्ता है, लिखने में कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जहाँ तक दूसरे शरीर का वास्ता है, स्त्री भयभीत है। आज तक भी वह भीतर से अभय नहीं हो पायी। आज तक समाज की, संस्कृति की, और हमारे चित्त की ऐसी स्थिति नहीं हो पायी है कि स्त्री को हम अभय दे पायें। वह भयभीत है पूरे वक्त। और उसके भय का कम्पन उसके सारे व्यक्तित्व में उतरेगा। पुरुषों में भी आँका जा सकता है कि कौन भयभीत है, कौन निर्भय

है। वह उनके हस्ताक्षर बता सकेंगे। लेकिन भय की जो स्थिति है वह इथरिक है।

६. इथरिक (भाव) शरीर का भय में सिकुड़ना और प्रेम में फैलना

यह मैं तुम्हें पहचानने के लिए कह रहा हूँ कि भीतर तुम जब स्थूल शरीर की क्रियाओं को पहचान जाओ तो तुम्हें इथरिक शरीर की क्रियाओं को भी पहचानना पड़ेगा कि वहाँ क्या हो रहा है। जब तुम प्रेम में होते हो तो तुम्हें लगता है कि तुम फैल गये। असल में प्रेम में इतनी मुक्ति इसीलिए मालूम होती है कि एकदम फैल जाते हैं। कोई है जिससे अब भय की कोई जरूरत नहीं है। जिस व्यक्ति को मैं प्रेम करता हूँ उसके पास मुझे भय का कोई कारण नहीं है। असल में प्रेम का मतलब यह है कि जिससे मुझे भय नहीं है। जिसके सामने मैं जैसा हूँ उतना पूरा खिल सकता हूँ। जितना हूँ उतना फैल सकता हूँ। इसलिए प्रेम के क्षण में एक्सपैंशन (फैलाव) का बोध होता है। तुम्हारा यह शरीर उतना ही रहता है। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तुम्हारे भीतर का शरीर खिल जाता है और फूल जाता है और फैल जाता है।

ध्यान में निरन्तर, लोगों को, अनुभव होता है। किसी को अनुभव होता है कि उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया। यह शरीर इतना ही रहता है। ध्यान में उसे लगता है कि यह क्या हो रहा है। मेरा शरीर फैलता जा रहा है और पूरे कमरे को उसने भर लिया है। जब वह आँख खोलता है तब हैरान होता है कि शरीर तो उतना ही है। लेकिन वह फीलिंग (अनुभूति) भी उसका पीछा करती है कि वह भी झूठ नहीं था, जो मैंने जाना। अनुभव साफ हुआ था कि मैं पूरे कमरे में भर गया हूँ। वह इथरिक शरीर की घटना है। उसके आयतन का कोई अन्त नहीं है। वह भाव से फैलता और सिकुड़ता है। वह इतना फैल सकता है कि सारे जगत् में भर जाय। वह इतना सिकुड़ सकता है कि एक छोटे अणु मे भी उसके लिए जगह मिल जाय।

७. फैला हुआ होना इथरिक शरीर की स्वस्थता

तो उसकी क्रियाएँ तुम्हें दिखायी पड़नी शुरू होंगी। उसका फैलना, उसका सिकुड़ना। वह किन स्थितियों मे फैलता है, किनमें सिकुड़ता है। जिनमें वह फैलता है अगर साधक उन क्रियाओं में जीने लगे तो सामञ्जस्य पैदा होगा। जिनमें वह सिकुड़ता है अगर उनमें जीने लगे तो इस शरीर में और दूसरे शरीर में सामञ्जस्य टूट जायगा। क्योंकि उसका फैलाव ही उसकी सहजता है। जब वह पूरा फैला होता है, पूरा प्रफुल्लित होता है तब वह इस शरीर के साथ एक सेतु में बँध जाता है। और जब वह भयभीत होता है, सिकुड़ा हुआ होता है तो इस शरीर से उसके सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। वह अलग एक कोने में पड़ जाता है।

उस शरीर की और तरह की भी क्रियाएँ है जिनको कि और तरह से जाना जा सकता है।

८. तीव्र भावनात्मक आघात पर भाव-शरीर का स्पष्ट बोध

जैसे कि अगर एक आदमी अभी दिखायी पड़ रहा था विलकुल स्वस्थ, सब तरह से ठीक और किसी ने जाकर उसको खबर दी कि उसको फाँसी की सजा हो गयी तो उसके चेहरे का रंग फौरन उड़ जायगा। उसके इस शरीर में कोई फर्क नही पड़ रहा है। क्योंकि इस शरीर में जितना खून है उतना है। लेकिन उसकी इथरिक बॉडी में एकदम फर्क पड़ गया है। उसकी इथरिक बॉडी स्थूल शरीर को छोड़ने को तैयार हो गयी है। और हालत वैसी ही हो गयी जैसे कि एक घर के मालिक को अचानक पता चले कि अभी मकान खाली कर देना है तो सब रौनक चली जाय। सब अस्त-व्यस्त हो जाय। उस दूसरे शरीर ने इससे सम्बन्ध एक अर्थ में तोड ही दिया। फाँसी तो थोड़ी देर बाद होगी, नही भी होगी, लेकिन उसका इस शरीर से सम्बन्ध टूट गया। एक आदमी तुम्हारी छाती पर बन्दूक लेकर खड़ा हो गया, एक शेर ने तुम्हारे ऊपर हमला कर दिया, तो तुम्हारे इस शरीर पर अभी कुछ भी नही हुआ है, किसी ने छुआ भी नहीं, लेकिन तुम्हारी इथरिक शरीर ने तैयारी कर ली है छोड़ने की। उसके और इसके बीच फासला बड़ा हो गया। तो उसकी गतियो को फिर तुम्हें सूक्ष्मता से देखना पड़ेगा। वह देखी जा सकती है, उनमें कोई कठिनाई नहीं है। कठिनाई है तो यही कि हम इसी शरीर की गतियों को नही देख पाते। इस शरीर की गतियो को हम देखे तो हमे उसकी गतियाँ भी दिखायी पड़ने लगेगी और जैसे ही दोनो की गतियों का बोध तुम्हें स्पष्ट होगा तुम्हारा बोध ही दोनों के बीच सामंजस्य बन जायगा।

९. भाव-शरीर में जागने पर तीसरे सूक्ष्म एस्ट्रल शरीर का बोध

फिर तीसरा शरीर है, जिसे मैंने सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल बॉडी) कहा। उसकी गति निश्चित ही, और भी सूक्ष्म है। भय, क्रोध, प्रेम और घृणा इनसे भी ज्यादा सूक्ष्म है। उसकी गति को पकड़ने के लिए तो दूसरे शरीर मे जब तक पूरी सफलता न मिल जाय तब तक बहुत कठिनाई है। समझना भी कठिन है, क्योंकि अब गैप (अन्तराल) बहुत बड़ा हो गया है, हम पहले शरीर पर मूर्च्छित है। इसलिए पहले शरीर से दूसरा शरीर निकट है। थोड़ी बहुत बात समझ में आती है। तीसरे शरीर के साथ बहुत गैप (अन्तराल) हो गया यानी ऐसा फर्क पड़ गया कि दूसरा शरीर तो हमारा बगल का पड़ोसी (नेबर) था। कभी-कभी उसकी आवाज, उसके चौके में बर्तन के गिरने की आवाज, कभी उसके बच्चे के रोने की आवाज, सुनायी पड़ जाती थी, लेकिन तीसरा शरीर पड़ोसी के बाद का

पड़ोसी है। उसके चौके की आवाज भी कभी नहीं आती है। उसके बच्चे के रोने का भी कोई पता नहीं चलता।

तीसरे शरीर की यात्रा और भी सूक्ष्म है और उसे तभी पकड़ा जा सकता है जब हम दूसरे शरीर के भावों को पकड़ने लगें। तब तीसरे शरीर में हम तरंगों को पकड़ सकते हैं। तरंगें भाव के भी पूर्व हैं। तरंगों का ही सघन रूप भाव है। और भाव का सघन रूप क्रिया है। तो मुझे तो पता नहीं चलेगा कि तुम क्रोध में हो, जब तक तुम मेरे ऊपर क्रोध प्रकट न करो। क्योंकि जब वह क्रिया बन जाय तब मैं देख पाऊँगा। लेकिन तुम क्रिया के पहले ही उसको देख सकते हो—भाव-शरीर में, कि क्रोध उठ आया। लेकिन जो क्रोध उठा है उसके भी अणु हैं, वे सूक्ष्म शरीर से आते हैं। और वे अणु अगर न आयें तो भाव-शरीर में क्रोध नहीं उठ सकता। अब वह जो सूक्ष्म शरीर-(एस्ट्रल बॉडी) है वह, कहना चाहिए, सिर्फ तरंगों का समूह है। और अपनी सब स्थितियाँ, एक उदाहरण से, हम समझने की कोशिश करें।

कभी पानी अलग दिखायी पड़ता है, हाइड्रोजन अलग दिखायी पड़ती है। ऑक्सीजन अलग दिखायी पड़ती है। ऑक्सीजन मे पानी का कोई पता नही चलता। पानी में ऑक्सीजन कहीं दिखायी नहीं पड़ती। पानी का कोई गुण ऑक्सीजन में नहीं है, कोई गुण हाइड्रोजन में नही है। लेकिन दोनों के मिलने से पानी बन जाता है। दोनों में कुछ छिपे हुए गुण हैं जो मिल कर प्रकट हो जाते हैं। एस्ट्रल बॉडी में कभी क्रोध नहीं दिखायी पड़ता, कभी प्रेम नही दिखायी पड़ता, कभी घृणा नहीं दिखायी पड़ती, कभी भय नही दिखायी पड़ता। लेकिन तरंगें उसके पास हैं जो दूसरे शरीर, भाव शरीर, से जुड़ कर तत्काल कुछ बन जाती हैं। तो जब तुम दूसरे शरीर में पूरी तरह जागोगे और जब तुम क्रोध के प्रति पूरी तरह जागोगे तब तुम पाओगे कि क्रोध के पहले ही कोई घटना घट रही है। यानी क्रोध जो है वह शुरुआत नहीं है। वह भी कहीं पहुँच गयी बात है।

ऐसा समझें कि सरोवर की तलहटी की रेत से एक बबूला उठा है और पानी में चल पड़ा है। जब वह रेत से उठता है तब तो दिखायी नही पड़ता है। आधे पानी तक आ जाता है तब भी वह दिखायी नहीं पड़ता। जब बिलकुल पानी से बित्ता-दो-बित्ता नीचे रह जाता है जहाँ तक हमारी आँख जाती है तब तुम्हें दिखायी पड़ता है। लेकिन तब भी बहुत छोटा दिखायी पड़ता है। फिर पानी की सतह के पास आने लगता है। जैसे-जैसे पास आने लगता है वैसे-वैसे बड़ा होने लगता है। क्योंकि हमें ज्यादा साफ दिखायी पड़ने लगता है और पानी का जो दबाव और वजन है वह उस पर कम होने लगता है। इसलिए वह बड़ा होने लगता है। जितना नीचे था उतना पानी की सतह का ज्यादा दबाव था, वह उसको दबाये हुए था। जैसे-जैसे सतह का दबाव कम होने लगा, वह ऊपर आने लगा, वह बड़ा

होने लगा। और जब वह सतह पर आता है तो वह पूरा बड़ा हो जाता है। लेकिन जहाँ वह पूरा बड़ा होता है वहीं वह फूट भी जाता है। तो उसने बड़ी यात्रा की। कुछ हिस्से थे जहाँ वह हमें दिखायी नहीं पड़ता था। लेकिन वहाँ भी वह था। वह रेत में दबा था। फिर वह वहाँ से निकला तब भी वह हमें दिखायी नहीं पड़ता था, वह पानी में दबा था। फिर वह पानी की सतह के पास आया तब हमें दिखायी पड़ने लगा। लेकिन बहुत छोटा मालूम पड़ रहा था। फिर वह पानी की सतह पर आया तब वह पूरा हुआ और तब वह फूटा।

१०. सूक्ष्म शरीर के विभिन्न तरंगों के संघातों का दूसरे शरीर पर भाव बन कर तथा प्रथम शरीर पर क्रिया बन कर प्रकट होना

तो हमारे शरीर तक आते आते क्रोध का बबूला पूरी तरह फूटता है। वह सतह पर आकर प्रकट होता है। चाहो तो तुम इस शरीर पर आने से पहले उसको भाव-शरीर में रोक सकते हो। वह दमन होगा। लेकिन अगर तुम भाव-शरीर में उसको गौर से देखो तो तुम बहुत हैरान होगे कि उसकी यात्रा भाव-शरीर के और भी पहले से हो रही है। लेकिन वहाँ वह क्रोध नहीं है। वहाँ वह सिर्फ तरंगें हैं। जैसे मैंने कहा कि इस जगत् में असल में अलग-अलग पदार्थ नहीं हैं, अलग-अलग तरंगों की संघातें हैं। कोयला भी वही है, हीरा भी वही है। सिर्फ तरंगो के संघात में फर्क पड़ गया है। और अगर तुम किसी भी पदार्थ को तोड़ते चले जाओ तो नीचे जाकर विद्युत् ही रह जाती है। और उसके अलग-अलग संघात और अलग-अलग संघटक अलग-अलग तत्त्वों को बना देते हैं। ऊपर वह सब भिन्न है। लेकिन, बहुत गहरे में जाकर एक हैं।

अगर तुम भाव-शरीर के प्रति जाग कर भावों का पीछा करोगे तो तुम तत्क्षण सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर जाओगे और वहाँ तुम पाओगे क्रोध, क्रोध नहीं है, क्षमा, क्षमा नहीं है, बल्कि दोनों की तरंगें एक ही हैं। प्रेम और घृणा की तरंगें एक ही हैं। सिर्फ संघात का भेद है। और इसलिए तुम्हें बड़ी हैरानी होती है कि तुम्हारा प्रेम कभी घृणा में बदल जाता है, कभी घृणा प्रेम में बदल जाती है। जिनको हम बिलकुल विपरीत चीजें समझते हैं, वे बदल कैसे जाती हैं! जिसको मैं कल मित्र कहता था वह आज शत्रु हो गया। तो मैं कहता हूँ कि शायद मैं धोखा खा गया, वह मित्र था ही नहीं। क्योंकि हम मानते हैं कि मित्र शत्रु कैसे हो सकता है! मित्रता और शत्रुता की तरंगें एक ही हैं। संघात का फर्क है, सघनता का फर्क है, कोड का फर्क है। तरंगों में कोई फर्क नहीं है। जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह सुबह प्रेम है, दोपहर में घृणा हो जाती है। दोपहर को घृणा है, साँझ को प्रेम हो जाता है। बड़ी कठिनाई होती है। हम एक ही व्यक्ति को प्रेम करते हैं, उसी को घृणा भी करते हैं।

फ्रायड को यही ख्याल था कि जिससे हम घृणा करते हैं उसी से प्रेम भी करते हैं। जिससे हम प्रेम करते हैं उससे घृणा भी करते हैं। उसने जो कारण खोजा वह थोड़ी दूर तक सही था। लेकिन चूँकि उसे मनुष्य के और शरीरों का कोई बोध नहीं है इसलिए वह बहुत दूर तक खोज नहीं सका। उसने जो कारण खोजा वह बहुत सतह पर था। उसने कारण यह खोजा कि बच्चा जब माँ के पास बड़ा होता है तो एक ही आब्जेक्ट (सम्पर्क-वस्तु), माँ को वह कभी प्रेम भी करता है, जब माँ उसको प्रेम देती है। और जब माँ उसको डाँटती-डपटती, क्रोध करती है; मौके होते हैं, जब वह नाराज होती है, तब वह उसको घृणा करने लगता है। तो एक ही आब्जेक्ट के प्रति, एक ही माँ के प्रति दोनों बातें एक साथ उसके मन में भर जाती हैं। घृणा भी करता है, प्रेम भी करता है। कभी सोचता है मार डालूँ, तो कभी सोचता है कि इसके बिना कैसे जी सकता हूँ, यही मेरा प्राण है। वह दोनों बातें सोचने लगता है। इन दोनों बातो को सोचने की वजह से माँ उसके प्रेम तथा घृणा का पहला आब्जेक्ट है। इसलिए सदा के लिए जब भी किसी से वह प्रेम करेगा तो वह एसोसिएशन (पुरानी आदत) के कारण उसको घृणा भी करेगा, प्रेम भी करेगा।

लेकिन यह बहुत सतह पर पकड़ी गयी बात है। यह बबूला वहाँ पकड़ा गया है जहाँ फूटने के करीब है। यह बहुत गहरे में पकड़ी गयी बात नही है। गहरे में, अगर एक माँ को भी बच्चा घृणा और प्रेम दोनों कर पाता है तो इसका मतलब यह है कि घृणा और प्रेम में जो अन्तर होगा वह बहुत गहरे में क्वान्टिटी (परिमाण) का होगा, क्वालिटी (गुण) का नही हो सकता। क्योंकि प्रेम और घृणा एक ही चित्त मे, एक साथ, अस्तित्व में नही हो सकते। अगर हो सकते हैं तो एक ही आधार पर हो सकते हैं कि वे कनवर्टिबल (परस्पर रूपान्तरणीय) हों, उनकी तरंगें यहाँ से वहाँ डोल जाती हों।

११. चित्त के समस्त द्वन्द्वों की जड़ें तीसरे सूक्ष्म शरीर में

तो यह तीसरे शरीर में ही आकर साधक को पता चलता है कि हमारे सारे चित्त में द्वन्द्व क्यों है। एक आदमी जो सुबह मेरे पैर छू गया और कह गया आप भगवान् हो, वह शाम को आकर गाली देता है और कहता है यह आदमी शैतान है। वह कल सुबह आकर फिर पैर छूता है और कहता है भगवान् हैं। कोई आकर मुझे कहता है कि उस आदमी की बात पर भरोसा मत करना। वह कभी आपको भगवान् कहता है, कभी शैतान कहता है। मैं कहता हूँ उसी पर भरोसा करने योग्य है। क्योंकि जो आदमी कह रहा है उसका कोई कसूर नहीं है। वह कोई एक दूसरे के विपरीत बातें नहीं कह रहा है। वे एक ही एक्सपैक्ट्रम (वर्णक्रम) की बातें हैं। वे एक ही सीढ़ी की बातें हैं और इन सीढ़ियों में परिमाण

का अन्तर है। असल में जैसे ही वह भगवान् कहता है वैसे ही वह एक बात को पकड़ लेता है। और चित्त जो है वह द्वन्द्व है। दूसरा पहलू कहाँ जायगा? वह उसके नीचे दबा बैठा रहता है। और प्रतीक्षा करता है कि जब तुम्हारा पहला भाव थक जाय तो मुझे मौका देना। वह जब थक जाता है थोड़ी देर में; कितनी देर तक भगवान् कहता रहेगा। थोड़ी देर में थक जाता है तो फिर कहता है, शैतान है पक्का, वह आदमी। और ये दोनो दो चीजें नहीं हैं। ये दोनों बिलकुल एक चीज है। और जब तक मनुष्य जाति यह न समझ पायेगी, ठीक से, कि हमारे तीसरे शरीर में हमारे सारे द्वन्द्व एक ही तरंगों के रूप हैं तब तक हम मनुष्य की समस्याओं को हल न कर पायेंगे। क्योंकि सबसे बड़ी समस्या यही है कि जिससे हम प्रेम करते हैं उससे हम घृणा भी करते हैं। जिसके बिना हम जी नहीं सकते, उसकी हम हत्या भी कर सकते हैं। जो हमारा मित्र है वह, गहरे मे, हमारा शत्रु भी है।

यह बड़ी-से-बड़ी समस्या है। क्योंकि जीवनके लिए जहाँ सम्बन्ध हैं हमारे वहाँ यही सबसे बड़ा मामला है। एक बात समझ में आ जानी चाहिए कि इनके संघात एक जैसे हैं, इनमें कोई फर्क नही है। आमतौर से हम अन्धेरे और प्रकाश को दो विरोधी चीजें मानते है, जो गलत है। वैज्ञानिक अर्थों में अन्धेरा जो है वह प्रकाश की कम-से-कम, न्यूनतम अवस्था है। और अगर हम खोज सकें तो अन्धेरे में भी प्रकाश मिल जायगा। ऐसा अन्धेरा नही खोजा जा सकता जहाँ प्रकाश अनुपस्थित हो। यह दूसरी बात है कि हमारे खोज के साधन थक जायें, हमारी आँख न देख पाती हो, हमारे यन्त्र न देख पाते हो, लेकिन प्रकाश और अन्धकार *एक ही यात्रा-पथ पर, एक ही चीज के तरंगों के विभिन्न आकार हैं।*

इसको और दूसरी तरह से समझें तो ज्यादा आसान होगा। क्योंकि प्रकाश और अन्धकार में हमने ज्यादा बड़ा एब्सोल्यूट (परम) विरोध मान रखा है। लेकिन ठंढ व गर्मी को हम समझें तो आसानी हो जाय। उसमें हमने इतना एब्सोल्यूट (परम) विरोध नहीं मान रखा है। और कभी एक छोटा-सा प्रयोग करने जैसा मजेदार होता है। एक हाथ को थोड़ा सिगड़ी पर तपा लें और एक हाथ को बर्फ पर रख कर ठंढा कर लें और फिर दोनों हाथों को एक ही तापमान के पानी में डाल दें और तब आप बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे कि उस पानी को ठंढा कहें कि गर्म। क्योंकि एक हाथ खबर देगा कि वह गर्म है और एक हाथ खबर देगा कि वह ठंडा है। तब आप बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे कि इस पानी को हम क्या कहें। ठंढा कहें कि गर्म कहें। क्योंकि आपके दो हाथ दो खबरें दे रहे हैं। असल में ठंढ और गर्म दो चीजें नहीं हैं, एक सापेक्ष अनुभव है। जिस चीज को हम ठंढा कह रहे हैं उसका मतलब केवल इतना है कि हम उससे ज्यादा गर्म हैं। जिस चीज को हम

गर्म कह रहे हैं उसका कुल मतलब इतना है कि हम उससे ज्यादा ठंडे हैं। हम अपने और उसके बीच परिमाण का अन्तर बता रहे हैं और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। कोई चीज ठंडी नहीं है, कोई चीज गर्म नहीं है। या जो भी चीज ठंडी है वह, साथ ही, गर्म भी है। असल में गर्मी और ठंडक बड़े बेमानी शब्द हैं। कहना चाहिए तापमान। वह ठीक शब्द है। इसलिए वैज्ञानिक ठंडे और गर्म शब्द का प्रयोग नहीं करता। वह कहता है इतने डिग्री का तापमान है। क्योंकि ठंडे और गर्म काव्य के शब्द हैं, कविता के शब्द हैं। वे खतरनाक हैं, विज्ञान के लिए। उससे कुछ पता नही चलता है।

एक आदमी कहे कि कमरा ठंडा है, उससे कुछ पता नही चलता है कि मतलब क्या है, उसका। हो सकता है, उस आदमी को बुखार चढ़ा हो और कमरा ठंडा मालूम पड़ रहा हो और कमरा ठंडा बिलकुल न हो इसलिए जब तक इस आदमी को पता न चल जाय कि इस आदमी की बुखार की क्या स्थिति है तब तक कमरे के बाबत इसके वक्तव्य का कोई मतलब नहीं है। इसलिए इससे हम यह पूछते हैं कि तुम यह मत बताओ कि कमरा ठंडा है या गर्म, तुम यह बताओ डिग्री कितनी है। तो डिग्री जो है वह ठंडक और गर्मी का पता नही देती। डिग्री सिर्फ इस बात का पता देती है कि तापमान कितना है। अगर उससे आपकी डिग्री ज्यादा है तो वह ठंड मालूम पड़ेगी और अगर आपकी डिग्री कम है तो गर्म मालूम पड़ेगी। ठीक ऐसा ही प्रकाश और अन्धकार के बाबत सच है कि हमारे देखने की क्षमता कितनी है।

रात हमें अन्धेरी मालूम पड़ती है। उल्लू को नहीं मालूम पड़ती होगी। उल्लू को दिन बहुत अन्धकारपूर्ण है। और उल्लू जरूर समझता होगा कि यह आदमी जो हैं बड़े अजीब लोग हैं। रात में जागते हैं। स्वभावतः आदमी उल्लू को बड़ा उल्लू समझता है, उसको उल्लू नाम इसीलिए ही दिया गया है। लेकिन उल्लू क्या सोचते हैं, आदमियों के बाबत, यह हमें कुछ पता नहीं। निश्चित उसके लिए दिन जो है, रात है, और रात जो है वह दिन है। वह सोचता होगा आदमी भी कैसा नासमझ है। इसमें इतने बड़े-बड़े ज्ञानी होते हैं लेकिन फिर भी यह जागते हैं, रात में। और जब दिन होता है तब सो जाते हैं। जब असली वक्त आता है, जागने का, तब ये बेचारे सो जाते हैं। उल्लू को रात में दिखाई पड़ता है। उसकी आँख सक्षम है। तो उसके लिए रात अन्धकार नहीं है।

१२. तीसरे शरीर में जागने वाला आदमी द्वन्द्वों से मुक्त होने लगता है

जैसे अन्धकार और प्रकाश, ऐसे ही प्रेम और घृणा की तरंगें हैं। जिनमें अनुपात है। तो तीसरे तल पर जब तुम जागना शुरू करोगे तो तुम एक बहुत अजीब स्थिति में पहुँचोगे और वह अजीब स्थिति यह होगी कि तुम्हारे भाव तुलना

न रह जायेगा कि हम प्रेम को चुनें कि घृणा को। क्योंकि तब तुम जानते हो कि ये दोनों एक ही चीज के नाम हैं। और तुमने एक को भी चुना तो दूसरा भी चुन लिया गया। दूसरे से तुम बच नहीं सकते। इसलिए तीसरे शरीर पर खड़े हुए आदमी से तुम कहोगे कि हमें प्रेम करो तो वह पूछेगा कि घृणा की भी तैयारी है? घृणा कर सकोगे? तुम कहोगे नहीं, हम तो प्रेम चाहते हैं, आप हमें प्रेम दें। वह कहेगा यह बहुत मुश्किल है कि मैं तुम्हें प्रेम दे सकूं। क्योंकि प्रेम जो है वह घृणा के आघातों का ही एक रूप है। असल में प्रेम ऐसा रूप है,जो तुम्हें प्रीतिकर लगता है और घृणा ऐसा रूप है उन्हीं किरणों का, उन्हीं तरंगों का जो तुम्हें अप्रीतिकर लगता है।

तो तीसरे तल पर खड़ा हुआ व्यक्ति द्वन्द्व से मुक्त होने लगेगा। क्योंकि पहली दफा उसे पता चलेगा कि द्वन्द्व में जिन दो चीजों को उसने दो माना था वह दो नहीं थीं, वह एक ही थीं। जो दो शाखाएँ दिखायी पड़ती थीं वह पीड़ पर आकर एक ही वृक्ष की शाखाएँ हैं। और बड़ा पागल था वह कि वह एक को बचाने के लिए दूसरे को काटता रहा। लेकिन उससे कुछ कटना नहीं हो सकता था। क्योंकि वृक्ष गहरे में एक ही था। पर दूसरे पर जाग कर ही उसे तीसरे का पता हो सकता है। क्योंकि तीसरे शरीर की बड़ी सूक्ष्म तरंगें हैं : वहाँ भाव भी नहीं बनता, सीधी तरंगें होती हैं।

१३. सूक्ष्म शरीर में जागने पर स्वयं का तथा दूसरों का आभा-मण्डल दिखायी पड़ना

और अगर तीसरे की तरंग का तुम्हें पता चलने लगे तो तुम्हें एक अनूठा अनुभव होना शुरू होगा। तब तुम किसी व्यक्ति को देख कर ही कह सकोगे कि वह किन तरंगों से तरंगायित है। क्योंकि तुम्हें अपनी तरंगों का पता नहीं है, इसलिए तुम दूसरे को नहीं पहचान पा रहे हो। नहीं तो प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे के पास उसके तीसरे शरीर से निकलने वाली तरंगों का पुंज होता है। जो हम बुद्ध, महावीर, राम और कृष्ण के आसपास जो आरा (Aura), आभा-मण्डल बनाते रहे हैं वह सिर के आसपास, देखा गया मण्डल है। उसके रंग पकड़े गये हैं और उसके विशेष रंग हैं। तीसरे शरीर का ठीक अनुभव हो तो वह रंग तुम्हें दिखायी पड़ना शुरू हो जाता है। और वे रंग जब तुम्हें दिखायी पड़ने शुरू हो जाते हैं तो अपने ही नहीं दिखायी पड़ते, दूसरे के भी दिखायी पड़ने शुरू हो जाते हैं।

असल में जितने ही दूर तक हम अपने गहरे शरीर को देखते हैं, उतने ही दूर तक हम दूसरे के शरीर को भी देखने लगते हैं। चूँकि हम अपनी फिजिकल बॉडी (भौतिक शरीर) को ही जानते हैं, इसलिए हम दूसरे की भी फिजिकल बॉडी को ही जानते हैं। जिस दिन हम अपनी ईथरिक बॉडी (भाव-शरीर) को जानेंगे

उस दिन हमें दूसरे के इथरिक शरीर का पता चलना शुरू हो जायगा। इसके पहले कि तुम क्रोध करो, जाना जा सकता है कि अब तुम क्रोध करोगे। इसके पहले कि तुम प्रेम प्रकट करो, कहा जा सकता है कि तुम अब प्रेम प्रकट करने की तैयारी कर रहे हो। तो जिसको हम दूसरे के भाव को समझ लेना कहते हैं उसमें कुछ और बड़ी बात नहीं है, अपने ही भाव-शरीर के प्रति जागने से दूसरे के भाव को पकड़ना एकदम आसान हो जाता है। क्योंकि उसकी सारी स्थितियाँ दिखायी पड़ने लगतीं हैं और तीसरे शरीर पर जागने पर तो चीजें बड़ी साफ हो जाती हैं। क्योंकि फिर तो रंग भी दिखायी पड़ने लगते हैं उसके व्यक्तित्व के।

१४. अलग-अलग शरीरों के आभा-मण्डल के रंगों के अनुसार वस्त्रों का चुनाव

साधु-संन्यासियों के कपड़ों के रंग का चुनाव तीसरे शरीर के रंगों को देख कर किया गया है। चुनाव अलग-अलग हुए। क्योंकि अलग-अलग शरीर पर जोर था। जैसे बुद्ध ने पीला रंग चुना, क्योंकि सातवें शरीर पर जोर था उनका। सातवें शरीर को उपलब्ध व्यक्ति के आसपास जो ऑरा (आभा-मण्डल) बनता है वह पीला है। इसलिए बुद्ध ने पीत वस्त्र चुने अपने भिक्षुओं के लिए। लेकिन पीत वस्त्र चुने तो जरूर, लेकिन पीत वस्त्र के कारण ही बौद्ध भिक्षु को हिन्दुस्तान में टिकना मुश्किल हुआ। क्योंकि पीला रंग जो हैं वह हमारे मन में मृत्यु से सम्बन्धित है। वह है भी। क्योंकि सातवाँ शरीर जो है वह महामृत्यु है। तो पीला रंग हमारे मन में बहुत गहरे में मृत्यु का बोध देता है। लाल रंग जीवन का बोध देता है। इसलिए गेरुआ वस्त्र वाले संन्यासी ज्यादा आकर्षक सिद्ध हुए, बजाय पीत-वस्त्र संन्यासियों के। वे जीवन्त मालूम पड़े। वह खून का रंग है और छठवें ब्रह्म-शरीर (कॉस्मिक बॉडी) का रंग है। तो जैसा सूर्योदय होता है, सुबह, वैसा रंग है। छठवें शरीर पर वैसे रंग का ऑरा (आभा-मण्डल) बनना शुरू होता है। जैनों ने सफेद वस्त्र चुने, वह पाँचवें शरीर का रंग है। वह आत्म-शरीर से सम्बन्धित है। जैनों का आग्रह ईश्वर की फिक्र छोड़ देने का है। निर्वाण की फिक्र छोड़ देने का है। क्योंकि आत्मा तक ही वैज्ञानिक चर्चा हो सकती है। और महावीर बहुत ही वैज्ञानिक बुद्धि के आदमी हैं। वह उतनी ही दूर तक बात करेंगे जितनी दूर तक गणित जाता है। उससे आगे वह कहेंगे कि अब हम बात नहीं करते। क्योंकि कोई भूल-चूक की बात नहीं करना चाहते वह। कुछ मिस्टिक (रहस्यवादी) बात नहीं करना चाहते। तो जिसको मिस्टिसिज्म (रहस्यवाद) से बचना है वह पाँचवें शरीर के आगे इंच भर बात नहीं करेगा। तो महावीर ने सफेद रंग चुन लिया। वह पाँचवें शरीर का रंग था।

१५. आभा-मण्डल के चित्र शीघ्र ही लिये जा सकेंगे

और भी मजे की बात है। तीसरे शरीर से यह बोध होना शुरू हो जायगा। तीसरे शरीर से तुम्हें रंग दिखायी देने शुरू हो जायेंगे। यह रंग भी तुम्हारे भीतर होने वाले सूक्ष्म तरंगों के स्पन्दन का प्रभाव है। आज नहीं कल, इनके चित्र लिये जा सकेंगे। क्योंकि जब आँख से इन्हें देखा जा सकता है तो बहुत दिन कैमरे की आँख नहीं देखेगी, ऐसा कहना मुश्किल है। इनके चित्र आज नहीं कल लिये जा सकेंगे। और तब हम व्यक्तित्व को पहचानने के लिए एक बड़ी अद्‌भुत क्षमता को उपलब्ध हो जायेंगे।

१६. रंगों का मनुष्य के व्यक्तित्व से गहरा सम्बन्ध

वह ल्यूशर का टेस्ट देखें। एक जर्मन विचारक है जिसने लाखों लोगों पर रंगों के प्रभाव का अध्ययन किया है। और अब तो यूरोप और अमरीका में बहुत से अस्पताल भी इसका प्रयोग कर रहे हैं। क्योंकि आप कौन सा रंग पसन्द करते हैं यह आपके बहुत गहरे व्यक्तित्व की खबर देता है। एक खास बीमारी का मरीज एक खास तरह के रंग को पसन्द करता है। स्वस्थ आदमी दूसरे तरह के रंग को पसन्द करता है। शान्त आदमी दूसरे तरह के रंग को पसन्द करता है। महत्वाकांक्षी आदमी दूसरे तरह के रंग को पसन्द करता है। महत्वाकांक्षाहीन आदमी बिलकुल दूसरे तरह के रंगों को पसन्द करता है और इन रंगों की पसन्द से तुम अपने तीसरे शरीर पर क्या प्रकट हो रहा है उसकी खबर देते हो। अब यह बड़े मजे की बात है कि तुम्हारे तीसरे शरीर पर जो रंग प्रकट हो रहे हैं तुम्हारे चारों तरफ अगर उनको पकड़ा जाय और तुमसे रंगों की जाँच करवायी जाय तो वह रंग दोनों बराबर एक से होते हैं। जो रंग तुम्हारे चारों तरफ फैलता है, वही रंग तुम पसन्द करते हो।

१७. रंगों का मनोविज्ञान

रंग का अद्‌भुत अर्थ और उपयोग है। अब जैसे कभी यह ख्याल में नहीं था कि रंग इतना अर्थपूर्ण हो सकता है और व्यक्तित्व को बाहर तक खबर दे सकता है और बाहर से भी रंग के प्रभाव भीतर के व्यक्तित्व तक छूते हैं उनसे बचा नहीं जा सकता। जैसे किसी रंग को देख कर तुम क्रोधित हो जाओगे। जैसे लाल रंग है। वह सदा से क्रान्ति का रंग इसीलिए समझा गया, इसीलिए क्रान्तिवादी जो है वह लाल झण्डा बना लेगा। इसमें बचाव बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह क्रोध का रंग है और क्रोधी चित्त के आसपास गहरे लाल रंग का वर्तुल बनता है। खून का रंग है वह, हत्या का रंग है, क्रोध का रंग है, मिटाने का रंग है। अब यह बड़े मजे की बात है कि अगर इस कमरे की सारी चीजों को लाल रंग दिया

जाय तो आप जितने लोग यहाँ बैठे हैं उन सब का रक्तचाप (ब्लड-प्रेशर) बढ़ जायगा। और अगर कोई व्यक्ति निरन्तर लाल रंग में रहे तो कोई भी हालत में उसका रक्तचाप स्वस्थ नहीं रह सकता। वह अस्वस्थ हो जायगा। नीला रंग रक्तचाप को नीचे गिरा देता है। वह आकाश का और परम शान्ति का रंग है। अगर सब तरफ नीला रंग कर दिया जाय तो तुम्हारे रक्तचाप में कमी पड़ती है।

१८. रंग-चिकित्सा

आदमी की बात हम छोड़ दें। अगर एक नीली बोतल में पानी भर कर हम उसे सूरज की किरणों में रख दें तो वह जो पानी है वह रक्तचाप को कम करता है। उस पानी का केमिकल कम्पोजीशन (रासायनिक-संरचना) बदल जाता है। नीले रंग को पीकर अपशोषित कर पानी की आन्तरिक व्यवस्था बदल जाती है। अगर हम उसको पीले रंग की बोतल में रख दें तो उसका व्यक्तित्व दूसरा हो जायगा। अगर तुम पीले रंग की बोतल में वही पानी रखो और नीले रंग की बोतल में वही पानी रखो और दोनों को धूप में रख दो तो नीली बोतल का पानी बहुत दिन तक शुद्ध बना रहेगा, सड़ेगा नहीं। पीली बोतल का पानी तत्काल सड़ जायगा। वह पीला रंग जो है मृत्यु का रंग है। और चीजों को एकदम बिखरा देता है।

इस सबके वर्तुल तुम्हारे व्यक्तित्व के आसपास तुम्हें खुद भी दिखायी पड़ने शुरू हो जायेंगे। यह तीसरे शरीर पर होगा। और जब इन तीनों शरीरों पर तुम जाग कर देख पाओगे तो तुम्हारा वह जाग कर जो देखना तीन शरीरों के बीच में सन्तुलन (हारमनी) स्थापित करेगा। और तब तुम्हारे ऊपर किसी भी तरह के शक्तिपात से कोई सांघातिक परिणाम नहीं हो सकता। क्योंकि यह तुम्हारा जो बोध-पथ है, शक्तिपात की ऊर्जा इसीसे तुम्हारे चौथे शरीर में प्रवेश कर जायेगी। यह रास्ता बन जायगा। अगर यह रास्ता नहीं है तो खतरा पूरा है। इसलिए मैंने कहा कि हमारे तीन शरीर सक्षम होने चाहिए तभी गति हो सकती है।

प्रश्नकर्ता : चौथे, पाँचवें, छठे या सातवें चक्रों में स्थित व्यक्ति मृत्यु के बाद पुनर्जन्म ले तो उसकी क्रमशः चक्रीय स्थिति क्या होगी ? अशरीरी उच्च योनियाँ किन शरीर वाले व्यक्तियों को मिलती हैं ? अन्तिम उपलब्धि के लिए क्या अशरीरी योनि के प्राणी को पुनः मनुष्य शरीर लेना पड़ता है ?

१९. जैविक विकास में प्रथम तीन शरीरों की क्रमिक सक्रियता

आचार्यश्री : अब इसमें कुछ और बातें दूर से समझनी शुरू करनी पड़ेंगी।

सात शरीर की मैंने बात कही। सात शरीरों को ध्यान में रखकर हम पूरे अस्तित्व को भी सात विभागों में बाँट दें। सभी अस्तित्व में सातों शरीर सदा मौजूद हैं जागे हुए या सोये हुए, सक्रिय या निष्क्रिय, विकृत या स्वरूप-स्थित, लेकिन मौजूद हैं। एक धातु का टुकड़ा पड़ा है। एक लोहे का टुकड़ा पड़ा है। इसमें भी सातों शरीर मौजूद हैं। लेकिन सातों ही सोये हुए हैं। सातों ही निष्क्रिय हैं। इसलिए लोहे का टुकड़ा मरा हुआ मालूम पड़ता है। एक पौधा है। उसका पहला शरीर सक्रिय हो गया है। उसका भौतिक शरीर सक्रिय हो गया है। इसलिए पौधे में जीवन की पहली झलक हमें मिलनी शुरू हो जाती है कि वह जीवित है।

२०. पौधों में प्रथम शरीर—पशुओं में दूसरा—तथा मनुष्यों में तीसरा शरीर सक्रिय

एक पशु है, उसका दूसरा शरीर सक्रिय हो गया। इसलिए पशु में मूवमेण्ट (गति) शुरू हो जाते हैं जो पौधे में नहीं हैं। पौधा एक जगह जड़ जमाकर खड़ा है, गतिमान नहीं है। क्योंकि गति के लिए दूसरा शरीर जगना जरूरी है, इथरिक बॉडी जगना जरूरी है। सारी गति उससे आती है। अगर सिर्फ एक शरीर जगा हुआ है तो अगति में होगा। ठहरा हुआ होगा, खड़ा हुआ होगा। पौधा खड़ा हुआ पशु है। कुछ पौधे हैं जो थोड़ी गति करते हैं। वह पशु और पौधे के बीच की अवस्था में हैं। उन्होंने यात्रा की है थोड़ी। जैसे अफ्रीका के दलदलों में कुछ पौधे हैं जो साल भर में कोई बीस-पच्चीस फीट सरक जाते हैं। जो अपनी जड़ों से वह पकड़ने छोड़ने का काम करते हैं, थोड़ा हटते हैं इधर-उधर। वह पशु और पौधों के बीच की संक्रमण कड़ी हैं। पशु में दूसरा शरीर भी सक्रिय हो गया है। सक्रिय का मतलब सजग नहीं। सक्रिय का मतलब क्रियाशील हो गया है। पशु को कोई पता नहीं है। उसके दूसरे इथरिक (भाव) शरीर के सक्रिय हो जाने की वजह से उसमें क्रोध भी आता है, भय भी आता है, प्रेम भी प्रकट करता है, भागता भी है, बचता भी है, डरता भी है, छिपता भी है, हमला भी करता है और गतिमान है।

आदमी में तीसरा सूक्ष्म शरीर सक्रिय हो गया है। इसलिए न केवल वह शरीर से गति करता है, बल्कि चित्त से भी गति करता है, मन से भी यात्रा करता है। भविष्य की भी यात्रा करता है, अतीत की भी यात्रा करता है। पशुओं के लिए कोई भविष्य नहीं है। इसलिए पशु कभी चिन्तित और तनावग्रस्त नहीं दिखायी पड़ते। क्योंकि सब चिन्ता भविष्य की चिन्ता है। कल क्या होगा, वही गहरी चिन्ता है। लेकिन पशु के लिए कल नहीं है। आज ही सब-कुछ है। आज भी नहीं है उसके अर्थों में, क्योंकि जिसको कल नहीं उसको आज का क्या मतलब है? जो है वह है। मनुष्य में और भी सूक्ष्म गति आयी है वह गति उसके

मन की गति है। वह तीसरे एस्ट्रल बॉडी (सूक्ष्म-शरीर) से आयी है। वह अब मन से भविष्य की भी कल्पना करता है। मृत्यु के बाद भी क्या होगा इसकी भी चिन्ता करता है। मरने के बाद कहाँ जाऊँगा, नहीं जाऊँगा उसकी भी चिन्ता करता है। जन्म के पहले कहाँ था, नहीं था, उसकी भी फिक्र करता है।

चौथा शरीर थोड़े से मनुष्यों में सक्रिय होता है, सभी मनुष्यों में नहीं। और जिन मनुष्यों में चौथा शरीर सक्रिय हो जाता है, मनस-शरीर अगर वे मरे तो वे देव योनि जिसको हम कोई भी नाम दे दें, उस तरह की योनि में प्रवेश कर जाते हैं। जहाँ चौथे शरीर की सक्रियता की बहुत सुविधा है। तीसरे शरीर तक आदमी आदमी रहता है, सक्रिय रहे तो। चौथे शरीर से आदमी के ऊपर की योनियाँ शुरू होती हैं। लेकिन चौथे शरीर से एक फर्क होगा, उसे समझ लेना जरूरी है।

२१. चौथे शरीर वाली मृतात्मा प्रेत-योनि या देव-योनि में

अगर चौथा शरीर सक्रिय हो जाय तो आदमी को शरीर लेने की सम्भावना कम और अशरीरी अस्तित्व की सम्भावना बढ़ जाती है। लेकिन जैसा मैंने कहा, सक्रिय और सचेतन का फर्क याद रखना। अगर सिर्फ सक्रिय हो और सचेतन न हो तो उसे हम प्रेत-योनि कहेंगे और अगर सक्रिय हो और सचेतन भी हो तो देवयोनि कहेंगे। प्रेत में और देव में इतना ही फर्क है। उन दोनों का चौथा शरीर सक्रिय हो गया है। लेकिन प्रेत के चौथे शरीर की सक्रियता का उसे कोई बोध नहीं। वह अवेयर (सजग) नहीं है उसके प्रति और देव को उस चौथे शरीर की सक्रियता का बोध है, वह अवेयर (सजग) है। इसलिए प्रेत अपने चौथे शरीर की सक्रियता से हजारों तरह का नुकसान करता रहेगा। खुद को भी, दूसरों को भी। क्योंकि मूर्छा सिर्फ नुकसान ही कर सकती है। और देव बहुत तरह के लाभ पहुँचाता रहेगा अपने को भी और दूसरों को भी। क्योंकि सजगता सिर्फ लाभ ही पहुँचा सकती है।

पाँचवाँ शरीर जिसका सक्रिय हो गया वह देव-योनि के भी पार चला जाता है। पाँचवाँ शरीर आत्म-शरीर है। और पाँचवें शरीर पर सक्रियता और सजगता एक ही अर्थ रखती है। क्योंकि पाँचवें शरीर पर बिना सजगता के कोई भी नहीं जा सकता। इसलिए वहाँ सक्रियता और सजगता साइमल्टेनियस, युगपत् घटित होती है। चौथे शरीर तक यात्रा हो सकती है किसी की सोये-सोये भी। अगर जाग जाय तो यात्रा बदल जायेगी। देव-योनि की तरफ हो जायेगी। और अगर सोये रहे तो यात्रा प्रेत-योनि की तरफ हो जायेगी। पाँचवें शरीर के साथ सक्रियता और सजगता का एक ही अर्थ रहता है। क्योंकि वह आत्म-शरीर है, वहाँ बेहोश होकर आत्मा का तो कुछ अर्थ ही नहीं होता। आत्मा का मतलब

ही होता है। इसलिए आत्मा का दूसरा नाम चेतना (कांशसनेस) है। वहाँ बेहोशी का कोई मतलब नहीं होता।

तो पाँचवें शरीर से तो दोनों एक ही बात है। लेकिन पाँचवें शरीर के पहले दोनों रास्ते अलग हैं। चौथे शरीर तक ही स्त्री पुरुष का फासला है। और चौथे शरीर तक ही निद्रा और जागरण का फासला है। असल में चौथे शरीर तक ही सब तरह के द्वैत और द्वन्द्व का फासला है। पाँचवें शरीर से सब तरह का अद्वैत और अद्वन्द्व शुरू होता है। पाँचवें शरीर से युनिटी (एकता) शुरू होती है। उसके पहले एक डाइवर्सिटी (अनेकता) थी, एक भेद था। पाँचवें शरीर की जो सम्भावना है वह देवयोनि से नही है, न प्रेत-योनि से है। यह थोड़ी बात ख्याल में लेने जैसी है।

२२. देव-योनि से आगे जाने के लिए पुनः मनुष्य-शरीर धारण करना जरूरी

पाँचवें शरीर की सम्भावना प्रेत-योनि को इसलिए नहीं है कि प्रेत-योनि मूर्च्छित योनि है और सजगता के लिए जो शरीर अनिवार्य है वह उसके पास नहीं है। पहला शरीर (फिजिकल बॉडी), पहली सीढ़ी उसके पास नहीं है जिससे सजगता शुरू होती है। वह सीढ़ी न होने की वजह से प्रेत को वापस लौटना पड़े मनुष्य-योनि मे, इसलिए मनुष्य योनि एक तरह के क्रास-रोड (चौराहे) पर है। देवयोनि ऊपर है लेकिन आगे नही। इस फर्क को ठीक से समझ लेना। मनुष्य-योनि से देवयोनि ऊपर है, लेकिन आगे नहीं। क्योंकि आगे जाने के लिए तो मनुष्य-योनि पर वापस लौट आना पड़ता है। प्रेत को इसलिए लौटना पड़ता है कि वह मूर्च्छित है और मूर्च्छा तोड़ने के लिए भौतिक शरीर एकदम जरूरी है। देव को इसलिए लौटना पड़ता है कि देव-योनि में किसी तरह का दुःख नहीं है। असल में वह जागृत योनि है। जागृति में दुःख नहीं हो सकता और जहाँ दुःख नहीं है वहाँ साधना की कोई तड़फ नहीं पैदा होती। जहाँ दुःख नहीं है वहाँ मिटाने का कोई ख्याल नहीं है। जहाँ दुःख नहीं है वहाँ पाने का कोई ख्याल नहीं है।

तो देवयोनि एक स्टेटिक (स्थिर) योनि है जिसमे गति नही है आगे। और सुख की एक खूबी है कि अगर सुख तुम्हें मिल जाय तो आगे कोई गति नहीं रह जाती। दुःख हो तो सदा गति होती है। क्योंकि दुःख को हटाने को, दुःख से मुक्त होने को तुम कुछ खोजते हो। सुख मिल जाय तो खोज बन्द हो जाती है। इसलिए एक बड़ी अजीब बात है जो समझ में नहीं आती है लोगों को।

महावीर और बुद्ध के जीवन में इस उल्लेख का बड़ा मूल्य है कि देवता उनसे शिक्षा लेने आते हैं। और जब कोई बुद्ध को और महावीर को पूछता है कि क्या

मजा है कि मनुष्य के पास और देवता आयें। देव-योनि ऊपर है, तो मनुष्य के पास वे आयें, यह अजीब मामला मालूम होता है। लेकिन यह अजीब नहीं है। योनि तो ऊपर है लेकिन स्टेटिक (स्थिर) योनि है। मूवमेण्ट (गति) खत्म हो गया वहाँ। वहाँ से आगे कोई गति नहीं है। और अगर आगे गति करनी हो तो जैसे लोगों को छलांग लगाने के लिए थोड़ा पीछे लौटना पड़ता है और फिर छलांग लगानी पड़ती है, ऐसा देवयोनि से वापस लौट कर मनुष्य-योनि पर खड़े होकर छलांग लगती है। सुख की एक खूबी यह है कि उसमें आगे गति नहीं है। और दूसरी खूबी यह है कि सुख उबाने वाला (बोरिंग) है। सुख से उबाने वाला तत्त्व दुनिया में दूसरा नहीं है। दुःख भी उतना नहीं उबाता। दुःख में बोर्डम (ऊब) बहुत कम है, है ही नहीं। सुख में बहुत ऊब (बोर्डम) है। दुखी चित्त कभी नहीं ऊबता। इसलिए दुखी समाज असन्तुष्ट समाज नहीं होता और दुखी आदमी असन्तुष्ट आदमी नहीं होता। सिर्फ सुखी आदमी असन्तुष्ट होता है और सुखी आदमी का समाज असन्तुष्ट समाज होता है। अमरीका जितना असन्तुष्ट है उतना भारत नहीं है। उसका कारण कुल इतना है कि हम दुखी हैं और वह सुखी है। आगे गति नहीं रह गयी और दुख नहीं है जो गति देता था। और सुख की पुनरुक्ति है। वही सुख, वही सुख, रोज-रोज पुनरुक्त होकर बेमानी हो जाता है।

२३. सुखों से ऊब कर ही देव-योनियों से लौटना सम्भव

तो देवयोनि बोर्डम (ऊब) की चरम शिखर है। उससे ज्यादा उबाने वाला स्थान नहीं है कोई जगत् में। वहाँ जाकर बड़ी ऊब पैदा होती है। लेकिन, वक्त लगता है ऊब पैदा होने में। और फिर वह सम्वेदना (सेंसिटीविटी) के ऊपर निर्भर करता है। जितना सम्वेदनशील व्यक्ति होगा उतना जल्दी ऊब जायेगा। जितना सम्वेदनहीन व्यक्ति होगा उतनी देर में ऊबेगा। यह भी सम्भव है कि नहीं भी ऊबे। भैंस एक ही घास को रोज चरती रहती है। और जिन्दगी भर नहीं ऊबती। सम्वेदना जैसी चीज बहुत कम है। जितनी सम्वेदना होगी उतनी ऊब जल्दी पैदा हो जायेगी। क्योंकि सम्वेदनशीलता जो है वह नये की तलाश करती है कि और अधिक नया चाहिए। सम्वेदना एक तरह की चंचलता है। और चंचलता एक तरह का जीवन है। तो देव-योनि एक अर्थ में डेड (मृत) योनि है। प्रेत-योनि भी मरी योनि है। लेकिन फिर भी देव-योनि प्रेत से भी ज्यादा मरी योनि है। क्योंकि प्रेतों को दुनिया में एक अर्थ में ऊब बिलकुल नहीं है। क्योंकि दुख काफी है और दुख देने की सुविधा काफी है। दूसरे को सताने का भी रस बहुत है। और खुद भी सताये जाने की बहुत सुविधा है। उपद्रव की बहुत गुंजाइश है। देव-योनि बिलकुल शान्त योनि है, जहाँ उपद्रव बिलकुल

नहीं है । तो अन्ततः देवयोनि से जो लौटना होता है वह लौटना होता है ऊब के कारण । और ध्यान रहे इस लिहाज से वह मनुष्य-योनि से ऊपर है कि वहाँ संवेदनशीलता बहुत बढ़ जाती है । और हम जिन सुखों से वर्षों में नहीं ऊबते उन सुखों से उस योनि में एक बार भी भोगने से ऊब पैदा हो जाती है ।

इसलिए तुमने पढ़ा होगा पुराण में कि देवता पृथ्वी पर जन्म लेने को तरसते हैं । अब यह हैरानी की बात है । उनके तरसने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि यहाँ पृथ्वी पर सब देव-योनि में जाने को तरस रहे हैं और ऐसी भी कथाएँ हैं कि कोई देवता उतरेगा और पृथ्वी पर किसी स्त्री को प्रेम करने आयगा । ये कथाएँ सूचक हैं । कोई अप्सरा उतरेगी पृथ्वी पर और किसी पुरुष से प्रेम करेगी । ये कथाएँ सूचक हैं । ये चित्त की सूचक हैं । ये यह कह रही हैं कि उस योनि में सुख तो बहुत है लेकिन सुख नीरस हो जाता है—सुख-सुख-सुख । उसके बीच में अगर दुख के क्षण न हों तो ऊबाने वाला हो जाता है । और कभी हमारे सामने दोनों विकल्प रखे जायें कि अनन्त सुख चुन लो तब सुख ही सुख रहेगा, कभी ऐसा क्षण नहीं आयेगा कि तुम्हें लगे कि दुख है । और अनन्त दुख चुन लो, तब दुख ही दुख रहेगा । तो बुद्धिमान् आदमी दुख को ही चुन लेगा । यह जो देव-योनि है वहाँ से वापस लौटना पड़े, प्रेत-योनि जो है वहाँ से वापस लौटना पड़े ।

२४. पाँचवें शरीर में मृत व्यक्ति का अयोनिज काम-वासना-शून्य जन्म

मनुष्य-योनि चौराहे पर है । वहाँ से सब यात्रा सम्भव है । मनुष्य-योनि पर जो आदमी पाँचवें शरीर को उपलब्ध हो जायगा उसको फिर कहीं भी नहीं जाना पड़ता । फिर वह अयोनि में प्रवेश करता है, वह योनिमुक्त होता है । योनि का मतलब ख्याल में है न ? किसी माँ की योनि में प्रवेश से मतलब है योनि का । वह किसी वर्ग की माँ हो । गर्भ-प्रवेश से मतलब है योनि का । तो वह कोई गर्भ-प्रवेश नहीं करता । जो अपने को उपलब्ध हो गया उसकी यात्रा एक अर्थ में समाप्त हो गयी । यह जो पाँचवें शरीर के व्यक्ति की अवस्था है, इसीको हम कहते हैं मुक्ति, मोक्ष । लेकिन अगर यह अपने पर तृप्त हो जाय, रुक जाय तो रुक सकता है, अनन्तकाल तक रुक सकता है । क्योंकि यहाँ न दुख है न सुख है, न बन्धन है न पीड़ा है । यहाँ कुछ भी नहीं है । लेकिन सिर्फ स्वयं का होना है यहाँ, सर्व का होना नहीं है । तो अनन्त समय तक भी कोई व्यक्ति इस स्थिति में पड़ा रह सकता है जब तक कि उसमें सर्व को जानने की जिज्ञासा न उठ जाय । है वह जिज्ञासा का बीज हमारे भीतर, इसलिए वह उठ आती है । और इसलिए साधक अगर पहले से ही सर्व को जानने की जिज्ञासा रखे तो पाँचवीं योनि में रुकने की असुविधा से बच जाता है । इसलिए अगर पूरी की पूरी साइन्स को तुम समझोगे तो पहले से ही जिज्ञासा परम होनी चाहिए । कहीं बीच में किसी ठहराव

को अगर तुम मंजिल समझ कर चले तो जब वह तुम्हें मिल जायगी मंजिल, तो तुम्हारा मन होगा कि बात खत्म हो गयी।

तो पाँचवें शरीर के व्यक्ति को कोई योनि नहीं लेनी पड़ती। लेकिन वह स्वयं में बँधा रह जाता है, सबसे छूट जाता है, स्वयं में बंधा रह जाता है। अस्मिता से नहीं छूटता, अहंकार से छूट जाता है। क्योंकि अहंकार जो था वह सदा दूसरे के खिलाफ दावा था। इसको ठीक से समझ लेना जब मैं कहता हूँ, 'मैं' तो मैं किसी 'तू' को दबाने के लिए कहता हूँ। इसलिए जब मैं किसी 'तू' को दबा लेता है तो मेरा 'मैं' बहुत अकड़ कर प्रकट होता है। और जब कोई 'तू' मुझे दबा देता है तो मेरा 'मैं' बहुत रिरियाता, रोता हुआ प्रकट होता है। वह 'मैं' जो है वह 'तू' को दबाने का प्रयास है। तो अहंकार जो है वह सदा दूसरे की अपेक्षा में है। दूसरा तो खत्म हो गया। दूसरे से अब कोई लेना-देना नहीं है। उससे अब कोई अपेक्षा न रही। अस्मिता जो है वह अपनी अपेक्षा में है। अहंकार और अस्मिता में इतना ही फर्क है। 'तू' से कोई मतलब नहीं है मुझे। लेकिन फिर भी 'मैं' तो हूँ। कोई दावा नहीं है 'मैं' का अब। लेकिन मेरा होना तो है ही। अब मैं किसी 'तू' के खिलाफ नहीं जा रहा हूँ, लेकिन 'मैं' तो हूँ बिना किसी 'तू' की अपेक्षा के। इसलिए मैंने कहा कि अहंकार कहेगा 'मैं' और अस्मिता कहेगी 'हूँ'। उतना फर्क होगा। 'मैं' हूँ' में दोनों बातें हैं। 'मैं' अहंकार है और 'हूँ' अस्मिता है। —द फीलिंग आफ आइनेस, (अस्मिता का अनुभव) 'तू' के खिलाफ नहीं, अपने पक्ष में। 'मैं हूँ'। दुनिया का कोई आदमी न रह जाय। तीसरा महायुद्ध हो और सब लोग मर जायें, मैं रह जाऊँ। तो मेरे भीतर अहंकार नहीं रह जायगा। लेकिन अस्मिता होगी। मैं जानूंगा कि 'मैं' हूँ। हालाँकि मैं किसी से न कह सकूँगा कि 'मैं', क्योंकि कोई तू नहीं बचा जिससे मैं कह सकूं। तो जब बिलकुल तुम अकेले हो और कोई भी दूसरा नहीं है तब भी तुम 'हो' होने के अर्थ में।

पाँचवें शरीर में अहंकार तो विदा हो जाता है। इसलिए सबसे बड़ी कड़ी जो बन्धन की है, वह गिर जाती है। लेकिन अस्मिता रह जाती है, 'हूँ' का भाव रह जाता है, मुक्त, स्वतन्त्र, कोई बन्धन नहीं, कोई सीमा नहीं। लेकिन अस्मिता की अपनी सीमा है। दूसरे की कोई सीमा नहीं रही, लेकिन अस्मिता की अपनी सीमा है। तो छठवें शरीर पर अस्मिता टूटती है। या छोड़ी जाती है। और छठवाँ शरीर जो है वह कॉजमिक बॉडी है।

२५. पाँचवें शरीर से छठे शरीर में जन्म—आत्म-गर्भा व द्विज बनकर

पाँचवें शरीर के बाद योनि का सवाल समाप्त हो गया। लेकिन जन्म अभी

बाकी है। इस फर्क को भी ख्याल में ले लेना है कि एक जन्म तो योनि से होता है, किसी के गर्भ से होता है और एक जन्म अपने ही गर्भ से होता है। इसलिए इस मुल्क में हम ब्राह्मण को द्विज कहते हैं। असल में ब्रह्म-ज्ञानी को कहते थे कभी। ब्राह्मण को कहने की कोई जरूरत नहीं है। ब्रह्म-ज्ञानी को द्विज कहते थे। उसको एक और तरह का जन्म लेना पड़ता है तब उसे कहते हैं—ट्वाइस बार्न (दुबारा-जनमा)। एक जन्म तो वह है जो गर्भ से मिलता है, वह दूसरे से मिलता है। और एक ऐसा जन्म भी है जो फिर अपने से है। क्योंकि जब आत्म-शरीर उपलब्ध हो गया तब तुम्हें दूसरे से जन्म कभी नहीं मिलेगा। अब तो तुम्हें अपने ही आत्म-शरीर से जन्मना होगा, कॉजमिक बॉडी में। और यह तुम्हारी अन्तर्यात्रा है और अब तुम्हारा अन्तर्गर्भ है और अन्तरयोनि है। अब इसका बाह्य-योनि से और बाह्य-गर्भ से कोई सम्बन्ध नहीं है। अब तुम्हारे कोई माता-पिता न होंगे। अब तुम्हीं पिता और तुम्हीं माता और तुम्हीं पुत्र बनोगे। अब यह बिलकुल निपट अकेली यात्रा है। तो इस स्थिति को पाँचवें शरीर से छठवें शरीर में जब प्रवेश हो तब कहना चाहिए कोई व्यक्ति द्विज हुआ, उसके पहले नहीं। उसका दूसरा जन्म हुआ जो अयोनिज है, जिसमें योनि नहीं है और जिसमें पर-गर्भ नहीं है, जो आत्मगर्भ है।

उपनिषद् का ऋषि कहता है कि उस गर्भ के ढक्कन को खोलो वह जो तूने स्वर्ण-पात्र से, स्वर्ण-पर्दों से ढँक कर रखा है। पर्दे जरूर वहाँ स्वर्ण के हैं, यानी पर्दे ऐसे हैं कि उन्हें तोड़ने का मन न होगा। पर्दे ऐसे हैं कि बचाने की तबीयत होगी। अस्मिता सबसे ज्यादा कीमती पर्दा है जो हमारे ऊपर है। उसे हम ही न छोड़ना चाहेंगे। कोई दूसरा बाधा देने वाला नहीं होगा। कोई नहीं कहेगा रुको। कोई रोकने वाला नही होगा। लेकिन पर्दा ही इतना प्रीतिकर है 'अपने होने का' कि उसे छोड़ न पाओगे। इसलिए ऋषि कहता है, स्वर्ण के पर्दों को हटा और उस गर्भ को खोल जिससे व्यक्ति द्विज हो सके।

तो ब्रह्मज्ञानी को द्विज कहते हैं। ब्रह्मज्ञानी का मतलब है छठवें शरीर को पाने वाला। पाँचवें शरीर से छठवें शरीर की यात्रा ट्वाइस बार्न, द्विज होने की यात्रा है। और गर्भ बदला, योनि बदली। अब सब अयोनिज हुआ और गर्भ अपना हुआ। आत्मगर्भा हुए हम। पाँचवें से छठवें में जन्म है और छठवें से सातवें में मृत्यु है। इसलिए उसको द्विज नहीं कहा। उसको द्विज कहने का कोई मतलब नही है। अब मेरा मतलब समझे तुम! इसको अब समझना आसान हो जायगा। पाँचवें से छठवें को हम कहते हैं जन्म अपने से, छठवें से सातवें में हम कहते हैं मृत्यु अपने से। दूसरों से जन्म लिये थे—दूसरे की योनियों से, दूसरे के शरीरों से। वह मृत्यु भी दूसरों की थी। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा।

२६. 'पर-योनि' से जन्मे व्यक्ति की मृत्यु भी परायी

जब जन्म दूसरे से था तब मृत्यु तुम्हारी कैसे हो सकती है ? जन्म तो मैं लूँगा अपने माता-पिता से और मरूँगा मैं ? यह कैसे हो सकता है ? यह दोनों छोर असंगत हो जायेंगे। जब जन्म पराया है, तब मृत्यु मेरी नहीं हो सकती। जब जन्म दूसरे से मिला है तब मृत्यु भी दूसरे की है। फर्क इसलिए है कि उस बार मैं एक योनि से प्रकट हुआ था, इस बार दूसरी योनि में प्रवेश करूँगा। इसलिए पता नहीं चल रहा है। उस वक्त आया था तो दिखायी पड़ गया था। अब जा रहा हूँ तो दिखायी नहीं पड़ रहा है। जन्म जो है उसके पहले मृत्यु है। कहीं तुम मरे थे, कहीं तुम जन्मे हो। जन्म दिखायी पड़ता है। तुम्हारी मृत्यु का तुम्हें पता नहीं।

अब तुम्हें एक जन्म मिला एक माँ-बाप से, एक शरीर मिला, एक देह मिली। सत्तर साल, सौ साल दौड़ने वाला एक यन्त्र मिला। यह यन्त्र सौ साल बाद गिरेगा। इसका गिरना उसी दिन से सुनिश्चित हो गया जिस दिन तुम जन्मे। कब गिरेगा यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है गिरना। जन्म के साथ तय हो गया है कि तुम मरोगे। जिस योनि से तुम जन्म लाये उसी योनि से तुम मृत्यु भी ले आये, साथ ही ले आये। असल में जन्म देने वाली योनि में मृत्यु छिपी ही है। सिर्फ फासला पड़ेगा सौ साल का। इस सौ साल में तुम एक छोर से दूसरे छोर की यात्रा पूरी करोगे और जिस जगह से तुम आये थे ठीक उसी जगह वापस लौट जाओगे। तो जो जन्म दूसरे की योनि से हुआ है वह मृत्यु भी दूसरे की ही योनि से जन्मे शरीर की है। वह मृत्यु भी परायी है। तो न तो जन्मे हो अभी और न तुम मरे हो अभी। जन्म में भी दूसरा माध्यम था, मृत्यु में भी दूसरा ही माध्यम होने को है। पाँचवें आत्म-शरीर से जब तुम छठवें ब्रह्म-शरीर में प्रवेश करोगे तो तुम पहली दफा जन्मोगे, आत्मगर्भा बनोगे, अयोनिज तुम्हारा जन्म होगा। लेकिन तब एक अयोनिज मौत भी आगे प्रतीक्षा करेगी और यह जन्म जहाँ तुम्हें ले जायगा, मृत्यु तुम्हें वहाँ से भी आगे ले जायेगी। क्योंकि जन्म तुम्हें ब्रह्म में ले जायगा, मृत्यु तुम्हें निर्वाण में ले जायेगी।

२७. छठवें शरीर में स्थित व्यक्ति का मरने के बाद अवतार, ईश्वर-पुत्र व तीर्थंकर के रूप में जन्म

यह जन्म बहुत लम्बा हो सकता है। यह जीवन अन्तहीन हो सकता है। ऐसा छठवें शरीर वाला व्यक्ति अगर टिका रहेगा तो ईश्वर बन जायगा। ऐसी चेतना अगर कहीं रुकी रह जायेगी तो अरबों लोग उसे पूजेंगे। उसके प्रति प्रार्थनाएँ प्रेषित की जायेंगी। जिसको हम अवतार कहते हैं, ईश्वर कहते हैं, ईश्वर-पुत्र

और तीर्थंकर कहते हैं वह पाँचवें शरीर से छठवें शरीर में गये हुए लोग हैं। यदि ये चाहें तो इस छठवें शरीर में अनन्त काल तक रुक सकते हैं। इस जगह से ये बड़े उपकार भी कर सकते हैं। हानि का तो अब कोई उपाय नहीं, कोई सवाल भी नहीं है। इस जगह से ये बड़े गहरे सूचक बन सकते हैं। और इस तरह के लोग हैं छठवें शरीर में जो निरन्तर बहुत तरह से प्रयास करते रहते हैं पीछे की यात्राओं के लिए। इस छठवें शरीर से चेतनाएँ बहुत तरह के सन्देश भी भेजती रहती हैं। और जिनको इनका थोड़ा-सा बोध हो जायगा उनके लिए इनको भगवान् से नीचे तो रखने का कोई उपाय नहीं है। भगवान् वे हैं ही। उनके भगवान् होने में कोई कमी नहीं रह गयी। ब्रह्म-शरीर उन्हें उपलब्ध है।

जीते जी भी इसमें कोई प्रवेश कर जाता है। जीते जी भी कोई पाँचवें से छठवें में प्रवेश कर जाता है। यह शरीर भी मौजूद है और जब जीते जी कोई पाँचवें से छठवें में प्रवेश कर जाता है तो हम उसे बुद्ध और महावीर, राम और कृष्ण और क्राइस्ट बना लेते हैं। जिनको दिखायी पड़ जाता है वे ही बना पाते हैं। जिनको नही दिखायी पड़ता है उनका तो कोई सवाल नहीं।

२८. तीर्थंकर और ईश्वर-पुत्र को पहचान पाने के लिए भी योग्यता चाहिए

गाँव में एक आदमी को दिखायी पड़ता है कि बुद्ध ईश्वर हो गये। दूसरे आदमी को दिखायी पड़ता है कुछ भी नही, आदमी तो साधारण ही है। हमारे जैसे उनको सर्दी, जुकाम भी होता है। हमारे जैसे वह बीमार भी पड़ते हैं। हमारे जैसे भोजन भी करते हैं। हमारे जैसे चलते, सोते भी हैं। हमारे जैसे मरते भी हैं तो हममें और उनमें फर्क क्या है? फिर जिनको नहीं दिखायी पड़ता है उनकी ही संख्या सदा बड़ी है, जिनको नहीं दिखायी पड़ता है। जिनको दिखायी पड़ता है वे पागल मालूम पड़ते हैं और वे बेचारे पागल दिखते भी हैं। क्योंकि उनके पास कोई इविडेन्स (सबूत, प्रमाण) भी तो नहीं है। असल में दिखायी पड़ने के लिए कोई इविडेन्स (प्रमाण) भी नहीं होता। अब यह माइक मुझे दिखायी पड़ रहा है। और अगर आपको यहाँ किसी को दिखायी न पड़े तो मैं और क्या इविडेन्स (प्रमाण) दूँगा कि दिखायी पड़ रहा है। मैं कहूँगा दिखायी पड़ रहा है तो मैं पागल हो जाऊँगा। क्योंकि जब सबको नहीं दिखायी पड़ रहा है तो आपको दिखायी पड़ रहा है तो आपका दिमाग खराब है।

२९. न पहचान पाने वालों के लिए ईश्वर-पुत्र या तीर्थंकर भी साधारण आदमी

ज्ञान को भी हम बहुत गहरे अर्थ में गणना से नापते हैं। उसकी भी मतदान

(बोटिंग) है । तो बुद्ध किसी को दिखायी पड़ते हैं भगवान् हैं, किसी को दिखायी पड़ते हैं नहीं हैं । जिसको दिखायी पड़ते हैं कि नहीं है वह कहता है, क्या पागलपन कर रहे हो । यह बुद्ध वही है जो शुद्धोदन का बेटा है, फलाने का लड़का है, फलानी इसकी माँ थी, फलानी इसकी बहू है । वही तो है । यह कोई और तो नहीं है । बुद्ध के बाप तक को नहीं दिखायी पड़ता है कि यह आदमी कुछ और हो गया है । वे भी यही समझते हैं कि मेरा बेटा है और कहते हैं कि तू कहाँ की नासमझी में पड़ा है । घर वापस लौट आ । यह सब तू क्या कर रहा है ? राज्य सब बर्बाद हो रहा है । मैं बूढ़ा हुआ जा रहा हूँ । तू वापस लौट और सम्भाल ले सब । उनको भी नहीं दिखायी पड़ता कि अब यह किस अनन्त राज्य का मालिक हो गया है । पर जिसको दिखायी पड़ता है उसके लिए यह है । उसके लिए तीर्थंकर हो जायगा, भगवान् हो जायगा, ईश्वर का बेटा हो जायगा, कुछ भी हो जायगा । वह कोई भी नाम चुनेगा, जो छठवें शरीर के आदमी के लिए इन सब सम्बोधनों का उपयोग करेगा ।

३०. छठवें शरीर के सीमान्त पर निर्वाण की झलक

सातवाँ शरीर जो है वह इस शरीर में कभी उपलब्ध नहीं होता, इस शरीर में हम छठवें शरीर के सीमान्त पर खड़े भर हो सकते हैं ज्यादा से ज्यादा, जहाँ से सातवाँ शरीर दिखायी पड़ने लगता है, वह छलांग, वह गड्ढा, वह एबिस (अनन्त शून्यता), वह इटरनिटी (अनंतता) दिखायी पड़ने लगती है । वहाँ हम खड़े हो सकते हैं । इसलिए बुद्ध के जीवन में दो निर्वाण की बात कही जाती है जो बड़ी कीमती है । एक निर्वाण तो वह है जो उन्हें बोधिवृक्ष के नीचे निरंजना के तीर पर हुआ, मरने के चालीस साल पहले । इसे कहा जाता है निर्वाण । इस दिन वे उस सीमान्त पर खड़े हो गये और इस सीमान्त पर वे चालीस साल खड़े ही रहे । जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उस दिन कहा जाता है वह हुआ महापरि-निर्वाण । उस दिन वह उस सातवें में प्रवेश कर गये । इसलिए मरने के पहले उनसे कोई पूछता है कि तथागत का मृत्यु के बाद क्या होगा ? तो बुद्ध कहते हैं, तथागत नहीं होंगे । लेकिन यह मन को भरता नहीं है हमारे । पुन-पुनः उनके भक्त उनसे पूछते हैं कि जब महानिर्वाण होता है बुद्ध का तो फिर क्या होता है ? तो बुद्ध कहते हैं, जहाँ सब होना बन्द हो जाता है उसी का नाम महापरिनिर्वाण है । जब तक कुछ होता रहता है तब तक छठवाँ शरीर होता है, तब अस्तित्व है । उसके परे (Beyond) अनस्तित्व है । तो बुद्ध जब नहीं होंगे, तब कुछ भी नहीं बचेगा, अब तुम समझना कि वह कभी थे ही नहीं, वह ऐसे ही बिदा हो जायेंगे जैसे स्वप्न बिदा हो जाता है, वह ऐसे ही बिदा हो जायेंगे जैसे रेत पर खिंची रेखा हवा के झोंके से साफ हो जाती है, जैसे पानी पर खींचते हैं रेखा और

खींच भी नहीं पाते हैं और बिदा हो जाती है। ऐसे ही वह खो जायेंगे। अब कुछ भी नहीं होगा। मगर यह मन को भरता नहीं है। हमारा मन कहता है, कहीं-न-कहीं, किसी तल पर, कहीं किसी कोने में दूर, कितने ही दूर, लेकिन हों। लेकिन रूप में ही अरूप हो जायगा। आकार में ही निराकार हो जायगा। शब्द में ही निःशब्द हो जायगा। सत्वों में ही शून्य हो जायगा।

सातवें शरीर के बाद की खबर देने का फिर कोई उपाय नही है। सीमान्त पर खड़े हुए लोग हैं जो सातवें शरीर को देखते हैं, उस गड्ढ को देखते हैं। लेकिन, उस गड्ढ मे जाकर खबर देने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए **सातवें शरीर के सम्बन्ध में सब खबरें सीमा के किनारे खड़े हुए लोगों की खबरें हैं।** गये हुए की कोई खबर नही है, क्योंकि कोई उपाय ही नही। जैसे कि हम पाकिस्तान की सीमा पर खड़े होकर देखें और कहें कि वहां एक मकान है और एक दूकान है और एक आदमी खड़ा है और एक वृक्ष है और सूरज निकल रहा है, लेकिन यह खड़ा है आदमी हिन्दुस्तान की सीमा में।

३१. छठवें शरीर से सातवें शरीर में जाना है महा-मृत्यु

छठवें से सातवें में जाना महामृत्यु है। और तुम बड़े हैरान होओगे यह जान कर कि बहुत प्राचीन समय मे **आचार्य का मतलब यह होता था कि जो मृत्यु सिखाये, जो महामृत्यु सिखाये।** ऐसे सूत्र हैं जो कहते हैं आचार्य यानी मृत्यु। इसलिए नचिकेता जब पहुँच गया है यम के पास तो वह ठीक आचार्य के पास पहुँच गया है, यम मृत्यु ही सिखा सकता है, और कुछ नही सिखा सकता। आचार्य का स्थान वह है जहाँ मिटना सिखाया जाय, जहाँ टूटना और समाप्त होना सिखाया जाय।

पर इसके पहले एक जन्म आवश्यक है, क्योंकि अभी तो तुम हो ही नही और जिसे तुमने समझा है कि तुम हो वह तो बिलकुल उधार है, (बारोड) है। वह तुम्हारा अस्तित्व नहीं। इसे तुम अगर खोओगे भी तो तुम इसके मालिक न थे। मामला ऐसा है जैसे कि मैं कोई चीज चुरा लूँ और फिर मैं उसका दान कर दूँ। वह चीज मेरी थी नहीं तो दान मेरा कैसे होगा? जो मेरा नहीं है उसे मैं दे भी नही सकता। इसलिए यहाँ इस जगत् मे जिसको हम त्यागी कहते हैं वह त्यागी नहीं है क्योंकि वह उसे छोड़ रहा है जो उसका था नहीं और जो तुम्हारा अपना था नहीं उसके छोड़ने वाले तुम कैसे हो सकते हो और जो तुम्हारा था नहीं उसको तुमने छोड़ा, यह दावा पागलपन का है। **त्याग घटित होता है छठवें शरीर से सातवें में प्रवेश से।** क्योंकि वहाँ तुम वही छोड़ते हो जो तुम हो और कुछ तो तुम्हारे पास बचता नहीं। तुम जो हो उसी को तुम छोड़ते हो, इसलिए **त्याग की घटना तो सिर्फ एक ही है,** वह है छठवें से सातवें शरीर में प्रवेश की। उसके पहले तो हम बच्चे की बातें कर रहे हैं।

जो आदमी कह रहा है मेरा है वह पागलपन की बातें कर रहा है। जो कह रहा है कि जो भी मेरा था वह मैंने छोड़ दिया है वह भी पागलपन की बातें कर रहा है। क्योंकि दावेदार वह अब भी है कि वह मेरा था, मैं मानता था कि मेरा था। और मैंने किसी और को दे दिया। और अब वह उसका हो गया। हमारे तो सिर्फ हम हैं, लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं है। इसलिए **पाँचवें से छठवें में तुम्हें पता चलेगा कि तुम कौन हो। और छठवें से सातवें में तुम त्याग कर सकोगे उसका जो तुम हो।** और जिस दिन कोई उसका त्याग कर पाता है जो वह है उसके बाद फिर कुछ पाने को शेष नहीं रह जाता। कुछ खोने को शेष नहीं रह जाता। उसके बाद तो कोई सवाल ही नहीं है। उसके बाद अनन्त सन्नाटा और चुप्पी है। उसके बाद यह भी हम नहीं कह सकते कि आनन्द है। यह भी नही कह सकते कि शान्ति है। यह भी नहीं कह सकते कि सत्य है, असत्य है, प्रकाश है। कुछ भी नहीं कह सकते। यह सातवें शरीर की स्थिति होगी।

प्रश्नकर्ता : स्थूल शरीर के जीवित रहते अगर पाँचवाँ शरीर उपलब्ध हुआ तो मृत्यु के बाद वह व्यक्ति फिर कौन से शरीर में जन्म लेगा?

आचार्यश्री : पाँचवें शरीर का मिलना और जागना एक ही बात है। फिर तुम्हें पहले शरीरों की कोई जरूरत नहीं। अब तो तुम पाँचवें शरीर से ही काम कर सकते हो। तुम जागे हुए आदमी हो। अब कोई कठिनाई नहीं है। अब तुम्हें पहले शरीरों की कोई भी जरूरत नहीं है। यह तो चौथे शरीर तक सवाल बना रहेगा सदा। अगर चौथा शरीर सक्रिय हो गया और जाग गया तो देवता हो गया आदमी। चौथा शरीर निष्क्रिय रहा और सोया रहा तो प्रेत हो गया। इन दोनों स्थितियों में तुम्हें वापस लौटना पड़ेगा। क्योंकि तुम्हें अभी अपने स्वरूप का कोई पता नहीं चला है। अभी तो तुम्हें स्वरूप का पता लगाने के लिए भी 'पर' की जरूरत है। उस 'पर' के ही आधार पर तुम अभी 'स्व' का पता लगा पाओगे। अभी तो अपने को पहचानने के लिए तुम्हें दूसरे की जरूरत है। अभी दूसरे के बिना तुम अपने को पहचान भी न पाओगे। अभी तो दूसरा ही तुम्हारी सीमा बनायेगा और तुम्हें पहचानने का कारण बनेगा। इसलिए चौथे शरीर तक तो कोई भी स्थिति में जन्म लेना पड़ेगा। पाँचवें शरीर के बाद अन्य की कोई जरूरत नहीं है, अर्थ भी नहीं है। पाँचवें शरीर के बाद तुम्हारा होना इन सब चार शरीरों के बिना हो जायगा। लेकिन **पाँचवें शरीर से अब एक और नये तरह के जन्म की बात शुरू होती है। वह छठवें शरीर में प्रवेश की है।** वह दूसरी बात है। उसके लिए इन शरीरों की कोई जरूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पाँचवें शरीर में जैसे प्रवेश किया चौथे से, तो उसकी मृत्यु के बाद वह स्थूल शरीर नहीं पा सकता?

आचार्यश्री : नहीं ।

प्रश्नकर्ता : तीर्थंकर यदि जन्म लेना चाहेंगे तो स्थूल शरीर मे लेंगे?

३२. तीर्थंकर की हैसियत से पुनर्जन्म लेने के लिए शिक्षक बनने की वासना और दूसरे, तीसरे तथा चौथे शरीर को सुरक्षित रखना जरूरी

आचार्यश्री : अब यह जो मामला है यह बहुत दूसरी बात हुई । अगर तीर्थंकर को जन्म लेना हो, तो एक बड़ी मजे की बात होती है । और वह यह है कि मरने के पहले उसे चौथे शरीर को छोड़ना नहीं पड़ता । और न छोड़ने का एक उपाय है । और उसकी विधि है । और वह है तीर्थंकर होने की वासना । तो चौथा शरीर जब छूट रहा हो तब एक वासना बचा लेनी पड़ती है ताकि चौथा न छूटे । **चौथे के छूटने के बाद तो जन्म ले नहीं सकते ।** फिर तो तुम्हारा सेतु टूट गया जिससे तुम आ सकते थे । तो चौथे शरीर के पहले तीर्थंकर होने की वासना को बचाना पड़ता है । इसलिए सभी तीर्थंकर होने के योग्य लोग तीर्थंकर नहीं होते । बहुत-से तीर्थंकर होने योग्य लोग सीधे यात्रा पर निकल जाते हैं । थोड़े-से लोग है जो तीर्थंकर हो पाते हैं । और इसलिए उनकी संख्या भी तय कर रखी है । वह संख्या तय करने का कारण है कि उतने से काम चल जाता है । उतने से ज्यादा लोगों को वैसी ही वासना रखने की कोई जरूरत नहीं । उसकी सख्या तय कर रखी है कि इतने युग के लिए इतने तीर्थंकर काफी हो जायेंगे । इतने आदमी के लिए इतने तीर्थंकर काफी पड़ेंगे ।

तो तीर्थंकर की वासना बाँधनी पड़ती हैं और उस वासना को बड़ी तीव्रता से बाँधना पड़ता है, क्योंकि वह आखिरी वासना है और जरा छूट जाय हाथ से तो बात गयी। तो दूसरों को मैं सिखाऊँगा, दूसरों को बताऊँगा, दूसरे को मैं समझाऊँगा। दूसरों के लिए मुझे आना है, चौथे शरीर में उतनी वासना का बीज प्रबल होना चाहिए । अगर वह प्रबल है तो उतरना हो जायगा । पर उसका मतलब यही हुआ कि अभी चौथे शरीर को छोड़ा नहीं । **पाँचवें शरीर पर पैर रख लिया है, लेकिन चौथे शरीर पर एक खूंटी गाड़ रखी है ।** वह इतनी शीघ्रता से उखड़ती है कि अक्सर बहुत मुश्किल मामला है ।

३३. एक लम्बी साधना-परम्परा में ही तीर्थंकर का निर्माण सम्भव

इसलिए तीर्थंकर बनाने की प्रोसेस (प्रक्रिया) है । और इसलिए तीर्थंकर स्कूल्स (परम्परा) में बनते हैं । वह इण्डीविजुअल (वैयक्तिक) घटना नही है । जैसे कि एक स्कूल (समूह) साधना कर रहा है । कुछ साधक साधना कर रहे हैं । और उनमें वह एक आदमी को पाते हैं जिसमे कि शिक्षक होने की पूरी योग्यता है । जो, जो जानता है उसे कह सकता है । जो, जो जानता है उसे बता

सकता है। जो, जो जानता है उसे दूसरे तक कम्युनिकेट (सम्प्रेषित) कर सकता है, तो वह स्कूल उसके चौथे शरीर पर खूँटिया गाड़ना शुरू कर देगा और उसको कहेगा कि तुम चौथे शरीर की फिक्र करो। यह चौथा शरीर खत्म न हो, जाय क्योंकि तुम्हारा यह चौथा शरीर काम पड़ेगा। इसको बचा लो और इसको बचाने के उपाय सिखाये जायेंगे। और इसको बचाने के लिए उतनी मेहनत करनी पड़ती है, जितना छोड़ने के लिए नहीं करनी पड़ती है।

३४. तीर्थंकर का करुणावश पुनर्जन्म लेना

छोड़ना तो एकदम सरलता से हो जाता है और जब सब नावों की खूटियाँ उखड़ गयी हों और पाल खिच गयी हो और हवा भर गयी हो और दूर का सागर पुकार रहा हो और आनन्द ही आनन्द हो, तब वह जो एक खूँटी है उसको रोकना कितना कठिन है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। इसलिए तीर्थंकर को हम कहते हैं कि तुम महा करुणावान हो। उसका और कोई कारण नहीं है। क्योंकि उसकी करुणा का बड़ा हिस्सा तो यही है कि जब उसे जाना था, जब जाने की सब तैयारी पूरी हो गयी थी तब उनके लिए वह रुक गया है जो तट पर अभी हैं और जिनकी नावें अभी तैयार नहीं है। उसकी नाव बिलकुल तैयार है।' अब वह उस तट के कष्ट झेल रहा है। उस तट की धूल भी झेल रहा है और उस तट की गालियाँ भी झेल रहा है। उस तट के पत्थर भी झेल रहा है और उसकी नाव बिलकुल तैयार थी और वह कभी-कभी भी जा सकता था। वह नाहक रुक गया है इन सबके बीच। और ये सब उसे मार भी सकते है, हत्या भी कर सकते है। तो उसकी करुणा का कोई अन्त नहीं। लेकिन उस करुणा की वासना स्कूल (लम्बी परम्परा) में पैदा होती है। इसलिए इंडिविजुअल (व्यक्तिगत) साधक तो कभी तीर्थंकर नहीं हो पाता। उनको पता ही नहीं चलता है और खूँटी उखड़ जाती है। जब नाव चल पड़ती है तब उनको पता चलता है कि यह तो गया मामला। वह तट दूर छूटा जा रहा है।

३५. तीर्थंकर के अवतरण में छठवें, पाँचवें व चौथे शरीर के जागृत अन्य लोगों का प्रयास

और इस सबकी सहायता के लिए जैसा मैंने कहा कि छठवें शरीर को जो लोग उपलब्ध हैं जिनको हम ईश्वर कहें, वह भी कभी इसमें सहयोगी होते हैं। किसी व्यक्ति को इस योग्य पाकर कि इसको अभी तट से नहीं छूटने देना है, वह हजार तरह के प्रयास करते हैं। इसके लिए देवता भी सहयोगी होते हैं। जैसा मैंने कहा, वे शुभ में सहयोगी होंगे। वे हजार प्रयास करते हैं। इस आदमी को प्रेरणा देते हैं कि खूंटी एक बचा लेना। यह खूंटी हमें दिखायी पड़ती है, लेकिन तुम्हें दिखायी नहीं पड़ती। लेकिन इसको तुम बचा लेना।

तो जगत् एकदम अनार्किक (बे-नियम) नहीं है, अव्यवस्था नहीं है इसमें। बड़ी गहरी व्यवस्थाएँ हैं और व्यवस्थाओं के भीतर व्यवस्थाएँ हैं। और कई दफा बहुत तरह की कोशिश की जाती है, फिर भी गड़बड़ हो जाता है। जैसे कृष्णमूर्ति के सम्बन्ध में खूँटी गाड़ने की बहुत कोशिश की गयी, वह नहीं हो सका। पूरे स्कूल ने बहुत मेहनत किया जो खूँटी गाड़ने की कोशिश थी। वह नहीं हो सका। वह प्रयास असफल चला गया। उसमें पीछे से लोगों का भी हाथ था। उसमें दूरगामी आत्माओं का हाथ भी था। उसमें छठवें शरीर के लोगों का भी हाथ था, पाँचवें शरीर के लोगों का हाथ था। उसमें चौथे शरीर के जागृत लोगों का भी हाथ था। और उसमें हजारों लोगों का हाथ था। और यह कोशिश थी कि कृष्णमूर्ति को चुना गया था और दो चार बच्चे चुने गये थे जिनसे सम्भावना थी कि जिनको तीर्थंकर बनाया जा सके। चूक गयी वह बात, नहीं हो सकी। वह खूँटी नहीं गाड़ी जा सकी। इसलिए कृष्णमूर्ति के द्वारा तीर्थंकरों का जो फायदा मिल सकता था जगत् को, वह नहीं मिल सका। मगर वह दूसरी बात है। उससे यहाँ कोई मतलब नहीं है।

●

१७. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक ११ जुलाई, १९७०

•

कुण्डलिनी साधना और तन्त्र के गुह्य (Esoteric) आयामों में

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि पांचवें शरीर में पहुँचने पर साधक के लिए स्त्री और पुरुष का भेद समाप्त हो जाता है। यह उसके प्रथम चार शरीरों के (+ve) धनात्मक और (— ve) ऋणात्मक विद्युत् के किस समायोजन से घटित होता है ? कृपया इस पर सविस्तार प्रकाश डालें।

१. स्वयं के भीतर के भाव-शरीर के पुरुष अथवा स्त्री से मिलन

आचार्यश्री : स्त्री और पुरुष शरीरों के सम्बन्ध में पहला शरीर स्त्री का स्त्रैण है, लेकिन दूसरा उसका शरीर भी पुरुष का ही है और ठीक इससे उल्टा पुरुष के साथ है। तीसरा शरीर फिर स्त्री का है, चौथा शरीर फिर पुरुष का है। मैंने पीछे कहा कि स्त्री का शरीर भी आधा शरीर है। और पुरुष का शरीर भी आधा शरीर है। इन दोनों को मिलाकर ही पूरा शरीर बनता है। यह मिलन दो दिशाओं में सम्भव है। पुरुष का शरीर पहला शरीर अपने से बाहर स्त्री के पहले शरीर से मिलेगा तो एक यूनिट, एक इकाई पैदा होती है। इस इकाई से प्रकृति की सन्तति का, प्रकृति के जन्म का काम चलता है। **यदि अन्तर्मुखी हो सके पुरुष या स्त्री तो उनके भीतर स्त्री से या पुरुष से मिलन होता है और एक दूसरी यात्रा शुरू होती है जो परमात्मा की दिशा में है।** बाहर के शरीर मिलने से जो यात्रा होती है, वह प्रकृति की दिशा में है।

पुरुष का पहला शरीर जब अपने ही भीतर से इथरिक बॉडी के स्त्री-शरीर से मिलता है तो एक यूनिट बनता है। स्त्री का पहला शरीर जब अपने ही इथरिक शरीर पुरुष-तत्त्व से मिलता है तो एक यूनिट बनता है। यह यूनिट बहुत अद्भुत है, यह इकाई बहुत अद्भुत है; क्योंकि अपने से बाहर के स्त्री या पुरुष से मिलना क्षण भर के लिए ही हो सकता है। सुख क्षण भर का होगा तो और छूटने का दुख बहुत लम्बा होगा, इसलिए उस दुख में से फिर मिलन की आकांक्षा पैदा होगी, लेकिन मिलना फिर क्षण भर का होता है और फिर छूटना, फिर वह लम्बे दुख का कारण बन जाता है। तो बाहर के शरीर से जो मिलन है वह क्षण भर को ही घटित हो पाता है। लेकिन भीतर के शरीर से जो मिलन है, वह चिरस्थायी हो जाता है। वह एक बार मिल गया तो दूसरी बार टूटता नहीं। इसलिए भीतर के शरीर पर जब तक मिलन नहीं हुआ है तभी तक दुख है। जैसे ही मिलन हुआ तो सुख की एक अन्तरधारा बहनी शुरू हो जाती है। वह सुख की अन्तरधारा वैसी ही है जैसे क्षण भर के लिए बाहर के शरीर से मिलने पर सम्भोग में घटित होती है। लेकिन वह इतनी क्षणिक है कि आ भी नहीं पाती कि चली जाती है। बहुत बार तो उस सुख का भी कोई अनुभव नहीं हो पाता। क्योंकि वह इतनी त्वरा, इतनी तेजी में घटना घटती है कि उसका कोई अनुभव भी नहीं हो पाता।

२. ध्यान अन्तर्मिलन व आत्म-रति की प्रक्रिया है

योग की दृष्टि से अगर अन्तर्मिलन सम्भव हो जाय तो बाहर सम्भोग की वृत्ति तत्काल विलीन हो जाती है। क्योंकि जिस आकांक्षा के लिए वह की जा रही थी वह आकांक्षा तृप्त हो गयी है। मैथुन के जो चित्र मन्दिरों की दीवालों पर खुदे हैं वह अन्तर्मैथुन की ही दिशा में इंगित करने वाले चित्र हैं। अन्तर्मैथुन ध्यान की प्रक्रिया है। इसलिए बहिर्मैथुन और अन्तर्मैथुन में एक विरोध ख्याल में आ गया और वह विरोध इसीलिए ख्याल में आ गया कि जो भी अन्तर्मैथुन में प्रवेश करेगा उसके बाहर के जगत् से, योनि का सारा सम्बन्ध विच्छिन्न हो जायगा।

यह भी समझ लेने जैसा है कि जब स्त्री अपने पहले शरीर से दूसरे शरीर से मिलेगी तो जो यूनिट बनेगी दोनों के मिलने पर वह फिर स्त्रैण होगा, पूरा यूनिट। और पुरुष का जब पहला शरीर दूसरे शरीर से मिलेगा तो जो इकाई बनेगी वह फिर पुरुष की होगी पूरा शरीर। क्योंकि जो प्रथम है वह द्वितीय को आत्मसात् कर लेगा। दूसरा उसमें समाविष्ट हो जाता है। लेकिन, अब यह स्त्री और पुरुष बहुत दूसरे अर्थों में है। उस अर्थ में नहीं जैसा कि हम बाहर स्त्री व पुरुष को देखते हैं। क्योंकि बाहर जो पुरुष है वह अधूरा है। इसलिए सदा अतृप्त है। बाहर जो स्त्री है वह अधूरी है, इसलिए सदा अतृप्त है। अगर हम जैविक-विकास को खोजने जायें तो यह पता चलेगा कि जो प्राथमिक प्राणी है जगत् में

उनमें स्त्री-शरीर के पुरुष अलग शरीर, अलग-अलग नहीं हैं। जैसे अमीबा है। वह प्राथमिक जीव है। अमीबा के शरीर में दोनों एक साथ मौजूद है—स्त्री और पुरुष। उसका आधा हिस्सा पुरुष का है और आधा स्त्री का है। इसलिए अमीबा से ज्यादा तृप्त प्राणी खोजना बहुत कठिन है। उसमें कोई अतृप्ति नहीं है। उसमें डिसकन्टेंक्ट (असन्तोष) जैसी चीज पैदा नहीं होती। इसलिए वह विकास भी नहीं कर पाया। वह अमीबा अमीबा ही बना हुआ है। तो बिलकुल जो प्राथमिक कड़ियाँ हैं बायोलाजिकल (जैविक) विकास की, वहाँ भी शरीर दो नहीं है। वहाँ एक ही शरीर है और दोनों हिस्से एक ही शरीर में समाविष्ट हैं।

३. भीतर के भाव (इथरिक) शरीर से सम्भोग घटित होने पर पूर्ण स्त्रीत्व और पूर्ण पुरुषत्व की उपलब्धि

स्त्री का पहला शरीर जब दूसरे से मिलेगा तो फिर एक नये अर्थों में स्त्री, जिसको हम पूर्ण स्त्री कहें, पैदा होगी। और पूर्ण स्त्री के व्यक्तित्व का हमें कोई अन्दाज नहीं। क्योंकि हम जिस स्त्री को भी जानते हैं वह स्त्री अपूर्ण है। पूर्ण पुरुष का हमें कोई अन्दाज नहीं है। क्योंकि जितने पुरुष हम जानते हैं सब अपूर्ण हैं। वे सब आधे-आधे हैं। जैसे ही यह इकाई पूरी होगी, एक परम तृप्ति इसमें प्रवेश कर जायेगी जिसमें असन्तोष जैसी चीज क्षीण होगी, विदा हो जायेगी। यह जो पूर्ण पुरुष होगा या पूर्ण स्त्री होगी पहले और दूसरे शरीर के मिलने से, अब इसके लिए बाहर से तो कोई भी सम्बन्ध जोड़ना मुश्किल हो जायगा। क्योंकि बाहर अधूरा पुरुष और अधूरी स्त्रियाँ होंगी जिनसे इनका कोई तालमेल नहीं बैठता। लेकिन एक पूर्ण पुरुष भीतर जिसके दोनों शरीर मिल गये हों और एक स्त्री जिसके दोनों शरीर मिल गये हैं, इनके बीच सम्बन्ध हो सकता है।

४. अन्तर्मैथुन से उपलब्ध पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री के बीच बहिर्संभोग का तान्त्रिक प्रयोग

तन्त्र ने इसी सम्बन्ध के लिए बड़े प्रयोग किये। इसलिए तन्त्र बहुत परेशानी में पड़ा और बहुत बदनाम भी हुआ। क्योंकि हम नहीं समझ सके कि वह क्या कर रहे हैं। हमारी समझ के बाहर था। हमारी समझ के बाहर होना बिलकुल स्वाभाविक था। क्योंकि अगर एक स्त्री और एक पुरुष तन्त्र की दशा में जबकि उनके भीतर के दोनों शरीर एक हो गये हैं, सम्भोग कर रहे हैं तो हमारे लिए वह सम्भोग ही है। और हम सोच भी नहीं सकते कि यह क्या हो रहा है। लेकिन यह बहुत और घटना है। और यह घटना बड़ी सहयोगी थी साधक के लिए। इसके बड़े कीमती अर्थ थे। क्योंकि एक पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री का बाहर जो

मिलन था वह एक नये मिलन का सूत्रपात था, एक नये मिलन की यात्रा थी। क्योंकि अभी एक तरह से यात्रा खतम हो गयी। अधूरे पुरुष, अधूरी स्त्री पूरे हो गये। एक जगह पर आकर चीज खड़ी हो गयी और पठार आ जायगा। क्योंकि अब हमें और कोई आकांक्षा का ख्याल नहीं है। अगर एक पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री इस अर्थों में मिलते हैं तो उनके भीतर पहली दफा अधूरे से बाहर एक पूर्ण स्त्री और पूर्ण पुरुष के मिलन का क्या रस और आनन्द हो सकता है वह उनके ख्याल में आता है। और उनको दूसरी बात भी ख्याल में आती कि अगर ऐसा ही पूर्ण मिलन भीतर घटित हो सके तब तो अपार आनन्द की वर्षा हो जायेगी। क्योंकि आधे पुरुष ने आधी स्त्री को भोगा था। फिर उसने अपने भीतर की आधी स्त्री से अपने को जोड़ा। तब उसने पाया कि अपार आनन्द मिला। फिर पूरे पुरुष ने पूरी स्त्री को भोगा और तब स्वभावतः बिलकुल तर्कसंगत उसको ख्याल आयेगा कि अगर मेरे भीतर भी एक पूर्ण स्त्री मुझे मिल सके तो अपने भीतर वह पूर्ण स्त्री की खोज में तीसरे और चौथे शरीर का मिलन घटित होता है।

५. उनके बीच के सम्भोग में ऊर्जा का स्खलन नहीं

तीसरा शरीर पुरुष का फिर पुरुष है और चौथा स्त्री है। स्त्री का तीसरा शरीर स्त्री का है और चौथा शरीर पुरुष का है। तन्त्र में इसकी यह व्यवस्था भी की गयी कि कहीं आदमी रुक न जाय एक शरीर की पूर्णता पर, क्योंकि बहुत तरह की पूर्णताएँ हैं। अपूर्णता कभी नहीं रोकती। लेकिन बहुत तरह की पूर्णताएँ हैं जो किसी आगे की पूर्णता की दृष्टि से अपूर्ण होंगी, लेकिन पीछे की अपूर्णता की दृष्टि से बड़ी पूरी मालूम पड़ती हैं। पीछे की अपूर्णता मिट गयी है। आगे की और बड़ी पूर्णता का हमें कोई पता नहीं है। रुकाव हो सकता है। इसलिए तन्त्र में बहुत तरह की प्रक्रियाएँ विकसित की गयी हैं, जो बड़ी हैरानी की हैं। और जिनको हम समझ भी नही सकते हैं एकदम से। जैसे अगर पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री का सम्भोग होगा तो उसमें किसी की ऊर्जा का पात नही होगा। वह हो नहीं सकता। क्योंकि वह दोनों अपने भीतर कम्पलीट सर्किल (पूर्ण वृत्त) हैं। उनसे कोई ऊर्जा का स्खलन नहीं होने वाला है। लेकिन बिना ऊर्जा-स्खलन के पहली दफा सुख अनुभव होगा।

और मजे की बात यह है कि जब भी ऊर्जा-स्खलन से सुख का अनुभव होगा तो पीछे दुख का अनुभव अनिवार्य है। क्योंकि ऊर्जा-स्खलन से जो विषाद, दुख, पीड़ा और सन्ताप पैदा होगा, वह होगा। सुख तो क्षण भर में चला जायगा, लेकिन जो ऊर्जा खोयी है उसको पूरा करने में २४ घण्टे, ४८ घण्टे और भी ज्यादा वक्त लग सकता है। उतनी देर चित्त उस अभाव के प्रति दुखी रहेगा। अगर बिना ऊर्जा-स्खलन के सम्भोग हो सके, इसके लिए तंत्र ने आश्चर्यजनक दिशा

में काम किया है। और बड़ी हिम्मतवर दिशा में काम किया है। उस पर तो पीछे कभी अलग से बात करनी पड़े, क्योंकि उनकी सारी प्रक्रिया का जाल है पूरा का पूरा। और वह जाल चूँकि टूट गया और पूरा-का-पूरा विज्ञान धीरे-धीरे इजोटेरिक (गुह्य) हो गया। फिर उसको सामने से बात करना मुश्किल हो गया, क्योंकि हमारी नैतिक मान्यताओं ने हमे बड़ी कठिनाई में डाल दिया और हमारे नासमझ-समझदारों ने जिनको कि कुछ भी पता नहीं होता है, लेकिन जो कुछ भी कहने में समर्थ होते हैं उन्होंने बहुत-सी कीमती बातों को जिन्दा रहना मुश्किल कर दिया। उनको बिदा कर देना पड़ा या वह छिप गयीं या अण्डरग्राउण्ड (भूगर्भा) हो गयीं और भीतर छिप कर चलने लगीं। लेकिन उनकी धाराएँ जीवन में स्पष्ट नहीं रह गयीं।

६. उस सम्भोग से दोनों की शक्ति का बढ़ना

यह पूर्ण स्त्री और पुरुष के सम्भोग की सम्भावना और यह सम्भोग बहुत और तरह का है इसमें ऊर्जा का स्खलन नहीं है। बिलकुल एक नयी घटना घटती है जिसको कि इशारे में कहा जा सकता है। अधूरी स्त्री और अधूरे पुरुष का जब भी मिलन होगा तो दोनों की शक्ति क्षीण होगी। मिलने के पहले उनकी जितनी शक्ति थी, मिलने के बाद उन दोनो की शक्ति कम होगी। और पूरे पुरुष और पूरी स्त्री के मिलने में इससे उल्टी घटना घटेगी। **मिलने के (सम्भोग के) पहले जितनी उनकी शक्ति थी मिलने के बाद दोनों की शक्ति ज्यादा होगी।** दोनों के पास ज्यादा शक्ति होगी। यह शक्ति उन्हीं के भीतर पड़ी है जो कि दूसरे के निकट आने से सजग और जागरूक और सक्रिय हो जायेगी। पहले में भी उनकी शक्ति दूसरे के निकट आने से स्खलित होती थी। **दूसरी घटना में उनकी ही शक्ति दूसरे के निकट आने से सक्रिय और सजग हो जायेगी।** और जो उनके भीतर छिपा है वह पूरा-का-पूरा उनको प्रकट होगा। इस घटना से इंगित मिलेगा कि भीतर भी क्या पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री का मिलन हो सकता है। क्योंकि पहला मिलन भीतर भी अधूरे पुरुष और अधूरी स्त्री से मिलन है। इसलिए दूसरे यूनिट पर काम शुरू होता है कि तीसरे और चौथे शरीर को मिलाना है।

७. तीसरे और चौथे शरीर के बीच पुनः सम्भोग (आत्म-रति) से द्वन्द्व से मुक्ति

तीसरा और चौथा शरीर जब मिलेगा तो तीसरा शरीर पुरुष का फिर पुरुष है और चौथा शरीर फिर स्त्री है। स्त्री का तीसरा शरीर स्त्री है चौथा शरीर पुरुष है। इन दोनों के मिलन पर पुरुष के भीतर पुरुष ही बचेगा। फिर तीसरा शरीर प्रमुख हो जायगा। और स्त्री के भीतर फिर स्त्री बचेगी। और ये दो पूर्ण स्त्रियाँ फिर लीन हो जायेंगी एक में। क्योंकि इनके भी अब कोई सीमा-रेखा न

रह जायेगी कि जहाँ से ये अलग हो सकें। इनके अलग होने के लिए बीच-बीच में पुरुष के शरीर का होना जरूरी था। या पुरुष के बीच-बीच में स्त्री का शरीर होना जरूरी था, जिनसे यह फासला होता था। पहले और दूसरे शरीर की मिली हुई स्त्री और तीसरे चौथे शरीर की मिली हुई स्त्री दोनों की मिलने की घटना के साथ ही वे एक हो जायेंगी। और तब दोहरे चरण में स्त्री के पास और भी पूर्ण स्त्रैणता पैदा होगी। इससे बड़ी स्त्रैणता नहीं सम्भव है। क्योंकि फिर इसके बाद कोई स्त्रैणता की सीमा नहीं। बस वह पूरी स्त्रैण स्थिति होगी। वह पूर्ण स्त्री होगी जिसको अब पूर्ण से भी मिलने की कोई आकांक्षा नहीं रह जायेगी। पहली पूर्णता में भी दूसरे पूर्ण से मिलने का रस था और उसके मिलने से शक्ति जगती थी। अब वह भी बात समाप्त हो जायेगी। अब इसको परमात्मा भी मिलता हो तो उस अर्थ में मिलने का कोई अर्थ नहीं रह जायगा। पुरुष के भीतर भी दो पुरुष मिलकर पूर्ण हो जायेंगे। चार शरीरों को मिलकर पुरुष के पास पुरुष बचेगा, स्त्री के पास स्त्री बचेगी और इसके बाद कोई पुरुष स्त्री नहीं है पाँचवें शरीर से।

इसलिए स्त्री और पुरुष के इस चौथे शरीर के बाद जो घटना घटेगी, वह दोनों की फिर भिन्न होगी। भिन्न होने वाली है। घटना एक ही होगी लेकिन दोनों की समझ भिन्न होगी। पुरुष अब भी आक्रामक होगा, स्त्री अब भी समर्पक होगी। स्त्री सरेंडर (समर्पण) कर देगी। स्त्री अपने को चौथे शरीर को पूरा पा लेने के बाद सम्पूर्ण रूप से छोड़ सकेगी। अब उसकी छोड़ने में इंच भर की भी कमी नहीं रहेगी। और यह जो छोड़ना ('लेट गो') है, यह जो समर्पण है उसे आगे की यात्रा पर पहुँचा देगा पाँचवें शरीर की। जहाँ फिर स्त्री स्त्री नहीं रह जाती। क्योंकि स्त्री होने के लिए अपने को थोड़ा-सा बचाना जरूरी था। असल में हम जो हैं वह अपने को थोड़ा-सा बचा कर हैं। अगर हम अपने को पूरा छोड़ सकें तो हम तत्काल और हो जायेंगे जो हम कभी भी नहीं थे। हमारे होने में हमारा बचाव है पूरे वक्त। अगर एक स्त्री एक साधारण पुरुष के लिए भी पूरा छोड़ सके तो उसके भीतर एक क्रिस्ट्लाइजेशन (केन्द्रीकरण) घटित हो जायगा। वह चौथे शरीर को पार कर जायेगी। इसलिए कई बार स्त्रियों ने साधारण पुरुष के प्रेम में भी चौथा शरीर पार कर लिया।

८. सती अर्थात् वह स्त्री जो पति के सहयोग से पाँचवें शरीर में प्रविष्ट हो गयी

जिसको हम सती कहते हैं उसका कोई और दूसरा मतलब नहीं है इसोटेरिक (गुह्य-विद्या के) अर्थों में। सती का मतलब यह नहीं है कि जिनकी दृष्टि दूसरे पुरुष पर नहीं उठती। सती का मतलब यह है कि जिसके पास अब स्त्री ही नहीं

स्त्री को दूसरे पर दृष्टि उठाये। अगर साधारण पुरुष के प्रेम में भी कोई स्त्री इतनी समर्पित हो जाय तो उसको यह यात्रा करने की जरूरत नहीं है। उसके चार शरीर इकट्ठे होकर पाँचवें के द्वार पर वह खड़ी हो जायगी। इसी वजह से जिन्होंने यह अनुभव किया था उन्होंने कहा कि पति परमात्मा है। उनके पति को परमात्मा कहने का मतलब पुरुष को कोई परमात्मा बनाने का नहीं था। लेकिन उनके लिए पति के माध्यम से भी पाँचवें का दरवाजा खुल गया था। इसलिए उनके कहने में कोई भूल न थी। उनका कहना बिलकुल उचित था। क्योंकि जो साधक को बड़ी मेहनत से उपलब्ध होता है वह उनको प्रेम से ही उपलब्ध हो गया था। और एक व्यक्ति के प्रेम में ही वह उस जगह पहुँच गयी है।

९. सीता जैसी पूर्ण स्त्री की तेजस्विता

अब जैसे सीता है। सीता को हम उन स्त्रियों में गिनते हैं जिनको कि सती कहा जाता है। अब सीता का समर्पण बहुत अनूठा है। समर्पण की दृष्टि से वह पूर्ण है। वह टोटल सरेण्डर (समग्र समर्पण) है। रावण सीता को ले जाकर भी सीता का स्पर्श नहीं कर सका। असल में रावण अधूरा पुरुष है और सीता पूरी स्त्री है। पूरी स्त्री की तेजस्विता इतनी है कि अधूरा पुरुष उसे छू भी नहीं सकता। उसकी तरफ आँख उठाकर भी गौर से नहीं देख सकता। वह तो अधूरी स्त्री को ही देखा जा सकता है। और जब एक पुरुष एक स्त्री को छूता है तो सिर्फ पुरुष जिम्मेवार नहीं होता। स्त्री का अधूरा होना अनिवार्य रूप से भागीदार होता है। और जब कोई रास्ते पर किसी स्त्री को धक्का देता है तो धक्का देने वाला आधा ही जिम्मेदार होता है। धक्का बुलाने वाली स्त्री भी आधी जिम्मेदार होती है। वह धक्का बुलाती है, निमन्त्रण देती है। चूँकि वह पैसिव है इसलिए उसका हमला हमें दिखायी नहीं पड़ता। पुरुष चूँकि ऐक्टिव है इसलिए उसका हमला दिखायी पड़ता है कि इसने धक्का मारा। यह हमें दिखायी नहीं पड़ता है कि किसीने धक्का बुलाया।

रावण सीता को आँख उठाकर भी नहीं देख सका। और सीता के लिए रावण का कोई अर्थ नही था। लेकिन जीत जाने पर राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा लेनी चाही। सीता ने उसको भी इनकार नहीं किया। अगर वह इनकार भी कर देती तो उसकी सती की हैसियत खो जाती। सीता कह सकती थी कि आप भी अकेले थे और परीक्षा मेरी अकेली ही क्यों हो। हम दोनों ही अग्नि-परीक्षा से गुजर जायँ। क्योंकि अगर मैं अकेली थी किसी दूसरे पुरुष के पास तो आप भी अकेले थे। और मुझे पता नहीं कि कौन स्त्रियाँ आपके पास रही हों। तो हम दोनों ही अग्नि-परीक्षा से गुजरें। लेकिन सीता के मन में यह सवाल ही नहीं उठा। सीता अग्नि-परीक्षा से गुजर गयी। अगर उसने एक बार भी सवाल

उठाया होता तो सीता सती की हैसियत से खो जाती। तब समर्पण पूरा नहीं रहता। इंच भर का फासला रह जाता तब। और अगर सीता एक बार भी सवाल उठा लेती और फिर अग्नि से गुजरती तो जल जाती। फिर नहीं बच सकती थी अग्नि से। लेकिन समर्पण पूरा था। दूसरा कोई पुरुष नहीं था सीता के लिए। इसलिए यह हमें चमत्कार मालूम पड़ता है कि वह आग से गुजरी और जली नहीं। लेकिन कोई साधारण व्यक्ति भी, किसी अन्तर-समाहित स्थिति में आग पर से निकले तो नहीं जलेगा। हिप्नोसिस (सम्मोहन) की हालत में एक साधारण से आदमी को कह दिया जाय कि अब तुम आग पर नहीं जलोगे तो वह आग पर से निकल जायगा और नहीं जलेगा।

१०. पूर्ण संकल्प हो तो आग पर से बिना जले गुजर जाना सम्भव

साधारण-सा फकीर आग पर से गुजर सकता है एक विशेष भाव-दशा में, जब भीतर उसका विद्युत्-सर्किल पूरा होता है। सर्किल टूटता है सन्देह से। अगर उसे एक बार भी वह ख्याल आ जाय कि कहीं मैं जल न जाऊँ तो भीतर का वर्तुल टूट गया और अब वह जल जायगा। अगर भीतर का वर्तुल न टूटे और दो फकीर अगर कूद रहे हों कहीं आग में और आप भी पीछे खड़े हों और दो को कूदते हुए देख कर आपको लगे कि जब दो कूद रहे हैं और नहीं जलते तो मैं क्यों जलूँगा, और आप भी कूद जायँ तो आप भी नहीं जलेंगे। पूरी कतार, भीड़ गुजर जाय आग से, नहीं जलेगी। उसका कारण है, क्योंकि जिसको जरा भी शक होगा वह उतरेगा नहीं, वह बाहर खड़ा रह जायगा। वह कहेगा पता नहीं, मैं जल न जाऊँ। लेकिन जिसको पूरा ख्याल आ गया है, जो देख रहा है कि कोई नहीं जल रहा है तो मैं क्यों जलूँगा! वह गुजर जायगा, उसको कोई आग नहीं छुएगी।

अगर हमारे भीतर का वर्तुल पूरा है तो हमारे भीतर आग तक के प्रवेश की गुंजाइश नहीं है। तो सीता को आग न छुई हो, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। आग से गुजरने के बाद भी जब राम ने उसको राज्य से बाहर करवा दिया तब भी वह यह नहीं कह रही है कि अग्नि-परीक्षा में सही उतर गयी, फिर भी मुझे क्यों छोड़ा जा रहा है। नहीं, उसकी तरफ से समर्पण पूरा है, इसलिए छोड़ने की कोई बात ही नहीं उठती। इसलिए सवाल का कोई सवाल नहीं है।

११. प्रेम में समर्पण यदि पूर्ण हो तो स्त्री प्रथम चार शरीरों को शीघ्र पार कर जायेगी

पूरी स्त्री अगर एक व्यक्ति के प्रेम में भी पूरी हो जाय तो वह जो सीढ़ियाँ हैं साधना की उनमें चार की तो छलाँग लगा जायेगी। पुरुष के लिए यह सम्भावना बहुत कठिन है, क्योंकि समर्पक-चित्त नहीं है उसके पास। वह बड़े मजे की बात

है कि आक्रमण भी पूरा हो सकता है; लेकिन आक्रमण पूरा होने में सदा और बहुत सी चीजें जिम्मेदार होंगी, आप अकेले नहीं। लेकिन समर्पण के पूरे होने में आप अकेले जिम्मेदार होंगे और बहुत-सी चीजों का कोई सवाल नहीं है। अगर मुझे समर्पण करना है किसी के प्रति तो मैं उससे बिना पूछे पूरा कर सकता हूँ, लेकिन अगर आक्रमण करना है किसी के प्रति तब तो आक्रमण का अन्तिम जो परिणाम होगा उसमें मैं अकेला नहीं, वह दूसरा व्यक्ति भी जिम्मेवार होगा। इसलिए जहाँ शक्तिपात की चर्चा मैंने की तो वहाँ ऐसा प्रतीत हुआ होगा कि स्त्री में थोड़ी-सी कमी है, उसको थोड़ी-सी कठिनाई है।

मैंने कहा था, कम्पन्सेशन (अन्तर्संन्तुलन) के नियम हैं जीवन में। वह कमी उसके समर्पण की शक्ति से पूरी हो जाती है। पुरुष कभी भी किसी को कितना ही प्रेम करे, पूरा नहीं कर पाता। उसके न करने का कारण है। वह आक्रामक है, समर्पक नहीं है और आक्रमण का पूरा होना असम्भव मामला है। अगर कोई पूरा समर्पण कर दे तो फिर पूरा आक्रमण हो सकता है, अन्यथा वह नहीं हो सकता। तो स्त्री के चार शरीर पूरे हो जायें, एक हो जाय इकाई तो पाँचवें पर बड़ी सरलता से वह समर्पण कर पाती है और इस चौथी अवस्था में जब स्त्री इन दोहरी सीढ़ियों को पार करके पूरी होती है तब दुनिया की कोई शक्ति उसको रोक नहीं सकती और उसके लिए सिवाय परमात्मा के फिर कोई बचता नहीं। असल में चार शरीरों में रहते हुए जिसको उसने प्रेम किया था वह भी परमात्मा हो गया था और अब तो जो भी है वह परमात्मा है।

मीरा के जीवन में बहुत मीठी घटना है कि वह गयी है वृन्दावन और वहाँ उस बड़े मन्दिर में कृष्ण का जो पुजारी है वह स्त्रियों का दर्शन नहीं करता है, स्त्रियों को देखता नहीं है, इसलिए उस मन्दिर में स्त्रियों के लिए प्रवेश निषिद्ध है। लेकिन मीरा तो अपना मंजीरा बजाती हुई भीतर प्रवेश ही कर गयी। उसे लोगों ने रोका और कहा कि स्त्री को भीतर जाना मना है, क्योंकि वह जो पुरोहित है मन्दिर का, वह स्त्री नहीं देखता है। तो मीरा ने कहा, बड़ी अद्भुत घटना है। मैं तो सोचती थी कि एक ही पुरुष है जगत् में कृष्ण! दूसरा पुरुष कौन है उसे मैं जरूर देखना चाहती हूँ! वह मुझे भला देखने में डरता हो लेकिन मैं उसे देखना चाहती हूँ। दूसरा पुरुष कौन है? दूसरा पुरुष भी है! उस पुरोहित को खबर पहुँचायी गयी कि एक स्त्री दरवाजे पर प्रवेश कर गयी है और वह कहती है कि मैं उस दूसरे पुरुष को देखना चाहती हूँ क्योंकि मैं तो देखती हूँ कि एक ही पुरुष है कृष्ण। दूसरा पुरुष कहाँ है, उसके मैं दर्शन करना चाहती हूँ। वह जो मन्दिर का पुरोहित था, पुजारी था वह भागा हुआ आया और मीरा के पैरों में गिरा और उसने कहा कि जिसके लिए एक ही पुरुष बचा है, अब उसको स्त्री कहना बेमानी है, उसका कोई मतलब ही

नहीं रहा, अब बात ही खत्म हो गयी है । और मैं तेरे पैर छूने आया हूँ और भूल हो गयी मुझसे । मैंने साधारण स्त्रियों को देखकर अपने को पुरुष समझ रखा था, लेकिन तेरी जैसी स्त्री के लिए तो मेरे पुरुष होने का कोई अर्थ नहीं है ।

१२. चौथे शरीर की पूर्णता को उपलब्ध पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री—मात्र ऊर्जा—क्रमशः आक्रमण की और समर्पण की

पुरुष अगर चौथे शरीर पर पहुँचेगा तो वह पूर्ण पुरुष हो जायगा, दोहरी सीढ़ियाँ पार करके पूर्ण पुरुष हो जायगा । उस दिन के बाद उसके लिए कोई स्त्री नहीं है, उस दिन के बाद उसके लिए स्त्री का कोई अर्थ नहीं है । अब वह सिर्फ आक्रमण की ऊर्जा है, जैसे स्त्री चौथे शरीर को पार करके सिर्फ समर्पण की ऊर्जा है—सिर्फ ऊर्जा जो समर्पित हो सकती है और पुरुष सिर्फ ऊर्जा है जो आक्रामक हो सकती है । अब इनका स्त्री पुरुष नाम नहीं है, अब ये सिर्फ ऊर्जाएँ हैं । पुरुष का जो आक्रमण है वही योग की बहुत सी प्रक्रियाओं में विकसित हुआ । स्त्री का जो समर्पण है वही भक्ति की बहुत-सी प्रक्रियाओं में विकसित हुआ । समर्पण भक्ति बन जाती है, आक्रमण योग बन जाता है। लेकिन बात एक ही है, उन दोनों में कुछ भेद नहीं है अब । यह स्त्री और पुरुष के बाह्य शरीर की तरफ से भेद है । अब बूंद सागर में गिरती है कि सागर बूंद में गिरता है, इससे अन्तिम परिणाम में कोई भेद नहीं है । पुरुष की जो बूंद है वह सागर में गिरेगी, वह छलांग लगायेगा और सागर में गिर जायेगा । स्त्री की बूंद जो है वह खायी बन जायेगी और पूरे सागर को अपने में पुकार लेगी । वह समर्पित हो जायेगी और पूरा सागर उसमें गिरेगा । अब भी वह निगेटिव (ग्राहक, ऋणात्मक) होगी, निगेटिविटी (ग्राहकता, ऋणात्मक) होगी उसकी पूरी की पूरी । वह गर्भ रह जायगी और सारे सागर को अपने में ले लेगी । समस्त विश्व की ऊर्जा उसमें प्रवेश कर जायगी । पुरुष अब भी गर्भ नहीं बन सकता । पुरुष अब भी वीर्य ही होगा और एक छलांग लगायेगा और सागर में डूब जायगा ।

१३. पाँचवें शरीर से स्त्री-पुरुष का भेद समाप्त

बहुत गहरे में उनके व्यक्तित्व इस सीमा तक, आखिरी सीमा तक पीछा करेंगे, चौथे शरीर के आखिरी तक । पाँचवें शरीर की दुनिया अलग हो जायेगी तब आत्मा ही शेष रह जाती है और आत्मा का कोई लैंगिक भेद नहीं है इसलिए उसके बाद यात्रा में कोई फर्क नहीं पड़ता । चौथे तक फर्क पड़ेगा और फर्क ऐसा ही होगा कि बूंद सागर में गिरेगी कि सागर बूंद में गिरेगा । अन्तिम परिणाम एक ही हो जायगा । बूंद सागर में गिरे या सागर बूंद में गिरे, कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है । लेकिन, चौथे शरीर की आखिरी सीमा तक फर्क रहेगा । अगर स्त्री ने छलांग लगानी चाही तो वह मुश्किल में पड़ जायेगी और अगर पुरुष ने

समर्पण करना चाहा तो वह मुश्किल में पड़ जायगा। उस भूल से सावधान रहना जरूरी है।

प्रश्नकर्ता : आपने एक प्रवचन में कहा है कि लम्बे सम्भोग में स्त्री और पुरुष के बीच एक प्रकाश-वलय निर्मित होता है। यह क्या है, कैसे निर्मित होता है और इसका क्या उपयोग है? प्रथम चार शरीरों की विभिन्नता के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें। अकेले ध्यान में उपर्युक्त घटना का क्या रूप होता है?

१४. लम्बे सम्भोग में स्त्री और पुरुष के बीच विद्युत-वलय तथा प्रकाश

आचार्यश्री : हाँ, जैसा मैंने कहा कि स्त्री आधी है, पुरुष आधा है। दोनों ऊर्जाएँ हैं, दोनों विद्युत् हैं। स्त्री निगेटिव पोल (ऋणात्मक ध्रुव) है, पुरुष पोजिटिव पोल (धनात्मक ध्रुव) है और जहाँ कहीं भी विद्युत् की ऋणात्मक और धनात्मक ऊर्जाएँ एक वर्तुल बनाती हैं वहाँ प्रकाश-पुंज पैदा हो जाता है। प्रकाश-पुंज ऐसा हो सकता है जो दिखायी न पड़े, ऐसा हो सकता है जो कभी दिखायी पड़ जाय, ऐसा हो सकता है जो किसी को दिखायी पड़े, किसी को दिखायी न पड़े। लेकिन वर्तुल निर्मित होता है। पर पुरुष और स्त्री का मिलन इतना क्षणिक है कि वर्तुल निर्मित हो ही नहीं पाता और टूट जाता है। इसलिए सम्भोग को लम्बाने की क्रियाएँ हैं, पद्धतियाँ हैं। **अगर आधा घण्टे के पार सम्भोग चला जाय तो वह विद्युत् का वर्तुल, प्रकाश-पुंज स्त्री और पुरुष को घेरे हुए दिखायी पड़ सकता है।** उसके चित्र भी लिये गये हैं और कुछ आदिवासी कौमें अब भी इतने लम्बे सम्भोग से गुजर सकती हैं और इसलिए उनके वर्तुल बन जाते हैं।

१५. तनावों के बढ़ने पर सम्भोग की अवधि का घटना

साधारणतः सभ्य समाज में वर्तुल खोजना बहुत मुश्किल है। क्योंकि **जितना तनावग्रस्त चित्त होगा, सम्भोग उतना ही क्षणिक होगा।** असल में जितना टेंस माइंड (तनावयुक्त मन) होगा, उतना जल्दी स्खलन होगा उसका। **जितना तनाव से भरा चित्त है उतना स्खलन त्वरित होगा,** क्योंकि तनाव से भरा चित्त असल में सम्भोग नहीं खोज रहा है, रिलीज (राहत) खोज रहा है। पश्चिम में सेक्स का जो उपयोग है वह छींक से ज्यादा नहीं रह गया है। एक तनाव है जो फिंक जाता है, एक बोझ है सिर पर जो निकल जाता है। ऊर्जा कम हो जाती है तो आप शिथिल हो जाते हैं। रिलेक्स (विश्रामपूर्ण) होना एक बात है और शिथिल होना दूसरी बात है। रिलेक्जेशन **(विश्राम) का मतलब है कि ऊर्जा भीतर है और आप विश्राम में हैं और शिथिल होने का मतलब है ऊर्जा फिंक गयी और अब आप निढाल पड़े रह गये हैं।** ऊर्जा नहीं है तो अब शिथिल हो गये

हैं इसलिए सोच रहे हैं कि विश्राम हो रहा है। तो पश्चिम में जितना तनाव बढ़ा है उतना ही सेक्स एक रिलीज (राहत), एक तनाव से छुटकारा, एक भीतरी शक्ति के दबाव से मुक्ति की स्थिति पर पहुँच गया है। इसलिए पश्चिम में ऐसे विचारक हैं जो सेक्स को छींक से ज्यादा मूल्य देने को तैयार नहीं हैं। नाक में खुजलाहट हुई है और छींक दी है तो मन हल्का हो गया है। सेक्स को इससे ज्यादा मूल्य देने को पश्चिम में लोग राजी नहीं हैं। और उनका कहना ठीक है, क्योंकि वह जो कर रहे हैं वह इतना ही है, इससे ज्यादा मूल्य का है भी नहीं।

पूर्व में भी लोग उनसे धीरे-धीरे राजी होते चले जा रहे हैं, क्योंकि पूर्व भी तनावग्रस्त होता चला जा रहा है। कहीं किसी दूर, किसी पहाड़-पर्वत की कन्दरा में कोई व्यक्ति मिल सकता है जो तनावग्रस्त न हो, जिसको उस सभ्यता ने अभी न छुआ हो और जो वहाँ जी रहा हो जहाँ वृक्ष और पौधे और पत्तियों और पहाड़ों की दुनिया है तो वहाँ अभी भी सम्भोग में वह वर्तुल बनता है और या फिर तन्त्र की प्रक्रियाएँ हैं जिनसे कोई भी वर्तुल बना सकता है।

१६. लम्बे सम्भोग से दीर्घकालीन तृप्ति का आना

उस वर्तुल के अनुभव बड़े अद्भुत हैं, क्योंकि जब वह वर्तुल बनता है तभी तुम्हें ठीक अर्थों में पता चलता है कि तुम एक हुए। स्त्री और पुरुष एक हुए, इसका तुम्हें विद्युत्-वर्तुल बनने के पहले अनुभव नहीं होता है। उसके बनते ही मैथुन में रत दो व्यक्ति दो नहीं रह जाते हैं। उस वर्तुल के बनते ही वे एक ही ऊर्जा के, एक ही शक्ति के प्रवाह बन जाते हैं। कोई चीज जाती और आती और घूमती हुई मालूम पड़ने लगती है और दो व्यक्ति मिट जाते हैं। यह वर्तुल जिस मात्रा में बनेगा, उसी मात्रा में सम्भोग की आकांक्षा कम और दूरी पर हो जायेगी। यह हो सकता है कि एक दफा वर्तुल बन जाय तो वर्ष भर के लिए भी फिर कोई इच्छा न रह जाय, कोई कामना न रह जाय, क्योंकि एक तृप्ति की घटना घट जाती है।

इसे ऐसे भी समझ सकते हैं कि एक आदमी खाना खाये और वॉमिट (उल्टी) कर दे तो कोई तृप्ति तो नहीं होगी। आमतौर से हम सोचते हैं कि खाना खाने से तृप्ति होती है। खाना खाने से कोई तृप्ति नहीं होती, तृप्ति तो पचने से होती है। सम्भोग के दो रूप हैं। एक सिर्फ खाना खाने का और एक सिर्फ पचने का। तो जिसे हम आमतौर से सम्भोग कह रहे हैं, वह सिर्फ खाना खाने और उल्टी कर देने जैसा है। उसमें कहीं कुछ पच नहीं पाता। अगर पच जाय तो उसकी तृप्ति लम्बी और गहरी है और जो पचना है वह इस विद्युत् के वर्तुल बनने पर ही होता है। यह सिर्फ सूचक है, उसका कि दोनों की चित्त-वृत्तियां एक-दूसरे में समाहित और लीन हो गयी हैं। दोनों अब दो न रहे, एक हो गये [illegible] अब दो शरीर

ही रहे, लेकिन भीतर बहती हुई ऊर्जा एक ही हो गयी और छलांग लगा कर एक-दूसरे में प्रवाह करने लगी।

१७. गृहस्थ के लिए गहरी काम-तृप्ति से काम-मुक्ति और काम-मुक्ति से अन्तर्यात्रा सहज

यह जो स्थिति है यह स्थिति बड़ी गहरी तृप्ति देती है! यह इस अर्थ में मैंने कहा। इसका योग के लिए तो बहुत उपयोग है, साधक के लिए इसका बहुत उपयोग है, क्योंकि साधक को अगर ऐसा मैथुन उपलब्ध हो सके तो मैथुन की जरूरत बहुत कम हो जाती है और जितने दिन मैथुन की जरूरत नहीं होती, उतने दिन तक उसकी अन्तर्यात्रा आसान हो जाती है। और एक दफा **अन्तर्यात्रा शुरू** हो जाय और **भीतर की स्त्री से सम्भोग** होने लगे तब तो बाहर की स्त्री बेकार हो जायेगी, बाहर का पुरुष बेकार हो जायगा। गृहस्थ के लिए **ब्रह्मचर्य का जो अर्थ है वह यही हो सकता है कि उसका सम्भोग इतना तृप्तिदायी हो कि बरसों के लिए बीच में ब्रह्मचर्य का क्षण छूट जाय।** और एक दफा यह क्षण छूट जाय और भीतर की यात्रा शुरू हो जाय तो फिर बाहर की आवश्यकता ही विलीन हो जाती है। गृहस्थ के लिए कह रहा हूँ।

१८. संन्यासी के लिए मार्ग—सीधे ध्यान में अन्तर्मैथुन की उपलब्धि

संन्यस्त के लिए, जिसने गृहस्थी का स्वीकार नहीं किया उसके लिए **ब्रह्मचर्य का अर्थ अन्तर्रमण है, उसके लिए अन्तर्मैथुन की आवश्यकता है।** उसे सीधे ही अन्तर्मैथुन के प्रयोग खोजने पड़ेंगे। अन्यथा वह बाहर की स्त्री से सिर्फ नाममात्र के लिए बचा हुआ दिखायी पड़ेगा। उसका चित्त तो दौड़ता ही रहेगा, भागता ही रहेगा। जितनी ऊर्जा स्त्री से मिलने में व्यय नहीं होती उससे ज्यादा ऊर्जा स्त्री से मिलने से रुकने की चेष्टा में व्यय हो जाती है। तो संन्यासी के लिए थोड़ा-सा अलग मार्ग है और वह थोड़े से मार्ग में जो फर्क है वह इतना ही है कि गृहस्थ के लिए बाहर की स्त्री से मिलना प्राथमिक होगा। द्वितीय चरण पर अन्तर की स्त्री से मिलना होगा। **संन्यस्त के लिए अन्तर की स्त्री से सीधा मिलना होगा।** पहला चरण उसके लिए नहीं है।

१९. अन्तर्मैथुन की सम्भावना होने पर ही संन्यास-दीक्षा सम्यक्

इसलिए हर किसी को संन्यासी बना देना नासमझी की हद है। असल में संन्यास देने का मतलब यह है कि हम उसके अन्दर में झांक सकें और समझ सकें कि उसका पहला पुरुष-शरीर उसकी अपनी ही भीतर की स्त्री से मिलने की क्षमता और पात्रता में है या नहीं। अगर है तो ही ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी जा सकती है, अन्यथा पागलपन पैदा करेंगे और कुछ फायदा नहीं होगा। लेकिन लोग हैं कि

दीक्षाएँ दिये चले जा रहे हैं। कोई हजार संन्यासियों का गुरु है। कोई दो हजार संन्यासियों का गुरु है। उन्हें कुछ पता नहीं कि वे क्या कर रहे हैं। वे जिस आदमी को दीक्षा दे रहे हैं वह अन्तर्मैथुन के योग्य है ? यह तो दूर की बात है। यह भी पता नहीं कि अन्तर्मैथुन भी कोई मैथुन है।

इसलिए मुझे जब भी संन्यासी मिलता है तो उसकी गहरी तकलीफ सेक्स की होती है। गृहस्थ तो मुझे मिल जाते हैं जिनकी और तकलीफें भी हैं। लेकिन ऐसा संन्यासी मुझे नहीं मिलता जिसकी सेक्स के अतिरिक्त और कोई तकलीफ हो। उसकी तकलीफ सेक्स ही है। गृहस्थ की और हजार तकलीफें हैं। उसमें सेक्स एक तकलीफ है। लेकिन संन्यासी की एक ही तकलीफ है। इसलिए सारा-का-सारा चित्त उसका इसी एक बिन्दु पर ही अटका रह जाता है। तो बाहर की स्त्री से बचने के तो उपाय बता रहे हैं उसके गुरु, लेकिन भीतर की स्त्री से मिलने का कोई उपाय नहीं है उनके ख्याल में। इसलिए बाहर की स्त्री से बचा नहीं जा सकता। सिर्फ दिखाया जा सकता है कि बच रहे हैं। बचना बहुत मुश्किल है।

वह जो वैद्युतिक ऊर्जा है, उसके लिए जगह चाहिए। अगर वह भीतर जाय तो बाहर जाने से रुकेगी। अगर भीतर नहीं जा रही है तो बाहर जायेगी। कोई फिक्र नहीं, स्त्री कल्पना की होगी। उससे भी काम चलेगा। वह कल्पना की स्त्री के साथ भी बाहर बह जायेगी, वह भीतर नहीं जा सकती। ठीक स्त्री के लिए भी यही होगा। लेकिन स्त्री और पुरुष के मामले में यहाँ भी थोड़ा-सा भेद है जो ख्याल में ले लेना चाहिए।

२०. कुँवारी स्त्री या संन्यासिनी के लिए—अन्तर्मैथुन सरल

इसलिए अक्सर यह होगा कि साधु के लिए जितना सेक्स प्राबलम (समस्या) बनेगा उतना साध्वी के लिए नहीं बनता। इधर मैं बहुत-सी साध्वियों से परिचित हूँ। साध्वी के लिए सेक्स उतना प्रॉबलम (समस्या) नहीं बनता। उसका कारण है कि पैसिव (निष्क्रिय) है उसका सेक्स। अगर एक दफा उठाया जाय तो प्रॉबलम (समस्या) बनता है। अगर बिलकुल ही न उठाया गया हो तो उसे पता ही नहीं चलता कि कोई समस्या (प्राबलम) है। स्त्री को इनीसिएशन (दीक्षा, पहल, प्रवेश) चाहिए सेक्स में भी। कोई पुरुष एक दफा स्त्री को ले जाय सेक्स में, इसके बाद उसमें तीव्र ऊर्जा उठनी शुरू होती है। लेकिन अगर न ले जायी जाय तो वह जीवन भर कुँवारी रह सकती है। उसके कुँवारी रहने की बहुत सुविधा है। क्योंकि पैसिव है। वह खुद तो आक्रामक नहीं है उसका चित्त। वह प्रतीक्षा करती रहेगी, प्रतीक्षा करती रहेगी। इसलिए मेरा मानना है कि विवाहित स्त्री को दीक्षा देना खतरनाक है, जब तक कि उसको अन्तरपुरुष से

मिलना न सिखाया जाय। कुँवारी लड़की दीक्षा ले सकती है। कुँवारे लड़के से वह ज्यादा ठीक हालत में है। उसको जब तक एक दफा दीक्षा नहीं मिलेगी काम की, यौन की तब तक वह प्रतीक्षा कर सकती है। आक्रामक नहीं है इसलिए। और अगर आक्रमण न हो बाहर से तो अपने आप धीरे-धीरे उसके भीतर का पुरुष उसकी बाहर की स्त्री से मिलना शुरू कर देता है। क्योंकि उसका नम्बर दो का जो शरीर है वह पुरुष का है, वह आक्रामक है।

२१. यदि कुँवारी लड़की देर तक मैथुन में प्रविष्ट न हो तो अन्तर्मैथुन घटित

तो अन्तर्मैथुन स्त्री के लिए पुरुष की बजाय बहुत सरल है। उसका मतलब समझे न तुम ! उसका जो दूसरा पुरुष का शरीर है वह आक्रामक है। इसलिए अगर बाहर से स्त्री को पुरुष न मिले, न मिले, न मिले। उसे पता ही न हो बाहर के पुरुष के द्वारा यौन में जाने का, तो उसके भीतर का पुरुष उस पर हमला करना शुरू कर देगा। उसकी इथरिक बॉडी उस पर हमला करने लगेगी और उसका मुख भीतर की तरफ मुड़ जायगा और वह अन्तर्मैथुन में लीन हो जायेगी। पुरुष के लिए अन्तर्मैथुन जरा कठिन बात है, क्योंकि पुरुष का आक्रामक शरीर नम्बर एक का है, नम्बर दो का शरीर उसका स्त्री का है। नम्बर दो का शरीर उस पर आक्रमण कर के नहीं बुला सकता, जब वह जायगा तभी नम्बर दो का शरीर उसको स्वीकार करेगा।

ये सारे भेद हैं और ये भेद अगर ख्याल में हों तो इस सब के सम्बन्ध में सारी व्यवस्था दूसरी होनी चाहिए। यह जो सम्भोग में विद्युत्-वर्तुल पैदा हो सके तो गृहस्थ के लिए बड़ा सहयोगी है, और ऐसा ही वर्तुल जब तुम्हारा अन्तर्मैथुन होगा तब भी पैदा होगा। इसलिए साधारण व्यक्ति को सम्भोग में जो विद्युत् की ऊर्जा घेर लेगी वैसी ऊर्जा उस व्यक्ति को जो भीतर के शरीर से सम्बन्धित हुआ है चौबीस घण्टे घेरे रहेगी। इसलिए प्रत्येक भीतरी शरीर पर तुम्हारा वर्तुल बढ़ता चला जायगा।

२२. बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट और कृष्ण जैसे लोगों को गौर से देखने पर उनके स्थान पर—केवल ऊर्जा-पुंज दिखायी पड़ना

इसलिए बहुत बार ऐसा हो सकता है जैसे कि बुद्ध के मर जाने के बाद कोई पाँच सौ वर्षों तक बुद्ध की कोई प्रतिमा नहीं बनायी गयी और प्रतिमा की जगह बोधि-वृक्ष की पूजा चली। प्रतिमा नहीं थी, सिर्फ वृक्ष ही था। मन्दिर भी बनाते थे तो उसमें एक पत्थर का वृक्ष बनता था या पत्थर पर वृक्ष को खोद देते थे और नीचे वह जगह खाली रहती जहाँ बुद्ध के बैठने की जगह थी। अब जो लोग पुरातत्व

या इतिहास की खोज करते हैं वे बड़ी मुश्किल में हैं कि बुद्ध की प्रतिमा क्यों न बनायी। बुद्ध का वृक्ष क्यों बनाया ? फिर पाँच सौ साल के बाद क्यों प्रतिमा बनायी और पाँच सौ साल तक वृक्ष के नीचे जगह क्यों खाली छोड़ी ? अब यह बड़े राज की बात है और पुरातत्त्वविद् को और इतिहासज्ञ को कभी पता नहीं चल सकता, क्योंकि इतिहासज्ञ से और पुरातत्त्वविद् से इसका कोई लेना-देना नहीं है। असल में जिन लोगों ने बुद्ध को गौर से देखा था उनका कहना था कि जब गौर से देखो तो बुद्ध दिखायी नहीं पड़ते हैं, सिर्फ वृक्ष ही रह जाता है, सिर्फ विद्युत् की ऊर्जा रह जाती है। वहाँ आदमी गायब हो जाता है। जैसे मैं यहाँ बैठा हूँ और गौर से देखा जाऊँ जो सिर्फ कुर्सी दिखायी पड़ेगी और मैं विदा हो जाऊँगा। तो बुद्ध को जिन्होंने गौर से देखा वह कहते थे बुद्ध दिखायी नहीं पड़ते थे, वृक्ष ही दिखायी पड़ता था और जिन्होंने गौर से नहीं देखा था वे कहते थे बुद्ध दिखायी पड़ते थे, लेकिन ऑथेंटिक (प्रामाणिक) उनका ही कहना था जिन्होंने गौर से देखा था। पाँच सौ साल तक उनकी बात मानी गयी थी जिन्होंने कहा था कि नहीं, बुद्ध कभी नहीं दिखायी पड़े। जब गौर से देखा तो वह नहीं थे, जगह खाली थी। वृक्ष ही रह गया था पीछे। लेकिन यह तब तक चल सका जब तक कि गौर से देखने वाले लोग थे। और गैर-गौर से देखने वालों ने माना कि हमने तो गौर से देखा नहीं, हमको तो बुद्ध ही दिखायी पड़ते थे। लेकिन जब यह वर्ग खोता चला गया तब यह बात मुश्किल हो गयी कि वृक्ष अकेला क्यों हो, नीचे बुद्ध होना ही चाहिए। फिर पाँच सौ साल बाद उनकी प्रतिमा बनायी गयी, यह बहुत मजेदार बात है। जिन्होंने जीसस को भी गौर से देखा था, उनको जीसस नहीं दिखायी पड़े। जिन्होंने महावीर को गौर से देखा उनको महावीर दिखायी नहीं पड़े। जिन्होंने कृष्ण को गौर से देखा उनको कृष्ण दिखायी नही पड़े। अगर पूरी अटेंशन (होश) से इस तरह के लोग देखे जायें तो वहाँ सिर्फ विद्युत् की ऊर्जा ही दिखायी पड़ेगी, वहाँ कोई व्यक्ति दिखायी नहीं पड़ेगा।

तुम्हारे प्रत्येक दो शरीर के बाद यह ऊर्जा बड़ी होती जायेगी और चौथे शरीर के बाद यह ऊर्जा पूर्ण हो जायेगी। पाँचवें शरीर पर ऊर्जा ही रह जायेगी, छठवें शरीर पर यह ऊर्जा अलग दिखायी नहीं पड़ेगी। यह ऊर्जा चाँद-तारों से, आकाश से, सबसे जुड़ जायेगी। सातवें शरीर पर ऊर्जा भी दिखायी नहीं पड़ेगी। पहले मैटर (पदार्थ) खो जायगा, फिर इनर्जी (ऊर्जा) भी खो जायेगी। इस लिहाज से यह सोचने जैसी बात है।

प्रश्नकर्ता : निर्विचार की स्थायी उपलब्धि साधक को किस शरीर में होती है ? क्या चेतना और विषय के तादात्म्य के बिना भी विचार आ सकते हैं या विचार के लिए तादात्म्य आवश्यक है ?

२३. पूर्ण निर्विचार की उपलब्धि पाँचवें आत्म-शरीर में, लेकिन उसकी झलकें चौथे शरीर से

आचार्यश्री : निर्विचार की पूरी उपलब्धि पाँचवें शरीर में होती है, लेकिन अधूरी झलकें चौथे शरीर से शुरू हो जाती हैं। चौथे शरीर में विचार चलते हैं, लेकिन बीच में दो विचारों के जो खाली जगह होती है वह दिखायी पड़ने लगती हैं। चौथे शरीर के पहले हमें लगता है कि विचार ही विचार हैं और विचारों के बीच में जो गैप (अन्तराल, खाली स्थान) है, वह हमें दिखायी नहीं पड़ता। चौथे शरीर में गैप दिखायी पड़ने लगता है। और एम्फेसिस (जोर) एकदम बदल जाती है। अगर तुमने गेसटॉल्ट के चित्र देखे हैं तो यह ख्याल में आ सकेगा। समझ लें कि एक सीढ़ियों का चित्र बनाया जा सकता है। वह चित्र ऐसा बनाया जा सकता है कि उसे अगर आप गौर से देखते हैं तो एक बार ऐसा लगे कि सीढ़ियाँ नीचे की तरफ आ रही हैं और दूसरी बार ऐसा लगे कि सीढ़ियाँ ऊपर की तरफ जा रही हैं। लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि दोनों चीजें एक साथ नहीं देखी जा सकतीं। इसमें एक को ही तुम देख सकते हो। दोबारा जब तुम्हें दूसरी चीज दिखायी पड़ने लगेगी तो पहली नदारद हो जायेगी। एक ऐसा चित्र बनाया जा सकता है कि दो आदमियों के चेहरे आमने-सामने दिखायी पड़ें। उनकी नाक, आँख, दाढ़ी सब दिखायी पड़े। एक दफा ऐसा दिखायी पड़े कि दो आदमी आमने-सामने चेहरे करके बैठे हैं। इनको काला पोत दिया है, चेहरों के बीच में जो जगह खाली है, वह सफेद है। और एक दफा ऐसा दिखायी पड़े कि बीच में एक गमला रखा हुआ है। वह नाक और मुँह गमले की कगारें हो जायें। लेकिन ये दोनों बातें एक साथ दिखायी नहीं पड़ सकतीं। जब दो चेहरे दिखायी पड़ेंगे तो गमला नहीं दिखायी पड़ेगा। और जब गमला दिखायी पड़ेगा तो पाओगे कि दो चेहरे कहाँ गये ! वह दो चेहरे नहीं दिखायी पड़ेंगे। इसकी तुम लाख कोशिश करो, तो भी गेस्टाल्ट से इम्फेसिस (जोर) बदल जायेगी। तब तुम दोनों न देख पाओगे। जब तुम्हारी इम्फेसिस (जोर) चेहरे पर जायेगी तो गमला नदारद हो जायगा। और जब तुम्हारी इम्फेसिस (जोर, अधिक ध्यान) गमले पर जायेगी तो चेहरे नदारद हो जायेंगे।

तीसरे शरीर तक हमारा जो माइण्ड (मन) का गेस्टाल्ट है उसकी इम्फेसिस (जोर) विचार के ऊपर है। राम आया। तो राम दिखायी पड़ता है, आया दिखायी पड़ता है। राम और आया के बीच में जो खाली जगह है और राम के पहले जो खाली जगह है और आया के बाद में जो खाली जगह है वह नहीं दिखायी पड़ती। इम्फेसिस (जोर) राम आया पर है। तो विचार दिखायी पड़ता है, बीच का अन्तराल नहीं दिखायी पड़ता है। चौथे शरीर में फर्क होना शुरू

होता है। अचानक तुम्हें ऐसा लगता है कि राम आया यह महत्वपूर्ण नहीं है। जब राम नहीं आया था तब खाली जगह थी। और जब राम आया तब खाली जगह थी। और जब राम चला गया तब खाली जगह थी। वह खाली जगह तुम्हें दिखायी पड़नी शुरू हो जाती है। चेहरे विदा होते हैं और गमला दिखायी पड़ने लगता है। और जब तुम्हें खाली जगह दिखायी पड़ती है तब तुम विचार नहीं कर सकते। दो में से एक ही कर सकते हो। जब तक तुम विचार देखोगे तो विचार कर सकते हो। जब तुम खाली जगह देखोगे तो खाली हो जाओगे। लेकिन यह बदलता रहेगा चौथे शरीर में। कभी गमला दिखायी पड़ने लगेगा, कभी दो चेहरे दिखायी पड़ने लगेंगे। यह चलता रहेगा। कभी विचार दिखायी पड़ेंगे, कभी खाली जगह दिखायी पड़ेगी। और मौन भी आयगा और विचार भी चलेंगे।

२४. मौन अर्थात् दो विचारों के बीच का अन्तरालऔर शून्य अर्थात् विचारों का अभाव

मौन और शून्य में फर्क यही है। मौन का मतलब यह है कि अभी विचार समाप्त नहीं हो गया। लेकिन एम्फैसिस (जोर) बदल गयी है। अब वाणी से चित्त हट गया है और चुप होने से रसपूर्ण पा रहा है। लेकिन अभी वाणी नहीं हट गयी है। वाणी से चित्त हट गया है, वाणी से ध्यान हट गया है, वाणी से अटेंशन हट गयी। अटेंशन (ध्यान) चली गयी है मौन पर। लेकिन वाणी अभी आती है और कभी-कभी जब पकड़ लेती है ध्यान को तो मौन खो जाता है, और वाणी चलने लगती है।

चौथे शरीर की आखिरी घड़ियों में इन दोनों पर चित्त बदलता रहेगा। पाँचवें शरीर पर विचार एकदम खो जायेंगे और शून्य रह जायगा। इसको हम मौन नहीं कह सकते। क्योंकि मौन जो है वह मुखरता की ही अपेक्षा मे है, बोलने की ही अपेक्षा में है। मौन का मतलब है न बोलना। शून्य का मतलब है कि जहाँ न बोलना, और न न-बोलना, दोनों नहीं हैं वहाँ। वहाँ न गमला रहा, न दो चेहरे रहे। कागज खाली हो गया। अब अगर कोई पूछे कि चेहरा है कि गमला, तो तुम कहोगे दोनों नहीं हैं। पाँचवे शरीर पर तो निर्विचार पूरी तरह घटित होगा। चौथे शरीर पर उसकी झलक आनी शुरू हो जायेगी। कभी-कभी दिखायी पड़ेगा, निर्विचार सदा दो विचार के बीच में दिखायी पड़ेगा। पाँचवें शरीर पर निर्विचार दिखायी पड़ेगा, विचार नहीं दिखायी पड़ेगा।

अब दूसरा सवाल तुम्हारा है कि क्या विचार के साथ आइडेण्टिटी, (तादात्म्य) होना जरूरी है, तभी विचार आते हैं या ऐसा भी हो सकता है कि कोई विचार से तादात्म्य न हो और विचार आये।

२५. तीसरे शरीर में विचारों के साथ पूरा तादात्म्य

तीसरे शरीर तक तो आइडेन्टिटी (तादात्म्य) और विचार का आना सदा साथ होता है। तुम्हारा तादात्म्य होता है और विचार आते हैं। इनमें फासले का पता ही नहीं चलेगा। तुम्हारा विचार और तुम एक ही चीज हो, दो नहीं। जब तुम क्रोध करते हो तो यह कहना गलत है कि तुम क्रोध करते हो, यही कहना उचित है कि तुम क्रोध हो जाते हो। क्योंकि क्रोध करते हो, यह तभी कहा जा सकता है जब तुम न भी कर सको। अगर मैं कहूँ कि मैं हाथ हिलाता हूँ और फिर तुम मुझसे कहो कि अच्छा जरा रोक कर दिखाइये और मैं कहूँ कि वह तो नहीं हो सकता, हाथ तो हिलता ही रहेगा। तो फिर तुम कहोगे फिर आप हिलाते हैं, इसका क्या मतलब रहा? कहिये कि हाथ हिलता है। अगर आप हिलाते हैं तो रोक कर दिखाइये, फिर हिला कर दिखाइये। अगर मैं रोक नहीं सकूं तो हिलाने की मालकियत बेकार है। उसका कोई मतलब नहीं। चूंकि तुम विचार को रोक नही सकते तीसरे शरीर तक, इसलिए तुम्हारी आइडेन्टिटी (तादात्म्य) पूरी है। तुम विचार हो। इसलिए तीसरे शरीर तक आदमी के विचार पर अगर चोट करें तो उस पर ही चोट हो जाती है। अगर कह दें कि आपकी बात गलत है तो उसको ऐसा नहीं लगता है कि मेरी बात गलत है। उसको लगता है, मैं गलत हूँ। झगड़ा जो शुरू होता है वह बात के लिए नहीं होता है। फिर वह 'मैं' के लिए झगड़ा शुरू होता है। क्योंकि आइडेन्टिटी (तादात्म्य) पूरी है। तुम्हारे विचार को चोट पहुँचाना, मतलब तुम्हें पहुँचाना हो जाता है। भला तुम कहो कोई बात नहीं है। आप मेरे विचार के खिलाफ हैं। लेकिन भीतर तुम जानते हो कि आपकी खिलाफत हो रही है। और कई बार तो ऐसा होता है कि विचार से कोई मतलब नहीं होता है। चूँकि वह आपका है इसलिए झगड़ा करना पड़ता है। और कोई मतलब नहीं होगा। क्योंकि आप कह चुके हैं कि मेरी इससे आइडेन्टिटी (तादात्म्य) है, यह मेरा मत है, यह मेरी किताब है, यह मेरा शास्त्र है, यह मेरा सिद्धान्त है, यह मेरा वाद है, तो अब झगड़ा शुरू होगा।

तीसरे शरीर तक तुम्हारे और विचार के बीच कोई फासला नहीं होता है, तुम ही विचार होते हो। चौथे शरीर में डगमगाहट शुरू होती है। तुम्हें ऐसी झलकें मिलने लगती हैं कि मैं अलग हूँ और विचार अलग है। लेकिन फिर भी तुम अपने को असमर्थ पाते हो कि विचार को रोक सको, क्योंकि बहुत गहरी जड़ों में सम्बन्ध रह जाता है, ऊपर से सम्बन्ध अलग मालूम होने लगता है, शाखाओं पर अलग हो जाता है। एक शाखा पर तुम बैठ जाते हो, दूसरे पर विचार बैठ जाता है। तुम्हें दिखायी तो पड़ता है अलग है, लेकिन नीचे जड़ में तुम और विचार एक होते हो, इसलिए लगता भी है अलग है और लगता है कि अगर मेरा सम्बन्ध टूट जाय

तो बन्द हो जायगा, लेकिन बन्द भी नहीं होता। किसी गहरे तल पर विचारों से सम्बन्ध भी बना चला जाता है।

२६. नकली क्रोध ला सकने पर—असली क्रोध को रोक सकना भी सम्भव

चौथे शरीर पर फर्क पड़ना शुरू होता है। तुम्हें झलक मिलने लगती है कि विचार कुछ अलग है और मैं कुछ अलग हूँ। लेकिन अभी भी तुम इसकी घोषणा नहीं कर सकते और अभी भी विचार का आना यान्त्रिक होता है। न तो तुम रोक सकते हो, न तुम ला सकते हो। जैसे मैंने यह बात कही कि क्रोध को रोको तो पता चलेगा कि तुम मालिक हो। इससे उल्टा भी कहा जा सकता है कि अभी क्रोध को लाकर बताओ तब समझेंगे कि मालिक हो। तो ला भी नहीं सकते। कहोगे कि कैसे ले आयें, लायें कैसे? और अगर तुम ले आओ तो बस उसी दिन से तुम मालिक हो जाओगे, उसी दिन से तुम रोक भी सकते हो, किसी भी क्षण। मालकियत जो है वह लाने ले जाने में अलग-अलग नहीं है। अगर तुम ले आये तो तुम रोक भी सकते हो। और यह बड़े मजे की बात है कि रोकना जरा कठिन है, लाना जरा सरल है। इसलिए मालकियत अगर लानी हो तो लाने से शुरू करना सदा आसान है; बजाय रोकने के। क्योंकि लाने की हालत में तुम शान्त होते हो, रोकने की हालत में तुम क्रोध में ही होते हो, इसलिए तुम अपने होश में भी नहीं होते हो। रोकोगे उसे कैसे? इसलिए लाने के प्रयास से शुरुआत करना सदा आसान पड़ता है, बजाय रोकने के प्रयास के। जैसे तुम्हें हँसी आ रही है और तुम नहीं रोक पा रहे हो। यह जरा कठिन है, लेकिन नहीं आ रही है और हँसना शुरू करो तो तुम दो-चार मिनट में हँसी ले आओगे और जब वह आ जायेगी तब तुम्हें सीक्रेट (रहस्य) भी पता चल जायगा कि आ सकती है, कहाँ से आती है, कैसे आती है। तब तुम रोकने का रहस्य भी जान सकते हो, रोका भी जा सकता है।

२७. जब-जब निर्विचार की झलक तब-तब तादात्म्य का टूटना

चौथे शरीर में तुम्हें फर्क तो दिखायी पड़ने लगेगा कि मैं तो अलग हूँ और विचार कहीं से आते हैं। मैं विचार ही नहीं हूँ। इसलिए चौथे शरीर में जहाँ-जहाँ निर्विचार होगा, जैसा मैंने पहले कहा, वहीं-वहीं तुम्हारा साक्षी भी आ जायगा और जहाँ-जहाँ विचार होगा वहाँ-वहाँ साक्षी खो जायगा और वह जो निर्विचार की गैप्स (अन्तरालें) हैं वहाँ-वहाँ तुम पाओगे कि विचार तो अलग है, मैं अलग हूँ। तादात्म्य नहीं है। लेकिन अभी भी तुम अवश इसको जानोगे भर, अभी बहुत-कुछ कर न पाओगे लेकिन करने की सारी चेष्टा चौथे शरीर में ही करनी पड़ती है। इसलिए चौथे शरीर की मैंने दो सम्भावनाएँ कहीं। एक जो सहज

है वह, और दूसरी जो साधना से उपलब्ध होगी। उन दोनों के बीच तुम डालते रहोगे पहली सम्भावना विचार है, दूसरी सम्भावना विवेक है और जिस दिन तुम चौथे शरीर की दूसरी सम्भावना विवेक को उपलब्ध हो जाओगे, उसी दिन चौथा शरीर भी छूटेगा और तादात्म्य भी छूटेगा। जब तुम पाँचवें शरीर में आओगे तो दो बातें छूटेंगी। चौथा शरीर छूटेगा और तादात्म्य छूटेगा।

२८. पाँचवें शरीर में विचार और चित्त-वृत्तियों पर पूर्ण मालकियत उपलब्ध

पाँचवें शरीर में तुम विचार को चाहोगे तो लाओगे, नहीं चाहोगे तो नहीं लाओगे। विचार पहली दफा साधन बनेगा और आइडेण्टिटी (तादात्म्य) पर निर्भर नहीं रह जायगा। तुम चाहोगे कि क्रोध लाना है तो तुम क्रोध ला सकोगे और तुम चाहोगे कि प्रेम लाना है तो तुम प्रेम ला सकोगे और तुम चाहोगे कि कुछ नहीं लाना है तो तुम कुछ नही ला सकोगे और तुम चाहोगे आधे क्रोध को वहीं कह दो रुको तो वह वहीं रुक जायगा और तुम जिस विचार को लाना चाहोगे वह आयेगा और जिसको नही लाना चाहोगे उसकी कोई सामर्थ्य नही रह जायेगी।

गुरजिएफ की जिन्दगी में इस तरह की बहुत घटनाएँ हैं, इसलिए लोगों ने तो उसको समझा कि वह आदमी कैसा अजीब आदमी है! अक्सर तो वह ऐसा करता है कि अगर उसके आस-पास दो आदमी बैठे हैं तो एक तरफ इस तरह से देखता है कि भारी क्रोध में है और दूसरे की तरफ इस तरह से देखता है कि भारी प्रेम में है। इतनी जल्दी बदल लेता है वह अपनी मुद्राएँ और वे दो आदमी दो रिपोर्ट (प्रभाव) लेकर जाते हैं। दोनों साथ मिलने आये थे और एक आदमी कहता है कि बड़ा खतरनाक और अजीब आदमी है। दूसरा कहता है, कितना प्रेमी आदमी है। यह बिलकुल सम्भव है, पाँचवें शरीर पर बिलकुल आसान है। इसलिए गुरजिएफ बिलकुल समझ के बाहर हो गया लोगों के कि वह क्या कर रहा है। वह चेहरे पर हजार तरह के भाव तत्काल ला सकता था। उसमें कोई कठिनाई न थी।

उसका कुल कारण इतना था कि पाँचवें शरीर में तुम पहली दफा मालिक होते हो, तुम जो चाहो वह भाव ला सकते हो। तब क्रोध, प्रेम, घृणा, क्षमा और तुम्हारे सारे विचार तुम्हारे खेल हो जाते हैं। इसके पहले तुम्हारी जिन्दगी थी, इसके बाद तुम्हारा खेल है। और इसलिए तुम जब चाहो विश्राम पा सकते हो। खेल से विश्राम आसान है, जिन्दगी से विश्राम बहुत मुश्किल है। अगर मैं खेल में ही क्रोध कर रहा हूँ तो तुम्हारे चले जाने के बाद इस कमरे में क्रोध में नहीं बैठ रहूँगा और अगर मैं खेल में ही बोल रहा हूँ तो तुम्हारे चले जाने के बाद इस कमरे में बोलता नही रहूँगा। लेकिन अगर बोलना मेरी जिन्दगी है तो तुम चले आओगे

तो मैं बोलता रहूँगा, कोई नहीं सुनेगा तो मैं ही सुनूँगा, मैं ही बोलूँगा। क्योंकि वह मेरी जिन्दगी है। वह खेल नहीं है जिससे विश्राम हो जाय, वह मेरी जिन्दगी है जो चौबीस घण्टे मुझे पकड़े हुए है। तो वह आदमी रात में भी बोलेगा, सपने में भी सभा इकट्ठी कर लेगा और वहाँ भी बोलता रहेगा। सपने में भी लड़ेगा, झगड़ेगा, वही करेगा जो दिन में किया है। वह चौबीस घण्टे करेगा, क्योंकि वह जिन्दगी है, वह उसका प्राण है।

२९. तीसरे तथा चौथे शरीर में चारों ओर से पराये विचारों का भी हममें प्रवेश

पाँचवें शरीर पर तुम्हारी आइडेंटिटी (तादात्म्य) टूट जाती है। इसलिए पाँचवें शरीर पर पहली दफा तुम अपने वश से मौन होते हो, शून्य होते हो और जब जरूरत होती है तो तुम विचार करते हो। तो **पाँचवें शरीर से विचार का पहली दफा उपयोग शुरू होगा।** अगर हम इसको ऐसे कहें तो ज्यादा ठीक होगा कि **पाँचवें शरीर के पहले विचार तुम्हें करता है और पाँचवें शरीर से तुम विचार को करते हो।** उसके पहले तो तुम्हें कहना ठीक नहीं है कि हम विचार करते हैं और पाँचवें शरीर पर एक बात और पता चलती है कि हमारा विचार केवल हमारा ही होता है, ऐसा भी नहीं है, **दूसरे के विचार भी चारों तरफ से हममें प्रवेश करते रहते हैं।** और हम अक्सर ख्याल में नहीं होते कि हम जिस विचार को अपना कह रहे हैं, वह किसी और का हो सकता है।

३०. शक्तिशाली व्यक्तियों की विचार-तरंगें हजारों वर्ष तक मनुष्य के मन में चलती रहती हैं

एक हिटलर पैदा होता है तो पूरे जर्मनी को अपना विचार दे देता है और पूरे जर्मनी का आदमी समझता है कि ये मेरे विचार हैं। ये उसके विचार नहीं हैं। एक बहुत डाइनेमिक (सक्रिय) आदमी अपने विचारों को विकीर्ण कर रहा है और लोगों में डाल रहा है और लोग उसके विचारों की सिर्फ प्रतिध्वनियाँ हैं और यह डाइनामिज्म (सक्रियता) बहुत गम्भीर और गहरा है। उदाहरण के लिए जीसस को मरे दो हजार साल हो गये। आज क्रिश्चियन सोचता है कि मैं अपने विचार कर रहा हूँ। वह दो हजार साल पहले जो आदमी छोड़ गया है तरंगें, वह अब तक आदमी को पकड़ रही हैं। महावीर या बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट अच्छे या बुरे कोई भी तरह के डाइनामिक (सक्रिय) लोग जो छोड़ गये हैं वह तुम्हें पकड़ लेता है। तैमूरलंग ने अभी भी पीछा नहीं छोड़ दिया मनुष्यता का और न चंगेजखाँ ने छोड़ा है, न कृष्ण ने छोड़ा है, न राम ने छोड़ा है। पीछा वह नहीं छोड़ते। उनकी तरंगें पूरे वक्त डोल रही हैं। **तुम जिस तरंग को पकड़ने की हालत में होते हो, उसको पकड़ लेते हो।**

३१. हमारे चारों ओर हर समय अनेक अच्छे तथा बुरे विचारों का आन्दोलन

इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि सुबह एक आदमी बहुत भला था और दोपहर होते-होते बुरा हो गया। सुबह वह राम की तरंगों में रहा हो, दोपहर चंगेजखां की तरंगों में हो सकता है। रिसेप्टीविटी (ग्राहकता) और समय से फर्क पड़ जाता है। सुबह भिखमंगा तुम्हारे दरवाजे पर भीख माँगने आता है, क्योंकि सुबह सूरज के उगने के साथ बुरी तरंगों का प्रभाव सर्वाधिक कम होता है पृथ्वी पर। सूरज के थकते-थकते प्रभाव बढ़ना शुरू हो जाता है। साँझ को भिखारी भीख माँगने नहीं आता, क्योंकि साँझ को आशा नहीं है दया की किसी से। सुबह थोड़ी आशा है। अगर सुबह उठे आदमी से हम कहें कि दो पैसा दे दें तो वह एकदम से इनकार न कर पायगा। साँझ को 'हाँ' भरना जरा मुश्किल हो जायगा। साँझ भर में उसका हाथ थक गया है बुरी तरह से। अब वह इनकार करने की हालत में है। अब उसकी सारी चित्त-दशा और है। सारी पृथ्वी का वातावरण भी और है। तो जो विचार हमें लगते हैं कि हमारे हैं, वे भी हमारे नहीं हैं।

यह तुम्हें पाँचवें शरीर में ही पता चलेगा जाकर कि क्या आश्चर्य है कि विचार भी बाहर से आता है और जाता है। तुम पर विचार भी आता और जाता है और तुम्हें पकड़ता और छोड़ता है। और हजारों तरह के विचार हैं और बहुत कन्ट्रडक्टरी (परस्पर-विरोधी) इसीलिए इतना कन्फ्यूजन (उलझन, भ्रान्ति) है। एक-एक आदमी कन्फ्यूज्ड (उलझा हुआ) है। और अगर ये विचार तुम्हारे अपने हैं तो कन्फ्यूजन (उलझन) की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन एक हाथ चंगेज खां पकड़े हुए है और दूसरा हाथ कृष्ण पकड़े हुए है। कन्फ्यूजन तो होने वाला है। दोनों के विचार प्रतीक्षा कर रहे हैं कि तुम कब तैयारी दिखाओ कि वे तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जायँ। वे सब मौजूद हैं चारों तरफ।

३२. पाँचवें शरीर में विचारों से मुक्ति और विचारणा, प्रज्ञा तथा मेधा का जन्म

यह सब पाँचवें शरीर में तुम्हें पता चलेगा जब तुम्हारी आइडेण्टिटी (तादात्म्य) पूरी टूट जायेगी। लेकिन तब जैसा मैंने कहा कि जो बड़ा भारी फर्क होगा वह यह होगा कि इसके पहले तुम्हारे पास थॉट्स (विचार) थे। इसके बाद तुम्हारे पास थिंकिंग होगी, विचारणा होगी और इनमें भी फर्क है। विचार एटामिक (पारमाण्विक) चीज है। वे तुम पर आते-जाते हैं और पराये होते हैं सदा। ऐसा अगर हम कहें कि विचार सदा पराये होते हैं तो हर्जा नहीं।

विचारणा अपनी होती है, विचार सदा पराये होते हैं। थिंकिंग अपनी होती है, थॉट्स हमेशा पराया होता है। पाँचवें शरीर से तुम में थिंकिंग (विचारणा) पैदा होगी। तुम विचार कर सकोगे। तुम सिर्फ विचार को पकड़कर संग्रहीत किये हुए नहीं बैठे रहोगे। इसलिए पाँचवें शरीर की जो विचारणा है उसका कोई बोझ तुम पर नहीं होगा। वह तुम्हारी अपनी है और पाँचवें शरीर पर जिस विचारणा का जन्म हो जायगा, उसको प्रज्ञा कहें या विवेक कहें। जो भी नाम देना चाहें हम दें। पाँचवें शरीर पर तुम्हारी अपनी (Intution) प्रज्ञा, अपनी बुद्धि, अपनी मेधा जग जायेगी। इस पाँचवें शरीर के बाद तुम पर दूसरे के विचारों के समस्त प्रभाव क्षीण हो जायेंगे। इस अर्थ में भी तुम आत्मवान बनोगे, आत्मा को उपलब्ध हो जाओगे कि तुम स्वयम् हो जाओगे। क्योंकि तुम्हारे पास अब अपने विचार हैं, अपनी विचार-शक्ति है। और तुम्हारे पास देखने की अपनी आँख है, अपना दर्शन है। इसके बाद तुम जो चाहोगे वह आ जायगा, तुम जो नहीं चाहोगे वह नही आयेगा। तुम जो सोचोगे, सोच सकोगे। तुम जो नहीं सोचोगे, नहीं सोच सकोगे। अब तुम मालिक हो। और यहाँ से आइडेण्टिटी (तादात्म्य) का कोई सवाल नहीं रह जाता।

३३. छठवें ब्रह्म-शरीर में विचारणा व प्रज्ञा भी अनावश्यक

छठवें शरीर में विचारणा की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। चौथे शरीर तक विचार की जरूरत है। पाँचवें शरीर पर विचारणा (थिंकिंग) और प्रज्ञा की। छठवें शरीर पर वह भी समाप्त हो जाती है। क्योंकि छठवें शरीर पर तुम वहाँ होते हो जहाँ कोई जरूरत ही नहीं पड़ती है। तुम कॉज्मिक हो जाते हो। तुम ब्रह्म के साथ एक हो जाते हो। अब कोई दूसरा बचता नहीं। असल में सब विचार दूसरे के साथ सम्बद्ध हैं। चौथे शरीर के पहले का जो विचार है वह मूर्च्छित सम्बन्ध है, दूसरे के साथ। पाँचवें शरीर पर जो विचार है वह अमूर्च्छित सम्बन्ध है, लेकिन दूसरे के ही साथ। आखिर विचार की जरूरत ही क्या है? विचार की जरूरत है, क्योंकि दूसरे से सम्बन्धित होना है। चौथे तक मूर्च्छित सम्बन्ध है। पाँचवें पर जाग्रत सम्बन्ध है। छठवें पर सम्बन्ध के लिए कोई नहीं बचता। रिलेटेड (सम्बन्धित) नहीं बचते। कॉज्मिक हो गये। 'तुम' और 'मैं' एक ही हो गये। अब तो कोई सवाल नहीं बचता। कोई जगह नहीं बचती है जहाँ विचार खड़ा हो।

३४. छठवें शरीर में केवल 'ज्ञान' शेष

ब्रह्म-शरीर है छठवाँ। वहाँ कोई विचार नहीं है। ब्रह्म में विचार नहीं है। इसलिए इसको ऐसा कह सकते हैं कि ब्रह्म में ज्ञान है। असल में विचार जो

है वह चौथे शरीर तक मूर्च्छित विचार, गहन अज्ञान है। क्योंकि वह इस बात की खबर है कि हमे विचार की जरूरत है अज्ञान से लड़ने के लिए। पाँचवें शरीर में भीतर तो ज्ञान है लेकिन बाहर जो हमसे अन्य हैं उसके बाबत अब भी अज्ञान है। अभी भी वह अन्य दिखायी पड़ रहा है। इसलिए पाँचवें शरीर में विचार करने की जरूरत है। **छठवें शरीर में बाहर और भीतर कोई न रहा। 'बाहर,' 'भीतर' न रहा, 'मैं', 'तू' न रहा, यह वह न रहा।** अब कोई फासला न रहा जहाँ विचार की जरूरत है। **अब तो जो है सो है।** इसलिए **छठवें शरीर में ज्ञान है, विचार नहीं है।**

३५. सातवाँ निर्वाण-शरीर ज्ञानातीत है

सातवें में ज्ञान भी नहीं है। क्योंकि जो जानता था अब वह भी नहीं है। जो जाना जा सकता था, वह भी नहीं है। इसलिए सातवें में ज्ञान भी नहीं है। अज्ञान नहीं, **ज्ञानातीत (बियॉन्ड नालेज) है सातवीं अवस्था।** कोई चाहे तो उसको अज्ञान भी कह सकता है। इसलिए **अक्सर ऐसा होता है कि परम ज्ञानी और परम अज्ञानी कभी-कभी बिलकुल एक से मालूम पड़ते हैं।** जो परम ज्ञानी है उसका और जो परम अज्ञानी है उसका कई बार व्यवहार बड़ा एक-सा होगा। इसलिए छोटे **बच्चे में और ज्ञान को उपलब्ध बूढ़े में बड़ी समानता हो जाती है।** वस्तुत. नहीं, लेकिन बड़े ऊपर से एक-सा दिखायी पड़ने लगेगा। कभी-कभी परम सन्त का व्यवहार बिलकुल बच्चे जैसा हो जाता है। कभी-कभी बच्चे के व्यवहार में परम सन्तता की झलक दिखायी पड़ेगी। और कभी-कभी परम ज्ञानी परम अज्ञानी हो जायगा, बिलकुल जड़ भरत हो जायगा। वह ऐसा मालूम पड़ने लगेगा कि इससे अज्ञानी और कौन होगा! क्योंकि वह बियोण्ड नालेज (ज्ञानातीत) है, और यह बिलो नालेज (ज्ञान के पूर्व) है। एक ज्ञान के आगे चला गया, एक ज्ञान के अभी पीछे खड़ा है। **इन दोनों में एक समानता है कि वे दोनों ज्ञान के बाहर हैं।**

प्रश्नकर्ता : जिसको आप समाधि कहते हैं वह किस शरीर में उपलब्ध होती है?

३६. तीन प्रकार की समाधियाँ—आत्म-समाधि, ब्रह्म-समाधि, निर्वाण-समाधि

आचार्यश्री : असल में बहुत तरह की समाधियाँ हैं। इसलिए एक समाधि तो चौथे शरीर और पाँचवें शरीर के बीच में घटेगी। और यह भी ध्यान रहे कि **समाधि किसी एक शरीर की घटना नहीं है। समाधि सदा ही दो शरीरों के बीच की घटना है। वह संध्या काल है।** जैसे अगर कोई पूछे कि संध्या (साँझ)

दिन की घटना है कि रात की ? तो हम कहेंगे कि साँझ न दिन की घटना है; न रात की। रात और दिन के बीच की घटना है। ऐसी ही समाधि है। पहली समाधि चौथे और पाँचवें शरीर के बीच में घटती है। **चौथे पाँचवें शरीर के बीच में जो समाधि घटती है उसी से आत्मज्ञान उपलब्ध होता है।** एक समाधि पाँचवें और छठवें शरीर के बीच में घटती है। **पाँचवें और छठवें शरीर के बीच जो समाधि घटती है उससे ब्रह्मज्ञान उपलब्ध होता है।** एक समाधि छठवें और सातवें के बीच घटती है। **छठवें और सातवें के बीच में जो घटती है उससे निर्वाण उपलब्ध हो जाता है।** तो तीन समाधियाँ साधारण: हैं। ये तीन समाधियाँ तीन शरीरों के बीच मे घटती हैं।

३७. सतोरी अर्थात् चौथे शरीर में समाधि की मानसिक झलक

और एक फाल्स (भ्रामक) समाधि को भी समझ लेना चाहिए, जो समाधि नही है। लेकिन चौथे शरीर में घटती है। और समाधि जैसी प्रतीत होगी। जिसको जापान में जेन बुद्धिज्म **'सतोरी'** कहता है। वह सतोरी इसी तरह की समाधि है। वस्तुतः समाधि नही है। जैसे एक चित्रकार को घट जाती है कभी, एक मूर्तिकार को घटती है, एक संगीतज्ञ को घटती है कि कभी वह लीन हो जाता है पूरा और बड़े आनन्द का अनुभव करता है। लेकिन वह चौथे, साइकिक (मनस) शरीर की घटना है। अगर चौथे शरीर मे सुबह सूरज को उगता देखकर, एक संगीत की धुन सुनकर, एक नृत्य को देखकर, एक फूल को खिलते देखकर अगर चित्त बिलकुल लीन और समाहित हो जाय तो एक फाल्स (मिथ्या) समाधि घटित होती है। **ऐसी मिथ्या समाधि हिप्नोसिस से पैदा हो सकती है। ऐसी मिथ्या समाधि मिथ्या शक्तिपात से घटित हो सकती है। ऐसी मिथ्या समाधि शराब से, गांजे, चरस, मेस्कलीन मेरीजुआना और एल एस डी से पैदा हो सकती है।**

तो चार तरह की समाधियाँ हुईं। अगर ऐसा समझें तो तीन समाधियाँ है जो प्रामाणिक समाधियाँ हैं। उनमें भी तारतम्यता है। और एक चौथी झूठी समाधि भी है जो बिलकुल समाधि जैसी मालूम पड़ती है। लेकिन, सिर्फ समाधि का ख्याल होता है, घटना नहीं होती और धोखे में डाल सकती है। और **अनेक लोगों को सतोरी ने धोखे में डाला हुआ है।** सिर्फ फाल्स समाधि चौथे शरीर में घटती है। वह संध्या नहीं है। वह किसी शरीर में घटती है। वह चौथे शरीर में घटती है। बाकी **तीनों समाधियाँ शरीरों के बाहर घटती हैं, संक्रमणकाल में,** जब एक शरीर से हम दूसरे में जा रहे होते हों तब। समाधि एक द्वार है, पैसेज है। चौथे से पाँचवें के बीच में एक समाधि है, जिससे आत्मज्ञान उपलब्ध होता है। पहली समाधि पर आदमी रुक सकता है। पहली तो बहुत बड़ी बात

है। आमतौर से चौथे की फाल्स समाधि पर रुक जाता है। क्योंकि वह बहुत सरल है। खर्च कम पड़ता है, मेहनत नहीं होती और ऐसे ही पैदा हो सकती है। इसलिए अधिकतर साधक उसमें रुक जाते हैं। पहली समाधि बहुत कठिन बात हो जाती है, चौथी से पाँचवी की यात्रा। दूसरी समाधि और कठिन हो जाती है, आत्मा से परमात्मा की यात्रा। और तीसरी तो सर्वाधिक कठिन हो जाती है। उसके लिए जो शब्द खोजा गया है—वज्रभेद। वह सर्वाधिक कठिन है,—होने से न होने की यात्रा, जीवन से मृत्यु में छलांग, अस्तित्व से अनस्तित्व में डूब जाना।

ये तीन समाधियाँ हैं। पहली को आत्मसमाधि कहो। दूसरे को ब्रह्मसमाधि कहो और तीसरे को निर्वाण-समाधि कहो। और पहले से और भी पहली को मिथ्या-समाधि (सतोरी) कहो। और उससे सबसे ज्यादा बचने की जरूरत है। क्योंकि वह जल्दी से उपलब्ध हो सकती है। वह चौथे शरीर में घटती है। और इसकी भी एक शर्त और कसौटी समझ लेना कि अगर किसी शरीर में घटे तो फाल्स होगी। दो शरीरों के बीच में ही घटनी चाहिए। वह द्वार है। उसको बीच कमरे में होने की कोई जरूरत नहीं है। उसको कमरे के बाहर होना चाहिए और दूसरे कमरे के जोड़ पर होना चाहिए। वह मार्ग है।

प्रश्नकर्ता : कुण्डलिनी-शक्ति का प्रतीक (सिम्बल) साँप को क्यों माना गया है? कृपया सभी कारणों का उल्लेख करें। थियोसॉफी के प्रतीक में एक वृत्ताकार साँप है जिसकी पूँछ मुँह के अन्दर है। राम-कृष्ण मिशन के प्रतीक में साँप के फन को स्पर्श करती हुई उसकी पूँछ है। कृपया इनके अर्थ भी स्पष्ट करें।

३८. कुण्डलिनी-शक्ति और सर्प में अनेक समानताएँ—उनकी चाल, उनका कुण्डल आदि

आचार्यश्री : कुण्डलिनी के लिए साँप का प्रतीक बड़ा मौजूँ (अर्थपूर्ण) है। शायद उससे अच्छा कोई प्रतीक नहीं है। इसलिए कुण्डलिनी ने ही नहीं, सर्प ने भी बहुत-बहुत यात्राएँ की हैं प्रतीक के रूप में। और दुनिया के किसी कोने में भी ऐसा नहीं है कि सर्प कभी न कभी उनके धर्म में प्रवेश न कर गया हो। क्योंकि सर्प में कई खूबियाँ हैं जो कुण्डलिनी से तालमेल खाती हैं।

पहली बात तो यह है कि सर्प का ख्याल करते ही सरकने का ख्याल आता है। और कुण्डलिनी का पहला अनुभव किसी चीज के सरकने का है। कोई चीज जैसे सरक गयी। जैसे सर्प सरक गया। सर्प का ख्याल करते ही एक दूसरी चीज ख्याल में आती है कि सर्प के कोई पैर नहीं हैं, लेकिन गति करता है। गति का कोई साधन नहीं है उसके पास, कोई पैर नहीं है लेकिन गति करता है। कुण्डलिनी के पास भी कोई पैर नहीं है, कोई साधन नहीं है, निपट ऊर्जा है। फिर भी यात्रा

करती है। तीसरी बात यह ख्याल में आती है कि सर्प जब बैठा हो, विश्राम कर रहा हो तो कुण्डली मार कर बैठ जाता है। जब कुण्डलिनी बैठी हालत में होती है, हमारे शरीर की ऊर्जा जब जगी नहीं है तो वह भी कुण्डली मारे ही बैठी रहती है। असल में एक ही जगह पर बहुत लम्बी चीज को बैठना हो तो कुण्डल मार कर ही बैठ सकती है। और तो कोई उपाय भी नहीं है उसके बैठने का। और बहुत बड़ी शक्ति बहुत छोटे-से बिन्दु पर बैठी है। तो कुण्डल मार कर ही बैठ सकती है। फिर सर्प जब उठता है तो एक-एक कुण्डल टूटते हैं उसके। जैसे-जैसे वह उठता है उसके कुण्डल टूटते हैं। ऐसा ही एक-एक कुण्डल कुण्डलिनी का टूटता हुआ मालूम पड़ता है, जब कुण्डलिनी का सर्प उठना शुरू होता है।

३९. सर्प का मुंह में पूंछ रखना और पूंछ के पास मुंह रखना—क्रमशः पुरुष व स्त्रैण साधना का प्रतीक

सर्प कभी खिलवाड़ में अपनी पूंछ भी पकड़ लेता है। सर्प का पूंछ पकड़ने का प्रतीक भी कीमती है। और अनेक लोगों को यह ख्याल में आया कि सर्प का अपनी पूंछ को पकड़ लेने का प्रतीक बड़ा कीमती है। कीमती इसलिए है कि जब कुण्डलिनी पूरी जगेगी तो वह वर्तुलाकार हो जायेगी और भीतर उसका वर्तुल बनना शुरू हो जायगा। उसका फन अपनी ही पूंछ पकड़ लेगा। सांप एक वर्तुल बन जायगा। अब कोई प्रतीक ऐसा हो सकता है कि सांप के मुंह ने उसकी पूंछ को पकड़ा। अगर पुरुष-साधना की दृष्टि से प्रतीक बनाया गया होगा तो मुंह पूंछ को पकड़ेगा, आक्रामक होगा। और अगर स्त्री-साधना के ध्यान से प्रतीक बनाया गया होगा तो पूंछ मुंह को छूती हुई मालूम पड़ेगी। समर्पित पूंछ है वह। मुंह में पकड़ी नहीं है, यह फर्क पड़ेगा। प्रतीक में और कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है।

४०. सहस्रार में पहुंच कर कुण्डलिनी के फन का फैल जाना।

यह जो सर्प का फन है यह भी सार्थक मालूम पड़ा, क्योंकि पूंछ तो उसकी पतली होती है लेकिन उसका फन बड़ा होता है और जब कुण्डलिनी पूरी की पूरी जागती है तो सहस्रार में जाकर फन की भाँति फैल जाती है। उसमें बहुत फूल खिलते हैं, वह बहुत विस्तार ले लेती है। पूंछ तब उसकी बहुत छोटी रह जाती है। सर्प जब कभी खड़ा होता है तो बड़ा आश्चर्यजनक होता है। वह पूंछ के बल पूरा खड़ा हो जाता है। वह भी एक मिरेकिल (चमत्कार) है। सर्प बिना हड्डी का जानवर है, लेकिन वह पूंछ के बल खड़ा हो सकता है। और जब बिना हड्डी का कोई जानवर, कोई रेंगता हुआ पशु सर्प जैसा, बिना हड्डियों के, पूंछ के बल पूरा खड़ा हो सकता है तो यह सिर्फ ऊर्जा के सहारे खड़ा है और कोई उपाय नहीं है [illegible]

ठोस साधन नहीं है खड़ा होने का। सिर्फ शक्ति के बल, सिर्फ संकल्प के बल खड़ा है। खड़ा होने में कोई बहुत मैटीरियल (स्थूल) ताकत नहीं है उसके पास। तो जब हमारी कुण्डलिनी पूरी जाग कर खड़ी होती है तो उसके पास कोई मैटीरियल (स्थूल) सहारा नहीं होता, इनमैटीरियल फोर्स (सूक्ष्म ऊर्जा) होती है।

४१. कुण्डलिनी सर्प जैसी भोली और खतरनाक भी तथा बुद्धिमान्, सजग और तेज भी

इसलिए सर्प प्रतीक की तरह लगा। और भी कई कारण थे जो सर्प में लगे सार्थक। जैसे एक अर्थ में सर्प बहुत इनोसेंट (भोला) है। इसलिए भोले शंकर उसको सिर पर रखे हुए हैं। वह बड़ा भोला है। एकदम भोला है। ऐसे अपनी तरफ से किसी को सताने नहीं जाता, लेकिन अगर कोई छेड़ दे तो खतरनाक सिद्ध हो सकता है। तो यह ख्याल भी कुण्डलिनी में है। कुण्डलिनी ऐसे बहुत इनोसेंट (सीधी-सादी) शक्ति है। अपनी तरफ से तुम्हें परेशान नहीं करती, लेकिन अगर तुम गलत ढंग से छेड़ दो तो खतरे में पड़ सकते हो। भारी खतरा हो सकता है। इसलिए गलत ढंग से छेड़ना खतरनाक है, वह बोध भी ख्याल में है। इन सारी बातों को ध्यान में रख कर उससे बेहतर कोई प्रतीक दिखायी नहीं पड़ा। सारी दुनिया में सर्प जो है वह विसडम का, प्रज्ञा का प्रतीक भी है। जीसस का वचन है : सर्प जैसे बुद्धिमान्, चालाक और कबूतर जैसे भोले, ऐसे बनो। सर्प बहुत ही बुद्धिमान् प्राणी है, बहुत सजग, बहुत जागरूक, बहुत तेज, बहुत गतिमान। वह सब उसकी खूबियाँ हैं। कुण्डलिनी भी वैसी चीज है। बुद्धिमत्ता का चरम शिखर उससे छुआ जायगा। उतनी ही चपल और गतिमान भी है। उतनी ही शक्तिशाली भी है।

४२. कुण्डलिनी का आधुनिक प्रतीक—विद्युत् व राकेट भी सम्भव

तो पुराने दिनों में जब यह प्रतीक खोजा गया कुण्डलिनी के लिए, तब शायद सर्प से बेहतर कोई प्रतीक नहीं था। अब भी नहीं है। लेकिन शायद भविष्य में दूसरा प्रतीक बन जाय, जैसे राकेट की तरह। कभी भविष्य का कोई ख्याल राकेट की तरह कुण्डलिनी को पकड़ सकता है, उसकी यात्रा वैसी है। एक अन्तरिक्ष से दूसरे अन्तरिक्ष, एक ग्रह से दूसरे ग्रह, बीच में शून्य की पर्त है। वह कभी प्रतीक बन सकता है। प्रतीक तो युग खोजता है। यह प्रतीक तो उस दिन खोजा गया जब आदमी और पशु बड़े निकट थे। उस वक्त सारे प्रतीक हमने पशुओं से खोजे, क्योंकि हमारे पास वही तो जानकारी थी, उन्हीं से हम खोजते। सर्प उस समय हमारे नजर में सबसे निकटतम प्रतीक था। उन दिनों हम नहीं कह सकते थे कि कुण्डलिनी विद्युत् जैसी है। आज जब मैं बात करता हूँ तो कुण्डलिनी के साथ

इलेक्ट्रिसिटी (विद्युत्) की बात कर सकता हूँ। आज से पाँच हजार साल पहले कुण्डलिनी के साथ विद्युत् की बात नहीं की जा सकती थी। क्योंकि विद्युत् का कोई प्रतीक नहीं था। लेकिन, सर्प में विद्युत् जैसी क्वालिटी (गुण) भी है। हमें अब कठिन मालूम होती है, क्योंकि हममें से बहुतों के जीवन में सर्प का कोई अनुभव ही नहीं है। कुण्डलिनी का तो है ही नहीं, सर्प का भी बहुत अनुभव नहीं है। सर्प हमारे लिए एक मिथ (पौराणिक कथा) जैसा है।

४३. आधुनिक युग में सर्प से अपरिचय और कुण्डलिनी से भी

अभी पहली दफे लन्दन में बच्चों का एक सर्वे किया गया तो लन्दन में सात लाख ऐसे बच्चे है जिन्होंने गाय नही देखी है। तो जिन बच्चो ने गाय नहीं देखी उन्होंने साँप देखा हो यह बड़ा मुश्किल मामला है। अब जिन बच्चों ने गाय नहीं देखी है उनका चिन्तन, उनका सोचना, उनके प्रतीक बहुत भिन्न हो जायेंगे। सर्प बाहर हो गया है दुनिया से। वह हमारी दुनिया का हिस्सा नही है बहुत। कभी वह हमारा बहुत निकट पडोसो था, चौबीस घण्टे साथ था, उसका सत्संग था और तब आदमी ने उसकी सब चपलताएँ देखी, उसकी बुद्धिमानी देखी, उसकी गति देखी, उसकी सरलता भी देखी, उसका खतरा भी देखा, वह सब देखा है। ऐसी घटनाएँ हैं जब कोई सर्प एक बच्चे को बचा लेता है। एक निरीह बच्चा पड़ा है और सर्प उस पर फन मार कर बैठ जाय और उसको बचा ले। वह इतना भोला भी है। और ऐसी घटनाएँ भी हैं कि वह खतरनाक-से-खतरनाक आदमी को एक दंश मार दे और समाप्त कर दे। ये दोनों उसकी सम्भावनाएँ हैं।

तो जब आदमी सर्प के बहुत निकट रहा होगा तब उसको पहचाना था। उसी वक्त कुण्डलिनी की बात भी चली थी। वह दोनों तालमेल खा गये। वह बहुत पुराना प्रतीक बन गया। लेकिन सब प्रतीक अर्थपूर्ण हैं। क्योंकि जब बनाये गये हैं हजारों साल में, तो उनके पीछे कोई तालमेल है। लेकिन अब टूट जायगा। बहुत दिन सर्प का प्रतीक नहीं चलेगा। अब बहुत दिनों तक हम कुण्डलिनी को सरपेण्ट पावर (सर्प-ऊर्जा) नही कह सकेंगे। क्योंकि सर्प बेचारा अब कहाँ है! अब उसमें इतनी शक्ति भी कहाँ है! अब वह जिन्दगी के किसी रास्ते पर दिखायी नहीं पड़ता। वह हमारा पड़ोसी भी नहीं रहा, हमारे पास भी नहीं रहता। उससे हमारे सम्बन्ध नहीं रह गये। इसलिए यह सवाल उठता है, नहीं तो पहले यह कभी सवाल नहीं उठ सकता था। क्योंकि सर्प एक मात्र प्रतीक था।

प्रश्नकर्ता : कहा गया है कि कुण्डलिनी जब जागती है तो वह खून पी जाती है, मांस खा जाती है। इसका क्या अर्थ है ?

४४. कुण्डलिनी-जागरण पर मांस, खून, मज्जा--सब कुछ का बदलना

आचार्यश्री : इसका अर्थ होता है। इसका अर्थ बिलकुल वैसे ही होता है जैसे कहा गया है प्रतीक अर्थ नहीं होता। असल में कुण्डलिनी जागे तो शरीर में बड़े रूपान्तरण होते हैं। कोई भी नयी ऊर्जा शरीर में जागेगी तो शरीर का पुराना पूरा-का-पूरा कम्पोजीशन (संरचना) बदलता है। बदलेगा ही। जैसे हमारा शरीर कई तरह के व्यवहार कर रहा है जिनका हमें पता नहीं है, जो अनजाने और अनकांशस (अचेतन) हैं। जैसे कंजूस आदमी है। कंजूसी तो मन की बात है। लेकिन शरीर भी उसका कंजूस हो जायगा। और शरीर उन तत्त्वों को डिपाजिट (जमा) करने लगेगा जिनकी भविष्य में जरूरत है। अकारण ही इकट्ठी कर लेगा। इतनी इकट्ठी कर लेगा कि उसके इकट्ठे होने से परेशानी में पड़ जायगा। वह बोझिल हो जायेंगे। अब एक आदमी बहुत भयभीत है। तो शरीर उन तत्त्वों को बहुत इकट्ठे करके रखेगा जिनसे भय पैदा किया जा सकता है। नहीं तो कभी भय का तत्त्व न हो पास और तुम्हें भयभीत होना है तो शरीर क्या करेगा ? तुम उससे माँग करोगे कि मुझे भयभीत होना है ? और शरीर के पास भय की ग्रन्थियाँ नहीं हैं, भय का रस नहीं है तो क्या करेगा ! तो वह इकट्ठा करता है। भयभीत आदमी का शरीर भय की ग्रन्थियां इकट्ठी कर लेता है, भय इकट्ठा कर लेता है। अब जिस आदमी को भय में पसीना छूटता है उसके शरीर में पसीने की ग्रन्थियां बहुत मजबूत हो जाती हैं। और बहुत पसीना वह इकट्ठा करके रखता है। कभी भी दिन में रोज दस दफे जरूरत पड़ जाती है। तो हमारा शरीर जो है वह हमारे चित्त के अनुकूल बहुत-कुछ इकट्ठा करता रहता है।

जब हमारा चित्त बदलेगा तो शरीर बदलेगा। और कुण्डलिनी जागेगी तो पूरा रूपान्तरण होगा। उस रूपान्तरण में बहुत-कुछ बदलाहट होगी। उसमें हमारा मांस कम हो सकता है, तुम्हारा खून कम हो सकता है। लेकिन उतना ही कम हो सकता है जितना कि तुम्हारे लिए जरूरत रह जाय। तो शरीर एकदम रूपान्तरित होगा। शरीर के लिए जितनी निपट आवश्यकता है, उतना मांस और रक्त रह जायगा। शेष सब जल कर खाक हो जायगा। तभी तुम हल्के हो पाओगे, तभी उड़ने योग्य हो पाओगे। वह होगा फर्क। इसलिए ठीक है ख्याल उनका। इसलिए साधक को एक विशेष प्रकार का भोजन, एक विशेष प्रकार की जीवन-व्यवस्था जरूरी है, अन्यथा वह बहुत मुश्किल में पड़ सकता है। फिर कुण्डलिनी जब जागेगी तो तुम्हारे भीतर बहुत गर्मी पैदा होगी। क्योंकि वह तो एक इलेक्ट्रिक फोर्स (विद्युतीय ऊर्जा) है। वह तो बहुत तापग्रस्त ऊर्जा है।

४५. कुण्डलिनी की आग में सब कचरा भस्म ।

जैसे कि मैंने तुमसे कहा कि सर्प एक प्रतीक है। कुछ जगह कुण्डलिनी का अग्नि ही प्रतीक समझा गया है। वह भी अच्छा प्रतीक था। तो आग की तरह जलेगी तुम्हारे भीतर। और लपटों की तरह ऊपर उठेगी। उसमें तुम्हारा बहुत-कुछ जलेगा। तो अत्यन्त रूखापन भीतर पैदा हो सकता है कुण्डलिनी के जागने से। इसलिए व्यक्तित्व स्निग्ध चाहिए और व्यक्तित्व में थोड़े रस-स्रोत चाहिए। जैसे क्रोधी आदमी है। अगर क्रोधी आदमी की कुण्डलिनी जग जाय तो वह मुश्किल में पड़ेगा। क्योंकि वह वैसे ही रूखा आदमी है और एक आग जग जाय उसके भीतर तो उसे कठिनाई हो जायेगी। प्रेमी आदमी स्निग्ध है। उसके भीतर रस की स्निग्धता है। कुण्डलिनी जगेगी तो उसे कठिनाई नहीं होगी।

इन सब बातों को ध्यान में रख कर वह बात कही गयी है। लेकिन वह बहुत रूड़ (स्थूल) ढंग से कही गयी है। और पुराना ढंग सभी रूड़ (स्थूल) था। बहुत विकसित नहीं है कहने का ढंग। ऊपर ठीक कहा है। मांस जलेगा, खून जलेगा, मज्जा जलेगी, क्योंकि तुम बदलोगे पूरे के पूरे। तुम दूसरे आदमी होने वाले हो। तुम्हारी सारी-की-सारी व्यवस्था, सारी कम्पोजीशन (संरचना) बदलने को है। इसलिए साधक की तैयारी में यह भी ध्यान में रखना अत्यन्त जरूरी है।

●

१८. प्रश्नोत्तर-चर्चा

बम्बई, रात्रि, दिनांक १२ जुलाई, १९७०

•

कुण्डलिनी व अध्यात्म की अज्ञात—अपरिचित गहराइयों में

प्रश्नकर्ता : नारगोल-शिविर में आपने कहा कि योग, आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध का आविष्कार ध्यान की अवस्थाओं में हुआ तथा ध्यान की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न आसन और मुद्राएँ बन जाती हैं जिन्हें देखकर साधक की स्थिति बतायी जा सकती है। इसके उल्टे यदि वे आसन और मुद्राएँ सीधे की जायें तो ध्यान की वही भावदशा बन सकती है। तब क्या आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्धों के अभ्यास से ध्यान उपलब्ध हो सकता है? ध्यान-साधना में उनका क्या महत्त्व और उपयोग है?

१. ध्यान में घटित योग आसन, प्राणायाम और मुद्राएँ—विशिष्ट आन्तरिक रूपान्तरणों के लक्षण

आचार्यश्री : प्रारम्भिक रूप से ध्यान ही उपलब्ध हुआ। लेकिन ध्यान के अनुभव से ज्ञात हुआ कि शरीर बहुत-सी आकृतियाँ लेना शुरू करता है। असल में जब भी मन की एक दशा होती है तो उसके अनुकूल शरीर भी एक आकृति लेता है। जैसे जब आप प्रेम में होते हैं तब आपका चेहरा और ढंग का हो जाता है, जब आप क्रोध में होते हैं तो और ढंग का हो जाता है। जब आप क्रोध में होते हैं तब आपके दाँत भिंच जाते हैं, मुट्ठियाँ बँध जाती हैं, शरीर लड़ने को या भागने को तैयार हो जाता है। ऐसे ही जब आप क्षमा में होते हैं तब मुट्ठी कभी नहीं बँधती, हाथ खुला हुआ होता है। क्षमा का भाव अगर किसी

आदमी में हो तो वह क्रोध की भाँति मुट्ठी बाँधकर नहीं रह सकता। जैसे मुट्ठी बाँधना हमला करने की तैयारी है, वैसे मुट्ठी खोल कर खुला हाथ कर देना हमले से मुक्त करने की सूचना है। वह अभय देना है। मुट्ठी बाँधना दूसरे को भय देना है। शरीर का उपयोग ही यही है कि मन जिस अवस्था में हो शरीर तत्काल उस अवस्था के योग्य तैयार हो जाय। शरीर मन का अनुगामी है। वह पीछे अनुगमन करता है। तो साधारण स्थिति में यह तो हमें पता है कि एक आदमी क्रोध में क्या करेगा। यह भी पता है कि प्रेम में क्या करेगा। यह भी पता है कि श्रद्धा में क्या होगा। लेकिन और गहरी स्थितियों का हमें कोई पता नहीं है।

जब भीतरी चित्त में वे गहरी स्थितियाँ पैदा होती हैं तब भी शरीर में बहुत-कुछ होता है। मुद्राएँ बनती हैं जो कि बड़ी सूचक हैं, जो भीतर की खबर लाती हैं। आसन भी बनते हैं जो कि परिवर्तन के सूचक हैं। असल में भीतर की स्थितियों की तैयारी के समय तो बनते हैं आसन। और भीतर की स्थितियों की खबर देने के समय बनती हैं मुद्राएँ। भीतर जब एक परिवर्तन चलता है तो शरीर को भी उस नये परिवर्तन के योग्य एडजस्टमेण्ट (सन्तुलन) खोजना पड़ता है।

अब भीतर यदि कुण्डलिनी जाग गयी है तो उस कुण्डलिनी के लिए मार्ग देने के लिए शरीर आड़े-तिरछे न मालूम कितने रूप लेगा। वह मार्ग कुण्डलिनी को भीतर मिल सके तो शरीर की रीढ़ बहुत तरह के तोड़ करेगी। जब कुण्डलिनी जाग रही हो तो सिर भी विशेष स्थितियाँ लेगा। जब कुण्डलिनी जाग रही है तो शरीर को कुछ ऐसी स्थितियाँ लेनी पड़ेंगी जो उसने कभी नहीं ली। जैसे जब हम जागते हैं तो शरीर खड़ा होता है या बैठता है। जब हम सोते हैं तब खड़ा और बैठा नहीं रह जाता। उसे लेटना पड़ता है।

समझ लें एक आदमी ऐसा पैदा हो जो सोना न जानता हो जन्म से साथ, तो वह कभी लेटेगा नहीं। तीस वर्ष की उम्र में उसको पहली दफे नींद आये तो वह पहली दफे लेटेगा। क्योंकि उसके भीतर की चित्त-दशा बदल रही है और वह नींद में जा रहा है, तो उसको बड़ी हैरानी होगी कि लेटना अब तक तो कभी घटित नहीं हुआ, आज वह पहली दफा लेट क्यों रहा है। अब तक वह बैठता था, उठता था, चलता था, सब करता था, लेटता भर नहीं था। अब नींद की स्थिति बन सके भीतर इसलिए लेटना बड़ा सहयोगी है। क्योंकि लेटने के साथ ही मन को एक व्यवस्था में जाने में सरलता हो जाती है। लेटने में भी अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग स्थितियाँ होती हैं, क्योंकि व्यक्तियों के चित्त भिन्न होते हैं। जैसे जंगली आदमी तकिया नहीं रखता है, लेकिन सभ्य आदमी बिना तकिया के नहीं सो सकता। जंगली आदमी इतना कम सोचता है कि उसके सिर की तरफ खून का प्रवाह बहुत कम होता है। और नींद के लिए जरूरी है कि सिर की ओर खून

का प्रवाह कम हो जाय। अगर प्रवाह ज्यादा हो तो नींद नहीं आयगी। क्योंकि सिर के स्नायु शिथिल नहीं हो पायेंगे, विश्राम में नहीं जा पायेंगे। उनमें खून दौड़ता रहेगा। इसलिए आप तकिये पर तकिये रखते चले जाते हैं। जैसे आदमी शिक्षित होता है, सुसंस्कृत होता है, तकिया ज्यादा होती चली जाती है। क्योंकि गर्दन इतनी ऊँची होनी चाहिए कि खून का प्रवाह कम हो जाय सिर की ओर। जंगली आदमी बिना तकिये के सो सकता है।

हमारे शरीर की यह स्थितियाँ हमारे चित्त की स्थिति के अनुकूल बनती हैं। तो हमारे भीतर की ऊर्जा के जागरण और विभिन्न रूपों में गति करने से आसन बनने शुरू होते हैं। विभिन्न चक्र भी शरीर को विभिन्न आसनों में ले जाते हैं और मुद्राएँ पैदा होती हैं। जब तुम्हारे भीतर की स्थिति बनने लगती है तब भी तुम्हारे हाथ, तुम्हारे चेहरे, तुम्हारी आँख की पलकें सबकी मुद्राएँ बदल जाती हैं। यह ध्यान मे होता है। लेकिन इससे उलटी बात भी स्वाभाविक ख्याल में आयी है कि यदि हम इन क्रियाओं को करें तो क्या ध्यान हो जायगा? इसे समझना जरूरी है।

ध्यान में ये क्रियाएँ होती हैं लेकिन फिर भी अनिवार्य नही है। यानी ऐसा नहीं है कि सभी साधकों को एक सी क्रिया हो। एक कण्डीशन (शर्त) ख्याल में रखना जरूरी है। क्योंकि प्रत्येक साधक की चित्त की और शरीर की स्थिति भिन्न है। तो सभी साधकों को एक जैसा ही होगा, ऐसा नही है। अब जैसे किसी साधक के चित्त में, मस्तिष्क में अगर खून की गति बहुत कम है और कुण्डलिनी जागरण के लिए सिर में खून की गति की ज्यादा जरूरत है उसके शरीर को,तो वह तत्काल अनजाने ही शीर्षासन में चला जायगा। लेकिन सभी नहीं चले जायेंगे। क्योंकि सभी के सिर में खून की स्थिति और अनुपात अलग-अलग है। सबकी अपनी जरूरत अलग-अलग है। तो प्रत्येक साधक के स्थिति के अनुकूल बनना शुरू होगा और सबकी स्थितियाँ एक जैसी नहीं हैं।

२. आसनों व मुद्राओं से चित्त में परिवर्तन सम्भव है, लेकिन निश्चित नहीं

एक तो यह फर्क पड़ेगा कि जब ऊपर से कोई आसन करेगा तो हमें कुछ भी पता नहीं कि वह उसकी जरूरत है या नहीं है। आसन कभी सहायता भी पहुँचा सकता है और कभी नुकसान भी पहुँचा सकता है। अगर उसकी जरूरत नहीं है तो नुकसान पड़ेगा। अगर उसकी जरूरत है तो फायदा हो जायगा। लेकिन वह अनिश्चय का मामला होगा। यह एक कठिनाई है। दूसरी कठिनाई यह है कि जब भीतर कुछ होता है और उसके साथ बाहर भी कुछ होता है तब तो भीतर

से ऊर्जा बाहर की तरफ सक्रिय होती है। जब हम बाहर कुछ करते हैं तब वह केवल अभिनय होकर भी रह जा सकता है।

जैसे कि मैंने कहा कि जब हम क्रोध में होते हैं तो मुट्ठियाँ बँध जाती हैं। लेकिन मुट्ठियाँ बँध जाने से क्रोध नहीं आ सकता। हम मुट्ठियाँ बाँधकर बिलकुल अभिनय कर सकते हैं और भीतर क्रोध बिलकुल न आये। फिर भी अगर भीतर क्रोध लाना हो तो मुट्ठियाँ बाँधना सहयोगी सिद्ध हो सकता है। अनिवार्यतः भीतर क्रोध पैदा होगा यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन मुट्ठी न बँधने और बँधने में अगर चुनाव करना हो तो बाँधने में क्रोध के पैदा होने की सम्भावना बढ़ जायगी बजाय मुट्ठी खुले होने के। इतनी थोड़ी-सी सहायता मिल सकती है। अब जैसे एक आदमी शान्त स्थिति में आ गया तो उसके हाथ की शान्त मुद्रा बनेगी। लेकिन एक आदमी हाथ की शान्त मुद्राएँ बनाता रहे तो चित्त अनिवार्य रूप से शान्त होगा, यह निश्चित नही है। हाँ, फिर भी शरीर को विशेष स्थिति में चित्त को शान्त होने में सहायता मिलेगी। क्योंकि शरीर तो अपनी अनुकूलता जाहिर कर देगा कि हम तैयार हैं। अगर चित्त को बदलना हो तो वह बदल जाय। लेकिन फिर भी सिर्फ शरीर की अनुकूलता से चित्त नहीं बदल जायगा, और उसका कारण यही है कि चित्त तो आगे है, शरीर सदा अनुगामी है। इसलिए चित्त बदलता है, तब तो शरीर बदलता ही है। लेकिन शरीर के बदलने से सिर्फ चित्त के बदलने की सम्भावना भर पैदा होती है। बदलाहट निश्चित ही हो नही जाती।

३. सीधे आसन व मुद्राओं के अभ्यास से चित्त में परिवर्तन का भ्रम

इसलिए भ्रान्ति का डर है कि कोई आदमी आसन ही करता रहे, मुद्राएँ ही सीखता रहे और समझ ले कि बात पूरी हो गयी। ऐसा हुआ है। हजारों वर्षों तक ऐसा हुआ है कि कुछ लोग आसन-मुद्राएँ ही करते रहे हैं और समझते हैं कि योग साध रहे हैं। धीरे-धीरे योग से ध्यान तो ख्याल से उतर गया। अगर कहीं तुम किसी से कहो कि वहाँ योग की साधना होती है तो जो ख्याल आता है तो वह यह आता है कि आसन, प्राणायाम इत्यादि होता होगा। इसलिए मैं जरूर यह कहता हूँ कि अगर साधक की जरूरत समझी जाय तो उसके शरीर की कुछ स्थितियाँ उसके लिए सहयोगी बनायी जा सकती हैं। लेकिन इनका कोई अनिवार्य परिणाम नहीं है। इसलिए काम सदा भीतर से ही शुरू करने के मैं पक्ष में हूँ। बाहर से शुरू करने के पक्ष में नहीं हूँ।

४. भीतर से सम्भाव्य वृत्तियों के रेचन के लिए बाह्य सहयोग सार्थक

फिर अगर भीतर से कुछ शुरू होता है तो उसका अर्थ भी समझा जा सकता है। जैसे कि एक साधक ध्यान में बैठा है और मुझे लगता है कि उसका रोना फूटना

चाहता है, लेकिन वह रोक रहा है। अब यह मुझे दिखायी पड़ रहा है कि अगर वह रो ले दस मिनट तो उसकी गति हो जाय, केथार्सिस (रेचन) हो जाय उसका। लेकिन वह रोक रहा है, वह सम्भाल रहा है अपने को कि कहीं रोना न निकल जाय। इस साधक को अगर हम कहें कि अब तुम रोको मत, तुम अपनी ही तरफ से रो लो। तुम रोओ। तो यह दो मिनट तो अभिनय की तरह रोयेगा, तीसरे मिनट से इसका रोना सही और ठीक हो जायगा, ऑथेन्टिक (प्रामाणिक) हो जायगा। क्योंकि रोना तो भीतर से फूटना ही चाह रहा था। यह रोक रहा था। इसकी रोने की प्रक्रिया रोकने को तोड़ देगी और जो भीतर से बह रहा था, बह जायगा।

अब जैसे कि एक साधक नाचने की स्थिति में है, लेकिन अपने को अकड़ा कर खड़ा किये हुए है। अगर हम उससे कह दें कि नाचो तो प्राथमिक चरण मे तो वह अभिनय ही शुरू करेगा, क्योंकि अभी वह नाच निकला नही है। लेकिन यदि वह अपनी तरफ से नाचना शुरू करे, तो यह भीतर से नाच के फूटने की तैयारी हुई। थोड़ी देर बाद भीतर नाचना आप ही आप फूट पड़ेगा। इन दोनों का तत्काल मेल हो जायगा। अगर इसके भीतर नाचने का कोई कारण ही नहीं है और उसको हम कहें कि नाचो तो वह नाचता रहेगा, लेकिन भीतर कुछ भी नहीं होगा।

इसलिए हजार बातें ध्यान में रखनी जरूरी हैं। जो भी मैं कहता हूँ उसमें बहुत-सी शर्तें हैं। उन सारी शर्तों को ख्याल में रखोगे तो बात ख्याल में आ सकती है। और अगर इनको ख्याल में न रखनी हो तो सबसे सरल यह है कि भीतर से यात्रा शुरू करो और बाहर से जो भी होता हो उसे रोको मत। उससे लड़ो मत तो सब अपने से हो जायगा।

प्रश्नकर्ता : आजकल आप जिस प्रयोग की बात कर रहे हैं उसमें बैठ कर प्रयोग करने में और खड़े होकर प्रयोग करने में क्या फिजिकल (शरीरगत) और साइकिक (मनोगत) अन्तर पड़ते हैं ?

५. खड़े होकर ध्यान का प्रयोग करने से निद्रा व मूर्छा की सम्भावना कम

आचार्यश्री : बहुत अन्तर पड़ता है। जैसा कि मैंने अभी कहा, हमारे शरीर की प्रत्येक स्थिति हमारे मन की किसी विशेष स्थिति से कहीं गहरे में जुड़ी है और समानान्तर (पैरेलल) है। अगर हम किसी आदमी को लिटा कर कहें कि होश रखो तो रखना मुश्किल हो जायगा। अगर खड़े होकर कहें कि होश रखो तो आसान हो जायगा। अगर खड़े होकर हम कहें कि सो जाओ तो मुश्किल हो जायगा। अगर लिटा कर हम कहें कि सो जाओ तो आसान हो जायगा। तो इस प्रयोग में दोहरी प्रक्रियाएँ हैं। प्रयोग का आधा हिस्सा सम्मोहन का है, जिसमें डर है कि साधक सो न जाय, तन्द्रा में न चला जाय। खड़ा रहे तो इस डर को थोड़ा-सा तोड़ने में सहायता मिलती है। सम्भावना कम हो गयी उसकी सोने की। इस

प्रयोग का दूसरा हिस्सा साक्षी-भाव का, जागरण (अवेयरनेस) का है। लेटने में अवेयरनेस (सजगता) प्राथमिक रूप से रखनी कठिन है, अन्तिम रूप से रखना आसान है। खड़ा होकर होश रखना सदा आसान है। तो होश रह सकेगा खड़े होकर, साक्षी-भाव रह सकेगा और दूसरी बात सम्मोहन की जो प्रक्रिया है प्राथमिक, वह निद्रा में ले जाए, इसकी सम्भावना कम हो जायेगी।

६. खड़े होने पर प्रतिक्रियाओं में तीव्रता सम्भव

और दो-तीन बातें हैं। जैसे जब तुम खड़े हो तब शरीर में जो मुवमेण्ट्स (गतियाँ) होने हैं वे मुक्त भाव से हो सकेंगे। लेट कर उतने मुक्त भाव से न हो सकेंगे। बैठकर भी आधा शरीर तो कर ही न पायेगा। समझलें, पैर को नाचना है और तुम बैठे हो तब पैर नाच न पायेंगे। और तुम्हें पता भी नहीं चलेगा, क्योंकि पैरों के पास भाषा नहीं है कि साफ तुमसे कह दें कि अब हमें नाचना है। बहुत सूक्ष्म इशारे हैं जिनको हम पकड़ नहीं पाते। अगर तुम खड़े हो तो पैर उठने लगेंगे और तुम्हें सूचना मिल जायेगी कि पैर नाचना चाहते हैं। लेकिन अगर तुम बैठे हो तो यह सूचना नहीं मिलेगी।

असल में बैठी हुई हालत में ध्यान करने का प्रयोग ही शरीर में होने वाली इन गतियों को रोकने के लिए था। इसलिए ध्यान में पहले सिद्धासन या पद्मासन या सुखासन का अभ्यास करना पड़ता था जिनमें शरीर डोल न सके। तो शरीर में जो ऊर्जा जगेगी उसकी सम्भावना बहुत पहले से है। उसमें बहुत-कुछ होगा। नाचोगे, गाओगे, रोओगे, कूदोगे, दौड़ोगे। तो ये स्थितियाँ सदा से पागल की समझी जाती रही हैं। कोई दौड़ रहा है, नाच रहा है, रो रहा है, चिल्ला रहा है। साधक भी यह करेगा तो पागल मालूम पड़ेगा। समाज के सामने वह पागल न मालूम पड़े इसलिए पहले वह सुखासन, सिद्धासन या पद्मासन का कठोर अभ्यास करेगा जिसमें कि शरीर के रंच-मात्र हिलने का डर न रह जायगा। और जो बैठक है पद्मासन की या सिद्धासन की, वह ऐसी है कि उसमें तुम्हारे पैर जकड़ जाते हैं, जमीन पर तुम्हारा आयतन ज्यादा हो जाता है और ऊपर तुम्हारा आयतन कम होता जाता है। तुम एक मन्दिर या एक पिरामिड की भाँति हो जाते हो जो नीचे चौड़ा है, और ऊपर सँकरा है। तब मूवमेण्ट (गति) की सम्भावना सबसे कम हो जाती है।

मूवमेण्ट (गति) की सर्वाधिक सम्भावना तुम्हारे खड़े होने में है, जब कि नीचे कोई जड़ बना कर चीज नहीं बैठ गयी है। तुम्हारी जो पालथी है वह नीचे जड़ बनाने का काम करती है। जमीन के ग्रेविटेशन (गुरुत्वाकर्षण) पर तुम्हारा बहुत बड़ा हिस्सा शरीर जम जाता है। वह उसे पकड़ लेता है। फिर हाथ भी तुम इस भाँति रखते हो कि उनके डोलने की सम्भावना कम रह जाती है। फिर

रीढ़ को भी सीधा और थिर रखना है। और पहले इस आसन का अभ्यास करना है काफी, जब इसका अभ्यास हो जाय तब ध्यान में जाना है।

७. दूसरे भाव-शरीर से रेचन करने की अपेक्षा स्थूल शरीर से रेचन करना बहुत सरल

मेरी दृष्टि में इससे उल्टी बात है। मेरी दृष्टि में पागल और हममें कोई बुनियादी फर्क नहीं है। हम सब दबे हुए पागल हैं, सप्रेस्ड इनसेनिटी (दमित पागलपन) है हमारी। या कहना चाहिए हम जरा नार्मल (सामान्य) ढंग के पागल हैं। या कहना चाहिए हम औसत (एवरेज) पागल हैं। हमारा सब पागलों से तालमेल खाता है। हमारे भीतर जो पागल थोड़े आगे निकल जाते हैं वे जरा दिक्कत में पड़ जाते हैं। लेकिन हम सबके भीतर पागलपन है और हम सबका पागलपन भी अपना निकास खोजता है।

जब तुम क्रोध में होते हो तब एक अर्थ में तुम मोमेण्टरी मैडनेस (क्षणिक पागलपन) में होते हो। उस वक्त तुम वे काम करते हो जो तुमने होश में कभी न किये होते। तुम गालियाँ बकते हो, पत्थर फेंकते हो, सामान तोड़ सकते हो, छत से कूद सकते हो, कुछ भी कर सकते हो। यह पागल करता तो हम समझ लेते। लेकिन क्रोध में एक आदमी करता है तो हम कहते हैं, वह क्रोध में था। लेकिन था तो वही। ये चीजें उसके भीतर अगर नहीं थीं तो आ नहीं सकतीं। ये उसके भीतर हैं, लेकिन हम इन सबको सम्भाले हुए हैं। मेरी अपनी समझ यह है कि ध्यान के पहले इन सबका निकास हो जाना जरूरी है। जितना इनका निकास हो जायगा, उतना तुम्हारा चित्त हल्का हो जायगा।

और इसलिए पुरानी जो साधना की प्रक्रिया थी, जिसमें तुम सिद्धासन लगाकर बैठते, उसमें जिस काम में वर्षों लग जाते वह इस प्रक्रिया में महीनों में पूरी हो जायेगी। उसमें जन्मों लग जाते, इसमें दिनों में हो सकती है। क्योंकि वृत्तियों का निष्कासन तो उस प्रक्रिया में भी करना पड़ता था। लेकिन उस प्रक्रिया में रेचन की प्रक्रिया फिजिकल बॉडी (स्थूल शरीर) से बन्द करके इथरिक बॉडी (भाव-शरीर) से करना पड़ता था। अब वह जरा दूसरी बात है। करना तो पड़ता ही था, रोना तो पड़ता ही था। क्योंकि रोना, हँसना, नाचना, चिल्लाना इत्यादि भीतर है तो उसका बाहर निकलना जरूरी है। लेकिन अगर फिजिकल बॉडी (स्थूल शरीर) का तुमने गहरा अभ्यास किया है और तुम उसे थिर रख सकते हो वर्षों के लिए, तो फिर इन सबका निकास तुम दूसरे इथरिक बॉडी (भावशरीर) से कर सकते हो। तब किसी को दिखायी न पड़ेगा, सिर्फ तुमको दिखायी पड़ेगा। तब तुमने समाज से एक सुरक्षा कर ली है। अब किसी को पता नहीं चल रहा है कि तुम नाच रहे हो, और भीतर

तुम नाच रहे हो। यह नाच वैसा ही होगा जैसे तुम स्वप्न में नाचते हो। भीतर तुम नाचोगे, भीतर तुम रोओगे, भीतर तुम हँसोगे, लेकिन तुम्हारा भौतिक शरीर इसकी कोई खबर बाहर नहीं देगा। वह जड़वत् बैठा रहेगा। उस पर भीतर के कोई कम्पन प्रकट नहीं होंगे।

८. बाह्य शारीरिक अभ्यास से इथरिक (भाव) शरीर की सूक्ष्म तरंगों के कुंठित हो जाने का खतरा

मेरी अपनी मान्यता है कि इतनी परेशानी छोटी-सी बात के लिए उठानी बेमानी है। और वर्षों किसी आदमी को आसन का अभ्यास करवा कर फिर ध्यान में ले जाने का कोई प्रयोजन नहीं है। इसमें दूसरी और भी सम्भावनाएँ हैं। इसमें बहुत सम्भावना यह है कि स्थूल शरीर का अगर बहुत गहरा अभ्यास हो और वह आदमी अगर अपने भौतिक शरीर का दमन कर दे तो हो सकता है इथरिक (भाव) शरीर में कम्पन न हो सके। और वह सिर्फ जड़ की भाँति बैठा रहे। और उस हालत में भीतर तो कोई गहरी प्रक्रिया न हो और बाहर से बैठने का अभ्यास हो जाय। और यह भी डर है कि उस हालत में चूँकि ये सारी गतियाँ न हो पायें, ये सब सप्रेस्ड (दमित) इकट्ठी रहें तो वह कभी भी पागल हो सकता है।

पुराना साधक अनेक बार पागल होता देखा गया है। उसको उन्माद आता था। जिस प्रक्रिया को मैं कह रहा हूँ इसको अगर पागल भी करेगा तो महीने दो महीने के भीतर पागलपन के बाहर हो जायगा। साधारण आदमी इस प्रक्रिया में कभी भी पागल नहीं हो सकता। क्योंकि हम पागलपन को दबाने की कोशिश ही नहीं कर रहे हैं, हम उसको निकालने की कोशिश कर रहे हैं। पुरानी साधना ने हजारों लोगों को पागल किया है। हम उसको अच्छे नाम देते थे। कहते थे हर्षोन्माद (एक्सटेसी) है। हम कहते थे यह आदमी मस्त हो गया, औलिया हो गया, यह हो गया, वह हो गया। लेकिन वह हो जाता था पागल। उसने किसी चीज को इस बुरी तरह से दबाया था कि अब वह वश के बाहर हो गयी है।

९. इस प्रक्रिया में पहला काम रेचन का

इस प्रक्रिया में दोहरा काम है। इसमें पहला काम केथार्सिस (निकास) का है ताकि तुम्हारे भीतर जो कचरा है वह बाहर फिक जाय। पहले तुम हल्के हो जाओ, तुम इतने हल्के हो जाओ कि तुम्हारे भीतर पागलपन की सारी सम्भावना क्षीण हो जाय। फिर तुम भीतर यात्रा करो। तो इस प्रक्रिया में जिसमें प्रकट पागलपन दिखायी पड़ता है, वह बड़े गहरे में पागलपन से मुक्ति की प्रक्रिया है। और मैं पसन्द करता हूँ कि जो है हमारे भीतर, वह निकल जाय। उसका बोझ, उसका तनाव, उसकी चिन्ता छूट जानी चाहिए। और यह बड़े मजे की बात है

कि अगर पागलपन तुम पर आये तब तुम उसके मालिक नहीं होते। लेकिन जिस पागलपन को तुम लाये हो तुम उसके सदा मालिक हो। और एक बार तुम्हें पागलपन की मालकियत का पता चल जाय तो तुम पर ऐसा पागलपन कभी नहीं आ सकता जो तुम्हारा मालिक हो जाय।

अब एक आदमी अपनी मौज से नाच रहा है, गा रहा है, चिल्ला रहा है, रो रहा है, हँस रहा है। वह सब कर रहा है जो पागल करता है। लेकिन सिर्फ एक फर्क है कि पागल पर ये घटनाएँ होती हैं, वह कर रहा है। उसके को-आपरेशन (सहयोग) के बिना ये नहीं हो रही हैं और एक सेकेण्ड में चाहे कि बस तो वह सब बन्द हो जाता है। इस पर अब पागलपन कभी उतर नहीं सकता। क्योंकि पागलपन को इसने जिया है, देखा है, परिचित हुआ है। यह उसकी वालन्टरी (स्वेच्छा की) चीज हो गयी है। पागल होना भी उसकी स्वेच्छा के अन्तर्गत आ गया। हमारी सभ्यता ने हमें जो भी सिखाया है उसमें पागलपन हमारी स्वेच्छा के बाहर हो गया है। वह नान-वालन्टरी हो गया है। तो जब पागलपन आता है तो हम कुछ भी नहीं कर सकते।

१०. मनुष्य-सभ्यता के पागलपन का ध्यान द्वारा निकास अत्यावश्यक

इस प्रक्रिया को आने वाली सभ्यता के लिए मैं बहुत कीमती मानता हूँ। क्योंकि आने वाली पूरी सभ्यता रोज पागलपन की तरह बढ़ती जाती है। और प्रत्येक को पागलपन के निकास की जरूरत है। और कोई उपाय भी नहीं है। अगर वह एक घण्टा ध्यान में इसको निकालता है तो लोग उसके लिए धीरे-धीरे राजी हो जाते हैं। वह जानते है कि वह ध्यान कर रहा है। अगर इसको वह सड़क पर निकालता है तो पुलिस उसको पकड़ कर ले जायेगी। अगर उसको क्रोध में निकालता है तो सम्बन्ध बिगड़ते और कुरूप होते हैं। निकलता तो है ही, नहीं तो मुश्किल में पड़ जायगा। निकलता रहेगा। तरकीबें खोजता रहेगा। कभी शराब पीकर निकाल देगा, कभी ट्विस्ट (विशेष नाच) करके निकाल लेगा। लेकिन उतना उपद्रव क्यों लेना? अब ट्विस्ट है या और तरह के नाच हैं, वे सब आकस्मिक नहीं हैं। मनुष्य का शरीर भीतर से मूव (गति) करना चाहता है। हमारे पास मूवमेण्ट (गति) की कोई जगह नहीं रह गयी है। तो वह इन्तजाम करता है, फिर इन्तजाम में और जाल बुनते हैं। तो ध्यान जो है वह बिना इन्तजाम के निकालना है। हम कोई इन्तजाम नहीं कर रहे हैं उसका। हम सिर्फ निकाल रहे हैं और हम मानते हैं कि वह भीतर है और निकल जाना चाहिए।

अगर हम एक-एक बच्चे को शिक्षा के साथ इस केथार्सिस (रेचन) को भी सिखा सकें तो दुनिया में पागलों की संख्या एकदम गिराई जा सकती है। पागल होने की बात ही खत्म की जा सकती है। लेकिन वह रोज बढ़ती जा रही है।

और जितनी सभ्यता बढ़ेगी, उतनी बढ़ेगी। क्योंकि सभ्यता इतना ही सिखायेगी कि रोको। सभ्यता न तो जोर से हँसने देती है, न जोर से रोने देती है, न नाचने देती है, न चिल्लाने देती है। सभ्यता सब तरफ से दबा डालती है। और हमारे भीतर जो-जो होना चाहिए वह रुकता चला जाता है। फिर फूटता है और जब वह फूटता है तब तुम्हारे वश के बाहर हो जाता है। तो केथार्सिस (रेचन) इसका पहला हिस्सा है जिसमें इसको निकालना है।

इसलिए मैं शरीर से बड़े होने के पक्ष में हूँ। क्योंकि तब शरीर की जरा-सी भी गति तुम्हें पता चलेगी और तुम गति कर पाओगे और तुम पूरे मुक्त हो जाओगे। इसलिए मैं कहता हूँ कि साधक जब अपने कमरे में प्रयोग करता हो तो कमरा बन्द रखे। न केवल खड़ा हो, बल्कि नग्न भी हो। क्योंकि वस्त्र भी उसको न रोकने वाले बनें। वह सब तरह से स्वतन्त्र हो गति करने को। जरा-सी गति हो तो उसके सारे व्यक्तित्व में कहीं कोई अवरोध न हो जो उसे रोक रहा हो। तो बहुत शीघ्रता से ध्यान में गति हो जायेगी और जो हठयोग और दूसरे योगों ने जन्मों में किया था, वर्षों में किया था, वह इस ध्यान के प्रयोग से दिनों में हो सकता है।

११. आधुनिक दुनिया में तीव्र प्रभावकारी साधना की जरूरत

और अब दुनिया में वर्षों और जन्मों वाले योग नहीं टिक सकते हैं। अब लोगों के पास दिन और घण्टे भी नहीं हैं। अब ऐसी प्रक्रिया चाहिए जो तत्काल फलदायी मालूम होने लगे कि एक आदमी अगर सात दिन का संकल्प कर ले तो फिर सात दिन में ही उसे पता चल जाय कि हुआ है बहुत-कुछ। वह आदमी दूसरा हो गया है। अगर सात जन्मों में पता चले तो कोई प्रयोग नहीं करेगा। पुराने वाले जन्मों के थे। वे कहते थे इस जन्म में करो, अगले जन्म में फल मिलेगा। वे बड़े प्रतीक्षा वाले धैर्यवान लोग थे। वे अगले जन्म की प्रतीक्षा में इस जन्म मे भी साधना करते थे। अब कोई नहीं मिलेगा। फल आज न मिलता हो तो कल तक की प्रतीक्षा करने के लिए तैयारी नहीं है।

कल का कोई भरोसा भी नहीं है। जिस दिन से हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिरा है उस दिन से 'कल' खत्म हो गया है। अमरीका के हजारों-लाखों लड़के और लड़कियाँ कालेज में पढ़ने जाने को तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं हम पढ़-लिखकर निकलेंगे तब तक दुनिया बचेगी? कल का कोई भरोसा नहीं है! वे कहते हैं हमारा समय नष्ट मत करो। जितने दिन हमारे पास हैं हम जी लें। हाई-स्कूल से लड़के और लड़कियाँ स्कूल छोड़ कर भागे जा रहे हैं। कहते हैं, युनिवर्सिटी भी नहीं जायेंगे। क्योंकि छह साल में युनिवर्सिटी से निकलना है। छह साल में दुनिया बचेगी? बेटा बाप से पूछ रहा है, छह साल दुनिया के

बचने का आश्वासन है ? तो छह साल जो थोड़े बहुत हमारी जिन्दगी में हैं हम क्यों न उनका उपयोग कर लें।

जहाँ कल इतना संदिग्ध हो गया है वहाँ तुम जन्मों की बातें करोगे, बेमानी है। कोई सुनने को राजी नहीं है, न कोई सुन रहा है। इसलिए मैं कह रहा हूँ, आज प्रयोग हो और आज परिणाम चाहिए। और अगर एक घण्टा कोई मुझे आज देने को राजी है तो आज ही उसी घण्टे के बाद परिणाम का बोध होना चाहिए तभी वह कल घण्टा दे सकेगा; नहीं तो कल के घण्टे का कोई भरोसा नहीं है। तो युग की जरूरत बदल गयी है। बैलगाड़ी की दुनिया थी, उस वक्त सब धीरे-धीरे चल रहा था। साधना भी धीरे-धीरे चल रही थी। जेट की दुनिया है। साधना भी धीरे-धीरे नहीं चल सकती। उसे भी तीव्र गतिमान (स्पीडी) होना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : साष्टांग दण्डवत प्रणाम करना, दिव्य पुरुषों के चरणों पर माथा रखना या हाथों से चरण स्पर्श करना, पवित्र स्थानों में माथा टेकना, दिव्य पुरुषों का अपने हाथ से साधक के सिर अथवा पीठ को छूकर आशीर्वाद देना, सिक्खों और मुसलमानों का सिर ढांक कर गुरुद्वारा और मस्जिद जाना, इन सब प्रथाओं का कुण्डलिनी-ऊर्जा के सन्दर्भ में ऑकल्ट व स्प्रीचुअल (परा-वैज्ञानिक व आध्यात्मिक) अर्थ और महत्त्व समझाने की कृपा करें।

१२. शक्ति के प्रवाह को ग्रहण करने के लिए झुकना जरूरी

आचार्यश्री : अर्थ तो बहुत है। जैसा मैंने कहा, जब हम क्रोध से भरते हैं तो किसी को मारने का मन होता है, ऐसा मन होता है कि उसके सिर पर पैर रख दें। चूँकि पैर रखना बहुत अड़चन की बात हो गयी, इसलिए लोग जूता मार देते हैं। एक पाँच-छह फुट के आदमी के सिर पर पैर रखना बहुत मुश्किल की बात है, इसलिए सिम्बालिक (प्रतीकात्मक) रूप में उतार कर जूता उसके सिर पर मार देते हैं। लेकिन कोई नहीं पूछता दुनिया में कि दूसरे के सिर में जूता मारने का क्या अर्थ है ? ऐसा नहीं है कि कोई एक कौम, कोई एक देश में ऐसा है। यह युनिवर्सल (सार्वभौम) तथ्य है कि क्रोध में दूसरे के सिर पर पैर रखने का मन होता है। और कभी जब आदमी निपट जंगली रहा होगा तो जूता तो नहीं था उसके पास, वह सिर पर पैर रख कर ही मानता था। ठीक इससे उल्टी स्थितियाँ भी हैं। जैसे क्रोध की स्थिति है तब किसी के सिर पर पैर रखने का मन होता है, वैसे ही जब श्रद्धा की स्थिति है तब किसी के पैर में सिर रखने का मन होता है। इसके अर्थ हैं। उतने ही जितने पहले थे।

कोई क्षण है जब तुम किसी के सामने पूरी तरह झुक जाना चाहते हो और झुकने के क्षण वही हैं कि तुम्हें दूसरे के पास से अपनी तरफ ऊर्जा का प्रवाह मालूम पड़ता है। असल में जब भी कोई प्रवाह लेना हो तब झुक जाना पड़ता है। नदी

से भी पानी भरना हो तो झुकना पड़ता है। झुकना जो है वह किसी भी प्रवाह को लेने के लिए अनिवार्य है। असल में सब प्रवाह नीचे की तरफ बहते हैं। तो ऐसे किसी व्यक्ति के पास अगर लगे किसी को कि कुछ बह रहा है उसके भीतर से, तो उस क्षण में उसका सिर जितना झुका हो उतना सार्थक है।

१३. शरीर के नुकीले हिस्सों से शक्ति का प्रवाह

फिर शरीर से जो ऊर्जा बहती है वह उसके उन अंगों से बहती है जो प्वाइंटेड (नुकीले) हैं। जैसे हाथ की उँगलियाँ या पैर की उँगलियाँ। सब जगह से ऊर्जा नहीं बहती। शरीर की जो विद्युत्-ऊर्जा है और शरीर से जो शक्तिपात है या शरीर से जो भी शक्तियों का प्रवाह है वह हाथ की उँगलियों या पैर की उँगलियों से होता है। पूरे शरीर से नहीं होता। असल में वहीं से होता है जहाँ नुकीले हिस्से हैं। वहाँ से ऊर्जा बहती है। तो जिसे लेना है ऊर्जा वह तो पैर की उँगलियों पर सिर रख देगा और जिसे देना है ऊर्जा वह हाथ की उँगलियों को दूसरे के सिर पर रख देगा।

यह बड़ी आकल्ट (परा-विज्ञान) और बड़ी गहरी विज्ञान की बातें थी। स्वभावतः बहुत से लोग नकल में उन्हें करेंगे। हजारों लोग सिर पर पैर रखेंगे जिन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। हजारों लोग किसी के सिर पर हाथ रख देंगे जिन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। और तब जो एक बहुत गहरा सूत्र था, धीरे-धीरे औपचारिक बन जायगा। और जब लम्बे अर्से तक वह औपचारिक (फॉर्मल) होगा तो उसकी बगावत भी शुरू होगी। कोई कहेगा यह सब क्या बकवास है। पैर पर सिर रखने से क्या होगा। सिर पर हाथ रखने से क्या होगा। सौ में निन्यानबे मौके पर बकवास है। हो गयी है बकवास। क्योंकि सौ में एक मौके पर अब भी सार्थक है। और कभी तो सौ में सौ मौके पर ही सार्थक थी। क्योंकि कभी वह स्पॉटेनिअस ऐक्ट (सहज कृत्य) थी।

१४. परा-वैज्ञानिक (आकल्ट) बातें औपचारिक होते ही बेमानी

ऐसा नहीं था कि तुम्हें औपचारिक रूप से लगे तो किसी के पैर छुओ। नहीं, किसी क्षण में तुम न रुक पाओ और पैर में गिरना पड़े तो रुकना मत, गिर जाना। और ऐसा नहीं था कि किसी को आशीर्वाद देना है तो उसके सिर पर हाथ रखो ही। यह उसी क्षण रखना था जब तुम्हारा हाथ बोझिल हो जाय और बरसने को तैयार हो और उससे कुछ बहने को राजी हो। और दूसरा लेने को तैयार हो तभी रखने की बात थी। मगर सभी चीजें धीरे-धीरे प्रतीक हो जाती हैं। और जब प्रतीक हो जाती हैं तो बेमानी हो जाती हैं। और जब बेमानी हो जाती हैं तो उनके खिलाफ बातें चलने लगती हैं। और वह बातें बड़ी अपील करती हैं,

आकर्षक लगती हैं। क्योंकि जो बातें बेमानी हो गयी हैं उनके पीछे का विज्ञान तो खो गया होता है। हैं तो बहुत सार्थक और फिर जैसा मैंने पीछे तुम्हें कहा, यह तो जिन्दा आदमी की बात हुई।

१५. शक्ति ग्रहण करने के लिए व्यक्ति का खाली और खुला हुआ होना जरूरी

एक बुद्ध, एक महावीर, एक जीसस के चरणों में कोई सिर रखकर पड़ गया है और उसने अपूर्व आनन्द का अनुभव किया है, उसने एक वर्षा अनुभव की है जो उसके भीतर हो गयी है। इसे कोई बाहर नहीं देख पायेगा। यह घटना बिलकुल आन्तरिक है। उसने जो जाना है वह उसकी बात है। और दूसरे अगर उससे प्रमाण भी माँगेंगे तो उसके पास प्रमाण भी नहीं है। असल में सभी आकल्ट फिनामिना (परा-वैज्ञानिक घटनाओं) के साथ एक कठिनाई है कि व्यक्ति के पास अनुभव होता है, लेकिन समूह को देने के लिए प्रमाण नहीं होता। और इसलिए वह ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि अन्ध विश्वासी होगा। क्योंकि वह आदमी कहता है कि बता नहीं सकते कि क्या होता है, लेकिन कुछ होता है। जिसको नहीं हुआ है, वह कहता है कि हम कैसे मान सकते हैं! वह हमें नहीं हुआ है। तुम किसी भ्रम में पड़ गये हो, किसी भूल में पड़ गये हो। और फिर हो सकता है जिसको ख्याल है कि नहीं होता है वह भी जाकर जीसस के चरणों में सिर रखे। उससे नहीं होगा। तो लौटकर कहेगा कि गलत कहते हो। मैंने भी उन चरणों पर सिर रखकर देख लिया है। वह ऐसा ही है कि एक घड़ा जिसका मुख खुला है वह पानी में झुके और लौटकर दूसरे घड़ों से कहे कि मैं झुका और भर गया। और एक बन्द मुख का घड़ा कहे कि मैं भी जाकर प्रयोग करता हूँ। और वह बन्द मुंह का घड़ा भी पानी में झुके, बहुत गहरी डुबकी लगाये, लेकिन खाली वापस लौट आये और वह कहे कि झुका भी, डुबकी भी लगायी, कुछ नहीं भरता है, गलत कहते हो।

घटना दोहरी है। किसी व्यक्ति से शक्ति का बहना ही काफी नहीं है, तुम्हारी ओपनिंग (खुला होना) भी उतनी ही जरूरी है। और कई बार तो ऐसा मामला है कि दूसरे व्यक्ति से ऊर्जा का बहना उतना जरूरी नहीं है जितना तुम्हारा खुला होना जरूरी है। अगर तुम बहुत खुले हो तो दूसरे व्यक्ति में जो शक्ति नहीं है वह भी उसके ऊपर की, और ऊपर की शक्तियों से प्रवाहित होकर तुम्हें मिल जायगी। इसलिए बड़े मजे की बात है कि जिनके पास नहीं है शक्ति अगर उनके पास भी पूरे खुले हृदय से अपने को छोड़ दे तो उनसे भी उसे शक्ति मिल जाती है। उनसे नहीं आती वह शक्ति। वह सिर्फ माध्यम की तरह प्रयोग में हो जाते हैं। उनको भी पता नहीं चलता, लेकिन यह घटना घट सकती है।

१६. सिर पर कपड़ा बाँध कर साधना करने से ऊर्जा का न बिखरना और वर्तुल बनाना

दूसरी बात है सिर में कुछ बाँध कर गुरुद्वारा या किसी मन्दिर या किसी पवित्र जगह में प्रवेश की। ध्यान में भी बहुत फकीरों ने सिर में कुछ बाँध कर ही प्रयोग करने की कोशिश की। उसका उपयोग है। क्योंकि जब तुम्हारे भीतर ऊर्जा जगती है तो तुम्हारे सिर पर बहुत भारी बोझ की सम्भावना हो जाती है। और अगर तुमने कुछ बाँधा है तो उस ऊर्जा के विकीर्ण होने की सम्भावना नहीं होती है। उस ऊर्जा के वापस आत्मसात् हो जाने की सम्भावना होती है। तो बाँधना बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। अगर तुम ध्यान सिर पर कपड़े बाँधकर करोगे तो तुम फर्क अनुभव करोगे फौरन। क्योंकि जिस काम में तुम्हें पन्द्रह दिन लगते थे उसमें पाँच दिन लगेंगे। क्योंकि तुम्हारी ऊर्जा जब सिर में पहुँचती है तो उसके विकीर्ण होने की, बिखर जाने की सम्भावना है। अगर वह बँध सके और वह वर्तुल बन सके तो उसका अनुभव प्रगाढ़ और गहरा हो जायगा। लेकिन अब तो वह औपचारिक है। मन्दिर में किसी का जाना या गुरुद्वारा में किसी का सिर पर कपड़ा बाँध कर जाना बिलकुल औपचारिक है। उसका अब कोई अर्थ नहीं रह गया है। लेकिन नहीं, उसमें अर्थ है। और व्यक्ति के चरणों में सिर रख कर तो कोई ऊर्जा पायी जा सके, व्यक्ति के हाथ से भी कोई ऊर्जा आशीर्वाद में मिल सकती है। लेकिन, एक आदमी मन्दिर में एक वेदी पर, एक समाधि पर, एक मूर्ति के सामने सिर झुकाता है, इसमें क्या हो सकता है। तो इसमें भी बहुत-सी बातें है। दो-तीन बातें समझ लेने जैसी हैं।

१७. श्रेष्ठ मृत-आत्माओं से सम्बन्ध—जीवित मन्दिर, कब्र (समाधि) द्वारा

पहली बात तो यह है कि यह सारी की सारी मूर्तियाँ एक बहुत ही वैज्ञानिक व्यवस्था से कभी निर्मित की गयी थी। जैसे समझें कि मैं मरने लगूँ और दस आदमी मुझे प्रेम करने वाले हैं, जिन्होंने मेरे भीतर कुछ पाया, खोजा और देखा था तो मेरे मरते वक्त वे मुझसे पूछते हैं कि पीछे भी हम आपको याद करना चाहें तो कैसे कर सकते हैं। तो एक प्रतीक तय किया जा सकता है, मेरे और उनके बीच। जो मेरे शरीर के गिर जाने के बाद उनके काम आ सके। वह कोई भी प्रतीक हो सकता है। वह एक मूर्ति हो सकती है, एक पत्थर हो सकता है, एक वृक्ष हो सकता है, एक चबूतरा हो सकता है, मेरी समाधि हो सकती है, मेरी कब्र हो सकती है, मेरा कपड़ा हो सकता है, मेरी खड़ाऊँ हो सकती है, कुछ भी हो सकता है। लेकिन वह मेरे और उन दोनों के बीच तय होना चाहिए। वह एक समझौता है। वह

उनके अकेले से तय नहीं होगा। उसमें मेरी गवाही और मेरी स्वीकृति और मेरे हस्ताक्षर होने चाहिए कि मैं उनसे कहूँ कि अगर तुम इस चीज को सामने रखकर मुझे स्मरण करोगे तो मैं अभौतिक स्थिति में भी मौजूद हो जाऊँगा। यह मेरा वायदा होना चाहिए। इस वायदे के अनुकूल काम होता है। बिलकुल होता है।

इसलिए ऐसे मन्दिर है जो जीवित हैं और ऐसे मन्दिर हैं जो मृत हैं। **मृत मन्दिर वे हैं जो इकतरफा बनाये गये हैं, जिनमें दूसरी तरफ का कोई आश्वासन नहीं है।** हमारा दिल है, हम एक बुद्ध का मन्दिर बना लें। लेकिन वह मृत मन्दिर होगा। क्योंकि दूसरी तरफ से कोई आश्वासन नहीं है। जीवित मन्दिर भी हैं जिनमें दूसरे तरफ से आश्वासन भी है और उस के आधार पर किसी आदमी का वचन है।

१८. बुद्ध व ईसा जैसे लोगों का मरने के बाद भी अपने वायदों को पूरा करना

तिब्बत में एक जगह थी जो मुश्किल में पड़ गयी है, जहाँ बुद्ध का आश्वासन पिछले २५०० वर्षों से निरन्तर पूरा हो रहा है। पाँच सौ लामाओं की एक छोटी सी समिति है। उन पाँच सौ लामाओं में जब एक लामा मरता है तब बामुश्किल से दूसरे को प्रवेश मिलता है। उसकी पाँच सौ से ज्यादा संख्या नहीं हो सकती, कम नहीं हो सकती। जब एक मरेगा तभी एक जगह खाली होगी और जब एक मरेगा और दूसरे एक को प्रवेश मिलेगा तो शेष सबकी सर्वसम्मति से ही प्रवेश मिल सकता है। यदि एक आदमी भी इनकार करने वाला हो तो प्रवेश नहीं मिल सकेगा। वह जो पाँच सौ लोगों की समिति है, बुद्ध पूर्णिमा के दिन एक विशेष पर्वत पर इकट्ठी होती है और ठीक **निश्चित समय पर, जो समझौते का हिस्सा है, बुद्ध की वाणी सुनायी पड़नी शुरू हो जाती है।**

यह वैसा ही है जैसे कि तुम साँझ को सोओ और तुम सकल्प करके सोओ कि मैं सुबह ठीक पाँच बजे उठ जाऊँ तब तुम्हें घड़ी की और अलार्म की कोई जरूरत नहीं होगी। तुम अचानक पाँच बजे पाओगे कि नींद टूट गयी है। यह मामला इतना अद्भुत है कि इस वक्त तुम घड़ी मिला सकते हो अपने उठने से। इस वक्त घड़ी गलत हो सकती है, तुम गलत नहीं हो सकते। तुम्हारे संकल्प का जब पक्का निर्णय हो तो तुम पाँच बजे उठ जाओगे। अगर तुमने संकल्प पक्का कर लिया कि मुझे फलाँ वर्ष में फलाँ दिन मर जाना है तो दुनिया की कोई ताकत तुम्हें नहीं रोक सकेगी। तुम उस क्षण चले जाओगे। मरने के बाद भी **अगर तुम्हारे संकल्प की दुनिया बहुत प्रगाढ़ है तो तुम मरने के बाद भी अपने वायदे पूरे कर सकते हो।** जैसे जीसस का मरने के बाद दिखायी पड़ना—वह वायदे की बात थी जो पूरी की गयी थी। इसलिए ईसाइयत बड़ी मुश्किल में है। उसके पीछे फिर क्या

हुआ, क्या नहीं हुआ। जीसस दिखायी पड़े या नहीं पड़े, रीसरेक्ट (पुनर्जीवित) हुए या नहीं। वह एक वायदा था जो पूरा किया गया।

१९. विशेष स्थान व मुहूर्त में दिये गये आश्वासन को हजारों साल तक पूरा करना

असल में ऐसे स्थान का नाम ही धीरे-धीरे तीर्थ बन गया जहाँ कोई जीवित वायदा हजारों साल से पूरा किया जा रहा था। फिर योग वायदे को भी भूल गये और जीवित बात को भी भूल गये, समझौते को भी भूल गये। एक बात ख्याल रही कि वहाँ आना-जाना है और वह आते-जाते रहे हैं और अब भी आ-जा रहे हैं। मुहम्मद के भी वायदे हैं और शंकर के भी वायदे हैं, कृष्ण के भी वायदे हैं, बुद्ध और महावीर के भी वायदे हैं। वे सब वायदे हैं। खास जगहों से बँधे हुए हैं खास समय, खास घड़ी और खास मुहूर्त में उनसे सम्बन्ध फिर भी जोड़ा जा सकता है। तो उन स्थानों पर फिर सिर टेक देना पड़ेगा और उन स्थानों पर फिर तुम्हें अपने को पूरा समर्पित कर देना होगा। तभी तुम सम्बन्धित हो पाओगे।

तीर्थ, मन्दिर व समाधियों का भी उपयोग तो है। लेकिन सभी उपयोगी बातें अन्ततः औपचारिक हो जाती हैं और सभी उपयोगी बातें अन्ततः परम्परा बन जाती हैं और मृत और व्यर्थ हो जाती हैं। तब सबको तोड़ डालना पड़ता है ताकि फिर से नये वायदे किये जा सकें और फिर से नये तीर्थ बन सकें और नयी मूर्ति और नया मन्दिर बन सके। वह सब तोड़ना पड़ता है। क्योंकि वह सब मृत हो जाता है। हमें कुछ पता नहीं होता कि उसके पीछे कौन सी लम्बी प्रक्रिया काम कर रही है।

एक योगी था दक्षिण में। एक अंग्रेज यात्री उसके पास आया। उस अंग्रेज यात्री ने कहा कि मैं तो लौट रहा हूँ और अब दुबारा हिन्दुस्तान नहीं आऊँगा। लेकिन आपके अगर दर्शन करना चाहूँ तो क्या करूँ। उस योगी ने अपना एक चित्र उसे दे दिया और कहा कि जब भी तुम द्वार बन्द करके अन्धेरे में इस चित्र पर पाँच मिनट एकटक आँख की पलक झपे बिना देखोगे तो मैं मौजूद हो जाऊँगा। वह तो बेचारा मुश्किल से अपने घर तक पहुँचा। एक ही काम था उसके मन में कि कैसे घर आकर परीक्षा करे। भरोसा भी नहीं था कि यह सम्भव हो सकता है। लेकिन यह सम्भव हुआ। और जो आदमी था वह एक वैज्ञानिक डाक्टर था। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। यह सम्भव हो गया। एक वायदा था जो एस्ट्रली (सूक्ष्म शरीर से) पूरा किया जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। जिन्दा आदमी भी पूरा कर सकता है, मरा हुआ आदमी भी पूरा कर सकता है। इसलिए चित्र भी महत्त्वपूर्ण हो गये, मूर्तियाँ भी महत्त्वपूर्ण हो गयीं। उनके महत्त्व-पूर्ण होने का कारण था कि उन्होंने कुछ वायदे पूरे किये। मूर्तियों ने भी कुछ वायदे पूरे किये। इसलिए मूर्ति बनाने की पूरी एक साइन्स थी।

२०. मूर्ति व मकबरों का परा-वैज्ञानिक (आकल्ट) रहस्य

हर किसी तरह की मूर्ति नहीं बनायी जा सकती है। मूर्ति बनाने की एक पूरी व्यवस्था थी कि वह कैसी होनी चाहिए। अब जैसे अगर तुम चौबीस जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ देखो तो मुश्किल में पड़ जाओगे। उनमें कोई फर्क नहीं है। वह बिलकुल एक जैसी हैं। सिर्फ उनके चिह्न अलग-अलग हैं। महावीर का एक चिह्न है, पार्श्वनाथ का एक चिह्न है, नेमीनाथ का एक चिह्न है, लेकिन मूर्तियों के अगर चिह्न मिटा दिये जायँ नीचे से तो वे बिलकुल एक जैसी हैं। तुम कोई पता नहीं लगा सकते कि यह महावीर की है कि पार्श्व की है कि नेमी की है कि किसकी है। निश्चित ही ये सारे लोग एक ही शकल सूरत के नहीं रहे होंगे। यह असम्भव है। लेकिन जो पहले तीर्थंकर की मूर्ति थी उसी मूर्ति से सबने अपनी मूर्ति की तरह, प्रतीक की तरह समझौता किया। अलग-अलग मूर्ति बनाने की जरूरत न रही। एक मूर्ति चलती थी, वह मूर्ति काम करती थी। उसी मूर्ति के माध्यम से अन्य तीर्थंकरों ने भी काम कर लिया। एक सील-मुहर थी, वह काम करती थी। उसका मैंने भी उपयोग किया, तुमने भी उपयोग किया और किसीने भी उपयोग किया, लेकिन फिर भी भक्तों का मन, जो महावीर को प्रेम करते वे उन्होंने कहा, कोई एक चिह्न तो अलग हो। तो सिर्फ चिह्न भर अलग कर लिये गये। किसी का सिंह चिह्न है, किसी का कुछ है, किसी का कुछ है। चिह्न अलग कर लिये गये, लेकिन मूर्ति एक रही और वह चौबीसों मूर्तियाँ बिलकुल एक-सी मूर्तियाँ हैं। सिर्फ चिह्न का फर्क है। वह चिह्न भी समझौते का अंग है। उस चिह्न की मूर्ति से उस चिह्न से सम्बन्धित व्यक्ति का ही उत्तर स्थूल उपलब्ध होगा।

२१. मुहम्मद द्वारा कोई भी स्थूल प्रतीक न छोड़ने के कारण मुसलमानों को कठिनाई

वह चिह्न एक समझौता है जो अपना काम करेगा। जैसे जीसस का चिह्न क्रास है। वह काम करेगा। मुहम्मद ने इनकार किया कि मेरी मूर्ति मत बनाना। असल में मुहम्मद के वक्त तक इतनी मूर्तियाँ बन गयी हैं कि मुहम्मद एक बिलकुल ही दूसरा प्रतीक देकर जा रहे थे, अपने मित्रों को कि मेरी मूर्ति मत बनाना। मैं बिना मूर्ति, अमूर्ति में तुमसे सम्बन्ध बना लूंगा। तुम मेरी मूर्ति बनाना ही मत। तुम मेरा चित्र ही मत बनाना। मैं तुमसे बिना चित्र, बिना मूर्ति के सम्बन्धित हो आऊँगा। यह भी एक गहरा प्रयोग था और बड़ा हिम्मतवर प्रयोग था। लेकिन साधारण जन को बड़ी कठिनाई पड़ी मुहम्मद से सम्बन्ध बनाने में। इसलिए मुहम्मद के बाद हजारों फकीरों के कब्र और मकबरे और समाधियाँ उन्होंने बना लीं। क्योंकि उनकी समझ में नहीं आया कि मुहम्मद से सम्बन्ध कैसे बनायें। तब फिर उन्होंने किसी और आदमी की कब्र बना कर उनके माध्यम से मुहम्मद

से सम्बन्ध बनाया। फिर मकबरे बनाये। और जितनी मकबरों और कब्रों की पूजा मुसलमानों में चली उतनी दुनिया में किसी में नहीं चली। उसका कुल कारण इतना था कि मुहम्मद की कोई पकड़ नहीं थी उनके पास जिससे वे सीधे सम्बन्धित हो जाते। कोई रूप नहीं बना पाते थे तो उनको दूसरा रूप तत्काल बनाना पड़ा। और उस दूसरे रूप से उन्होंने सम्बन्ध जोड़ने शुरू किये। यह सारी की सारी एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। अगर विज्ञान की तरह उसे समझा जाय तो उसके अद्‌भुत फायदे हैं और अन्धविश्वास की तरह उसे समझा जाय तो वह आत्मघाती है।

प्रश्नकर्ता : प्राण-प्रतिष्ठा का क्या महत्त्व है ?

२२. मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा का रहस्य

आचार्यश्री : बहुत महत्त्व है। असल में प्राण-प्रतिष्ठा का मतलब ही यह है कि हम एक नयी मूर्ति तो बना रहे हैं, लेकिन पुराने समझौते के अनुसार बना रहे हैं और पुराना समझौता पूरा हुआ कि नहीं, इसके इंगित मिलने चाहिए। हम अपनी तरफ से जो पुरानी व्यवस्था थी, वह पूरी दोहरायेंगे। हम उस मूर्ति को मूर्ति नहीं मानेंगे अब। हम उसे जीवित मानेंगे। हम अपनी तरफ से पूरी व्यवस्था कर देंगे जो जीवित मूर्ति के लिए की जानी थी। और अब संकेत मिलने चाहिए कि वह प्राण-प्रतिष्ठा स्वीकार हुई कि नहीं। वह दूसरा हिस्सा है, जो कि हमारे ख्याल में नही रह गया है। अगर वह नही मिले तो प्राण-प्रतिष्ठा हमने तो की, लेकिन हुई नहीं। उसके सबूत मिलने चाहिए। तो उसके सबूत के लिए चिह्न खोजे गये थे, जो मिल जायें तो ही समझा जाय कि वह मूर्ति सक्रिय हो गयी।

२३. प्राण-प्रतिष्ठा की पुष्टि पाँचवें शरीर के व्यक्ति द्वारा

ऐसा ही समझ लें कि आप घर में एक नया रेडियो इन्स्टाल करते हैं (लाते है)। तो पहले तो वह रेडियो ठीक होना चाहिए। उसकी सारी यन्त्र-व्यवस्था ठीक होनी चाहिए। उसको आप घर लाकर रखते है, बिजली से उसका सम्बन्ध जोड़ते है फिर भी आप पाते हैं कि वह स्टेशनृश नही पकड़ता है तो प्राण-प्रतिष्ठा नही हुई। वह जिन्दा नहीं है, अभी मुर्दा ही है। अभी उसकी फिर जाँच-पड़ताल करवानी पड़े या दूसरा रेडियो लाना पड़े या उसे ठीक करवाना पड़े। मूर्ति भी एक तरह का रिसीविंग प्वाइंट (ग्राहक केन्द्र) है जिसके साथ मरे हुए आदमी ने कुछ वायदा किया है वह पूरा करता है। लेकिन आपने मूर्ति रख ली वह पूरा करता है कि नही करता है यह अगर आपको पता नहीं है और आपके पास कोई उपाय नहीं है जानने का, तो मूर्ति है भी जिन्दा या मुर्दा, आप पता नहीं लगा पाते।

तो प्राण-प्रतिष्ठा के दो हिस्से हैं। एक हिस्सा तो पुरोहित पूरा कर देता है

कि कितने मन्त्र पढ़ने हैं, कितने धागे बाँधने हैं, कितना क्या करना है, कितना सामान चढ़ाना है, कितना यज्ञ हवन, कितनी आग। पुरोहित सब कर देते हैं। यह अधूरा है और पहला हिस्सा है। दूसरा हिस्सा जो कि पाँचवें शरीर को उपलब्ध व्यक्ति ही कर सकता है उसके पहले नहीं हो सकता। दूसरा हिस्सा है कि वह कह सके कि हाँ, मूर्ति जीवित हो गयी। वह नहीं हो पाता। इसलिए हमारे अधिक मन्दिर मरे हुए मन्दिर हैं, जिन्दा मन्दिर नहीं हैं। और नये मन्दिर तो सब मरे हुए ही बनते हैं। नया मन्दिर तो जिन्दा होता ही नहीं।

२४. सोमनाथ का मन्दिर मृत होने से ही—मुहम्मद गजनवी द्वारा नष्ट

और अगर एक जीवित मन्दिर है तो उसका नष्ट होना किसी भी तरह सम्भव नहीं है। क्योंकि वह साधारण घटना नहीं है। और अगर वह नष्ट होता है तो उसका कुल मतलब इतना है कि जिसे आपने जीवित समझा था वह जीवित नहीं था। जैसे सोमनाथ का मन्दिर नष्ट हुआ। सोमनाथ के मन्दिर के नष्ट होने की कहानी बड़ी अद्भुत है। और सारे मन्दिर के विज्ञान की बहुत सूचक है। मन्दिर में पाँच सौ पुजारी थे। पुजारियों को भरोसा था कि मन्दिर जीवित है। इसलिए मूर्ति नष्ट नहीं की जा सकती। पुजारी ने अपना काम सदा पूरा किया था। एकतरफा था वह काम। क्योंकि कोई नहीं था जो खबर देता कि जिन्दा मूर्ति है कि मृत मूर्ति हैं। तो जब बड़े राजाओं और राजपूत सरदारों ने उन्हें खबर भेजी कि हम रक्षा के लिए आ जायें, गजनवी आता है तो उन्होने स्वभावतः उत्तर दिया कि तुम्हारे आने की कोई जरूरत नहीं है, क्योकि जो मूर्ति सबकी रक्षा करती है उसकी रक्षा तुम कैसे करोगे ? उन्होंने क्षमा माँगी सरदारों ने। लेकिन, वह भूल हो गयी। भूल यह हो गयी, कि मूर्ति जिन्दा न थी। पुजारी इस आशा में रहे कि मूर्ति जिन्दा है और जिन्दा मूर्ति की रक्षा की बात ही सोचना गलत है। उसके पीछे इससे ज्यादा विराट् शक्ति का सम्बन्ध है। उसको बचाने का हम क्या सोचेंगे। लेकिन गजनवी आया और उसने एक तलवार मारी और वह चार टुकड़े हो गयी मूर्ति। फिर भी अब तक यह ख्याल में नहीं आया कि वह मूर्ति मुर्दा थी इसलिए टूट सकी। नहीं, मन्दिर की ईंट नहीं गिर सकती है अगर वह जीवित है। वह जीवित है तो उसका कुछ बिगड़ नहीं सकता। लेकिन अक्सर मन्दिर जीवित नहीं हैं। और उसके जीवित होने की बड़ी कठिनाइयाँ हैं।

२५. मन्दिर के जीवित होने का गहन विज्ञान

मन्दिर का जीवित होना बड़ा भारी चमत्कार है और एक बहुत गहरे विज्ञान का हिस्सा है। जिस विज्ञान को जानने वाले लोग भी नहीं हैं, पूरा करने वाले लोग भी नहीं हैं। और जिसमें इतनी कठिनाइयाँ खड़ी हो गयी हैं। क्योंकि

पुरोहितों और दूकानदारों का इतना बड़ा वर्ग मन्दिरों के पीछे है कि अगर कोई जानने वाला है तो उसको मन्दिर में प्रवेश नहीं हो सकता। उसकी बहुत कठिनाई हो गयी है। और वह एक धन्धा बन गया है जिसमें कि पुरोहित के लिए हितकर है कि मन्दिर मुर्दा हो। जिन्दा मन्दिर पुरोहित के लिए हितकर नहीं है। वह चाहता है कि मरा हुआ भगवान् भीतर हो, जिसको वह ताला चाभी में बन्द रखे और काम चला ले। अगर उस मन्दिर से कुछ और विराट् शक्तियों का सम्बन्ध है तो पुरोहित का टिकना वहाँ मुश्किल हो जायगा। उसका जीना वहाँ मुश्किल हो जायगा। इसलिए पुरोहित ने बहुत मुर्दा मन्दिर बना लिये हैं और वह रोज ही बनाये चला जा रहा है। मन्दिर तो रोज बन जाते हैं। उनकी कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन वस्तुतः जो जीवित मन्दिर है वह बहुत कम होते जाते हैं।

जीवित मन्दिरों को बचाने की बड़ी चेष्टा की गयी, लेकिन पुरोहितों का जाल इतना बड़ा है हर मन्दिर के साथ, हर धर्म के साथ कि बहुत मुश्किल है इसको बचाना। सदा आखिर में यही होता है। इसलिए इतने मन्दिर बने; नहीं तो इतने मन्दिर बनने की कोई जरूरत न पड़ती। अगर महावीर के वक्त मे उपनिषदों के समय में बनाये गये मन्दिर जीवित होते और तीर्थ जीवित होते तो महावीर को अलग बनाने की कोई जरूरत न पड़ती। लेकिन वह मर गये थे और उन मरे मन्दिरों और पुरोहितों का एक जाल था जिसको तोड़कर प्रवेश करना असम्भव था। इसलिए नये बनाने के सिवाय कोई उपाय नहीं था। आज महावीर का मन्दिर भी मर गया है। उसके पास भी उसी तरह का जाल है।

२६. शर्तें पूरी न करने पर वायदे का टूट जाना

दुनिया में इतने धर्म न बनते अगर जो जीवन्त तत्त्व है वह बच सके। लेकिन वह बच नहीं पाता। उसके आसपास सब उपद्रव इकट्ठा हो जाता है और वह जो उपद्रव है वह धीरे-धीरे सारी सम्भावनाएँ तोड़ देता है। और जब एक तरफ से सम्भावना टूट जाती है तो दूसरी तरफ से समझौता भी टूट जाता है। वह समझौता किया गया समझौता है उसे हमें निभाना है और हम निभाते हैं तो दूसरे तरफ से निभता है, नहीं तो विदा हो जाता है। बात खत्म हो जाती है। जैसे कि मैं कह कर जाऊँ कि आप मुझे याद करना तो मैं मौजूद हो जाऊँगा। लेकिन आप कभी याद ही करना बन्द कर दो या मेरे चित्र को एक कचरे घर में डाल दो, फिर उसका ख्याल ही भूल जाओ तो यह समझौता कब तक चलेगा। यह समझौता टूट गया है आपकी तरफ से। इसे मेरी तरफ से भी रखने की अब कोई जरूरत नहीं रह जाती। ऐसे समझौते टूटते गये हैं। लेकिन प्राण-प्रतिष्ठा का अर्थ है और प्राण-प्रतिष्ठा का दूसरा महत्त्वपूर्ण हिस्सा यह है कि प्राण-प्रतिष्ठा हुई या नहीं, उसकी कसौटी और परख है। वह परख भी पूरी होती है।

प्रश्नकर्ता : कुछ मन्दिरों में ठीक मूर्ति के ऊपर पानी आप ही आप झरता रहता है। क्या यह उस मन्दिर के जीवित होने का सूचक है ?

आचार्यश्री : पानी गिरने से तो कुछ लेना देना नहीं है। पानी तो बिना मूर्ति की प्रतिष्ठा किये ही झरता रहता है। मूर्ति भी रखें तो भी झर सकता है। वह कोई बड़ा सवाल नहीं है। यह सब झूठे प्रमाण हैं, जिनके आधार पर हम सोच लेते हैं कि प्रतिष्ठा हो गयी। जहाँ बिलकुल पानी नहीं गिरता वहाँ भी जीवित मन्दिर हो सकते हैं, और हैं।

प्रश्नकर्ता : आध्यात्मिक साधना में दीक्षा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी विशेष विधि विशेष स्थितियों में होती है। बुद्ध और महावीर भी दीक्षा देते थे। अतः कृपया बतायें कि दीक्षा का क्या सूक्ष्म अर्थ है ? दीक्षा कितने प्रकार की सम्भव है, उसका महत्त्व और उसकी उपयोगिता क्या है और उसकी आवश्यकता क्यों है ?

२७. दीक्षा दी नहीं जाती—घटित होती है

आचार्यश्री : दीक्षा के सम्बन्ध में थोड़ी-सी बात उपयोगी है। एक तो दीक्षा दी नहीं जाती और दीक्षा ली भी नहीं जा सकती। दीक्षा घटित होती है। वह एक हैपेनिंग (घटना) है। कोई व्यक्ति महावीर के पास है। कभी-कभी वर्षों लग जाते हैं दीक्षा होने में। क्योंकि महावीर कहते हैं रुको, साथ रहो, चलो, उठो, बैठो, इस तरह जियो, इस तरह ध्यान में प्रवेश करो, इस तरह उठो, इस तरह बैठो, ऐसे जियो। एक घड़ी है ऐसी जब वह व्यक्ति तैयार हो जाता है और जब महावीर सिर्फ माध्यम रह जाते हैं। बल्कि माध्यम कहना भी शायद ठीक नहीं, बहुत गहरे में सिर्फ साक्षी (विटनेस) रह जाते हैं, एक गवाह रह जाते हैं। उनके सामने दीक्षा घटित होती है।

२८. दीक्षा सदा ही परमात्मा से घटित होती है

दीक्षा सदा परमात्मा से है। महावीर के समक्ष घटित होती है। लेकिन निश्चित ही जिस पर घटित होती है उसको तो महावीर दिखायी पड़ते हैं, परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता। उसे तो सामने महावीर दिखायी पड़ते हैं और महावीर के साथ में ही उस पर घटित होती है। स्वभावत. वह महावीर के प्रति अनुग्रहीत होता है। यह उचित है। लेकिन महावीर उसके अनुग्रह को स्वीकार नही करते। क्योंकि वे तो तभी स्वीकार कर सकते हैं जब कि वे मानते हों कि मैंने दीक्षा दी। इसलिए दो तरह की दीक्षाएँ हैं। एक दीक्षा तो वह जो घटित होती है उसे मैं दीक्षा (इनीसिएशन) कहता हूँ, जिसमें तुम परमात्मा से सम्बन्धित हुए। तुम्हारी जीवन-यात्रा बदली, तुम और हो गये, तुम अब वही नहीं हो, जो थे। तुम्हारा

सब रूपान्तरित हो गया, तुम्हें कुछ नया दिखा, तुममें कुछ नया घटित हुआ, तुममें कुछ नयी किरण आयी, तुम्हारा सब-कुछ और हो गया है।

वास्तविक दीक्षा में जिसको हम गुरु कहते हैं वह सिर्फ विटनेस (साक्षी) की तरह, गवाह की तरह खड़ा होता है और वह सिर्फ इतना ही बता सकेगा कि हाँ दीक्षा हो गयी। क्योंकि वह पूरा देख रहा है। तुम आधे ही देख रहे हो। तुम्हें तुम पर जो हो रहा है वह दिखायी पड़ रहा है, उसे वह दिखायी पड़ रहा है जिससे हो रहा है। इसलिए तुम पक्के गवाह नहीं हो सकते कि घटना हुई कि नहीं हुई। तुम इतना ही कह सकते हो कि बहुत कुछ रूपान्तरण हुआ। लेकिन दीक्षा हुई कि नहीं, मैं स्वीकृत हुआ या नहीं? यह तुम पक्का न कर सकोगे। दीक्षा का मतलब है 'हैव आई बीन एक्सेप्टेड'—क्या मैं चुन लिया गया? क्या मैं स्वीकृत हो गया उस परमात्मा को? क्या अब मैं मानूँ कि मैं उसका हो गया। अपनी तरफ से तो मैंने छोड़ा। उसकी तरफ से भी मैं ले लिया गया हूँ या नहीं? लेकिन इसका तुम्हें एकदम से पता नहीं चल सकता। तुम्हें थोड़े अन्तर तो पता चलेंगे, लेकिन पता नहीं यह अन्तर काफी है या नहीं। तो वह जो दूसरा आदमी है, जिसको हम गुरु कहते रहे हैं, वह इतना जान सकता है, उसे दोनों घटनाएँ दिखायी पड़ रही हैं।

२९. गुरु नामक व्यक्ति केवल साक्षी, मात्र गवाह

सम्यक् दीक्षा दी नहीं जाती, ली भी नहीं जाती। परमात्मा से घटित होती है। तुम सिर्फ ग्राहक होते हो। और जिसे तुम गुरु कहते हो वह सिर्फ साक्षी और गवाह होता है। दूसरी दीक्षा जिसको हम झूठी दीक्षा कहें वह दी जाती है और ली जाती है। उसमें ईश्वर बिलकुल नहीं होता। उसमें गुरु और शिष्य ही होते हैं। गुरु देता है और शिष्य लेता है। लेकिन तीसरा और असली मौजूद नहीं होता। जहाँ दो मौजूद हैं सिर्फ, गुरु और शिष्य, वहाँ दीक्षा झूठी होगी। जहाँ तीन मौजूद हैं, गुरु, शिष्य और वह भी जिससे दीक्षा घटित होती है, वहाँ सब बात बदल जायेगी। यह जो दीक्षा देने का उपक्रम है यह अनुचित ही नहीं, खतरनाक है, घातक है। क्योंकि इस दीक्षा के भ्रम मे वह दीक्षा कभी घटित न हो पायेगी अब। तुम तो इस भ्रम में जियोगे कि दीक्षा हो गयी।

एक साधु मेरे पास आये। वे दीक्षित हैं किसी के। कहते हैं फलाँ गुरु का दीक्षित हूँ और ध्यान सीखने आपके पास आया हूँ। तो मैंने कहा, दीक्षा किसलिए ली? और जब दीक्षा में ध्यान भी नहीं आया तो और क्या मिला है दीक्षा में! वस्त्र मिल गये हैं, नाम मिल गया है? और जब ध्यान अभी खोजना पड़ रहा है तो दीक्षा कैसे हो गयी? क्योंकि सच तो यह है कि ध्यान के बाद ही दीक्षा हो सकती है। दीक्षा के बाद ध्यान का कोई मतलब नहीं है। एक आदमी कहता है

मैं स्वस्थ हो गया हूँ और डाक्टरों के दरवाजों पर घूमता है और कहता है मुझे दवा चाहिए। दीक्षा तो ध्यान के साथ मिली हुई स्वीकृति है। वह सैंक्शन (अनुमोदन) है कि तुम स्वीकृत कर लिये गये, अंगीकार कर लिये गये। परमात्मा तक तुम्हारी खबर पहुँच गयी। उस दुनिया में भी तुम्हारा प्रवेश हो गया है। इस बात की स्वीकृति भर दीक्षा है।

३०. सम्यक् दीक्षा को पुनर्जीवित करना पड़ेगा

लेकिन ऐसी दीक्षा खो गयी है और मैं चाहता हूँ कि ऐसी दीक्षा पुनरुज्जीवित हो जिसमें गुरु देने वाला न हो जिसमें शिष्य लेने वाला न हो। जिसमें गुरु गवाह हो, शिष्य ग्राहक हो और देनेवाला परमात्मा हो। और यह हो सकता है और यह होना चाहिए। अगर मैं किसी का गवाह हूँ दीक्षा मे तो मैं उसका गुरु नहीं हो जाता। गुरु तो उसका परमात्मा ही हुआ फिर। और वह अगर अनुग्रहीत है तो यह उसकी बात है। लेकिन अनुग्रह माँगना बेमानी है। स्वीकार करने का भी कोई अर्थ नही है। गुरुडम (तथाकथित गुरुओं का जाल) पैदा हुई है दीक्षा को एक नयी शकल देने मे। कान फूँके जा रहे है। मन्त्र दिये जा रहे है। कोई भी आदमी किसी को भी दीक्षित कर रहा है। वह खुद भी दीक्षित है, यह भी पक्का नहीं है। परमात्मा तक वह भी स्वीकृत हुआ है इसका भी कोई पक्का नही है। वह भी इसी तरह दीक्षित है। किसी ने उसके कान फूंके, वह किसी दूसरे के फूंक रहा है। वह दूसरा कल किसी और के फूंकने लगेगा।

३१. दीक्षा का भ्रम देना—बड़ा अपराध-कृत्य

आदमी हर चीज मे झूठ और डिसेप्शन (धोखा, वंचना) पैदा कर लेता है। और जितनी रहस्यपूर्ण बातें हैं वहाँ तो प्रवंचना बहुत सम्भव है। क्योंकि वहाँ तो कोई पकड़ कर हाथ में दिखाने वाली चीज नहीं है। अब मैं इस प्रयोग को भी करना चाहता हूँ, दस-बीस लोग तैयार हो रहे है। वे दीक्षा लें परमात्मा से। बाकी लोग जो मौजूद हों, वे गवाह हों। बस, वह इतना कह सकें कि, बता सकें कि ऊपर तक स्वीकृत बात हो गयी कि नही हो गयी। उतना ही काम है। अनुभव तो तुम्हें भी होगा, लेकिन तुम एकदम से पहचान न पाओगे। इतनी अपरिचित जगह है वह कि तुम रिकैनाइज (प्रत्यभिज्ञा) कैसे करोगे कि हो गया? बस, इतनी बात का मूल्य है।

इसलिए परम गुरु तो परमात्मा ही है। अगर बीच के गुरु हट जायें तो आसानी हो जाती है। लेकिन बीच के गुरु पैर जमा कर खड़े होते हैं। क्योंकि खुद को परमात्मा बनाने और दिखलाने का मजा अहंकार के लिए बहुत है। इस अहंकार के आस-पास बहुत तरह की दीक्षाएँ दी जाती हैं। लेकिन उनका कोई भी मूल्य

नहीं है। और आध्यात्मिक अर्थों में वह सब क्रिमिनल ऐक्ट (अपराध-कृत्य) है। और किसी दिन अगर हम आध्यात्मिक अपराधियों को सजा दें तो उनको सजा मिलनी चाहिए। क्योंकि एक आदमी को इस धोखे में रखना है कि उसकी दीक्षा हो गयी है और वह आदमी अकड़ कर चलता है कि मैं दीक्षित हूं। मुझे दीक्षा मिल गयी, मन्त्र मिल गया, यह हो गया, वह हो गया—वह यह सब मानकर चलता है। इसलिए वह जो होने वाला था जिसकी वह खोज करता था, वह खोज बन्द कर देता है।

३२. बौद्ध धर्म के त्रिशरणों का वास्तविक अर्थ

बुद्ध के पास कोई भी आता तो एकदम से दीक्षा नहीं होती थी। कभी वर्षों लग जाते थे। उस आदमी को बुद्ध कहते, रुको, अभी ठहरो, अभी इतना करो, अभी उतना करो, फिर किसी दिन। उसको टालते चले जाते। जिस दिन वह घड़ी आ जाती है उस दिन वह खुद कह देते कि अब तुम खड़े हो जाओ और दीक्षित हो जाओ।

३३. पहला—जागे हुए की शरण

बुद्ध की जो दीक्षा थी उसके तीन हिस्से थे। जो दीक्षित होता, वह तीन तरह की शरण जाता, (थ्री टाइम्स ऑफ सरेण्डर) वह कहता, बुद्ध की शरण जाता हूं। और ध्यान रहे बुद्ध की शरण जाने का मतलब गौतम बुद्ध की शरण जाना नहीं था। बुद्ध की शरण जाने का मतलब है जागे हुओं की शरण जाता हूं। इसलिए जब बुद्ध से एक दफा किसी ने पूछा कि आप सामने बैठे हैं और एक आदमी आकर कहता है बुद्धं शरणं गच्छामि और आप सुन रहे हैं! तो बुद्ध ने कहा कि वह मेरी शरण नहीं जा रहा है, वह जागे हुओं की शरण जा रहा है। मैं तो महज बहाना हूं। मेरी जगह और बुद्ध होते रहेंगे। मेरी जगह और बुद्ध हुए हैं। मैं तो सिर्फ एक बहाना हूं, एक खूंटी हूं। वह जागे हुओं की शरण जा रहा है। मैं कौन हूं जो बाधा दूं ? वह मेरी शरण जाये तो मैं रोक दूं। वह कहता है, बुद्ध की शरण। तो तीन बार वह जागे हुओं की शरण जा रहा है। वह जागे हुओं के सामने अपने को समर्पित कर रहा है।

३४. दूसरा—जागे हुए लोगों के समूह की शरण

फिर दूसरी शरण और अद्भुत है। वह है संघं शरणं गच्छामि। वह तीन बार संघ की शरण जा रहा है। संघ का मतलब ? आम तौर से बुद्ध को मानने वाले भी समझते हैं कि संघ का मतलब बुद्ध का संघ। नहीं, वह संघ का मतलब नहीं है। संघ का मतलब है जागे हुओं का संघ। एक ही बुद्ध थोड़े ही है जागा हुआ। बहुत बुद्ध हो चुके हैं जो जाग गये। बहुत बुद्ध होंगे जो जागेंगे। उन सबका संघ

है एक, उनकी सबकी एक कम्युनिटी (समुदाय) है, एक कलेक्टिविटी (एकत्रीकरण) है। वह तो बौद्धों की समझ है कि वह कह रहा है कि अब बुद्ध का जो सम्प्रदाय है इसके मैं शरण जा रहा हूँ। नहीं, यह गलत समझ हुई। पहले सूत्र से ही साफ हो जाता है जब बुद्ध कहते हैं, वह मेरी शरण नहीं जा रहा है, जागे हुओं की शरण जा रहा है तो दूसरा सूत्र और भी साफ हो जाता है कि वह जागे हुओं के संघ की शरण जाता है। पहले वह एक व्यक्ति को जो सामने मौजूद है, उस पर अपने को समर्पित कर रहा है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष है। आसान है उससे बात करना। फिर वह उस बड़ी ब्रदर हुड (भ्रातृत्व), उस बड़े संघ के लिए समर्पण कर रहा है जो जागे हैं कभी, जिनका उसे पता नहीं। जो कभी जागेंगे भविष्य में उनका भी उसे पता नहीं। जो अभी भी जागे हुए होंगे कहीं उनका भी उसे कोई पता नहीं। वह उनको भी समर्पण कर रहा है कि मैं तुम्हारी भी शरण जाता हूँ। वह एक कदम आगे बढ़ा सूक्ष्म की तरफ।

३५. तीसरा—जागरण की परम अवस्था—धर्म की शरण

तीसरी शरण है धम्मं शरणं गच्छामि। तीसरी बार वह कह रहा है कि मैं धर्म की शरण जाता हूँ। पहला जो जागे हुए बुद्ध हैं उनकी, दूसरा जो बुद्धों का जागा हुआ संघ है उनकी और तीसरा जो जागरण की परम अवस्था है धर्म, स्वभाव—जहाँ न व्यक्ति रह जाता है, जहाँ न संघ रह जाता है, जहाँ सिर्फ नियम (द लॉ), सिर्फ धर्म रह जाता है। मैं उस धर्म की शरण जाता हूँ। ये तीन शरण जब वह पूरी कर दे तब ही दीक्षा पूरी होती थी। और यह सिर्फ कहने की बात न थी। यह जब पूरी हो जाय और बुद्ध को दिखायी पड़े कि ये तीन शरण उसके पूरे हो गये हैं तब दीक्षित होता है वह आदमी। और बुद्ध सिर्फ गवाह होते हैं। इसलिए बुद्ध उसको दीक्षा के बाद भी कहते हैं कि मैं जो कहूँ तू उसे इसलिए मत मान लेना कि मैं बुद्ध पुरुष हूँ। मैं जो कहूँ उसे इसलिए मत मान लेना कि एक महान् व्यक्ति ने कहा। मैं जो कहूँ उसे इसलिए मत मान लेना कि जिसने कहा उसे बहुत लोग मानते हैं। मैं जो कहूँ उसे इसलिए मत मान लेना कि शास्त्रों में यही लिखा है। नहीं, तेरी बुद्धि जो कहे, अब तू उसी को मानना। वह गुरु बन नहीं रहे हैं इसलिए मरते वक्त जो आखिरी सन्देश है बुद्ध का, वह है 'अप्पदीपोभव'। आखिरी वक्त जब उनसे कहा कि कुछ और सन्देश दें तो वह आखिरी सन्देश देते हैं कि तुम अपने दीपक खुद ही बनना। तुम किसी के पीछे मत जाना। अनुसरण मत करना। (बी ए लाइट अन टू योर सेल्फ)—अप्पदीपोभव। अपने दिये खुद बन जाना, बस यह मेरा आखिरी सन्देश है।

३६. दीक्षा देकर बाँधने वाले गुरुओं से सावधान

ऐसा व्यक्ति गुरु नहीं बनता। ऐसा व्यक्ति साक्षी है, गवाह है। जीसस

ने बहुत जगह यह बात कही है कि जिस दिन अंतिम निर्णय होगा, मैं तुम्हारी गवाही दूँगा। अन्तिम निर्णय के वक्त मैं कहूँगा कि हाँ, यह आदमी है। इसने जानने की आकांक्षा की थी। इस आदमी ने परमात्मा के लिए समर्पण की आकांक्षा की थी। यह तो प्रतीक में कहना है। लेकिन क्राइस्ट यह कह रहे हैं कि मैं गवाह हूँ। मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ।

गुरु कोई भी नहीं है। इसलिए जिस दीक्षा में कोई आदमी गुरु बन जाता हो उस दीक्षा से सावधान होना जरूरी है। और जिस दीक्षा में परमात्मा ही सीधा और स्वयं (इमीजिएट और डाइरेक्ट) सम्बन्ध में आता हो, वह दीक्षा बड़ी अनूठी है। और ध्यान रहे इस दूसरी दीक्षा में न तो किसी को घर छोड़ कर भागने की जरूरत है, न इस दूसरी दीक्षा में किसी को हिन्दू, मुसलमान, इसाई होने की जरूरत है, न इस दूसरी दीक्षा में किसी से बँधने की कोई जरूरत है। इसमें तुम अपनी परिपूर्ण स्वतन्त्रता में जैसे हो, जहाँ हो वैसे ही रह सकते हो। सिर्फ भीतर तुम्हारी बदलाहट शुरू हो जायेगी। लेकिन वह जो पहली झूठी दीक्षा है उसमे तुम किसी धर्म से बँधोगे, हिन्दू बनोगे, मुसलमान बनोगे, ईसाई बनोगे। किसी सम्प्रदाय के हिस्से बनोगे। कोई पन्थ, कोई मान्यता, कोई डागमेटिज्म (रूढ़ि), कोई आदमी, कोई गुरु वह सब तुम्हें पकड़ लेंगे। वह तुम्हारी स्वतन्त्रता की हत्या कर देंगे। जो दीक्षा स्वतन्त्रता न लाती हो वह दीक्षा नहीं है। जो दीक्षा परम स्वतन्त्रता लाती हो वही दीक्षा है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि बुद्ध सातवे शरीर मे महापरिनिर्वाण को उपलब्ध हुए, लेकिन अन्यत्र एक प्रवचन में आपने कहा है कि बुद्ध का एक और जन्म मनुष्य-शरीर में मैत्रेय के नाम से होने वाला है। तो निर्वाण-काया में चले जाने के बाद पुनः मनुष्य-शरीर लेना कैसे सम्भव होगा ? इसे संक्षेप मे स्पष्ट करने की कृपा करें।

आचार्यश्री : यह जरा कठिन बात है। इसलिए कल मैंने छोड़ दी थी। क्योंकि इसकी लम्बी ही बात करनी पड़ेगी। लेकिन फिर भी थोड़े में समझ ले।

३७. बुद्ध का महापरिनिर्वाण के बाद भी एक बार पुनर्जन्म लेने की सम्भावना का रहस्य

सातवें शरीर के बाद वापस लौटना सम्भव नही है। सातवें शरीर की उपलब्धि के बाद पुनरागमन नहीं है। वह 'प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न' (न लौटने का बिन्दु) है। वहाँ से वापस नहीं आया जा सकता। लेकिन दूसरी बात सही है जो मैंने कही है कि बुद्ध कहते हैं कि मैं एक बार और वापस आऊँगा, मैत्रेय के शरीर में। अब ये दोनों ही बातें तुम्हें विरोधी दिखायी पड़ेंगी। क्योंकि मैं कहता हूँ, सातवें शरीर के बाद फिर वापस नहीं लौट सकता और बुद्ध का यह वचन है कि

वह वापस लौटेंगे। और बुद्ध सातवें शरीर को उपलब्ध होकर महानिर्वाण में समाहित हो गये हैं। तब यह कैसे सम्भव है? इसका दूसरा ही रास्ता है।

३८. पाँचवें शरीर में जाने के साथ दूसरे, तीसरे और चौथे शरीर को संरक्षित रखना

अब तुम्हें थोड़ी-सी बात समझनी पड़ेगी। जब हमारी मृत्यु होती है तो भौतिक शरीर गिर जाता है। लेकिन बाकी कोई शरीर नहीं गिरता, बाकी छह शरीर हमारे साथ रहते हैं। जब कोई पाँचवें शरीर को उपलब्ध होता है तो शेष चार शरीर गिर जाते हैं और तीन शरीर शेष रह जाते हैं—पाँचवाँ, छठवाँ और सातवाँ। पाँचवें शरीर की हालत में यदि कोई चाहे तो ऐसा संकल्प कर सकता है कि उसके बाकी दूसरे, तीसरे और चौथे तीन शरीर शेष रह जायें। और अगर यह संकल्प गहरा किया जाय, और बुद्ध जैसे आदमी को संकल्प गहरा करने में कोई कठिनाई नहीं है, तो वह अपने दूसरे, तीसरे और चौथे शरीर को सदा के लिए छोड़ कर जा सकता है। ये शरीर शक्ति-पुंज की तरह अन्तरिक्ष में भ्रमण करते रहेंगे। दूसरा इथरिक (भाव) शरीर है। तो बुद्ध की भावनाएँ, बुद्ध ने अपने अनन्त जन्म में जो भावनाएँ अर्जित की हैं वह इस शरीर की सम्पत्ति है। उसके सब सूक्ष्म तरंग इस शरीर में समाहित हैं। फिर एस्ट्रल बॉडी (सूक्ष्म शरीर) है। इस सूक्ष्म शरीर में बुद्ध के जीवन की जितनी सूक्ष्मतम कर्मों की उपलब्धियाँ हैं उन सबके संस्कार इसमें शेष है। और चौथा मनस-शरीर (मेण्टल बॉडी) है। बुद्ध के मनस की सारी उपलब्धियाँ इसमें हैं। और बुद्ध ने जो मनस के बाहर उपलब्धियाँ की हैं वह भी कहीं तो मन से ही हैं, उनको अभिव्यक्ति तो मन से ही देनी पड़ती है। कोई आदमी पाँचवें शरीर से भी कुछ पाये, सातवें शरीर से भी कुछ पाये, जब भी कहेगा तो उसको चौथे शरीर का ही उपयोग करना पड़ेगा। कहने का वाहन तो चौथा शरीर ही होगा।

तो बुद्ध की जितनी वाणी दूसरे लोगों ने सुनी है वह तो बहुत कम है, सबसे ज्यादा वाणी बुद्ध की बुद्ध के ही चौथे शरीर ने सुनी है। जो भी बुद्ध ने सोचा है, जिया है, देखा है, समझा है, वह सब चौथे शरीर में संग्रहीत है। ये तीनों शरीर तो सहज नष्ट हो जाते हैं। पाँचवें शरीर में प्रविष्ट हुए व्यक्ति के तीनों शरीर नष्ट हो जाते हैं। सातवें शरीर में प्रविष्ट हुए व्यक्ति के बाकी छह शरीर नष्ट हो जाते हैं। सभी कुछ नष्ट हो जाता है। लेकिन पाँचवें शरीर वाला व्यक्ति यदि चाहे तो इन तीन शरीरों के संघट को, संघात को अन्तरिक्ष में छोड़ सकता है। यह ऐसे ही अन्तरिक्ष में छूट जायेंगे जैसे अब हम अन्तरिक्ष में कुछ स्टेशन्स (विराम-स्थल) बना रहे हैं। वह अन्तरिक्ष में यात्रा करते रहेंगे और मैत्रेय नाम के व्यक्ति में वह प्रकट होंगे।

३९. बुद्ध के सारे अनुभवों व ज्ञान से निर्मित शरीरों का दूसरे व्यक्ति में प्रवेश प्रतीक्षित

तो जब कभी मैत्रेय नाम की स्थिति का कोई व्यक्ति पैदा होगा, उस स्थिति का, जिसमें बुद्ध के ये तीनों शरीर प्रवेश कर सकें, तो वे तीन शरीर तब तक प्रतीक्षा करेंगे और उस व्यक्ति में प्रवेश कर जायेंगे। और उस व्यक्ति में प्रवेश करते ही उस व्यक्ति की हैसियत ठीक वैसी हो जायगी जैसी बुद्ध की थी। क्योंकि बुद्ध के सारे अनुभव, बुद्ध के सारे भाव, बुद्ध की सारी कर्म-व्यवस्था का यह पूरा संचयन है।

ऐसा समझ लो जैसे कि मेरे शरीर को मैं छोड़ जा सकूँ, इस घर में संरक्षित कर के जा सकूँ। जैसे अभी अमरीका में एक आदमी मरा कोई तीन चार साल पहले। वह कोई करोड़ों डालर का ट्रस्ट कर गया है और कह गया है कि मेरे शरीर को तब तक बचाया जाय जब तक साइन्स (विज्ञान) इस हालत में न आ जाय कि उसको पुनरुज्जीवित कर सके। उसके शरीर पर लाखों रुपये खर्च हो रहे हैं। उसको बिलकुल वैसे ही संरक्षित रखना है। उसमें जरा भी खराबी न हो। आशा है कि इस सदी के पूरे होते-होते तक शरीर को पुनरुज्जीवित करने की सम्भावना प्रकट हो जायेगी। इधर तीस-चालीस साल उसके शरीर को ऐसा सुरक्षित रखना है जैसा कि वह मरते वक्त था। उसमें जरा भी डिटोरिएशन (विनष्टीकरण) न हो जाय। तो यह शरीर बचाया जा रहा है। यह वैज्ञानिक प्रक्रिया है। और अगर इस सदी के पूरे होते-होते हम शरीर को पुनरुज्जीवित कर सकें तो वह शरीर पुनरुज्जीवित हो जायगा। निश्चित ही उस शरीर को दूसरी आत्मा उपलब्ध होगी। वही आत्मा उपलब्ध नहीं हो सकती। लेकिन शरीर वह रहेगा, उसकी आँखें वह रहेंगी। उसके चलने का ढंग वह रहेगा। उसका रंग वह रहेगा। उसका नाक-नक्श वह रहेगा। इस शरीर की आदतें उसके साथ रहेंगी। एक अर्थ में वह उस आदमी को रिप्रजेण्ट (पुनः प्रस्तुत) करेगा इस शरीर से। और अगर वह आदमी सिर्फ भौतिक शरीर पर ही केन्द्रित था, जैसा कि होना चाहिए, नहीं तो भौतिक शरीर को बचाने की इतनी आकांक्षा नहीं हो सकती। अगर वह शरीर भौतिक शरीर ही था, बाकी शरीरों का उसे कुछ पता भी नहीं था तो कोई भी दूसरी आत्मा बिलकुल एक्ट (क्रिया) कर पायेगी। वह बिलकुल वही हो जायेगी। और वैज्ञानिक दावा भी करेंगे कि वही आदमी जीवित हो गया है। इसमें कोई फर्क नहीं है। उस आदमी की सारी स्मृतियाँ, जो इसके भौतिक ब्रेन में संरक्षित होंगी वह सब-की-सब जग जायेंगी। वह फोटो देख कर बता सकेगा कि वह मेरी माँ का फोटो है। वह बता सकेगा कि यह मेरे बेटे की फोटो है। ये सब मर चुके हैं तब तक, लेकिन वह फोटो पहचान लेगा।

वह अपना गाँव पहचान कर बता सकेगा कि यह रहा मेरा गाँव जहाँ मैं पैदा हुआ था। और यह रहा मेरा गाँव जहाँ मैं मरा था और ये-ये लोग जब मैं मरा था तो जिन्दा थे। लेकिन यह आत्मा दूसरी है। लेकिन ब्रेन के पास जो मेमोरी कन्टेन्ट (स्मृति सामग्री) है वह पुराना है।

४०. विज्ञान का प्रयास—स्मृति के पुनर्रोपण व शरीर को पुनर्जीवित करने का

अभी वैज्ञानिक कहते हैं कि हम बहुत जल्दी स्मृति को ट्रान्सप्लाण्ट (पुनः रोपित) कर पायेंगे। यह सम्भव हो जायगा। इसमें कठिनाई नहीं मालूम होगी। अगर मैं मरूँ तो मेरी अपनी एक स्मृति की जो बड़ी सम्पत्ति है वह खो जाती है। क्योंकि मैं मरता हूँ तो मेरी सारी स्मृति खो जाती है। लेकिन मेरी सारी स्मृति की पूरी-की-पूरी टेप, पूरा-का-पूरा मेरा स्मृति-यन्त्र मेरे मरने के साथ बचा लिया जा सकता है। जैसे हम आँख बचा लेते हैं अब। कल तक आँखें ट्रान्सप्लाण्ट नहीं होती थीं, अब हो जाती हैं। तो कल मेरी आँख से कोई देख सकेगा। सदा मैं ही देखूँ, अब यह बात गलत है। अब मेरी आँख से कल कोई दूसरा भी देख सकेगा। और सदा मेरे हृदय से मैं ही प्रेम करूँ, यह भी गलत है। कल मेरे हृदय से कोई दूसरा भी प्रेम कर सकेगा। अब हृदय के सम्बन्ध में बहुत वायदा नहीं किया जा सकता कि मेरा हृदय सदा तुम्हारा रहेगा। वैसा वायदा करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि यह हृदय किसी और के भीतर से किसी और को वायदा कर सकेगा। इसमें अब कोई कठिनाई नहीं रह गयी है। ठीक ऐसे ही कल स्मृति भी ट्रान्सप्लाण्ट हो जायेगी। वह सूक्ष्म है, बहुत डेलीकेट (नाजुक) है। इसलिए देर लग रही है और देर लगेगी। लेकिन कल मैं मरूँ तो जैसे मैं आज अपनी आँख दे जाता हूँ 'आई बैंक' (नेत्र-कोष) को, ऐसे मैं मेमोरी-बैंक (स्मृति-कोष) को अपनी स्मृति दे जाऊँगा। और कहूँ कि मरने के पहले मेरी सारी स्मृति बचा ली जाय और किसी छोटे बच्चे पर ट्रान्सप्लाण्ट कर दी जाय। जिस छोटे बच्चे को मेरी स्मृति दे दी जायेगी तो मुझे जो बहुत-कुछ जानना पड़ा वह उस बच्चे को जानना नहीं पड़ेगा। वह जानता हुआ बड़ा होगा। वह उसकी स्मृति का हिस्सा हो जायगा। वह उसको एब्जार्व (अवशोषित) कर जायगा। इतनी बातें वह जानेगा ही। और तब बड़ी मुश्किल हो जायेगी, क्योंकि मेरी स्मृतियाँ उसकी स्मृतियाँ हो जायेंगी। और वह कई मामलों में ठीक मेरे जैसे उत्तर देगा और कई मामलों में वह ठीक मेरी जैसी पहचान दिखलायेगा। क्योंकि उसके ब्रेन (मस्तिष्क) के पास मेरा ब्रेन है।

तो बुद्ध ने एक दूसरी दिशा में प्रयोग किया है। और भी लोगों ने प्रयोग किये हैं और वह वैज्ञानिक नहीं है, वह आकल्ट (परा-वैज्ञानिक) है। उससे

दूसरे, तीसरे और चौथे शरीर को संरक्षित करने की कोशिश की गयी है। बुद्ध तो विलीन हो गये। वह जो आत्मा थी, वह जो चेतना थी, जो इन शरीरों के भीतर जीती थी, वह तो खो गयी सातवें शरीर से। लेकिन खोने के पहले वह इन्तजाम कर गयी है कि ये तीन शरीर न मरें। वह इनको संकल्प की गति दे गयी है। समझ लो कि मैं एक पत्थर फेंकूं जोर से। इतने जोर से फेंकूं कि वह पत्थर पचास मील जा सके और मैं तुरन्त मर जाऊँ। लेकिन इससे पत्थर नहीं गिर जायगा। जो ताकत मैंने उसको दी है वह पचास मील तक चलेगा। पत्थर यह नहीं कह सकता कि वह आदमी मर गया जिसने मुझे ताकत दी थी, तो अब मैं कैसे चलूँ! पत्थर को जो ताकत दी गयी थी पचास मील चलने की, वह पचास मील चलेगी। अब मेरे मरने-जीने से कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरी ताकत उस पत्थर को लग गयी है। वह अब काम करेगी।

४१. कृष्णमूर्ति में बुद्ध के अवतरण का प्रयोग असफल रहा

बुद्ध ताकत दे गये हैं उन तीन शरीरों को जीवित रहने की, वे तीन शरीर जियेंगे। और वह समय भी बता गये हैं कि वह कितनी देर तक जी सकेगा। वह वक्त करीब है जब मैत्रेय को जन्म लेना चाहिए। कृष्णमूर्ति पर वही प्रयोग किया गया था कि इनकी तैयारी की जाय और वह तीन शरीर इनको मिल जायँ। कृष्णमूर्ति के एक बड़े भाई थे, नित्यानन्द। पहले उन पर भी वह प्रयोग किया गया। लेकिन, नित्यानन्द की मृत्यु हो गयी। वह मृत्यु इसी में हुई। क्योंकि यह बहुत अनूठा प्रयोग था और इस प्रयोग को आत्मसात् करना एकदम आसान बात नहीं थी। कोशिश यह की गयी कि नित्यानन्द के तीन शरीर खुद के तो अलग हो जायें और मैत्रेय के तीन शरीर उनमें प्रवेश कर जायें। नित्यानन्द तो मर गये। फिर कृष्णमूर्ति पर भी वही कोशिश चली। वह भी कोशिश यही थी कि इनके तीन शरीर हटा दिये जायें, रिप्लेस कर दिये जायें। वह भी नहीं हो सका। फिर और दो-एक लोगों पर—जार्ज अरण्डेल पर भी वही कोशिश की गयी। क्योंकि कुछ लोगों को इस रहस्य का पता था। ब्लावट्स्की इस सदी में ऑकल्ट (परा-विज्ञान) के सम्बन्ध में जानने वाली शायद सबसे गहरी समझदार औरत थी। एनीबेसेण्ट के पास बहुत समझ थी, लेडबीटर के पास बहुत समझ थी। इन लोगों के पास कुछ समझ थी, जो इस सदी में बहुत कम लोगों के पास है।

इन सब को यह ज्ञात था कि वह तीन शरीरों को जो शक्ति दी गयी है उसके क्षीण होने का समय आ रहा है। अगर मैत्रेय जन्म नहीं लेता है तो वह शरीर बिखर सकते हैं। उनको इतने जोर से फेंका गया था कि उसकी सक्रियता की अवधि समाप्त होने के निकट है। किसी को अब तैयार होना चाहिए कि उन तीन शरीरों को आत्मसात् कर ले। जो व्यक्ति भी तीनों को आत्मसात् कर लेगा

वह ठीक एक अर्थ में बुद्ध का पुनर्जन्म होगा। बुद्ध की आत्मा नहीं लौटेगी, उस व्यक्ति की आत्मा बुद्ध का शरीर ग्रहण करके बुद्ध का काम करने लगेगी। वह व्यक्ति एकदम बुद्ध के काम में संलग्न हो जायगा। इसलिए हर कोई व्यक्ति नहीं हो सकता इस स्थिति में। जो भी होगा वह भी करीब-करीब बुद्ध के पास पहुँचने वाली चेतना होनी चाहिए तभी उन तीन शरीरों को आत्मसात् कर पायेगा। नहीं तो मर जायगा। तो असफल हुआ सारा-का-सारा मामला। वह इसीलिए असफल हुआ कि उसमें बहुत कठिनाई है। लेकिन फिर भी अभी भी चेष्टा चलती है। अभी भी कुछ छोटे-से इजोटेरिक सर्किल (गुह्य-विद्या-मण्डल) इस कोशिश में लगे हुए हैं कि किसी बच्चे को ये तीन शरीर मिल जायें। लेकिन अब उतना व्यापक प्रचार नहीं चलता है। प्रचार से नुकसान हुआ।

कृष्णमूर्ति के साथ सम्भावना थी कि शायद वे तीन शरीर उनमें प्रवेश कर जाते। उनके पास उतनी पात्रता थी। इसका व्यापक प्रचार किया गया। प्रचार शुभ दृष्टि से ही किया गया था कि जब बुद्ध का आगमन हो तो वे फिर से रिकगनाइज हो सकें (पहचाने जा सकें)। और यह प्रचार इसलिए भी किया गया था कि बहुत-से लोग हैं जो बुद्ध के वक्त जीवित थे, उनकी स्मृति जगायी जा सके तो वे पहचान सकें कि यह आदमी वही है कि नहीं है। इस ध्यान से प्रचार किया गया। लेकिन प्रचार घातक सिद्ध हुआ और उस प्रचार ने कृष्णमूर्ति के मन में एक रिएक्शन (प्रतिक्रिया) को जन्म दे दिया। वह संकोची और छुई-मुई व्यक्तित्व हैं। ऐसा सामने मंच पर होने में उनको कठिनाई पड़ गयी। अगर वह चुपचाप और किसी एकान्त स्थान में यह प्रयोग किया गया होता और किसी को न बताया गया होता, जब तक कि घटना न घट जाती तो शायद सम्भव था कि यह घटना घट जाती। वह नहीं घट पायी। वह बात चूक गयी। कृष्णमूर्ति ने अपने शरीर को छोड़ने से इनकार कर दिया। इसलिए दूसरे शरीरों के लिए जगह नहीं बन सकी। इसलिए वह घटना नहीं हो सकी। और एक बड़ी भारी असफलता इस सदी में आकल्ट साइन्स (गुह्य विद्या) को मिली। इतना बड़ा एक्सपेरीमेन्ट (प्रयोग) भी कभी बहुत नहीं किया गया था। तिब्बत को छोड़ कर कहीं भी नहीं किया गया था। तिब्बत में बहुत दिनों से उस प्रयोग को करते रहे हैं और बहुत-सी आत्माएँ वापस दूसरे शरीरों से काम करती रही हैं।

मेरी बात तुम्हारे ख्याल में आ गयी होगी। उसमें विरोध नहीं है। और मेरी बात में कहीं भी विरोध दिखे तो समझना कि विरोध होगा नहीं। हाँ, कुछ और रास्ते से बात होगी, इसलिए विरोध दिखायी पड़ सकता है।

संस्था की ओर से एक मासिक पत्रिका "युकान्द" (युवक क्रान्ति दल का मुख-पत्र) पिछले दो वर्षों से तथा एक त्रैमासिक पत्रिका "ज्योति शिखा" पिछले पाँच वर्षों से प्रकाशित हो रही है । आचार्यश्री के प्रवचनों का संकलन ही पुस्तकाकार में प्रकाशित कर दिया जाता है । अब तक लगभग १७ बड़ी पुस्तकें तथा १८ छोटी पुस्तकें मूल हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं । अधिकतर पुस्तकों के गुजराती अंग्रेजी तथा मराठी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं । १५ बड़ी नयी अप्रकाशित पुस्तकें प्रेस के लिए तैयार पड़ी हैं । अब तक आचार्यश्री प्रवचन-मालाओं में तथा साधना-शिविरों में लगभग २००० घण्टे जीवन, जगत् व साधना के सूक्ष्मतम व महनतम विषयों पर सविस्तार चर्चाएँ कर चुके हैं ।

अब भारत के बाहर भी अनेक देशों में उनकी पुस्तकें लोगों की प्रेरणा और आकर्षण का केन्द्र बनती जा रही हैं । हजारों की संख्या में देशी व विदेशी साधक उनसे गूढ़तम विविध साधना-पद्धतियों और प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में प्रेरणा पा रहे हैं । योग व अध्यात्म के सन्देश व प्रयोगात्मक क्रान्ति के प्रसार हेतु विभिन्न देशों से उनके लिए आमन्त्रण आने शुरू हो गये हैं । शीघ्र ही भारत ही नहीं, वरन् अनेक देशवासी उनके व्यक्तित्व से प्रेरणा तथा सृजन की दिशा पा सकेंगे ।

२५ सितम्बर १९७० से मनाली में आयोजित एक दस दिवसीय साधना-शिविर में आचार्यश्री के जीवन का एक नया आयाम सामने आया । उन्होंने वहाँ कहा कि संन्यास जीवन की सर्वोच्च समृद्धि है, अतः उसे पूर्णता में सुरक्षित रखा जाना चाहिए । उन्हें वहाँ प्रेरणा हुई कि वे संन्यास-जीवन को एक नया मोड़ देने में सहयोगी हो सकेंगे और नाचते हुए, गीत गाते हुए, आनन्द-मग्न, समस्त जीवन को आलिंगन करने वाले, सशक्त व स्वावलम्बी संन्यासियों के जन्म के वे साक्षी बन सकेंगे । शिविर में तथा उसके बाद भी अनेक व्यक्तियों ने सीधे परमात्मा से सावधिक (Periodical) संन्यास की दीक्षा ली । आचार्यश्री इस घटना के साक्षी तथा गवाह रहे हैं ।

अब तक लगभग ६९ व्यक्तियों ने संन्यास के जीवन में प्रवेश किया है । कुछ ही वर्षों में इनकी संख्या सैकड़ों तथा हजारों की होने वाली है । ये संन्यासी-जीवन की पूर्ण सघनता व व्यवहार में सक्रिय भाग लेने के साथ ही साथ गहरी साधना करते हुए विराट् जन-समूह में जीवन, धर्म, साधना, व संस्कृति के लिए क्रान्तिकारी कार्य करेंगे । इस दिशा में संन्यासियों का एक 'कम्यून' संस्कार-तीर्थ, पोस्ट-आजोल, तालुका-बीजापुर, जिला—महेसाणा, गुजरात में कार्यरत हो चुका है ।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व अथाह सागर जैसा है । उसके सम्बन्ध में संकेत मात्र हो सकते हैं । जैसे कि जो व्यक्ति परम आनन्द, परम शान्ति, परम मुक्ति, परम निर्वाण को उपलब्ध होता है उसकी श्वास-श्वास से, रोयें-रोयें से, प्राणों के

आचार्य रजनीश : एक परिचय

आचार्य रजनीश वर्तमान युग के एक युग-द्रष्टा, क्रान्तिकारी विचारक, आधुनिक सन्त, रहस्यदर्शी एवं जीवन-सर्जक हैं।

वैसे तो धर्म, अध्यात्म व साधना में ही उनका जीवन-प्रवाह है, लेकिन कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, आधुनिक विज्ञान आदि में भी वे अनूठे और अद्वितीय हैं।

जो भी वे बोलते हैं, करते हैं वह सब जीवन की आत्यन्तिक गहराइयों और अनुभूतियों से उद्‌भूत होता है। वे हमेशा जीवन-समस्याओं की गहनतम जड़ों को स्पर्श करते हैं। जीवन को उसकी समग्रता में जानने, जीने व प्रयोग करने के वे जीवन्त प्रतीक हैं।

जीवन की चरम ऊँचाइयों में जो फूल खिलने सम्भव हैं, उन सबका दर्शन उनके व्यक्तित्व में सम्भव है।

११ दिसम्बर १९३१ को मध्यप्रदेश के एक छोटे-से गाँव में इनका जन्म हुआ। दिन-दुगुनी और रात-चौगुनी इनकी प्रतिभा विकसित होती रही। सन् १९५७ में उन्होंने सागर-विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र में एम० ए० की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण की। वे अपने पूरे विद्यार्थी-जीवन में बड़े क्रान्तिकारी व अद्वितीय जिज्ञासु तथा प्रतिभाशाली छात्र रहे। बाद में वे क्रमशः रायपुर और जबलपुर के दो महाविद्यालयों में १ और ७ वर्ष के लिए आचार्य (प्रोफेसर) के पद पर शिक्षण का कार्य करते रहे। इस बीच उनका पूरे देश में घूम-घूम कर प्रवचन देने और साधना-शिविर लेने का कार्य भी चलता रहा।

बाद में अपना पूरा समय साधना के विस्तार व धर्म के पुनरुत्थान के लिए लगाने के उद्देश्य से वे सन् १९६६ में नौकरी छोड़ कर आचार्य पद से मुक्त हुए। तब से वे लगातार भारत के कोने-कोने में घूम रहे हैं। विराट् संख्या में भारत की जनता की आत्मा का उनसे सम्पर्क हुआ है।

उनके प्रवचनों और साधना-शिविरों से प्रेरणा पाकर भारत के प्रायः अनेक प्रमुख शहरों में उत्साही मित्रों और प्रेमियों ने जीवन जागृति केन्द्र के नाम से मित्रों और साधकों का एक मिलन-स्थल (संस्था) निर्मित किया है। वे आचार्यश्री के प्रवचन और शिविर आयोजित करते हैं तथा पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था करते हैं। जीवन जागृति केन्द्रों का प्रमुख कार्यालय बम्बई में लगभग ८ वर्षों से कार्य कर रहा है। अब आचार्यश्री भी अपने जबलपुर के निवास-स्थान को छोड़ कर १ जुलाई १९७० से स्थायी रूप से बम्बई में आ गये हैं।

क०	पुस्तक	भाषा हिन्दी	गुज०	मराठी	अंग्रेजी	मूल्य हिन्दी में
२९.	क्रान्ति की नयी दिशा, नयी बात (नारी और क्रान्ति)	हाँ	...	...	...	०—३०
३०.	व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज	हाँ	हाँ	...	...	०—२५
३१.	युवक कौन	हाँ	...	...	...	०—३०
३२.	युवा और यौन	हाँ	...	...	...	०—३०
३३.	बिखरे फूल	हाँ	...	...	...	०—३५
३४.	संस्कृति के निर्माण में सहयोग	हाँ	...	...	...	०—३०
३५.	विवाह और परिवार	हाँ	...	...	...	१—००
३६.	मन के पार	हाँ	...	...	...	१—००
३७.	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	हाँ	...	...	...	४—००
३८.	प्रेम के फूल	हाँ	निर्माणरत	...	निर्माणरत	५—००
३९.	गीता-दर्शन	हाँ	„	...	„	५—००
४०.	जिन खोजा तिन पाइयाँ (कुण्डलिनी-योग पर प्रवचन)	हाँ	...	...	...	२०—००

प्रेस में पुस्तकें

४१. मैं मृत्यु सिखाता हूँ
४२. महावीर और मैं
४३. प्रेम है द्वार प्रभु का
४४. श्री कृष्ण (जीवन, साधना और सन्देश)
४५. सम्भावनाओं की आहट
४६. जीवन ही है परमात्मा
४७. अन्तर्वीणा
४८. जो घर बारै आपना
४९. क्या है मार्ग? ज्ञान, भक्ति या कर्म?
५०. समाधि के द्वार पर
५१. योग : नये आयाम

केवल गुजराती में उपलब्ध पुस्तकें

क०	पुस्तक	प्रकाशक	मूल्य
५२.	गांधी मा कोकीयु अने समाजवाद	प्रकाशक : युवक क्रान्ति दल,	०—३५
५३.	अतीत नी आलोचना अने भावी नु चिन्तन	„	०—३५
५४.	भ्रान्त समाजवाद : और एक खतरा	„	०—५०
५५.	तरुण विद्रोह	„	०—५०
५६.	परमात्मा क्यां छे ?	प्रकाशक : आर० अंबाणी एण्ड कं० राजकोट	०—५०
५७.	समाजवाद थी सावधान	„	०—७५
५८.	प्रेम, परमात्मा अने परिवार	„	०—५०
५९.	गांधीवादी क्यां छे ?	„	०—५०

आचार्य रजनीश-साहित्य

क्र०	पुस्तक	हिंदी	गुज०	भाषा मराठी	अंग्रेजी	मूल्य हिन्दी में
१.	साधना-पथ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	३—००
२.	क्रान्ति-बीज	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	४—००
३.	सिंहनाद	हाँ	हाँ	हाँ	...	१—२५
४.	मिट्टी के दीये	हाँ	हाँ	...	हाँ	३—५०
५.	पथ के प्रदीप	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	३—५०
६.	मैं कौन हूँ ?	हाँ	हाँ	...	हाँ	२—००
७.	अज्ञात की ओर	हाँ	हाँ	...	हाँ	२—००
८.	नये संकेत	हाँ	हाँ	...	हाँ	१—७५
९.	संभोग से समाधि की ओर	हाँ	हाँ	...	हाँ	३—५०
१०.	अन्तर्यात्रा	हाँ	हाँ	...	निर्माणरत	३—५०
११.	शान्ति की खोज	हाँ	निर्माणरत		,,	२—००
१२.	सत्य की खोज	हाँ	...	...	...	३—००
१३.	अस्वीकृति में उठा हाथ	हाँ	...	...	...	५—००
१४.	प्रभु की पगडंडियाँ	हाँ	...	...	निर्माणरत	४—००
१५.	शून्य की नाव	हाँ	...	...	...	३—००
१६.	सत्य की पहली किरण	हाँ	निर्माणरत		...	६—००
१७.	समाजवाद से सावधान	हाँ	,,	...	निर्माणरत	३—५०
१८.	आचार्य रजनीश : समन्वय-विश्लेषण-संसिद्धि	हाँ	(आलोचक डा० रामचंद्र प्रसाद)			७—५०
१९.	अमृत-कण	हाँ	हाँ	हाँ	...	०—६०
२०.	अहिंसा-दर्शन	हाँ	हाँ	...	हाँ	०—५०
२१.	कुछ ज्योतिर्मय क्षण	हाँ	हाँ	...	निर्माणरत	१—००
२२.	नये मनुष्य के जन्म की दिशा	हाँ	हाँ	...	...	०—७५
२३.	सूर्य की ओर उड़ान	हाँ	हाँ	...	...	१—००
२४.	प्रेम के पंख	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	०—७५
२५.	सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण	हाँ	हाँ	...	...	१—५०
२६.	नारगोल : युवक-युवतियों के समक्ष प्रवचन	...	हाँ	...	...	०—२५
२७.	क्रान्ति के बीच सबसे बड़ी दीवार (भारत के साधु-संत)	हाँ	...	...	...	०—३०
२८.	न आँखों देखा, न कानों सुना (गोपनीय गांधी)	हाँ	...	...	...	०—१५

६०. व्यस्त जीवन मां ईश्वर नी खोज ,, ०–६०
६१. गांधीवाद वैज्ञानिक दृष्टिए ,, ०–५०
६२. धर्म अने राजकारण ,, ०–५०
६३. उठ जाग मुवान ,, ०–५०
६४. गांधीजीनी अहिंसानु पुनरावलोकन ,, ०–५०
६५. क्रान्तिनी वैज्ञानिक प्रक्रिया ,, ०–६०
६६. धर्म-विचार नथी उपचार ,, ०–६०
६७. पूर्णावतार श्रीकृष्ण ,, ०–४०
६८. प्रेमनी प्राप्ति संस्कार तीर्थ आजोल ०–४०
६९. अंतर्दृष्टा आचार्य रजनीश (जीवन चरित) साहित्यनिधि,अहमदाबाद ०–७५
७०. अंतर्दृष्टा आचार्य रजनीश (जीवन प्रसंगो) ,, ०–५०
७१. अंतर्दृष्टा आचार्य रजनीश (ज्ञानवाणी) ,, ०–५०
७२. गीता-प्रवचन (लोकसमाचार विशेषांक) प्रजाबंधु प्रेस, अहमदाबाद १–००
७३. आचार्य रजनीश : क्या मार्ग ? (गुजराती आलोचना) ... २–००
आलोचक प्रकाशक : डाह्याभाई नानुभाई नायक, साहित्य संगम, बड़ौदा

विविध पुस्तकें

७४. समाजवादा पासून सावधान (मराठी) जीवन जागृति केन्द्र ०–५०
७५. पूर्व का धर्म, पश्चिम का विज्ञान (हिन्दी) ,, ०–५०
७६. अहिंसा दर्शन (गुरुमुखी, पंजाबी) ,, ०–४०
७७. जीवन जो राज (सिंधी) ,, ०–५०
७८. परिवार-नियोजन : एक दार्शनिक चिन्तन (हिन्दी) ,, ०–७५
७९. अभिनव संन्यास (गुजराती) ,, ०–५०
८०. ध्यान (गुजराती) संस्कार तीर्थ, आजोल ०–५०
८१. प्रेम (गुजराती) ,, ०–७५
८२. सूली ऊपर सेज पिया की (हिन्दी) (प्रेस में)
८३. जीवन-क्रान्ति की दिशा सस्ता साहित्य मण्डल २-००

ENGLISH BOOKS BY ACHARYA RAJNEESH

I Translated from Original Hindi :

		Pages	Price
1.	Path to Self-Realisation	198	4.00
2.	Seeds of Revolutionary Thoughts	232	4.50
3.	Philosophy of Non-Violence	34	0.80
4.	Who Am I ?	145	3.00
5.	Earthen Lamps	247	4.50
6.	Wings of Love and Random Thoughts	166	3.50
7.	Towards the Unknown	54	1.50
8.	From Sex to Super-Consciousness	180	6.00

In Press :

9. The Mysteries of Life and Death
10. Journey Inwards
11. Beware of Socialism
12. God : Many Splendoured Love

II Original English Booklets

		Pages	Price
13.	Meditation : A New Dimension	36	2.00
14.	Beyond and Beyond	30	2.00
15.	Flight of Alone to the Alone	40	2.50
16.	LSD—A shortcut to False Samadhi	28	2.00
17.	Yoga : As a Spontaneous Happening	28	2.00

In Press :

18. The Pathless Path
19. The Occult Mysteries of Dreaming
20. What is Yoga ?
21. This Insane Society
22. Freedom From Becoming
23. The Will to the Wholeness
24. The Forgotten Language
25. The Vital Balance
26. The Great Challenge
27. The Open Secret
28. The Silent Music

III Criticisms on Acharyaji

		Price
29.	Acharya Rajneesh : A Glimpse by V.N. Vora	1.25
30.	Acharya Rajneesh : The Mystic of Feeling	20.00